Chennai and eGango

कल्याण

Vol: 69 1995 No. 3-12

G. K. V. Lib
Hardwar

Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130300

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

[परिशिष्टाङ्क—२]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०५१, श्रीकृष्ण-सं० ५२२०, मार्च १९९५ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१- वृंदावनमें गोपालकी गोचर्या ४७१
२- गोरक्षा शिवधर्म है ४७२
३- भगवान् श्रीरामका गोप्रेम ४७३
४- श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय ४७४
५- वेद और वैदिक संस्कृतिमें गायकी लोकोत्तर महिमा (आचार्य डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय) ४८०
६- गावो विश्वस्य मातरः (डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि) . ४८४
७- गोमूत्र और गोमयसे रोग-निवारण ४८६
८- गायके बिना घर बन्धुशून्य है ४८८
९- 'गोबर' की उपयोगिता (श्रीहरिवल्लभजी बोहरा 'हरि', एम्० ए० (हिन्दी), एम्० कॉम, बी० एड्०) ४८९
१०- भारतमें गोरक्षाकी अनिवार्यता (डॉ० श्रीमुहम्मदखाँ दुर्रानी, शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ४९०
११- भारतमें गोहत्याके लिये जिम्मेवारी किसकी? (श्रीराधाकृष्णजी बजाज) ४९२
१२- गौकी देखभाल एवं रोगोपचार (डॉ० श्रीगंगाधरजी मिश्र) ४९४
१३- प्रार्थना [कविता] ४९५
१४- कबीर और गो-वध ४९६
१५- भारतके विदेशी शासकोंके सिक्कोंपर नन्दी (डॉ० श्रीमती श्यामला गुप्ता) ४९७
१६- सुरभीको वरदान ४९८
१७- *विभिन्न संस्कृतियोंमें गो-आराधन और गोसेवा—*
(क) गोरखाली संस्कृतिमें गायतिहार एवं भैलेनी (श्रीजनार्दनजी चतुर्वेदी 'जन') ४९९
(ख) बिहारके वनाञ्चलमें गोपूजन-परम्परा (श्रीसुरेशनन्दनप्रसादसिंहजी 'नीलकंठ') ५००
(ग) राजस्थानी लोक-साहित्यमें गोरक्षा (श्रीउदयवीरजी शर्मा, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न) ५०२

विषय — पृष्ठ-संख्या

—किसीको कष्ट मत दो ५०३
(घ) पंजाबी लोक-चेतनामें गोमहिमा (डॉ० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० ई० एस्०) ५०४
(ङ) हिमाञ्चल-प्रदेशका माल-पूजा-उत्सव (डॉ० श्रीविद्याचन्दजी ठाकुर, व्युत्पत्तिविद्) ५०६
(च) कर्नाटक प्रदेशकी गोसेवाकी कुछ झलकियाँ (विद्यावाचस्पति श्रीमती डॉ० रुक्मिणी गिरिमाजी 'प्रतिभा', एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ५०७
१८- *कहानी—*
'गोषु पाप्मा न विद्यते' (श्री 'चक्र') ५०८
१९- हुमायूँकी गोमांससे घृणा ५१०
२०- *गोभक्तोंके आख्यान—*
[अ] एक जर्मन महाशयकी गोभक्ति [प्रेषक—बी० श्रीमीठालालजी जोशी] ५११
[आ] आदर्श गोभक्त सेठ शिवलदासजी (श्रीदरबार साहब, भाई परसरामजी) ५१२
[इ] रीवाँके गोभक्त नरेश ५१३
[ई] जाम्भोजीकी गोसेवा (श्रीमाँगीलालजी बिश्नोई 'अज्ञात' एम्० ए०, बी० एड्०) ५१४
[उ] गोभक्त लोटन (श्रीरघुनाथसिंहजी राणा) ५१५
[ऊ] संत आसूदारामजीकी विलक्षण गोभक्ति ५१५
[ए] गोभक्त दरबार जीवावाला हरसुरवाला (कमलाबा) ५१६
२१- *घटनाएँ—*
(१) गौ मातासे जीवन-रक्षा (श्रीमधुसूदनजी तिवारी) ५१७
(२) गौ माताकी कृपासे फाँसी टल गयी (पं० श्रीधरणीधरजी उपाध्याय) ५१७
२२- बच्चोंका आरोग्य दूधपर निर्भर है ५१८

चित्र-सूची

१-गोवर्धन-धारण	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-गोविन्दका गोचारण	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

सादे चित्र

पृष्ठ-संख्या

१-गोपालका गायोंको टेरना ४७४
२-श्रीकृष्णका गोशृंगार दिखलाना ४७९
३-भारतके विदेशी शासकोंके सिक्कोंपर नन्दी (८ चित्र) ४९७-४९८

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७० रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रहवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130300

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

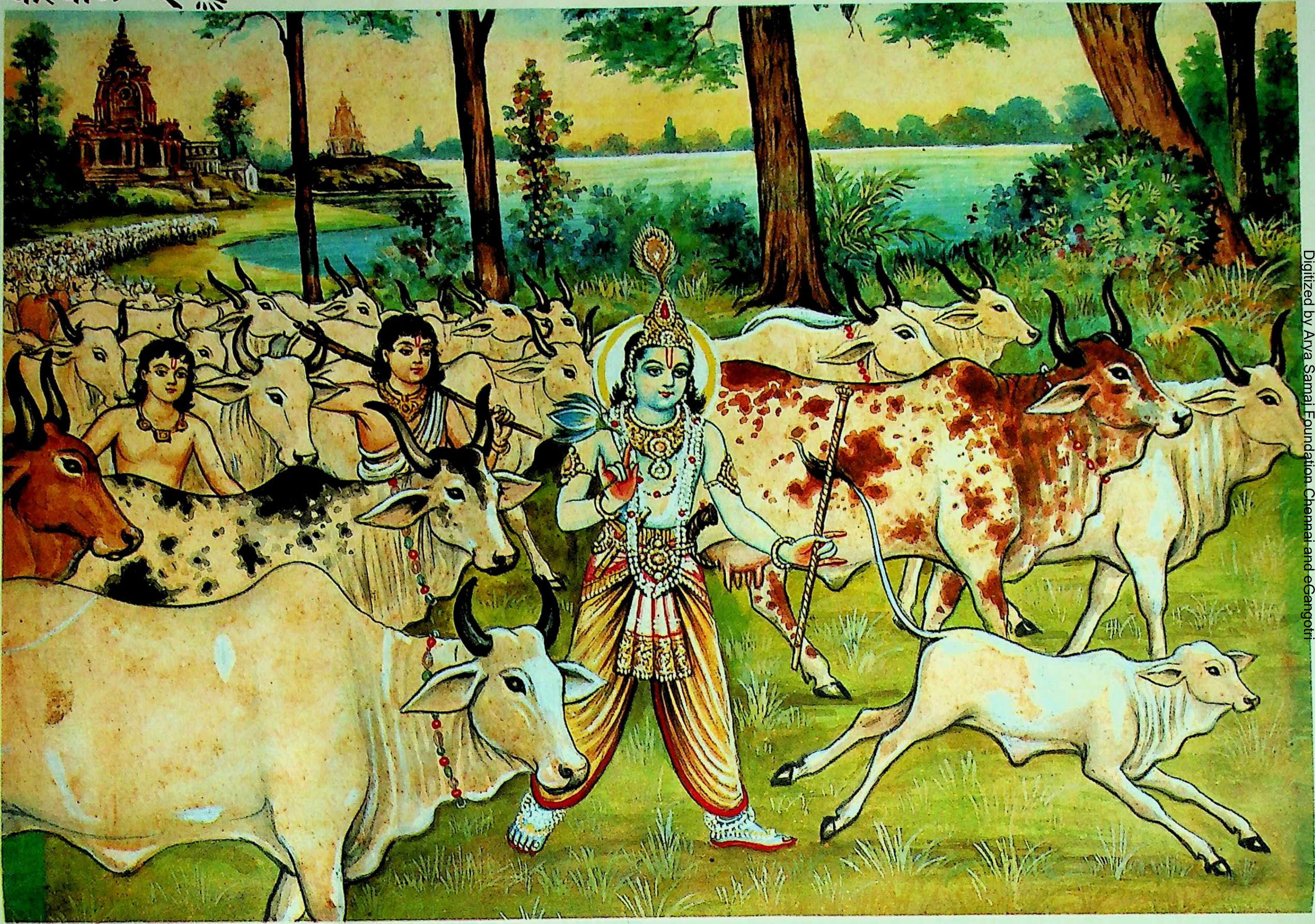

गोविन्दका गोचारण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

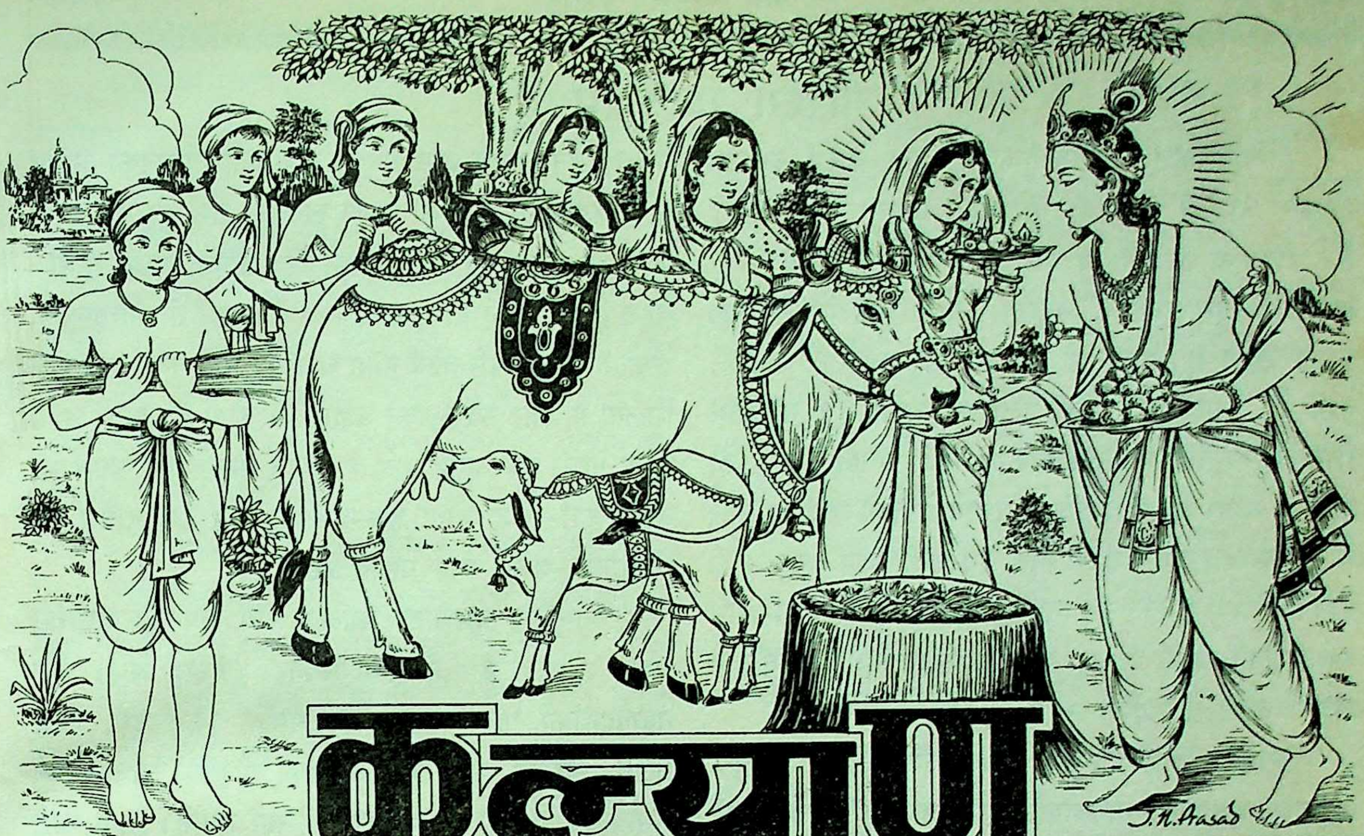

कल्याण

तृणोदकाढ्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ | गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०५१, श्रीकृष्ण-सं० ५२२०, मार्च १९९५ ई० | संख्या ३ | पूर्ण संख्या ८२०

वृन्दावनमें गोपालकी गोचर्या

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः॥
तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद् विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम्॥

x x x

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून्। रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः॥

(श्रीमद्भा० १०। १५। १-२,९)

अब बलराम और श्रीकृष्णने पौगण्ड-अवस्थामें अर्थात् छठे वर्षमें प्रवेश किया था। अब उन्हें गौएँ चरानेकी स्वीकृति मिल गयी। वे अपने सखा ग्वाल-बालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनमें जाते और अपने चरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पावन करते। यह वन गौओंके लिये हरी-हरी घाससे युक्त एवं रंग-बिरंगे पुष्पोंकी खान हो रहा था। आगे-आगे गौएँ, उनके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए श्यामसुन्दर, तदनन्तर बलराम और फिर श्रीकृष्णके यशका गान करते हुए ग्वाल-बाल—इस प्रकार विहार करनेके लिये उन्होंने उस वनमें प्रवेश किया। इस प्रकार परम सुन्दर वृन्दावनको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए। वे अपने सखा ग्वाल-बालोंके साथ गोवर्धनकी तराईमें, यमुनातटपर गौओंको चराते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

★★★

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरक्षा शिवधर्म है

गोपतिवाहन श्रीशिवजीके गोप्रेमके बारेमें अधिक लिखना नहीं है, शिवजी गोरक्षाको आत्मधर्म ही मानते हैं। **'शिवस्य तत्त्वं शिव एव वेत्ति नन्दी च विष्णुर्नगजा कुमारः'**—इस प्रमाणके अनुसार शिवधर्मवेत्ताओंमें नन्दीका प्रमुख स्थान है। नन्दी भी ईश्वरसे अभिन्न माने जाते हैं, तभी तो 'नन्दीश्वर' शब्द प्रचलित हुआ है। मन्दिरोंमें शिवलिङ्ग-मूर्ति (ज्योतिर्गोलाकार)-की प्रतिष्ठा प्रसिद्ध ही है, उस जगह सर्वत्र शिवके अग्रभागमें पहले नन्दीका और पीछे शंकरका दर्शन करना होता है। नन्दी स्वयं धर्मस्वरूपी होनेके कारण उनका यह सम्मान स्वाभाविक है। मन्दिरोंमें भारतीयोंको कैसी सुन्दर शिक्षा मिलती है। एक वृत्तान्त शैवोंमें बहुत प्रसिद्ध है—

सृष्टिके आरम्भकालमें नन्दी शिवजीकी आज्ञाके अनुसार भूतलपर मानवोंको ऐसा उपदेश देनेके लिये आये कि 'प्रतिदिन अभ्यङ्ग-स्नानादि कर ईश्वरार्चन अवश्य करें और पंद्रह दिनोंमें एक बार भोजन करें।' किंतु नन्दीसे भूल हो गयी, उन्होंने 'प्रतिदिन खाने और पंद्रह दिनमें एक बार अभ्यङ्ग करने' की बात लोगोंको बतायी। नन्दीने लौटकर जब कैलासमें यह समाचार दिया, तब शिवजीने महान् रौद्ररूप धारणकर उन्हें फटकारा और इस अपराधके प्रायश्चित्तमें नन्दीको यह आज्ञा दी कि 'तुमको अपनी नन्दिनी गौके साथ भूलोकमें अवतार लेना होगा और गो-संतति बढ़ाकर, खेती-बारीद्वारा मानवोंको खिला-पिलाकर उनका संरक्षण करना होगा।' बस, उसी समयसे नन्दा (नन्दिनी) अपने नन्दीके साथ भूलोकवासिनी हो गयी।

कथाका तात्पर्य तो स्पष्ट है, मानवोंके पालन-पोषणका भार गो-संततिपर है यानी गोमाताका अवतार मानवोंके कल्याणके निमित्त हुआ है। मूल रहस्य तो यह है कि गो-संतति विश्वके माता-पिता हैं, इनमें महादेवके प्रतिनिधि नन्दी और महाविष्णुकी प्रतिनिधि गौ है, इस तरह शिव और शक्ति ऐक्यरूपसे जगत्का संचालन करते हैं। प्राचीन मानवोंके लिये यह कोई रहस्य नहीं था, किंतु सर्वसाधारण ज्ञान था। इसी कारण गौका उतना आदर और महत्त्व रहा, कहीं गोधनका अनिष्ट दीख पड़ता तो प्राणोंकी बाजी लगाकर उसे दूर कर दिया जाता था। आज भी अपने देशमें गोभक्तोंकी संख्या थोड़ी-बहुत है ही। किंतु गोरक्षणका सार्वभौम नहीं तो भारतव्यापी संघटित उद्यमरूपसे कार्य होना चाहिये। गोपालनसे महापुण्य मिलता है और स्वकुलका उद्धार भी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह अदृष्ट फल है, किंतु गोपालनसे स्वार्थ भी बहुत कुछ सिद्ध होता है—कम-से-कम इस दृष्टिसे भी गो-संतति-वर्धन बड़ा महत्त्व रखता है।

आधुनिक पाश्चात्त्य शिक्षित लोग अपनेको सर्वोत्तम सभ्य समझते हैं और अणुस्फोट (ऐटम बम)-जैसे महापदार्थको पाकर फूले नहीं समाते, किंतु दूध, दही, मलाई, मक्खन, मट्ठा-जैसे अमृतको गौओंके सिवा अपने रासायनिक पाण्डित्यसे ये लोग पा नहीं सकते। इतनी भारी हार खाकर भी ये गोभक्षण-जैसे अपवित्र, अर्थशास्त्रविरुद्ध और युक्तिहीन कर्म करते हैं—यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। शाकाहारकी ओरसे इन शिक्षित लोगोंका उदासीन होना आत्मवञ्चनाके सिवा और कुछ नहीं है।

शिव-भक्तके लिये गौ प्राण है। वीरशैवसम्प्रदाय (शिवलिंगधारी) केवल शाकाहारी, अहिंसक और गोधनप्रेमी है, इस सम्प्रदायके सभी वर्णोंका शाकाहारी होना एक असाधारण बात है, इसमें एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक कारण भी है।

भूति, रुद्राक्ष, मन्त्र, गुरु, लिङ्ग, जंगम, पादतीर्थ और प्रसाद—ये आठ वीरशैवोंके आवरण हैं। प्रथम आवरण जो भूति है, वह विभूति, भसित, भस्म, क्षार और रक्षा नामसे पाँच प्रकारकी है। इन पाँच प्रकारके भस्मोंकी उत्पत्ति नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला और सुमना नामक पाँच प्रकारकी गौओंसे मानी गयी है और इन पवित्र पाँच गौओंकी उत्पत्ति शिवजीके सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान नामक पाँच मुखोंसे मानी जाती है—

नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः॥

(सिद्धान्तशिखामणि ७। ४६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरशैवसम्प्रदायके आदिप्रवर्तक श्रीरेणुक, दारुक, एकोराम, पण्डिताराध्य और विश्वाराध्य नामक पञ्चाचार्योंकी आदिम उत्पत्तिका भी शिवजीके उन्हीं पाँच मुखोंसे होना ये मानते हैं, जहाँसे गोदेवीका उद्गम हुआ है। इसी हेतु इस समाजमें गोभक्तिका उज्ज्वल प्रकाश विद्यमान है। कर्नाटक प्रान्तके हर एक ग्राममें नन्दिमन्दिर (बसवनगुडि)-का दर्शन आप पायेंगे और इनके किसी शुभ कार्यमें नन्दिध्वज (नन्दिकोल)-का उत्सव भी देखनेको मिलेगा। प्राचीन शैव राजाओंकी शिविकाओंपर नन्दीकी छाप तो प्रसिद्ध है, जमीनके सीमा-प्रस्तरों और विवाह-निमन्त्रणपत्रोंपर भी लिङ्ग-नन्दिमुद्राओंको छापना ये लोग भूलते नहीं। इन दृढ़ शिवभक्तोंके लिये गो-संतति पूजनीय, विभूति और महान् ऐश्वर्य है। 'हम गौओंके लिये हैं और गौएँ हमारे हितके निमित्त हैं, जिधर गौएँ रहेंगी, उधर हम रहेंगें'—

गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम्।

इस महामन्त्रकी भावना सत्य और विज्ञानमूलक है। गोमय-गोमूत्रसे और गोष्ठकी हवासे भी अद्भुत कल्याण होता है, फिर कृषि-वाणिज्यादिमें गौकी उपकारिता और दानादिमें गौकी महत्ताका क्या कहना! मानवोंके समस्त हित गोमूलक हैं। अत: गोरक्षा शिवधर्म ही है।

गोपालन आदि वैश्योंका मुख्य धर्म होनेपर भी सभी वर्णोंके लिये हितकर है। आज विश्वमें अर्थशास्त्रावलम्बन विशेष दीख पड़ता है, इस दृष्टिसे भी गोधन-वर्धन सर्वमानव-कर्तव्य अवश्य होना चाहिये; क्योंकि गोवंशका क्षय संसारका प्रलय है और गो-संततिका अधिकोदय विश्वका अभ्युदय है—

गोशालास्तु प्रतिग्रामे गोभक्ताः स्युः समे जनाः।
गावो यतः श्रियो मूलं पुण्यस्वास्थ्यसुखप्रदाः॥

भगवान् श्रीरामका गोप्रेम

गोस्वामी तुलसीदासजीने बताया है कि गोद्विजहितकारी प्रभुके मर्यादापुरुषोत्तम-रूपमें प्रकट होनेके प्रमुख कारणोंमें एक 'गोहित' भी था—*'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'* अत: आपके अवतार लेने योग्य वंश महाराज दिलीपका ही था, जिन्होंने नन्दिनीकी परिचर्या और आराधना कर सच्चा गोभक्त कहलानेका गौरव प्राप्त किया। परम्परागत धर्मके अनुयायी दिलीपवंशियोंमें गोभक्तिका होना स्वाभाविक था। अतएव महाराज दशरथमें गोसेवाकी भावनाका अस्तित्व कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यही कारण था कि जहाँ महाराज दशरथके महलमें सारे बहुमूल्य पदार्थ थे, वहाँ अमूल्य गौएँ भी थीं। कहना न होगा कि श्रीरामका बाल्यजीवन गौओं और गोवत्सोंके संसर्गमें बीता। इसीलिये मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें ही आपको उन क्रीडाओंसे अनुराग हो गया, जो आपने आगे चलकर लीला-पुरुषोत्तमके रूपमें कीं।

अध्यात्मरामायणमें बताया गया है—

अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः॥
दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा।
शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम्।

(बाल० ३। ४६-४७, ५४)

आशय यह है कि भगवान् राम आँगनमें गोवत्सोंके पीछे-पीछे सब ओर घूमते थे। यह देखकर राजा दशरथ और कौसल्या प्रसन्न होते थे। एक बार श्रीरामने छीकेपर रखे हुए दूध, दही, मक्खनको नीचे गिराकर अपने भाइयोंको बाँटा था। पायसावतार श्रीरामके लिये यह उचित ही था।

नरमांसभोजी राक्षसोंके नष्ट करनेमें भी 'गोहित' निहित था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि रामराज्यमें गोमाताका कितना आदर था। महर्षि नारदने बताया है कि भगवान् रामने दस सहस्र करोड़ गौओंका दान किया—'**गवां कोट्ययुतं दत्त्वा।**' (वा०रा० १। १। ९५)। इससे गौओंकी प्रतिष्ठाकी पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। इस प्रकार भगवान् श्रीरामके गोहितका अनुभव करते हुए रामभक्त सदा गोहितका ध्यान रखते आये हैं। रामभक्त बननेके लिये हमें भी गोसेवा करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय

[विशेषाङ्क पृष्ठ ४४ से आगे]

अब दूसरे दिनसे राम-श्यामकी वत्स-चारण-लीला नियमितरूपसे प्रतिदिन ही होने लगी। पर जननीके आदेशसे वे दूर नहीं जाते थे—

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। ३८)

इसी वत्स-चारणको निमित्त बनाकर भगवान् व्रजराजनन्दनने वत्सासुरका उद्धार किया; बछड़ोंको जल पिलाने जाकर बकासुरको अपने परमधाममें पहुँचाया; वत्स-चारणमें ही संलग्न रहकर अघासुर-मोक्षलीला सम्पन्न की; तथा श्यामसुन्दरकी परम मनोहारिणी ब्रह्म-मोहन-लीला भी इसी वत्स-चारणके प्रसंगसे ही हुई। इस भुवन-पावनी लीला-मन्दाकिनीसे जगत्को पवित्र करनेके उद्देश्यसे ही मानो सर्वलोकैकपाल व्रजराजनन्दन अपने अग्रज दाऊके साथ वत्सपालका वेष स्वीकार कर वत्स-चारण करते हुए वृन्दावनमें घूमते हैं—

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। ४५)

व्रजराजनन्दन अब वत्सपालसे गोपाल बन गये हैं। पौगण्डमण्डित श्रीअङ्गोंसे एक अभिनव सौन्दर्य झरता रहता है; अग्रज राम एवं सखाओंके साथ गायें चराते हुए वृन्दावनमें घूमते रहते हैं; वृन्दावनकी भूमि उनके चारु चरणतलोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ हो रही है—

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः॥

(श्रीमद्भा० १०। १५। १)

प्रतिदिन यशोदा एवं रोहिणी अपने वात्सल्यपूर्ण हृदयका समस्त प्यार लेकर राम-श्यामका शृंगार करतीं; नवनीत एवं विविध मिष्टान्नोंका कलेवा करातीं, कुछ छींकोंमें भर देतीं; तथा राम-श्याम गायोंको लेकर वनमें चराने जाते। वनमें सखाओंके साथ विविध क्रीडा करते। कभी मदमत्त मधुकरोंका अनुकरण करते हुए गाते, कभी कलहंसोंका कमनीय कूजन सुनकर उसी तरहकी ध्वनि करते, कभी मयूरोंका मनोहर नृत्य देखकर उन्हींकी तरह नाचने लगते। इधर व्रजराजनन्दन तो इन विविध लीलाओंमें मस्त रहते, उधर गायें चरती हुई वनमें दूर चली जातीं। तब खेल छोड़कर श्यामसुन्दर अपने अग्रज एवं सखाओंको सूचना देते, कदम्बपर चढ़कर गायोंका नाम ले-लेकर पुकारते तथा पीताम्बर फहरा-फहराकर उन्हें अपनी ओर बुलाते—

टेरत ऊँची टेर गुपाल।
दूर जात गैया, भैया हो! सब मिल घेरो ग्वाल॥
लै लै नाम धूमरी धौरी मुरली मधुर रसाल।
चढ़ि कदंब चहुँ दिसि तें हेरत अंबुज नयन बिसाल॥
सुनत सब्द सुरभी समुहानी उलट पिछोड़ी चाल।
चत्रभुज प्रभु पीतांबर फेर्‌यो गोबर्धनधर लाल॥

इस प्रकारकी अनेकों मनोहारिणी लीलाध्वनियोंसे श्रीगोवर्धनके समीपवर्ती वनप्रान्त, सरित्, तडाग आदि सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निनादित होते रहते। जिस समय मनमोहन श्यामसुन्दर अपनी बाँसुरीमें स्वर भरते, उस समय तो समस्त वृन्दावन ही एक अनिर्वचनीय रस-सुधा-धारासे प्लावित हो उठता, वनवासी चर-अचर प्राणी उसमें बह जाते।

दिनभर व्रजबालकोंको सुख देकर वनसे गोष्ठ लौटनेकी तैयारी होती। सभी ग्वाल अपनी-अपनी गायें इकट्ठी करते। श्यामसुन्दर भी दूर चरती हुई गायोंको बुलाते—

गोबिंद गिरि चढ़ि टेरत गाय।
गाँग बुलाई धूमरि धौरी, टेरत बेनु बजाय॥
स्रवन नाद सुनि मुख तृन धरि सब चितईं सीस उठाय।
प्रेम बिबस ह्वै हूँक मार चहुँ दिसि ते उलटीं धाय॥
चत्रभुज प्रभु पटपीत लिये कर आनँद उर न समाय।
पोंछत रेनु धेनु के मुख तें गिरि गोबर्द्धन राय॥

पिशङ्गि मणिकस्तनि प्रणतशृङ्गि पिङ्गेक्षणे
मृदङ्गमुखि धूमले शबलि हंसि वंशीप्रिये।
इति स्वसुरभीकुलं मुहुरुदीर्णहीहीध्वनि-
र्विदूरगतमाह्वयन् हरति हन्त चित्तं हरिः॥

(उज्ज्वलनीलमणि)

गायें एकत्र हो जातीं तो उनसे अनेकों लाड़ लड़ाते। फिर सभी गोष्ठकी ओर गायें हाँककर चल पड़ते। उस समय श्यामसुन्दरकी शोभा देखते ही बनती। सुन्दर अलकावली गोधूलि-कणोंसे मण्डित रहती, उनमें मयूरपिच्छ एवं वनप्रसून बँधे रहते, चितवनमें असीम सौन्दर्य भरा होता, अधरोंपर मधुर मुसकान खेलती रहती, स्वयं बाँसुरी बजाते होते एवं सखा-मण्डली उनकी गुणावली गाती रहती। गायोंकी पंक्तियोंसे श्यामसुन्दर घिरे रहते।

यूथ-की-यूथ व्रजाङ्गनाएँ अपने कोटि-कोटि-प्राणप्रतिम प्रियतमको देखनेके लिये एकत्र हो जातीं। उनकी आकुलदृष्टि गायोंके बीचसे मुड़कर श्यामसुन्दरके पास जा पहुँचती। अश्रु-जल-पूरित नयनोंसे कोई व्रजाङ्गना जब नहीं देख पाती, तब दूसरी संकेत करती—

वे देखो आवत हैं गिरिधारी।
कछुक गाय आगें अरु पाछें, सोभित संग सखा री॥

श्यामसुन्दरको देखकर समस्त दिनका उनके विरहानलमें जलता हुआ व्रजाङ्गनाओंका संतप्त हृदय शीतल हो जाता।

यह लीलाक्रम प्रतिदिन चलता, पर प्रतिदिन ही एक नये रंगमें ढल जाता। उसीके साथ भूभार-हरणका कार्य भी आनुषङ्गिकरूपसे होता जाता। पहले कालिय-उद्धार हुआ। विषदूषित जल-पानसे मृत गौओं एवं ग्वाल-सखाओंको अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर व्रजराजनन्दनने जीवन-दान दिया। फिर कालिय-दमनके उद्देश्यसे स्वयं कालियह्रदमें कूद पड़े। लीला-रस-मत्त व्रजराजनन्दनको न पहचानकर कालियने उन्हें अपने फणोंमें बाँध लिया। अपने प्राणधनकी यह आकस्मिक दशा देखकर सखा एवं गायें रो पड़ीं। इतना ही नहीं, समस्त व्रजमण्डल एकत्र होकर कालियह्रदमें कूदकर प्राण देनेको प्रस्तुत हो गया। श्रीकृष्णकी अनन्त कृपाशक्तिके लिये यह असह्य था। दृश्य बदला, और दूसरे ही क्षण कालियके फणको व्रजराजनन्दनने चूर-चूर कर डाला। नागपत्नियोंके अनुनय-विनयसे नागने जीवन-दान पाया तथा आज्ञा हुई—'नाग! यहाँसे चले जाओ; यह नदी हमारी गायोंकी, हमारे जनोंकी क्रीडास्थली होगी।'

अग्रज बलरामके द्वारा धेनुकासुर एवं प्रलम्बासुरका उद्धार हुआ। दो बार कंसप्रेरित आसुरी माया श्यामसुन्दर एवं उनके प्रिय व्रजको भस्म करनेके उद्देश्यसे दावानलके रूपमें प्रकट हुई। स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दन उसी बालोचित लीला-रसका आस्वाद लेते-लेते उस लप-लप करती दावाग्निको पी गये। ऐसे अद्भुत कृत्योंके समय व्रजराजनन्दनके श्रीअङ्गोंमें तदनुरूप कार्यके लिये किसी विशाल विकराल रूपका आविर्भाव होता रहा हो, ऐसी बात बिलकुल नहीं थी। उनका तो सर्वदा वही मधुर मनोहर नव-जलधर-श्यामल अङ्ग, अरुण अधर, कर-पल्लवोंमें वही हरिद्वेणु—सब कुछ ज्यों-का-त्यों बना रहता। ऐसी लीलाओंका समापन करके भी सन्ध्या-समय वे गायोंको बटोरकर, अपने वदनारविन्दपर उसी स्वभावसुलभ प्रसन्नता, उसी आनन्दमयी शान्तिको लिये, वेणुछिद्रोंसे मधुधाराकी वर्षा करते हुए व्रजमें लौटते—

गाः संनिवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः॥

(श्रीमद्भा० १०। १९। १५)

इस तरह गोचारण-लीलाका आनन्द लेते हुए व्रजराजनन्दनको अब दो वर्ष, दस महीनोंसे कुछ अधिक हो गये। पञ्चम वर्षकी कार्तिक शुक्ला अष्टमीको यह गो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारण-लीला आरम्भ हुई थी। अब इस बार उनके अष्टम वर्षकी शरद्ऋतु आयी। सप्तम वर्षके प्रारम्भमें ही गो-चारण-परायण व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके पौगण्डवयःश्रित श्यामल अङ्गोंके अन्तरालसे कैशोर मानो झाँक-सा रहा था तथा उन्हें देख-देखकर व्रज-युवतियोंके हृदयमें अनुरागका अङ्कुर उत्पन्न होने लगा था। इस अष्टम शरद्ने तो मानो स्पष्ट आह्वान किया एवं आमन्त्रण पाकर व्रजराजनन्दनके नव-नीरद श्रीअङ्गोंपर कैशोरने अपनी अनादिसिद्ध सत्ताकी घोषणा करना प्रारम्भ कर दिया—

वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिरसाश्रयः।
धर्मः कैशोर एवात्र नित्यनानाविलासवान्॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति भी आगेकी लीला-प्रकाशन करनेको उद्यत थी; वयस्क व्रजदेवियोंको वात्सल्यरसकी आनन्दधारामें डुबोकर अब उसे माधुर्य-रसकी मन्दाकिनीसे व्रज-सुन्दरियोंको आप्लावित करना था। अतः लीलाशक्तिने भी व्रजराजनन्दनके श्रीअङ्गों-पर उभरते हुए कैशोरका स्वागत ही किया। इसीलिये आज जब शारदीय शृंगारसे सजे हुए वृन्दावनमें गोचारण-लीलारसमें निमग्न श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दनकी वंशी बजी—

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विज-
कुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्॥

(श्रीमद्भा० १०। २१। २)

'उस वनके सरोवर, नदियाँ और पर्वत—सब-के-सब सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी-हरी वृक्षपंक्तियोंसे शोभायमान हो रहे थे। मतवाले भौंरे स्थान-स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह-तरहके पक्षी झुंड-के-झुंड अलग-अलग कलरव कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजी और ग्वाल-बालोंके साथ उसके भीतर घुसकर गौओंको चराते हुए अपनी बाँसुरीपर बड़ी ही मधुर तान छेड़ी।'

तब व्रजयुवतियाँ क्षणभरमें ही कुछ-से-कुछ हो गयीं। उनके हृदयका अनुराग-सिन्धु उमड़ पड़ा तथा उसकी उत्ताल तरङ्गोंमें उनके शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण—सभी बह चले। एककी नहीं, सबकी यही दशा थी। सभी एक ही धारामें डूबती-उतराती अपने प्रियतम श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दनकी ओर बहती जा रही थीं। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे एक गोपीका स्थूलशरीर दूसरीके स्थूलशरीरसे जा सटा, दूसरीका तीसरीके शरीरसे, तीसरीका चौथीसे; इस तरह रस-धारामें बहती हुई व्रज-सुन्दरियोंकी एक गोष्ठी बन गयी। सामने स्वजनों एवं आर्यपथका विशाल पर्वत खड़ा था। प्रेम-रस-पीयूषकी प्रबल धाराके प्रचण्ड वेगसे उसकी भी जड़ हिल गयी। पर एक बार तो उसने उनके शरीरको रोक ही लिया। उनके शरीर उस पर्वतको अभी पार न कर सके। अवश्य ही यह प्रतिरोध भी पर्वतके टूटनेके लिये ही हुआ था। जो हो, उनका शरीर ही रुक सका; उनकी रसमय मन-प्राण-इन्द्रियाँ तो विरह-तापसे वाष्प बन उड़कर कभीकी श्यामसुन्दरके पास पहुँच गयीं और श्यामसुन्दरका मधुर स्पर्श पाकर निहाल होने लगीं। उनके शरीर व्रजमें थे। शेष सब कुछ था अपने जीवनधन श्यामसुन्दरके पास। लीलाशक्तिकी इच्छासे ही उनके स्थूलशरीर एवं व्रजराजनन्दनमें रमे हुए मन-प्राण आदिमें सूक्ष्म तन्तु-का-सा सम्बन्ध अवशिष्ट था। इसीके सहारे मानो उनके मन-इन्द्रिय-प्राणोंकी अनुभूति इस स्थूलशरीरमें प्रतिध्वनित होने लगी।

एक व्रजयुवतीके मुखसे यह प्रतिध्वनि सुन पड़ी—'सखियो! नेत्रोंका बस चरम फल यही है कि वनमें गायोंको ले जाते हुए श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दन एवं गौरसुन्दर बलरामके मुखारविन्दका मधुपान कर लें।'

कोई प्रतिध्वनि ऐसी थी—'देख सखी! वनमें गाय चराने आकर राम-श्याम कैसी क्रीडा कर रहे हैं। आम्रपल्लव, मयूर-पिच्छ, पुष्प-गुच्छ एवं कमलोंकी मालासे शृंगार किये हुए दोनों कितना सुन्दर गा रहे हैं।' कुछ गोपियोंके मुखसे सुन पड़ रहा था—'बहिनो! देखो, गायोंको बुलानेके लिये हमारे हृदयधन वंशी बजा रहे हैं। ओह! पता नहीं इस वंशीने कौन-सी कठोर तपस्या की है, जिसके फलस्वरूप यह निरङ्कुश होकर निरन्तर हमारे गोविन्दकी अधर-सुधाका पान कर रही है; यह अधर-सुधा तो हमलोगोंकी ही वस्तु थी।'

वीणाकी झनकारकी तरह कुछ प्रतिध्वनियाँ थीं—'सखियो! वहाँ देखो, गायोंको चराते हुए व्रजराजनन्दन आगे बढ़ रहे हैं; उनके चरणोंके स्पर्शसे वृन्दावनकी भूमि निहाल हो रही है। पृथ्वीदेवीने वृन्दावनको अनन्त कालसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हृदयपर धारण कर रखा है। आज वृन्दावनने भी उसका पूरा प्रतिदान दे दिया।'

कुछके मुखोंमें ये प्रतिशब्द थे—'हरिनियो! तुमलोग धन्य हो। अयाचित अनन्त असीम आनन्द तुम्हें प्राप्त हो गया। श्यामसुन्दर तो वनमें गाय चराने आये थे; पर इसी निमित्तसे तुमलोग अपने पतियोंके साथ रसभरी चितवनके पुष्पोंसे उनकी पूजा करके निहाल हो गयीं। हम अभागिनी इतने निकटसे प्रियतमको कहाँ देख पाती हैं!'

कुछ गोपियोंके कण्ठसे असीम सुन्दर, स्वर्गीय संगीतको भी तुच्छ कर देनेवाली स्वर-लहरी ध्वनित हो रही थी—

'बहिन! इन गायोंको धन्य है। देखो, प्यारे श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी अधर-सुधा वंशीके छिद्रोंसे शब्द बनकर झर रही है, और ये गायें घास चरना भूलकर अपने कर्ण-पुटोंसे उस पीयूषका पान कर रही हैं।

आह! इन बछड़ोंकी दशा तो देखो, मातृस्तनोंका दूध मुखमें ज्यों-का-त्यों लिये ये निस्तब्ध खड़े हैं। दूधको कण्ठके नीचे उतारना भूल गये हैं। क्यों न हो! इन गायोंकी, बछड़ोंकी आँखोंकी राह प्रियतम श्यामसुन्दर इनके हृदयमें जो जा पहुँचे हैं, उनके आलिङ्गनका सुख जो इन्हें प्राप्त हो रहा है। देखो, बहिन! इनकी आँखोंमें आँसू छल-छल कर रहे हैं—

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥

(श्रीमद्भा० १०। २१। १३)

आम्रकी सुशीतल छायामें स्फटिकनिर्मित वेदीपर पूर्वाभिमुख बैठे श्यामसुन्दर कुछ सोच रहे हैं। घुँघराली कुन्तलराशि कंधोंपर झूल रही है। कुछ क्षण पहले वंशीके छिद्रोंका अँगुलियोंसे मृदु-मृदु स्पर्श करते हुए एक अभिनव-रागिनीका संचार कर रहे थे, जिसके मधुर संस्पर्शसे आम्रशाखा, आम्रपल्लवोंसे मधु झरने लगा था। पक्षी अपने कलरवको रोककर नीरव हो गये थे, आँखें बंद किये वंशीनादका पीयूष पान कर रहे थे। पर हठात् व्रजराजनन्दन रुक-से गये थे, अन्यमनस्क-से होकर कुछ विचारने लगे। मानो अपने निराविल प्रेमानन्दके दानमें आत्मविस्मृत हुए व्रजराजनन्दनके सामने उनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिने भावी कार्यक्रमका चित्रपट ला रखा—

'देव! उधर भी दृष्टि हो, कल होनेवाले इन्द्रयागकी तैयारी प्रारम्भ होने जा रही है। अब इन्द्रका गर्वहरण आवश्यक है। उनपर कृपा करनी ही है।' इसी विचारमें श्यामसुन्दर संलग्न हो गये। इधर सचमुच उसी समय नन्दरायकी आज्ञासे नगारे बज उठे तथा सबको इन्द्रयागके प्रबन्धके लिये आदेश सुना दिया गया।

श्यामसुन्दर उठ खड़े हुए। उनके अरुणिम अधरोंपर मन्द-मन्द मुसकान थी। एक बार गिरिराजकी ओर अपनी दृष्टि डालकर वे गोशालाकी ओर चल पड़े। नन्दरानी अपने लालको ढूँढ़ती फिर रही थीं, गोशालाकी ओर जाते हुए व्रजराजनन्दनको देखकर वात्सल्यभरे स्वरमें पुकारने लगीं—'मेरे नीलमणि! ओ नीलमणि!'

नीलमणि रुक गये। माने आकर उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया, फिर मुखचुम्बन किया और सिर सूँघने लगीं। कुछ क्षणों बाद गद्गद कण्ठसे बोलीं—'नीलमणि! बेटा! आज दीपावली है, मैं दीपोंको थालमें सजाने जा रही हूँ; तू बाबासे आज्ञा लेकर दीप जला दे।'

कहत यशोदा सुनि मनमोहन अपने तात कि अग्या लेहु।
बारौ दीपक बहुत लाड़िले करि उजियारो अपनो गेहु॥

पर नीलमणिके तो प्राण मानो गायोंमें बस रहे थे। नीलमणिने माके आँचलसे अपना मुख पोंछते हुए कहा—

हँस ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारौं जाय।
परमानंददासकौ ठाकुर जेहि भावत हैं निसिदिन गाय॥

आनन्दमें निमग्न मा तो दीप सजाने घरकी ओर, और प्रेमवितरणमें प्रमत्त व्रजराजनन्दन गौओंको सजाने खिरककी ओर चल पड़े। गायोंका शृंगार हुआ—

स्याम खरिक के द्वार करावत गायन कौ सिंगार।
नाना भाँति सींग मंडित किए ग्रीवा मेले हार॥
घंटा कंठ मोतिन की पटियाँ पीठिन को आछे औछार।
किंकिनि नूपुर चरन बिराजत बाजत बाजत चलत सुढार॥

सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। संध्याकालीन अरुण रश्मियोंसे गायोंके आभूषण चम-चम करने लगे; व्रजेन्द्रनन्दन बालोचित प्रसन्नतासे भरते जा रहे थे। धौरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमरी, कजरी, पीरी आदिकी शोभा ही मानो इस समय उनके हृदयकी सबसे प्यारी चीज थी। नन्दरानी कुछ देर दीपक सजातीं, तथा फिर दासीको सौंपकर अपने नीलमणिका गोशृंगार देखने खिरककी ओर आ जातीं; फिर दीपक सजाने जातीं, फिर लौट आतीं। अन्य व्रजाङ्गनाएँ अपने-अपने प्रासादके गवाक्षरन्ध्रोंसे नन्दनन्दनकी यह लीला देख रही हैं। उनके घर भी दीपावलीका उत्सव है, दीप सजाना परमावश्यक है; पर दीपकी थाली उनके हाथोंमें ही पड़ी रह गयी, प्रस्तर प्रतिमा-सी निश्चल खड़ी रहकर वे श्यामसुन्दरको देखती ही रह गयीं। कब संध्या हुई, यह भी कितनोंने नहीं जाना; उनके नेत्रोंके सामने तो श्यामसुन्दर गायोंका शृंगार ही कर रहे थे। अभी भी उजेला ही था। अस्तु,

संध्या होते ही दीपोंकी पंक्तियोंसे सारा व्रज जगमग हो उठा। व्रजाङ्गनाओंने सुन्दर शृंगार किया, वे स्वर्ण-थालोंमें दीपक सजाकर नन्दगृहमें आयीं। व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णरससारस्वरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी भी सखियोंके साथ पधारीं—

गोपिजन जूथ सँग जोरी कुँअर किशोरि, साज सिंगार उर उदित प्रेमावली।
कर कनक थाल भर दीप संजोय सब चलीं गृह नंद के द्वार संझावली॥

नन्दरानीने वृषभानुनन्दिनीको हृदयसे लगा लिया। कपोलोंका चुम्बन करती हुई नन्दरानीने कहा—लाडिली! विधाताने तुझको एवं मेरे नीलमणिको समान कौशलसे रचा है; तुझे देखते ही मुझे नीलमणिकी स्मृति हो आती है। सच, बेटी! तेरा एवं नीलमणिका मुख सर्वथा एक-जैसा है, तू तो मेरी ही लाडिली है; नीलमणिकी तरह तुझे देखते ही मेरा हृदय शीतल हो जाता है—

न सुतासि कीर्तिदायाः किन्तु ममैवेति तथ्यमाख्यामि।
प्राणिमि वीक्ष्य मुखं ते कृष्णस्येवेति किं त्रपसे॥*

(उज्ज्वलनीलमणि)

आज वृषभानुनन्दिनीके स्पर्शसे देखते-देखते मैया यशोदाकी एक विचित्र दशा हो गयी। उन्हें दीखता था, मानो लाडिलीके अणु-अणुमें मेरा नीलमणि भरा है, उन्हें अनुभूति हो रही थी कि नीलमणिको ही बाहुपाशमें लेकर बैठी हूँ। मैयाकी आँखोंसे अश्रुधारा बह चली, और उससे लाडिलीका सिर भीगने लगा। अभिनन्दपत्नीकी चेष्टासे कहीं जाकर मैयाको बाह्यज्ञान हुआ; मैया निर्णय कर सकीं कि यह कीर्तिदा रानीकी लाडिली राधा है, नीलमणि तो गोशालाकी ओर गया है।

मैयाने बहुत-से मेवे मँगवाये; लाडिलीका आँचल भरने लगीं। आँचल भर जानेपर बहुत-से मिष्टान्न मँगवाये; पासमें ही श्रीकृष्णका पीताम्बर पड़ा था। नीलमणिके लिये प्रतिदिन मैया नूतन पीताम्बर निकालती थीं, कभी-कभी एक ही दिनमें दो-तीन बार पीताम्बर बदला जाता था। नीलमणि दो घड़ी ओढ़कर फेंक देते थे। मैया नया निकालकर पुनः कंधोंपर डालती थी। आज कुछ ही देर पहले पीताम्बर कंधोंपरसे फेंककर नीलमणि भागे थे, मैयाने नया निकालकर दासीके हाथ ओढ़ाने भेजा था। वही पहला पीताम्बर वहाँ पड़ा था; मैयाने उसीमें विविध मिष्टान्न बाँधकर लाडिलीकी अञ्जलिमें रख दिया। फिर एक मणिजटित मुद्रिका मँगाकर कहा—'लाडिली! मैंने अपने नीलमणिके लिये यह मुद्रिका बनवायी थी, आज मैंने उसे पहनाया था; पर सम्भवतः कुछ बड़ी बन गयी है, उसने कुछ ही देर बाद निकालकर फेंक दिया। तेरी अँगुली तो देखूँ बेटी!' यह कहकर लाडिलीकी अनामिकामें मैयाने मुद्रिका डाल दी। मुद्रिका ठीक आ गयी, मानो लाडिलीके नापकी ही बनी हो। मैयाके आनन्दका पार नहीं; पर लाडिलीके सारे अङ्गोंमें कम्पन हो रहा है, प्रस्वेद-कण ललाट एवं कपोलोंपर झलझल कर रहे हैं।

यशोदा मैया लाडिलीके दाहिने कंधेपर हाथ रखे, नीलमणिको ढूँढ़ने चलीं। नीलमणि खिरकके द्वारपर प्रज्वलित दीपोंकी पंक्ति सजा रहे थे। गायें एवं बछड़े हुमड़-हुमड़कर द्वारके पास आ रहे थे; ग्वाले बहुत चेष्टा करते, पर वे गायें एक नहीं सुन रही हैं। वे तो अपने प्राणधन श्यामसुन्दरका दीपदान देखने आयी हैं और उनका आवाहन पाकर आयी हैं; भला, किसीके रोकनेसे वे कैसे रुकतीं। अतः द्वारके पास गायोंकी अपार भीड़ एकत्र हो गयी। आश्चर्य यह था कि भीतर इतनी उछल-

---

* मैं तुझसे सच कहती हूँ—तू कीर्तिदा देवीकी बेटी नहीं, मेरी ही लाडिली है। मैं जैसे कन्हैयाका चन्द्रमुख निहारकर जीती हूँ, वैसे ही तेरा भी मुखड़ा देखकर जीती हूँ। फिर तू लजाती क्यों है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूद करनेपर भी द्वारके पास आयीं तो वे शान्त हो गयीं; दीप-पंक्तियोंको किसी गाय या बछड़ेने नष्ट नहीं किया।

मैयाने पुकारा—नीलमणि! और नीलमणिने भी सिर

घुमाकर देखा। नीलमणिके मुखारविन्दसे अनन्त असीम सौन्दर्यका स्रोत झर रहा है। मैयाने एक बार नीलमणिकी ओर देखा, फिर लाडिलीकी ओर; फिर आँखें मूँद लीं। नीलमणिके नेत्र भी अपने-आप बंद हो गये; लाडिलीकी आँखें भी न जाने कब बंद हो गयी थीं। मैयाके पीछे-पीछे यूथ-की-यूथ व्रजाङ्गनाएँ दौड़ी आयी हैं, सभी अपलक नेत्रोंसे यह सुन्दर दृश्य देख रही हैं। पर गायें जोर-जोरसे हम्बारव करने लगीं।

कुछ क्षण बाद मैया, लाडिली एवं व्रजाङ्गनाओंको व्रजराजनन्दनने घूम-घूमकर गायोंका शृंगार दिखाया। व्रजाङ्गनाएँ मन-ही-मन गायोंके भाग्यकी सराहना कर रही हैं। गायोंका शृंगार देखने कुछ देरके लिये स्वयं नन्दरायजी भी आये। पर नीलमणिकी मङ्गलकामनासे ही आज वे इन्द्रयागकी व्यवस्थामें संलग्न हैं; इसलिये कुछ क्षण ही ठहरकर, नीलमणिको हृदयसे लगाकर, सिर सूँघकर लौट गये। व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दर अपने पिताको लौटते देखकर कुछ सोचते हुए-से मुसकराने लगे।

अतिशय उमंगसे व्रजगोपोंने दीपावलीका उत्सव मनाया। आज समस्त व्रजमें जागरण है, सर्वत्र बाजे बज रहे हैं। पर व्रजरानी अपने नीलमणिको दुग्धधौत उज्ज्वल सुकोमलतम शय्यापर लिटाकर सुलानेकी चेष्टा कर रही हैं। नीलमणि आज ७ वर्ष २ महीने ७ दिनके थे, पर वात्सल्यरससाररूपा व्रजरानीके लिये दुधमुँहे शिशु-जैसे ही थे। प्रतिदिनकी तरह मैया आज भी कहानी सुनाकर, गीत गाकर, थपकी देकर सुलानेका प्रयास कर रही हैं; पर श्यामसुन्दरकी आँखोंमें आज नींद नहीं। रात्रि डेढ़ पहरसे अधिक बीत चुकी है। नन्दभवनके तोरणद्वारके पास वन्दिजन गा रहे हैं—

> जयति ब्रजपुर सकल खोरि गोकुल अखिल
> तरनितनया निकट दिब्य दीपावली।
> जयति नवकुंजबर द्रुम लता पत्र प्रति
> मानो फूलीं नवल कनक चंपावली॥
> जयति गोबिंद गोबृंद चित्रित करे,
> मुदित उमड़ी फिरै ग्वाल-गोपावली।
> जयति ब्रज ईस के चरित लख थकित सिव,
> मोहे बिधि, लज्जित सुरलोक-भूपावली॥

जब रात्रि एक पहर अवशिष्ट रही, तब कहीं व्रजराजनन्दन सोये। फिर भी बीच-बीचमें चौंक-से पड़ते थे, मानो कुछ स्वप्न देख रहे हों। नन्दरानी चिन्तित थीं, कहीं मेरे नीलमणिको किसीकी नजर तो नहीं लग गयी। मैया दृष्टिदोषनिवारणके उद्देश्यसे धौरी गायको लानेके लिये कहने गयीं। व्रजराजनन्दन स्वप्नावेशमें बोल रहे थे—'लाडिली! मेरी धौरीका शृंगार देखो।' उसी समय धौरी शयनागारमें पहुँची। माताने धौरीकी पूँछका अपने नीलमणिके अङ्गोंसे स्पर्श कराया, फिर उसे अपने लालके चारों ओर तीन बार घुमाया। धौरी प्रेममें विह्वल-सी हुई स्तब्ध-शान्त खड़ी रहकर यशोदाके नीलमणिकी शोभा निहार रही है और श्यामसुन्दर स्वप्नमें ही कह रहे हैं—'अहा! आज मेरी धौरी कितनी सुन्दर दीखती है।' (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद और वैदिक संस्कृतिमें गायकी लोकोत्तर महिमा

(आचार्य डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)

गायसे मिलनेवाली वस्तुएँ—दूध, दही एवं घृत आदि जीवन-रस और जीवनी-शक्तिके महासागर हैं। आर्थिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियोंसे गायकी अपार महिमा है। भारतकी सुख-समृद्धि गाय और उसकी संतानकी सुख-समृद्धिके साथ जुड़ी हुई है। गायसे बैल तो मिलते ही हैं, गुणकारी पोषक और अमृतस्वरूप खाद्य-सामग्री दुग्धादि भी प्राप्त होनेके कारण इसे 'विश्व-माता' कहा गया—'**गावो विश्वस्य मातरः।**' गायका दूध माँके दूधके समान ही गुणकारी और सुपाच्य होता है। गोदुग्धमें मनुष्यका काया-कल्प करनेकी तथा नया स्वास्थ्य देनेकी महती शक्ति भरी हुई है। गोदुग्धसे बना दही पाचन-शक्ति बढ़ानेवाला, बलवर्धक तथा वातनाशक होनेसे अनेक रोगोंका नाशक तथा स्वास्थ्य-रक्षक है। गायका मक्खन नेत्रोंके लिये हितकारक, धातुवर्धक तथा शक्तिवर्धक है। गायके घीमें आँखोंकी ज्योति स्थिर रखनेकी अद्भुत शक्ति है। गोदुग्धसे बनी छाछ वात, पित्त तथा कफके शामक-रूपमें हजारों रोगोंके लिये रामबाण है।

सभी कर्मोंका अन्तिम फल मनुष्यकी सर्वतोमुखी उन्नति ही है और गाय मनुष्यकी सभी प्रकारकी उन्नतिका अक्षय स्रोत है। यह घरकी शोभा, कुटुम्बका आरोग्य, बल और पराक्रमकी खान तथा परिवारका दुर्लभ धन है।

जिस घरमें गाय रहती है, वह घर कल्याण और सुमङ्गलका धाम बन जाता है। गाय सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी है। गायको नमस्कार करनेसे सब देवताओंको नमस्कार हो जाता है। भारतके हर महापुरुषने गोभक्ति, गोसेवा, गोरक्षा, गोसंवर्धनकी सम्पूर्ण राष्ट्रको प्रेरणा दी है। कृश मनुष्यको गायें पुष्ट बनाती हैं। निस्तेजको सतेज और दुर्बलको बलवान् बनाती हैं। धनवान्, यशस्वी, प्रतापी, मेधावी, तेजस्वी, स्वस्थ, बलिष्ठ, हृष्ट-पुष्ट और दीर्घायु होनेकी इच्छा रखनेवालेको प्रतिदिन गोरसका सेवन करना चाहिये, गौकी सेवा करनी चाहिये। गौका स्तन अमृतरसका कलश है, जिसमें विपुल दूध भरा रहता है। हजारों अन्य उपायोंसे जो शरीरका पोषण होता है, वह इस अकेले गायके दूधसे हो सकता है, क्योंकि औषधीय गुणोंसे युक्त, दुर्लभ रासायनिक संरचनावाला गायका दूध पुष्टि और आरोग्य प्रदान करनेमें अद्भुत और अद्वितीय है। गायें जहाँ स्वयं तपोमय हैं, वहाँ अपनी सेवा करनेवालेको भी तपोमय बना देती हैं अर्थात् श्रम करनेका अभ्यस्त बना देती हैं। गायोंका दूध आन्तरिक शुद्धि करता है और बाह्यशुद्धि करती है उसकी सेवा।

यज्ञ और दानका तो मुख्य स्तम्भ ही है गाय, उसके अभावमें दोनों ही क्रियाएँ अधूरी हैं। 'गोदान करना' वैदिक संस्कृतिके अनुयायियोंके हृदयकी महान् अभिलाषा है। किसी भी भोजनोत्सवके समय तथा प्रतिदिन भोजन करने बैठनेसे पहले 'गोग्रास' निकालना भारतीय परिवारोंकी प्रिय परम्परा है।

असाधारण उपयोगिताकी दृष्टिसे श्रद्धा और कृतज्ञताके कारण वेदोंमें गायकी अप्रतिम महिमा बतायी गयी है। '**आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्**' (ऋ० १। ११४। १०)-इस मन्त्रमें पुरुषोंको हानि पहुँचानेवालेसे भी पूर्व गायके मारनेवालेके विनाशकी प्रार्थना की गयी है। कल्याणकी प्रार्थनामें भी आत्मीय जनोंके साथ गायको गिनाया गया है—'**स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।**' (अथर्व० १। ३१। ४) हमारे माता-पिताका कल्याण हो, गायोंका, प्रजाजनोंका भी कल्याण हो। '**यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥**' (अथर्व० १। १६। ४)

जो दुष्ट हमारे गोधन, अश्वधन और मनुष्योंका विनाश करता है, उसे हमें सीसेसे (गोलीसे) बींध देना चाहिये।

'**पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु॥**'

(अथर्व० १९। ३१। ८)

'**यदहं गोपतिः स्याम्**' (सामवेद उत्तरार्चिक २०। ७। २)। प्रथम मन्त्रमें गौओंकी वृद्धि माँगी गयी है, दूसरे मन्त्रमें गायोंको अपने संरक्षणमें माँगा गया है। '**आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।**' (ऋ० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८। १) यहाँ गायोंसे अपने घरमें, अपनी गोशालामें आना तथा उनसे अपना शुभ माँगा गया है। '**गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्........।**' (ऋ० ६। २८। ५) यहाँ गोधन माँगा गया है। वेद ऐसी प्रार्थनाओं तथा कामनाओंसे भरे पड़े हैं। ऋग्वेदके एक सुप्रसिद्ध मन्त्रमें कहा गया है—

गाय रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, अदिति-पुत्रोंकी बहन और अमृतकी नाभि अर्थात् अमृतत्वका केन्द्र है। प्रत्येक विचारशील पुरुषको मैंने यही समझाकर कहा है कि निरपराध एवं अवध्य गौका वध न करें। (ऋ० ८। १०१। १५)

आदिकालसे भारतीयोंकी पवित्र दृष्टिमें गौ माता पवित्र विचारोंसे देखी जाती है। भारतीयोंकी नैतिकताका मूल स्रोत गाय ही मानी गयी है। आदिकालसे तीन शब्दोंके साथ विशेष रूपसे माता शब्दका प्रयोग होता आया है। जन्म देनेवाली जननी माता, जीवनभर माँके स्तन्य-पानके बाद दूध पिलाकर पुष्ट रखनेवाली गौ माता और जीवन-समाप्तिपर अपनी गोदमें चिर शान्तिकी नींद सुलानेवाली धरती माता। इनमें भी गौ माताका प्रभाव विलक्षण ही है।

मानवीय जीवनका कोई भाग ऐसा नहीं है, जहाँ गाय किसी रूपमें सहायक न होती हो। संतानोत्पत्तिकी आकांक्षावालोंने, तपस्या करनेवालोंने, यज्ञीय अनुष्ठान-कर्ताओंने, धनी होनेकी अभिलाषा रखनेवालोंने, साधु-संत-साधक-राजा-महाराजा-गरीब और अमीर—सभीने अपनी-अपनी अभिलाषाएँ पूर्ण की हैं। प्रत्येक गाय कामधेनुका ही रूप है। इनके बैल भूख-प्याससे व्याकुल होते हुए भी हर तरहके बोझ ढोते रहते हैं। संसारसे विरक्त होकर, सोने और चाँदीके टुकड़ोंपर लात मारकर अपने ऐश्वर्यमय राजमहलोंकी उपेक्षा कर पत्नी, पुत्र, घर-परिवारका मोह भुलाकर जंगलोंमें बसनेवाले राजर्षियोंने भी सर्वस्वके त्यागमें गौ माताका त्याग कभी नहीं किया था।

गौके सम्बन्धमें शतपथ ब्राह्मण (७। ५। २। ३४) में एक और महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है—'**साहस्रो वा एष शतधार उत्स यद् गौः**' अर्थात् गौ वह झरना है, जो अनन्त, असीम है, जो सैकड़ों धाराओंवाला है। वस्तुतः प्रकृतिने पृथ्वीपर गायके रूपमें सैकड़ों धाराओंवाला झरना खोल दिया है। पृथ्वीपर बहनेवाले झरने' एक समय आता है जबकि वे सूख जाते हैं। इन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भी नहीं ले जा सकते, किंतु गायरूपी एक ऐसा विलक्षण झरना है कि इसकी धारा कभी सूखती नहीं। संतति-क्रमसे सदा बनी रहती है। तथा उत्तरोत्तर बढ़ती ही है, कभी कम नहीं होती। साथ ही इस झरनेको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भी ले जा सकते हैं। नगर-नगर, गाँव-गाँव और घर-घरमें इसे ले जाया जा सकता है। अथर्ववेदके एक मन्त्र (४। २१। ६) में कहा गया है—

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥

अर्थात् 'हे गायो! तुम पतले-दुबले मनुष्यको हृष्ट-पुष्ट कर देती हो, जो वृथा पुष्ट (मोटे) हो जाते हैं, उन्हें सुडौल कर देती हो। मङ्गलमय शब्दोंमें रँभानेवाली गायो! तुम्हारे रँभानेके मधुर शब्दोंसे घर भर जाते हैं, इसी कारण सभाओंमें भी तुम्हारा कीर्ति-गान किया जाता है।'

संसारमें गोधनके समान कोई धन नहीं है। गायें लक्ष्मी (सम्पन्नता) की मूल हैं। पाप गायोंको छूतक भी नहीं गया, पृथ्वीकी मान-मर्यादाको सुरक्षित रखनेवाली शक्तियोंमें गौको प्रथम स्थान दिया गया है।

गौ, ब्राह्मण, वेद, सती नारियाँ, सत्यवक्ता, निर्लोभी और त्यागी—इन सातोंपर धरती टिकी है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

गायको देखनेसे, उसके स्वाँसके सूँघनेसे, गोबरकी गन्धसे, गोमूत्रको पीनेसे कितने ही रोगोंके कीटाणु स्वतः नष्ट हो जाते हैं। गायका गोबर-मूत्र मनुष्यके त्वचा-रोगोंके लिये तो उपकारी है ही, अन्य अनेक रोगोंको भी जड़-मूलसे उखाड़नेमें समर्थ है। गायके गोबरका काम करनेवालेके हाथोंमें खुजली, दाद और रोग कभी नहीं होते। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि गायके गोबरसे लिपे स्थानपर मक्खी नहीं आती। भारतीय गृहों, यज्ञीय वेदियों और स्वास्थ्यप्रद स्थानोंमें गोबरका लेपन आरम्भसे भारतीयोंके जीवनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख स्थान लेता आया है। मधुमेहके रोगीको बिना ब्यायी गायका मूत्र बहुत अधिक लाभ करता है। मधुमेहके कीटाणु कुछ ही समयमें गोमूत्रके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं।

गोमूत्रमें बाबचीको पीसकर रातमें कोढ़के सफेद धब्बोंपर मलनेसे और प्रातः उठकर गोमूत्रसे ही धो देनेसे कुछ दिनोंमें वे धब्बे मिटने लगते हैं। गोबरका रस सात तोला गायके दूधमें मिलाकर पिलानेसे मृत गर्भ बाहर आ जाता है। ऐसे ही अति भयंकर रोगोंकी चिकित्सा गोबर और गोमूत्रसे की जाती है।

प्रत्येक शुभ कार्यके प्रारम्भमें पञ्चगव्य पीनेसे हिन्दू अपनी आन्तरिक शुद्धि मानते हैं। इसीके पञ्चामृतसे अनेक व्रत पूर्ण होते हैं। इसीका दान वैतरणी-तारक माना जाता है। अतिथियोंका स्वागत करनेके लिये गायके ही दधि, घृत, नवनीत आदिसे मधुके साथ मधुपर्क बनता था।

वैदिक संस्कृतिके महत्त्वपूर्ण शब्दोंमें 'गो' शब्द आश्चर्यजनक रूपसे जुड़ा हुआ है। 'गोत्र' शब्द वसिष्ठ-अत्रि-कश्यप-भरद्वाज आदि भारतीय जीवनके उन्नायक-शिखर पुरुष ऋषियोंकी गोसेवा, गौके त्राण (रक्षण) करनेसे ही प्रचलित हुआ है। जिसने भारतीय कुलोंको व्यवस्थित किया है। 'गवेषणा' शब्द गायकी एषणासे बना है, जिसका अर्थ है किसी वस्तुकी गहराईमें पहुँचना, अथवा तत्त्वकी खोज। विशाल गायोंके समूहमेंसे अपनी गायोंको ढूँढ़ निकालना, यह उनकी आँखोंकी परीक्षा, गहराईतक पहुँच और उनके श्रद्धाभावका द्योतक होता था। आगे चलकर वही 'गवेषणा' शब्द तत्त्व-निरूपणमें भी प्रयुक्त होने लगा।

दिन भर हरे-भरे गोचरोंमें चरकर जब गायोंका समूह सांध्य-वेलामें गाँवकी ओर लाया जाता था, तो गायके पवित्र खुरों और स्वाँसोंसे टकराकर धूल आकाशको व्याप्त कर लेती थी। इसी कारण उस सुहावनी पवित्र वेलाका नाम भी प्राचीन भारतीयोंने गोधूलि-वेला रखा था। गोधनोंके स्वामी गायोंके स्वागतमें पहलेसे ही खड़े मिलते थे। जंगलोंसे लौटकर गायोंका समूह जहाँ विश्राम करता था, उस स्थानका नाम गोष्ठ था और उसीके आधारपर 'गोष्ठी' शब्द बन गया है। जिस पवित्र स्थानपर बैठकर विद्वान् मनीषी विचार-विमर्श किया करते थे। इसीके नामसे हमारी धारक पृथ्वी भी 'गौ' कहलायी, गायकी पूँछ-जैसी फैली होनेके कारण हमारा पोषक गेहूँ भी 'गोधूम' कहलाया। प्राचीन भवनोंकी खिड़कियाँ भी गायकी आँख-जैसी ही बनायी जानेके कारण 'गवाक्ष' कहलायीं। पहाड़ भी इसकी रक्षा करनेसे 'गोत्र' कहलाये। इन्हीं गायोंकी रक्षा करनेके कारण ही भगवान् कृष्णने भी स्वयंको 'गोप' तथा 'गोपाल' कहलानेमें गौरव माना, अपने वाहन नन्दीके कारण भगवान् शिव 'वृषभध्वज' कहलाये। इसी सुख-दायिकाके नामसे स्वर्गने भी 'गौ' नाम पाया। हमें लोक-व्यवहारमें लानेवाली वाक् भी इसीके नामसे 'गौ' कहलायी, इसी रक्षिकाके नामसे हमारा रक्षक सूर्य भी 'गौ' नामसे प्रसिद्ध हुआ है। महर्षि च्यवनने अपने शरीरका मूल्य राजा नहुषका चक्रवर्ती राज्य नहीं, अपितु एक गाय ही निर्धारित किया था। सम्राट् दिलीपका नन्दिनी गायकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक विसर्जित करनेको उद्यत हो जाना, यह भारतीय इतिहासकी सुप्रसिद्ध स्वर्णिम गाथा है।

जो गाय हमारे मृत पितरका पहला श्राद्ध ग्रहण करती है, जिसकी खीर श्राद्धमें पितरोंके नामसे हम खिलाते हैं, जिसे **'अमृतं क्षीरभोजनम्'** अमृत एवं परमान्न माना गया है। **'यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम्।'** (अथर्व० १८। २। ३०) ऐसी उस घृतकी देवी **'आयुर्वै घृतम्'** हमारी आयु और आरोग्यकी देवता, हमारे बाल-बच्चोंको पालनेवाली, हमारे खाद और ईंधनोंका खर्च चलानेवाली, उपलोंकी भस्मद्वारा हमारे जूठे पात्रोंको शुद्ध करानेवाली, हमारे ज्ञान और मस्तिष्कको सुरक्षित रखनेवाली, ३३ करोड़ देवताओंकी आश्रित-स्थली गौ माता भारतीय जीवनकी समृद्धि एवं भारतीय संस्कृतिकी प्राणात्मा है। वेदोंमें जिसे अमृतका केन्द्र, अघ्न्या, अदिति (अखण्डनीया), और अहन्तव्या स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है, उसकी उपेक्षा और हत्या राष्ट्र-हत्याके समान निन्दनीय एवं अक्षम्य अपराध है। महाभारतमें कहा गया है कि श्रुतिमें गौओंको अघ्न्या (अवध्य) कहा गया है, फिर कौन उन्हें मारनेका विचार करेगा? जो पुरुष गाय और बैलोंको मारता है, वह महान् पाप करता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत् तु यः॥

(महा०, शान्ति० २६२। ४७)

गाय तथा गो-वंशसे मानवको जो कुछ मिलता है उसका विचार करनेसे हमारा मस्तिष्क गायके आगे झुक जाता है। गोरक्षा भारतीयोंकी संसारको बहुत बड़ी देन है। शैव, शाक्त, वैष्णव, कबीरपंथी, दादूपंथी, राधा-स्वामी, जैन, बौद्ध आदि भारतमें जितने भी मत-मतान्तर हैं, सभीने अपने साहित्यमें गौके प्रति सम्मान और आदरकी भावनाएँ व्यक्त की हैं। महाप्रभु चैतन्य, श्रीमद्वल्लभाचार्य, बंदा वैरागी, महाराणा प्रताप और शिवाजी महाराजने, सूर, कबीर, रसखान और महाकवि तुलसीदासने अपनी वाणी, कविता और कार्योंसे गोसेवा, गौरक्षा और गायकी लोकोत्तर महिमाकी ध्वनि देशके कोने-कोनेमें गुँजायी है। इस प्रकार गाय भारतकी एकताकी भी चिरकालसे प्रतीक रही है। बैल ऊर्जाका अखण्ड स्रोत है। गाय और बैलके गोबर तथा गोमूत्रसे बननेवाले खादका प्रयोग करनेसे धरती अन्न और धनसे भर जाती है एवं उसकी उर्वरा-शक्ति भी बनी रहती है। हमारे देशका दुर्भाग्य है कि जो हम असली सोनेकी खान—गाय-बैलके खादको छोड़कर अनेक रोगों तथा कीटाणुओंके जनक रासायनिक खादका प्रयोग कर रहे हैं, जिससे लगातार भूमिकी उर्वरा-शक्ति ही कम होती जा रही है। सुख-समृद्धिसे भरे हुए प्राचीन भारतमें गोधन ही मुख्य धन था। उस समयकी गौ-संख्या चकित करनेवाली है। गर्गसंहिताके गोलोक-खण्डमें भगवद्-ब्रह्म संवादमें चतुर्थ अध्यायमें नन्द आदि उपाधियोंका वर्णन इस रूपमें मिलता है। नन्द, उपनन्द, वृषभानु-पदवी किसे प्राप्त होती है, जो सहायक ग्वालोंके साथ नौ लाख गायोंका पालन करे, उसे 'नन्द' कहते हैं और पाँच लाख गायोंके पालकको 'उपनन्द' कहते हैं। 'वृषभानु' उसे कहते हैं जो १० लाख गायोंका पालन करता है। भारतके सम्पूर्ण इतिहासकालमें भारतीय राजाओंकी गौ-शालाएँ हजारों नहीं लाखों गायोंसे भरपूर रहती थीं। कोई अभागा किसान ऐसा नहीं होता था, जिसके पास सैकड़ोंकी संख्यामें गोधन विद्यमान न हो। ऋषि, महर्षि, राजा और महाराजा गौसेवाको अपना पुण्यव्रत समझकर उसमें आन्तरिक उल्लास प्राप्त करते थे। आइने अकबरीमें भी लिखा है कि बैल घोड़ोंसे भी कहीं अधिक तेज दौड़ते थे और एक-एक गाय बीस सेर दूध देती थी। भारतमें पंद्रहवीं शताब्दीमें प्रचुर मात्रामें घी और दूधकी चीजें बनती थीं। महाभारतके विराटपर्व, अध्याय नौमें सहदेवने अज्ञातवासके समय विराट-नगरमें कहा था कि मुझे उत्तम लक्षणोंवाले ऐसे बैलोंकी पहचान है, जिनका मूत्र सूँघने मात्रसे ही वन्ध्या स्त्रीका वन्ध्यत्व नष्ट हो जाता है। अद्भुत है गायकी महिमा।

निरन्तर उपेक्षा, प्रमाद और असावधानीके कारण भारतमें निरन्तर गोधनका ह्रास होता जा रहा है। भारतीय प्रजाकी सुख-समृद्धि, सौन्दर्य, श्रेष्ठ स्वास्थ्य, मेधाविता, तेजस्विता, सद्बुद्धि और सदाचारकी वृद्धिके लिये सभी स्तरके नागरिकों, राजनेताओं, भारतीय संस्कृतिके प्रेमियों और देशभक्तोंने गोसेवा, गोरक्षा, गोपालन एवं गोसंवर्धनके कार्यमें अपना विशिष्ट असाधारण योगदान सदैव प्रदान किया है। हमें यदि बलवान्, धनवान्, यशस्वी, प्रतापी होनेकी इच्छा है तो उसके लिये गौका पालन और गोरसका प्रतिदिन सेवन अपरिहार्य है। अथर्ववेदके सुप्रसिद्ध गोसूक्तमें कहा गया है कि 'गायें ही मनुष्यका बल, धन और उत्तम अन्न हैं। इसलिये मैं सदा गायोंकी उन्नति हृदय और मनसे चाहता हूँ'—

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥

(अथर्व० ४। २१। ५)

गोकुलस्य तृषार्तस्य जलान्ते वसुधाधिप। उत्पादयति यो विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥

जो प्याससे व्याकुल गायोंके झुंडको जल पीनेसे रोकता है, उसे ब्रह्मघातक कहा गया है। (महा०, आश्व०, वैष्णव०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गावो विश्वस्य मातरः

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि)

अध्यात्मप्रधान इस भारतवर्षमें गौ माताका स्थान देवोंसे भी अधिक पूजनीय है। नीतिशास्त्रोंमें जो पाँच प्रकारकी माताएँ बतायी गयी हैं, उनका सम्बन्ध व्यक्तिपरक या समाजपरक होता है, किंतु यह गौ माता तो समस्त विश्वकी माता है। यह केवल कहनेकी बात नहीं है, इसका अनुभूत स्वरूप प्रत्यक्ष है। भारतीय संस्कृतिके मूलाधार वेद-वेदाङ्ग-इतिहास-पुराणादि ही हैं। इनमें न कोई वेद ऐसा है, अथवा न पुराण ही ऐसा है, जहाँ हमारी इस पूजनीया गौ माताका उल्लेख न हो। ऐसा कोई धर्म नहीं, जिसमें इसका माहात्म्य न वर्णित हो। सनातन हिन्दू-धर्ममें तो सुमेरुभूता पुण्यमयी माताके रूपमें इसकी पूजा होती है; क्योंकि इसका मानव-जीवनके जन्मसे लेकर मरणपर्यन्ततकका अटूट सम्बन्ध है। बौद्ध-जैन-सिख-ईसाई-इस्लाम-पारसी आदि विश्वके सभी धर्मोंमें इसकी महिमा गायी गयी है, यहाँ संक्षेपमें कुछका उल्लेख किया जाता है—

सर्वप्रथम ऋग्वेद (१। १५४। ६) में '**यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः**' कहकर गोमाताका स्मरण किया गया है। तदनन्तर उसकी व्यापकताको दिखाते हुए कहा गया है कि गौ रुद्रोंकी माता, वसुओंकी दुहिता तथा आदित्योंकी बहन और अमृतकी नाभि है। साथ ही उसके वधका सर्वथा निषेध किया गया है।

इतना ही नहीं गौ माताकी प्रशस्तिमें यजुर्वेद (१६। ४४) में एक मन्त्र आया है—

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च।

आशय यह है कि जो मनुष्य मेघसे उत्पन्न हुई वर्षा और वर्षासे उत्पन्न तृण आदिकी रक्षासे गौ आदि पशुओंको बढ़ायेंगे वे पुष्कल भोगोंको प्राप्त करेंगे।

गौ माताकी रक्षाके विषयमें हमें सामवेदके उस मन्त्रसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, जिसमें इन्द्रको सम्बोधित करके कहा गया है—

'यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोसखा स्यात्। शिक्षेयमस्मै दित्सेयँ शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्। धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं विप्युषी दुहे। (सामवेद १८३४—३६)

तात्पर्य यह है कि 'हे इन्द्र! यदि हमको आप सामर्थ्य दें तो हम और अपने अनुयायियोंसे गोरक्षा करवायें।' इससे यह सिद्ध है कि वैदिक कालमें गोरक्षापर विशेष बल दिया जाता था।

अथर्ववेदके एक मन्त्र (१०। १०। ३४) से सिद्ध होता है कि वशा (गाय) के दूधसे मनुष्योंको कौन कहे देवता भी जीवित रहते हैं। उन्हें गोघृतकी आहुतिसे तृप्त किया जाता है। मन्त्र इस प्रकार है—

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति॥

अपरं च अथर्ववेद (१। १६। ४) में गायकी रक्षाके लिये स्पष्ट निर्देश है कि—'**यदि नो गां हंसि...........तं त्वा सीसेन विध्यामः...॥**' इन्हीं उपर्युक्त वैदिक तथ्योंको ध्यानमें रखकर कहा गया है कि—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः।
इन्द्रः पृथिव्यां वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥

अर्थात् गोमाताका माहात्म्य अपरिमेय है।

धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि बाल (बछड़ा), वृद्ध (बूढ़ी गाय), रोगसे पीडिता एवं थकी हुई गायकी यथाशक्ति सेवा करनी चाहिये, यही धर्म है, अन्यथा विप्लवकी सम्भावना है। गायकी रक्षा भलीभाँति करे, उनको बिना जल पिलाये स्वयं जल न पीवे, बैठ जानेपर बैठे, यदि गौ विश्राम कर रही हो तो उसे उठाये नहीं।

गौ माताकी रक्षा एवं उसकी परिचर्याके साथ-साथ सविधि गोदानका भी स्मृतियों (धर्मशास्त्रों) में विस्तारसे उल्लेख हुआ है। स्मृतियोंका प्रायश्चित्त-प्रकरण तो पदे-पदे गोदान-प्रक्रियासे भरा है। इसी प्रकार श्राद्ध-कल्पमें गोदानसे बढ़कर और किसी दानका विशेष उल्लेख नहीं है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने तो करोड़ों गायोंके दानकी बात रामायणमें कही है—

गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह त्रेतायुग था, जब करोड़ों गायें विद्वानोंको विधिपूर्वक दानमें देनेकी व्यवस्था थी।

महर्षि वेदव्यासप्रणीत महाभारत हिन्दूधर्मका सर्वमान्य विश्वकोष है। इसमें गायका माहात्म्य, उसके प्रत्येक अङ्गमें देवताओंका निवास तथा गोसेवाका विशेष महत्त्व निरूपित है। केवल उदाहरणके रूपमें कुछ श्लोक यहाँ प्रस्तुत हैं—

गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥
द्रुह्येन्न मनसा वापि गोषु नित्यं सुखप्रदः।
अर्चयेत सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत्॥
दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाश्नुते।

(महा०, अनु० ८१। ३३—३५)

आशय यह है कि 'जो समान-भावसे आत्मवत् मानते हुए गायोंकी सेवा करता है, उसे गायें प्रसन्नचित्तसे अत्यन्त दुर्लभ वरदानोंको देती हैं। गौओंके साथ मनसे भी कभी द्रोह न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचाये, उनका यथोचित सत्कार करे और नमस्कार आदिके द्वारा उनका पूजन करता रहे। जो मनुष्य जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त होकर नित्य गौओंकी सेवा करता है, वह समृद्धिका भागी होता है।'

पुराणोंमें तो स्थल-स्थलपर गौका तथा गोसेवाका माहात्म्य वर्णित है। पद्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण तथा भविष्यपुराणमें गायोंकी सेवाके विषयमें बहुत ही सुन्दर प्रसंग हैं। पद्मपुराणका स्पष्ट उद्घोष है—

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।
यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः॥
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।
गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी॥

तात्पर्य यह है कि 'संसारके समस्त प्राणियोंका एकमात्र आधार गायें हैं। जिसके घरमें ये दुःखी रहती हैं, वह निश्चय ही नरकगामी होता है। इतना ही नहीं, गायें सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा-रूपा हैं, कल्याणदायिनी हैं। भूत-भविष्य सब कालमें पुष्टि देनेवाली हैं।'

सच बात तो यह है कि गाय, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलोभी और दानशील—इन सातोंसे पृथ्वी स्थिर है। यहाँतक कहा गया है कि—

यो वै नित्यं पूजयति गामिह यवसादिभिः।
तस्य देवाश्च पितरो नित्यं भूत्या भवन्ति हि॥

आशय यह कि 'जो गोभक्त मानव घास-चारे आदिसे गायकी नित्य पूजा करता है, देवता और पितर निरन्तर उसकी कामनाकी पूर्ति करते रहते हैं।'

शिवपुराणमें कहा गया है—

यो गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
विनाशयन्ति कार्याणि ते नरा नारकाः स्मृताः॥

अर्थात् 'नरकगामी पुरुषोंकी श्रेणीमें वे आते हैं जो गाय, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र और तपस्वियोंके कार्यमें विघ्न पहुँचाते हैं।'

यह गौ माताकी ही विशेषता है कि समस्त कृत-पुण्योंमें गोसेवाजन्य पुण्य सर्वाधिक है। इसका कारण यह भी है कि गायके अङ्गोंमें समस्त देवता तथा सम्पूर्ण तीर्थोंका निवास है।

लक्ष्मी-प्राप्तिका सरल उपाय गोमय (गोबर)-का उपलेपन

स्कन्दपुराणके अनुसार—'गोमय (गोबर)-में लक्ष्मीका निवास रहता है, अतः उसके द्वारा भूमिको लीपनेसे लक्ष्मी स्वयं आ जाती हैं।' जैसा कि कहा गया है—

लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला।
गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन॥

(स्कन्दपुराण, अवन्ती०रे० ८३। १०८)

इसी प्रकारके गोमाहात्म्य तथा गोदानके माहात्म्य श्रीमद्भागवत, नरसिंहपुराण तथा स्मृतियों आदिमें विस्तारसे वर्णित हैं।

महाभारतमें सारांश-रूपमें यह कहा गया है कि गाय संसारमें सबसे श्रेष्ठ, पवित्र मानी गयी है, क्योंकि बिना गोदुग्ध-दही-घृतके कोई भी यज्ञ प्रवर्तित नहीं हो सकता। गाय ही एक ऐसी माता है, जिसके दूधसे, हविष्यसे, दहीसे, गोबरसे, मूत्रसे, चर्मसे, हड्डियोंसे, बालोंसे, सींगोंसे अर्थात् सभीसे संसारका उपकार-ही-उपकार होता है। संसारमें गायके समान पवित्र तथा उपकारी अन्य कुछ भी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनातन हिन्दू-धर्म-शास्त्रोंके समान ही बौद्धधर्ममें भी गायको माता-पिता, परम मित्र और पूजनीया कहा गया है—

यथा माता पिता भ्राता अञ्ञे वापि च ञातका।
गावो नो परमा मित्ता यासु जाअन्ति ओसधा॥

गायकी हिंसाका निषेध करते हुए कहा गया है कि 'गौ माता अन्न देनेवाली, बल देनेवाली, सुख देनेवाली और कल्याणमयी हैं, अतः इनकी हिंसा न करे'—

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवसं ञत्वा नास्सु गावो हनिषु ते॥

हिन्दू-धर्मके रक्षक गुरु गोविन्दसिंहजी गौ माताके विषयमें कहते हैं—

आस पूरण करौ तुम हमारी,
मिटे कष्ट गौवन छुटे खेद भारी।
यही देहु आज्ञा तुर्क को मिटाऊँ
गऊ घात का दोष जग से हटाऊँ॥

इसी प्रकार पारसी तथा ईसाई-धर्ममें भी गो-महिमाका उल्लेख मिलता है।

इस्लाम-धर्मके 'कुरानशरीफ सूर ए हज'में स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि—

'हरगिज नहीं पहुँचते अल्लाहके पास उसके गोश्त और खून। हाँ, पहुँचती है उसके पास तुम्हारी परहेजगारी।'

इसी प्रकार एक उपदेश है—*'गायका गोश्त बीमारी, उसका मक्खन दवा, उसका दूध शिफा है।'*

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, इतिहास-पुराणों, बौद्ध-जैन-धर्म-ग्रन्थों, गुरुग्रन्थ साहब, पारसी, ईसाई, इस्लाम आदि सभीके पवित्र ग्रन्थोंमें गौ माताकी महनीयता सिद्ध की गयी है। अतः **'गावो विश्वस्य मातरः'** यह सदुक्ति समीचीन ही है। आज आवश्यकता है कि इस महिमामयी गौ माताकी अर्चना-सेवा हम सभी उसी प्रकार करें, जिस प्रकार महाराज दिलीपने अपनी रानी सुदक्षिणाके साथ की थी। जिसका हृदयस्पर्शी वर्णन महाकवि कालिदासकृत रघुवंशके द्वितीय सर्गमें उपलब्ध है।

गोमूत्र और गोमयसे रोग-निवारण

गायके मूत्रको गोमूत्र कहते हैं। वैद्यलोग इसका औषधोंमें बहुत उपयोग करते हैं। यह सौम्य और रेचक है। कब्ज हो गया हो, पेट फूल गया हो, डकारें आती हों, मुँह मिचलाता हो तो तीन तोला स्वच्छ और ताजा गोमूत्र छानकर आधा माशा नमक मिलाकर पी जाना चाहिये। थोड़ी ही देरमें टट्टी होकर पेट उतर जाता है और आराम मालूम होता है। छोटे बच्चोंका पेट फूलनेपर उन्हें गोमूत्र पिलाया जाता है। उम्रके अनुसार साधारणतः एक वर्षके बच्चेको एक चम्मच गोमूत्र नमक मिलाकर पिला देना चाहिये। तुरंत पेट उतर जाता है। पेटके कृमियोंको मिटानेके लिये तो गोमूत्रसे बढ़कर कोई दूसरी औषधि ही नहीं है। बच्चोंके हब्बा-डब्बा रोगपर भी कुलथीके काढ़ेके साथ गोमूत्र दिया जाता है। बच्चेकी दो मुट्ठियोंमें जितनी समाये, उतनी कुलथी कूटकर और उसमें बच्चेकी हथेलीके बराबर आकका पत्ता छोड़कर आध सेर पानीमें पकाना चाहिये। जब पानी एक छटाँक रह जाय तब उसे छानकर और उसमें उतना ही गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिये। तीन दिनमें ही टट्टी-पेशाब साफ होकर पेट उतरने लगता है और सात दिनमें हब्बा-डब्बा रोग अच्छा हो जाता है। [इस रोगमें बच्चेका शरीर फूल जाता है, पेट बढ़ जाता है और नाभि ऊपर आ जाती है।]

पेटकी हर-एक व्याधिपर गोमूत्र रामबाण है। यकृत् या प्लीहा बढ़ गयी हो तो पाँच तोला गोमूत्र नमक मिलाकर प्रतिदिन पिलानेसे थोड़े ही दिनोंमें आराम मालूम होता है। यकृत् या प्लीहापर गोमूत्रसे सेंक भी किया जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है—एक अच्छी ईंट आगमें गरम कर ली जाय। फिर उसपर गोमूत्र छोड़कर गोमूत्रमें भिगोये हुए कपड़ेमें उसे लपेट लिया जाय और उससे नरम-नरम सेंका जाय। इससे यकृत् या प्लीहा घट जाती है। शरीर खुजलाता हो तो कडुवा जीरा गोमूत्रमें पीसकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका लेप किया जाय और नीमके पत्ते छोड़कर उबाले हुए पानीसे नहाया जाय इससे खुजलाहट बंद हो जायगी। गोमूत्रमें बावचीको पीसकर रातमें कोढ़के सफेद दागोंपर लेप करने और सुबह गोमूत्रसे ही धो डालनेसे कुछ दिनोंमें दाग मिट जाते हैं। पेटके फूलनेपर भी गोमूत्रका सेंक लाभकारी होता है।

यकृत् और प्लीहाके बढ़नेसे उदररोग हो गया हो तो पुनर्नवाके काढ़ेमें आधा गोमूत्र मिलाकर पिलाया जाय, इससे उदररोग अच्छा हो जायगा। इस सम्बन्धमें अक्कलकोटके डॉक्टर चाटी अपना अनुभव इस प्रकार बतलाते हैं— अपनी चालीस वर्षकी नौकरीमें मैंने कितने ही जलोदरके रोगियोंका इलाज किया। उन्हें अंग्रेजी दवाएँ पिलायीं और पेट चीरकर दो, तीन, चार बार भी पेटका पानी निकाल दिया; परंतु उनमेंसे अधिकांश रोगियोंकी मृत्यु हो गयी। मैंने सुना और आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें पढ़ा भी था कि इस रोगपर गोमूत्रका उपयोग बहुत ही लाभकारी होता है, परंतु मुझे विश्वास नहीं होता था। एक बार एक साधु महात्माने गोमूत्रके गुणोंका बहुत वर्णन करके कहा कि इसका जलोदरपर बहुत अच्छा उपयोग होता है। तदनुसार चार रोगियोंपर मैंने गोमूत्रका प्रयोग करके देखा। उनमेंसे तीन चंगे हो गये। जो चौथा मर गया, वह मुमूर्षु-अवस्थामें ही मेरे पास आया था। जो अच्छे हो गये, उनमेंसे एकका ब्योरा इस प्रकार है—सन् १९१० में जब मैं अक्कलकोट राज्यमें 'चीफ मेडिकल अफसर' था तब मुझे जुन्नर गाँवमें जरूरी कामसे बुलाया गया। वहाँ अप्पण्णा नामक एक तीस वर्षका बढ़ई जलोदरसे आसन्नमरण हो रहा था, उसीका इलाज करना था। रोगीका सब शरीर फूल गया था। न वह कुछ निगल सकता था, न हिल सकता था और बड़े कष्टसे साँस लेता था। उसके जीनेकी कोई आशा नहीं बच रही थी। उसे इंजेक्शन देकर शक्तिवर्धक औषधि खिलायी और पेट चीरकर १६ पौंड पानी निकाल दिया, जिससे वह श्वासोच्छ्वास ठीक तरहसे करने लगा। पंद्रह दिन बाद फिर ऑपरेशन कर १४ पौंड पानी उसके पेटसे निकाला। अब वह अच्छा हो गया और उसके पेटमें फिर पानी जमा नहीं हुआ। पहले दिनसे ही उसे मैं एक नीरोग और बलिष्ठ गायका मूत्र शहदके साथ दिया करता और एक पौंड गोदुग्ध पिलाया करता था। पंद्रह दिन बाद दो पौंड दूध देने लगा। इस इलाजसे एक ही महीनेमें वह चंगा हो गया। मैंने इलाज बंद कर दिया। यद्यपि अब गोमूत्र-सेवनके लिये उससे मैंने नहीं कहा था, तथापि वह बराबर गोमूत्र पीया करता था। उसका विश्वास हो गया था कि गोमूत्रसे ही मेरे प्राण बचे हैं, इस कारण गोमूत्र-सेवनसे वह विरत नहीं हुआ और धीरे-धीरे हट्टा-कट्टा हो गया।

गोमय-माहात्म्य

अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वने वने।
तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम्॥
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च नुद गोमय सर्वदा।

—इस मन्त्रसे सिरसे पैरतक गोबर लगाकर स्नान करनेकी श्रावणीकर्ममें विधि है। पञ्चगव्य (दही, दूध, घी, गोमूत्र और गोमय)-प्राशन भी श्रावणीमें किया जाता है। आधुनिक शिक्षित लोग इस विधिको घृणित और हेय समझते हैं; परंतु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे पञ्चगव्यका कितना महत्त्व है, इसका उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया है। इस सम्बन्धमें डॉ० रविप्रताप महाशयने 'विशाल भारत' में एक लेख लिखा था, उसमें आप लिखते हैं—'भारतमें अनादिकालसे गोबरका मानव-शरीरके लिये ओषधिकी तरह उपयोग किया जा रहा है। परंतु इस बीसवीं शताब्दीमें यह जानकर इस दिव्यौषधिका हमने त्याग कर दिया कि यह घृणित, गंदी, आरोग्य-विघातक और दुर्गन्धिमय वस्तु है। यहाँतक कि म्युनिसिपलिटियोंके अधिकारी लोगोंको हुक्म देने लगे हैं कि जमीन गोबरके बदले चूनेसे लीपा करो। आश्चर्यकी बात है कि सहज-सुलभ और निसर्गदत्त गोबर-जैसी कृमिनाशक वस्तुको त्यागकर महँगे, कृत्रिम और विदेशी जन्तुनाशक द्रव्योंका हम संग्रह कर रहे हैं।'

हिंदूधर्मके प्रायः सभी धार्मिक कार्योंमें गोबरका उपयोग किया जाता है। **(गोमयेन प्रदक्षिणमुपलिप्य)** इसका कारण भी यही है कि गोबरमें रोगके कीटाणुओंका नाश करनेका गुण विद्यमान है। प्राचीन ऋषि-महर्षि अपनी पर्णकुटियाँ गोबरसे लीपकर स्वच्छ रखते थे। वे वस्तुकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक उपयोगिता जानकर उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया करते, थे, जिससे वह समाजमें रूढ हो जाय।

इटलीवालोंकी खोज

इटलीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० जी०ई० बीगेंडने गोबरके अनेक प्रयोग कर सिद्ध किया है कि ताजे गोबरसे तपेदिक और मलेरियाके जन्तु तुरंत मर जाते हैं। प्रोफेसर महाशयका अनुभव है कि प्राथमिक अवस्थाके जन्तु तो गोबरकी गन्धसे ही मर जाते हैं। गोबरके इस अलौकिक गुणके कारण इटलीके अधिकांश सेनिटोरियमोंमें गोबरका ही उपयोग करते हैं। इटलीमें अब भी हैजा या अतिसारके रोगीको ताजे पानीमें ताजा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाबके पानीमें हैजेके जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं, उसमें गोबर डालते हैं। उनका अनुभव है कि इससे हैजेके जन्तु तुरंत मर जाते हैं। गोबरसे फोड़ा-फुंसी, घाव, दंश, चक्कर, लचक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। डॉ० मैकफर्सनने दो वर्षतक गोबरका संशोधन कर उसका इतिवृत्त 'न्यूयार्क टाइम्स' में छपाया है। उसमें अनेक सिद्धान्त स्थिर कर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि गोबरसे बढ़कर कीटाणुनाशक कोई दूसरा उपयुक्त द्रव्य नहीं है। उनका कहना है कि गोबर उसी गायका होना चाहिये, जिसका आहार उत्तम हो और जो नीरोग हो। '**अग्रमग्रं चरन्तीनाम्**'—इस मन्त्रका भी यही अभिप्राय है।

गाय आरोग्य-देवता है

सतपुड़ेके गोंड, भील आदि सब कामोंमें गोबरका उपयोग करते हैं। अपस्मार, चक्कर, मस्तकविकार, मूर्छा आदि रोगोंपर वे गायके दूध या तिलके तेलमें गोबर घोलकर पिलाते और इसीका लेप करते हैं। तेलमें गोबर मिलाकर मालिश करनेसे मज्जातन्तु नीरोग हो जाते हैं। वैद्यलोग क्षयरोगियोंको गायोंके बाड़ेमें सुलानेको कहते हैं। क्योंकि गोमूत्र और गोबरकी गन्धसे क्षयरोगीके शरीरके क्षयजन्तु मर जाते हैं। क्षयरोगीके पलँगको प्रतिदिन गोबर और गोमूत्रके जलसे धो डालना भी लाभदायक होता है। हिंदूलोग गोबर और गोमूत्रसे प्रातःकाल घरके द्वार लीपते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों द्रव्य रोगकीट-नाशक हैं। सन् १९३४ में मद्रासप्रान्तमें हैजेका प्रकोप हुआ। उस समय जो गोबरके गारोंमें काम करते थे, उनपर हैजेका कोई परिणाम नहीं हुआ। इस अनुभवके अनुसार वहाँ अब वर्षाकालमें सब कामोंमें गोबरका ही उपयोग किया जाता है। वहाँके प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि आगसे जल जाने या चोटसे घाव होनेपर गोबरके लेपसे अच्छा हो जाता है। खुजली, चकत्ते आदि रोग तो गोमूत्र और गोबरके प्रयोगसे बात-की-बातमें अच्छे हो जाते हैं।

सार्वजनिक विषूचिका-प्रतिबन्ध

श्रावणीकर्मके पञ्चगव्य-प्राशनकी विधिमें भी यही उद्देश्य है। आषाढ़ तथा श्रावणमें जब नया पानी आ जाता है तब इससे हैजेकी सम्भावना होती है। उसीके प्रतिबन्धके लिये पञ्चगव्य-प्राशनका प्रारम्भिक उपचार है। खाद्याखाद्य, पेयापेय, स्पृश्यास्पृश्य आदिका विचार न करनेवाले लोगोंको ही हैजा हो जानेकी अधिक सम्भावना रहती है। इसीलिये धार्मिक प्रक्रियाओं और शुद्धिसंस्कारमें पञ्चगव्य प्रायश्चित्तका विशेष महत्त्व है।

मद्रासके सुप्रसिद्ध डॉक्टर किंग कहते हैं—यह अब प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि गायके गोबरमें हैजेके जन्तुओंका संहार करनेकी विचित्र शक्ति है। गायके गोबरका शास्त्रीय रीतिसे पृथक्करण कर, उसका सत्त्व निकालकर उसे जहाँ-जहाँ पानीमें डालकर देखा गया, वहाँकी घनी बस्तीमें भी कहीं हैजा नहीं हुआ। डॉक्टरोंने अब सिद्ध कर दिया है कि 'रोगजन्तु-नाशके लिये गोमयका बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपयोग है।'

गायके बिना घर बन्धुशून्य है

गावो बन्धुर्मनुष्याणां मनुष्या बान्धवा गवाम्। गौश्च यस्मिन् गृहे नास्ति तद्बन्धुरहितं गृहम्॥

गायें मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गायोंके बन्धु हैं। जिस घरमें गाय नहीं है, वह घर बन्धुशून्य है। (पद्म०, सृष्टि० ४८। १५६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गोबर'की उपयोगिता

(श्रीहरिवल्लभजी बोहरा 'हरि', एम्०ए० (हिन्दी), एम्० कॉम, बी०एड्०)

गायकी महिमा अद्भुत है। ऐसी मान्यता है कि तीर्थ-स्थान, भगवान्‌की सेवा, सभी प्रकारके व्रत एवं उपवास, महादान, ब्राह्मण-भोजन, तप, तीर्थाटन और सत्य वाणीके जो भी सम्मिलित पुण्य हैं, वे सभी केवल-मात्र सच्ची गो-सेवासे प्राप्त हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त गोसेवाका व्यावहारिक एवं आर्थिक दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है। मनुष्यके शरीर और मस्तिष्क—इन दोनोंको सर्वोत्तम पोषण प्रदान करनेवाले आहारके रूपमें इसका सार्वभौमिक महत्त्व है और राष्ट्रिय अर्थव्यवस्थामें इसकी प्रमुख भूमिका है।

वैज्ञानिक यह निष्कर्ष सिद्ध करते हैं कि स्वच्छता एवं पवित्रताकी दृष्टिसे गायका गोबर एवं गोमूत्र सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। आज भी ग्रामोंमें जनसामान्य अपने घरको स्वच्छ एवं पवित्र करनेके लिये गोबर तथा गोमूत्रका उपयोग करते हैं।

अनुभवजनित निष्कर्ष है कि रासायनिक उर्वरकोंकी तुलनामें गायकी खादसे जो अन्न उत्पन्न होता है, उसमें अधिक स्वाद, पौष्टिकता एवं सद्बुद्धि प्रदान करनेका गुण होता है। स्वस्थ तथा नीरोगी कायाका मूलाधार भी गो-वंश ही है।

शास्त्रोंने गायको अर्थशास्त्रका प्रमुख आधार बताया है—

'धनं च गोधनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैव हि।'

पञ्चगव्यमें गायके ही गोबरका उपयोग होता है। भारतीय परिवेशमें पञ्चगव्यकी उपादेयतापर अधिक प्रकाश डालनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे पारम्परिक माङ्गलिक अवसरोंपर, रसोई-चूल्हेसे लेकर ईंधन तथा यज्ञकी वेदीतक गोबर एक महत्त्वपूर्ण एवं पवित्र पदार्थ माना गया है।

गोबरकी खाद और रस पाकर वनोंकी दुर्लभ ओषधियाँ पुनर्जीवित हो उठती हैं। गोबर ही समस्त प्रकारकी वन्य ओषधियोंका मूल है।

वैज्ञानिक विचारधाराओंमें निरन्तर आश्चर्यजनक रूपसे परिवर्तन होते रहते हैं; परंतु गोबरके सम्बन्धमें शाश्वत धारणा है कि कृत्रिम खादके स्थानपर गोबरकी खाद सौ गुना बेहतर है।

धरतीकी अन्न उपजानेकी शक्तिमें वृद्धि गोबरसे होती है। रासायनिक खादोंके निरन्तर प्रयोगसे भूमिके ऊसर बन जानेका खतरा निरन्तर बढ़ता जा रहा है, जबकि गोबरसे भूमिकी उर्वरा-शक्ति घटनेके बजाय बढ़ती है।

दुर्गन्ध दूर करनेमें उत्तम किस्मकी फिनायल भी गोबरसे कहीं पीछे है। यत्र-तत्र पलनेवाले हानिकारक कीटाणु तो गोबरकी उपस्थिति मात्रसे ही भाग जाते हैं। गरम गोबरका प्रयोग भी बहु-उपयोगी है। गीला गोबर रसयुक्त होता है। ताजे गरम गोबरपर बारीक कपड़ा रखकर निचोड़नेपर अत्यधिक मात्रामें गोबरका रस मिल सकता है। गोबरका रस अत्यन्त लाभकारी पदार्थ है।

गोबरके रसमें रससे चार गुना तेल मिलाकर गर्म किया जाय और जबतक सम्पूर्ण रस तेलमें न मिल जाय, तबतक गरम किया जाय, जब केवल मात्र तेल ही शेष बच जाय तो यह गोमय-तेल दृष्टि-मान्द्यतामें बहुत उपयोगी है। गोमय-तेल आँखोंमें लगानेसे नेत्र-ज्योति निश्चित रूपसे बढ़ती है।

विभिन्न प्रकारके चर्मरोग मरिच्यादि तेलसे नष्ट हो जाते हैं। यह चमत्कारी मरिच्यादि तेल गोबरके रससे ही बनता है। मनुष्यका कायाकल्प करनेमें शुद्ध भल्लातक प्रयोग किया जाता है। यह भल्लातक भिलावेसे बनता है जो कि विषयुक्त पदार्थ है, परंतु गोमय-रसमें पकानेसे भिलावेके समस्त विष-तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

गोबरके कंडेकी आगमें विशेष प्रभावोत्पादक किरणें होती हैं। इसी कारण विभिन्न प्रकारकी औषधियाँ एवं रस बनानेमें केवल-मात्र गोबरकी आग ही काममें ली जाती है।

बंदरके काटनेसे हुए घावपर गरमागरम ताजा गोबर लगानेसे पीड़ा जादुई-रूपसे समाप्त हो जाती है। सूखी खुजलीमें भी गोबर-रस रामबाण पदार्थ है। दाद, जो कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्मरोग है, में खुजलाहट घाव पैदा कर देती है। यदि दादको कंडेसे खुजलाकर दवा लगायी जाय तो दादकी बीमारी तुरंत दूर की जा सकती है। गोबरको जलानेके उपरान्त बनी राख भी उपयोगी होती है। निश्चेष्ट शरीरपर गोबरकी राख रगड़नेसे शरीरको अतिरिक्त ऊर्जा मिलती है। रुधिर-तन्त्र स्वतः ही ठीक ढंगसे कार्य करने लगता है। राखसे दाँत और बर्तन चमकानेकी उपादेयतासे कौन-सी गृहिणी अनभिज्ञ होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोबर अपने जन्मसे लेकर जलनेके उपरान्त राख बननेतक उपयोगी रहता है। कहा भी गया है—'**गोमये वसते लक्ष्मीः**।' गोमूत्र एवं गोबरमें लक्ष्मीका निवास रहता है।

गायका गोबर अत्यन्त लाभप्रद एवं पर्यावरणीय दृष्टिकोणसे भी महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। गोबरके इतने सारे गुण देखकर भी क्या हमें नहीं चेतना चाहिये कि जिस स्रोतसे यह गोबर हमें मिलता है, उसका संरक्षण एवं संवर्धन किया जाना चाहिये? यदि हम संकल्प कर सकें कि हम मिलकर गोमाताका संहार रोकेंगे तो कोई शक नहीं हमारा राष्ट्र समृद्धशाली होगा एवं देशमें दूध-दहीकी नदियाँ बह सकेंगी।

लक्ष्मीप्रदाता, लाभप्रद औषधि एवं पर्यावरण-संतुलनका महत्त्वपूर्ण घटक 'गोबर' केवल-मात्र गोबर ही नहीं है।

भारतमें गोरक्षाकी अनिवार्यता

(डॉ० श्रीमुहम्मदखाँ दुर्रानी, शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

कुछ वर्षपूर्व जब मुझे ज्ञात हुआ कि भारतके स्वतन्त्र हो जानेके पश्चात् भी भारतमें भारतीयोंद्वारा 'गोवध' प्रचलित है तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और विश्वास ही न हो पाया। जिस गौकी महिमाको अनादिकालसे ऋषियों, मुनियों तथा विद्वानोंद्वारा वेदों, उपनिषदों, पुराणों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, रामायण, महाभारत तथा भागवतमें गाया जाता रहा है, वर्णाश्रमधर्मके चारों मानव-स्तरोंपर जिसका सम्मान रहा है तथा मानव-जीवनके सोलहों संस्कारोंमें जिसकी पूजा श्रेयस्कर एवं वेदविहित मानी जाती रही है, उस गोमाताके प्रति अपने स्वतन्त्र देशमें सम्मान तो दूरकी बात—उसकी पूजा तो दूरकी बात—उसका वध कराकर उसके मांससे पेट-पूजा की जाती है। जो उसमें सहानुभूति प्रकट करे, उसकी खबर ली जाती है और जो उसकी पूजाका व्रत धारण करे उसे जेलकी सजा दी जाती है! वाह रे कैसा युग बदला!!

तीर्थोंपर जो 'गोदान' करेगा उसे क्या देश-निकालेका दण्ड मिलेगा अथवा मृत्युदण्ड? 'गोहत्या'पर साधु-समाजको क्या भारतमें समूल नष्ट कर दिया जायगा ? ये मेरे भावनात्मक अथवा आवेशात्मक उद्गार नहीं, अपितु तथ्यपूर्ण विचार हैं। मैं मुस्लिम हूँ, पर भारतीय मुस्लिम। मुझे मुस्लिम होनेपर गर्व है। भारतीय होनेपर उससे अधिक गर्व था, किंतु अब मुझे भारतीय होनेपर कुछ भी गर्व नहीं रहा। यहाँके अधिकांश लोग स्वार्थपरतावश धर्म-त्याग तथा नास्तिक बनानेकी ओर अग्रसर रहते हैं। स्वार्थमें इतने अन्धे रहते हैं कि किसी समस्याको सुलझानेका प्रयास करनेके पूर्व ही असमर्थता प्रकट कर देते हैं। अतः कार्य आरम्भ ही नहीं करते। इसीलिये तो कहा गया है कि—

'प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।'

अर्थात् 'नीच लोग विघ्नोंके भयसे कोई अभीष्ट कार्य आरम्भ ही नहीं करते।'

उदाहरणार्थ, जब 'गोवध-प्रतिबन्ध'की माँग की जाती है तो उत्तर मिलता है—'चर्म-पूर्ति कैसे होगी? उदरपूर्ति कैसे होगी? और फिर बढ़ती हुई गौओंका पालन कैसे होगा? इत्यादि-इत्यादि।' इस प्रकारके सहस्रों प्रश्नोंमें ग्रथित समस्याओंके समाधानकी दिशामें क्या देशके कर्णधारोंने कोई प्रयास किया? भारतीय संस्कृतिके 'गुरु-गोविन्द-गौ'—ये तीन ही आदिकालसे आधार-स्तम्भ रहे हैं। आज भारतमें इन तीनोंके प्रति कितनी उपेक्षाका भाव है यह भी जगजाहिर ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माण किया गया, जिसमें केन्द्र तथा प्रदेश-सरकार तथा संतोंके प्रतिनिधि थे। छ: माहके भीतर निर्णय देना था। परंतु उस कमेटीने ७ साल बाद दिनाङ्क १९-९-१९७३ को सर्वसम्मत निर्णय दिया कि गोहत्या-बंदीका केन्द्रीय कानून एवं प्रदेशीय कानून तुरंत बनाये तथा बनवाये जायँ। परंतु आजतक भी केन्द्रीय सरकारद्वारा कानून नहीं बनाया गया, और न कुल प्रदेशोंमें ही कानून बना। सरकार यही बहाना करती रही कि गोरक्षाका विषय प्रदेशोंका है, जबकि किसी भी विषयको केन्द्रीय बनाना उन्हींके हाथकी बात थी।

भारत सरकारने दिनाङ्क ५ जनवरी १९६७ को स्टेटमेन्ट निकाल करके जगद्गुरुजीसे उपवास छोड़नेकी प्रार्थना की और कहा था कि गोहत्या-बंदीके लिये हम वचनबद्ध हैं। कांग्रेस सरकारके कृषि-मन्त्रीने पार्लमेन्टमें दिनाङ्क १२ मार्च, १९७० को स्टेटमेन्ट दिया था कि 'भारत सरकार गोहत्या-बंदीके लिये वचनबद्ध है।' दिनाङ्क ८-४-७९ को 'अ०भा०कांग्रेस कमेटी'ने प्रस्ताव पास करके गोहत्या-बंदीका समर्थन किया था। कांग्रेस जब विपक्षमें थी, उस समय विपक्षके नेताने गोहत्या-बंदीके लिये सुझाव दिया था कि 'आर्टिकल २४९में राज्य-सभाका प्रस्ताव करके तुरंत गोहत्या-बंदी की जाय।' परंतु आजतक भी सरकारने अपने वचनोंका पालन नहीं किया।

गोहत्या-बंदीके आश्वासन सभी सुप्रीम कोर्टके निर्णयकी मर्यादामें थे। यानी गाय, बछड़े-बछड़ीकी हत्या परिपूर्ण बंद, जवान बैल, साँड़की हत्या भी बंद, केवल बूढ़े-निकम्मे बैलोंके क़तलकी छूट थी। सुप्रीम कोर्टने यह अर्थ संविधानकी कलम ४८ के शब्दोंसे निकाला। उसमें शब्द है, गाय तथा बछड़े-बछड़ी। उसपरसे बूढ़े बैलोंकी छूट रखी। सरकार चाहती तो संविधानमें संशोधन करके कलम ४८में गाय, बछड़े-बछड़ीके आगे बैल और साँड़ शब्द जोड़ सकती थी। वास्तवमें दुनियाके सभी भाषाके कोशोंमें 'गाय' शब्दमें नर-मादा दोनोंका समावेश रहा है।

बादमें जो सरकार सत्तामें आयी उसने भी गोहत्या-बंदीके लिये पार्लमेन्टमें बिल रखा था। उस समयके कृषि-मन्त्रीने बिल पेश किया था। दिनाङ्क १२ अप्रैल १९७९को लोकसभामें एक प्रस्ताव पास हुआ था कि संसद्का यह आदेश है कि 'गोहत्या-बंदीके लिये सुप्रीम कोर्टकी मर्यादामें एवं काऊ प्रोटेक्शन कमेटीके सुझावानुसार भारत सरकार गोहत्या-बंदीका कानून बनाये।'

१९८२ में संत विनोबाजीकी प्रेरणासे उनके आश्रम-वासियोंद्वारा बंबईके देवनार क़तलखानेपर गोरक्षा-सत्याग्रह चलाया गया। सत्याग्रहको चलते हुए लगभग ग्यारह-बारह साल हो गये हैं, अभीतक महाराष्ट्र सरकार जवान बैलोंकी हत्या भी बंद नहीं कर सकी। देवनारमें आज भी ७५% जवान बैल कटते हैं। कृषि-गोसेवा-संघने वहाँ क़तलके लिये जाते हुए बैलोंको रोका था, उनमें ऐसे भारी बैल थे जो ५-५ लोगोंके कब्ज़ेमें नहीं आये। हाथी-जैसे बैल भी काटे जा रहे थे। उस समयके क़तलसे बचाये हुए बैल आज भी देखे जा सकते हैं। क़तलके लिये पास किये गये जवान बैलोंके झुंड किसी भी दिन क़तलखानेमें देखे जा सकते हैं। महाराष्ट्र सरकार चाहती तो जवान बैलोंकी क़तल अवश्य बंद कर सकती थी।

भारत सरकारका कानून है कि 'मांस-निर्यातमें गाय, बछड़ा, बछड़ी, बैल-साँड़ किसी भी गोवंशका मांस निर्यात न हो। जवान भैंसा-भैंसेका मांस भी निर्यात न हो, केवल बूढ़ी भैंसका मांस निर्यात हो सकता है।' इस नियमके बावजूद ९०% मांस गायोंका निर्यात हो रहा है। इस देशमें मांसका भाव करीब १० रुपये किलोसे कम है। विदेशोंमें उसकी कीमत १०० रुपये किलो है। इतनी भारी कीमत देकर विदेशोंमें बूढ़ी भैंसका मांस कोई खरीदेगा नहीं। यह बात सूर्य-प्रकाश-जैसे स्पष्ट है। १९८४ के अन्तमें प्रधान मन्त्री इंदिराजीसे मिलनेपर उन्होंने स्वीकार किया ऐसा हो रहा हो तो गलत है, इसे देखा जायगा। परंतु कुछ भी नहीं हुआ।

गाय-बैल भारतीय गाँवोंके जीवनके आधार हैं। गाय-बैलोंकी प्रत्यक्ष क़तलके अलावा अपरोक्ष क़तल बड़ी तादादमें चली है। गायोंकी खुराक खली भी निर्यात की जा रही है। गायोंका चारा कागज आदिके कारखाने खा रहे हैं। अनाजोंके संकरित बीजोंसे चारा कम पैदा होता है। कम्बाईड हार्वेस्टरोंसे चारेका काफी भाग जमीनमें मिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। चारेकी उपज बढ़ानेकी ओर कोई ध्यान नहीं है। बैलोंका काम छीना जा रहा है। ट्रैक्टर और ट्रक बैलोंको बेकार बना रहे हैं। दोनोंका कहीं समन्वय नहीं। इस प्रकार अपरोक्ष तरीकेसे गाय-बैल रखना किसानोंके लिये बोझरूप होता जा रहा है। यह सारा नियोजन केन्द्रीय सरकारके हाथमें रहा है।

इन वर्षोंमें काफी किसान महसूस करने लगे हैं कि रासायनिक खादोंसे जमीन कम उपजाऊ होती जा रही है। खादकी मात्रा भी प्रतिवर्ष बढ़ानी पड़ती है। किसानको जीना हो तो गोबर-गोमूत्रके कम्पोस्ट खादपर आना होगा। अर्थशास्त्रके एक प्रोफेसरका कहना है कि 'भूमिकी ह्यूमस कम होती जा रही है। जमीनमेंसे जितना तत्त्व अनाजमें हम लेते हैं, उतना मल-मूत्र और कचरेके रूपमें वापिस नहीं देंगे तो भूमि जिंदा नहीं रहेगी। भूमि जिंदा न रही तो न मानव जिंदा रहेगा, न पशु जिंदा रहेगा। भूमिके लिये सर्वोत्तम खाद गायका गोबर-गोमूत्र है। गोबर-गोमूत्रसे मिथिन गैस मिलती है। बूढ़े पशुको जितना खाना देना पड़ता है, उसकी अपेक्षा खादसे अधिक पैदावार होती है। ८० कोटि जनताको जिंदा रखनेके लिये गोवंशका वध पूर्णतः बंद होना आवश्यक है।'

गौकी देखभाल एवं रोगोपचार

(डॉ० श्रीगंगाधरजी मिश्र)

भारतमें गो-जातिकी विभिन्न प्रजातियाँ हैं। स्थान, जलवायु एवं भोजनकी भिन्नताके कारण यहाँ बहुत प्रकारकी गायें पायी जाती हैं। उनकी देखभाल, सुरक्षा, भोजन एवं चिकित्साकी समुचित व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे उनसे समुचित लाभ उठाया जा सके।

भोजन—जीवन-रक्षाके लिये गायको पौष्टिक स्वादिष्ट दुग्धवर्धक भोजनकी आवश्यकता होती है। हरा चारा, सूखा चारा, दाना, खली एवं खनिज पदार्थोंका उपयोग होना आवश्यक है। जाति-भेदके कारण उनके भोजनमें कुछ भिन्नता होती है। जो भारतीय नस्लकी गायें होती हैं, उनके लिये हरा, सूखा चाराकी ही अधिक आवश्यकता होती है। वे घासके मैदानमें घास चरकर ही संतुष्ट रहती हैं। गायको हरी-हरी घास अधिक पसंद होती है। भारतमें गोचारणकी व्यवस्था बहुत पुरानी है। गोकुल, व्रज, मथुरा आदि स्थान इसीके लिये प्रसिद्ध हैं, जहाँ भगवान् गोपाल कृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ गोचारण किया करते थे।

विदेशी नस्लकी गायोंके भोजनमें कुछ अन्तर पाया जाता है। हरी घासकी अपेक्षा वे सूखे चारे अधिक पसंद करती हैं, जिसमें कुछ अन्नके दाने, दलिया, चुन्नी, खली, नमक आदि मिला दिये जाते हैं। इसका कारण है कि भारतवर्षमें हरी घासकी कमी नहीं है; क्योंकि यह सदासे सस्य-श्यामला भूमि रही है। यह अन्य देशोंमें उपलब्ध नहीं है। प्राचीन कालमें गोधनकी प्रधानता थी। हजारों-हजारकी संख्यामें गायें पाली जाती थीं।

आवास—गायोंके रहनेकी जगह साफ-सुथरी एवं हवादार होनी चाहिये। नित्यप्रति उसकी सफाई होनी चाहिये। रोशनीका उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये। उनके मल-मूत्रको उनके बाँधनेके स्थानसे अलग दूर रखना चाहिये। उनके भोजनका पात्र भी साफ-सुथरा हो। पीनेके लिये स्वच्छ पानीका प्रबन्ध हो।

सेवा एवं देख-रेख—धार्मिक दृष्टिसे गोसेवा तो सर्वोत्तम है ही, आर्थिक दृष्टिसे भी उसकी सेवा कम आवश्यक नहीं है। गोवंश-वृद्धिसे मानवकी समृद्धि होती है। इसकी प्रसन्नता एवं स्वस्थतापर मानवका जीवन उज्ज्वल रहता है। गोमाताको किस समय, किस वस्तुकी आवश्यकता है, इसका पूरा ख्याल सतर्कतासे रखना चाहिये। उसके बाँधनेके स्थानकी सफाई एवं शारीरिक सफाई मनोयोगपूर्वक करनी चाहिये। हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये कि गुरु-पूजन एवं ब्राह्मण-नमस्कारके फलसे कहीं अधिक फलप्रद गो-स्पर्श होता है। उसके मल-मूत्रमें रोगकीटाणु-नाशक अमोघ शक्ति है। गोमूत्रमें श्रीगङ्गाजीका निवास है। जो रोग या पाप किसी प्रायश्चित्तसे दूर नहीं होते, वे गोमूत्रसहित अन्य चार गव्य पदार्थोंसे युक्त होकर पञ्चगव्य-पानसे नष्ट होते हैं। इसमें त्रिताप नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेकी अपूर्व क्षमता निहित है।

रोगोपचार—उचित सेवा, देखभाल एवं भोजनके उपरान्त भी गायें कभी-कभी अस्वस्थ हो जाती हैं। उन्हें भी कभी-कभी दस्त, ज्वर, अङ्गपीड़ा, व्रण एवं आकस्मिक घटनाके कारण विभिन्न कष्ट हो जाते हैं, जिनका निदान आवश्यक हो जाता है। यहाँ उनकी चिकित्सापर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है—

ज्वर—ज्वर हो जानेपर गाय खाना-पीना छोड़ देती है। पागुर नहीं करती। उसके शरीरमें सिहरन हो जाती है। शरीर गर्म एवं कानके बाहरी भाग ठंडे हो जाते हैं। नाकके पूरे सूख जाते हैं। नाकसे स्राव होने लगता है। गाय सुस्त होकर लेटी या खड़ी रहती है।

चिकित्सा—प्रारम्भमें एकोनाइट २०० एवं बादमें ब्रायोनिया २०० का प्रयोग एक-दो घंटेपर करनेसे २४ घंटेके अंदर गाय रोगमुक्त हो जाती है।

दस्त—पहले दस्तमें फॉसफोरस २०० तीन घंटेपर दिया जाय एवं रातमें एक खुराक सल्फर २०० दिया जाय तो दो दिनमें दस्त बिलकुल ठीक हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त लक्षणानुसार एलोज २००, पोडोफाइलम, क्रोटनका व्यवहार भी किया जा सकता है।

अङ्गपीड़ा या वात—कभी-कभी गाँठों, पैरों या डाँड़में पीड़ा हो जाती है। जिससे गायको उठने-बैठने या चलनेमें पीड़ा होती है। इसके लिये ब्रायोनिया १,००० तथा रसटक्स १,००० का व्यवहार बारी-बारीसे करना चाहिये। लक्षणानुसार खटा, लीडम आदिका प्रयोग करना चाहिये।

चोट या मोच—चोट या मोचमें सर्वप्रथम आर्निका १,०००, उसके बाद लक्षणानुसार रसटक्स १,०००, सिम्फाइटम १,०००, हाइपेरिकम १,००० आदिका प्रयोग करना चाहिये।

व्रण या अकौता—साधारण व्रणमें साइलीसिया, मर्कसौल, माइटिस्टिका, हीपर सल्फरका व्यवहार होना चाहिये। अकौतामें ग्रेफाइट्स, पेट्रोलियम, सल्फर, सोटिनम आदिका व्यवहार उत्तम होता है।

मादा रोग—प्रसव-पीड़ा—प्रसव-कालमें कोई कठिनाई जान पड़े तो पल्साटिला १,००० या एक लाख शक्तिके प्रयोगसे प्रसव-पीड़ासे त्राण पाकर आसानीसे बच्चा निकल जाता है। प्रसवके समय अगर बच्चा पेटमें टेढ़ा या अड़ा हो तो वह इसके प्रयोगसे सीधा होकर निकल जाता है। अगर जेर गिरनेमें देर हो तो इसके प्रयोगसे जेर शीघ्र गिर जाती है।

इस रासायनिक युगमें पशुओंके खाद्य-पदार्थ-जैसे—घास, चारा, दाना आदिमें रासायनिक पदार्थोंका उपयोग उर्वरता बढ़ानेके लिये किये जानेके कारण दूषित होते चले जा रहे हैं। इन दूषित भोजनोंका प्रभाव पशुओंके स्वास्थ्यपर प्रतिकूल पड़ता है। उनके प्रजनन-प्रणालीपर भी बुरा असर पड़ता है, जिसके फलस्वरूप बाँझपन-जैसी बीमारीका प्रकोप हो जाता है। अत: गोपालनके उद्देश्यपर आघात पहुँचता है। दूधका अभाव हो जाता है। इससे त्राण पानेके लिये इस चिकित्सा-पद्धतिमें अपूर्व प्रयोग सफलतापूर्वक किये जा रहे हैं। अगर गाय गर्भ धारण करनेमें अक्षम हो तो बोटैक्स एक लाख क्रमकी दवा प्रयोग करनेपर सफलता मिल जाती है।

आशा है, उचित चिकित्सा-पद्धतिके प्रयोगसे गोवंशकी समृद्धि होकर गोपालनका उद्देश्य पूर्ण होगा।

प्रार्थना

परम प्रसिद्ध अष्टसिद्धि-नवनिद्धि-खानि, 'सोम' सुखदानि देह-नरक-निकंदिनी।
सेब्य सुरबृंदकी, महीकी महामान्य मूर्ति, युग-युग आप अवतरित स्वच्छंदिनी॥
पूजित पुरुष पुरुषोत्तम पुराणकी त्यों, नीरधि-निवासिनी पवित्र जगबंदिनी।
बार-बार बंदि श्रीपदारबिंद पूजनीय, कोटिशः प्रणाम अम्ब कामधेनुनंदिनी॥

—दु:खभंजन शास्त्री 'सोम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर और गो-वध

गो-वधसे कबीर कितने दुखी थे, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। 'इस्लाम'— नहीं-नहीं 'तुरुक' की यही बात उनको अति खटकती थी। कबीर इसे धर्म नहीं, स्वार्थ समझते थे। देखिये, किस परितापसे कहते हैं—

तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करै ए बोधा॥
गाफिल गरब करैं अधिकाई, स्वारथ अरथि बधैं ए गाई॥
जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौं बध क्यूं कीजै॥
लहुरैं थकैं दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो॥
बेअकली अकलि न जांनहीं, भूले फिरैं ए लोइ।
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहाँ थैं होइ॥

(कबीर-ग्रंथावली, अष्टपदी रमैंणी)

कबीरदासने किस भावसे, किस वाणीमें किससे क्या कहा है—इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। आवश्यकता तो यह जाननेकी है कि कबीर गोमाताके कितने ऋणी हैं और गोभक्षकको कितना मूढ़ समझते हैं। मूढ़ नहीं कृतघ्न! गौका जो उपकार हमपर है, उसे न मानना—उलटा उसके शरीरको चट कर जाना कबीरको नहीं जँचता। उन्हें तो इसमें विवेकका सर्वथा अभाव ही दिखायी देता है। होते-होते यहाँतक हो जाता है कि कबीरको फटकारकर कहना पड़ता है—

जब नहीं होते गाई कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई॥

(कबीर-ग्रंथावली, अष्टपदी रमैंणी)

परंतु क्या कभी इतनेसे ही किसी कमठ-उदारकी तृप्ति हो सकती है? नहीं, निदान उनको इतना और भी खुलकर कहना पड़ता है—

कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ।
मींरां मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ॥

(कबीर-ग्रंथावली पृ० ५२)

कबीरके प्रश्नका उत्तर वही दे सकता है जो 'मीराँ' हो। तो भी हमें भी इतना कह देनेमें कोई संकोच नहीं होता कि गोवध किसी इस्लामका अङ्ग नहीं। कुरान मजीदमें जो गो-बलिकी कथा है, उससे सिद्ध होता है कि यह आज्ञा अल्लाहने भोजनके लिये नहीं दी थी। उसने तो यह कहा था कि यदि हत्यारेका पता लगाना है तो ऐसी दिव्य गौकी बलि दो और उसके एक टुकड़ेसे उक्त शवको मार दो। इससे वह आप ही उठ पड़ेगा और अपने हत्यारेका पता बता देगा। अल्लाहने ऐसा क्यों कहा, इसे अल्लाह ही जान सकता है; तथापि इसके आधारपर दृढ़तासे यही कहा जा सकता है कि यह गोवधका विधान नहीं, प्रत्युत किसी हत्यारेको ढूँढ़ निकालनेका उपाय है। यहाँ इतना और भी स्पष्ट रहे कि अल्लाहने जहाँ उक्त गौका लक्षण बताया है, वहाँ इतना और भी स्पष्ट कर दिया है कि 'वह गाय न तो इतनी सधाई हुई हो कि जमीन जोते और न खेती सींचे, भली-चंगी...... उसमें कोई धब्बा तक न हो।' (सूरत बकर, आयत ७१)

स्मरण रहे, वह गाय ऐसी न हो कि उससे खेती-बारीका काम होता हो। तो क्या अल्लाहका यह आदेश यों ही भुलाया जा सकता है ? उससे कबीरकी वाणीका तुक नहीं बिठाया जा सकता ? पेट-पूर्तिके लिये गायका वध करना किस कुरानमें आया है ? यही तो कबीर जानना चाहते हैं। नहीं, कबीर तो और भी आगे बढ़ते और बड़े ढंगसे पूछ जाते हैं—

हम गोरू तुम ग्वार गुसाइ जनम जनम रखवारे।
कबहू न पार उतार चराइहु कैसे खसम हमारे॥

(कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ ३३०)

हम भला, इसका उत्तर क्या दे सकते हैं; पर हम जानते इतना अवश्य हैं कि कबीर 'ग्वार' कृपासे 'पार' हो गये और सिखा गये हमें 'गोपाल' का गो-पालन।

गाय दूध देती है, बैल देती है, चमड़ा, उत्कृष्ट खाद आदिके अलावा सह-अस्तित्त्वका अमोघ सिद्धान्त अपने त्यागमय जीवनसे सिखलाती है। 'गौ' की रक्षा देशकी रक्षा है और विश्वमें मानवत्वकी रक्षा है।

—आचार्य श्रीधर्मेन्द्रजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतके विदेशी शासकोंके सिक्कोंपर नन्दी

(डॉ० श्रीमती श्यामला गुप्ता)

भारतके प्राचीन सिक्कों-पञ्चमार्क, एरण, उज्जयिनी, यौधेय, अयोध्या, कौशाम्बी और सातवाहन आदिपर गाय तथा वृषभ (नन्दी)-का अङ्कन मिलता है। प्राचीन समयसे ही गाय और बैलका महत्त्व भारतमें सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक रूपमें मिलता है।

विदेशी शासक सिकन्दर और उसके अनुयायी कुषाण शासकोंने नन्दी, हाथी, भगवान् शिव और नन्दीका उपयोग अपने सिक्कोंपर किया। यहाँ कुछ ऐसे ही दुर्लभ सिक्कोंका विवरण दिया जा रहा है, जो ईसा-पूर्व ३०० वर्षसे २०० ईसवीतक भारतमें प्रचलित थे।

(१) यवन (ग्रीक) अपोलोडोटस—यूथिडिमसके उत्तराधिकारियोंमें अपोलोडोटस (अपल दत्तस)-का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। इसने उत्तर-पश्चिमी भारतमें शासन किया, अतएव इसके सिक्कोंपर भारतीय प्रभाव दीखता है। इसके शासनकालमें चाँदी एवं ताँबेके कई प्रकारके सिक्के बने। अपोलोडोटसके सभी सिक्के द्विभाषी हैं। एक तरफ खरोष्ठीमें और दूसरी तरफ ग्रीकमें भी वही लेख है।

धातु—चाँदी, वजन २.५ ग्राम, आकार चौकोर १.४ से०मी०, समय १५० ई०पू०।

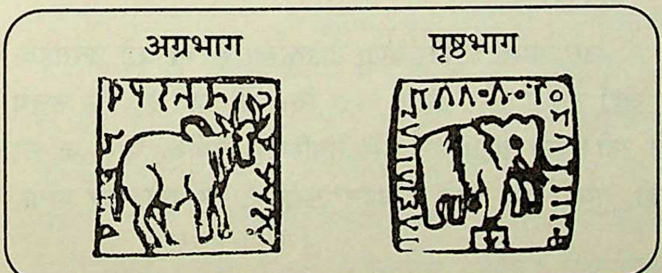

अग्रभाग—दायीं ओर मुँह किये हुए नन्दी खड़ा है। खरोष्ठीमें 'महाराजसा अपालादातासा त्रातारास' लिखा है।

पृष्ठभाग—पृष्ठभागमें दायें मुँह किये खड़ा हुआ हाथी अङ्कित है तथा ग्रीक भाषामें 'बेसिलास अपोलाडोटो सोटोरास' लिखा हुआ है।

(२) कुषाण (कुजला कराकड़फिस)—भारतमें आनेवाली जातियोंमें कुषाण-वंशका इतिहास गौरवमय था। भारतीय संस्कृतिमें इनका विशेष योगदान रहा। इसी वंशके राजा कनिष्कने शक-संवत्का शुभारम्भ किया। कुषाण जाति यूईचीकी एक शाखा थी। पर्थिया एवं काबुलपर अधिकार करनेके बाद कुषाण भारतमें प्रवेश कर गये। इसका प्रथम शासक कुजला कडफिस था। इसके सिक्केका विवरण इस प्रकार है—

धातु—ताँबा, वजन ९.० ग्राम, आकार गोल २.२ से०मी०, समय ७६,८० ई०।

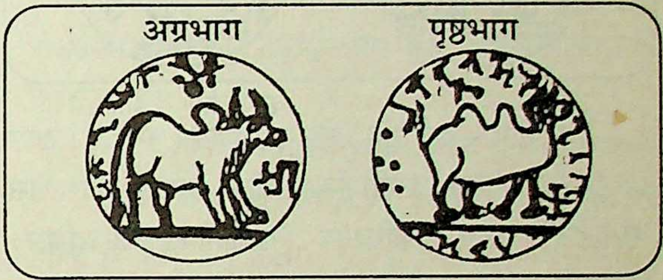

अग्रभाग—दायें मुँह किये वृषभ खड़ा है, ऊपर ग्रीक मोनोग्राम, खरोष्ठी मोनोग्राम है और सामने चारों तरफ ग्रीक भाषामें अस्पष्ट अक्षर है।

पृष्ठभाग—दो कूबड़वाला दायें मुँह किये खड़ा हुआ ऊँट है तथा खरोष्ठीमें 'रा (ता) सा कयला करा कपासा' लिखा है।

(३) 'शक-शासक' अजिस—प्राचीन कालमें चीन देशमें उत्तर-पश्चिमी सीमापर खानाबदोश (बंजरा) जातियाँ रहती थीं। जब अन्य जातियाँ इन्हें पराजित करतीं तो ये मध्य एशियामें आ जाते और जब वहाँसे भी पराजित होते तो काबुल घाटीमें आ जाते। ई०पू० दूसरी शतीमें उत्तर-पश्चिम चीनसे यूईची जातिको अपदस्थ होना पड़ा। वह मध्य एशिया चली गयी, जहाँ शक-शासक निवास करते थे। इस कारण शक-लोग बरुख होकर पर्थियन राज्यमें घुस गये और बलखके शासक तथा पर्थिया शक-शासकोंके अधीन हो गये। बादमें पर्थियाके राजा मिर्थदत्त (ई०पू० १२३-१८८)-की शक्ति बढ़नेके कारण शक-जाति भारत आ गयी और काबुलके भागमें प्रवेश कर समीपवर्ती भू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागोंके राजा बन गये, बादमें पंजाबतक उनका अधिकार हो गया।

मोगके उत्तराधिकारी अजिस (अयस)-के काफी सिक्के मिले हैं, जो ताँबे और चाँदीमें हैं। एक सिक्केका विवरण इस प्रकार है—

धातु—ताँबा, वजन ९.० ग्राम, आकार गोल २.३ से०मी०, समय ३०-४५ ईसवी।

अग्रभाग पृष्ठभाग

अग्रभाग—दायें मुँह किये खड़ा हुआ नन्दी है। ऊपर ग्रीक चिह्न, सामने खरोष्ठी चिह्न, ग्रीक भाषामें 'बसिलोस बेसिलोन मेगालय अर्जिसिसाय' (राजाओंका राज अजिस) लिखा है।

पृष्ठभाग—दायें मुँह किये खड़ा हुआ शेर है, खरोष्ठी लिपिमें 'महाराजसा राजाधिराज सा महातसा अयस' लिखा हुआ है।

(४) कुषाण (कुजला कडफिस प्रथम)—जैसा कि पूर्वमें बताया गया है कि कुजला कडफिस कुषाण-वंशका प्रथम शासक था। भारतमें आनेके बाद उसपर भारतके शैवधर्मका प्रभाव पड़ा, उसके शिव-नन्दीवाले ये सिक्के इस बातको दर्शाते हैं। इन्होंने सोने तथा ताँबेके बहुत सिक्के चलाये। कुछेकका विवरण इस प्रकार है—

धातु—ताँबा, वजन १४ ग्राम, आकार गोल २.५ से०मी०, समय ७६-८० ई०।

अग्रभाग पृष्ठभाग

अग्रभाग—शिव नन्दीके सामने खड़े हैं, दायें हाथमें त्रिशूल है और 'महाराजा सा राजाधिराजसा सर्वलोगा ईश्वर सा महिष्वरासा' लिखा है।

पृष्ठभाग—बायें मुँह किये राजा खड़ा है। दायें हाथकी ओर त्रिशूल बना है। दायें हाथसे हवन-कुण्डमें आहुति दे रहा है, चारों तरफ ग्रीक भाषामें लेख है।

सुरभीको वरदान

पहले सत्ययुगमें जब देवता तीनों लोकोंपर राज्य करते थे, उस समय धर्मपरायणा दक्षकन्या सुरभी बड़े उत्साहके साथ घोर तपस्यामें प्रवृत्त हुई। कैलासके रमणीय शिखरपर जहाँ देवता और गन्धर्व सदा विराजते रहते हैं, वह उत्तम योगका आश्रय ले ग्यारह हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़ी रही। तब ब्रह्माजीने उस तपस्विनी देवीके पास जाकर कहा—'कल्याणी! तुम किसलिये यह घोर तपस्या कर रही हो, तुम्हारे इस तपसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो, मैं देनेको तैयार हूँ।'

सुरभीने कहा—'भगवन्! मुझे वर लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मेरे लिये तो सबसे बड़ा वर यही है कि आज आप मुझपर प्रसन्न हो गये।'

ब्रह्माजी बोले—'देवि! तुमने लोभका परित्याग करके निष्काम भावसे तप किया है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, अतः मैं तुम्हें अमर होनेका वरदान देता हूँ। अब मेरी कृपासे तीनों लोकोंके ऊपर तुम्हारा निवास होगा, तुम जहाँ वास करोगी, उसकी गोलोकके नामसे ख्याति होगी। तुम्हारी सभी शुभ संतानें मनुष्य-लोकमें प्राणियोंके हितका कार्य करती हुई वहाँ निवास करेंगी। तुम अपने मनसे जिन दिव्य अथवा मानवीय भोगोंका चिन्तन करोगी, वे सब तुम्हें प्राप्त होंगे तथा सब प्रकारका सुख तुम्हारे लिये सदा सुलभ रहेगा।' (महा०, अनु०, अ० ८३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न संस्कृतियोंमें गो-आराधन और गोसेवा

गोरखाली संस्कृतिमें गायतिहार एवं भैलेनी

(श्रीजनार्दनजी चतुर्वेदी 'जन')

नेपाल और भारतका धार्मिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। नेपालके पूर्वाञ्चल और सिक्किमके सीमान्तमें 'रोङ्' जातिकी घनी आबादी थी, जिन्हें गोरखा 'लेप्चा' कहते हैं। ये भारतमें अपनेको 'गोरखा'से सम्बोधित करते थे। फलत: दार्जिलिंग या आसाम अञ्चलके नेपाली-भाषी 'गोरखा' गौरवसे आज भी विख्यात हैं।

गोरखाका गढ़ है हिमालयकी उपत्यका और तराई। गोरखाली-संस्कृतिमें गायको 'गाई' या 'धेनु' और बैलको 'गोरू' संज्ञासे पुकारते हैं। गायको लक्ष्मीका रूप मानते हैं। भारतीय संस्कृतिके समान ही धेनु-प्रशस्तिमें इनका पूर्ण विश्वास है।

गायमें लक्ष्मीका वास है—इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गोरखाली महिला-समाजमें व्याप्त है। गोरखाली समाजमें कार्तिक कृष्ण अमावस्या श्रीश्रीमहालक्ष्मी (दीपावली)-पूजनके अवसरपर तीन दिनतक 'गायतिहार'—गो-त्योहार मनाया जाता है। गोरखाली कुमारी कन्याएँ अपने-अपने घरके लिये गायका गोबर एकत्र करती हैं। प्रत्येक घर तथा आँगन गायके गोबरसे लीपा जाता है। संध्या-समय गोधूलि बीतनेपर दीप-ज्योतिके प्रदीप्त होते ही कुमारियोंका दल एकत्र हो प्रत्येक घरपर मङ्गलगीत गाने जाती हैं। इस दलका नाम 'भैलेनी' है। दलकी नेत्री मङ्गलगानसे कार्यक्रमका श्रीगणेश करती है, उसके लयान्तमें तार-स्वरसे सभी सहेलियाँ स्वर-में-स्वर मिलाकर कहती हैं—'भैलो'। इस अद्भुत मङ्गलमय दृश्यका अवलोकन करते ही बनता है। यहाँ संक्षेपमें उसीका एक रूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

'भैलेनी', 'भैलो' बनाम 'गायतिहार'

नेत्री कहती है—*'भैलेनी आएऊँ आंगन बढ़ारी कुढारी राखन ····।'*

सहेलियाँ एक स्वरमें बोलती हैं—*'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ १॥*

अर्थात् हम 'भैलेनी' आपके घरपर आ रही हैं, आँगनको साफ-सुथरा करके रखिये। आज अमावस्याके दिनका गायका त्यौहार मङ्गलदायी हो।

नेत्री—*'हरियो गोबर ले लिपेको, लक्ष्मी पूजे को ····।*

सहेलियाँ एक स्वरसे—*'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ २॥*

भावार्थ—हरित ताजे गोबरसे लिपा-पुता स्थान तथा लक्ष्मीजीके पूजनकी तैयारीसहित आज अमावस्याका गाय-त्यौहार शुभद हो।

नेत्री—*'हामी आएऊँ आंगन गुनेड चोलो मांगन ····।'*

सहेलियाँ एक स्वरमें—*'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ ३॥*

सारांश—हम 'भैलेनी' चोलो (नेपाली भाषामें 'ब्लाउज' या झूलाको 'चोलो' कहते हैं) माँगनेकी मनमें ठानकर इस अमावस्याके मङ्गलमय अवसरपर आँगनमें आयी हैं।

नेत्री—*'भारैमाथी को सिनकी, भैलेनी हरूका विन्ती ~।'*

सहेलियाँ सम्मिलित स्वरसे—*'औंसी वार गायतिहार भैलो' ॥ ४॥*

जैसे बोझमें एकत्र लकड़ियोंका गट्ठर है, उसी प्रकार हम 'भैलेनी' की सामूहिक विनय है कि यह अमावस्याका गाय-त्यौहार शुभदायी हो।

नेत्री—*'हामी आफै आएका हौंन, बलीराजाले पठाएको ····।'*

सम्मिलित सखियोंके स्वरमें—*औंसी वार गायतिहार भैलो' ॥ ५॥*

तात्पर्य—'भैलेनी' कहती है कि हम अपने मनसे नहीं आयी हैं। भारतीय संस्कृतिके दानवीर विरोचन-पुत्र राजा बलि और विष्णुरूप वामनकी स्मृति दिलाकर कहती हैं कि हम राजा बलिके दानकी प्रेरणासे यहाँ आयी हैं। अत: यह अमावस्याका 'गायतिहार' मङ्गलमय हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्री—*'हारमोनी बाजा तबेला, हामी लाई भयो अबेला ---।'*

सब मिलकर—'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ ६॥

'भैलेनी' कहती है कि हारमोनियम, ढोल, मृदंग, झाँझकी झंकारसे नौबत बजती रहे। हमलोगोंको देर हो रही है (अन्य घरपर भी जाना अनिवार्य है)। अतः यह अमावस्याका 'गोपर्व' मङ्गलदायी हो।

घरवाले थालमें अरवा चावल, पुष्प, दूब, दान-द्रव्य, मिष्टान्नसहित अर्पित कर 'भैलेनी' की बिदाई करते हैं। बिदा होते 'आशीष' का मनोरम दृश्य यों है—

नेत्री—*'यसै घर का पति बाबा केला जस्तो गाँजी रहून ---।'*

सम्मिलित स्वरमें—*'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ ७॥*

अर्थात्—'भैलेनी' शुभाशीषकी कामना करती है कि इस घरके घरपति (घरका मालिक) तथा आमा (मालकिन) केलाके पत्ते-जैसे हरे-हरे लहलहाएँ और धन-जनसे पल्लवित हों। यह अमावस्याका गाय-त्यौहार शुभदायी हो।

नेत्री—*'यसै घरका लाली बाछी दूबो जस्तो मौली रहून ------।'*

सम्मिलित स्वर—*'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ ८॥*

अर्थात् इस घरके बाल-बच्चे दूर्वा-जैसे पनपें, पसरें और लहराते रहें। आजका अमावस्याका गोपर्व मङ्गलमय हो।

नेत्री—*'भैलेनी हरूले दिए को आशिषलागी रहोस् --।'*

सभी सखियाँ—*'औंसी वार गायतिहार भैलो'॥ ९॥*

भावार्थ—हम 'भैलेनी' वर्गका दिया आशीर्वचन फलीभूत हो। यह अमावस्या तिथिका पुण्य गाय-त्यौहार शुभदायी हो।

वीर गोरखा-समाज हिन्दू-संस्कृतिका कट्टर अनुयायी एवं पोषक है। यहाँ गोभक्तिकी जड़ सुदृढ़ है। मन्दिरोंमें पूजन, सत्यनारायण-कथामें भक्ति-स्नेह, दुर्गाजीकी अटूट भक्ति और प्रायः ललाटपर रोली-चन्दनकी नित्य लगी बिंदीको देखकर यह अञ्चल स्वर्गधाम (वैकुण्ठपुरी) इन्द्रपुरीका आभास कराता है।

बिहारके वनाञ्चलमें गोपूजन-परम्परा

(श्रीसुरेशनन्दनप्रसादसिंहजी 'नीलकंठ')

बिहारके वनाञ्चल—सिंहभूमि, पलामू, हजारीबाग, गुमला, राँची, संथाल परगना आदि समस्त क्षेत्रोंमें गोपूजन और गौ-उत्सवकी परम्परा आज भी देखनेको मिलती है। यहाँकी गोपूजाका त्यौहार दीपावलीके साथ जुड़ा हुआ है। बिहारके वनाञ्चलमें दीपावलीके अवसरपर दो दिनोंतक 'सोहराई'-का त्यौहार मनाया जाता है। इस पूजाकी कथा भगवान् 'पशुपतिनाथ' भोलेबाबा शंकरकी आराधना-उपासनाका इतिहास है। इस क्षेत्रमें यह पूजा दिन-रात चलती है, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भारतकी कृषक-संस्कृतिकी मानसिकता पृथ्वीपर साकार होकर उतर आयी हो।

इस अवसरपर पशुओंको हृष्ट-पुष्ट बनाने-हेतु 'गोचारण' का कार्य समर्पण-भावसे किया जाता है। लगभग एक सप्ताहतक गृहस्थ लोग पशुओंसे—गाय-बैलोंसे काम नहीं लेते हैं। उनके सींगोंमें महुवेका तेल चुपड़ते हैं। दूसरी ओर उनके पूजनके लिये गृहिणियाँ घर-आँगनको बुहारकर सफाईके कार्यमें लगी रहती हैं। मिट्टीके घरोंको लाल, काली और सफेद रंगोंकी मिट्टीसे लिपाई-पुताईकर इस प्रकार दीवारोंकी रँगाई कर देती हैं कि मानो चित्रकारी कर दी गयी हो।

बाघुत-पूजा—इस अवसरपर सर्वप्रथम बाघुत-पूजा (बाघ+भूत) की जाती है। इसके लिये रास्तेके मुहानेपर एक स्थानको गोबरसे लीपा जाता है। फिर 'बाँधन दोड़ो' और 'छाँदन दोड़ो' अर्थात् गायोंको बाँधनेवाली रस्सीकी पूजा होती है। फिर पशुओंको इकट्ठा कर उस स्थानपर बाँध दिया जाता है। पण्डित मन्त्रोंसे पशुओंको जंगलमें आपदाओंसे बचाने-हेतु बाघुत देवताकी पूजा करते हैं। यहींसे आरम्भ होता है 'सोहराई' का त्यौहार।

गोठ-पूजा—बाघुत-पूजाके बाद आरम्भ होती है गोठ-पूजा। इसके लिये पशुओंके भागनेके स्थानको गोबरसे लीपकर उसे 'अल्पना' से सजा दिया जाता है। देहरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पंडित) के आदेशसे गाँवके लोग पशुओंको घेर लेते हैं। पशुओंको एक ही ओर अर्थात् गाँवकी ओर ही उस लिपे-पुते स्थानसे भागनेका रास्ता शेष रह जाता है। पशु भागते हैं। उनमेंसे चुने हुए पशुके सिरपर तेल और सिंदूर मला जाता तथा धानकी बालियोंका बनाया गया मौर भी पहनाया जाता है। उसे साथ लेकर उस पशुके स्वामी गृहस्थके पास सब लोग जाते हैं तथा वहाँ भी गृहस्थ उस पशुकी पूजा करता है। देहरी (पंडित) और चरवाहोंको भोजन दिया जाता है तथा दक्षिणा प्राप्त कर देहरी उस गृहस्थको गाँवका 'भाग्यवान्' व्यक्ति घोषित करता है।

काँचि जिअरी-पूजा—इस पूजाका आरम्भ संध्या-समयके बाद होता है। गृहिणियाँ अपने-अपने घरमें 'तुलसीचौरा'पर तथा गोबर-गढ़ा-कुआँपर साल अथवा कटहलके पत्तोंपर विशेष रूपसे आटेके बने प्रदीप जलाती हैं और इन प्रदीपोंके पास भड़दा (मोथा) घासकी छोटी-छोटी आँटियाँ रखकर प्रणाम करती हैं। इसे जादू-क्रिया माना जाता है। विश्वास किया जाता है कि इस क्रियाके परिणाम-स्वरूप पुरुखोंकी आत्माएँ घरोंकी रक्षा भूत-प्रेतोंसे करती हैं। इस पूजा-अनुष्ठानको ही 'काँचि जिअरी' कहा जाता है।

गोहाल-पूजा—'गोहाल' उस स्थानको कहा जाता है जहाँ गौवें और बैल बाँधे जाते हैं। यह पूजा उस स्थानको भूत-प्रेतसे मुक्त रखने-हेतु की जाती है। हर घरसे एक गाय और एक बैल चुनकर उन्हें 'श्री-गाय' और 'श्री-बैल' की मर्यादा दी जाती है। गोहालको लीप-पोतकर गाय-बैलको पूरबकी ओर मुँह करके खूँटेसे बाँध दिया जाता है। गृहिणियाँ नववस्त्र धारणकर धान, दूर्वा, हल्दी, जल, आम्र-पल्लव आदिसे उनका अभिषेक करती हैं। तत्पश्चात् नये बाँसके सूपमें चावल (अक्षत) रखकर पशुओंकी पूजा की जाती है, नैवेद्य अर्पित किये जाते हैं।

नृत्य-गीतकी रात—नृत्य-गीतकी रात भगवान् पशुपतिके गणोंकी रात होती है। गोहाल-पूजनके समाप्त होते-होते चरवाहोंकी टोली ढोल-नगाड़ोंके साथ 'ओहरिया' गीत आरम्भ कर देते हैं। कब रात आयी, कब बीत गयी, पता भी नहीं चलता। गृहस्थ 'धांगड़िया'का स्वागत आदर-भावसे करते हैं। इस रातको 'माछी खेदा' गोरू-जागरणकी रात भी कहते हैं। गृहस्थ अपने गोहालके एक बैलके पुट्ठेपर 'टीटेम' अर्थात् 'गण-चिह्न' अङ्कित करते हैं।

गोरैया-गोसाईं-पूजा—गृहस्थ अपने कृषि-यन्त्रोंकी पूजा करते हैं और तब आरम्भ होती है 'गोरैया-गोसाईं-पूजा।' तालाबके पाससे मिट्टी लाकर उसका गोला बना लेते हैं और उसमें 'सालुकफूल' (कमलिनी) खोंसकर 'गोरैया-गोसाईं' की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। आज पुनः गोहालकी सफाई, लिपाई-पोताई होती है तथा अल्पनासे सजाया जाता है। कोई बाहरी पशु पाँव रख न दे, इस कारण पूजा समाप्त होते ही गोहालके ही बछड़ेको ऊपरसे गुजरने दिया जाता है, ताकि पवित्रता नष्ट न हो।

बूढ़ी बाँधना—इस क्रियाके द्वारा पशुओंको आत्मबल तथा आत्म-रक्षाका प्रशिक्षण दिया जाता है। मजबूत खूँटोंसे बँधे पशुओंपर मृत बाघका चमड़ा फेंका जाता है। ढोल-नगाड़ोंसे कर्णभेदी ध्वनियाँ प्रसारित की जाती हैं। गलेमें बँधी घंटिया, घुँघरू आदि गूँजने लगते हैं, तब पशु मृत चर्मको अपने सींगोंपर क्रोधमें भरकर उछालते हैं। इस प्रकार जंगलमें बाघ या अन्य जंगली जानवरोंसे अपनी रक्षाका दाँव-पेंच गाय-बैल सीखते हैं।

सप्ताहभर चलनेवाले इसी 'सोहराई' के त्यौहारको बिहारके वनाञ्चलमें 'गोपूजन' का उत्सव मानते हैं। यह उनके धार्मिक विश्वासोंका ही नहीं, अपितु 'पशुधन'की पूजा और भोलेबाबा पशुपतिनाथके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा एवं भक्तिका भी त्यौहार है।

एक गाय अपने अमृत-तुल्य दूधसे २५७४० मनुष्योंको तृप्त करती है और बैल २५६०० मनुष्योंको भोजन देता है। क्या ये वध करने योग्य हैं ?

—स्वामी दयानन्दजी सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थानी लोक-साहित्यमें गोरक्षा

(श्रीउदयवीरजी शर्मा, एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यरत्न)

राजस्थानी लोक-साहित्यमें गायके गीतोंका गुंजन भलीभाँति सुना जा सकता है। गीत, हरजस, लोककाव्य, कहानी, बात आदि सभी विधाओंमें गायका महत्त्व प्रकट हुआ है। यहाँके महावीरोंने गायके रक्षार्थ अपने प्राणोंका उत्सर्ग किया है, जिनमें 'पाबूजी', 'तेजाजी' और 'पिरथीराज' ने विशेष स्थान प्राप्त किया है। गायमें एक प्राण होनेसे ही उनको देवत्व प्राप्त हुआ। यहाँके जनमानसने इन देव-पुरुषोंके गीत गा-गाकर इन्हींका यशोगान नहीं किया है, अपितु गोरक्षार्थ सत्यप्रणको धारण करनेकी प्रेरणा देकर जन-जनके मनोबलको वर्धित किया है। गौके गौरव-गानसे कभी कोई अघाया नहीं है।

यहाँ गोभक्त एवं लोकपूजित देव 'पाबूजी', 'तेजाजी' तथा 'पिरथीराज'से सम्बन्धित जन-काव्योंमेंसे 'गोरक्षा' के प्रसंगोंको संक्षेपमें प्रकट करनेकी चेष्टा की गयी है—

पाबूजी

पाबूजीका विवाह उमरकोटके सोढा सूरजमलकी पुत्री सोढीजीके साथ होना निश्चित हुआ था। पाबूजी बारात-सहित उमरकोट पहुँचे। पीछेसे जायलके जिंदराज खींचीने देवलकी गायें घेर लीं। पाबूजी तीन भाँवर ही ले पाये थे कि उनको गायोंके घेरे जानेकी सूचना मिली, सूचना मिलते ही पाबूजी भाँवर छोड़कर कालमीकी पीठपर गोरक्षार्थ सवार हो गये।

भाँवरोंके मध्यमें ही पाबूजीको जानेके लिये उद्यत देखकर सबका मन व्यथित हो गया। सबने उनको रोकनेकी पूर्ण चेष्टा की, परंतु सभी विफल रहे। उन सबको पाबूजीने एक ही बात कहकर निरुत्तर कर दिया कि उसका मस्तक गोरक्षार्थ बिक चुका है, देखिये—

चाल्यो छै भुरजालो पाबू बागै नै झड़काय,
कोई बागै कै बिलूमी छै पाबू की सासू सालियां।
कोई ओ भुरजाला म्हारी बाई सा में ओगढ़ काढ,
कोई थानै तो परणाबाजी म्हारी बीजी वाली डीकरी।
दूदां सिरसी उजली थारी बाई सा जुग-जुग रै मांय,
कोइ ओगणियो नहीं छै जी थारी बाई जी में गुण मोकला।
ओगड़ तो कहीजै जी सासूजी म्हारे माय,
कोई देवल तो चारण नै जी बेच्याया मसतक आपणा।

पाबूजीने गो-शत्रु जिंदराज खींचीको परास्त कर देवलकी गायोंको अपने प्राणोंकी बलि देकर भी रक्षा की। इसी पवित्र प्रण-पालनके कारण पाबूजीको देवत्व प्राप्त हुआ।

तेजाजी

पाबूजीके समान ही गोरक्षार्थ आत्मबलिदानका पावन प्रसंग लोकदेवता तेजाजीका है। गोहेतु प्राण देनेसे ही तेजाजी कृषकोंके देवता हो गये हैं।

एक बार तेजाजी अपनी ससुराल गये। लौटते समय मार्गमें एक गूजर महिलाने उनसे प्रार्थना की कि उसकी गायोंको घाड़ियोंने लूट लिया है। यह सुनते ही तेजाजी गोरक्षार्थ चल पड़े। तनिक भी विश्राम नहीं लिया।

गोभक्त तेजाजीने शीघ्र ही घाड़ियोंको जा पकड़ा। उनको खूब फटकार बतायी। उनकी फटकारकी वाणीके ओजका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

को कांकडिये हूँ ढलता रै घाड़या नै घिण में नावड़यो,
मांडो जी मांडो तेक घरण पर पाँव कुबदी पापीड़ो रै।
मांडो बी मांडो स्यात घरण पर पाँव रै।
कोई चढ़कै बी आयो है रै तेजी गायां को बारबी।
करिया थे करिया गजब घणा अन्याव दुसटी पपोड़ी रै,
करिया थे करिया गजब घड़ा अन्याव रै।
कोई भूखा तो मरता रै डीडा वै बालक बाछड़ा।

घाड़ियोंको ललकार सुनकर क्रोध आ गया। वे मैदानमें डट गये। तेजाजी शेर थे। उन्होंने तो घाड़ियोंको ललकारा ही था। दोनों दल आमने-सामने आ डटे। खाँड़े खड़कने लगे। घमासान युद्ध हुआ। तेजाजीका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। एक तिल रखनेको भी स्थान आहत होनेसे नहीं बच पाया। तेजाजीका बहादुर घोड़ा भी घायल हो गया। दोनोंकी वीर देहोंसे रक्तके नाले बह निकले। तो भी तेजाजीने गायोंको घाड़ियोंसे मुक्त कराकर अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमामें सुरक्षित प्रविष्ट करा ही दिया। देखिये—

म्होड़ी जी म्होड़ी पूठी सगली गाय कंवर तेजाजी रै।
म्होड़ी बी म्होड़ी पूठी सगली गाय रै।
कोई सहर तो पनेरा कै मारगिये पूठी हांक दी।
कटग्यो जी बढ़ग्यो तेजै के रो गात कंवर तेजाजी रै।
कटग्यो बी कटग्यो तेजै को बी सो गात रै।
कोई तिलड़ो तो घरवानै रै अछूती देही ना रही।
कटग्यो जी कटग्यो लिलड़ा को बी गात कंबर तेजै कै रै।
कटग्यो बी कटग्यो लिलड़ै को बी गात रै।
कोई रगत का परनाला रै दोन्या का सागै छूटरया।
पूंच्यो जी पूंच्यो जद कांकड़ कै मांय कंवर तेजोजी रै।
पूंच्यो जी पूंच्यो जद कांकड़ कै मांय रै।
कोई खाय बी तिवालो तेजो धरणी पर ढै पड़यो।

तेजाजीका वीरत्व गोरक्षाकर देवत्वको प्राप्त हो गया। इस पुण्यकार्यकी गङ्गामें जिस-जिसने गोते लगाये, वही पुण्यात्मा देवत्वको प्राप्त हो गया।

पिरथीराज

पिरथीराज जाखल, झाझड़िया और तेजाजी मूँड गोत्रके जाटोंके इष्टदेव हैं। इनका वर्षमें दो बार श्रावणी तीज एवं गणगौरके दिन सिरोही (नीमका थाना) में मेला लगता है। कुलदेवताके रूपमें इनका जागरण किया जाता है। इन पिरथीराजजीने गायोंके रक्षार्थ अपने प्राणोंका बलिदान कर दिया और ये देवत्वको प्राप्त हुए।

जब घामा मालिनकी गायोंको बल्लू भारूँ बाघो और बिलासो नामक घाड़ियोंने खदेड़ दिया तो वह पिरथीराजके पास अनुनय-विनय करने आयी। पिरथीराज सुनते ही तत्काल गायोंको घाड़ियोंसे मुक्त करवानेके लिये चढ़ दौड़े। शीघ्र ही घाड़ियोंको जा पकड़ा।

घाड़ियोंने पिरथीराजको कोई सामान्य मानव समझा। इसलिये एकाध गाय ले जानेके लिये कहा, परंतु पिरथीराज सच्चे वीर थे। वे दानमें नहीं भुजबलसे गायोंको प्राप्त करनेमें ही अपना गौरव मानते थे।

घाड़ियोंसे घमासान युद्ध हुआ। घाड़ी घायल हो गये और अपने-आपको पिरथीराजकी काली गाय बताया। इसपर पिरथीराजने घाड़ियोंको प्राणदान दिया और घामाकी गायोंको मुक्त करा लाये। इस प्रसंगको जन-काव्यकी पंक्तियोंमें पढ़िये—

पीथा उलटा हटगा रै मेरा भाणजा,
तेरी गुण भूलाना ऊपर कै मांय
आज छोड़या ते म्हानै जींवता।
जद तो गाय बी पिरथीराज लेर,
सारी घेरी चूणा की गाय
पिरथी ओ राजा घोड़ै मूंड़ै आगै लीनी गाय
आधीटै आतां कुंडयाली रैयगी,
आधीटै रहता रहगा काणो केरडो,
बानै सिटयोड़ा नै दीन्या छोड़ पिरथी ओ राजा।

मार्गमें काणा केरड़ा और कुंडयाली गायें रह गयीं। घामाके कहनेपर पिरथीराज उनको लानेके लिये पुनः सवार हुए और उन्हींके रक्षार्थ देवत्वको प्राप्त हुए।

इसी प्रकार समूचे राजस्थानी लोकसाहित्यमें ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जिनमें गोरक्षाके लिये संघर्ष, सफलता और आत्मबलिदानकी गाथाएँ उत्कीर्ण हैं। यह सब लिखनेका मन्तव्य यही है कि गाय हमारे जीवनमें रम गयी है। धार्मिक प्रतीकके रूपमें पूजित है। पुण्य प्रेरणा देनेके लिये गाय एक तीर्थ है, जिसकी परिक्रमा करके प्रत्येक हिन्दू अपने-आपको भाग्यशाली मानता आया है। गौके दर्शनमात्रसे संकट तथा पापका मोचन होता है, परंतु इसके लिये एकनिष्ठ-भावना होनी चाहिये। निष्ठायुक्त भक्ति ही फलदायक होती है।

किसीको कष्ट मत दो

'.......... यदि तुम अपने इन भाइयोंके प्रति पाप करते हो और उन गरीबोंके हृदयको आघात पहुँचाते हो तो सच मानो, तुम यह पाप स्वयं क्राइस्टके प्रति कर रहे हो। यदि मेरे मांस खानेसे मेरे किसी भाईको कष्ट होता है तो मैं संसारकी अन्तिम स्थिततिक केवल मांस खाना ही नहीं छोड़ता, बल्कि यह भी चाहता हूँ कि मुझसे किसी तरह भी किसी भी भाईको कष्ट न पहुँचे।' (कोरिन्थियन्स ८। १२-१३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी लोक-चेतनामें गोमहिमा

(डॉ० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, पी०ई०एस्०)

पंजाब भारतवर्षका एक कृषि-प्रधान क्षेत्र है। इस प्रदेशकी अधिकांश जनताकी आजीविका खेतीके सहारे ही चलती है। भले ही आज कृषि-कार्यके लिये ट्रैक्टरों, हारवेस्टरों तथा अन्य मशीनोंका प्रचलन खूब बढ़ गया है, फिर भी अधिकतर किसान खेत जोतने, कुओंसे पानी लेने और अपने सामानकी ढुलाईके लिये बैलोंपर ही निर्भर हैं। बिजली जवाब दे जाती है एवं मशीनें भी खराब हो जाती हैं, किंतु 'गो-वत्स' चाहे रूखा-सूखा खाकर जीता रहे और चाहे थका-माँदा तथा बीमार भी हो, वह कभी अपने मालिकको धोखा नहीं देता। इसीलिये पंजाबके ग्रामीण और नगरवासी गौ माता एवं उसकी संतानके उपकारोंके प्रति सदैव कृतज्ञ रहते हैं।

पंजाबके गोपूजन-पर्वका स्वरूप

(क) गोवत्स-द्वादशी—भारतके कई भागोंमें 'गोवत्स-द्वादशी' का पर्व कार्तिक कृष्णा द्वादशीको मनाया जाता है, किंतु पंजाबमें इसे भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी द्वादशीको मनानेकी प्रथा है। पंजाबके गुरदासपुर जिलेमें इसे 'गौ-बच्छा-पूजन' का त्योहार कहा जाता है। स्त्रियाँ इकट्ठी होकर किसी मन्दिरमें जाकर वहाँ खड़ी हुई गायों तथा खड़े बछड़ोंको रोली-चावल लगाकर गेहूँके आटेके पेड़े भेंटकर नमस्कार करती हैं।

पंजाबके पटियाला जिलेमें भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी द्वादशीको मनाये जानेवाले त्योहारका नाम 'बन्न दुआ' है। उस दिन सुबह ही घरके पुरोहितजीकी पत्नी घासका एक मुट्ठा यजमानके यहाँ दे जाती है। नहाने-धोनेके बाद परिवारकी सबसे बड़ी महिला घरके आँगनको गायके गोबरसे लीपकर चिकनी मिट्टीके सहारे घासके मुट्ठेको खड़ा कर देती है। 'बन्न दुआ' की पूजाके लिये गृहलक्ष्मी पहलेसे ही चावल भिगो रखती है। फिर गीले चावलोंको कूट-पीसकर उसमें घी और चीनी मिलाकर छोटे-छोटे लड्डू बना लेती है। यदि किसी कारण लड्डू न बँध पाये तो वह उसमें गायका दूध भी मिला लेती है।

अब कुटुम्बके सभी प्राणी घासके मुट्ठेके चारों ओर बैठ जाते हैं। चढ़ावेके रूपमें कुछ लड्डू 'बन्न दुआ' के आगे धर दिये जाते हैं। तदनन्तर गृहलक्ष्मी एक लड्डू बायें हाथमें पकड़ लेती है और पास ही रखी दहीकी कटोरीमें लड्डूका एक टुकड़ा डुबाकर सबसे पहले अपने बड़े बेटेको खिलाती है। इसके बाद अन्य बेटों और बेटियोंको। हर बार ऐसा करते समय वह ये पंक्तियाँ अवश्य उच्चारण करती हैं—

पौह फुट्टी,
माँ तुट्ठी,
गोरी गाय ने बच्छा दिआ॥
बन्न चढ़ाया,
बन्न लाया॥
मुँह फुट्टी, गोरी गाय ने बच्छा दिआ॥

अर्थात् उषाकाल हो गया है। गोरे रंगकी गायने आज एक बछड़ेको जन्म दिया है। आज मैंने अपने बेटेके मुँहको (गायके दूधसे बने दही) 'फुट्टी' (थोड़ा-सा अंश) लगायी है। मैंने 'बन्न' (चावलके लड्डू) अर्पित किये हैं। आज मुझे उतनी ही प्रसन्नता है, जब मेरा बेटा बन्न (महावर) लगाकर दुल्हा बनेगा।

तदनन्तर पूजाके लड्डू ब्राह्मणी ले जाती है और घास गायको खिला दी जाती है।

(ख) गोपाष्टमी—यह पर्व कार्तिक शुक्ला अष्टमीको मनाया जाता है। पंजाबकी गृहलक्ष्मियाँ दीवालीपर बने पकवान 'गोपाष्टमी' और 'देवोत्थान एकादशी' के लिये सुरक्षित रखती हैं। गोपाष्टमीकी संध्यामें जब गौएँ चरागाहसे लौटती हैं तो स्त्रियाँ उन्हें फूलमालाएँ पहनाती हैं। रोली-चावलसे टीका लगाकर उन्हें मिठाई और गेहूँके आटेके पेड़े भेंट करनेके बाद नमस्कार करती हैं। कुछ महिलाएँ नगरकी गोशालाओंमें जाकर गौ माताओंको ही नहीं, बल्कि उनके बेटे-बेटियों (बछड़े और बछियों) को भी अपनी विनम्र भेंट अर्पित करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार पंजाबके दैनिक जीवन और विशेषत: त्योहारोंको मनाने तथा संस्कार-सम्पन्न करनेके अवसरपर दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र—इन पाँचों द्रव्योंकी महिमाका बोध करवाया जाता है।

पंजाबमें प्राय: गाय ब्यानेके बाद पहला दूध उसे तथा उसके बछड़े या बछियेको पिला दिया जाता है। दूसरी ओर तीसरी बारका इन दोनोंसे बचा दूध 'बौहली' कहलाता है। इस दूधको गर्म करके और उसमें शक्कर डालकर परिचितोंको सौगातके रूपमें भेजा जाता है। चौथी-पाँचवीं और छठी बारका दूध 'खीस' कहलाता है। बहुलीके कड़े दूधमें कुछ लचीलापन लिये हुए द्रव्यको ही 'खीस' कहा जाता है। इसके बादका दूध छिछड़ा हो जाता है। इसे 'छेड़ा' कहा जाता है। फटे दूधकी तरहका यह गर्म पदार्थ भी परिवारके लोग चीनी या शक्कर डालकर स्वादसे पीते हैं। फिर तो पारिवारिक प्रथाके अनुसार सप्ताह या महीनेका एक दिन निश्चित कर लिया जाता है। उस दिनको न तो दूध जमाया जाता है और न बिलोया ही जाता है। उस दिन घरमें पीनेके बाद जो दूध बचता है, उसकी खीर बनायी जाती है। चावलों और मेवोंसे भरी इस खीर बनानेकी तिथिको 'थेई' कहते हैं। पितरोंके नामपर 'थेई' की खीर ब्राह्मणोंको दे दी जाती है। यह खीर निकटस्थ सम्बन्धियों और मित्रोंके घर भी बाँटी जाती है। इसी प्रकार दही, छाँछ आदिके विभिन्न उत्सवोंमें यहाँके लोकजीवनमें परम्परागत रूप देखे जा सकते हैं।

पंजाबमें हर त्योहारपर फर्श या दीवारपर जो 'थापा' (देवस्थापनाका प्रतीकात्मक चित्र) बनता है, उसके लिये गायके गोबरकी पुताई आवश्यक मानी जाती है। आश्विनके नवरात्रमें 'साँझी' (गौर-रूप शक्ति) सजानेके लिये गायके गोबरकी माँग गो-पालकोंके घरोंमें कई सप्ताह पहले पहुँच जाती है। विजयादशमीके दिन पूजा-स्थलपर गायके गोबरके दस उपले रखकर पूजन होता है। दशानन लंकापति रावण और आश्विन शुक्ला दशमीके बोधक ये दसों उपले अगले दिन एकादशीको छतपर डाल दिये जाते हैं। बीस-बाईस दिनमें ये खूब सूख जाते हैं। भैया दूजकी सुबहको इन्हीं उपलोंको जलाकर और पानी गर्म करके नहानेका महत्त्व सभी पंजाबी परिवारोंमें माना जाता है।

पंजाबके लोकजीवनमें गायके उपलोंके धुएँको कीटाणुनाशक और रोग-निवारक माना गया है। प्राय: लोग जिस कक्षमें प्रसूतिकाने बच्चेको जन्म दिया है, उस प्रसूति-कक्षमें गायके गोबरके सूखे उपलेको जलाकर किसी अँगीठीमें रख लेते हैं। यदि कोई बाहरका व्यक्ति वहाँ आता है तो उसपर गूगल डाल दी जाती है। पंजाबी महिलाएँ कहा करती हैं कि इस धुएँसे आगन्तुकके साथ आनेवाले बाहरके कीटाणु मर जाते हैं। इससे प्रसूति-कक्षमें लेटे जच्चे और बच्चेको कोई हानि नहीं पहुँचती। भाद्रपद कृष्ण नवमीको पंजाबमें 'गूगा-नवमी' का लोकपर्व मनाया जाता है। उस दिन भी रसोईमें गायका उपला जलाकर गायका घी, गुड़ और हल्दी डालकर धूनी दी जाती है। आज भी पंजाबके गाँवोंमें जच्चाको गोमूत्र पिलानेका रिवाज है। वयोवृद्धाएँ कहा करती हैं कि इससे स्त्रीके गर्भाशयका सारा मैल शीघ्र धुल जाता है।

ऐतिहासिक एवं सामाजिक मान्यताएँ

अंग्रेजोंके साम्राज्य-कालमें नामधारी सम्प्रदायके सिक्खोंने गो-हत्याके विरोधमें तीव्र आन्दोलन किया था। गोरक्षाके लिये उन वीरोंका महान् कार्य भारतीय इतिहासमें 'कूका-लहर' के नामसे स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है। आज भी पंजाबमें ऐसे गोप्रेमी सम्पन्न महापुरुष हैं जो कि बूढ़ी गाय या उसकी संतानको बेचना पाप समझते हैं। वे जिस जरूरतमन्दको बछड़ा या बछिया बिना मूल्य देते हैं, उससे वचन ले लेते हैं कि वह गौकी संतानको किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचने देगा। ऐसे गोभक्त, नि:स्वार्थकी मूर्ति एवं मातृत्वसे परिपूर्ण जीवको, प्रतिदिन गोग्रास भेंट करके उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेसे कदापि नहीं चूकते।

गौका स्पर्श करने, ब्राह्मणको नमस्कार करने और गुरुदेवताका भलीभाँति पूजन करनेसे गृहस्थ सारे पापोंसे छूट जाते हैं। (स्क०, प्रभास०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमाञ्चल-प्रदेशका माल-पूजा-उत्सव

(डॉ० श्रीविद्याचन्दजी ठाकुर, व्युत्पत्तिविद्)

भारतीय सनातन गोसेवाकी परम्पराके अनुरूप हिमाञ्चल-प्रदेशके कृषि-प्रधान समाजमें भी गौ एवं गोवंशको पूरा सम्मान प्राप्त है। इस सम्मानकी अभिव्यक्ति यहाँके गोवंशकी माल-पूजामें स्पष्ट मुखरित होती है।

आश्विन मासकी पूर्णिमाके दिन माल-पूजाका त्योहार मुख्यतः हिमाञ्चल-प्रदेशके कुल्लू, मंडी, शिमला और सोलन जिलेके अधिकतर क्षेत्रोंमें पूर्ण हर्षोल्लासके साथ मनाया जाता है। उस दिन गाय-बैल आदि पशुओंको प्रातः ही खेतोंमें चरनेके लिये छोड़ देते हैं। कुछ देर चराकर इन्हें घर ले आते हैं। घरके आँगनमें या किसी दूसरे खुले स्थानपर, सभी गाय-बैल, बछड़ी-बछड़ोंके खुरों और सींगोंमें घी या तेलकी मालिश करके उनके गलेमें फूलोंकी मालाएँ पहनायी जाती हैं। उसके बाद घरके प्रमुख पुरुष या स्त्रीद्वारा अक्षत-फूल आदि उपचारोंसे इनकी पूजा होती है, आरती उतारी जाती है।

कई स्थानोंपर पूजाके समय इन पशुओंपर अखरोट फेंकनेकी भी परम्परा है। अखरोट फेंकते हुए माला-मालाका शब्द उच्चारण किया जाता है। पशुओंके बीचमेंसे ज्यादा-से-ज्यादा अखरोट उठानेके लिये गाँवके बच्चोंमें खूब होड़ लग जाती है। इसके बाद पशुओंको पशुशालामें बाँधकर इन्हें छाँटा हुआ अच्छा चारा खिलाया जाता है। प्रायः विहूल वृक्षकी हरी पत्तियाँ और माषके हरे पौधे खिलाये जाते हैं।

प्रत्येक घरमें इस दिन अच्छे-अच्छे पकवान तैयार होते हैं। ग्वालोंके लिये एक विशेष प्रकारकी, कुछ बड़े आकारमें रोटी बनायी जाती है, जिसे 'गरेलू' कहते हैं। जब ग्वाले गायोंको लेकर वनमें जाते हैं तो वहाँ वे सब मिलकर गरेलूको आपसमें बाँटते हैं और बड़े हर्षोल्लासके साथ खाते हैं।

मालके त्योहारमें माल-पूजाके विशेष गीत भी गाये जाते हैं। मंडी और शिमलामें प्रचलित कुछ माल-गीतोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि माल-पूजाकी परम्परा पहले-पहल जालंधर-पीठके अन्तर्गत कुल्लू क्षेत्रसे प्रारम्भ हुई। वहाँसे इसका प्रचलन मंडी-सुकेतमें शुरू हुआ। सुकेतसे बछड़ी-बछड़ेके साथ गौ-माल दूसरी जगह जा पहुँची। एक लंबा गीत गाते हुए, इसमें यह कामना की जाती है कि अच्छी गोशालाओंमें हमारी गउएँ लाखों वर्ष अर्थात् बहुत लंबी उम्र जियें। माल-गीतके कुछ मुख्य बोल इस प्रकार हैं—

पैइला मालै कसी देशा आईयै,
कुल्लू जलंधर देशा आईयै,
साबड़ी सकेता देशा आईयै,
तेथ्यो मालै कनी लौवे आईयै,
बाछरू बछेरू लौवे आइयै,
धूप-धापै ओबरे लाईयै,
लाख-बरिशा तू जिऊ गाईयै।

काँगड़ा आदि निचले इलाकोंमें भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशी तिथिको 'बच्छ दुआ' नामक उत्सव मनाया जाता है। यह भी एक प्रकारकी माल-पूजा है। इसमें गायको बिल्वपत्र या भूर्ज-पत्रकी माला पहनाते हैं। एक छाजमें सूर्य, चन्द्रमा, गाय और बछड़ेकी आकृति बनाकर उनके बीच मीठा पेड़ा और छोटी-छोटी पिन्नियाँ रखते हैं। जिसे गौ-पूजाके समय गायको खिलाया जाता है।

गोवंशके सम्मानमें माल-पूजाके साथ-साथ अनेक स्थानोंपर गोवंशकी सुरक्षाके लिये ग्वालू देवता और बनाली देवीकी पूजा भी की जाती है। इनके पूजनमें गोवंशको सदैव नीरोग रखनेकी कामना की जाती है। इस प्रकार हिमाञ्चल-प्रदेशके लोक-व्यवहारमें अनेक प्रकारसे गायोंकी सेवा-पूजाका रिवाज बहुत समयसे होता चला आया है। यहाँके लोगोंका यह आस्था—विश्वास है और यह मानना है कि गोमाताकी प्रसन्नतामें उसकी सेवा-शुश्रूषासे सब काम सिद्ध हो जाते हैं और यही सेवा-पूजा उनके लिये वरदानके रूपमें बदल जाती है। यहाँके निवासियोंकी यह दृढ़ धारणा है कि गौमें अपार शक्ति निहित है, वह पवित्र है और जीवनीशक्ति प्रदान करती है। अतः सभीको जैसे भी बन पड़े गौका आदर करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्नाटक प्रदेशकी गोसेवाकी कुछ झलकियाँ

(विद्यावाचस्पति श्रीमती डॉ० रुक्मिणी गिरिमाजी 'प्रतिभा', एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

कर्नाटकके गृहिणियाँ सबेरे उठते ही मुखमार्जनके पश्चात् सबसे पहले घरके मुख्य प्रवेशद्वारकी देहलीको गोमयसे लीपकर उसपर रंगोंसे विभिन्न माङ्गलिक चिह्नों और अल्पनाओंसे चित्र-रचना करती हैं और देहलीको हल्दी, कुंकुम, अक्षत तथा फूल-मालासे अलंकृत करती हैं। उनका विश्वास है कि देहली और गोमयमें लक्ष्मीका आवास है। दूसरी बात यह है कि गोबरमें कीटनाशक गुण होनेसे कोई भी कृमि-कीट घरके अंदर नहीं आ सकते। यहाँके लोग बच्चोंमें होनेवाले बालारिष्ट-भीति तथा कुदृष्टि-निवारणके लिये गोमयसे उनके शरीरपर टीका लगाते हैं, जिससे सारा अनिष्ट दूर हो जाता है, कभी-कभी गोमूत्रसे स्नान भी करा लेते हैं। इस प्रदेशके विशिष्ट तीर्थोंकी नदियोंके तटपर या मध्यमें नदीके किसी भी चट्टानपर गौकी आकृति मिलती है। कभी-कभी यह किसी शिल्पीद्वारा उत्कीर्णित होती है और कभी अनादिकालसे निरन्तर पानीके बहते रहनेके कारण वह स्वयं बन जाती है। जो हो धार्मिक लोग नदीमें स्नान करके बड़ी कठिनतासे उसके पेटमें होते हुए इस पार आ जाते हैं और अपनेको धन्य मानते हैं।

गौके शरीरमें तैंतीस कोटि देवता वास करते हैं। इसी आस्था-विश्वासपर यहाँकी महिलाएँ बड़ी श्रद्धासे गौकी पूजा करती हैं। जहाँ बड़े-बड़े नगरोंमें साक्षात् गौ नहीं मिलती, वहाँ स्थापित देवप्रतिमाके चबूतरेपर मण्डपके सामने रंगोंसे गौका चित्र बनाकर विधिवत् उसकी पूजा करती हैं और प्रार्थना करते हुए कहती हैं—'हे गौ माता! मैंने तेरे सामने घीके दीप प्रज्वलित किये हैं। खानेके लिये हरी घास और पीनेके लिये निर्मल जल रखा है, स्वीकार करो। माँ! तेरी आँखोंमें सूर्य और चन्द्रमा हैं, सींगमें गोविन्द बसा है। नाकमें मुकुन्द है, जीभमें नारायण है। मुँहमें गोपाल कृष्ण तथा कानमें कनकदास और पेटमें विट्ठल हैं, पूँछमें भागीरथी है। थनमें सप्तर्षि और पादोंमें पाण्डव हैं। पीठपर ब्रह्माका सभा-मण्डप है। रोम-रोममें तैंतीस कोटि देवी-देवता हैं। हे माँ! बदरीनारायण, कांचीकी कामाक्षी देवी, मधुरैकी मीनाक्षीदेवी तथा काशीकी देवी विशालाक्षीके संनिधानमें गौका दान देनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है वह मुझे प्राप्त हो। सास-ससुरकी निन्दा करनेका पाप, पर-निन्दाका दोष और जितने भी पाप मैंने किये हैं वह सभी मेरे इस गोदानसे भस्म हो जायँ।'

चातुर्मास वैष्णवोंके लिये एक महान् पर्व है। कोई-न-कोई यति चातुर्मास्यका संकल्प करके एक जगहपर निवास करते हैं, निष्ठावान् वैष्णव आषाढ़ शुक्ला द्वादशीसे कार्तिक शुक्ला एकादशीतक नियमके साथ व्रतका आचरण करते हैं। उन दिनों यहाँकी स्त्रियाँ घरोंमें, मठों और मन्दिरोंमें रंगोंसे तैंतीस गौ-पद्मोंके साथ भगवान् विष्णुकी मूर्तिको चित्रित करती हैं। इसके लिये विशेष रीतिकी रंगोली तैयार करती हैं, जैसे किसी पहाड़में जाकर श्वेतवर्णके छोटे-छोटे कंकड़ लाकर उनके साथ यथाशक्ति मोतीके दाने और प्रवालकी मणि मिलाकर बहुत ही बारीकीसे कूटकर रंगोली बनाती हैं। इस रंगोलीसे चौकोना बनाकर उसके अंदर भगवान् विष्णुका चबूतरा, विष्णुपाद, शंख, चक्र, गदा, पद्म, स्वस्तिक, वृन्दावन, बाँसुरी, भेरी, तन्त्री आदि वाद्य, तैंतीस पद्म, श्रीरामका धनुष, सीताजीकी साड़ीका पल्ला, तुलसी-पौधा—इन सबको चित्रित कर पूजा करती हैं। गौ और वत्सकी सुन्दर आकृति चित्रित कर सबके साथमें इनकी विशेष पूजा करती हैं। इनका मानना है कि इस पूजासे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है।

सारे भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें विभिन्न रीतिसे गौकी महिमा गायी जाती है। भारतके ही नहीं, सारे विश्वमें गौ जनजीवनमें ओत-प्रोत है, आरोग्यके लिये, आर्थिक सबलताके लिये, धार्मिक कर्मोंके लिये गौ बहुत मुख्य और आवश्यक है। इस दृष्टिसे कर्नाटककी गोसेवा एवं गोपूजाका भी एक विशिष्ट रूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

'गोषु पाप्मा न विद्यते'

(श्री 'चक्र')

'कृष्णा चरने ही नहीं जा रही है! उसे पशुओंके साथ दूर ले जानेको कहिये!' मैं बात पूरी करूँ, इससे पहले दौड़ती-कूदती कृष्णा भड़भड़ाकर मेरी कोठरीमें घुस आयी। उसने जल्दी-जल्दी मुझे सिर, भुजा, पेट, पैरके समीप कई बार सूँघा और फिर शान्त खड़ी हो गयी।

कृष्णा आश्रमकी गाय है। बड़े प्रयत्नसे ढूँढ़कर लायी गयी है। उसके खुर, थन और जिह्वादि सब कृष्णवर्ण हैं। पूरे लक्षण हैं उसमें कृष्णा गौके। मैं भोजन करके उठता हूँ तो हाथ धोकर उसे दो रोटी देता हूँ। वह दूर भी चरती हो तो मेरे पुकारनेपर हिरनकी भाँति छलाँग लगाती आती है।

मुझे इधर कलसे ज्वर आने लगा है। साधारण मलेरिया है; किंतु चारपाई पकड़नेको तो उसने मुझे विवश कर ही दिया है। परंतु इस गायसे किसने कह दिया कि मैं रोगशय्यापर हूँ। कल प्रातः चरवाहेने उसे खोला तो सीधे दौड़ती मेरी कोठरीमें घुस आयी। तबसे आज अबतक उसे जैसे चारा-पानी रुचता नहीं है। चरवाहा बार-बार हाँक ले जाता है। बड़ी कठिनाईसे मेरे बार-बार पुचकारनेपर जाती है और पाँच-दस मिनटमें फिर दौड़ती हुंकार करती कोठरीमें आ खड़ी होती है। मुझे बार-बार सूँघती है और नेत्रोंसे अश्रु गिराती है। इसे चरने तो जाना ही चाहिये।

चरवाहा कृष्णाको फिर हाँक ले गया है और मुझे पड़े-पड़े स्मरण आ रहा है कि बचपनमें घरपर आठ-दस गायें थीं—हृष्ट-पुष्ट सुन्दर गायें। छोटे चाचा ही उन्हें चराते और उनकी सेवा करते थे। गायोंमें ही जैसे उनके प्राण बसते थे। एक बार किसी बातपर क्रोधमें आकर पिताजीने छोटे चाचाको एक थप्पड़ मार दिया। थप्पड़ लगा और तीन-चार गायोंने झटके देकर अपने रस्से तोड़ डाले। छोटे चाचा बड़े दृढ़ शरीरके और फुर्तीले थे। उन्होंने पिताजीको बिजलीकी तेजीसे भुजाओंमें उठा लिया और भूसा रखनेवाली कोठरीमें डालकर बाहरसे द्वार बंद कर दिया। गायोंको बड़ी कठिनाईसे वे फिर बाँध पाये। कोठरी खोलकर उन्होंने पिताजीसे कहा था—'भैया! इनके सामने मुझे मत मारना! ये पशु तो कुछ समझते नहीं। आज अनर्थ होते-होते बच गया।'

'इतनी कृतज्ञता गायमें होती है!' मैं अधिक सोच सकता तब, जब कृष्णा फिर न आ खड़ी होती। वह फिर आ गयी है। मुझे सूँघने लगी है। मैं उसके मुखपर हाथ फेरकर उसे समझानेकी चेष्टामें हूँ—'मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं ठीक हूँ। तुम चरने जाओ। तुम्हारा पेट गड्ढा बन गया है। तुम कलसे भूखी हो।' काश, वह मेरी बात समझती होती।

'किंतु गाय कुछ पानेकी भी कहाँ प्रतीक्षा करती है? वह तो केवल स्नेह देखती है!' कृष्णाको फिर चरवाहा ले गया है और मैं फिर सोचने लगा हूँ। रोगी मनुष्य खाटपर पड़े-पड़े दूसरा क्या करेगा। मैं सोच रहा हूँ उन दिनोंकी बात जब एक बड़े नगरके समीप रहता था, नगरसे बाहर एक मन्दिरके घेरेमें। प्रतिदिन नौ बजेके लगभग वहाँसे चलकर नगरमें आता कार्यालयमें और सायंकाल लौट जाता। एक मुसलमान घोसी अपनी गायें प्रातः चराने लाया करता था उधर। एक दिन मैंने समीप चरती एक बड़ी बछड़ीको पुचकार लिया। दो क्षण उसपर हाथ फेर दिये। दो गायें और पास आ खड़ी हुईं। उनकी गर्दन भी सहलायी। बस, उनसे जान-पहचान हो गयी। वे दूर भी चरती होती थीं और मैं नगर जानेके लिये निकलता था तो देखते ही दौड़ी आती थीं। मुसलमान घोसी युवक कहता था—'ये मेरे पास भी इस तरह दौड़कर नहीं आतीं।'

वहाँ बंदर बहुत थे। प्रायः सब लाल मुँहके ही थे। एक दिन एक मोटा लाल मुखका बंदर मुझे डरानेको झपटा; किंतु उसे एक बछड़ीने दौड़ा ही तो लिया। दूरतक दौड़कर जब वह पेड़पर चढ़ गया, तब भी वह उस पेड़के नीचे खड़ी रही क्रोधमें भरी। उसके सामने यह बंदर मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटने दौड़ता है, यह बात बछड़ीसे सहन नहीं हुई थी। मैं भला क्या देता हूँ इन सबको। मेरे पास देनेको वहाँ धरा भी क्या था। भोजन तो मैं नगरमें करके जाया करता था। किंतु गायको पदार्थकी उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी स्नेहकी है। यह सर्वदेवमयी—'देवता और भगवान् केवल भावके भूखे होते हैं।' गायके सम्बन्धमें भी यही बात कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है।

× × ×

'आप तनिक दूर ही रहिये! बहुत दुष्ट है यह बैल!' मुझे चेतावनी दी गयी। जिनकी गायका यह बछड़ा है, वे तंग आ चुके थे। नाथमें दो लंबी रस्सियाँ बँधी थीं। दो व्यक्ति उन रस्सियोंको दोनों ओरसे पकड़कर तब उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर करते थे। बाँसमें लटकाकर दूरसे उसे घास डाली जाती थी। अब वह बैल गाँव भेज देनेको मेरे पास आया था। ऊँचा, असाधारण बलिष्ठ और क्रोधी बैल।

'गोजाति निर्दोष होती है। लगता है कि इसे बहुत तंग किया गया है।' मेरे मनने कहा। बच्चे प्राय: छोटे बछड़ोंको छेड़-छेड़कर उन्हें मारना सिखा देते हैं। इस बैलके सांथ भी यही हुआ था। मैंने थोड़ी हरी घास हाथमें ली और बैलकी ओर वह मुट्ठी बढ़ा दी। बैलने फुंकार की; किंतु घास वह खाने लगा। दूसरी मुट्ठी मैंने कुछ निकट जाकर दी। फुंकार ढीली पड़ गयी। उसी शाम मैं उसके पास खड़ा उसपर हाथ फेरने लगा था और वह मुझे सूँघ रहा था। एक सप्ताहमें उसकी नाथमें रस्सी बाँधना अनावश्यक हो गया। कोई बच्चा उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर नि:शंक बाँध सकता था।

'कृष्णा!' उस दिन यह अपनी कृष्णा ही बिफर गयी थी। गर्मियोंमें इस ओर पशु बाँधे नहीं जाते। कृष्णा भी कई महीने बँधी नहीं थी। रात्रिमें दूसरे पशुओंके साथ गोशालामें बंद कर दी जाती थी। वर्षाके प्रारम्भमें खेतमें पशु बाँधनेकी बात हुई। दूसरे पशु बँध गये किसी प्रकार; किंतु कृष्णाको जब बहुत दौड़ाया—तंग किया गया तो वह बिफर उठी। अन्तमें मुझे पुकारा गया। मैंने जाकर तनिक रूखे स्वरमें डाँटा—'कृष्णा! तुम यह क्या करने लगी हो? तुम माता होकर मारने दौड़ती हो! छि:!' गायने जैसे मेरी बात समझ ली। वह मेरे पास आकर चुपचाप खड़ी हो गयी। उस रात वह बाँधी नहीं गयी; किंतु पूरी रात मेरे तख्तेके समीप बैठी रही।

गाय हो या बैल गोजाति मानधनी है। देवता सम्मानप्रिय होते हैं ही। कोई-कोई पशु अत्यधिक भावुक होता है। आप उसको छेड़ेंगे, उसके प्रति असम्मान दिखायेंगे तो उसमें क्रोध आयेगा। इस प्रकार वह सबसे सशंक, सबको मारनेवाला बन जायगा। किंतु उसमें हिंसाकी वृत्ति नहीं है। वह स्वभावसे निष्पाप है। अपराध उसे स्पर्श नहीं करते।

यह गाय दूध भरपूर देती है; किंतु इससे सावधान भी बहुत रहना पड़ता है! एक अच्छे गोसेवकके यहाँ जब मैं गया तो उन्होंने अपनी एक गाय दिखलाते हुए बतलाया—'इतना क्रोधी पशु मुझे कभी नहीं मिला है।'

'माँ! बात क्या है? तुम मारोगी मुझे?' वे गायोंसे प्रेम करते हैं। उनपर भी कोई गाय मारने झपटती है, यह बात मुझे अटपटी लगी। मैं उस गायके पास ही चला गया। मारना ही हो तो वह मुझे पूरी चोट पहुँचावे, जिससे उसमें पश्चात्ताप तो जागे। किंतु गायने सिर हिलानेके स्थानपर मेरा हाथ चाटना प्रारम्भ कर दिया।

'आपपर यह प्रसन्न है!' वे समीप आने लगे तो गाय सचमुच उन्हें मारने झपटी। बात प्रकट हो गयी, दुहते समय पैर बाँधकर उसे बहुत तंग किया जाता था। अपना अपराध जब वे समझ गये, गोमाताको सानुकूल होनेमें कितने दिन लगने थे। केवल एक समय दूध नहीं मिला। दूसरे समय गायने स्वयं पैरमें रस्सी लगा लेने दी। दूध थनमें रहनेसे उसे भी तो कष्ट हो रहा था।

× × ×

गायके सबसे बड़े प्रभावका पता तो मुझे नहीं है; क्योंकि उसके अपार प्रभावका अनुमान कर पाना ही सम्भव नहीं। वह कामधेनु है—श्रद्धा-सेवित होनेपर प्रत्येक गाय कामधेनु है। किंतु मुझे गायने एक अद्भुत महिमा जाननेका अवसर अवश्य एक बार दिया है।

एक वृद्ध महात्माके दर्शन करने गया था। अब वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ हैं—है भी उनका शरीर या नहीं, पता नहीं। उनके पास और भी कुछ लोग बैठे थे। मैं भी प्रणाम करके बैठ गया। इतनेमें एक रोगीको लेकर दो-तीन व्यक्ति आये। रोगी स्त्री थी, युवती थी और अत्यन्त पीडामें थी। उसके पूरे शरीरमें भयंकर ऐंठन थी। हाथ, पैर, सिर सब अकड़े जाते थे। चीखती थी, छटपटाती थी। उसका क्रन्दन किसीका भी हृदय हिला देता।

'सब कर्मका भोग है।' महात्माने शान्त स्वरमें कहा—'अपने पापकर्मका फल अपने ही सिर तो आयेगा। किंतु इसकी पीडा बहुत घट जायगी, यदि किसी निष्पापकी चरणरज इसके शरीरमें लगा दी जाय।'

उस व्यक्तिने, जो स्त्रीके साथ आया था, महात्माजीकी ही चरणरज उठायी तो वे बोले—'नारायण! इस धूलिमें क्या धरा है। यह तो पापोंका पुतला है। वेश देखकर भ्रममें पड़नेसे कोई लाभ तुम्हें नहीं होगा।'

स्वार्थ अन्धा होता है। उस व्यक्तिने वह चरणरज उस स्त्रीको लगायी; किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। अब वहाँ बैठे सभी लोगोंने महात्माजीसे ही पूछा—'निष्पाप पुरुष कहाँ मिलेगा?'

'निष्पाप मनुष्य या निष्पाप प्राणी?' मैंने पूछ लिया; क्योंकि महात्माजी भी निष्पाप मनुष्यका पता जानते होंगे, ऐसा कोई संकेत उन्होंने नहीं दिया।

निष्पाप प्राणी हो तो भी ठीक है; किंतु महात्माजीने कहा—'नारायण, मनुष्य ही निष्पाप नहीं होगा तो पशु-पक्षी कहाँसे निष्पाप होंगे, वे तो कर्मयोनिमें हैं ही पापभोगके लिये।

'अपने पाप वे भोगते हैं। किंतु उनमें एक प्राणीका शरीर शास्त्र निष्पाप तथा परम पवित्र कहता है।' मैं उठ खड़ा हुआ था—'यह गाय सर्वथा निष्पाप है।'

पासमें एक बूढ़ी गाय चर रही थी। उसके खुरोंके चिह्नकी धूलि मैं उठा लाया और गायकी महिमा उसी समय मुझे देखनेको मिली। उस स्त्रीका चिल्लाना-रोना धूलि लगाते ही बंद हो गया। महात्माजी उठकर उस बूढ़ी गायको भूमिमें पड़कर दण्डवत् प्रणिपात कर रहे थे।

हुमायूँकी गोमांससे घृणा

मुगल बादशाह हुमायूँके खास नौकर 'जौहर'ने हुमायूँकी कुछ स्मरणीय बातें फारसीमें लिखकर रखी थीं। उनका अंग्रेजी अनुवाद करके मेजर चार्ल्स स्टुअर्टने सन् १९०४ में प्रकाशित किया। उस अनुवादित ग्रन्थके ११०वें पृष्ठपर लिखा है—

'एक बार ईरान जाते समय हुमायूँको दिनभरमें एक बार भी खानेका अवसर नहीं मिला। रातके समय पड़ावपर पहुँचनेपर उन्हें बड़े जोरोंकी भूख लगी। उन्हें पता चला कि उनके सौतेले भाई कामरान और मा रायकी बेगमका पड़ाव भी निकट ही है। यह जानकर हुमायूँने अपने नौकरोंको भेजकर कामरानके पाससे कुछ भोजन मँगवाया। भोजनमें थोड़ी साग-तरकारी और कुछ मांसके पदार्थ थे। बादशाह थालपर बैठ तो गये; किंतु सहसा उन्हें एक शंका हुई कि हो सकता है इस भोजनमें गोमांस हो। उन्होंने बढ़ाया हुआ हाथ खींच लिया और पूछ-ताछ की तो पता चला कि उसमें गोमांस ही है। इसपर हुमायूँ उद्विग्न होकर बोल उठे—'हाय रे कामरान! पेट भरनेका तेरा यही रास्ता है? अपनी पवित्र माको तू यही गोमांस खिलाता है? कामरान! हमारे पिताकी कब्रको झाड़ने-बुहारनेवालोंतकके लिये गोमांस खाना अनुचित है। पिताजीने जिस तरह अपने कुटुम्ब-कबीलेवालोंका गुजर किया; क्या उसी तरह हम चारों पुत्र नहीं कर सकते?' ऐसे खेदपूर्ण उद्गार प्रकट करते हुए बादशाहने उस भोजनके थालको बगलमें सरका दिया और केवल एक गिलास शरबत पीकर ही वह रात काटी। दूसरे दिन उन्हें भोजन मिला।

उपर्युक्त घटनासे यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि भारतसम्राट् मुगल बादशाह हुमायूँ गोमांस-भक्षणके कितने विरोधी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोभक्तोंके आख्यान

एक जर्मन महाशयकी गोभक्ति

जब जर्मनमें एक महाशयने गौसे सम्बन्धित भारतके कुछ शास्त्र एवं गौकी महिमाके प्रति शास्त्रोंमें पढ़ा तो उनका मन गौकी भक्तिके प्रति आकृष्ट हो गया और वे गौकी सेवाके लिये जर्मनीकी अपनी पूरी सम्पत्ति बेचकर भारतमें घूमते-घूमते आगरा पहुँचे। मथुरा भी गये, वहाँ उन्होंने एक गाइडसे सुलक्षण-युक्त गाय खरीदनेके लिये बात की एवं गौकी सेवाके प्रति चर्चा की तो गाइडने मथुराके किसी पंडेसे उनका परिचय करा दिया और पंडाजीने जर्मन महाशयको एक सुन्दर सुलक्षणा गौ खरीद दी। जर्मन महाशय गौ लेकर आगराके आस-पास गौ चराने लगे एवं उसकी खूब सेवा करने लगे। उन्होंने अपने लिये खाना बनाने एवं अन्य काम-काजके लिये एक ख़ानसामाँ जो मुस्लिम था, नौकर रख लिया। वह जर्मन महाशयको खाना बनाकर खिला देता था एवं उनकी अन्य सेवा भी करता था और वहीं उनके घरपर ही रहता था। इस बीच जर्मन महाशयको आगरामें एवं शहरके आस-पास गौकी सेवा करने एवं गौके चरानेमें दिक्कत महसूस होने लगी तो उन्होंने आगरासे दूर—मथुरासे भी कुछ दूर यमुना-किनारे एक छोटा-सा जंगल खरीद लिया। जर्मन महाशय गौ और ख़ानसामाँके साथ उसी जंगलमें रहने लगे।

जर्मन महाशयकी अत्यधिक गोभक्ति तथा रात-दिन उसीके साथ रहने और अन्य कोई कार्य न करने इत्यादिको देखकर ख़ानसामाँको यह लगने लगा कि 'एक सामान्य जानवरके पीछे ये इस तरह अपना सब कुछ छोड़कर लगे हुए हैं और सारे दिन जंगलमें गायके साथ ही लगे रहते हैं, लगता है कि ये पागल हो गये हैं।' दिनभर गायके पीछे-पीछे क्या करते हैं, यह जाननेकी जिज्ञासा ख़ानसामेके मनमें हुई। अत: एक दिन ख़ानसामाँ खाना लेकर जर्मन महाशय जहाँ गौ-चारण कर रहे थे, लुकता-छिपता हुआ जर्मन महाशयके निकट कुछ घने झाड़ीदार पौधोंकी ओटमें छिपकर बैठ गया और उसने देखा कि जर्मन महाशय घुटनोंके बल बैठे हुए हाथ जोड़कर गौसे कुछ प्रार्थना कर रहे हैं। यह क्रिया कुछ देर चलती रही और ख़ानसामाँ यह सब देखता और सुनता रहा। जर्मन महाशय बार-बार गौसे रो-रोकर कुछ पूछ रहे थे। कुछ देर बाद गाय छायामें जाकर बैठ गयी, परंतु जर्मन महाशय फूट-फूटकर रो रहे थे। इतनेमें ख़ानसामाँने नजदीक जाकर जर्मन महाशयको शान्त किया और उन्हें खाना खिलाया। कुछ ही दिनोंके बाद गायने एक बछियाको जन्म दिया। इसी बीच गाय देवलोक चल बसी।

कुछ दिन बाद जर्मन महाशय भी सभी सम्पत्ति—अपना जंगल, घर एवं बछिया जो अब गाय बन गयी थी और दूध देने लग गयी थी, उसे भी ख़ानसामाँको सौंपकर चल बसे। यह सब देखकर ख़ानसामाँ मुस्लिम होते हुए भी पक्का गौका भक्त बन गया।

कुछ दिन बाद श्रीजमनालालजी मथुरा-वृन्दावन दर्शन करनेके लिये यात्रापर आये और वहाँ उन्होंने यह सब वृत्तान्त किसीसे सुना तो वे अपने तीर्थ-गुरुको लेकर ख़ानसामाँवाले जंगलमें मौजूदा गायके दर्शनके लिये पहुँचे, ख़ानसामाँने सबका हार्दिक स्वागत किया और जमनालालजीने मौजूदा गायके दर्शनकी प्रार्थना की तो ख़ानसामाँ सबको, गाय जहाँ चरती थी वहाँ ले गया। मार्गमें ही ख़ानसामाँने ढाकके पेड़के पत्तोंसे ८-१० दोने बना लिये और गायके पास पहुँचकर सबको दोने दे दिये। गायके पास पहुँचकर ख़ानसामाँने हाथ जोड़कर सबसे प्रार्थना की कि मैं मुसलमान हूँ, मेरे हाथका कुछ भी खाना-पानी आप लेंगे नहीं, अतएव मैं अपनी गौ मातासे आपका स्वागत करने-हेतु प्रार्थना करता हूँ कि 'हे माता! अब तुम ही अपने घर आये सभी मेहमानोंका स्वागत करो।' सबसे ख़ानसामाँने गायके अमृतरूपी दूधका पान करनेके लिये प्रार्थना की। सबने अपने-अपने दोनोंको पास ही बहनेवाली यमुनाजीमें धोया एवं सबसे पूर्व जमनालालजीने गायकी परिक्रमा कर हाथ जोड़कर प्रार्थना की और वे अपना दोना थनोंके नीचे करके बैठ गये। गायके थनोंसे अमृत (दूध) अपने-आप झरने लगा। खूब भरपेट धारोष्ण दूध उन्होंने पिया। इसी प्रकार सभीने उसी प्रकार अमृतपानरूपी दूधका प्रसाद पाया। ऐसी अद्भुत सर्वदेवमयी गायके दर्शनकर सभी प्रसन्न थे।

यह देखकर सभी बहुत ही प्रभावित हुए। श्रीजमनालालजी अपनी यात्रासे वापस घर लौटे तो सर्वप्रथम अपने ही बगीचेमें उन्होंने एक गौशाला बनवायी एवं जीवनपर्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौकी सेवा करते रहे और वे अपने सम्पर्कमें आनेवाले तथा रहनेवाले सभीको गौकी सेवाका महत्त्व अपने श्रीमुखसे सुनाया करते थे।

इस प्रकार जर्मन महाशयकी घटनासे यह सिद्ध हो जाता है कि अगर हमें भी गौके प्रति पूर्ण श्रद्धा-भक्ति एवं विश्वास हो जाय तो उन्हींकी तरह हमें भी गौमें सर्वदेव-प्रतिष्ठित होनेका प्रत्यक्ष अनुभव एवं ज्ञान हो सकता है।

[प्रेषक—बी० श्रीमीठालालजी जोशी]

आदर्श गोभक्त सेठ शिवलदासजी

एक थे सेठ, नाम था शिवलदास। वे दानशील, संतसेवी, निर्मान, नम्र तथा अनेक सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें जो विशेष बात थी, वह यह थी कि वे गो-ब्राह्मणोंके बड़े ही भक्त थे। पाकिस्तान बननेसे पहले ही उनका बंबईमें कार-बार था। कराचीमें नित्य प्रात:काल स्वामी श्रीगोविन्दरामजीका सत्संग होता था, सेठजी स्वयं अपने परिवार तथा परिकरसहित सत्संगमें जाते थे। वे बड़े ही सात्त्विक विचारोंके थे।

मूलत: सेठजी पीरगोठ (पाकिस्तान)-के निवासी थे। वहाँ इन्होंने गौकी खूब सेवा की। ये भगवान् गोपालके भक्त थे, अत: गौओंसे इनका बहुत प्रेम था। सेठजीका नियम था, पहले गोपाल भगवान्‌को भोग लगाकर गोग्रास निकालकर पीछे स्वयं भोजन करना। वे भोजन करनेके पूर्व निम्न मन्त्रका पाठ करते हुए गौओंको ग्रास देते थे—

सुरभिस्त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता।
सर्वदेवमयी ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस॥

'हे जगदम्बे! तुम्हीं स्वर्गमें रहनेवाली कामधेनु हो। और तुम सर्वदेवमयी हो। मेरे द्वारा अर्पित इस ग्रासको ग्रहण करो।'

उन्हें शास्त्र-वचनोंपर बड़ी आस्था थी, शास्त्रोंमें आये इन वचनोंपर उनकी पूर्ण आस्था और अटूट विश्वास था—'जो एक वर्षतक प्रतिदिन भोजनके पहले दूसरेकी गायको एक मुट्ठी घास खिलाता है, उसका वह व्रत समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। उसे पुत्र, यश, धन और सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है तथा उसके सम्पूर्ण अशुभ और दु:स्वप्न नष्ट हो जाते हैं।' (महा०,अनु० ६९। १२-१३)

'जो गोसेवाका व्रत लेकर प्रतिदिन भोजनसे पहले गौओंको 'गोग्रास' अर्पण करता है तथा शान्त एवं निर्लोभ होकर सदा सत्यका पालन करता रहता है, वह प्रतिवर्ष एक हजार गो-दान करनेके पुण्यका भागी होता है।'

'जो एक समय भोजन करके दूसरे समयके बचाये हुए भोजनसे गाय खरीदकर दान करता है, वह उस गौके जितने रोएँ होते हैं उतने गौओंके दानका अक्षय फल प्राप्त करता है।' (महा०, अनु० ७३। ३०-३१)

गौओंके चारे-पानी तथा उनकी सेवाका ये बहुत ध्यान रखते थे। गोसेवा इनकी जीवनचर्याका प्रधान अङ्ग था। पाकिस्तान बननेपर ये भारत आ गये। यहाँपर भी इन्होंने खूब तन-मन-धनसे गोमाताकी सेवा की तथा कई गोशालाएँ भी स्थापित कीं।

कोटा (राजस्थान)-में गोशाला-स्थापन करनेके लिये सेठजी स्वयं चंदा करने निकल पड़े। लोग सेठजीके स्वभावसे परिचित थे, उन्होंने गोमाताकी सेवाके लिये यथाशक्ति चंदा दिया। इसी प्रसंगमें एक दिन शिवलदासजी एक अपरिचित धनीके पास पहुँचे। गोसेवाकी महिमा बताकर चंदेके लिये उन्होंने प्रार्थना की। उस धनवान्‌के पास धन तो खूब था, किंतु उदारता बिलकुल नहीं थी। सेठजीके कई बार आग्रह करनेपर भी उन्होंने कुछ नहीं दिया, तब सेठजीने उन्हें दानोंमें भी सर्वश्रेष्ठ दान—गोदान तथा गोसेवाकी महिमा बतलायी और उससे होनेवाले लौकिक तथा पारलौकिक लाभोंकी बात बतलायी, जिसे सुनकर वे कुछ तो पिघले, किंतु देना कुछ नहीं चाहते थे। तब सेठ शिवलदासजीने अत्यन्त नम्रताके साथ अपनी टोपी उतारकर उनके चरणोंमें रख दी और बोले—'गोमाताके लिये आज मैं भीख माँगने आया हूँ, कुछ-न-कुछ अवश्य दीजिये।' शिवलदासजीकी गोभक्तिका दृढ़ संकल्प देख वे भी प्रभावित हुए और अन्तमें उन्होंने बड़ी श्रद्धासे गोशालाके लिये दान दिया। शिवलदासजीके अथक परिश्रमसे कोटामें स्थापित वह गोशाला आज भी विद्यमान है।

—श्रीदरबार साहब, भाई परसरामजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीवाँके गोभक्त नरेश

रीवाँ राज्यके बाघेलवंशीय नरेशोंकी राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें अपनी अलग एक परम्परा है। यहाँके नरेशोंका इतिहास बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रहा है। महाराज रघुराजसिंहजी तक इस भूभागका शासन-प्रबन्ध श्रुति और स्मृतियोंके आधारपर होता था। यहाँके नरेश क्षत्रिय होते हुए भी बड़े ही गोभक्त हुए हैं।

महाराज रघुराजसिंहजी (सन् १८५४—१८८०) की धार्मिकताके उदाहरण इस देशके समस्त भूभागमें अद्यावधि वर्तमान हैं।

गोरक्षार्थ इन्होंने अपने राज्यभरमें उत्तम व्यवस्था कर दी थी। राज्यकी ओरसे गोचरभूमि नि:शुल्क दी जाती थी। तमाम अयोग्य और बूढ़ी गायोंके लिये इन्होंने राजधानीके एक कोनेमें गोघर (गोशाला) का भी निर्माण कराया था, जिसमें हजारोंकी संख्यामें गायें पाली जाती थीं और राज्यकी ओरसे उनके भरण-पोषणका उत्तम प्रबन्ध किया जाता था। मरनेपर गायोंको बोरों नमकके साथ गाड़ दिया जाता था। महाराज रघुराजसिंहजीकी मृत्युके समय गोघरमें सात सौ बत्तीस गायें थीं, जो ब्राह्मणोंको दानमें दे दी गयी थीं। इसी प्रकार इनकी दूसरी गोशाला गोविन्दगढ़में थी। इसमें दुधार गायें पाली जाती थीं और उनका दूध निरीह बच्चोंके पोषणके लिये बाँट दिया जाया करता था। महाराज रघुराजसिंहजी देवाराधनके पहले गोपूजा किया करते थे और जबतक अपने भोजनमेंसे गौको तृप्त नहीं कर लेते थे, तबतक भोजन नहीं करते थे। गोदुग्ध ही महाराजका विशेष आहार था। वर्षाके चार महीनोंमें तो वे गोदुग्धपर ही रहा करते थे। ब्राह्मणोंको जो गायें दानमें दी जाती थीं, उन्हें सब प्रकारसे अलंकृत किया जाता था और पूजनके अनन्तर ही उनके दानकी विधि थी। इतना ही नहीं, जिस ब्राह्मणको गाय दानमें दी जाती थी, उसे राज्यकी ओरसे उस समय एक बीघा गोचरभूमि भी दी जाती थी। शय्या त्यागते ही गोदर्शन ही उनकी प्रधान दैनिक कृति थी। इस तरह महाराज रघुराजसिंहजी अपने समयके बहुत बड़े गोभक्त नरेश थे।

इन्हीं महाराज रघुराजसिंहजीके पुत्र महाराज बेंकटरमणसिंहजी (सन्१८८०—१९१८) हुए। ये भी अपने पिताके अनुरूप ही गो-ब्राह्मण-भक्त नरेश थे। इनके समयमें रीवाँका गोघर महाराज रघुराजसिंहजीकी मृत्युके अनन्तर समाप्त हो गया। गोघरके कारण ही रीवाँका वह भाग 'घोघर' मोहल्लेके नामसे प्रख्यात हुआ। महाराज बेंकटरमणसिंहजीने गोविन्दगढ़की गोशालाको अधिक विकसित किया। इनके समयमें इस गोशालामें तेरह सौ गायोंका झुंड था, जिनका दूध निरीह बच्चोंमें प्रतिदिन बाँटा जाता था। राज्यके दक्षिणी भागमें भी बान्धवगढ़ दुर्गके पास ही महाराज बेंकटरमणसिंहने एक बहुत बड़ी गोशालाका निर्माण कराया था। गोशालामें गाय देनेवाले व्यक्तिको राज्यकी ओरसे अच्छा पुरस्कार भी दिया जाता था।

२३ नवम्बर १९१५ को जिस समय महाराज बेंकटरमणसिंह हरिहर क्षेत्र गये हुए थे और उनका शिविर भी वहीं था, रातको उन्हें नालेके उस पार कसाईखानेका पता चला। महाराज बेंकटरमणसिंहजी रातको अपने सरदारोंके साथ एजेंट साहबसे मिले और मेलेसे कसाईखाना उठा देनेके लिये कहा।

मुसलमान कसाइयोंके बिगड़नेसे मेलेमें सनसनी फैल गयी, जिससे एजेंट साहब भी अपने कर्तव्यका निर्णय नहीं कर सके।

महाराज बेंकटरमणसिंह एक बहुत बड़े सैनिक नरेश भी थे, वे जहाँ कहीं जाते अपने चुने-चुनाये सैनिकोंके साथ ही जाते। एजेंट साहबकी बातोंसे निराश हो महाराजने प्रात:काल ही मेलेसे कसाईखाना उठा देनेका प्रण किया। महाराजके शिविरके सभी सैनिक सरदार प्रात:कालहीसे सब प्रकारसे उद्यत हो गये। जैसे ही कसाईखाना खुला और गायोंको वधस्थलमें ले जानेकी तैयारी हुई, महाराज बेंकटरमणजीने अपने घुड़सवार सैनिकोंके साथ कसाईखानेको घेर लिया। कसाइयोंको वधके लिये लायी गयी समस्त गायें महाराजके हाथों सौंप देनेके लिये कहा गया। कसाइयोंने इसका विरोध किया, जिससे महाराजके सैनिकोंने समस्त एक सौ पचीस गायोंको अपने अधिकारमें ले लिया और कसाईखानेको अस्त-व्यस्त कर दिया। महाराजकी दबंगता और बहादुरीके आगे अंग्रेज अधिकारी भी कुछ न कर सके। महाराजने पैंतीस रुपये प्रति गायके हिसाबसे समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायोंकी कीमत उन कसाइयोंको देकर गायोंको अपनी गोशाला रीवाँ ले जानेकी व्यवस्था की और इस तरह हरिहरक्षेत्रका कसाईखाना बंद हो गया।

२६ नवम्बर १९१५को महाराज बेंकटरमणसिंहजी अपनी राजधानी रीवाँ आये। इस महान् जीवन-यज्ञके उपलक्ष्यमें राज्यभरमें उत्सव मनाया गया। महाराज अपने जीवनपर्यन्त सदैव गोपालनमें तत्पर रहे, किंतु इनके मरते ही इनके पुत्र गुलाबसिंहजीके अल्पवयस्क होनेके कारण राज्यका शासनिक भार अंग्रेजोंने अपने हाथोंमें ले लिया था, जिससे राज्यकी गोशाला तोड़ दी गयी और गायें बेच दी गयीं।

जाम्भोजीकी गोसेवा

(श्रीमाँगीलालजी बिश्नोई 'अज्ञात', एम्० ए०, बी० एड्०)

जोधपुर राज्यके अन्तर्गत नागौरसे ५१ किलोमीटर उत्तरमें स्थित पीपासर नामक एक ग्राममें श्रीविक्रमादित्य नरेशकी इकतालीसवीं पीढ़ीमें श्रीलोहटजी नामक एक परम धार्मिक तथा गोसेवी संत रहते थे। उन्होंने आजीवन गोचारण तथा गोसेवा की। जब वे द्रौणपुरके छापर नींबीके रेतीले धोरोंमें गो-चारण-हेतु गये हुए थे और पचास वर्षकी उम्रमें भी पुत्र-प्राप्ति-लाभ न होनेसे चिन्तित तथा क्षुब्ध-अवस्थामें विचार-मग्न थे तो गोसेवाके ही चमत्कारसे ध्यानावस्थामें उन्हें लगा—'जैसे कोई उन्हें जल पिला रहा है।' आँखें खोलीं तो देखा—एक अवधूत-वेषधारी महात्मा सामने खड़े हैं और कह रहे हैं—'सामने खड़ी बछियाका दूध दुहकर लाओ।' आश्चर्य! दो बरसकी छोटी बछियाका दूध दुहनेको कहा जा रहा था! परंतु लोहटजी ज्यों ही आज्ञा-पालनके लिये दूध दुहने बैठे, त्यों ही परम आश्चर्यमें निमग्न हो गये। लोहटजीका दोहन-पात्र बछियाके स्तनोंकी स्वतः निःसृत दुग्ध-धारासे पलक झपकते भर गया। महात्माने उस दुग्ध-पात्रको हाथसे स्पर्श करके लोहटजीको दूध पीनेकी आज्ञा देते हुए कहा—

'लोहट! तुम्हारे अमित तेजस्वी एवं प्रतापी पुत्र होगा।'

अगले ही क्षण महात्मा तो अदृश्य हो गये, परंतु श्रीमान् लोहटजी पँवारके घर वि० सं० १५०८ की भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको एक अद्भुत बालकने जन्म लिया।

इन्हीं अवतारी महात्मा योगेश्वर भगवान् जाम्भोजीने सात वर्ष बाल-क्रीडामें बिताये, सत्ताईस वर्षतक गायें चरायीं और वि० सं० १५४२ में सम्भराथल धोरेपर गोरक्षा-हेतु वैदिक मतावलम्बी 'बिश्नोईधर्म' की स्थापना की।

गोसेवा-निमित्त जंगलमें रहते हुए ये 'ओम् विष्णु' का अखण्ड जप करते-करते विष्णुमय ही हो गये। यह सब गोसेवाका ही प्रताप था। उनका काल इतिहासकी दृष्टिसे इब्राहीम तथा सिकन्दर लोदीका काल था। जाम्भोजीने तत्कालीन पंजाबके मालेर कोटला नगरके शेख सद्दू और दिल्लीके सिकन्दर लोदीसे भी गोहत्या छुड़वायी थी और उन्हें जीव-दयाका उपदेश दिया था।

जाम्भोजीने ५१ वर्षतक तीर्थाटन करते हुए उपदेश दिये जो 'शब्दवाणी' के रूपमें संगृहीत हैं। अपने शब्दोपदेशोंमें उन्होंने जगह-जगह गोसेवा तथा जीवदयाका उल्लेख किया है। वैदिक मतावलम्बी 'बिश्नोई सम्प्रदाय' की स्थापना करते हुए उन्होंने अपने पंथानुयायियोंको उपदिष्ट करते हुए सर्वप्रथम यही कहा कि—

'गायोंकी सेवा करना। उन्हें कभी भी फाटक (घेरे) आदिमें डालकर दण्डाना मत (मारना मत, कष्ट न देना)! गोवत्सको कभी बधिया न कराना।'

जाम्भोजीने हिंदू-मुसलमान दोनोंको गोसेवाका उपदेश दिया तथा दोनोंसे गोपालन भी कराया। मुसलमानोंको उपदिष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि 'जो गाय जंगलमें चर-फिर आती है और सहज ही दुहाती है—उसका दूध पीना तो उचित है, परंतु तुम उसके गलेपर छुरी क्यों चलाते हो? तुम पढ़-सुनकर भी ज्ञानहीन ही रहे'—

चर-फिर आवै सहज दुहावै, तिसका खीर हलाली।
उसके गले करद क्यों सारो, थे पढ़-सुण रहिया खाली॥

(शब्द ८ तथा १७)

जो तुम कहते हो कि मुहम्मदके हाथमें छुरी थी, तो तुम भूले हुए हो। वह लोहेकी नहीं अपितु ज्ञानकी कटार थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महमद हाथ करद जो होती लोहै घड़ी न सारूँ।
कै तैं सूवा गायका बच्छ बिछोड्या।
कै तैं चरती पिवती गऊ बिडारी॥

(शब्द १२)

जाम्भोजी यद्यपि किसी लौकिक पाठशालामें विद्याध्ययनार्थ नहीं गये, परंतु फिर भी उन्हें अन्तर्ज्ञान था। वे एक दृष्टान्तमें बताते हैं कि जब भगवान् श्रीराम लक्ष्मणके शक्ति-बाण लगनेपर उनसे सत्रह दोषोंकी चर्चा करते हैं और कहते हैं कि उनमेंसे उस (लक्ष्मण)-ने कौन-सा दोष किया, जिसकी वजहसे उन्हें मूर्च्छित होना पड़ा। उन सत्रह दोषोंमेंसे श्रीरामजीने दो दोष गोसम्बन्धी बताये हैं—

कै तैं सूवा गायका बच्छ बिछोड्या।
कै तैं चरती पिवती गऊ बिडारी॥

(शब्द ६१)

जाम्भोजी काजीसे कहते हैं कि तुम्हारा धर्म तो कलमा पढ़ना और कुरानके अनुसार धर्माचरण करना है—फिर तुम गोहत्याके लिये क्यों तत्पर रहते हो? रामने फिर गोदान क्यों किया और कृष्णने फिर जंगलमें गोचारण क्यों किया? क्योंकि यही धर्ममूलक था—

काजी रे तु कलम कुरानी। गऊ बिणासो काहे तानी॥
राम रजा क्यूँ दीन्ही दानी। कान्ह चराई रनबे बांनी॥

(शब्द ७६)

गोभक्त लोटन

(श्रीरघुनाथसिंहजी राणा)

ब्रिटिश राज्य था। जाट लोटन दिल्लीके एक मोहल्ले पहाड़ी धीरजमें रहता था। सन् १९३५ ई० के लगभगकी बात है। ईदका उत्सव था। कुछ मुसलमानोंने उस समय गायकी कुर्बानी देनी चाही और वे एक सुन्दर ओसर (नवीन) गायको सजा-धजाकर कुर्बानी देनेके लिये गाजे-बाजेके साथ ले जा रहे थे। सभी हिन्दू इस दृश्यका किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अवलोकन कर रहे थे। किसीसे कुछ करते नहीं बन रहा था। जैसे पाण्डवोंने द्रौपदीके चीरहरणको देखा और कुछ नहीं कर सके।

लोटन सामनेसे आ रहा था और जब उसने इस दृश्यको देखा, तो उसका खून खौल उठा और वह कलियुगी भीम लोटन अपनेको रोक न सका तथा उसने मुसलमानोंपर धावा बोल दिया। कहते हैं कि लोटनने वह दृश्य उत्पन्न कर दिया जो द्रौपदीके साथ अभद्र व्यवहार करनेकी इच्छा रखनेवाले कीचक और उनके भाइयों तथा सेनाके साथ महाबली भीमने किया था। भीमके समान ही इन सबको अकेले लोटनने ही पछाड़ दिया। शेष गायको छोड़ नौ-दो-ग्यारह हो गये। इस प्रकार गायकी रक्षा हुई। लोटन गायको अपने घर ले आया और उसने जीवन-पर्यन्त उसकी सेवा की।

संत आसूदारामजीकी विलक्षण गोभक्ति

आसूदारामजी नामके एक बड़े संत हो गये हैं। वे चारे-पानी आदिद्वारा गौओंकी सेवा बड़े प्रेमसे करते ही थे, किंतु एक सेवा बड़े विलक्षण ढंगसे करते थे—जब गौएँ चरने जाती थीं, उनके बैठनेका स्थान खाली रहता, तब आप झाड़ू लेकर बड़े मनोयोगसे वहाँकी सफाई करते थे, बिलकुल अच्छी तरह सफाई हो जानेपर भी आपको संतोष नहीं होता था, 'मेरी गोमाताओंको जरा-सा भी काँटा-कंकड़ न लगे' इसलिये आप उस भूमिपर स्वयं परीक्षण करनेके लिये लेट जाते और उस पूरी गो-भूमिपर लोट-पोट हो जाते थे। जरा-सा भी कहीं कंकड़-काँटा आदि लगा तो तुरंत साफ कर देते, स्वयं सोकर-लेटकर धरतीके औचित्यका अनुभव लेते। जब भूमिपर लेटनेमें पूरा आराम मिलता, जरा-सा भी कंकड़-पत्थर-काँटा आदि न लगता तब उसे गोमाताके योग्य समझते थे।

पाठक अनुमान लगा सकते हैं, जो गौओंके आरामका इतना ख्याल रखते थे, वे अन्य सेवामें क्या कमी रखते होंगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोभक्त दरबार जीवावाला हरसुरवाला

गुजरातके जूनागढ़ प्रान्तमें विसावदरके समीप मांडावड नामका एक छोटा-सा गाँव है। आजसे कई साल पूर्व आजादीके पहले यहाँ दरबार जीवावाला हरसुरवाला नामके एक प्रतापी राजवी (राजवंशी) हो गये हैं। दरबार श्रीजीवावाला मांडावड तथा अन्य चार गाँवोंके जागीरदार थे। उनके समयमें इस छोटेसे राज्यमें सुख और समृद्धि खूब फूली-फली थी। ये बड़े नीति-परायण, धर्मप्रेमी और सच्चे गोभक्त थे, गौको मातासे भी अधिक महनीय समझते थे।

एक बार उनके जीवनमें एक घटना घटी जो इस प्रकार है—मांडावडके पासके विसावदर गाँवमें गोहत्या होती थी। विसावदरका क्षेत्र उस समय जूनागढ़के नवाब रसूलखानके अधिकारमें था। उन दिनों विसावदरमें गोहत्या सहज हो गयी थी। कसाई दिन-प्रति-दिन जाहेर-चौकमें गौका क़त्ल करते थे। विसावदरके लोगोंमें उसके विरोधमें आवाज उठानेकी शक्ति नहीं थी। इससे हिन्दू भाइयोंकी धार्मिक भावनाओंको बड़ी चोट पहुँचती थी। जब इसकी पराकाष्ठा हो गयी, तब विसावदरके सभी महाजन लोग मांडावड दरबार श्रीजीवावालाके पास आये और हिन्दू-धर्म तथा गौ-रक्षाके लिये उनसे प्रार्थना की। जीवावाला गौ-रक्षाको अपने हिन्दू-धर्मका एक प्रधान अङ्ग मानते थे। गौ-हिंसाकी तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे। गौके प्राण बचानेके हेतु वे अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिये तैयार हो गये। वे अपने दरबारी भाइयों और मित्रोंके साथ विसावदर आये और विसावदरमें एक धार्मिक सप्ताहका आयोजन किया। सप्ताहके दरम्यान दरबार जीवावाला न्यायके लिये, गौ माताकी रक्षाके लिये उपवासपर बैठ गये और इनके सभी दरबारी लड़ाईके लिये सजग हो गये। इन्हें गौ माताकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी परवा नहीं थी। जीवावालाकी सेना गौ माताकी रक्षाके हेतु अपना बलिदान देनेके लिये विसावदरके बाजारमें प्रविष्ट हो गयी। सात दिनतक जीवावालाने अन्नका त्याग कर दिया। सप्ताहके पूर्णाहुतिके दिन तो मांडावडके पूरे दरबार गढ़में चूल्हे ही नहीं जलाये गये। बाल-बच्चे और नौकर-चाकरोंसहित सबने अपने धर्मके लिये और अपनी माता—गौ माताकी रक्षाके लिये अनशन किया। इस तरह धीरे-धीरे विसावदरमें दरबार जीवावालाके सभी मित्र-भाई उनकी मददके लिये आने लगे। जब इसकी खबर जूनागढ़के नवाब रसूलखानको हुई तो वे तुरंत ही विसावदर आ गये। नवाब रसूलखान सभी धर्मोंका आदर करते थे। उन्होंने तुरंत गोहत्या बंद करनेका हुक्म दिया और दरबार जीवावालाको वचन दिया कि 'उनके पूरे राज्यमें गौकी हत्या नहीं होगी और उनका माताकी तरह आदर किया जायगा।' नवाबने इस वचनको देकर दरबार जीवावालाका अनशन छुड़वाया और इनका मान बढ़ाया। विसावदरकी सारी प्रजा और महाजन प्रसन्न हुए। विसावदरके महाजनोंने दरबार श्रीजीवावालाको मानपत्र दिया कि 'दरबार जीवावाला एक सच्चे गोभक्त, धर्म और नीति-परायण राजवी (राजवंशी) हैं।'

गोभक्त श्रीजीवावाला प्रत्येक श्रावण मासमें हाथमें रूमाल लेकर गोधन चरानेके लिये जाया करते थे। उसीसे गायोंको हाँकते थे। अपने पास लकड़ी नहीं रखते थे। वे अपने पाँच गाँवके खेतोंको गायोंसे चरवा दिया करते थे और शामको घर आकर गाँवके पंच लोगोंको बुलाते थे तथा गोधनने जितना खेतमें फसलको नुकसान पहुँचाया हो उसका सब हिसाब करके पंचोंके सामने ही खेतके मालिकको बुलाकर अपने कोषसे भरपाई कर देते थे। उन दिनों जीवावालाकी धर्मपरायणता दूर-दूर मथुरा और काशीक्षेत्रतक फैली हुई थी। काशीक्षेत्रमें उन्होंने गरीबोंके लिये अन्नक्षेत्र खुलवाया था और भगवान् काशी-विश्वनाथके राजभोगके लिये कुछ धन जमा करवाया था। वे सालमें छः मास अपने राज्यमें और छः मास राज्यका कार्यभार अपने दीवानको सौंपकर धार्मिक यात्रामें व्यतीत करते थे। —कमलाबा

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वापि संकरे। गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया॥ (बौधायनस्मृति)

गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये और वर्णसंकर होनेसे प्रजाको बचानेके लिये ब्राह्मण और वैश्य भी शस्त्र ग्रहण करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाएँ

गौ मातासे जीवन-रक्षा

घटना लगभग बीस-इक्कीस वर्ष पुरानी है, तब मेरी उम्र पंद्रह-सोलह वर्षकी रही होगी। हमारा गाँव बुंदेलखंडके पठारी-भागमें स्थित है, जिसके तीन ओर बीहड़ जंगल है। यह बदमाश तथा डाकुओंके छिपनेके लिये प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है और आये दिन इस क्षेत्रमें अपहरण तथा डकैतियाँ पड़ती रहती हैं। ऐसे ही एक रात थोड़ा अँधेरा होते ही डकैत हमारे गाँवमें घुस आये और हमारे मकानसे थोड़ी ही दूरपर पड़ोसके एक व्यक्तिको मारने-पीटने लगे। जब मार-पीटका शोरगुल सुनायी दिया तो मेरे पिताजी भी यह देखने चले गये कि किससे झगड़ा हो रहा है। वे 'शान्त रहो, शान्त रहो, क्या बात है, कौन है?' ऐसा कहते हुए जा रहे थे। किंतु पिताजीको यह बात समझनेमें देर न लगी कि गाँवमें डकैत घुस आये हैं, आहट पाकर डकैत भी सावधान हो गये। पिताजीको पकड़ने उसी तरफ दौड़ आये। पिताजी बड़ी तेजीसे लौटकर घरकी ओर भागे, किंतु माताजीने डरके मारे घरके किंवाड़ बंद कर लिये थे। डकैत घरमें घुस आयेंगे इस आशयसे पिताजीने घरके दरवाजे खुलवाये नहीं, किंतु अब वे जायँ तो कहाँ जायँ, डाकुओंका भय बना हुआ था।

सौभाग्यसे हमारी पशुशालाके किंवाड़ खुले हुए थे। पिताजी उसी पशुशालाकी ओर भागे और उसीमें घुस गये। पिताजीका पीछा करते हुए डकैत भी वहीं आ पहुँचे, किंतु जैसे ही डकैतोंको गायोंने देखा जो संख्यामें तीन थीं और एक ही वंशकी थीं, अपना-अपना बन्धन तुड़ाकर डकैतोंको मारनेके लिये दौड़ीं। डकैत गायोंसे डरकर हमारी पशुशालासे बाहरकी ओर भागे, पिताजीको भाग निकलनेका मौका मिल चुका था। वे बच गये। यदि गायें हमारी पशुशालामें न होतीं तो डकैतोंद्वारा हमारे पिताजीकी क्या दुर्दशा होती, इसकी कल्पना करके हम सब आज भी काँप जाते हैं। गायोंने ही पिताजीकी रक्षा की और सारे गाँवको लुट जानेसे बचा लिया। इसलिये हमारा प्रत्येक भारतीयसे विनम्र निवेदन है कि वह अपने परिवारमें कम-से-कम एक गाय अवश्य रखे और उसकी माताकी तरह ही देखभाल तथा रक्षा करे। समय आनेपर गाय उसकी सेवासे प्रसन्न होकर उसका लोक-परलोक अवश्य सुधार देगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। —श्रीमधुसूदनजी तिवारी

गौ माताकी कृपासे फाँसी टल गयी

पुरानी बात है, लगभग वि० सं० १९४० की होगी। पूर्वी नेपालके पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवाले दो व्यक्ति थे—जीतबहादुर और नरबहादुर थापा।

मजदूरीकी तलाशमें ये दोनों नेपालसे भारतमें चले आये और इन्हें यहाँके सीमा-प्रदेशमें लकड़ी काटनेका काम मिल गया। तीन माह काम करके कुछ कमाईका रुपया लेकर जब जीतबहादुर और उसका साथी नरबहादुर वापस अपने घर लौट रहे थे तो मार्गमें उन्होंने देखा कि तीन-चार मुसलमान एक द्विहायनी गौको रस्सीसे बाँधकर जबरदस्ती घसीटते-पीटते उन लोगोंके सामनेसे ही आगे ले जा रहे थे। जीतबहादुरको बड़ी दया आयी। उसने पूछा—'अरे! तुमलोग इस गायको इस तरह कहाँ ले जा रहे हो?' पहले तो उन्होंने यह बात सुनी-अनसुनी कर दी। पीछे दोबारा कहनेसे एकने जवाब दिया—'हमलोगोंका त्योहार है, इसे कुर्बानी देनेके लिये ले जा रहे हैं। तुझे इससे क्या मतलब?' फिर जीतबहादुरने कहा—'कितनेमें ले आये हो?' उसने कहा—'जितनेमें लायें, तुम्हें इससे क्या?' यह बोलते-बोलते वह गौको पीटते-घसीटते ले जाने लगा। फिर जीतबहादुर आगे जाकर रास्ता रोकते हुए कहने लगा—'नहीं-नहीं इसे छोड़ दो, जितनेमें ले आये हो उसका दूना रुपया हमसे ले लेना', यह कहते हुए आगे बढ़कर उसने रास्ता रोक लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानोंने कहा—'चलो हटो अपना रास्ता नापो, ज्यादा तकरार करनेसे मार खाओगे।' इस प्रकार वाद-विवाद होते-होते मुसलमानोंने जीतबहादुरको दो-चार लाठी मार दी। उसके सामने अँधेरा छा गया। कुछ क्षणके बाद उसे चेतना हो आयी। इसी समय चारों तरफसे मुसलमानोंने जमा होकर दोनोंको घेर लिया। वे सब मारनेके लिये उद्यत हुए। अब क्या था, जीतबहादुरने अपनी खुखड़ी निकाली और वह भी उनका मुकाबला करने लगा। उसने खुखड़ीसे कितनोंको मार डाला, कितने ही घायल हो गये।

इधर नरबहादुर मन-ही-मन विचार कर रहा था कि 'हाय! हमलोग कहाँ आये, कैसी दुर्घटनामें फँस गये, अब क्या करना चाहिये'। उसके पास न खुखड़ी थी न लाठी ही। इसी बीचमें फिरसे मुसलमान जुट गये। जीतबहादुर अब भी समराङ्गणमें निडर होकर खेल रहा था। उसकी सहायताके लिये नरबहादुर भी लड़नेके लिये मैदानमें उतर गया। निहत्था होनेपर भी हिम्मत और साहसके साथ भिड़ गया। गोमाताकी रक्षाके लिये वे दोनों रणबाँकुरे बिलकुल पागलके समान हो गये। उन्होंने क्षणभरमें सभीको खदेड़ डाला। वे दोनों पढ़े-लिखे तो थे नहीं, फिर भी सरल स्वभावके धर्मपरायण थे। गौकी रक्षाके लिये अपने जीवनका कोई मोह नहीं था।

समाचार क्षणभरमें आस-पासमें फैल गया। सब जगह भगदड़ मच गयी। थोड़ी ही देरमें हथियारबंद पुलिस आ गयी। दोनोंको पकड़कर थाना ले जाया गया। कोर्टमें मुकदमा चला। बेचारे उन दोनोंके पक्षमें कोई बोलनेवाला नहीं था। मजिस्ट्रेटने घटनाका विवरण विलायतके बड़े लाटके पास लिख भेजा। उधरसे जवाबमें जीतबहादुरको फाँसीकी सजा और नरबहादुरको पंद्रह सालकी कड़ी जेलकी सजा हो गयी।

बेचारे दोनों सजा सुनकर निराश और स्तब्ध हो गये। फाँसीकी तारीख तय हो गयी। जीतबहादुरको निर्दिष्ट समयपर जल्लाद फाँसीकी जगह ले गये। कुछ दर्शक लोग भी शामिल हो गये थे। गलेमें फाँसीकी रस्सी लगायी गयी, पर फाँसी लगी नहीं। नीचे उतारा गया। कुछ क्षणके बाद आफिसरने फिरसे फाँसी लगानेको कहा, फिर भी वैसा ही हुआ। तब आर्डर देनेवाले अफसरने विलायतके बड़े साहबके पास खबर की। उधरसे जवाब आया 'फाँसीका हुक्म एक ही बारके लिये होता है, किसके हुक्मसे दुबारा फाँसी दी गयी। दुबारा फाँसी देनेवालेको ही फाँसी दी जाय'—ऐसा आर्डर आनेपर उस मजिस्ट्रेटको ही फाँसी दी गयी। वह एक बारमें ही खत्म हो गया।

उस स्थानपर एकत्रित हुए सभी सरकारी अफसर तथा दर्शकगण आश्चर्य-चकित हो रहे थे। जज साहबने जीतबहादुरको सम्मानके साथ बुलाकर पूछा—'आपको फाँसी क्यों नहीं लगी? यह बात हमलोगोंको सच-सच बताइये।' जीतबहादुरने कहा—'यह गौ माताकी कृपा है। जब फाँसीकी रस्सी लगाकर उठायी जाती थी, तब मेरे पाँवोंके नीचे कोई गाय पीठ देकर मुझे ऊपर कर देती थी और रस्सी ढीली हो जाती थी, इसीसे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ।'

तब उन दोनोंको छुट्टी दे दी गयी। उस जगहके हिन्दुओंने धूमधामसे जुलूसके साथ फूलमाला, अबीर दे-देकर उन्हें बाजारमें घुमाया और ससम्मान बिदा किया।

बादमें दोनों सकुशल घर लौट आये। गाँवके लोगोंने भी खूब प्रशंसा—धन्यवाद देकर सम्मानित किया। अभीतक पूर्वी नेपालके बूढ़े-पुराने लोग इस बातको बड़ी ही श्रद्धा एवं आदरके साथ बताते हैं।

—पं० श्रीधरणीधरजी उपाध्याय

बच्चोंका आरोग्य दूधपर निर्भर है

प्रत्येक बालकका आरोग्य—केवल आरोग्य ही नहीं, प्रत्युत बुद्धि—उसके द्वारा पिये हुए दूधके परिमाण और प्रकारपर अधिक अवलम्बित है। भारतके ऐसे करोड़ों बच्चोंके शारीरिक विकासका आधार उनका आरोग्य, उनकी बुद्धि दूधके परिमाण और प्रकारपर निर्भर है। —लार्ड लिनलिथगो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोदानन्दनकी गोदोहन-लीला

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपनु बैठि गए तिनकैं सँग, सिखवहु मोहिँ कहत गोपालनि॥
काल्हि तुम्हैं गो दुहन सिखावैं, दुहीं सबै अब गाइ।
मोर दुहौ जनि नंद-दुहाई, उनसौं कहत सुनाइ॥
बड़ौ भयौ अब दुहत रहौंगौ, अपनी धेनु निबेरि।
सूरदास प्रभु कहत सौंह दै, मोहिँ लीजौ तुम टेरि॥

* * *

मैं दुहिहौं मोहिँ दुहन सिखावहु।
कैसैं गहत दोहनी घुटुवनि कैसैं बछरा थन लै लावहु॥
कैसैं लै नोई पग बाँधत, कैसैं लै गैया अटकावहु।
कैसैं धार दूध की बाजति, सोइ सोइ बिधि तुम मोहिँ बतावहु॥
निपट भई अब साँझ कन्हैया, गैयनि पै कहुँ चोट लगावहु।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल सब, धेनु दुहन प्रातहि उठि आवहु॥

* * *

तनक कनक की दोहनी, दै-दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ, मोहिँ धौरी गैया॥
अटपट आसन बैठि कै, गो-थन कर लीन्हौ।
धार अनतहीं देखि कै, ब्रजपति हँसि दीन्हौ॥
घर-घर तैं आईं सबै, देखन ब्रज-नारी।
चितै चतुर चित हरि लियौ, हँसि गोप-बिहारी॥
बिप्र बोलि आसन दियौ, कह्यौ बेद उचारी।
सूर स्याम सुरभी दुही, संतनि हितकारी॥

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान-गीताप्रेस, गोरखपुर,
२-प्रकाशनकी आवृत्ति-मासिक,
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम-केशोराम, अग्रवाल,
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
राष्ट्रगत सम्बन्ध-भारतीय, पता-गीताप्रेस, गोरखपुर,
४-सम्पादकका नाम-राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध-भारतीय; पता-गीताप्रेस, गोरखपुर,

५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं।
गोविन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता,
(पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)-प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पंजीकृत संख्या — जी० आर० — १३

॥ श्रीहरि: ॥

प्रकाशनकी प्रक्रियामें

१. 'श्रीशुक-सुधा-सागर' (बृहदाकार)—इस ग्रन्थमें श्रीमद्भागवत महापुराणकी मोटे टाइपमें सरल हिन्दी व्याख्या, मूल श्लोकोंके अन्तर्गत प्रत्येक शब्दके भावकी रक्षा करते हुए की गयी है तथा स्थान-स्थानपर श्रीभगवान्‌की मधुर लीलाओंके रसास्वादन एवं लीला-रहस्यको समझने-हेतु नयी-नयी टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। अब इसका फोटो टाइप सेटिंगकी नयी प्राविधिसे परिवर्तित संस्करण मुद्रित किया जा रहा है। सजिल्द, आकर्षक बहुरंगा आवरण, मूल्य रु० १५०.०० पैकिंग डाकव्यय रु० ३६.०० रजिस्टर्डसे।

२. 'श्रीमद्भागवत, 'मूल गुटका—श्रीमद्भागवत महापुराण भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है। इसमें भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, प्रेम एवं वैराग्य आदि सभी कूट-कूटकर भरे हुए हैं तथा इसका एक-एक श्लोक मन्त्रवत् माना जाता है। बहुत दिनोंसे अप्राप्य इस ग्रन्थका पुनर्मुद्रण किया जा रहा है।

३-'संत-अङ्क'—'कल्याण' बर्ष १२-सन् १९३८ में प्रकाशित इस अङ्कका ग्रन्थाकारमें पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। इस ग्रन्थमें अनेक जीवन्मुक्त महात्माओं तथा संतोंके प्रेरक अनमोल वचन, शिक्षाप्रद लेख, अनुकरणीय जीवन-चरित्र, मानव-जीवनके उत्थानमें संतोंका योगदान आदि अनेक आयामोंका विस्तृत विवेचन किया गया है।

४-'संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क'—'कल्याण' वर्ष ३७ सन् १९६३ ई० में प्रकाशित इस विशेषाङ्कका ग्रन्थाकार संस्करण पुनर्मुद्रित किया जा रहा है। यह वैष्णवपुराणका सार-रूप है। इसमें दिव्य गोलोक-विहारी भगवान् श्रीकृष्णकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है, साथ-ही-साथ सब देवताओंकी सारी शक्तियोंकी एकता, भक्ति-तत्त्व, सदाचार,पाप-पुण्यकी व्याख्या तथा बहुसंख्यक चमत्कारपूर्ण लाभदायक स्तोत्रों, कवचों तथा मन्त्रोंका वर्णन किया गया है। इसकी रोचक कथाएँ बड़ी उपदेशप्रद, मधुर तथा प्रभावोत्पादक हैं।

५-'श्रीगणेश-अङ्क'—'कल्याण' वर्ष ४८ सन् १९७४ ई० में प्रकाशित इस विशेषाङ्कका ग्रन्थाकार संस्करण पुनर्मुद्रित किया जा रहा है। विघ्न-विनाशक भगवान् 'श्रीगणेश' का हिन्दू-संस्कृतिमें बड़ा ही उच्च स्थान है, इस ग्रन्थमें पूजन-विधान, लीलाका मधुर वर्णन, वेदोंमें महत्त्व-सहित पारमार्थिक एवं लौकिक मनोरथोंकी पूर्ति करानेवाले अनेक सिद्ध स्तोत्रोंका संकलन किया गया है।

अब भी उपलब्ध है

महाभारत सटीक (छः खण्डोंमें सम्पूर्ण)
मूल संस्कृत तथा हिन्दी-अनुवाद

महाभारत आर्यसंस्कृति तथा भारतीय संस्कृत-वाङ्मयका महान् निधि है, इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका विश्वकोष कहा जाता है। छ: खण्डोंमें प्रकाशित इसका प्रत्येक खण्ड सचित्र एवं सजिल्द है, जिसका विवरण निम्नलिखित है—

पूरे सेटका नियमानुसार १५% छूट, पैकिंग रजिस्टर्ड डाकव्यय-सहित मूल्य रु० ५३५.०० मात्र, अलग खण्ड विशेष परिस्थितिमें ही भेजे जायेंगे।

प्रथम खण्ड—	(आदि और सभापर्व)	मूल्य रु० ७५.००	डाकव्यय रु० १६.००
द्वितीय खण्ड—	(वन और विराटपर्व)	,, ,, ८५.००	,, ,, १७.००
तृतीय खण्ड—	(उद्योग और भीष्मपर्व)	,, ,, ८५.००	,, ,, १६.००
चतुर्थ खण्ड—	(द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व)	,, ,, १००.००	,, ,, १८.००
पञ्चम खण्ड—	(शान्तिपर्व)	,, ,, ८०.००	,, ,, १६.००
षष्ठ खण्ड—	(अनुशासनसे स्वर्गारोहण पर्वतक)	,, ,, ८५.००	,, ,, १७.००

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Library

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

वर्ष ६९ संख्या ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, अप्रैल १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-महाशक्ति गौरीको नमस्कार	५१९
२-कल्याण (शिव)	५२०
३-वेद और गोमाता (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पण्डित श्रीमाधवाचार्यजी विद्यामार्तण्ड)	५२१
४-उपासनासहित निष्काम कर्मयोग (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पुराना प्रवचन)	५२४
५-श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय	५२९
६-साधना (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५३३
७-भरोसौ नाम कौ भारी [कविता]	५३६
८-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५३७
९-गौ माताकी सेवासे बौद्धिक विकास	५४०
१०-'रघुवंश' महाकाव्यमें गोसेवाकी महिमा (विद्या-विभूषण, साहित्यमार्तण्ड डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)	५४१
११-श्रीशारदापीठ गौशाला—द्वारका [प्रेषक—श्रीनारायण-स्वरूपजी ब्रह्मचारी]	५४३
१२-*गोभक्त-गाथा*—	
(१) गोभक्त सूफीसंत अब्दुल शाह (श्रीवचनेशजी त्रिपाठी 'साहित्येन्दु') [प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी]	५४५
(२) गोरक्षार्थ बाबा भोलेनाथका शरीर-त्याग	५४६
१३-गोतन्त्र (अनु०—श्रीभैरवानन्दजी नाथ) [प्रेषक—श्रीरमादत्तजी शुक्ल]	५४७
१४-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५६०
१५-पढ़ो, समझो और करो	५६१
१६-गोवधपर उच्चतम न्यायालयका निर्णय (राधेश्याम खेमका)	५६४
१७-आगामी ७० वें वर्ष (सन् १९९६ ई०)का विशेषाङ्क 'धर्मशास्त्राङ्क'	५६५

चित्र-सूची

१-मुरलीमनोहर	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-वृषारूढा महागौरी शैलपुत्री	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

सादे चित्र

सादे चित्र	पृष्ठ-संख्या
१-नन्दबाबासे लालाके प्रश्न	५२९
२-गोवर्धनसे वर-याचना	५३०
३-गोपूजन	५३१
४-श्रीशारदापीठ गौशालाका एक दृश्य	५४४

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रहवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृषारूढा महागौरी शैलपुत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, अप्रैल १९९५ ई० | संख्या ४ | पूर्ण संख्या ८२१

महाशक्ति गौरीको नमस्कार

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः। ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः। नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥

देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं। रौद्राको नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारंबार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है। शरणागतोंका कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको बार-बार नमस्कार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—परमात्मा सर्वातीत होते हुए भी सर्वमय हैं। ऐसा कोई देश नहीं, काल नहीं, पदार्थ नहीं, प्राणी नहीं, भाव नहीं, धारणा नहीं, जिसमें नित्य-निरन्तर अविच्छिन्न-रूपसे परमात्मा विराजमान न हों। सच्ची बात तो यह है, सभी वस्तुएँ वस्तुतः वे ही हैं।

याद रखो—ऐसे सदा सर्वत्र विराजमान सर्वमय परमात्माके होते हुए भी तुम उनको प्राप्त करने—उन्हें प्राप्त करके शाश्वती शान्ति लाभ करनेसे इसीलिये वञ्चित रहते हो कि तुम्हारा लक्ष्य परमात्मा नहीं है। लक्ष्य यदि परमात्मा हो और 'परमात्मा इस प्रकार सर्वमय हैं', ऐसा विश्वास हो जाय तो फिर चाहे तुम किसी भी सविशेष-निर्विशेष, साकार-निराकार-रूपको किसी भी भावनासे क्यों न देखो, तुम्हें परमात्माकी प्राप्ति होगी ही; क्योंकि परमात्मा ही एकमात्र सर्वत्र व्याप्त सर्वरूप सत्य हैं।

याद रखो—तुम्हारा मानव-जीवन केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही है और उनकी प्राप्ति तुम्हारी एकान्त इच्छाके अधीन है। परमात्माकी प्राप्तिमें ही जीवनकी सार्थकता और सफलता है। इसके बिना सभी कुछ व्यर्थ और अनर्थरूप है।

याद रखो—बनना-बिगड़ना, होना-मिटना, संयोग-वियोग—संसारका स्वरूप ही है। इसके पदार्थोंको यदि तुम नित्य बननेवाले, नित्य होनेवाले और नित्य संयोगरूप बनाना चाहोगे तो यह असम्भव है, ऐसा हो ही नहीं सकता—जन्मके साथ मृत्यु यहाँ है ही। और यदि कहीं अपेक्षासे कोई वस्तु अधिक काल स्थायी हो भी गयी तो वह सुखरूप ही होगी, ऐसा नहीं मानना चाहिये। जबतक मनमें अभावकी अनुभूति और अभावपूर्तिकी कामना रहेगी, तबतक किसी भी पदार्थसे कभी सुख होगा ही नहीं। सच्ची बात तो यह है कि पूर्ण, नित्य, सत्य और चेतन परमात्माकी प्राप्तिके बिना जीवके अभावका नाश कभी होता ही नहीं; क्योंकि जीव परमात्माका ही सनातन अंश है, इसलिये स्वाभाविक ही वह पूर्ण, नित्य, सत्य और चेतनको ही चाहता है। अपूर्ण, अनित्य, असत् और जड पदार्थोंसे उसका अभाव कैसे मिट सकता है।

याद रखो—यदि तुम जगत्के स्वरूपको न समझकर उसीमें फँसे रहोगे, उसीमें अनुकूलताका अनुसंधान तथा निर्माण करनेमें लगे रहोगे तो अनुकूलता तो मिलेगी ही नहीं, परमात्माका भजन नहीं होगा और इसलिये तुम्हारा मानव-जीवन ही असफल हो जायगा। अतएव तनिक भी देर न करके जीवनके असली ध्येयकी प्राप्तिमें लग जाओ। यहाँ प्रारब्धवश जैसा जो कुछ होना है, उसे स्वच्छन्दतासे होने दो। उससे वास्तवमें तुम्हारा कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। फिर उसे मिटाने और बदलनेके प्रयत्नमें समय क्यों खोना चाहिये। इस जीवनका तो एक-एक क्षण—जीवनके परम लक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिमें ही लगना चाहिये।

याद रखो—जीवनका जो क्षण परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें लगता है, वही सार्थक है, वही मूल्यवान् है। तुम अपना सौभाग्य तभी समझो, जब तुम्हारे जीवनके समस्त क्षण परमात्मामें लगते हों। उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, देखते-सुनते—सभी समय परमात्मामें ही मनको लगाये रखनेका प्रयत्न करो। परमात्माकी विस्मृति कभी न हो, उनकी याद करते हुए ही जीवनके सारे कार्य करो और यह निश्चय करो कि परमात्माका स्मरण ही परमात्माकी प्राप्तिका उपाय होनेसे—जीवनका सर्वप्रथम और सर्वोपरि कार्य है।

याद रखो—यदि तुम प्रमादवश जीवनको जगत्के व्यर्थ और अनर्थरूप दुःखयोनि भोगोंमें ही लगाये रखोगे तो तुम महामूर्ख हो और तुमको पीछे बहुत अधिक पश्चात्ताप करना पड़ेगा; पर उस समय कोई उपाय तुम्हारे हाथमें नहीं रह जायगा। इसलिये भगवत्कृपासे प्राप्त मानव-जीवनरूप इस सुअवसरको मत खोओ—इसका एक-एक क्षण परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें ही लगाओ, तुम धन्य हो जाओगे और सदाके लिये पूर्ण सुखको प्राप्तकर कृतार्थ हो जाओगे।—**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद और गोमाता

(सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पण्डित श्रीमाधवाचार्यजी विद्यामार्तण्ड)

वेद विश्वके सभी धर्मग्रन्थोंमें प्राचीन है। इस विषयमें दो मत नहीं हो सकते। यह कितना प्राचीन है इसपर हो सकते हैं।

जो वेदके श्रद्धालु भक्त हैं उनके लिये वेदका प्रत्येक मन्त्र देवता तथा वेद स्वयं शब्दमय परब्रह्म परमात्मा है। व्यासने वेदान्त-ब्रह्मसूत्रमें वेदसे ही संसारकी उत्पत्ति मानी है तथा देवताओंको पुरुषविध स्वीकार किया है।

संध्या-वन्दन करनेवाले व्यक्ति यह भी स्मरण कर लेते हैं कि सूर्य और चाँदको विधाताने वेदके अनुसार जैसा पहले कल्पमें था, दूसरे कल्पमें भी वैसा ही बना दिया है।

वेदोंका प्रारम्भ गौकी महानताके साथ होता है। शुक्ल यजुर्वेदके प्रथमाध्यायके पहले मन्त्रमें कहा गया है कि **'आप्यायध्व मघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा।'** हे अवध्य गौओ! इन्द्रके भागकी रक्षा करना, हमसे आप प्रजावती और नीरोग रहेंगी।

यहाँ विशेष विचारणीय यह 'अघ्न्या' विशेषण है। जिसकी मन-वाणी और अन्तःकरणसे कभी और किसी कारण भी हत्या न की जाय उसे 'अघ्न्या' कहते हैं।

इससे यह सिद्ध हो गया कि वैदिक साहित्य गौको सर्वथा अहिंसनीय मानता है। इसकी मान्यता विश्वके सर्वप्रथम धर्मग्रन्थकी मान्यता है। अतः इसे विश्वके सभी धर्मोंकी मान्यता समझनी चाहिये। गौपर कहीं कोई हाथ नहीं उठाता था। सभी पूज्य-दृष्टिसे देखते थे। यही कारण है कि भूमि गौके रूपमें सर्वेशके सामने उपस्थित होती थी। गौकी यह प्रतिष्ठा थी कि भयंकर अपराधी और वैरी अपने सबल विनाशकके आगे कह देता था कि 'मैं तेरी गऊ हूँ', तो उसी समय वीरता और क्रोध, करुणा और शान्तिमें बदल जाते थे। सबल वैरी हाथमें आये हुए घातक वैरीको भी गऊके नामपर क्षमा कर देता था।

मैथुनी मानव-सृष्टिके आदिप्रवर्तक महाराज मनुने अपने एक पुत्रको गौओंके महत्त्वके कारण 'गोपाल' बनाया था।

गौको काटना-मारना तो जहाँ-तहाँ रहा, वेद चाहता है कि **'मा व स्तेन ईशत माघशँ्सः'**—(शुक्ल यजुर्वेद)। गौका स्वामी चोर कभी न हो, न वे निन्दक ही अधिपति हों जो कि दूसरोंके पाप बखाना करते हैं। यहाँ किसी पापीके गोस्वामी होनेकी तो बात जहाँ-तहाँ रही, पापोंकी कहानी कहनेवालोंको भी वे गौका स्वामी बनने देना नहीं चाहते। फिर कसाई, कसाईखाने और गौको कसाईके हाथ बेचनेवाले तो इसके स्वामी हो ही कैसे सकते हैं। यही कारण है कि लोग हिंसकोंसे गौको छीन लेना अपना धर्म समझते हैं। सभ्यताके सच्चे उपासक—गौओंपर निकृष्ट लोगोंका आधिपत्य कभी स्वीकार नहीं करते। यही कारण है कि समय-समयपर गौपर हक जतलानेवाले गोघातकोंसे वीरोंने बलपूर्वक गायें छीन ली हैं। महाराज परीक्षित्‌ने गो-मिथुनको पीटनेवाले प्रच्छन्नवेषी कलिका भी सामना किया था।

गौपर किसीका आधिपत्य, केवल उसके दूध-घीके लिये है, अन्य कामोंके लिये कोई भी गौका स्वामी नहीं हो सकता। क्योंकि चाहे किसीका भी राज्य क्यों न हो, गौ सदा देवताओंकी रहती है। वेदने किसी भी राज्यको गोहत्याकी आज्ञा नहीं दी है। अथर्ववेद (५। १८। १) कहता है कि—

'हे राजन्! देवोंने तुझे गाय खानेके लिये नहीं दी। यह तो ब्राह्मणके, देव और पितृकार्यके लिये है। इस कार्यमें इसका आप भी उपयोग ले सकते हैं।'

पर तुम कभी गौके मारने-खाने एवं गंदे उपयोगमें लानेकी मत सोचो, क्योंकि गौ किसी भी स्थितिमें मारने और खानेकी वस्तु नहीं है।

वेदने जिस प्रकार गौको अघ्न्या यानी अहिंसनीय बताया है इसी प्रकार अभोज्य भी बताया है। 'अनाद्या' यह विशेषण अभोज्यपनेको ही व्यक्त करता है। जब मांसखोरोंको भी गोमांसकी आज्ञा नहीं तो गौओंके कसाईखाने तो हो ही कहाँ सकते हैं। इतना ही कहकर वेद चुप नहीं रहा है, किंतु इसने राजाको भी उपदेश दिया है कि—

'आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा।'

(अथर्ववेद ५। १८। ३)

जैसे साँप केंचुलीमें ढका रहता है, इसी तरह यह गोहत्या भी ऐसे पाप-विषसे भरी हुई है कि जिसके मारनेका पाप साँपके जहरके समान खानेवालोंका समूल नाश कर देता है।

जिन राष्ट्रोंमें गौका पालन-पोषण नहीं होता एवं जहाँ गौओंका क़त्ल होता रहता है वे राष्ट्र चार दिनकी चाँदनीके समान ही चमकते हैं, उनका अन्त किसी भयंकर विनाशसे अनायास ही हो जाता है। यह एक नियम-सिद्ध बात है कि कोई भी राष्ट्र शक्तिदात्री गौका विनाश करके स्वस्थ एवं बलिष्ठ संतान नहीं बना सकता, न पैदा कर सकता है। वेदने भी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर संकेत किया है कि—

'गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः' (अथर्व० ५। १८। २)।

गोमांसभोगी राष्ट्र अथवा जिस राष्ट्रमें रात-दिन गौका क़त्ल होता है वह आज भले ही मृतककी हिचकीके समान अर्धश्वास ले रहा हो, पर कलके लिये उसका अस्तित्व नहीं रहता।

भगवती अत्याचारी राष्ट्रोंके विनाशके लिये युद्धकी विभीषिकाके रूपमें उपस्थित होती हैं। इसमें गोघातक वेदद्वेषी राष्ट्र सदाके लिये भस्मसात् हो जाते हैं। शिवका आकस्मिक तीर ऐसे ही हिंसकोंका समयपर चलकर विनाश कर देता है।

गौमें स्वयं विनाश करनेकी शक्ति है। वह स्वयं ही किसी बहानेसे गो-हिंसकोंका संहार कर देती है।

अथर्ववेद (५। १८। ११)ने बताया है कि—

'गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत्।'

जब वैतहव्य यानी याज्ञिक कर्मशून्य गोमांस-भोगियोंने गोवंशको मारा तो उनका विनाश और दुर्गति गौने ही कर दी। पाप किन रूपोंसे विनाश करता है इसे सामान्य लोग नहीं देख सकते। इसके लिये दिव्य दृष्टि चाहिये। गौ स्वयं सर्वदेवतामय है। यह अपने विनाशका फल स्वयं ही प्रकारान्तरसे दे देती है। देशकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि ऐसे ही पापोंका फल है।

अथर्ववेद (१०। १०। २६) में बताया गया है कि गौ ही प्रकृतिरूपिणी हो अपने शरीरसे संसारको उत्पन्न करती है। वैदिक जन गौमें प्रकृतिकी झाँकी करते हैं। उनका ध्यान है कि—**'वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या ३ असुराः पितर ऋषयः॥'**—देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषिगण सब कुछ गौ ही है। क्योंकि गौके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंपर देवोंका निवास है।

अथर्ववेद (९। ४)के २५वें मन्त्रमें कहा है कि—

'एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्।'

यह विश्व-रूप गौके रूपमें समाया हुआ है। गौ ही सर्वरूप है।

वेद कहता है कि—**'मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः।'** (अथर्व० ९। १। ४)। आदित्योंकी माता, वसुओंकी दुहिता, प्रजाओंकी प्राणरूपा तथा अमृतकी जड़ है।

जिन्हें वेदपर श्रद्धा है उनके लिये किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है, किंतु जिनका मन विचलित है वे वैज्ञानिक ढंगसे भी इन विषयोंकी परीक्षा कर सकते हैं।

गौ प्रजाओंमें प्राण है, क्योंकि जीवनोपयोगी सारी चीजें गौओंसे प्राप्त होती हैं। आजके विज्ञानने पञ्चगव्यका उपयोग खूब समझा है। गलित कुष्ठादि रोग भी गोमूत्रके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं। मैंने स्वयं विद्वानोंको भी इसका उपयोग करते देखा है। नागपुरके एक एडवोकेट पञ्चगव्यसे ही महाकुष्ठसे मुक्त हुए थे।

गोमांसभोगी राष्ट्रकी बुरी दशा होती है—अथर्ववेद (५। १९। ४)में कहा गया है कि—

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साऽभि विजङ्गहे।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा॥

गोमांसभोगी राष्ट्र निस्तेज हो जाता है। इस प्रकारके राष्ट्रमें फिर वीर और समर्थ पुरुष नहीं होते। जैसे पञ्चगव्यमें रोगनाशक शक्ति है, उसी प्रकार गोहत्याके गोमांसमें भयंकर रोग है। गोहत्याके कारण ही राष्ट्रमें रोग-शोक-आपत्ति-अतिवृष्टि और अनावृष्टि होती है।

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्॥

(अथर्व० ५। १९। १५)

'गोहत्यारे राष्ट्रमें मित्रावरुण ठीक वर्षा नहीं करते, न वह किसी समितिका ही श्रेष्ठ यश उपार्जन कर पाता है, न उसके मित्र ही उसके वशमें होते हैं।'

गोहिंसक राष्ट्रके सत्यानाशका कारण गायोंके पाप होते हैं, ये राष्ट्रको जड़मूलसे ग्रस लेते हैं।

वेदका तो यहाँतक दावा है कि—

न ··· गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन॥

(अथर्व० ५। १९। १०)

गौ मारकर खानेवाले राष्ट्रमें कोई भी अन्तमें शेष नहीं रहता। प्राकृत विपत्तियाँ गोहत्याके पापसे ही आती हैं। अतः गोहत्या सर्वथा ही वर्जनीय रही है। यही एक कारण है कि गौओंके लिये सर्वत्र 'अघ्न्या' विशेषण लगाया है। यह वशासूक्तमें भी बराबर बना रहा है। वहाँ भी यही विशेषण रहा है। यही भाव वेदका ब्राह्मणके सम्बन्धमें है। ये भी अवध्य हैं। तभी हनुमान् विप्ररूपसे ही रामके पास गये थे।

यही कारण है कि भारतके क्षात्र-वर्चस्वके लिये दो विशेषण आवश्यक थे—प्रथम गोपालक, दूसरे विप्र-पोषक।

कोई भी राज्य गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक कहानेमें आनन्दका अनुभव करता था। राजपूतानेमें ब्राह्मणोंको पहले कभी फाँसी नहीं हुई। नेपालमें फाँसीके स्थानमें शिखा-यज्ञोपवीत-विहीन एवं सम्पत्तिहीन कर देश-निकाला दे देते, फाँसी ब्राह्मणको नहीं देते।

गोपालन करना किसी भी राष्ट्रका मुख्य धर्म है। दूसरा उसका कर्म अपने देशके विद्वानोंकी रक्षा करना है। वेदमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजमानका दूसरा नाम 'गोपति' दिया गया है। जो यजमान गोपति नहीं, वह यजमान नहीं हो सकता। वेद गौओंको उपदेश देता है कि—

'अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वी:' (यजु० १। १)

'इस गोपालक यजमानके लिये आप बहुत हो जायँ।'

गोपालक यजमानोंके लिये गौएँ बढ़ती चली जाती हैं, किंतु जो गौओंका पालन नहीं करते, उनके यहाँ दिनोंदिन गोधनका ह्रास होता चला जाता है।

गौओंकी वृद्धिके साथ ही भूमिकी उपज भी बढ़ती है। क्योंकि गौके गोबर और मूत्रके बराबर दूसरी खाद नहीं हो सकती। भूमि गोचरभूमिकी मूर्तिमें गौओंका पोषण करती है। गौओंके ह्रासके साथ भूमिकी उपजका भी ह्रास हो जाता है।

शुक्ल यजुर्वेद (१। ४)ने—गौको **'विश्वायु:'**, **'विश्वकर्मा'** और **'विश्वधाया:'** कहा है।

विश्वायुका अर्थ है विश्वकी आयु या पूरी आयु। गौके दूध-घीपर ही आयुष्यका निर्माण होता है। साहित्यमें घृतको आयु कहा गया है। नकली घी आयुका नाशक होता है। गोहत्याके कारण ही प्राणी अल्पायु होते हैं।

वेदमें सोमयाग प्रसिद्ध है। इस यागमें जिस गायसे सोमके खरीदनेकी चेष्टा करते हैं उसे 'सोमक्रयणी' कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद ४। १९ से २२ मन्त्रतक इस गौका अभिमन्त्रण चलता है। उस समय गौसे कहते हैं कि 'हे गौ! तू चिदात्मा, बुद्धिस्वरूपा और मन:स्वरूपा है। सच्ची दक्षिणा तू है, क्योंकि किसीको गौ देनेपर रोजके लिये दूध-दहीका दान हो जाता है। तुझीसे सोम राजा भी खरीदा जा सकता है। तेरे बिना यज्ञादिक पूरे नहीं हो सकते।

तू ही आदित्योंकी माता अदिति है। यज्ञों आदिमें तू ही सहायक होती है। तू हमारे मन और बुद्धिको पवित्र कर, भगवान् आदित्य तेरी रक्षा करें। पूषा तेरे मार्गकी रक्षा करें। तू यजमानोंके लिये सदा बनी रहे। मैं सोम खरीदनेमें तेरा उपयोग चाहता हूँ। तेरे माता-पिता और वत्स मुझे यह अनुमति दे दें। भगवान् शिव तुझे वहाँसे फिर वापिस आनेकी सलाह दें। तू सोम खरीदकर फिर मेरे पास आ जा। हे गौ! तू वसु-रूप है। तू ही अदिति और आदित्य-रूप है। सूर्य और चन्द्र भी तू ही है। देवगुरु बृहस्पति तेरे साथ खेलें। भगवान् शिव आठों वसुओंके साथ तेरी रक्षा करें।'

यहाँ यह परिस्फुट होता है कि सर्वदेवमयी गौकी पहरेदारी भगवान् शिव करते हैं। जो गौका नाश करता है शिवका त्रिशूल विविध रूपोंसे उस राष्ट्रका विनाश करता है। विश्वके सभी पूज्य देवोंका गौके शरीरमें निवास रहता है।

गौके चरण जहाँ पधारते हैं वहीं पवित्र अग्निकुण्ड हो जाता है। यही कारण है कि लोग 'सोमक्रयणी' गौके पीछे स्तुति करते हुए चलते हैं। जहाँ गौका सातवाँ डग पड़ता है उस सातवें डगके पद-चिह्नपर सुवर्ण भेंट चढ़ाते हैं। इसके पश्चात् अध्वर्यु यहाँ एक आहुति देता है। सोमयागमें इस आहुतिका नाम 'हिरण्यवती आहुति' है।

जहाँ गौके चरण पड़े उसे कहते हैं कि—

आदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। (शु०, यजु० ४। २२)

आप भूमिके मस्तिष्कके समान हैं। ऐसा इससे उत्तम आहुतिका स्थान अन्यत्र नहीं मिल सकता। अत: यह मैं आहुति यहीं देता हूँ। क्योंकि तू केवल भूमिका सिर ही नहीं अपितु गौका पदचिह्न भी है।

गौका मान इतनेपर भी पूरा नहीं होता, अत: फिर गोपद-धूलिसे प्रार्थना करते हैं कि—'हे गोपदकी धूलि! **'अस्मे रमस्व'**—अब तू हमारे साथ खेल, क्योंकि **'अस्मे ते बन्धु:'**—हम तेरे ही तो बन्धु हैं। इसके पश्चात् उस धूलिको थालीमें रखकर कहते हैं कि 'यही धन है।'

यजमानसे कहते हैं कि **'ॐ त्वे राय:'**, यह तेरे लिये परम धन है। यजमान भी उसे **'मे राय:'** 'यही मेरा परम धन है' यह कहकर रख लेता है।

फिर ऋत्विज् और यजमान सभी यह कहते हुए उस धूलिका स्पर्श करते हैं कि **'मा वयं रायस्पोषेण वियौष्म:'**—आप हमारे धनकी परम पुष्टि हैं। हम कभी आपसे अलग न हों। वह धूलि यजमानकी पत्नीको दे दी जाती है कि **'तोतो राय:'** यह धन आजसे लेकर सदा तेरे बेटे-नाती सबमें बना रहे। यजमानकी पत्नी अति आग्रहके साथ उस गोरजको ले लेती है।

यह था इस देशमें गौका आदर। गोचरणकी धूलि परम धन माना जाता था। आज तो हमारी सरकारकी भयंकर मशीनें इस प्रकार चल रही हैं कि मानो भारतके गोवंशको मिटाकर ही दम लेंगी।

गोमाता! अपनी इन सरकारोंपर भी कृपा कर, जो तेरे महत्त्वको समझें। तेरे चरणोंसे विश्वको विभूषित होने दें। विश्वके सिरपर सदा गो-धूलिकी कृपा बनी रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासनासहित निष्काम कर्मयोग

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पुराना प्रवचन)

निष्काम कर्मका विषय बहुत दामी है। निष्काम कर्म करनेसे परमात्माकी प्राप्ति बहुत ही शीघ्र हो सकती है।

गीताप्रेसमें काम करनेवाले भाईलोग गीताप्रेसको साधन बना करके निष्काम कर्म करनेके द्वारा अपनी आत्माका कल्याण कर सकते हैं। जो व्यापारी भाई हैं वे निष्काम भावसे व्यापार करते हुए परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं। हृदयमें जब निष्काम भाव हो जाता है तो बाहरकी उसकी सारी क्रिया निष्काम ही होती है। इसलिये निष्काम भाव ही अमृत है। परमात्मा अमृत है, आनन्दमय है, रसमय है अत: निष्काम भाव अमृतकी प्राप्ति करानेवाला—परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला होनेसे अमृतमय है। निष्काम भाव दूसरोंको भी बड़ा प्यारा लगता है। जिसके साथ निष्काम भावका व्यवहार किया जाता है उसको तो प्रिय लगता ही है, देखनेवालोंको भी प्रिय लगता है और बोलनेवालेको भी प्रिय लगता है। व्यवहार करनेवालेको व्यवहार प्रिय लगता है। निष्काम भाव हृदयमें, वाणीमें और क्रियामें भी होना चाहिये। यह ख्याल रखना चाहिये कि जब निष्काम भाव हृदयमें होगा तो सब जगह अपने-आप ही व्यापक हो जायगा। हृदय दूषित होनेपर तो सारी क्रिया दूषित हो जाती है। निष्कामकी महिमा परमात्माके ध्यानसे भी बढ़कर बतलायी गयी है। भगवान्‌ने गीता (१२। १२) के उत्तरार्धमें कहा है—

'ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥'

अर्थात् ध्यानसे भी कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है। कामनाका सर्वथा त्याग निष्काम भाव है। उससे भी उच्चकोटिका निष्काम भाव वह है जिसमें आसक्तिका त्याग हो, उससे भी बढ़कर वह निष्काम भाव होता है जिसमें ममताका त्याग हो और उससे भी बढ़कर निष्काम भाव होनेपर अहंकारका त्याग हो, उससे बढ़कर निष्काम भाव होनेपर अज्ञानका त्याग होता है; क्योंकि अज्ञान ही मूल कारण है। अज्ञानसे ही अहंकारकी उत्पत्ति होती है और अहंकारसे ही ममता होती है, जहाँ 'मैं' होता है वहाँ 'मेरा'। जहाँ 'मैं' ही नहीं वहाँ 'मेरा' नहीं। चाहे वाणीसे 'मैं' कहो, किंतु यदि वहाँ अहंकार नहीं है तो उस 'मेरा' कहनेका कोई मूल्य ही नहीं है, इसलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(२। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको और स्पृहा अर्थात् आसक्तिको, ममता और अहंकारको त्याग कर संसारमें विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। इन सबके अभावमें केवल परमात्मा ही रह जाते हैं, उसकी परमात्मामें स्थिति है, क्योंकि पूर्वमें यह बात भगवान्‌ने साफ बतला दी—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(गीता २। ६९)

सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो निशा है उसमें संयमी पुरुष जागते हैं और जिसमें संसारके मनुष्य जागते हैं अर्थात् संसारके मनुष्य विषयोंका उपभोग करते हैं वह मुनियोंके लिये निशा है। तात्पर्य यह कि जिनकी मन और इन्द्रियाँ अच्छी प्रकारसे वशमें हैं, संसारके विषयोंसे हटी हुई हैं और संसारमें विचरण करते हुए भी उनके साथ वास्तविक सम्बन्ध नहीं है—उनमें आसक्ति नहीं है उनके लिये यह संसार निशाके समान है। कहनेका आशय यह है कि इस संसारके जितने भोग हैं वह रात्रिके समान हैं उसपर उनका कोई असर नहीं होता। और जिस परमात्माके स्वरूपमें ज्ञानी-मुनि जागते हैं, वह सर्वसाधारणके लिये निशाके समान है अर्थात् उन लोगोंको पता ही नहीं कि परमात्मा क्या चीज है। इसलिये परमात्माके स्वरूपमें स्थिति और संसारमें कामना तथा आसक्तिका अभाव ब्राह्मी स्थिति है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(२। ७२)

इस ब्राह्मी स्थितिको पा करके मनुष्य मोहको प्राप्त नहीं होता और अन्तकालमें भी यदि ऐसी स्थिति हो जाय तो वह पुरुष निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। अर्थात् उस सच्चिदानन्द ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मके स्वरूपमें जो स्थिति है वही ब्राह्मी स्थिति है अर्थात् ब्रह्मके स्वरूपमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति और संसारसे जिसकी विरक्ति है, संसारमें जिसकी न कामना है, न आसक्ति है, न ममता है, न कर्मोंमें कोई अहंकारका भाव है ऐसा पुरुष स्थितप्रज्ञ है।

उसके लिये मैं आपको एक युक्ति बतलाता हूँ, उस युक्तिसे बहुत शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। परमात्माके स्वरूपमें स्थिति और हृदयमें निष्कामभावसे सारी क्रिया अहंकार, आसक्ति और कामनासे रहित हो जाती है; क्योंकि हृदयका जो भाव है वह व्यवहारमें आ जाता है तो बड़ा सुन्दर लगता है। हमको इस विषयमें क्या करना चाहिये? परमात्माके स्वरूपमें स्थित होकर व्यवहार करना चाहिये। बुद्धिके द्वारा उस परमात्माके तत्त्वको समझना चाहिये कि परमात्मा जो है वह सत्-चित्-आनन्दघन है। वह परमात्मा सब जगह समानभावसे व्यापक है। नीचे लिखे श्लोकके अनुसार उस परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे स्थित हो जाय।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३१)

भगवान् कहते हैं कि जो मनुष्य सारे भूतोंमें स्थित मुझ परमात्माको समझ करके और मुझ परमात्मामें एकीभावसे स्थित हो करके फिर मुझे भजता है वह सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी मुझ परमात्मामें ही बर्तता है। यानी परमात्मा सम्पूर्ण संसारमें सारे भूतोंमें समभावसे स्थित है—ऐसे परमात्मामें अपने-आपको लगा दे यानी तन्मय हो जाय। ऐसे परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे स्थित हो जाय यानी अपने-आपको परमात्मामें समर्पण कर दे। परमात्मामें तन्मय होनेका मतलब है कि अपने-आपको परमात्मामें मिला दे यानी परमात्मा और अपने-आपकी एकता-सी कर दे। इसके लिये संसारमें कोई उदाहरण नहीं है, किंतु जैसे कोई कहे कि ये तो देखनेके ही दो हैं, वस्तुतः एक ही हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं कि मैं ही अर्जुन हूँ और अर्जुन ही मैं हूँ। इस प्रकारसे समझ करके परमात्मामें ऐसी एकता कर दे कि मानो परमात्माका अङ्ग ही बन जाय। जैसे शरीरमें अपनी तन्मयता है। मानो शरीर मैं हूँ! वास्तवमें मैं शरीर नहीं हूँ, किंतु प्रतीति ऐसी होती है कि शरीर मैं हूँ। यहाँ शरीरके स्थानमें परमात्मा हैं तथा आत्माके स्थानमें आत्मा है ही। साधककी उस परमात्माके स्वरूपमें ऐसी स्थिति हो जाय कि परमात्मा अपनी आत्मा ही दीखने लग जाय। इस प्रकारसे परमात्माकी शरण हो करके, परमात्मामें स्थित हो करके, परमात्माको आधार और अपनेको आधेय मान ले जैसे आकाश आधार है और बादल है उसमें आधेय। इस प्रकारसे परमात्मा अनन्त है और आप हैं अल्प। इस प्रकारसे परमात्माके स्वरूपमें स्थित हो करके निष्काम भावसे सबसे क्रिया करे। सारे संसारमें परमात्मा व्यापक हो रहा है तो परमात्मा तो अनन्त है और सेवा करनेवाले आप एकदेशीय हैं। परमात्मा अनन्त है तथा मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तथा शरीर ये औजार हैं—साधन हैं। इनके द्वारा सर्वव्यापी परमात्माकी सेवा करें। तात्पर्य यह कि इनके द्वारा होनेवाले जो कर्म हैं उन कर्मोंसे उस परमात्माकी सेवा करें। और सेवा करनेके समयमें ऐसा भाव रखें कि मुझमें सेवा करनेकी जो शक्ति है वह परमात्माकी दी हुई शक्ति है। जिन मन-बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा मैं सेवा कर रहा हूँ ये सब औजार भी परमात्माके हैं। जिस धनसे मैं लोगोंकी सेवा कर रहा हूँ, वह भी परमात्माकी चीज है। जिनकी सेवा कर रहा हूँ उन सबके भीतरमें परमात्मा विराजमान हो रहे हैं, इसलिये वह परमात्माकी ही सेवा है। परमात्मा सबमें निवास कर रहे हैं, सबमें व्यापक हैं और मेरेमें भी व्यापक हैं। मुझमें परमात्मा स्थित हैं और मैं परमात्मामें स्थित हूँ। इसलिये मेरी और परमात्माकी तो एकता ही है। देहके साथ जैसे तदात्मक-भाव है। परमात्मा जो है वह मेरी आत्मा ही है इस प्रकार परमात्माके स्वरूपमें स्थित हो करके और परमात्माका ही बन करके कि मैं परमात्माका ही हूँ, जिस संस्थामें काम करता है या दुकानमें काम करता है वहाँ समझो कि यह परमात्माकी है। जैसे गीताप्रेस जो है यह परमात्माकी है और विचारके द्वारा देखनेसे भी है ही। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टिसे भी परमात्माकी है और पारमार्थिक दृष्टिसे भी परमात्माकी है। यह भगवान्‌की बड़ी दया है कि अपने हाथमें इतनी बड़ी संस्था है, इस प्रकारका साधन देकर मुझे अपनाया है। अब उसके द्वारा अधिक-से-अधिक सबको सुविधा हो ऐसी चेष्टा करे। हरेक प्रकारसे दूसरोंको आराम पहुँचाये और आराम पहुँचा करके अपने हृदयमें 'मैं आराम पहुँचाता हूँ' यह भाव नहीं आने दे। अहंकारकी गंध भी नहीं आने दे। मन-बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ और शरीर यह तो औजार हैं तो बुद्धिसे परमात्माके विषयमें हमारा जो निश्चय है उस स्वरूपको मनसे याद रखे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसीका नाम है परमात्माके स्वरूपका मनन करना। मनको एक प्रकारसे इस काममें रखे कि भगवान्‌की विस्मृति कभी न हो।

जब यह तत्त्व समझमें आ जाता है तो विस्मृति कभी हो ही नहीं सकती, क्योंकि उसे तो सब जगह परमात्मा ही दीखता है, कारण कि वह सेवा परमात्माकी करता है। किसी भी प्राणीकी सेवा करता है तो वह परमात्माकी ही सेवा करता है। इसलिये इस प्रकारसे उसका संसारमें जो विचरण है वह परमात्मामें ही विचरण है। इस विषयमें गीताका श्लोक (६। ३०) याद करना चाहिये।—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

तात्पर्य यह कि भगवान् कहते हैं—जो पुरुष मुझ परमात्माको सब जगह देखता है (जहाँ उसका मन जाता है वहाँ वह परमात्माको ही देखता है। जहाँ उसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है वहाँ वह परमात्माको ही देखता है। उसकी बुद्धिमें तो हर समय निश्चय है ही कि सब जगह परमात्मा है।)

सबको परमात्मामय देखता है कि परमात्मा सबमें है। उदाहरणके लिये आकाशकी ज्यों परमात्माको और बादलकी ज्यों संसारको देखे। सब किसीका जो समूह है वह तो है बादल-स्थानीय और परमात्मा जो है वह है आकाश-स्थानीय। आकाश अनन्त है और उसके एक हिस्सेमें बादल है और बादलमें भी तो आकाश है। तो विचार करके देखो आकाश जो है वह अनन्त है उस अनन्त आकाशके अंदर बादल है और बादलमें आकाश है। जैसे बादलमें आकाश है और आकाशमें बादल है इसी प्रकार सारे संसारको परमात्मामें देखे और परमात्माको सारे संसारमें देखे। बादलका एक अणु-एक परमाणु भी आकाशसे खाली नहीं है, अणु-अणुमें आकाश है। एक परमाणु भी ऐसा नहीं है जिसमें आकाश न हो और बादलका सारा-का-सारा समूह आकाशके किसी एक हिस्सेमें है। इसी प्रकारसे यह सारा ब्रह्माण्ड उस परमात्माके एक हिस्सेमें है। परमात्मा उसमें ऐसे व्यापक है कि जैसे बादलमें आकाश। एक अणु मात्र भी जगह खाली नहीं है कि जहाँ परमात्मा न हो। इस प्रकारसे परमात्माको सबमें व्यापक समझ करके सबकी सेवा करे। सबकी सेवा परमात्माकी ही सेवा है।—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमात्मासे यह संसार व्याप्त है और जो परमात्मा इस संसारमें व्यापक है—दोनों एक ही बात है। जिस परमात्मासे यह संसार उत्पन्न हुआ है। संसार उत्पन्न हुआ है परमात्मासे और इसमें व्यापक है वह परमात्मा—ऐसा परमात्माका स्वरूप समझ करके अपने कर्मोंके द्वारा, चेष्टाके द्वारा, क्रियाके द्वारा उसकी पूजा करे यानी सेवा करे—सुख पहुँचाये। जैसे बादलोंका समूह आकाशसे उत्पन्न हो करके आकाशके किसी एक अंशमें है और आकाश उसमें व्यापक है तो बादलकी तरह संसार और आकाशकी भाँति परमात्मा है। बादल आकाशसे उत्पन्न होता है और आकाशमें स्थित है तथा बादलोंमें आकाश व्यापक है इस सिद्धान्तके अनुसार बादल तो हुआ व्याप्य और आकाश हुआ व्यापक। इसी प्रकारसे संसार तो है व्याप्य और परमात्मा है व्यापक। आकाशसे बादलोंकी उत्पत्ति हुई इसलिये बादलोंका जो समूह है वह तो है आधेय और कार्य तथा आकाश है कारण तो इसमें परमात्मा तो हुए कारण और संसार है उसका कार्य। बादल आकाशमें एक देशमें है इसलिये आकाश तो हुआ आधार और बादल है आधेय। इसी प्रकारसे परमात्मा तो है आधार और संसार है आधेय। तो परमात्मा इस संसारमें व्यापक है और इस संसारका परम आधार है। इसके परम कारण हैं—इस तत्त्वको समझ लेना चाहिये। इस तत्त्वको समझनेके लिये अध्याय ९ श्लोक ४ और ५ के भावको समझना चाहिये, इनसे यह भाव अच्छी तरह समझमें आ जाता है। उन श्लोकोंको समझ करके सबके साथ व्यवहार करे। इस प्रकार समझकर सबके साथ व्यवहार करनेवाला साधक हर समय सबमें परमात्माको ही देखता है। वह परमात्माको किसी प्रकारसे भूल भी नहीं सकता। इसलिये परमात्माको तत्त्वसे समझ करके और मनसे सर्वत्र परमात्माका अनुभव करता हुआ, नेत्रोंसे सर्वत्र परमात्माको देखता हुआ सबको साक्षात् नारायण समझ करके सबके साथ बहुत ही उच्चकोटिका व्यवहार करे। जैसे साक्षात् भगवान् मूर्ति धारण करके यहाँ आ जायँ। तो मनमें एक धारणा करो कि भगवान् आ जावें तो उनके साथ हमारा कितना उच्चकोटिका व्यवहार हो सकता है। तो परमात्मा तो आये हुए ही हैं। हमने परमात्माको परमात्मा समझा नहीं—यह हमारी गलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस गलतीको ही दूर करना है। परमात्मा तो सब जगह विराजमान हो ही रहे हैं ऐसा समझ करके बड़े उत्साहसे, बड़े चावसे हमको परमात्माकी सेवा करनी चाहिये। वह हमारी जो सेवा है लीलाके रूपमें परिणत हो जायगी। फिर कोई भी हमसे सेवा कराता है तो हमें यह प्रतीत होता है कि हम भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं। हम अधिक-से-अधिक जितनी सेवा करें प्रत्यक्षमें हमें उतना अधिक-से-अधिक आनन्द आता है। और वह सेवा अपने-आप ही दिलचस्पीके साथ होती है, बल्कि कोई भी बदलेमें सेवा करना चाहे या प्रतिउपकार करना चाहे तो यह भाव होता है कि ये तो साक्षात् भगवान् हैं और इनका कार्य करना, सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

लड़का अपनेको माता-पिताका ऋणी समझता है और उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझता है। किंतु माता-पिता भी उसकी सेवा करने लगें तो आपत्ति पड़नेपर भी वह माता-पितासे सेवा कराना नहीं चाहता। मान लो उसके पैर दुखते हैं और उसके पिताजी कहते हैं कि मैं थोड़ा तुम्हारा पैर दबा दूँ तो वह कैसे दबवा सकता है। उसके हृदयमें तो पितासे भी बढ़कर भाव है—सबमें परमात्माके स्वरूपका भाव है। वह सोचता है—उनसे मैं सेवा कैसे कराऊँ। वे यदि करनेकी चेष्टा करते हैं तो उसको बड़ा संकोच होता है, लज्जा होती है, दुःख होता है, विचार होता है। ऐसा ही होना चाहिये। इसपर भी यदि पिता स्नेहसे किसी आपत्तिकालमें करना चाहता है और न करानेपर पिताके मनमें दुःख होता है तो पिताके संतोषके लिये लड़का मनमें लज्जा रखते हुए भी पिताकी राजीके लिये स्वीकार कर लेता है तो वह भी पिताकी सेवा ही है। क्योंकि अपना सिद्धान्त है कि अपने मनसे, तनसे, शरीरसे सबसे सबकी सेवा करनी और ये मन-तन-धन इनके ही हैं। वह समझता है कि शरीर पिताका ही है। उसकी उत्पत्ति पितासे ही है, पितासे ही पाला गया है, इसका पिता ही मालिक है। तो यह सारा विश्व परमात्माका स्वरूप है। यह अंशी है और मैं इसका अंश हूँ। यह समष्टि विश्वरूप है, विराट् है, व्यष्टि शरीर उसका ही अंश है। इसी प्रकारसे स्थूल शरीरके विषयमें और सूक्ष्म शरीरके विषयमें समझकर इन्हें औजार बना करके सबकी सेवा करे। पिताका जो अंश है उसका कर्तव्य है पिताकी सेवा करना। इसी प्रकार यह परमात्माका जो अंश है इसका कर्तव्य है परमात्माकी सेवा करना।

परमात्माका जो विराट् रूप है उसका यह शरीर अंश है। इस शरीरमें आत्मा परमात्माका अंश है। जीवात्मा परमात्माका अंश है। यह व्यष्टि शरीर समष्टि-शरीरका अंश है, यह समझ करके इस व्यष्टि शरीरके द्वारा समष्टिकी सेवा करे। समष्टि शरीर जो है वह परमात्माका शरीर है। समष्टि जो आत्मा है वह परमात्माका स्वरूप है। इस रहस्यको समझ करके बड़े चावसे, उत्साहके साथ अपने कर्तव्यका पालन करे। कोई भी अपनेसे सेवा कराये तो अपना अहोभाग्य समझे। समझे कि परमात्माकी मेरे ऊपर कितनी भारी कृपा है जो मेरी सेवाको स्वीकार कर रहे हैं। इसमें खूब आनन्द होना चाहिये, बड़ी प्रसन्नता होनी चाहिये। यदि इस प्रकार अपने जीवनको बिताये तो वह वास्तवमें परमात्मामें ही बरतता है। उसकी सारी चेष्टा परमात्मामें ही हो रही है। दूसरोंके द्वारा जो कुछ चेष्टा हो रही है उसको प्रत्यक्ष लीला प्रतीत हो रही है। मानो भगवान् अनेक रूप धारण करके और मुझे शामिल करके अपने परिकरोंसहित लीला कर रहे हैं।

यह संसार एक लीलास्थली है। इसमें परमात्मा अनेक रूप धारण करके अपनी लीला करनेके लिये आये हैं। और मैं भी उनकी लीलामें शामिल हूँ, इसलिये अपने इस शरीरके द्वारा उन सबकी सेवा करे। हृदयमें ऐसा भाव रखे कि वह किसी प्रकारसे भी दूसरेसे अपनी सेवा करवाये नहीं। अपना कर्तव्य समझ ले कि अपने शरीरद्वारा जो कुछ भी अपने अधिकारमें है तन-मन-धनसे दूसरोंकी सेवा करे, किंतु इस बातका खूब ख्याल रखे कि करावे नहीं। यही है बुद्धिमानी, यही है चतुरता, यही निष्काम भाव है। कर्मोंमें जो निष्काम भाव है वही एक प्रकारसे बुद्धिमत्ता है। वह सबसे श्रेष्ठ पुरुष है जिसके हृदयमें किंचित् मात्र भी प्रतिउपकार लेनेकी इच्छा नहीं हो। भगवान्‌की तो सेवा करनी चाहिये। क्या उनसे सेवा करानी चाहिये? एक सुपात्र लड़का भी अपने माता-पितासे सेवा करानेकी इच्छा नहीं करता है। करनेकी इच्छा रखता है। यह तो जगत्‌के माता-पिता हैं, परम माता-पिता हैं—इनसे बढ़ करके कोई हो ही नहीं सकता। ऐसा समझ करके हृदयमें भाव रखना चहिये किंतु इसे छिपाकर रखे। बाहरमें इस बातका प्रकाश नहीं करना चाहिये कि मेरा यह भाव है। मैं माता-पिताकी सेवा करता हूँ, आप सब मेरे माता-पिता हैं इस प्रकारके भावको प्रकाशित नहीं करना चाहिये, भीतरमें रखे। बाहरमें मुझे लोग जैसा समझें उसके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसा ही बनकर उनकी सेवा करे, बर्ताव करे, परंतु यह सिद्धान्त समझ लेना चाहिये कि कहीं हम ठगा नहीं जायँ। ठगाना क्या है? किसी दूसरेसे सेवा करवाना ठगाना है। और दूसरेकी सेवा करना ही अपने कर्तव्यका पालन करना है। कर्तव्यका पालन करनेसे बहुत शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाता है। अपने अधिकारमें भी जो चीज है उसमें भी यह नहीं समझे कि यह मेरी है। बल्कि यह समझे कि यह सब चीज इनकी है, इसे सेवा करनेके लिये मुझे सँभलाया है। इससे मैं ठीकसे सेवा करूँगा तो मुझे और अधिक जिम्मेवारी दे देंगे। अधिक जिम्मेवारी प्राप्त हो जायगी, तो और भी ज्यादा आनन्दकी बात है, अतः उनकी चीज उनके लिये अर्पण कर देनी चाहिये। उनके लिये लगा देनी चाहिये। अपनेको तो उनकी सँभाल करनी है। यह समझना चाहिये ये एक प्रकारके औजार हैं और ये इन्हींके हैं अतः इन्हींके पदार्थोंसे इन्हींकी सेवा हो रही है। और मेरेमें करनेकी जो शक्ति है इसे भी परमात्माने दिया है, अपनी तो कोई चीज है ही नहीं, तो फिर यदि कोई मेरा नाम करे तो मुझे लज्जा होनी चाहिये। शरम आनी चाहिये, हृदयमें दुःख होना चाहिये। अपना मान, अपनी बड़ाई सुनकर अपने मनमें जो हर्ष होता है यह तो हमारा पतन है। यदि लोगोंका रुपया इकट्ठा करके अच्छे काममें लगाऊँ और उससे मेरी बड़ाई हो तथा मैं कहूँ कि रुपया मेरा है और मैंने आपकी सेवा की है तो वह तो एक प्रकारसे मेरे लिये चोरी करना है। इसी प्रकारसे यह समझना चाहिये कि मेरे पास यह जो स्टेट है, चीज है, वह सब भगवान्‌की है। भगवान्‌की चीज भगवान्‌के काममें लगायी जा रही है, ऐसी परिस्थितिमें उसको अपनी चीज मानूँ, अपना धन समझूँ, अपना शरीर समझूँ तथा उससे होनेवाली जो चेष्टा है—सेवा है उनके फलस्वरूप लोग मेरी बड़ाई करें और उसे मैं मानूँ कि यह मेरी बड़ाई है ऐसा मानकर मैं प्रसन्न होऊँ तो यह मूर्खता है, एक प्रकारसे अपने-आपको धोखा देना है। इसी कारणसे परमात्माकी प्राप्तिमें हम लोगोंको विलम्ब हो रहा है, हम उस तत्त्वको नहीं समझ रहे हैं। इस तत्त्वको समझ करके जो आदमी व्यवहार करता है उसका व्यवहार बड़ा सुन्दर होता है, क्योंकि उसका कोई स्वार्थ तो रहता ही नहीं। उसका जो शरीर है उस शरीरके पालन-पोषणके लिये, उसको कायम रखनेके लिये संसारसे जो चीज ली जाती है उसमेंसे किसी अंशको ले करके काममें लाना चाहिये। एक प्रकारसे वह भी भगवान्‌की सेवा ही है, क्योंकि शरीर तो भगवान्‌का है और यह सब सामग्री भगवान्‌की है जो उसके लिये प्रसाद है, जब यह भाव समझमें आ जाता है तब उसकी सारी चेष्टा अमृतमय हो जाती है। लोग चाहे समझें या न समझें। जो लोग इस बातको समझ जाते हैं वे भी इसी प्रकार मुग्ध हो जाते हैं। अपनेको समझाना नहीं है, अपनी तरफसे समझानेकी कोशिश है, वही मूर्खता है। यह गुप्त भाव है। जो स्त्री उच्चकोटिकी एकनिष्ठ पतिव्रता होती है वह अपने भावको छिपाकर अपने पतिकी सेवा करती है। उसे यदि कोई कह दे कि तू पतिकी सेवा करती है तो उसे लज्जा आती है। इसी प्रकार जो पुरुष अपनेको छिपाकर संसारमें व्यवहार करता है, भगवान् उससे बहुत ही खुश होते हैं। वे समझते हैं कि मेरे तत्त्वको समझनेवाला वास्तवमें यही पुरुष है। हमको तो किसीको समझाना ही नहीं चाहिये कि ये हम इस भावसे करते हैं। तो भी दूसरे यदि समझ जायँ तो अपने मनमें लज्जा और दुःख होना चाहिये। अपना जो भाव है उसे गुप्त रखना चाहिये, जैसे पापी आदमी पापको छिपाकर रखता है उसी प्रकार हमको यह भाव छिपाकर रखना चाहिये। भक्तिसहित निष्काम कर्मका भाव—उपासना-प्रधान निष्काम कर्मयोगका तत्त्व-रहस्य समझाया गया। यदि यह समझमें आ जाय तो और कुछ भी समझना नहीं है। इसे समझनेके लिये गीताके पाँच श्लोक इसके प्राण हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता ९। ४-५, ६। ३०-३१, १८। ४६)

(कैसेट-नं० ४७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ४७९ से आगे]

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाका प्रभात है। स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिने आज वृन्दावनके रङ्गमञ्चको एक नये साजसे सजा दिया तथा सर्वथा अभूतपूर्व दृश्य प्रारम्भ हुआ। शारदीय मन्द समीरके झोंकोंसे तरुकिसलय कम्पित हो रहे हैं, तरुशाखाओंपर बैठे हुए पक्षियोंके मधुर कलरवसे वन निनादित हो रहा है, मानो वनकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवी किसलय-संचालन तथा पक्षिकलरवके मिससे नृत्य करती हुई गा रही हैं, नये दृश्यका मङ्गलाचरण कर रही हैं। अचानक पट-परिवर्तन हुआ और दृश्य सामने आ गया।

स्तूपाकार यज्ञ-सम्भारके निकट खेलते हुए राम-श्याम दोनों आ पहुँचे। चपल नन्दनन्दन एवं बलरामने कुछ वस्तुएँ उठाकर देखना चाहा कि ये क्या हैं। पर जननीने हाथ बढ़ाकर दोनोंको पकड़ लिया और बोलीं—'मेरे लाल! आज यज्ञ है, यह देवान्न है। तेरे बाबा एवं ब्राह्मण इस अन्नसे यज्ञ करेंगे। तू खेलकर आ रहा है, तुझे इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये।' व्रजराजनन्दन स्थिर खड़े होकर आश्चर्यचकित नयनोंसे द्रव्यसम्भारकी ओर देखने लगे। पर अब व्रजराजके लिये द्रव्यसम्भारमें मनोयोग देना कठिन हो गया। प्राणोंमें एक विद्युत्-सी दौड़ उठी—एक बार अपने लालको हृदय लगाकर उसे प्यार कर लूँ, आह कैसी भोली चितवनसे वह मेरी ओर देख रहा है!

नन्दराय मानो खिंचे हुए-से द्रव्यस्तूपोंके बीचसे निकल आये। निकट आकर राम-श्यामको गोद लेकर उन्होंने छातीसे लगा लिया। नन्दरायके बाहुपाशोंमें बँधे दोनों भाइयोंके नेत्र खिल उठे। एक क्षणके लिये बंकिम दृष्टिसे परस्पर दोनों भाइयोंने एक-दूसरेको देखा, मानो कुछ संकेत-सा कर रहे हों। फिर दूसरे ही क्षण अनन्त मधुधाराकी वर्षा-सी करते हुए व्रजराजनन्दनने पूछा—'बाबा! आज क्या है, किसका यज्ञ है, यज्ञ कैसे होता है, उसका क्या फल होता है? तुम्हें तो किसी बातकी त्रुटि नहीं, तुम यज्ञ किसलिये करते हो?' एक साथ ही नन्दके प्राणधनने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी—

कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः।
किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः॥

नन्दरायने मन-ही-मन एक बार इन्द्रको नमस्कार किया। फिर, 'मेरे लाल! यह वर्षाधिदेव भगवान् इन्द्रका यज्ञ है।' यह कहकर वे अपने प्राणधनको यज्ञकी कर्तव्यता बताने लगे। व्रजराजनन्दन दोनों हाथोंसे अपने बाबाके बायें कंधेको पकड़े हुए गोदमें चढ़े-चढ़े ही सुन रहे थे। नन्दरायने बात समाप्त ही की थी कि चटपट व्रजराजनन्दन बोल उठे—'बाबा! रात मैंने एक स्वप्न देखा है—

आज एक सपनें कोउ आयो। संख चक्र भुज चारि बनायो॥
मोसों यह कहि कहि समुझायो। यह पूजा किन्ह तुम्हहि सिखायो॥
सूर स्याम कहि प्रगट सुनायो। गिरि गोबर्द्धन देव बतायो॥

× × ×

यह तब कहन लगे दिवराई। इंद्रहि पूजें कौन बड़ाई॥
कोटि इंद्र हम छन में मारैं। छन ही में पुनि कोटि सँवारैं॥
जाके पूजें फल तुम पावहु। ता देवहि तुम भोग लगावहु॥
तुम आगे वह भोजन खैहै। मुख माँगे फल तुमको दैहै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजराजनन्दनका स्वप्न सुनकर सभी गोप चकित हो उठे। सभी अपना-अपना अनुमान लगाने लगे। हठात् श्यामसुन्दरका मुख एक अनिर्वचनीय तेजसे उद्दीप्त हो उठा, उनके मुखसे शास्त्र-वचन निकलने लगे; सबका सारांश था—इन्द्रयागके स्थानपर गो-यज्ञ, ब्राह्मण-यज्ञ, गोवर्द्धन-यज्ञ करो! नीलमणिको इस प्रकार परम विद्वान्‌की तरह तर्कसमन्वित युक्तियोंसे इन्द्रयागका खण्डन करते देखकर सब-के-सब आश्चर्यमें पड़ गये। सन्नन्दने अनुभव किया—'एक नील तेज:पुञ्ज यशोदाके नीलमणिके चारों ओर छिटका हुआ है।' अत: परस्परके परामर्शसे यह निष्कर्ष निकला कि 'साक्षात् आदिपुरुष नारायणने ही नीलमणिके मुखसे ऐसी आज्ञा दी है। जिस नारायणने अबतक व्रजके प्राणधन नीलमणिकी अनेक विपत्तियोंसे रक्षा की, उनकी आज्ञा ही सर्वमान्य है।' इसी निश्चयके अनुसार उसी क्षण इन्द्रयागका प्रयत्न गोवर्द्धनयागके रूपमें परिणत हो गया। गिरिराजके चरणतलमें समस्त व्रज एकत्र होने लगा। दो घड़ियोंमें ही पर्वतराजका चरणप्रान्त अनन्त गो-गोप एवं गोपाङ्गनाओंसे परिपूर्ण हो गया।

यथासमय स्वस्त्ययनपूर्वक गिरिराजकी विधिवत् पूजा आरम्भ हुई। अन्न, व्यञ्जन आदि स्तूपाकार सजा दिये गये। व्रजराजनन्दनके परामर्शसे सभी गोप एकचित्त होकर प्रत्यक्ष प्रकट होनेकी आशासे गिरिराजकी उपासनामें—

बिनती करत सकल अहीर।
कलस भरि भरि ग्वाल लै लै सिखर डारत छीर॥
चल्यो बहि चहुँ पास ते पय सुरसरी जल ढारि।
बसन भूषन लै चढ़ाए भीर अति नर-नारि॥
मूँदि लोचन भोग अरप्यो प्रेम सों रुचि भारि।
सबनि देख्यो प्रकट मूरति सहस भुजा पसारि॥
रुचि सहित गिरि सबनि आगे करनि लै लै खाय।
नंदसुत महिमा अगोचर सूर क्योंकर गाय॥

गिरिराजने सचमुच सबके भोगको प्रत्यक्ष प्रकट होकर स्वीकार किया, सबका मनोरथ पूर्ण किया। मेघगम्भीर शब्दोंमें नन्दराय और नन्दरानीसे गिरिराजने वर माँगनेका आदेश दिया। श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए नन्दरायने कहा—

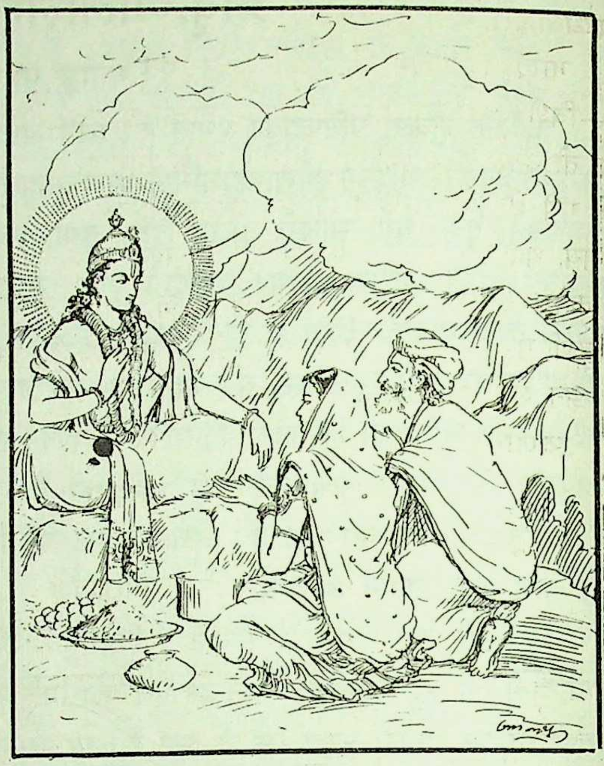

कहत नंद सब तुमही दीनो, माँगत हौं हरि की कुसलाई।

और नन्दरानी बोलीं—

सदा तुम्हारी सेवा करिहौं, और देव नहीं करौं पुजाई।
सूर स्यामको नीके राखौ कहति महरि ये हलधर भाई॥

गिरिराज 'एवमस्तु' कहकर बोले—

और कछू माँगहु नँद मोसों।
जो चाहौ सो देहुँ तुरत ही कहत सबै गोपन सों॥
बल मोहन दोऊ सुत तेरे कुसल सदा ये रैहें।
बाढ़ैं सुरभी बच्छ घनेरै चर तृन बहुत अघैहें॥
इन के कहें करी मम पूजा, अब तुम सब घर जाहु।
भोग प्रसाद लेहु कछु मेरो, गोप सबै मिलि खाहु॥

श्रीगोवर्द्धनका प्रत्यक्ष दर्शन गोपोंके लिये असाधारण बात हुई; सबको दृढ़ विश्वास हो गया कि वास्तवमें श्रीआदिपुरुष नारायणकी इच्छा ही व्रजराजनन्दनमें अभिव्यक्त हुई थी। लीलाशक्तिकी इच्छासे गोप यह तो नहीं ही समझ पाये कि यशोदाके नीलमणि ही स्वयं आदिपुरुष पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इस ज्ञानकी आवश्यकता भी नहीं थी; क्योंकि वैसा होनेपर तो मधुर लीलारस-सिन्धुमें निमग्न व्रजगोपोंकी रसानुभूति विच्छिन्न हो जाती। जो हो, अब गोवर्द्धनयागके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्रिय गायोंका सत्कार आरम्भ हुआ—

ततश्च सर्वोऽपि विस्त्रब्धः परमप्रेमभाजनगोसभाजन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारब्धवान्। (श्रीगोपालचम्पू)

गायोंका शृंगार तो सात पहर पूर्वसे होने लगा था—विशेषत: व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दरकी गायोंकी वेश-भूषा तो आज देखने ही योग्य थी। सबके सींग सोनेसे मढ़ दिये गये थे; इन स्वर्णिम शृंगोंसे उनका सौन्दर्य शतगुणित हो गया था; उज्ज्वल रजतपत्रोंसे मढ़े हुए खुर चमक रहे थे; प्रत्येकके गलेमें मणिमुक्तानिर्मित हार लटक रहे थे; सबको किङ्किणी पहना दी गयी थी; वे घूम रही थीं तथा किङ्किणीका झन-झन शब्द गिरिराजके वन-प्रान्तरमें गूँज रहा था—

स्वर्णनिर्मितविषाणसुरूपा
रूप्यसंवृतखुरा धृतहारा:।
किङ्किणीप्रकरझंकृतियुक्ता
नैचिकीनिचितयो रुचिमाञ्चन्॥

(श्रीगोपालचम्पू)

इन गायोंकी भी पूजा की गयी। सुकोमल तृणाङ्कुर एवं विविध पक्वान्न भोजनके लिये दिये गये; इनके बछड़े आज इनके पास ही छोड़ दिये गये। उनके आनन्दकी सीमा न थी। भोजन करती हुई ये गायें स्नेहवश क्षण-क्षणमें श्रीकृष्णकी ओर सिर उठा-उठाकर देख लेती थीं। श्रीकृष्ण दीख जाते तो पुन: चरने लग जातीं। पर यदि नहीं दीखते तो ग्रास लेना स्थगित कर देतीं। जैसे किसी प्रियवियोगमें उपरामता आती है, भोगोंकी ओर दृष्टि नहीं जाती, वैसे ही श्रीकृष्ण ज्यों ही आँखोंसे ओझल हुए कि ये गायें भोजन आदि सब छोड़कर व्याकुल हो जातीं तथा हम्बारवके रूपमें आर्तनाद करने लगतीं—

लब्धार्चाश्चारुवेषै: शबलितवपुष: प्राप्तभोगावलीका
वत्सै: पृक्ता: प्रमोदं पृथुतरमभजन् धेनव: सत्यमेव।
किन्तु श्रीकृष्णदृष्टिप्रमदवलयिता यर्हि तर्ह्येव नो चेत्
केचिद्यद्वद्भजन्ते मधुरविधुरत: संस्कृतं षाडवादि॥

(श्रीगोपालचम्पू)

कुछ गोपोंकी गायोंने उनके हाथसे चारा-दाना नहीं लिया, तब वे व्रजराजनन्दनके पास दौड़ें आये और बोले—बेटा नीलमणि! इस चारेको तू तनिक अपने हाथसे छू दे, तेरे हस्तकमलोंकी सुगन्धका संधान पाकर वे गायें अतिशय प्रीतियुक्त होकर चारा खाने लग जाती हैं—

गोपा ऊचु: कृष्ण गोग्रासमेतं हस्ताम्भोजस्पृष्टमीषत्कुरुष्व।
तत्सौगन्ध्यप्राप्तसंधानमेनं गाव: सुष्ठुप्रीतित: स्वादयन्ते॥

(श्रीगोपालचम्पू)

इस प्रकार गायोंकी तृप्ति सम्पादन करनेके बाद गायोंका कौतुक आरम्भ हुआ। अनादि परम्परासे नन्दव्रजमें यह गो-सम्भ्रमका कौतुक होता आया है। इस वर्ष भी आरम्भ हुआ। व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दर एवं अग्रज बलरामका संकेत पाकर उनके सखा गायोंको विविध चेष्टाओंसे बिझुका देते और गायें पूँछ उठाकर कूदती-फाँदती हुई नृत्य करने लगतीं—

कूकें देत जात कानन पर ऊँची टेरन नाम सुनावत।
सुंदर पीत पिछोरी ले ले मुख पर फेर सबन बिझुकावत॥
काहू कौ बछरा काहू को ले ले आगे आन दिखावत।
पूँछ उठाय सूधि ह्वै भाजत आप हँसत और सबन हँसावत॥
फिर चुचुकार सूधि कर भाजत बछरन अपने हाथ मिसावत।
श्रीबिट्ठल गिरिधर बलदाऊ इहि बिधि अपनी गाय खिलावत॥

एक ओर राजा वृषभानु गायोंको खेला रहे थे, दूसरी ओर अन्य गोपोंकी मण्डली थी; बीचमें थे यशोदाके नीलमणि। उमंगमें भरकर अब नीलमणि स्वयं गायोंको बिझुका रहे थे—

आप गुपाल कूक मारत हैं गोसुत कों भर कोरी।
धों धों करत लकुट कर लीने मुख पर फेर पिछोरी॥

धौरी प्रतीक्षामें थी कि कब मेरे प्राणधन श्यामसुन्दर आकर मुझे खेलाते हैं; इतनेमें श्यामसुन्दर आ गये, धौरीकी उत्कण्ठाका क्या कहना—

खेलन कों धौरी अकुलानी।
ठाढ़ मेल सनमुख आतुर ह्वै नंदनँदन की सुन मृदु बानी॥

धौरी आनन्दातिरेकसे नाच उठी—

बड़रे गोप चकित भए देखत ऐसी कबहुँ न सुनी कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाचत गाय भई नौतम ब्रज बरसों बरस कुसल यह जानी॥

धौरीको खेलते देखकर मानो धूमरिको ईर्ष्या हुई; उसने निश्चय कर लिया कि प्रथम स्थान आजके खेलमें मेरा होगा। हुंकार करती हुई श्यामसुन्दरके सामने आयी; मानो प्रणयरोषसे भरकर श्यामसुन्दरको उपालम्भ दे रही थी कि आज मेरी पुचकारमें इतना विलम्ब क्यों। व्रजराजनन्दन हँस पड़े; धूमरिको खेलाने लगे। सचमुच धूमरिने सबको मात कर दिया—

सब गायन में धूमरि खेली।
स्त्रवन पूँछ उचकाय सूधि ह्वै ग्वाल भगावत फिरत अकेली॥

धूमरिको सँभालना कठिन हो गया। किसीका साहस नहीं था कि धूमरिको स्पर्श करे। अतः व्रजराजनन्दन हँसते हुए आगे बढ़े—

पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली।
चुंबत मुख आँको भर भेटी टेर कहत लाओ गुर भेली॥

इस खेलमें आज सबने यह एक आश्चर्य अनुभव किया कि गायोंके समक्षसे जब श्रीकृष्ण हट जाते थे, तभी गायोंको अपने बछड़ोंकी स्मृति होती थी और बछड़ोंको दूर हटानेपर वे व्यग्र होतीं। अन्यथा श्रीकृष्णके सामने रहनेपर तो वे मानो सर्वथा श्रीकृष्णमय ही हो जातीं, उन्हें और कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। यह उनकी प्रत्येक चेष्टासे स्पष्ट हो रहा था—

यदा मुदा याति हरिः परोक्षतां
गवां तदा ता निजवत्सकृष्टितः।
व्यग्रीभवन्ति स्म यदा समक्षतां
यात्येष यान्ति स्म तदा तदात्मताम्॥

(श्रीगोपालचम्पू)

समय अधिक हो गया था। गायें खेलमें उन्मत्त हो गयी थीं। नन्दकी आज्ञासे गोपोंने उन्हें एकत्र करनेकी अथक चेष्टा की, पर सब व्यर्थ। व्रजराज चिन्तित हो उठे। यशोदाके नीलमणिने पिताके चिन्तित मुखकी ओर देखा; फिर होठोंपर मुरली रखकर उसमें सुर भरने लगे। एक क्षणमें गोवर्द्धनका समस्त वनप्रान्तर मुरलीरवसे झंकृत हो उठा। व्रजाङ्गनाओंके नेत्र बंद हो गये, सभी बाह्यज्ञानशून्य हो गयीं तथा अपार गोराशि जहाँ जैसे थी, स्थिर शान्त खड़ी हो गयी—

गोवर्द्धनाचलमहस्य युतादियूथ-
गोरोधनाय पशुपा न हि तत्र शेकुः।
फूत्कारकेलिकलया मुरली मुरारे-
रासीदलं यदसकौ गुणकोटिकल्पा॥

(श्रीगोपालचम्पू)

गोप इस बार जब गायोंको पकड़ने चले, तब प्रतीत हुआ मानो गायोंके मन:प्राण किसी दूसरे राज्यमें हैं, उनके शरीरको कोई कहीं भी खींच ले जाय। गोपोंने बिना परिश्रम गायोंको एकत्र कर लिया।

इसके बाद ब्राह्मणभोजन आदि अन्य समारोह सम्पन्न करके व्रजराजने गोवर्द्धनकी परिक्रमाका आदेश दिया। आगे-आगे गोपंक्ति, उनके पीछे राम-श्याम, फिर ब्राह्मण, फिर नन्द-यशोदा आदि, उनके पीछे परिजन, फिर अन्य गुरुजनपत्नियाँ, फिर व्रजाङ्गनाओंका यूथ, व्रजाङ्गनाओंके पीछे दासियाँ, उनके पीछे व्रजके अन्य प्रमुख व्यक्ति तथा अन्तमें अपार जनता—इस क्रमसे गिरिराजकी परिक्रमा प्रारम्भ हुई। व्रजाङ्गनाओंके नेत्रोंमें तो प्रियतम श्यामसुन्दर छाये हुए थे। उन्हें पथ नहीं दीख रहा है, पथके स्थानपर प्राणधन श्यामसुन्दरकी लीला दीख रही है; उन्हींमें तन्मय हुई लीला गाती हुई वे चल रही हैं। परिक्रमा आरम्भ होकर समाप्त भी हो गयी, सभी व्रजकी ओर लौट रहे हैं; पर व्रजाङ्गनाएँ उसी तरह स्वर-में-स्वर मिलाकर लीला गाती हुई चल रही हैं—

गिरिपूजेयं विहिता केन ? अरचि शक्रपदमभयं येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? पूतनिका सा निहता येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? तृणावर्ततनुदलनं येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? यमलार्जुनतरुमुदकलि येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? वत्सवकासुरहननं येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? व्योमाघासुरमरणं येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? कालियदमनं कलितं येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? खरप्रलम्बकशमनं येन॥
गिरिपूजेयं विहिता केन ? दवयुग्मं परिपीतं येन॥

(श्रीगोपालचम्पू)

'यह गोवर्द्धन-पूजा किसने की ? जिसने इन्द्रलोकको भयशून्य बनाया, जिसने उस पूतनाका वध किया, तृणावर्तका मर्दन किया, जोड़वाँ अर्जुनके वृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया, व्योमासुर और अघासुरका वध किया, कालियनागका दमन किया, धेनुकासुर एवं प्रलम्बासुरका विनाश किया और दो बार दावाग्निका पान किया, उसीने यह पूजा की है।' (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

किसी साध्य वस्तुकी प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसे 'साधना' कहते हैं। जगत्में सभी जीव सुखकी इच्छा करते हैं, सुख ही सबका साध्य है। सुख भी ऐसा—जो सबसे बढ़कर हो, जिसमें किसी तरहकी जरा भी कमी न हो, जो सदा एक-सा बना रहे, कभी घटे नहीं—कभी हटे नहीं, जो अनन्त हो, असीम हो, अखण्ड हो, नित्य हो और पूर्ण हो। ऐसा सुख विनाशी और परिवर्तनशील संसारकी किसी वस्तुमें हो नहीं सकता। यहाँ अनन्त, असीम, अखण्ड, नित्य और पूर्ण कुछ भी नहीं है। नित्य, सत्य, सनातन, सम, एकरस, अनन्त, असीम, अखण्ड और पूर्ण तो एकमात्र भगवान् ही हैं। इसलिये वही पूर्ण सुखस्वरूप हैं और वही सबके परम साध्य हैं। मनुष्य चाहे समझे नहीं, कहे नहीं, परंतु वह 'पूर्ण' को चाहता है। इसलिये वह चाहता है 'भगवान्' को ही। जगत्में उसे कहीं भी पूर्णता दीखती नहीं, वह सभी अवस्थाओंमें बड़े-से-बड़ा सम्राट् और इन्द्र बन जानेपर भी अभावका—अपूर्णताका ही अनुभव करता है। उसके मनमें कोई कमी खटकती ही रहती है, इसीलिये वह प्रत्येक स्थितिमें अतृप्त और असंतुष्ट रहता है और किसी दूसरी स्थितिकी खोजमें लगा रहता है। परंतु वह मोहवश पूर्णतम भगवान्की ओर न जाकर दुःख और अतृप्तिकी उत्पत्ति करनेवाले, अभावभरे भोगोंमें ही सुख मानकर उन्हींकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है, इसीसे वह सच्चे सुखसे सदा वञ्चित रहता है। वह करता है अपनी जानमें सुखकी साधना, परंतु उसे मिलता है दुःख, असफलता, अशान्ति और अतृप्ति! इसीलिये भोगोंके निमित्त किया जानेवाला प्रयत्न यथार्थमें साधना नहीं है। साधना शब्दकी सार्थकता वस्तुतः वह है, जहाँ वह परमानन्दस्वरूप श्रीभगवान्के लिये होती है।

अतएव सबसे पहले यह निश्चय करो कि हमारे साध्य हैं—एकमात्र श्रीभगवान् और साधना है—अपनी स्थिति और शक्तिके अनुसार भगवान्की प्राप्तिके लिये किये जानेवाले प्रयत्न।

यह याद रखो कि भगवान् एक हैं, एक ही हैं। एक ही भगवान् लीलाके लिये असंख्य रूपों और असंख्य नामोंसे प्रकाशित और पूजित होते हैं। कोई कैसी भी साधना करे, यदि वह भगवान्के लिये है तो अन्तमें उसको वही भगवान् मिलते हैं, जो दूसरोंको दूसरी साधनाओंके द्वारा मिलते हैं। पाते हैं सब एक ही सत्यको, पहुँचते हैं सब एक ही जगह। रास्ते अलग-अलग हैं। रास्ता सबके लिये एक हो भी नहीं सकता। जैसे एक ही श्रीकाशीजीको जानेवाले भिन्न-भिन्न दिशाओंके यात्री अपनी-अपनी दिशाओंसे भिन्न-भिन्न मार्गोंद्वारा जाते हैं और जैसे वे अपने मानसिक, आर्थिक और शारीरिक शक्तिके अनुसार पैदल, बैलगाड़ीपर, घोड़ोंपर, रेलपर अथवा वायुयानपर सवार होकर जाते हैं, और इसीमें उन्हें सुगमता भी होती है, वैसे ही भिन्न-भिन्न रुचि और संस्कारके मनुष्योंको अपने-अपने अधिकार, शक्ति, रुचि, बुद्धि, संयम, अभ्यास और इच्छा आदिके तारतम्यसे उन्हींके अनुसार विभिन्न साधनाओंके द्वारा तीव्र या मन्द गतिसे भगवत्प्राप्तिके मार्गको तै करना पड़ता है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि सबको एक ही साधन करना चाहिये, वे भूलमें हैं। अतएव श्रद्धा और विश्वासके साथ अपने मार्गपर तेजीके साथ चलते रहो। जो लोग नये-नये साधनोंके लिये ललचाकर बार-बार पुराने साधन छोड़ते रहते हैं, वे साधनोंके बदलनेमें ही अपने जीवनका बहुमूल्य समय पूरा कर देते हैं और साध्यतक नहीं पहुँच पाते। साध्यपर दृष्टि रखते हुए अपने मार्गसे जरा भी विचलित न होकर सदा आगे बढ़ते रहो, प्रकाश अपने-आप ही मिलता रहेगा।

अपने साधनमें साध्यके समान ही आदर-बुद्धि रखो। जो पुरुष साधनाकी अवहेलना या तिरस्कार करता है, उसे साध्य कभी प्राप्त नहीं होता। अवश्य ही अपने लिये साधनाका चुनाव करते समय अच्छी तरहसे जाँचकर देख लो, अनुभवी पुरुषोंसे सलाह ले लो या कोई सद्गुरु प्राप्त हो सकें तो उनका आदेश प्राप्त कर लो, फिर लग जाओ अनन्यतासे तत्पर होकर उसीमें। साधनामय बन जाओ। अपने मन, इन्द्रियोंको साधनाके साथ घुला-मिलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना-स्वरूप बना दो।

एक बात अवश्य याद रखो—कोई किसी भी राहसे कैसे भी जाय, जैसे उसको राहखर्चकी—रास्तेमें खान-पान आदिकी आवश्यकता होती है, वैसे ही भगवत्प्राप्तिके मार्गमें सद्गुणोंकी, सद्विचारोंकी, सत्कर्मोंकी—एक शब्दमें दैवी सम्पत्तिकी[१] आवश्यकता होती है। इसके बिना साधनाका सफल होना असम्भव नहीं तो असम्भव-सा अवश्य है। इसलिये निरन्तर दैवीसम्पदाको प्राप्त करनेकी कोशिश करते रहो। प्रत्येक क्रियामें सावधान रहो—कहीं अपने साध्यको भूल तो नहीं रहे हो, कहीं अपनी साधनामें प्रमाद तो नहीं हो रहा है, कहीं साध्य और साधनाके विरुद्ध तो कुछ नहीं कर बैठे हो। साधनासे हटानेवाले हजारों प्रलोभन और भय तुम्हारे मार्गमें आयेंगे, तुम्हें लालचमें डालकर और दु:खोंकी बड़ी डरावनी मूर्ति दिखाकर डिगानेकी चेष्टा करेंगे, पर सावधान, कहीं डिगना नहीं। याद रखो—भगवान् निरन्तर तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी सच्ची साधनामें सदा तुम्हारे सहायक हैं। उनकी कृपासे तुम उन्हें अवश्य ही प्राप्त करोगे। बेखबर होकर कहीं रास्तेसे ही न लौट पड़ना, याद रहे—सावधानी ही साधना है!

सभी प्रकारके साधकोंके लिये नीचे लिखी बातें जानने और समझनेकी हैं। इनको पढ़कर तुम अपने लिये, जितना और जो कुछ ठीक हो, उसे ग्रहण करो।

साधनाके विघ्न बहुत-से हैं, उनमें कुछ ये हैं—

आहारदोष, अस्वस्थता, आलस्य, प्रमाद, पुरुषार्थहीनता, अश्रद्धा, कुतर्क, अधैर्य, अनिश्चय, संशय, असंयम, असहिष्णुता, अपवित्रता, प्रसिद्धि, पुजवानेकी इच्छा, मानकी चाह, घृणा, द्वेष, निर्दयता, दुराग्रह, चपलता, जल्दबाजी, परदोषदर्शन, परनिन्दा, परचर्चा, बाहरी वेशभूषा, विवाद या शास्त्रार्थ, शरीरके आरामकी चाह, विलासिता, दूसरेसे सेवा करानेकी वृत्ति, लोकरञ्जनमें रुचि, कुसंग, साधनाके प्रतिकूल या साधनाके लिये अनावश्यक साहित्यका अध्ययन, माता-पिता और गुरुजनोंका तिरस्कार, शास्त्र और संतोंके वचनोंमें अविश्वास, भजनमें लापरवाही, सर्वथा कर्मत्याग अथवा बहुधंधीपन, दूसरोंके साधन और लक्ष्यके प्रति लोभ, दूसरेके साध्य, साधन और धर्मसे द्रोह, साधनाका अभिमान, ब्रह्मचर्यका खण्डन, विपत्तिमें घबराकर और सम्पत्तिमें फूलकर कर्तव्यको भूल जाना, किसी मनुष्य, स्थान और वस्तुविशेषमें ममता, आश्रमादिकी स्थापना और लक्ष्यको भूल जाना।

बुरी कमाईका, चोरीके पैसोंका, दूसरेके हकका अन्न न खाओ, खान-पान, परिश्रम-व्यायाम और नियमादिके द्वारा शरीरको नीरोग रखो, आजका काम कलपर, अभीका काम पीछेपर मत छोड़ो, करने योग्य कर्मका त्याग और न करने योग्य हानिकर कामोंका ग्रहण न करो, निरन्तर उद्योगशील पुरुषार्थी बने रहो, प्रारब्धको दोष लगाकर सत्कर्म और भजनसे चित्तको न हटाओ, भगवान्पर, उनकी दयापर, उनकी महान् शक्तिपर, आत्माके अनन्त बलपर और अपने पुरुषार्थपर श्रद्धा रखो, बेसिर-पैरका व्यर्थ तर्क न करो, धीरज छोड़कर साधनाका त्याग कभी न करो, मनमें निश्चय रखो कि साधनामें सिद्धि मिलेगी ही या सिद्धि प्राप्त करके ही छोड़ेंगे। मनमें किसी संदेहको न आने दो, संशयात्मा पुरुष गिर जाते हैं। आहार, व्यवहार, शयन, भाषण और चिन्तनमें—सभी बातोंमें संयम करो—आसन-प्राणायामादिसे शरीरका संयम करो, अपना काम अपने हाथसे करो, शरीरसे परिश्रम करो, हिंसा और मैथुनादिसे बचो, सत्य-मधुर-हितकर और परिमित वचनोंसे वाणीका संयम करो। झूठ न बोलो, कड़वी बात न कहो, किसीकी चुगली न करो, शाप न दो, हितकी बात कहो और व्यर्थ चर्चा मत करो—फजूल न बोलो, मनके विषाद, क्रूरता, चञ्चलता, अपवित्रता और व्यर्थ चिन्तन आदि दोषोंका त्याग करके मनका संयम करो। मनमें कभी शोक-विषाद न करो।

किसीका बुरा न चाहो, मनको भगवान्के ध्यानमें लगाओ, मनके अंदर द्वेष, वैर, क्रोध, हिंसा, काम आदि

१-निर्भयता, अन्त:करणकी पवित्रता, ज्ञानयोगमें दृढ़ स्थिति, उदारता, इन्द्रियोंका दमन, भगवदर्थ कर्म, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा-त्याग, प्राणियोंपर दया, लोभहीनता, कोमलता, बुरे कर्मोंमें लज्जा, चपलताका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धता, द्रोहहीनता और निरभिमानता। (गीता १६। १—३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपवित्र वृत्तियोंको न रहने दो, मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन न करके केवल श्रीभगवान्‌का और भगवत्सम्बन्धी साधनाका चिन्तन करो। बहुत कम बोलो और बहुत कम संसारका चिन्तन करो। इन्द्रियोंको विषयोंसे रोको। जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह, कर्णछेदन और श्राद्धादिमें अधिक खर्च न करो, गहने-कपड़ोंमें अधिक धन मत लगाओ। भोजनका संयम रखो—बहुत कीमती चीजें मत खाओ, मांस, मद्य, अंडे आदिका सर्वथा त्याग करो, अपवित्र और जूँठी चीजें न खाओ, ज्यादा मत खाओ, स्वादके लिये रोग पैदा करनेवाली चीजें मत सेवन करो। नशीली चीजें त्याग दो। तंबाकू, भाँग, बीड़ी आदि छोड़ दो। खर्च सभी बातोंमें कम करो। अधिक खर्च करनेवालेके धनका अभाव होता है और उसे धनकी चाह बनी रहती है। इससे उसका चित्त सदा ही चञ्चल और पापयुक्त रहता है। उससे साधना नहीं बन सकती। अपनी आवश्यकताओंको जितना घटा सको, घटा दो। देखा-देखी न करो, बहुत शान्ति मिलेगी। संन्यासी हो तो अपने आश्रमके अनुरूप मन-वचन-शरीरका संयम करो। संयमके बिना साधना बहुत कठिन है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वोंको और विपत्तियोंको भगवान्‌की देन समझकर सहन करो। सुख और सम्पत्तिको भी सहन करो। जो सुख-सम्पत्तिको पाकर हर्षके मारे कर्तव्यच्युत हो जाते हैं वे भी असहिष्णु ही हैं। दुःखमें उद्विग्न मत होओ, सुखमें हर्षित मत होओ। शरीर और मनको पवित्र रखो।

प्रसिद्धिसे सदा बचो। साधकके लिये प्रसिद्धि विषके तुल्य त्याज्य है। प्रसिद्धि होनेपर लोगोंकी भीड़ लगेगी, जगत्‌का संग बढ़ेगा, परिग्रह बढ़ेगा, साधन लुट जायगा। उपदेशक मत बनो—अपने-आपको साधक बोलकर प्रसिद्ध न करो, पुजवानेकी और मानकी चाह कभी भूलकर भी न करो, जिस साधकके मनमें पुजवानेकी और मान प्राप्त करनेकी चाह पैदा हो जाती है, वह कुछ ही दिनोंमें भगवत्प्राप्तिका साधक न रहकर भोगोंका साधक बन जाता है। किसी भी जीवसे घृणा न करो, किसीसे द्वेष न करो—किसीके साथ निर्दयता मत करो। ये दोष हैं—पाप हैं और सर्वथा त्याज्य हैं। यों तो अनुराग और दया भी बन्धनकारक हैं, परंतु उनका उपयोग भगवदर्थ कर्तव्य-बुद्धिसे करना चाहिये। किसी बातपर हठ मत करो, शरीर-मन-वाणीसे चपलता—व्यर्थ कार्य न करो, जल्दबाजीमें किसी कर्मको न कर बैठो और न छोड़ बैठो—किसी व्याख्यानको सुनते ही, पुस्तक पढ़ते ही, बिना सोचे-समझे जोशमें आकर घर-द्वार छोड़कर न निकल भागो। यों भागनेवाले जोश उतरनेपर प्रायः पीछे बहुत पछताया करते हैं। किसी आरम्भ किये हुए कामको जल्दी करके न बिगाड़ो। जो कुछ करो व्यवस्था, धीरता और नियमके साथ श्रद्धा-सत्कारपूर्वक अच्छी तरह करो। न बीचमें भटको और न घबराकर छोड़ो।

दूसरेके दोष न देखो, दूसरेकी निन्दा न करो, परचर्चाका सावधानीसे त्याग करो। अपनी वेश-भूषा साधारण रखो, जटा बढ़ाना, मूँड मुड़ाना, किसी खास ढंगसे कपड़े पहनना, खास तरहसे चलना—मतलब यह कि लोग कुछ विलक्षणता देखकर तुम्हारी ओर खिंचे, ऐसा पहनावा न पहनो। जैसे साधारण लोग रहते हैं, वैसे ही रहो। किसीसे विवाद या शास्त्रार्थ न करो—तुम्हें अपनी साधनासे जरा भी अवकाश नहीं मिलना चाहिये। शरीरके आरामकी चाह न करो—शरीरके आरामके पीछे पागल रहनेवाले साधना कभी नहीं कर सकते। फैशन और शौकीनीके फेरमें बिलकुल न पड़ो। दूसरेसे सेवा न कराओ, जो सेवा करानेके लिये साधना करते हैं, वे शरीरका आराम और भोग चाहनेवाले हैं—भगवान्‌को चाहनेवाले नहीं हैं। ऐसी चेष्टा करो जिसमें मनुष्यकी अपने आत्मापर श्रद्धा हो—अपने पुरुषार्थपर श्रद्धा हो—वह अपनी सेवा आप करे। किसीकी आत्मश्रद्धाको न डिगाओ, न डिगने दो और न किसीकी श्रद्धाको आत्मासे हटाकर अपनी ओर लगानेकी चेष्टा करो। लोगोंको रिझानेकी चाह और चेष्टा छोड़ दो, जो लोगोंको रिझानेके उद्देश्यसे साधन, भजन, कीर्तन और उपदेशका प्रदर्शन करता है, वह तो नाटकका अभिनयमात्र करता है। वह साधक नहीं है।

कुसङ्गका त्याग करो—बुरे संगसे बुरी वृत्ति होती है और सर्वथा पतन हो जाता है। कुसंगके समान नाशकारी विघ्न बहुत थोड़े हैं। जलवायु (वातावरण), जनसमुदाय, स्थान, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र, संस्कार और साहित्य—ये सभी सुसंग या कुसंगका काम देते हैं—भगवत्सम्बन्धी सात्त्विक होनेपर ये सभी सुसंग हैं और विषय-सम्बन्धी राजस-तामस होनेपर कुसंग हैं। सावधानीसे कुसंगका त्याग करो। जिस संगसे भजनमें अरुचि, शरीरके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराम और भोगोंकी चाह, दैवी सम्पत्तिमें अवहेलना होती या बढ़ती हो, उसीको कुसंग समझो और उसका तुरंत त्याग कर दो। ऐसी पुस्तकें कभी न पढ़ो, जिसमें तुम्हारी साधनासे प्रतिकूल भाव हों या तुम्हारी साधनाके लिये जिन भावोंकी आवश्यकता न हो। सिनेमा, नाटक आदि न देखो, ऐसे चित्र न देखो—ऐसे गाने न सुनो, जिनसे चित्तमें विकार हो और साधनामें शिथिलता आती हो।

माता, पिता, गुरुजनोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करो। उनके आशीर्वादसे तुम्हारी साधनामें सुविधा होगी। उनका तिरस्कार कभी न करो। महान् वैराग्यकी प्रेरणासे बुद्ध भगवान्‌की तरह गृहत्याग करना दूसरी बात है, पर वह आदर्श सबके लिये नहीं है। शास्त्र और संतोंकी वाणीपर विश्वास करो—कोई बात तुम्हारी समझमें न आवे तो उसका तिरस्कार न करो, उसे भ्रान्त न समझो। भजनमें कभी चूक मत पड़ने दो। साधकके लिये भजन सर्वशिरोमणि धन है। जी-जानसे इसकी रक्षा करो और सदा इसीमें लगे रहो, कर्मका बिलकुल त्याग करके निकम्मे मत बन जाओ। पूर्ण वैराग्य हुए बिना काम छोड़ बैठनेवालोंसे भजन, साधन तो होता नहीं—उनका समय प्रमाद, आलस्य, व्यर्थ बकवादमें लगता है—वे व्यसनोंके शिकार हो जाते हैं और साधन-पथसे गिर जाते हैं। न इतना अधिक काम ही करो कि जिससे आत्मविचारके और भजन-साधनके लिये समय ही न मिले। 'युक्ताहार-विहार' पर ध्यान रखो। दूसरेके साध्य और साधनकी बात सुनकर जी न ललचाओ—न दूसरेके साध्य, साधन और धर्मसे द्रोह ही करो। यह समझो कि तुम्हारे ही इष्टदेव श्रीकृष्ण अन्य लोगोंके द्वारा श्रीराम, श्रीशंकर, श्रीदुर्गा या अन्यान्य नाम-रूपोंसे पूजित होते हैं और पूजाके विभिन्न प्रकारोंसे सब तुम्हारे ही श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं। निराकार निर्गुण भी श्रीकृष्ण ही हैं। वे ही अचिन्त्य अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दघन सर्वशक्तिमान् सर्वोपरि पूर्ण पुरुषोत्तमतत्त्व हैं। इसी प्रकार यदि तुम राम, शिव या निर्गुण ब्रह्मके उपासक हो तो औरोंके लिये वैसे ही समझो। हैं सब एक ही—परंतु तुम्हें वे ही इष्ट हैं, जिनकी तुम उपासना करते हो। जिसकी अपने साधन और इष्टमें सर्वोच्च बुद्धि नहीं होती, उसको सर्वोच्च सत्यकी प्राप्ति नहीं होती। ब्रह्मचर्यका पालन करो। ब्रह्मचारी-संन्यासी हो तो अखण्ड ब्रह्मचर्य रखो, गृहस्थ हो तो अपनी विवाहिता पत्नीके प्रति शास्त्रोक्त संयमपूर्ण बर्ताव करो। स्त्री-पुरुष दोनों स्वेच्छासे संयमशील होनेका नियम लें तो बहुत उत्तम है। विपत्ति और सम्पत्तिमें समचित्त रहो। कहीं ममता न करो और अपने लक्ष्यको सदा-सर्वदा याद रखो। प्रत्येक चेष्टा लक्ष्यकी सिद्धिके लिये ही करो। इसीमें कल्याण है।

भरोसौ नाम कौ भारी

भरोसौ नाम कौ भारी।
प्रेम सौं जिन नाम लीन्हौ, भए अधिकारी॥
ग्राह जब गजराज घेर्‌यौ, बल गयौ हारी।
हारि कै जब टेरि दीन्ही, पहुँचे गिरिधारी॥
सुदामा-दारिद्र भंजे, कूबरी तारी।
द्रौपदी कौ चीर बढ़यौ, दुसासन गारी॥
बिभीषन कौं लंक दीनी, रावनहि मारी।
दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, राम-दरबारी॥
सत्य भक्तहि तारिबे कौ लीला बिस्तारी।
बेर मेरि क्यौं ढील कीन्ही, सूर बलिहारी॥

(सूर-विनय-पत्रिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

विविध रूपोंमें भगवान्

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें भगवान् कहते हैं—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(१०। ३९)

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियोंका जो बीज है, वह मैं ही हूँ। मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।'

जैसे बीजसे खेती होती है, ऐसे ही भगवान्से यह सम्पूर्ण संसार हुआ है। जिस प्रकार बाजरीसे बाजरी ही पैदा होती है, गेहूँसे गेहूँ ही होता है, पशुसे पशु ही होते हैं, मनुष्यसे मनुष्य ही होते हैं, इसी प्रकार भगवान्से भगवान् ही होते हैं! जैसे सोनेसे बने गहने सोनारूप ही होते हैं, लोहेसे बने औजार लोहारूप ही होते हैं, मिट्टीसे बने बर्तन मिट्टीरूप ही होते हैं, ऐसे ही भगवान्से होनेवाला संसार भी भगवद्रूप ही है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)।

आरम्भमें भी बीज होता है और अन्तमें भी बीज होता है, बीचमें खेती होती है। बोयी हुई बाजरीकी खेतीमें एक दाना भी बाजरीका नहीं है, फिर भी गाय उसको खा जाय तो कहते हैं कि तुम्हारी गाय हमारी बाजरी खा गयी! कारण कि जैसा बीज होता है, वैसी ही खेती होती है। लौकिक बीज तो खेतीसे पैदा होनेवाला होता है, पर भगवान्‌रूपी बीज पैदा होनेवाला नहीं है; अतः भगवान्ने अपनेको अनादि बीज बताया है—**'बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्'** (गीता ७। १०)। लौकिक बीज तो अंकुर पैदा करके नष्ट हो जाता है, पर भगवान्‌रूपी बीज अनन्त सृष्टियाँ पैदा करके भी ज्यों-का-त्यों रहता है; अतः भगवान्ने अपनेको अव्यय बीज बताया है—**'प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्'** (गीता ९। १८)। लौकिक बीजसे तो एक ही प्रकारकी खेती पैदा होती है। जैसे, गेहूँके बीजसे गेहूँ ही पैदा होता है; ऐसा नहीं होता कि एक ही बीजसे गेहूँ भी पैदा हो जाय, बाजरी भी पैदा हो जाय, मोठ भी पैदा हो जाय, मूँग भी पैदा हो जाय। सबके बीज अलग-अलग होते हैं। परंतु भगवान्‌रूपी बीज इतना विलक्षण बीज है कि उस एक ही बीजसे सब प्रकारकी सृष्टि पैदा हो जाती है—

'बहु स्यां प्रजायेयेति'

(छान्दोग्य० ६। २। ३; तैत्तिरीय० २। ६)

'एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।'

(कठ० २। २। १२)

'जो सब प्राणियोंका अन्तर्यामी, अद्वितीय एवं सबको वशमें रखनेवाला परमात्मा अपने एक ही रूपको बहुत प्रकारसे बना लेता है।'

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

(गीता १४। ४)

'हे कुन्तीनन्दन! सम्पूर्ण योनियोंमें प्राणियोंके जितने शरीर पैदा होते हैं, उन सबकी मूल प्रकृति तो माता है और मैं बीज-स्थापन करनेवाला पिता हूँ।'

स्थावर-जंगम, जलचर-थलचर-नभचर, भूत-प्रेत-पिशाच, राक्षस, असुर, देवता, गन्धर्व, चौरासी लाख योनियाँ, चौदह भुवन—सबका बीज एक भगवान् ही हैं।

अर्जुनकी प्रार्थनापर भगवान्ने विभूतियोंका वर्णन किया और अन्तमें अपनी तरफसे बड़ी विलक्षण बात कही—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०। ४२)

'अथवा हे अर्जुन! तुम्हें इस प्रकार बहुत-सी बातें जाननेकी क्या आवश्यकता है? मैं अपने किसी एक अंशसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हूँ।' तात्पर्य है कि जगत्-रूपसे भगवान् ही स्थित हैं; क्योंकि व्याप्य और व्यापक—दोनों भगवान् ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार कन्हैयाने मिट्टी खा ली। यशोदा मैयाको चिन्ता हुई कि मिट्टी खानेसे कन्हैया बीमार हो जायगा। इसलिये मैयाने हाथमें छड़ी ले ली और कहा कि 'बोल, तूने मिट्टी क्यों खायी?' कन्हैयाने कहा कि 'मैया! मैंने मिट्टी नहीं खायी, तू मेरा मुँह देख ले।' कन्हैयाने अपना मुख खोला तो उस छोटे-से मुखमें अनन्त सृष्टियाँ दीखने लग गयीं! यशोदाने कन्हैयाके मुखमें अनन्त लोक देखे, जिनमें एक त्रिलोकी देखी। त्रिलोकीमें एक पृथ्वीको देखा। पृथ्वीमें एक भारतवर्षको देखा। भारतवर्षमें भी एक व्रजको देखा। व्रजमें भी एक नन्दगाँवको देखा। नन्दगाँवमें भी नन्दजीके घरको देखा। नन्दजीके घरमें भी अपनेको बैठे देखा और अपनी गोदमें छोटे-से कन्हैयाको बैठे देखा। उस कन्हैयाके भी एक छोटे-से मुखमें अनन्त सृष्टियोंको देखा! कारण कि कन्हैयाके सिवाय दूसरा कोई है ही नहीं—'**वासुदेवः सर्वम्**।'

एक बार काकभुशुण्डिजी भगवान् रामकी बाललीला देख रहे थे और उनके साथ खेल रहे थे। उनको देखकर रामजी हँसे। रामजीके हँसते ही वे उनके मुखमें चले गये। भीतर जाकर उन्होंने रामजीके उदरमें अनन्त ब्रह्माण्डोंको देखा। उन ब्रह्माण्डोंमें वे कई कल्पोंतक घूमते रहे। कुछ समयतक वे अपने आश्रममें भी रहे। फिर उन्होंने अयोध्यामें जाकर रामजन्मको भी देखा। उसके बाद वे रामजीके हँसनेपर बाहर आ गये। इतना समय केवल दो घड़ीमें ही बीता था (मानस, उत्तर० ८०। १ से ८२)।

गीतामें भी आया है कि अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी देहके एक अंशमें विराट्‌रूपको देखा। अर्जुन कहते हैं—'**पश्यामि देवांस्तव देव देहे**' (गीता ११। १५), संजय भी कहते हैं—'**अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा**' (गीता ११। १३) और स्वयं भगवान् भी कहते हैं—'**इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्। मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि**॥' (गीता ११। ७)।

भागवतमें तीन तरहके भक्त बताये गये हैं—प्राकृत, मध्यम और उत्तम। जो केवल मूर्तिमें ही श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की पूजा करता है, भगवान्‌के भक्तों तथा अन्य ज्ञानी, विरक्त संत आदिमें श्रद्धा-प्रेम नहीं करता, वह प्राकृत अर्थात् आरम्भिक भक्त है*। जैसे क-ख-ग सीखनेवाला आरम्भिक विद्यार्थी है; क्योंकि उसकी विद्या शुरू हो गयी, ऐसे ही उस भक्तकी भक्ति शुरू हो गयी। जो भगवान्‌से प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता, दुखियोंपर कृपा तथा भगवान्‌से द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है, वह मध्यम भक्त है†। जो सम्पूर्ण संसारमें समान-रूपसे परमात्माको ही देखता है, वह उत्तम भक्त है‡। उत्तम भक्तकी बातको यदि आरम्भमें ही मान लिया जाय तो कितने लाभकी बात है! पहले आचार्य होकर फिर क-ख-ग सीखना है! सब कुछ भगवान् ही हैं—यह मान लें तो हम आचार्य हो गये! अब नाम-जप करें, कीर्तन करें, सत्संग करें तो बड़ी सुगमतासे भगवत्प्राप्ति हो जायगी।

जो हमारे मनको सुहाता है, उसमें तो भगवान्‌को देखना सुगम है, पर जो हमारे मनको नहीं सुहाता, उसमें भगवान्‌को देखना कठिन है। जो मनको नहीं सुहाता, मनके विरुद्ध है, उसमें अगर भगवद्भाव करने लग जायँ तो हम बहुत जल्दी ऊँचे भक्त हो जायँगे। अतः अच्छे-मन्दे, भले-बुरे सबमें भगवान्‌को देखना शुरू कर दें—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

(गीता ६। ९)

'सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और सम्बन्धियोंमें तथा साधु-आचरण करनेवालोंमें और पाप-आचरण करनेवालोंमें भी समबुद्धिवाला (भगवान्‌को समानरूपसे देखनेवाला) मनुष्य श्रेष्ठ है।'

जो हमारेसे वैर-विरोध करनेवाले हैं, हमारी निन्दा-निरादर करनेवाले हैं, उनमें भी भगवान्‌को देखें कि ऊपरसे

*अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥
†ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च। प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥
‡सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः। भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका स्वभाव ऐसा बना हुआ है, पर भीतरसे तो भगवान् ही हैं। सिंह, साँप, बिच्छू आदि सब-के-सब भगवान्‌के स्वरूप हैं। वे ऊपरसे अनेक रंगोंके वस्त्र धारण किये हुए हैं, पर भीतरसे एक भगवान् ही हैं। जैसे, स्नान करते समय शरीरमें साबुन लगाकर दर्पणमें देखते हैं तो शरीर बहुत बुरा, भद्दा दीखता है। कहीं फफोले दीखते हैं, कहीं लकीरें दीखती हैं! परंतु भद्दा दीखनेपर भी मनमें दुःख नहीं होता कि कैसी बीमारी हो गयी! कारण कि भीतरमें यह भाव रहता है कि यह तो ऊपरसे ऐसा दीखता है, स्नान करते ही साफ हो जायगा। ऐसे ही सभी परमात्माके स्वरूप हैं, पर ऊपरसे उनका अलग-अलग स्वभाव दीखता है।

एक ही भगवान् अनेक रूपोंसे हमारे सामने आते हैं—**'अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।'** कहीं आग लगी है, कहीं जल बह रहा है, कहीं विवाह हो रहा है, कहीं मृत्युका शोक मनाया जा रहा है, कहीं विद्वान्‌लोग आपसमें तत्त्वका विचार कर रहे हैं, कहीं मदिरा पीकर आपसमें लड़ रहे हैं—ये सब रूप तो अनेक हैं, पर भीतरसे एक भगवान् ही हैं। ऊपरका स्वभाव तो बदलनेवाला है; क्योंकि वह कच्चा है, पर परमात्मतत्त्व बदलनेवाला नहीं है; क्योंकि वह सच्चा है। इसलिये बड़े-बड़े दुष्ट भी महात्मा हो गये! संतलोग बदलनेवालेको नहीं देखते, प्रत्युत न बदलनेवालेको देखते हैं—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

'ज्ञानी महापुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मणमें और चाण्डालमें तथा गाय, हाथी एवं कुत्तेमें भी समरूप परमात्माको देखते हैं।'

सृष्टिसे पहले भी परमात्मा थे—**'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'** (छान्दोग्य० ६। २। १) और अन्तमें भी परमात्मा ही रहेंगे—**'शिष्यते शेषसंज्ञः'** (श्रीमद्भा० १०। ३। २५), फिर बीचमें दूसरा कहाँसे आया? जैसे अन्नकूटके प्रसादमें रसगुल्ले, गुलाबजामुन आदि भी होते हैं और मेथी, करेला आदिका साग भी होता है। मीठा भी भगवान्‌का प्रसाद होता है और कड़वा भी भगवान्‌का प्रसाद होता है। ऐसे ही जो हमारे मनको सुहाये, वह भी भगवान्‌का स्वरूप है और जो नहीं सुहाये, वह भी भगवान्‌का स्वरूप है। सत् भी भगवान्‌का स्वरूप है और असत् भी भगवान्‌का स्वरूप है। अमृत भी भगवान्‌का स्वरूप है और मृत्यु भी भगवान्‌का स्वरूप है—

'अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन'

(गीता ९। १९)

'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्' (गीता १०। ३४)

नामदेवजी महाराजके घरमें आग लगी तो लोगोंने उनको समाचार दिया। घरमें आग लगनेका समाचार सुनकर नामदेवजी प्रसन्नतासे नाचने लगे कि मेरे घरमें मेरे और मेरे मालिक (भगवान्) के सिवाय और कौन विना पूछे आ सकता है? भगवान् ही मेरे घरमें अग्निरूपसे आये हैं और वस्तुओंका भोग लगा रहे हैं। घरसे बाहर कई चीजें पड़ी हुई थीं, उनको भी नामदेवजी उठाकर घरके भीतर अग्निमें डालने लगे कि महाराज! इनका भी भोग लगाओ! फिर रातोंरात भगवान्‌ने नामदेवजीका छप्पर बना दिया; क्योंकि जो जिस वस्तुका भोग लगाता है, उसे वही वस्तु प्रसादरूपसे मिलती है। मीराबाईके पास सिंह भेजा गया तो मीराबाई प्रसन्न हो गयीं कि प्रह्लादजीके भगवान् नरसिंहजी आ गये! उन्होंने उस सिंहकी आरती की, माला पहनायी और जलसे छींटा दिया तो वह वापस चला गया। तात्पर्य है कि भगवान् किसी भी रूपमें आयें, भक्त उनको पहचान लेता है।

भगवान् चाहे किसी भी रूपमें आयें, उनकी मरजी है। सुन्दर दृश्य हो, पुष्प खिले हों, सुगन्ध आ रही हो तो वह भी भगवान्‌का रूप है और मांस, हड्डियाँ, मैला पड़ा हो, दुर्गन्ध आ रही हो तो वह भी भगवान्‌का रूप है। भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है। भगवान्‌ने राम, कृष्ण आदि रूप भी धारण किये और मत्स्य, कच्छप, वराह आदि रूप भी धारण किये। वे कोई भी रूप धारण करें, हैं तो भगवान् ही! रूप तो भगवान्‌का है और क्रिया उनकी लीला है। कोई पाप, अन्याय करता हुआ दीखे तो समझें कि भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं। वे जैसा रूप धारण करते हैं, वैसी ही लीला करते हैं। वराह (सूअर) का रूप धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके वे वराहकी तरह लीला करते हैं और मनुष्यका रूप धारण करके वे मनुष्यकी तरह लीला करते हैं। वे कोई भी रूप धारण करके कैसी ही लीला करें, भक्तकी दृष्टि भगवान्‌को छोड़कर कहीं जाती ही नहीं। जब सब कुछ वे ही हैं, फिर भक्त उनके सिवाय और किसको देखे? इसलिये भक्त कहता है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—इस श्लोकके दो अर्थ होते हैं—(१) आप ही माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या हो, आप ही धन हो, हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो। (२) मेरी माता भी आपका स्वरूप है, मेरे पिता भी आपका स्वरूप हैं, मेरे बन्धु भी आपका स्वरूप हैं, मेरे सखा भी आपका स्वरूप हैं, मेरी विद्या भी आपका स्वरूप है, मेरा धन भी आपका स्वरूप है, हे देवदेव! मेरा सब कुछ आपका ही स्वरूप है।

अपना कोई एक अत्यन्त प्रिय व्यक्ति मिल जाय तो बड़ा आनन्द आता है। परंतु जब सब रूपोंमें ही अपने अत्यन्त प्रिय इष्ट भगवान् मिलें तो आनन्दका क्या ठिकाना है! इसलिये सब रूपोंमें अपने प्यारेको देख-देखकर प्रसन्न होते रहें, मस्त होते रहें। कभी भगवान् सौम्य-रूपसे आते हैं, कभी क्रूर-रूपसे आते हैं, कभी ठंड-रूपसे आते हैं, कभी गरमी-रूपसे आते हैं, कभी वायु-रूपसे आते हैं, कभी वर्षा-रूपसे आते हैं, कभी बिजली-रूपसे चमकते हैं, कभी मेघ-रूपसे गर्जना करते हैं। तात्पर्य है कि अनेक रूपोंसे भगवान्-ही-भगवान् आते हैं। जहाँ मन जाय, वहीं भगवान् हैं। अब मनको एकाग्र करनेकी तकलीफ क्यों करें? मनको खुला छोड़ दें। यह दृढ़ विचार कर लें कि मेरा मन जहाँ भी जाय, भगवान्‌में ही जाता है और मेरे मनमें जो भी आये, भगवान् ही आते हैं· क्योंकि सब कुछ एक भगवान् ही हैं। भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो सबमें मुझको देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

जैसे सब जगह बर्फ-ही-बर्फ पड़ी हो तो बर्फ कैसे छिपेगी? बर्फके पीछे बर्फ रखनेपर भी बर्फ ही दीखेगी। ऐसे ही जब सब रूपोंमें भगवान् ही हैं, तो फिर वे कैसे छिपें और किसके पीछे छिपें?

गौ माताकी सेवासे बौद्धिक विकास

प्रत्येक राष्ट्रके इतिहासके पृष्ठोंपर उसके पतन और उत्थानकी विशद चर्चा प्राप्त होती है। जिन कारणोंसे पतन हुआ वे गर्हित हैं और जिन कारणोंसे उत्थान हुआ वे अनुकरणीय एवं आदर्श हैं। गौ माता और भारतमाताका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक अर्चना तथा भगवत्सेवा वह है जो विपुल धनराशिसे देवालयोंका निर्माण कर विभिन्न-विभिन्न देवी-देवताओंकी आराधना की जाती है, उनकी वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रतिष्ठा की जाती है और दूसरी एक ही स्थानपर सभी देवी-देवताओंकी अर्चना-पूजा एक ही साथ हो जाय, ऐसे विशिष्ट देवालयका नाम ही गौ माताका शरीर है। धरित्रीकी धारणा-शक्तिमें जहाँ सात स्तम्भोंका वर्णन प्राप्त होता है, वहाँ प्रथम गौ ही आती है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

'गौ, ब्राह्मण, वेद, पतिव्रता स्त्री, सत्यवादी, निर्लोभी पुरुष तथा दानशील धनी—इन सातोंने पृथ्वीको धारण कर रखा है।'—श्रीरामप्रसादजी अवस्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रघुवंश' महाकाव्यमें गोसेवाकी महिमा

[राजा दिलीपकी गोसेवाका आख्यान]

(विद्याविभूषण, साहित्यमार्तण्ड डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

महाकवि कालिदासने अपने कालजयी 'रघुवंश' महाकाव्यमें महामहिमामय भगवान् श्रीरामकी महनीय कथाका विलक्षण संयोजन किया है। इसमें उन महान् कथाकोविदने भगवान् श्रीरामके पहलेकी चौथी पीढ़ीके महाप्रतापी पूर्वज राजा दिलीपकी विमल यशोगाथाके विस्तारके क्रममें उनके द्वारा की गयी आदर्श गोसेवाके अद्भुत कथानककी विस्मयकारिणी अवतारणा की है।

गोसेवा भारतीय धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनका अभिन्न अङ्ग है। यहाँतक कि गोसेवा मातृसेवाका पर्याय मानी गयी है।

गोसंस्कृतिसे समग्र भारतीय रचनाभूमि अनुभावित है, तो फिर कालिदास-जैसे भारतीय संस्कृतिके उपासक महाकविका गोसंस्कृतिसे प्रभावित होना अनिवार्य ही था।

पुराकथाके आधारपर महाकविकी प्रबन्ध-कल्पना है कि वैवस्वत मनुके वंशमें उत्पन्न राजा दिलीप पुत्र-प्राप्तिके उपायके लिये तपोनिधि वसिष्ठके आश्रममें, अपनी रानी सुदक्षिणाके साथ उपस्थित हुए और वहाँ उन्होंने उन महामुनिसे अपनी पुत्रहीनताकी व्यथा-गाथा निवेदित की।

राजाकी वेदना-विद्ध बात सुनकर मुनिवर वसिष्ठ कुछ क्षण ध्यानावस्थित हुए, फिर बोले—'हे राजन्! कुछ दिन पहले आप इन्द्रकी उपस्थापना करके अपनी राजधानी अयोध्या लौट रहे थे। आकाशमार्गमें, कल्पवृक्षकी छाँहमें कामधेनु बैठी थी। अपनी ऋतुस्नाता रानीके स्मरणमें अतिशय निमग्न होनेके कारण आपने कामधेनुकी पूजा और प्रदक्षिणा नहीं की, जब कि शास्त्रीय नियम यह है कि बीच रास्तेमें मिलनेवाले देवता, गाय, विप्र और प्रसिद्ध वनस्पति (जैसे बरगद, पीपल, आँवला, तुलसी आदि) की प्रदक्षिणा अवश्य करनी चाहिये। फलस्वरूप, कामधेनुने आपको पुत्रहीन होनेका अभिशाप दे दिया, किंतु उसने यह भी निर्देश दिया कि जब आप उसकी पुत्री नन्दिनीकी आराधना करेंगे, तब आपको पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

मुनिराज वसिष्ठने राजा दिलीपसे आगे कहा—'राजन्! आकाशमार्गमें आकाशगङ्गाके प्रवाहसे उत्पन्न निनादकी तीव्रताके कारण कामधेनुका शाप न तो आप सुन सके और न ही आपका सारथि सुन पाया। परंतु, इस समय कामधेनु तो प्रजापति प्रचेताके दीर्घकालसाध्य विशिष्ट यज्ञमें घृत, दधि आदि हविष्यकी आपूर्तिके लिये पाताललोकमें विराज रही है और उस पाताललोकका द्वार भुजंगोंसे अवरुद्ध होनेके कारण दुष्प्रवेश्य है। ऐसी स्थितिमें कामधेनुकी पुत्री नन्दिनीको ही उसका प्रतिनिधि मानकर, अपनी पत्नीके साथ आप उस (नन्दिनी)-की आराधना करें। इससे प्रसन्न होकर वह आपके लिये कामदुघा (अभीष्ट फलदायिनी) बन जायगी।' महामुनि वसिष्ठ ऐसा कह ही रहे थे कि नन्दिनी वनसे लौटकर उनके आश्रममें आ गयी।

कामधेनुकी पुत्रीका 'नन्दिनी' नाम इसलिये सार्थक था कि वह यज्ञमें हविष्यकी आपूर्ति करके मुनियोंको आनन्दित करती थी, या फिर अनिन्द्य होनेके कारण 'नन्दिनी' कहलाती थी। नन्दिनीकी देह नवकिसलयके समान चिकनी और ललछौंहें रंगकी थी। उसके ललाटपर उजले रंगकी और किञ्चित् टेढ़ी रोमावली उगी थी, जिससे वह उदीयमान चन्द्रमासे सुशोभित संध्याकी भाँति सुशोभित हो रही थी। वह यज्ञान्त-स्नानसे प्राप्त होनेवाली पवित्रतासे भी अधिक पवित्र लगती थी। अपने बछड़ेको देखकर उसके बड़े कटोरे-जैसे थनसे झरती ईषत् उष्ण दुग्धकी धारसे धरती सिक्त हो रही थी। उसके खुरोंके आस्फालनसे उड़ते धूलिकण समीपमें स्थित राजा दिलीपके शरीरका स्पर्श कर रहे थे, जिससे उन्हें तीर्थाभिषेक-जैसी शुद्धिका अनुभव हो रहा था।

शकुनशास्त्रके ज्ञाता तपोनिधि वसिष्ठने उस पुण्यदर्शना नन्दिनीके शुभ लक्षणोंको देखकर राजा दिलीपसे कहा कि आप अपनी पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषाको सफल ही समझिये, क्योंकि नाम लेते ही कल्याणदायिनी नन्दिनी आपके सम्मुख उपस्थित हो गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनिवर वसिष्ठने गोसेवाकी विधि बताते हुए राजासे कहा कि आप वन्यवृत्ति होकर अर्थात् वनमें उत्पन्न कन्द, मूल, फूल, फल आदिका आहार लेते हुए सदा नन्दिनीके पीछे-पीछे चलते रहें। निरन्तर अभ्याससे सिद्ध होनेवाली विद्याके समान आप इसे प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करें। जब नन्दिनी चले, तब आप भी चलें, इसके रुकनेपर रुकें, बैठनेपर बैठें और पानी पीनेपर पानी पियें। आपकी पत्नी सुदक्षिणा श्रद्धा और भक्तिके साथ चन्दन, माला आदिसे इसकी पूजा करें और प्रातःकालमें श्रुति जिस प्रकार स्मृतिका अनुसरण करती है, उसी प्रकार इसके पीछे-पीछे चलकर तपोवनकी सीमातक पहुँचायें और सायंकालमें तपोवनकी सीमासे बाहर निकलकर इसकी अगुआनी करें। इस प्रकार नन्दिनीके प्रसन्न होनेतक आप एकनिष्ठ-भावसे इसकी सेवा करते रहें। मेरी शुभकामना है, आपकी गोसेवाका यह अनुष्ठान निर्विघ्न हो। आप पुत्रवानोंमें धुरिकीर्त्तनीय बनें।

गुरु वसिष्ठकी आज्ञाके अनुसार राजा दिलीपने नन्दिनीकी विनयनिष्ठ सहज भक्तिके साथ सेवा की और उन्हें 'रघु' नामका वर्चस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जो चक्रवर्ती राजा होनेके साथ 'रघुवंश'का प्रतिष्ठापक बना। कहना न होगा कि इस प्रसंगमें महाकविने गोचारण-विधिका साङ्गोपाङ्ग वर्णन तो किया ही है, गायकी आकृति और जातिके उत्तम लक्षणोंका विनियोग भी गवायुर्वेदके अनुसार विस्मयकारी रीतिसे किया है। मुनि वसिष्ठके निर्देशोंका पालन करते राजाने नन्दिनीकी जिसके चारों थन चार समुद्रके समान थे, जैसी सेवा या चारणा-विधि सम्पन्न की है, उसका आवर्जक चित्रण महाकविने इस प्रकार किया है—

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां
कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः
सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत्॥
स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां
निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥

(रघुवंश २। ५-६)

अर्थात् 'राजचिह्नों (छत्र, चामर आदि) से मुक्त सम्राट् दिलीप नन्दिनी गायकी सेवामें तन-मनसे लग गये। वह उसे स्वादिष्ट नरम घासोंका कौर खिलाते, उसके शरीरमें खरहरा करते और जंगली डाँस-मक्खियोंको भगाते तथा उसे अप्रतिहत-गतिसे स्वच्छन्द चरने और चलनेके लिये छोड़ देते।

वह खड़ी होती तो राजा भी खड़े होते, वह चलती तो यह भी चल पड़ते, वह बैठती तो यह भी बैठ जाते, वह जल पीती, तो यह भी जल ग्रहण करते, इस प्रकार छायाके समान राजा उसका अनुगमन करते।

अवश्य ही महाकवि कालिदासने यहाँ प्रकारान्तरसे त्याग और तपोवनके प्रति आस्था प्रकट की है। आर्य-संस्कृतिकी मूल प्रतिष्ठा इन्हीं दो तत्त्वों—त्याग और तपोवनपर आश्रित है। हम जिस दिन इन दोनोंकी महिमा भूल जायँगे, उस दिन हमारी भारतीयता या भारतीय संस्कृति और सभ्यता नष्ट हो जायगी। इसीलिये, महाकविने भारतीय राष्ट्रके संरक्षक रघु-जैसे प्रतापी राजाके जन्मका कारण नगरसे बहुत दूर वसिष्ठके पावन आश्रममें उनके माता-पिताका निवास तथा गोचारणको माना है और रघुका उदय गोमाताके वरदानका ही समुज्ज्वल प्रभाव है।

राजा दिलीप प्रतिदिन ऋषि वसिष्ठकी गाय नन्दिनीको प्रातःकाल ही आश्रमसे जंगलमें चरानेके लिये ले जाते। इसके पूर्व उसका बछड़ा उसका दूध पीता और सुदक्षिणा चन्दन तथा मालासे उसकी पूजा करती थी। सुदक्षिणा पतिव्रताओंमें सर्वप्रथम परिगणनीय थी। वह साधारण महिला नहीं, वरन् मनुष्येश्वरकी धर्मपत्नी थी। गोरूपधारिणी पृथ्वी-जैसी नन्दिनीकी रक्षा करके राजा दिलीपने अपनी 'भूपति' संज्ञाको सार्थक किया था। उस नन्दिनीके खुर-न्याससे पवित्र धूलवाले मार्गका अनुसरण रानी सुदक्षिणा उसी प्रकार करती थी, जिस प्रकार स्मृति श्रुति-क्षुण्ण अर्थका अनुसरण करती है।

महाकवि कालिदासने नन्दिनीद्वारा राजा दिलीपकी गोभक्तिमें निहित सचाईकी परीक्षा भी करायी है। राजाके द्वारा की गयी गहन सेवासे नन्दिनी जब प्रसन्न हो गयी, तब एक दिन वह परीक्षाके विचारसे हिमालयकी गुफामें घुस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। वहाँ उसे एक सिंहने धर दबोचा, जिसने अपने परिचयमें राजासे बताया कि वह शिवका किंकर और निकुम्भका मित्र कुम्भोदर है। इस गुफामें यह जो देवदारुका पेड़ दिखायी पड़ता है, इसे पार्वती पुत्रके समान मानती हैं। मैं इसीकी रक्षाके लिये यहाँ नियुक्त हुआ हूँ।

राजाने सिंहसे अनुनय किया कि नन्दिनीके बदले मुझे ही खा जाओ, पर इसे छोड़ दो। सिंहने राजाको अनेक प्रकारके प्रलोभनोंसे विचलित करनेकी चेष्टा की, किंतु वह अपने स्वीकृत विचारपर दृढ़ रहे और अपने शरीरको मांस-पिण्डकी तरह सिंहके आगे डाल दिया। तभी राजाको 'उठो वत्स' ऐसा स्वर सुनायी पड़ा। राजाने देखा स्वयं नन्दिनी प्रसन्न होकर उनसे पत्तेके दोनेमें दूध दुहकर पीनेका निर्देश कर रही है। राजाने कर जोड़कर नन्दिनीको प्रणाम किया और उससे सुदक्षिणामें पुत्रकी प्राप्तिकी प्रार्थना की। नन्दिनीने 'तथास्तु' कहा। उसके बाद राजा नन्दिनीके साथ आश्रम लौट आये और वहाँ नन्दिनीके निर्देशके बावजूद गुरु वसिष्ठकी आज्ञा लेकर उन्होंने नन्दिनीके दुग्धका पान किया।

इस प्रकार महाकवि कालिदासने गायकी एक अभीष्टदात्री देवीके रूपमें जैसी दिव्य अवतारणा की है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँतक कि गोरक्षाके लिये अपने प्राणतक अर्पण करनेवाले राजा दिलीपका चरित्र तो ततोऽधिक उदात्त-रूपमें उद्भावित हुआ है। हमारे राजाओंने जबसे त्यागवृत्ति, तपोवनका आश्रय और गोसेवासे सम्बद्ध कालिदासके महान् संदेशको भुला दिया, तभीसे उनका अधःपतन प्रारम्भ हो गया। संस्कृतिका भारतीय आदर्श त्याग, तपोवन और गोसेवापर आश्रित है और यही कालिदासका संदेश है।

गोसेवा या गोभक्तिके प्रति एकान्त निष्ठा उत्पन्न करनेवाली तथा भारतीय संस्कृतिमें गोसेवाके अपार माहात्म्यको उजागर करनेवाली 'रघुवंश' महाकाव्यकी यह गोमहिमाकी कथा अपने-आपमें अद्वितीय है। सचमुच, गोमहिमाके संगायक गो-हितैषी महाकवियोंमें कालिदास शिखरस्थ हैं।

श्रीशारदापीठ गौशाला—द्वारका

भारतीय सनातन-परम्परामें गाय एक सर्वमान्य प्राणी है। धर्म, अध्यात्म, कृषि तथा लोक एवं परलोककी दृष्टिसे यह सर्वथा पूज्य है। भारतीय सनातन शास्त्रीय चिन्तनमें प्रयुक्त वाक्यों एवं प्रमाणोंके अनुसार गो और ब्राह्मणके हितके लिये ही भगवान् अवतार लेते हैं तथा सतत तत्पर रहते हैं—'**गोब्राह्मणहिताय च।**' वस्तुतः जो गौके प्रति श्रद्धावान् तथा निष्ठावान् नहीं है वह भारतीय कहलानेका अधिकारी नहीं है। आज कृषि-सम्बन्धी अथवा अन्य भौतिक समस्याएँ जो प्रतिदिन उपस्थित हो रही हैं उन सभीका मूल कारण गोभक्तिसे विरत होना ही है; क्योंकि गोमाता अपनी संस्कृतिकी आधारशिला है। प्राचीन कालमें व्यापक स्तरपर गोपालन होता रहा है। प्रत्येक घरमें गायें पाली जाती थीं और बड़ी-बड़ी विशाल गोशालाएँ थीं, जिनमें हजारोंकी संख्यामें गोवंशका पालन-पोषण होता था। आज दुर्भाग्यसे वह स्थिति तो नहीं रही, किंतु गोप्रेमियोंका सर्वथा अभाव भी नहीं हुआ है। यत्र-तत्र अपनी सामर्थ्यके अनुसार गोभक्त गोसेवाके कार्यमें लगे हुए हैं।

श्रीशारदापीठ द्वारकामें भी एक गोशाला है, जो परमपूज्य श्रीशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराजके आशीर्वादसे सन् १९८२ से संचालित है। यह गोशाला द्वारकामें एक व्यवस्थित ब्रांच रोडपर स्थित है। इस गोशालामें गोवंशकी कुल संख्या ५८ है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

गाय	बैल	साँड़	बाछे	बाछियाँ	कुल
२६	२	१	१५	१४	५८

अरब सागरके तटीय वातावरणमें हर प्रकारकी गायोंका स्वस्थ जीवन सम्भव नहीं है। इस दृष्टिसे प्रायः 'गिर' नस्लकी गायें ही प्रकृत गोशालामें रखी गयी हैं; क्योंकि इस नस्लकी गायोंके लिये यहाँकी जलवायु उपयुक्त पड़ती है। वे मधुर एवं स्वास्थ्यवर्धक दुग्ध प्रचुर मात्रामें देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारका एवं उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रोंमें दैवयोगसे वर्षा कम होती है या कभी-कभी होती ही नहीं। अत: यहाँ पशु-पालन, गोपालन एक अति कठिन कार्य है, फिर भी श्रीशारदापीठ गोशालाकी गायोंकी रक्षाके लिये लगभग

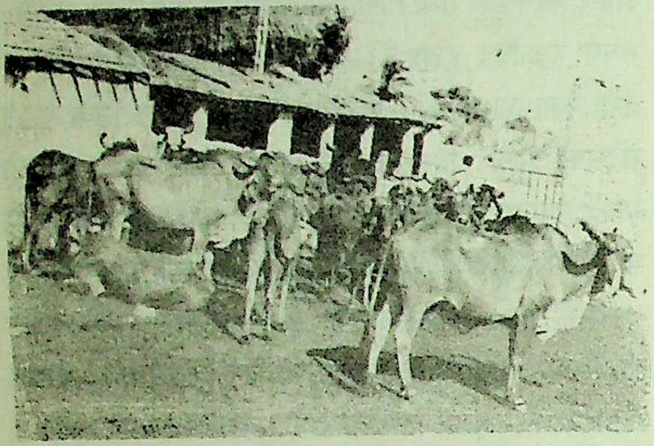

६०—७० एकड़ भूमिमें निजी साधनोंद्वारा चारा उत्पन्न किया जाता है तथा अवर्षणके समय बाहरसे चारेकी व्यवस्था की जाती है। चारेकी खेतीके लिये गोशाला-परिसरमें तीन कुएँ, बिजली-मोटर, पम्पिंग सेट्सकी समुचित व्यवस्था है। गायोंके लिये चरागाह—गोचरभूमि भी है।

श्रीशारदापीठ गोशालाका कोई व्यापारिक लक्ष्य नहीं है। अत: यहाँसे प्राप्त दूधसे मक्खन बनाकर मिश्रीके साथ प्रतिदिन भगवान् श्रीद्वारकाधीशजीका भोग लगाया जाता है तथा श्रीशारदापीठद्वारा संचालित उन १६ मन्दिरोंके लिये भोग तैयार किया जाता है, जो श्रीद्वारकाधीश-मन्दिरके ही परिसरमें स्थित हैं। द्वारका आनेवाले तीर्थयात्रियोंके निमित्त श्रीशारदापीठ-संचालित नि:शुल्क भोजनालयमें भी इस दूध, दही तथा घीका उपयोग होता है। नगरके लोगोंके लिये छाछका नि:शुल्क वितरण किया जाता है और गोबरकी खाद बनाकर खेतमें डाली जाती है।

गोसदनोंमें आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगोंकी उपादेयताके सम्बन्धमें यही उचित है कि गोशालाएँ प्राचीन पद्धतिसे चलनी चाहिये; क्योंकि प्राचीन आयुर्वेदिक तथा प्राकृतिक चिकित्साकी रीतिसे औषधि आदिकी व्यवस्था होनेपर गायोंको पुन: वे रोग जल्दी नहीं होंगे, साथ ही आधुनिक चिकित्साकी प्रतिक्रियासे भी उनके जीवनकी रक्षा होगी। दूसरी बात यह कि 'गोपालन' एक निष्ठाका विषय है। निष्ठासे गोपालन करनेपर गोशालाएँ समुचित रीतिसे चलेंगी। क्योंकि आदर्श गोशाला वह है जहाँ आस्था, धर्म, संस्कृति, सनातन-परम्परा एवं राष्ट्रिय हितको ध्यानमें रखते हुए गो-माताओंकी नि:स्वार्थ सेवा हो, व्यापारिक दृष्टिसे गोपालन न होता हो तथा गोधन पूर्ण स्वस्थ, साफ-सुथरा और प्रसन्न-मन हो।

इस क्षेत्रमें और भी कई गोसदन, गोशालाएँ हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१-द्वारका गोशाला, द्वारका।

२-श्रीमोवाण पिंजरापोल गोशाला—यहाँ मात्र गोसेवाकी दृष्टिसे ही लगभग दो-ढाई हजार गायें पालित-पोषित होती हैं तथा श्रीपरागभाई दावडा एवं उनका परिवार गायोंका पालन-पोषण अति निष्ठासे करता है। उनका उद्देश्य भगवान् श्रीद्वारकाधीशकी सेवा और गोसेवा ही है।

३-गोशाला बिलखा—जूनागढ़—यह गोशाला अग्नि-अखाड़ेके सभापति तथा भारत-साधु-समाज (गुजरात)-के अध्यक्ष श्रीगोपालानन्द ब्रह्मचारीजी महाराजके द्वारा संचालित है। यहाँ एक-डेढ़ हजार गायोंकी सेवा होती है।

४-पिंजरापोल गोशाला—सुरेन्द्रनगर—यहाँ भी अत्यन्त निष्ठाके साथ गायोंकी सेवा होती है।

इसी प्रकार गुजरात-राज्यमें अन्य भी कई गोशालाएँ स्वायत्त संस्थाओं एवं शासनके आर्थिक सहयोगसे गोपालनका कार्य कर रही हैं।

[प्रेषक—श्रीनारायणस्वरूपजी ब्रह्मचारी]

सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे ही सदा दूर रहता है। वह सत्संगमें स्थिर रहता है। मानके लिये कदापि नहीं तरसता। और अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाता।—एकनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोभक्त-गाथा

[१]

गोभक्त सूफीसंत अब्दुल शाह

(श्रीवचनेशजी त्रिपाठी 'साहित्येन्दु')

सूफी साधु अब्दुल शाह जिन दिनों दूध-पीते बच्चे ही थे कि उनकी जन्मदायिनीका असमयमें निधन हो गया। उनके पिताके सामने समस्या थी कि बच्चेका पालन-पोषण कौन करे? कैसे हो? बच्चेको दूध चाहिये और ऐसा जो उसे नुकसान न करे। तभी उनके किसी मित्रने उन्हें नेक सलाह दी कि 'मियाँ! इस कदर परेशान क्यों हो रहे हो? बच्चेके दूधके लिये एक गाय खरीद लाओ, बस सवाल हल हो जायगा।'

अब्दुल शाहके पिताको सलाह जँच गयी। खरीद लाये एक गाय, जो दूध दे रही थी। गाय बड़ी सीधी थी, छोटा बच्चा हर वक्त उसे कुछ-न-कुछ खिलानेकी कोशिश करता—जैसे उसके लिये नितान्त एकाकीपनमें वही एक खेल हो। उससे बातें करता, उसे गाना सुनाता और बहुत प्यार करता। आदमीकी तरह पशु-चौपाये भी प्यार-दुलारकी भाषा समझते हैं। वह गाय भी अब्दुलसे बछड़ेकी भाँति स्नेह-लाड़ करने लगी। वह अब्दुलको देखते ही अपना माथा हिलाकर उसे पास आनेका संकेत करती। बच्चा अब्दुल जब दौड़ा आता तो वह माँकी तरह उसका माथा चूमने लग जाती। अब्दुल भी उसके सींगों, उसके बड़े कानोंसे खेलता रहता, डरता जरा भी नहीं। उसका दूध पीकर बच्चा हृष्ट-पुष्ट दिखायी देने लगा। अब्दुल देखता कि गायकी आँखोंमें उसके लिये बड़ी ममता और प्यार है। अपने बड़े-बड़े कान उठाकर वह अब्दुलको पास बुलानेकी चेष्टामें हुँकारती रहती। उस गायका अपने बेटेके प्रति यह प्रेम-ममत्व देखकर अब्दुलके पिताको बड़ी दिलासा मिलती।

एक दिन क्या हुआ कि जाड़ेके मौसममें बालक अब्दुल जब उस गायके साथ घरके बाहर चबूतरेपर धूपमें बैठा था कि उसी समय एक पागल कुत्ता उधर आ गया। गाय उस क्षण अब्दुलके पास ही धूपमें बैठी थी। कुत्ता पागल हो चुका था। उसने काट खानेके लिये अब्दुलपर झपटा मारा ही था कि पीछे दौड़े आ रहे लड़के चिल्ला उठे, 'भागो! भागो!! यह कुत्ता पागल हो गया है। तीन लोगोंको काट चुका है।' चीख-पुकार सुनकर अब्दुल घबराया, लेकिन गाय एकदम सजग होकर उस कुत्तेकी तरफ बढ़ी और उसे सींगोंसे घायल करके गिरा दिया। कुत्ता गिरते-पड़ते गायके डरसे जान लेकर भाग खड़ा हुआ। इस तरह उस दिन गायने अब्दुलकी पागल कुत्तेके काटनेसे रक्षा की। गाय पुनः अब्दुलके पास आयी और उसके हाथों तथा सिरको चाटने लगी। अब्दुल भी उसकी पीठ सहलाता हुआ उसके एहसानके प्रति मानो कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। दोनोंका यह परस्पर लाड़-प्यार देखकर मोहल्लेके लोग चकित हो रहे थे।

अब्दुल शाह लिखते हैं कि 'उस रोज मैंने गायके रूपमें माँका अनुभव किया। मैं अब उसे गाय न कहकर 'माँ' ही कहता-पुकारता था। 'गाय माँ' भी कहता था। कभी-कभी मैं सबके सामने ही उसे 'नयी माँ' के नामसे पुकारता तो मेरे अब्बाजान बड़े खुश होते। कहते, 'दुरुस्त है, अब्दुल! यह तेरी ही माँ नहीं, हम सबकी भी परवरिश करनेवाली माँ है, तभी तो हिंदू कौम उसे 'गऊ माता' कहते हैं—जो ठीक ही है। अब देख न, तुझे जनम देकर तेरी माँ बहुत छोटी उम्रमें चल बसी। उसके बाद तेरी परवरिश इसीने तो की है। कभी तुझे इसने अकेला, तनहा नहीं महसूस होने दिया। हमेशा इसके प्यारका साया तेरे सिरपर रहा।'

अब्दुलके पिता भी सीधे-सरल और शाकाहारी मुसलमान थे, कोई भी गोश्त न खाते थे।

आगे अब्दुल शाहने लिखा है, 'कोई ५ बरस बाद मेरी वह माँ (गाय) सख्त बीमार हो गयी। न मालूम क्या हो गया उसे। मैंने बहुत दौड़-धूप की उसके इलाजके लिये, मगर कुछ न हो सका। आखिरी वक्तमें भी वह मेरी गोदमें सिर रखे, प्यार-भरी नजरसे मुझे निहारते हुए आखिरी बार मेरा सिर और मुँह चाटकर चल बसी। तबसे मुझे गायमें यकीन हो गया। मैं जहाँ भी गया, वहाँ हिंदू-मुसलमान सभीको गायकी सेवा करनेकी नसीहत दी।'

[प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

गोरक्षार्थ बाबा भोलेनाथका शरीर-त्याग

गोमाताके लिये अपने प्राणोंको दावँपर लगानेका जो महाप्रण आदरणीय गोभक्तों और महात्माओंद्वारा किया गया है, वह तबतक चलता रहेगा, जबतक कि भारतमें पूर्णरूपसे गोहत्या बंद नहीं हो जाय। यह सबको विदित ही है कि सहस्रों स्त्री-पुरुष, बच्चे, साधु एवं संत महानुभाव 'गोहत्याबंदी' आन्दोलनमें सत्याग्रही बनकर इस महायज्ञमें अपनी आहुति देते आ रहे हैं, ७ नवम्बर, १९६६ को घटित गोलीकाण्डकी दुर्घटना हमारे राष्ट्रके ऊपर एक भयंकर अभिशाप बनकर रह गयी है, जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। क्या उस घटनाके शिकार महानुभावों एवं संत पुरुषोंका बलिदान निष्फल जायगा? इसका उत्तर स्पष्ट है, 'नहीं! कदापि नहीं!!'

इसी संदर्भमें महायोगिराज, परम गोभक्त एवं शिवाराधनामें तल्लीन साक्षात् शिव-स्वरूप बाबा भोलेनाथका नाम गोरक्षाके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित होगा और २२-३-६७ का दिन ऐतिहासिक दिन होगा, जब उन्होंने गोरक्षार्थ आत्मोत्सर्ग किया। बाबा भोलेनाथजी, मन्दिर श्रीवनखण्डेश्वरनाथ महादेव आगराके महन्त थे। उनकी बड़ी मान्यता थी। बहुत दूर-दूरसे भक्तजन, स्त्री-पुरुष, राजा-महाराजा, साधु-संन्यासी उनके दर्शनार्थ आते रहते थे और बाबाके दर्शन पाकर अपनेको कृतार्थ मानते थे।

जब २० नवम्बर, १९६६ को जगद्गुरु शंकराचार्य आदि महात्माओंने आमरण अनशन आरम्भ किया तो परम गोभक्त बाबा भोलेनाथ भी इस महायज्ञमें पीछे नहीं रहे। उन्होंने कार्तिक पूर्णिमा दिनाङ्क २८-११-६६ से प्रतिदिन केवल एक बेलपत्ती चबाकर एवं लगभग एक छटाँक गङ्गाजल ग्रहण करनेका दृढ़ संकल्प किया, जिसे उन्होंने अन्तिम दिन, दिनाङ्क २२-३-६७ तक निभाया। बाबाने उसी दिनसे मौनव्रत भी धारण कर लिया था और बाबा भोलेनाथका लक्ष्य गोवध-बंदीपर पूर्ण सफलताका था, जिसके लिये उन्होंने अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी। बाबा सदा यही कहा करते थे कि जिस कार्यको प्रारम्भ करो, उसे आखिरतक निभाओ। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी बाबाने प्रस्तुत किया।

बाबा भोलेनाथका पूर्वाश्रमका नाम श्रीदेवकीनन्दन अवस्थी था। उनके पिता स्वर्गीय पं० बालगोविन्दजी अवस्थी उन्नाव जिलेके तौरा गाँवके प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज परिवारके थे। बाबा भोलेनाथकी आयु इस समय लगभग १०० (सौ) वर्ष थी। भारतके विभिन्न तीर्थस्थानोंका भ्रमण करनेके पश्चात् सन् १९४७ में आपने मन्दिर श्रीवनखण्डेश्वरनाथ महादेव, आगरापर स्वयंको प्रतिष्ठापित किया। सन् १९५७ से उन्होंने आबादीकी ओर जाने एवं अन्न-नमक ग्रहण न करनेका संकल्प किया। केवल दिनमें एक बार ही फलाहार करते थे। वह भी बहुत सूक्ष्म मात्रामें। इसका भी त्याग उन्होंने २८-११-६६ से कर दिया था। शरीरपर केवल एक कौपीन ही रहता था।

बाबा भोलेनाथ हर समय शिवाराधनामें तल्लीन रहते थे और अपने भक्तोंको सन्मार्ग प्रदर्शित करते थे। भक्तोंको गोसेवा एवं गोपालनका उपदेश भी निरन्तर देते रहते थे, जिसके वे स्वयं प्रतीक थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि उनके आश्रमपर ही लगभग पचास गायें सदासे रही हैं जिनकी सेवा, पूजा एवं भोजनकी व्यवस्थाका पूर्ण कार्य भोलेबाबा स्वयं करते थे तथा भक्तोंको उनकी सेवाका पाठ पढ़ाते थे।

बाबा भोलेनाथको, उनके कई हजार भक्तोंकी उपस्थितिमें उनके स्थानपर ही बड़े समारोह एवं श्रद्धा-भावके साथ दिनाङ्क २३-३-६७ प्रदोषके दिन सायं ३.३० बजे समाधिस्थ कर दिया गया। सहस्रों भक्त, साधु-महात्मा एवं नर-नारियोंने श्रद्धापूर्ण हृदयसे बाबा भोलेनाथको अन्तिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। धन्य हैं बाबा भोलेनाथ, जिन्होंने इस अवस्थामें भी गोरक्षार्थ अपना शरीर त्याग कर शिवलोक प्राप्त किया एवं युग-युगके लिये अमर हो गये।

ऐसे महान् संत पुरुषोंका त्याग एवं बलिदान भारत सरकारको सुबुद्धि प्रदान करेगा और उसको गोहत्या-बंदीपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना पड़ेगा।

बाबा भोलेनाथकी जय!

गोमाताकी जय!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोतन्त्र

[प्रस्तुत गोतन्त्र अनुवादकके पिता 'अभिनव नागार्जुन' को अमरकंटकके एक सिद्ध महात्मासे प्राप्त हुआ था। उन महात्माको भी यह दुर्लभ तन्त्र उनकी गुरुपरम्परासे मिला था। मूल तन्त्र संस्कृतमें है; परंतु पाठकोंकी सुविधाके लिये उसका हिन्दी-भावानुवाद यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

इस तन्त्रमें श्रीशिव-पार्वती-संवादके रूपमें ९ अध्याय हैं। जिनमें भगवत्प्राप्तिके निमित्त सरल, सुगम और सर्वोत्तम साधनके रूपमें गोसेवा, गोपूजन और गोदानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। साथ ही गोपूजन और गोदानकी विधि, गोसेवा और गोपालनकी प्रक्रिया, इसकी फलश्रुति-माहात्म्य, मन्त्र-जपके लिये गोगायत्री तथा पाठके लिये गोकवच आदिका सुन्दर संग्रह प्रस्तुत हुआ है। इस दृष्टिसे गोगायत्री, गोकवच तथा मन्त्र-भागका मूल संस्कृत भी दिया गया है।—सम्पादक]

पहला अध्याय

सर्वसिद्धि-दायक साधन

एक बार कैलास पर्वतके मनोरम शिखरपर सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् महेश्वरसे श्रीपार्वतीजीने पूछा—

हे देवोंके देव महादेव! आप सारे संसारका हित करनेवाले हैं, यदि आपका मुझमें प्रेम है तो मनुष्योंके लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करनेका ऐसा श्रेष्ठ साधन बताइये, जिसे सरलतासे किया जा सके, तथा शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाला हो, जिसमें कोई विघ्न न हो और जिससे दीर्घ आयु, पुत्र, धन एवं उत्तम कीर्ति भी प्राप्त हो।

श्रीमहादेवजीने कहा—हे महादेवी! तुमने समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे अच्छा प्रश्न किया है। हे देवि! तुम्हारी अनन्त महिमा है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, मानव और राक्षस आदि—ये सभी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। हे महादेवि! तुम्हारी ही आज्ञासे ब्रह्मा सृष्टिकी कल्पना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और मैं स्वयं संहार करता हूँ। हे महेश्वरि! सृष्टिकी कारणभूता सनातनी आद्या-शक्ति तुम्हीं हो। हे देवि! तुम्हारे चरणोंकी सेवा करके मनुष्य सरलतापूर्वक धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त कर लेता है, मेरा यह वचन अन्यथा नहीं है। इसलिये हे महेशानि! तुम्हारे चरणोंकी सेवासे बढ़कर दूसरी कोई सरल साधना नहीं है।

श्रीदेवीजीने कहा—हे महादेव! आपने मेरा यह माहात्म्य सत्य ही कहा है। मेरी आराधनाकी बहुत-सी विधियाँ हैं और बहुत-से मन्त्र हैं तथा मेरे स्वरूप भी अलग-अलग हैं। जिन्हें आपने पूर्वकालमें आगमशास्त्रमें बतला दिया है, उनके द्वारा भक्तिभावसे भलीभाँति आराधना करनेपर मैं संतुष्ट होकर मनुष्योंको चतुर्वर्ग देती हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं है, किंतु वे विधियाँ भी कठिन हैं, इसलिये ऐसी सरल साधना बतलाइये, जिससे काम-काजमें उलझे रहनेवाले गृहस्थ लोग अपने मनोरथ पूर्ण कर सकें तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सभी सिद्धियोंको प्राप्त कर सकें।

इसपर महादेवजी बोले—हे देवि! अब वह ज्ञान सुनो, जो शास्त्रोंके सारका भी सार है, जो महान् फल देनेवाला, महान् पुण्यप्रद, साक्षात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला है तथा सभी प्रकारकी सम्पत्ति देनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, पुत्र देनेवाला, सभी बाधाएँ शान्त करनेवाला, सभी आपत्तियोंको दूर करनेवाला और भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी आदिके भयको दूर करनेवाला है। इसे जानने मात्रसे मनुष्य देवताके समान हो जाता है।

हे देवेशि! तुमने सृष्टिके आरम्भ-कालमें, मनुष्योंका हित करनेकी अभिलाषासे, किसी प्राणीके रूपमें पृथ्वीपर वास करनेकी इच्छासे सर्व-कल्याणकारिणी गौ (गाय) का रूप धारण किया और मनुष्योंको अमृतके समान मधुर दूध पिलाती हुई तथा माताके धर्मका पालन करती हुई तुमने पृथ्वीपर निवास किया। तुम्हारे साथ रहनेकी इच्छासे मैं भी नन्दीकी पीठपर अदृश्य-रूपसे पृथ्वीपर निवास करता हूँ। इसलिये हे महेशानि! गौओंका पूजन और पालन सभी सिद्धियोंको देनेवाला और दुःख दूर करनेवाला है। यह गोसेवारूपी साधना क्लेशरहित और सुख देनेवाली है। इससे मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं। हे महेश्वरि! इससे अच्छी साधना और कोई दूसरी नहीं है, यह पूर्ण सत्य है। गोरूपा जगदम्बाकी कृपासे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं और समस्त अणिमादि सिद्धियाँ स्वयं उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे-पीछे दौड़ती हैं। गोरूपा जगद्धात्री! तुम स्वभावसे ही थोड़ेमें संतुष्ट होनेवाली हो और विपुल भोग (धन, धान्य, यश, कीर्ति, स्त्री, पुत्र आदि) देती हो तथा मोक्ष भी देती हो, इसमें संशय नहीं है[१]। हे देवि! इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले गोसेवारूप साधनको मैंने तुमसे कहा, जो सुखपूर्वक किया जानेवाला है और सभीके लिये सुलभ है।

दूसरा अध्याय

गोपूजनका माहात्म्य

श्रीपार्वतीजीने कहा—संसार-सागरसे पार करनेवाले देवताओंके देव हे महादेव! आप गौका सामान्य पूजन और माहात्म्य बतलाइये।

महादेवजी बोले—देवि! सुनो, मैं शास्त्रोंके सारका भी सार और श्रेष्ठतम ज्ञान कहता हूँ। 'गौ' शीघ्र सिद्धि देनेवाली और थोड़ेमें ही प्रसन्न होनेवाली है। तीनों लोकोंमें गौसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। गौका दर्शन करना, स्पर्श करना तथा इसे प्रणाम करना, भोजन कराना, जल पिलाना, पालन करना और रक्षा करना—ये 'गौ'-देवीके सामान्य पूजन हैं। ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक फल देनेवाले हैं, इसमें संशय नहीं है। हे देवि! गौओंका दर्शन महान् मङ्गलदायक है। प्रातःकाल उठते ही तथा यात्राके प्रारम्भमें पहले गौका दर्शन करनेसे मनुष्य विघ्नोंसे बाधित नहीं होता, थोड़े ही प्रयाससे उसके काम बन जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। हे देवेशि! गौका दर्शन सर्वदा मङ्गलप्रद है—

गवां तु दर्शनं देवि महामाङ्गल्यदायकम्।
प्रातःकाले समुत्थाय यात्रारम्भे तथैव च॥
प्रथमं गोदर्शनं कृत्वा नरो विघ्नैर्न बाध्यते।
स्वल्पायासेन लभते कार्यसिद्धिं न संशयः॥
सर्वकालेऽपि देवेशि दर्शनं मङ्गलप्रदम्।

(अ० २। ५-७)

गौके कण्ठके निचले भाग अथवा दोनों पार्श्व-भागमें स्पर्श करनेका विधान है। गौके सामनेसे अथवा बगलसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये। हे देवि! जो मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक गौका दर्शन करके स्पर्श और प्रणाम करता है, वह सभी दुःखोंसे मुक्त रहता है तथा सदा सुख पाता है। गौके चरणोंकी धूलि पापोंका नाश करती है। उसे ललाट एवं मस्तकपर धारण करने (लगाने) से गङ्गा-स्नानका फल मिलता है—

गवां चरणधूलिं तु सर्वपापप्रणाशनम्।
ललाटे मस्तके धार्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्॥

(अ० २। १०)

गौ देवीका भोजन अत्यन्त साधारण है, जबकि अन्य देवता घी, शक्करयुक्त अनेक प्रकारके नैवेद्यों एवं बहुमूल्य वस्तुओंसे प्रसन्न होते हैं। गोरूपा जगदम्बा घास, पत्ते, फल, शाक, भूसी एवं कच्चे अथवा पकाये हुए अन्नसे ही संतुष्ट हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। अपनी गौको भोजन करानेसे जो फल मिलता है, उसका दूना फल परायी गौको भोजन करानेसे प्राप्त होता है और गुरुकी गौको भोजन करानेसे चौगुना फल मिलता है—

स्वगां भोजयित्वा तु यत्फलं लभते नरः॥
द्विगुणं तस्य लभते परगां भोजयेद् यदि।
गुरोर्गां भोजयित्वा तु चतुर्गुणफलं लभेत्॥

(अ० २। १४-१५)

भोजनके साथ जल देना चाहिये। ग्रीष्म-ऋतुमें जल देनेसे विशेष फल मिलता है। वनसे लौटते हुए गौओंके समूहको प्रतिदिन जल देना 'गो-तर्पण' कहलाता है। ग्रीष्म-ऋतुमें इसका विशेष फल है। गो-तर्पण सभी तर्पणोंमें उत्तमसे भी उत्तम है। इससे सभी पितर और देवता तृप्त होते हैं। गो-तर्पण करनेवालेके घरमें सदा लक्ष्मी और सरस्वती निवास करती हैं और वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त करता है।

१-अतएव महेशानि गवां पूजनपालनम्। सर्वसिद्धिकरं दुःखहरं क्लेशविवर्जितम्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सुखदं नृणाम्। अस्मात् परतरं नास्ति सत्यं सत्यं महेश्वरि॥
गोरूपायाः प्रसादेन प्रसिद्ध्यन्ति मनोरथाः। अणिमादिसिद्धयः सर्वे स्वयं धावन्ति पृष्ठतः॥
स्वल्पतोष्या जगद्धात्री गोरूपा हि स्वभावतः। ददाति विपुलान् भोगान् मोक्षञ्चैव न संशयः॥
(अ० १। २८—३१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपालनसे मनुष्योंको धन, धान्य, कीर्ति, पुत्रादि भी प्राप्त होते हैं। गृहस्थों और वानप्रस्थ आश्रमवालोंको अवश्य गोपालन करना चाहिये। हे देवि! सवत्सा एवं दूध देनेवाली गायका पालन करनेसे सामान्य फल प्राप्त होता है। बिना ब्यायी हुई गाय, चाहे वह गर्भिणी हो या न हो, पालित होनेपर दूना फल देती है। बूढ़ी गाय यदि वह दूध देना बंद कर चुकी हो तो पालित किये जानेपर चौगुना फल देती है। दूसरेकी बूढ़ी गाय बिना मूल्य दिये लेकर पालनेसे पाँच गुना फल मिलता है, मूल्य देकर लेने और पालनेसे छः गुना फल मिलता है। वधिकसे गाय लेकर जो मनुष्य पालता है, वह आठ गुना फल प्राप्त करता है। जो सामान्यसे अधिक मूल्य देकर वधिकसे गाय लेकर भक्तिपूर्वक पालता है, उसे दस गुना फल और देवत्व प्राप्त होता है।

हे देवि! इस प्रकार सौ या सौसे अधिक गायोंको वधिकसे लेकर जो मनुष्य पालता है, वह मेरे बराबर हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। ऋद्धियाँ तथा सिद्धियाँ उसके चरणोंमें लोटती हैं। उसके दर्शन करनेसे मनुष्यकी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं, अन्य लोगोंका तो कहना ही क्या! इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वह मुझमें विलीन हो जाता है।

हे देवि! प्राण देकर या धन देकर अथवा दोनों देकर गौओंकी सदा रक्षा करनी चाहिये। इससे बड़ा पुण्य धरतीपर और कोई नहीं है। जो मनुष्य गौओंकी प्राण-रक्षाके लिये प्राण-त्याग करता है, वह भी मुझमें विलीन हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। उसके शवको ढोने, उसकी भस्म लगाने और उसके दाह-स्थानके दर्शन करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो उसके स्त्री-पुत्रादिको पालता है अथवा धनसे उनकी सहायता करता है, उसके पुण्यकी गणना नहीं की जा सकती—

गवां शतमधिकं वा य एवं ग्राह्य पालयेत्।
मत्समः स भवेद् देवि सत्यं सत्यं न संशयः॥
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि लुण्ठेयुस्तत्पदे सदा।
दर्शनात् तस्य लोकानां प्रपूर्यन्ते मनोरथाः॥
देवाः सर्वे नमस्यन्ति अन्यलोकस्य का कथा।
इहलोके सुखं भुक्त्वा अन्ते मयि विलीयते॥
गाः सदा रक्षयेद्देवि प्राणैरपि धनैरपि।
अस्मात् परतरः पुण्यो नास्ति नास्ति महीतले॥
गवां तु प्राणरक्षार्थे प्राणत्यागं करोति यः।
सोऽपि मयि विलीयेत न पुनर्जायते भुवि॥
वहनात् तस्य प्रेतस्य तद्भस्मधारणादपि।
दाहस्थलं तस्य दृष्ट्वा नरः पापैः प्रमुच्यते॥
तस्य पुत्रकलत्रादीन् पालयेद् यस्तु भक्तितः।
साहाय्यं वा धनैः कुर्यात् तस्य पुण्यं न गण्यते॥

(अ० २। २७—३३)

पहले गायको भोजन कराये, फिर स्वयं भोजन करे। यदि कभी गायको देनेके लिये भोजन प्राप्त न हो तो स्वयं भी भोजन न करे अर्थात् उपवास करे। ऐसा व्रत धारण करके जो मनुष्य गौका पालन करता है, वह गोभक्त-शिरोमणि है, वह निश्चित-रूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है। अपने भोजनका कुछ भाग निकालकर पहले गायको खिलाये, इसके पश्चात् ही भोजन करे तो मनुष्यको धन-धान्यकी कमी नहीं रहती। हे देवि! यह 'गोग्रास' कहलाता है। यह सभी पुण्योंका शिरोमणि है—

गामादौ भोजयित्वा वै भोजनं स्वयमाचरेत्।
कदाचिद् यदि गां दातुं भोजनं नैव लभ्यते॥
स्वयं वापि न भुञ्जीयादुपवासं समाचरेत्।
एवं व्रतं समास्थाय पालनं कुरुते तु यः॥
स गोभक्तशिरोरत्नः स्वर्गं याति सुनिश्चितम्।
स्वभोज्यात् किंचिदादाय प्रथमं दापयेद् गवे॥
पश्चादेव हि यो भुंक्ते धनधान्यैर्न हीयते।
गोग्रासमिदं देवि सर्वपुण्यशिरोमणिः॥

(अ० २। ३४—३७)

गायका दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर मिलानेसे 'पञ्चगव्य' बनता है। इससे स्नान करने एवं इसे पीनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सभी प्रकारके आभिचारिक कर्म, ग्रहपीडा, दुर्भाग्य और दारुण रोगोंका नाश हो जाता है। असाध्य रोगोंमें रोगीको गङ्गाजल और तुलसीदल-सहित पञ्चगव्य पिलाना चाहिये और श्रद्धाके साथ गोपूजन तथा गोदान करना चाहिये। गौके चरणोंकी धूलि रोगीके मस्तकपर लगानी चाहिये। ऐसा करनेसे हे सुरेश्वरि! तुम्हारी कृपासे वह रोग समूल शान्त हो जाता है। अथवा हे देवि! यदि आयु न होनेके कारण वह मनुष्य इतना होनेके बाद मरता है तो सब पापोंसे मुक्त हो चुकनेके कारण निश्चित-रूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है।

हे सुन्दरि! सभी पापोंसे युक्त मनुष्य भी यदि गौकी शरणमें चला जाय तो मेरे बनाये नियमके कारण उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरकमें वास नहीं करना पड़ता—

सर्वपापसमायुक्तो गोशरणं व्रजेद् यदि।
न तस्य नरके वासः शासनान्मम सुन्दरि॥

(अ० २। ४४)

गायका दही, घी, दूध, शक्कर और शहद मिलानेसे 'पञ्चामृत' बनता है, जो विष्णु आदि देवताओंके पूजनमें प्रशस्त है। नैवेद्योंमें सबसे उत्तम नैवेद्य गौके दूध एवं उससे बने हुए गव्य पदार्थ हैं। इनका भोग लगानेसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। भाद्रपद मासकी कृष्णा षष्ठी (हलषष्ठी) और शुक्ला पञ्चमी (ऋषिपञ्चमी) को छोड़कर शेष सभी साधनाओं और व्रतोंमें फलाहारसे दूना फल गव्याहारसे मिलता है।

हे देवि! मैंने सभी तन्त्रोंमें यह बात बार-बार बतलायी है कि सभी देवताओंके पूजनके आरम्भमें, विद्याध्ययन करनेके आरम्भमें, गृहारम्भ तथा विवाहके आरम्भमें और सभी कार्योंके प्रारम्भमें, विघ्नोंकी शान्तिके लिये गोबरसे गणेशजीकी और तुम्हारी (गौरीकी) प्रतिमा बनाकर पूजन करनेसे निश्चित-रूपसे कार्य सिद्ध होता है।

हे पार्वति! गोष्ठ (गायोंके रहनेके स्थान) में सभी मन्त्रोंका जप करनेसे निश्चित-रूपसे सिद्धि मिलती है—

'गोष्ठे तु सर्वमन्त्राणां जपं निश्चितसिद्धिदम्।'

(अ० २। ५२)

यदि कोई मनुष्य गोष्ठमें जप करे तथा दिनभर उपवास करके रात्रिमें गोदुग्धका पान करे तो दोषयुक्त मन्त्रको भी हठात् सिद्ध होना पड़ता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य नित्यका पूजन तथा जप भी गोष्ठमें करता-कराता है, उसे उस पूजन एवं जपका अनन्त फल प्राप्त होता है।

गोबरको ताँबेके बर्तनमें ऊपर-ही-ऊपर (जमीनपर गिरनेके पहले) ग्रहण करे। उसे सुखाकर और जलाकर उसकी भस्मको वस्त्रसे छानकर रख ले। इस भस्मका त्रिपुण्ड्र जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक [मुझे तथा स्वयंके मस्तकपर] लगाता है, वह मेरा श्रेष्ठ भक्त है। जो मनुष्य गोबरका तिलक मस्तकपर लगाता है, उसे देखकर भूत-प्रेत भाग जाते हैं। उसे नजर नहीं लगती और जादू टोनेका भी उसपर प्रभाव नहीं होता। वह मनुष्य सारे संसारमें और श्मशानमें भी निर्भय होकर घूम-फिर सकता है। जो मनुष्य गोरोचनका तिलक माथेपर लगाता है, सारा संसार उसके वशमें हो जाता है और वह राजाके समान आनन्दपूर्वक रहता है।

किसी स्त्रीको प्रसवमें कष्ट हो रहा हो तो एक पल (चार तोले या लगभग ५० मिलीलीटर) गोमूत्रको गो-गायत्रीसे अभिमन्त्रित करके पिलाना चाहिये। इससे तत्क्षण सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

हे देवि! सभी देवता और सभी तीर्थ गौमें ही स्थित हैं। तीर्थयात्रा एवं देवपूजनसे क्या प्रयोजन.? देवि! भक्तिपूर्वक गोपूजन करके गौकी परिक्रमा करनेसे सभी तीर्थोंकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। हे देवि! सभी देवताओंके पूजनका जो फल है, वह केवल गोपूजन करनेसे प्राप्त हो जाता है—

किं तीर्थयात्रया देवि किं च देवप्रपूजनात्।
सर्वे देवाश्च तीर्थाश्च गवि एव प्रतिष्ठिताः॥
गोपूजां भक्तितः कृत्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन्।
सर्वतीर्थफलं देवि लभते नात्र संशयः॥
सर्वेषां चैव देवानां पूजनेन तु यत्फलम्।
तत्सर्वं लभते देवि गवां पूजनमात्रतः॥

(अ० २। ६२-६४)

हे महेशानि! जो भक्तिपूर्वक साधना करता है, वह जैसा मैंने कहा है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। शास्त्रों और गुरु-वचनोंमें संदेह नहीं करना चाहिये। निस्संदेह और निर्विकल्प रहकर साधना करनेवाला मनुष्य सफलता प्राप्त करता है।

गुरुको मनुष्य माननेसे, मन्त्रको अक्षर माननेसे और गायको पशु माननेसे मनुष्य नरकमें जाता है। गौकी पूजा परम पूजा है, गौकी सेवा उत्तम तप है, और गोमन्त्र सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है—ऐसा जो समझता है, वह मुक्त हो जाता है। उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली गौ-रूपा जगदम्बाका हृदयमें सदा ध्यान करते हुए जो व्यक्ति सांसारिक काम-काज करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है—

गुरौ मनुष्यबुद्धिं तु मन्त्रे वर्णमतिं तथा।
पशुबुद्धिं गवि कृत्वा मनुष्यो नरकं व्रजेत्॥
गोपूजा परमा पूजा गोसेवा परमं तपः।
गोमन्त्रः परमो मन्त्रो यो जानाति स मुच्यते॥
गोरूपां तु जगद्धात्रीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
हृदि ध्यात्वा प्रवर्तेत जीवन्मुक्तः स जायते॥

(अ० २। ६९—७१)

हे महेशानि! तुम्हारी अभिलाषाको जानकर इस प्रकार मैंने सामान्य-रूपसे यह गोपूजन तथा गोमाहात्म्यका वर्णन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा अध्याय

गोपूजन-विधि

भगवती श्रीपार्वतीजीने कहा—हे सच्चिदानन्ददायक जगद्गुरु जगन्नाथ! मैं गोपूजनकी विधिको विस्तारसे सुनना चाहती हूँ, जिसे करके सभी मनुष्य अपने मनोरथ पूर्ण कर सकें तथा पुरुषार्थ-चतुष्टय और समस्त सिद्धियाँ भी प्राप्त कर लें। गोपूजन कब, कहाँ और किसके द्वारा किया जाना चाहिये और उस पूजनके उपचार आदि कौनसे हैं? सभी कुछ विशेष रूपसे मुझे बतलाइये।

इसपर भगवान् श्रीमहादेवजी बोले—हे महाभागे परमेशानि! तुम इसे सावधानीपूर्वक सुनो और धारण करो। हे देवि! गोपूजनके लिये सभी समय प्रशस्त हैं तथापि प्रत्येक मासकी दोनों अष्टमी विशेष रूपसे प्रशस्त हैं। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमें प्रतिपदासे नवमीतक नौ दिनका समय 'गो-नवरात्र' नामसे प्रसिद्ध है। इसके अन्तर्गत अष्टमी—'गोपाष्टमी' नामसे प्रसिद्ध है और नवमी अक्षय सिद्धि देनेवाली है। इसलिये 'अक्षय-नवमी' कहलाती है। सिद्धि चाहनेवालोंको चाहिये कि 'गो-नवरात्र' में नित्य गोपूजन करें और अष्टमी या नवमीको महान् पूजनोत्सव मनायें। जो अशक्त है, उसे अष्टमी या नवमीको विशेष पूजन करना चाहिये। हे महेशानि! जो व्यक्ति प्रत्येक अष्टमीको व्रत रखकर गोपूजन करता है और 'गोरात्र' में भारी उत्सव करता है, उसके पुण्यकी कोई गणना नहीं की जा सकती।

गोपूजनके लिये लंबा-चौड़ा, सुन्दर और पवित्र स्थान चुनना चाहिये। उसे वितान (शामियाना) और तोरणों (वन्दनवारों) से यथाशक्ति सजाना चाहिये। हे देवि! अपने घरके सामने अथवा गोष्ठमें या देवमन्दिरमें (या मन्दिरके सामने) अथवा नदी या तालाबके किनारे अथवा वनमें या चौराहेपर गोपूजन करना प्रशस्त है।

यह गोरूपा जगदम्बा सभीका हित करनेवाली है। इसलिये इसके पूजनमें ब्राह्मणादि वर्णका विचार नहीं करना चाहिये, सभी लोग पूजन कर सकते हैं। जिसकी गौमें उत्तम भक्ति है और जो नित्य गोपूजन करता है, वह चाण्डाल गोनिन्दक ब्राह्मणसे भी श्रेष्ठ है।

हे देवि! अब मैं संक्षेपमें गोपूजनकी विधि बतलाता हूँ, इसे सावधानीपूर्वक सुनो। विद्वान् व्यक्ति प्रातःकाल नित्यकृत्य करनेके उपरान्त पूजनका संकल्प करे और फिर गौके पास जाकर नमस्कार करके उसे निमन्त्रित करे। इसके पश्चात् पड़ोसियों, रिश्तेदारों एवं कुटुम्बियोंको भी निमन्त्रित करे। सम्पूर्ण व्यवस्था करके गौका आवाहन करे। गोष्ठके अतिरिक्त अन्य स्थानमें आवाहन करना प्रशस्त है। गोष्ठमें गोपूजन करनेपर आवाहन नहीं किया जाता। गोपूजन करनेवाला हाथमें चारा लेकर गौके स्थानपर जाय और भक्तिपूर्वक गौको प्रणाम करे। फिर प्रिय वाक्य कहते हुए, पुचकारते हुए तथा चारा खिलाते हुए गोरूपा जगदम्बाको ले आये और पूजाके स्थानमें, उसे खड़ा कर दे। चारा आदि पदार्थोंका नैवेद्य उसके सामने रख दे। उस समय जोरसे बोलना, कटु शब्द कहना, रोकना और मारना—ये काम गौके प्रति कदापि न करे, बाजे आदि भी न बजाये। इसके बाद भक्तिभावपूर्वक गुरु और गणेशका ध्यान करके प्रणाम करे और गोरूपा जगदम्बाको दूब एवं जलसे अर्घ्य दे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप एवं दीपसे पूजन करे।

हे देवि! गौके पूजनमें दो प्रकारका नैवेद्य चढ़ाया जाता है। घास-पत्ता आदि पदार्थ सामान्य नैवेद्य हैं—इसे पूजनके आरम्भसे गौके तृप्त होनेतक देना चाहिये। मिष्टान्न और फल आदि विशेष नैवेद्य हैं। इनमेंसे थोड़ा-सा गौको देकर शेष अन्यत्र सुरक्षित रखना चाहिये। पूजनके अन्तमें इसे सभी भक्तोंको देना चाहिये। नैवेद्यके बाद जल और भक्तिपूर्वक ताम्बूल देना चाहिये। फिर आरती करके बारम्बार प्रणाम करे। भूल-चूकके लिये क्षमा माँगे और जो कामना मनमें हो, उसे कहकर उसकी पूर्तिके लिये प्रार्थना करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणको दक्षिणा दे। फिर आदर और भक्तिके साथ गौ देवीका विसर्जन करे। तदनन्तर विशेष नैवेद्य भक्तोंको दे और स्वयं भी ग्रहण करे। हे देवि! जिस प्रकार मनुष्योंके द्वारा मेरा निर्माल्य ग्रहण नहीं किया जाता, उसी प्रकार गौका निर्माल्य भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। हे देवि! गौ देवीकी पूजा हमेशा दूरसे ही करनी चाहिये। पूजाके समय उच्च शब्द नहीं बोलना चाहिये और न कोई वाद्य आदि बजाने चाहिये। हे देवेशि! गोपूजनसे प्राप्त होनेवाले फलका विशेष प्रचार करे, उसे गुप्त न रखे।

साधारण कार्योंके लिये यह विधि प्रशस्त है, बड़े कार्योंकी सिद्धिके लिये इसके साथ ही गोदान भी करना चाहिये। यदि गोपूजन प्रतिदिन किया जाय तो स्थान सजाने, संकल्प करने एवं गौको निमन्त्रण देनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल पूजन करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा अध्याय

गोदानकी विधि और गोदानके पात्रापात्र आदिका निर्णय

भगवती श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देवेश! मैं गोदानकी विधि एवं पात्रापात्रका निर्णय सुनना चाहती हूँ, आप उसे बतलानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—हे देवेशि! सभी शास्त्रोंमें बार-बार इस बातका वर्णन किया गया है कि गोदान सभी दानोंमें सर्वश्रेष्ठ है और अन्नदान, वस्त्रदान, धनदान, विद्यादान, भूमिदान एवं कन्यादान आदि दान, 'गोदान' की सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। गोदानसे स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्त होता है, सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं,सब रोग और सभी प्रकारकी विपत्तियाँ दूर होती हैं और सब पाप शान्त होते हैं। हे सुव्रते! पापोंसे युक्त मनुष्य भी यदि गोदान करता है तो मेरी आज्ञासे उसे नरकमें वास नहीं करना पड़ता[१]।

हे देवि! अब मैं गोदानकी सफलता प्राप्त करनेके लिये गौके लक्षणोंका वर्णन करता हूँ। गायकी उम्रका तीसरा वर्ष आरम्भ होनेसे लेकर दसवाँ वर्ष पूरा होनेतक, वह दानके लिये प्रशस्त है। वह गर्भिणी हो, या दूध देती हो, उसका बछड़ा या बछिया जीवित हो, सुन्दर हो, शुभ लक्षणोंसे युक्त हो और सौम्य स्वभावकी हो—ऐसी रोगरहित गौ दानके लिये प्रशस्त है। हीनाङ्गी, बूढ़ी, बाँझ, रोगिणी, दोषयुक्त, मृतवत्सा और सूखी (दूध देनेमें असमर्थ हो गयी हो) गौका दान कदापि न करे अन्यथा ऐसा गोदान फूटे घड़ेमें रखे पानीके समान निष्फल हो जाता है। गौको अपनी शक्तिके अनुसार आभूषण आदिसे अलंकृत करे, तदनन्तर विधिके अनुसार उसका पूजन कर संकल्प करके सुपात्र ब्राह्मणको दान करे। गोदानकी साङ्गता-सिद्धिके लिये गौके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार भोजन भी साथमें दे। हे महादेवि! ऐसा करनेसे उसे शास्त्रोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। अपनी पुत्री एवं बहिनको भी गोदान देना प्रशस्त माना गया है।

भगवती देवीने पुनः कहा—हे भगवन्! सुपात्र ब्राह्मण कहनेका आपका तात्पर्य क्या है, इसे आप विस्तारपूर्वक कहें। मैं सुनना चाहती हूँ।

भगवान् श्रीमहादेव बोले—हे देवि! संसारके हितकी कामनासे तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। कुपात्रको गोदान देना महापाप बतलाया गया है। हे देवेशि! कुपात्रको दानमें दी गयी गौ जितने दिन पृथ्वीपर जीवित रहती है, उतने वर्षोंतक दाताको नरक भोगना पड़ता है।

इसलिये हे पार्वती! अब सुपात्र ब्राह्मणके लक्षण कहे जाते हैं, उन्हें सुनो—ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न, वेदाध्ययनमें रत, सभी शास्त्रोंके अर्थ और तत्त्वोंका ज्ञाता, सदाचारी, सत्यशील, दयालु, क्षमाशील, स्वच्छतासे रहनेवाला, सीधे स्वभावका, जितेन्द्रिय, क्रोध न करनेवाला, लोभ और मोहसे रहित, गौकी रक्षा और धर्मके मार्गपर प्राण-त्याग तकके लिये तत्पर रहनेवाला, आस्तिक, समदर्शी, सभी प्राणियोंकी भलाईमें रत, उपदेश देनेमें कुशल, शिखा और यज्ञोपवीतसे युक्त, धर्मसे द्वेष करनेवाले दुष्टोंके आक्षेपोंका भलीभाँति उत्तर देनेवाला, मन, वचन और कर्मसे सदा धर्मका प्रचार करनेवाला—इन लक्षणोंसे युक्त मनुष्य निश्चित-रूपसे ब्राह्मण है। जिसमें ये लक्षण न हों, वह साधारण मनुष्यके समान है।

हे परमेशानि! गोमांस खानेवालों, धर्म-निन्दकों, पतितों और नास्तिकोंके साथ मित्रता करने अथवा भोजन करनेसे ब्राह्मण पतित हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। हे देवि! गायको बेचनेसे ब्राह्मण निःसंदेह पतित हो जाता है और दानमें ग्रहण की हुई गौको बेचनेसे शूद्र हो जाता है तथा वधिकोंके हाथ बेचनेसे चाण्डाल हो जाता है। जिसकी गौ सदा भूखसे व्याकुल होकर दूसरोंका अनाज आदि खाती हुई खुली फिरती है, वह निश्चित-रूपसे चाण्डाल हो जाता है। हे महादेवि! जो मनुष्य गौके निमित्त भिक्षा माँगकर स्वयं उसे खा जाता है, वह सबसे बड़ा पापी है और चाण्डालसे भी निम्नकोटिका है। पर-स्त्रीगमन करने, चोरी करने और झूठी गवाही देनेसे भी ब्राह्मण निःसंदेह पतित हो जाता है। हे देवि! ऐसे पतित ब्राह्मणसे कोई कार्य नहीं कराना चाहिये तथा उसे गोदान कदापि नहीं देना चाहिये। पूर्वमें बताये गये लक्षणोंवाला गोपूजक ही

१-अन्नदानं वस्त्रदानं द्रव्यदानं तथैव च। विद्यादानं च भूदानं कन्यादानं तथैव च॥
गोदानस्य महादेवि कलां नार्हन्ति षोडशीम्। स्वर्गापवर्गदं चैव सर्वकामप्रदं तथा॥
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वापत्तिनिवारणम्। सर्वपापप्रशमनं गोदानं परिकीर्तितम्॥
सर्वपापसमायुक्तो गोदानं कुरुते यदि। न तस्य नरके वासः शासनान्मम सुव्रते॥ (अ० ४। ३—६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णाङ्ग कहा गया है। ऐसा व्यक्ति ही गोदानका सुपात्र है।

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे महादेव! कलियुगमें ब्राह्मण-कुलमें ऐसे भी लोग पैदा होंगे, जिनमें उक्त लक्षण न होंगे तथा वे अधर्मी, दुराचारी, नास्तिक और गोमांसभक्षक होंगे। उस समय सुपात्र ब्राह्मण कैसे मिलेंगे और सुपात्र ब्राह्मणके बिना गोदान कैसे सम्भव होगा?

इसपर श्रीमहादेवजीने कहा—हे देवि! संसारके कल्याणकी दृष्टिसे तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी है, कलियुगमें ऐसा होगा। तथापि हे पार्वति! धर्मका पूर्णतया लोप होना सम्भव नहीं है। कलियुगमें भी सुपात्र ब्राह्मण होंगे, परंतु कम होंगे। इसलिये उनका मिलना कठिन होगा। उस समय सुपात्र ब्राह्मण न मिले तो अपने इष्टदेवताको गोदान करना चाहिये। गौका पूजन करनेके पश्चात् संकल्प करके विधिके अनुसार दान करे, तदनन्तर गौको अपने ही घरमें रखकर पाले और उसका दूध दूसरोंको पिलाये। उसका दूध आदि (दही, मट्ठा, मक्खन, घी, गोबर और गोमूत्र भी) कभी अपने काममें न ले, अन्यथा गोदान निष्फल हो जाता है और महापाप लगता है। उस गौकी संतानपर पालनेवालेका ही सब प्रकारसे अधिकार रहेगा। हे देवि! इस प्रकार गोदान करनेसे दूना फल मिलता है।

पाँचवाँ अध्याय

'गौ' देवीके विभिन्न मन्त्र और उनकी साधना-विधि

देवी पार्वतीने कहा—हे संसारके स्वामी देवाधिदेव महादेव! चतुर्विध पुरुषार्थको प्राप्त करानेवाले गौके मन्त्रोंके विषयमें अब मैं सुनना चाहती हूँ।

भगवान् श्रीमहादेव बोले—महादेवि! संसारके कल्याणकी इच्छासे तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, अब मैं गो-मन्त्रोंको तथा उनकी साधनाके विधानका भलीभाँति वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।

'गौ' देवीके मन्त्रोंके लिये सिद्ध, साध्य, अरि और मित्र आदिका विचार नहीं करना चाहिये। बिना दीक्षा लिये और साधना-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त किये बिना भी इनका जप करनेसे निश्चित-रूपसे सिद्धि मिलती है। हे वरानने! इन मन्त्रोंकी साधनामें वर्ण और आश्रमका तथा पात्र और कुपात्रका भी विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन मन्त्रोंके उच्चारणमात्रसे कुपात्र भी सुपात्र हो जाता है। शूद्र, चाण्डाल, शबर, भील, किरात, कोल, म्लेच्छ, यवन, कसाई, चोर, डाकू आदि सभी गो-मन्त्रोंका भलीभाँति जप करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। हे पार्वती! अन्य मन्त्र गुप्त रखनेसे फल देते हैं, किंतु गो-मन्त्र तो प्रकट करनेसे ही फल देते हैं।

इसलिये हे महेशानि! इन्हें आदरके साथ प्रकट करना चाहिये। हर किसीको बतलाना चाहिये, इससे श्रेष्ठ फल ही प्राप्त होगा।

एकाक्षर मन्त्र—गों

अब एकाक्षर 'गो-प्रणव' कहा जाता है, हे महेशानि! 'गों' यह एकाक्षर बीजमन्त्र है। यह एकाक्षर महामन्त्र समस्त सिद्धियोंको देनेवाला है, पुरश्चरणके विधानसे इसका चार लाख जप करना चाहिये। इससे हे पार्वति! मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है और सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति भी हो जाती है। इस एकाक्षर मन्त्रके एक करोड़ जप करनेसे वाक्-सिद्धि हो जाती है। इससे जापक शाप और अनुग्रह करनेमें समर्थ एवं जो वह कहता है वैसा ही हो जाता है। हे देवि! दस करोड़ जप करनेसे सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। और हे महादेवि! वह जीवन्मुक्त होकर मेरे तुल्य हो जाता है। अन्तमें वह मुझमें विलीन हो जाता है और फिर उसका पृथ्वीपर पुनर्जन्म नहीं होता। देवेशि! इस गो-प्रणव (गो-मन्त्र) के वसिष्ठ ऋषि, उष्णिक् छन्द, आदिशक्ति देवता, गं बीज, प्रणव शक्ति और नाद कीलक कहे गये हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। उत्तम साधक 'गां, गीं, गूं, गैं, गौं, गः' से षडङ्ग-न्यास करे[१]।

पञ्चाक्षर मन्त्र—गों गोभ्यो नमः

अब समस्त सिद्धियोंको देनेवाला, चतुर्वर्ग देनेवाला

१-एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः । पुरश्चर्याविधानेन जपेल्लक्षचतुष्टयम् ॥
मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति सर्वकामांश्च पार्वति । कोटिमन्त्रजपाद् देवि वाचां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥
शापानुग्रहकारी च यद्वदेतु तद् भवेद्ध्रुवम् । दशकोटिजपाद्देवि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाला पञ्चाक्षर मन्त्र कहा जाता है—पहले '**गों**' बीजका उच्चारण करनेके बाद '**गोभ्यो नमः**' कहे। इस प्रकार '**गों गोभ्यो नमः**' यह पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है। यह पञ्चाक्षर महामन्त्र दूसरे कामधेनुके ही समान है। इसका एक अयुत (दस हजार) जप करनेपर सामान्य कामनाएँ पूर्ण होती हैं। एक लाख जप करनेपर दुर्लभ वस्तु भी प्राप्त हो जाती है। एक करोड़ जप करनेपर इच्छा-सिद्धि हो जाती है। साधक अपने मनमें जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है वह उसे निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। इस पञ्चाक्षर मन्त्रके दस करोड़ जप करनेपर साधक समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है और हे देवि! वह जीवन्मुक्त हो जाता है तथा मेरे ही समान हो जाता है। देवेशि! इस पञ्चाक्षर मन्त्रके **वसिष्ठ ऋषि, उष्णिक् छन्द, आदिशक्ति देवता** और **गों बीज, नमः शक्ति तथा गोभ्यः कीलक** कहे गये हैं। अपनी अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग है। उत्तम साधक '**गां गीं गूं गैं गौं गः**' से षडङ्ग-न्यास करे[1]।

गो-गायत्री-मन्त्र

हे देवि! अब मैं चतुर्वर्ग-प्रदायक गो-गायत्री-मन्त्र कहता हूँ—पहले '**जगदम्बायै विद्महे**' कहकर '**पशुरूपायै धीमहि**' कहे, तदनन्तर '**सा धेनुः**' कहकर '**प्रचोदयात्**' कहे। इस प्रकार '**जगदम्बायै विद्महे पशुरूपायै धीमहि सा नो धेनुः प्रचोदयात्**' यह गो-गायत्री-मन्त्र बनता है। इसी मन्त्रको '**गों**' इस बीज-मन्त्रसे सम्पुटित करनेपर '**गों जगदम्बायै विद्महे पशुरूपायै धीमहि सा नो धेनुः प्रचोदयात् गों**'—यह सम्पुटित गोगायत्री-महामन्त्र बनता है। यह विद्या महाविद्या कही जाती है। इसकी आराधना महर्षि वसिष्ठजीने की है। यह महाविद्या साक्षात् ब्रह्मशक्ति प्रदान करनेवाली तथा महान् पातकोंका हरण करनेवाली है। इस मन्त्रके एक लाख जपसे पुरश्चरण होता है। तीनों संध्याओंमें इस मन्त्रका अष्टोत्तरशत जप करनेवाला सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, ब्रह्मतेजको प्राप्त कर लेता है, सभीका पूज्य बन जाता है, चतुर्वर्गको प्राप्त कर लेता है। हे महादेवि! इस प्रकार [इसका] पाँच वर्षतक अनुष्ठान करनेपर वह जीवन्मुक्त हो जाता है तथा उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं और उसे शाप तथा वरदान देनेकी क्षमता प्राप्त हो जाती है। उसे देवता लोग भी नमस्कार करते हैं अन्य लोगोंकी क्या बात है? वह पृथ्वीलोकमें बहुत दिनोंतक सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे युक्त होकर चिरकालतक जीवित रहता है और अन्तमें वह मुझमें विलीन हो जाता है, यह सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं। हे देवि! इस गोगायत्री-मन्त्रके ऋषि वसिष्ठ, गायत्री छन्द, आदिशक्ति देवता, गों बीज, धेनु शक्ति, जगदम्बा कीलक और धर्मार्थ-काम-मोक्षकी प्राप्तिमें इसका विनियोग है। साधकोत्तम '**गां गीं**' आदिसे षडङ्गन्यास करे[2]।

जीवन्मुक्तो महादेवि मम तुल्यो भवेन्नरः। मृते मयि विलीयेत न पुनर्जायते भुवि॥
गोप्रणवस्यास्य देवेशि वसिष्ठो ऋषिरुच्यते। उष्णिक् छन्दो महेशानि आदिशक्तिस्तु देवता॥
गं बीजं प्रणवः शक्तिः नादस्तु कीलकः स्मृतः। धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोगस्तु कारयेत्॥
गोंबीजेन षडङ्गानि विन्यसेत् साधकोत्तमः॥ (अ० ५। ११-१७)

१-अथ पञ्चाक्षरं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥
चतुर्वर्गप्रदं चैव सर्वाभीष्टफलप्रदम्। गों बीजं पूर्वमुद्धृत्य गोभ्यो नमः समुच्चरेत्॥
पञ्चाक्षरो महामन्त्रः कामधेनुरिवापरः। अयुतं प्रजपेदस्य क्षुद्रकामार्थप्राप्तये॥
लक्षसंख्याप्रजापेन दुर्लभमप्यवाप्नुयात्। कोटिसंख्याजपेनैव इच्छासिद्धिमवाप्नुयात्॥
यद्यत् कामयते चित्ते तत्तदेव लभेद् ध्रुवम्। दशकोटिजपादस्य सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्॥
जीवन्मुक्तो भवेद् देवि मम तुल्यो न संशयः। पञ्चाक्षरस्यास्य देवेशि वसिष्ठो ऋषिरुच्यते॥
उष्णिक् छन्दो महादेवि आदिशक्तिस्तु देवता। गों बीजं नमः शक्तिः गोभ्यस्तु कीलकः स्मृतः॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगं तु कारयेत्। गों बीजेन षडङ्गानि विन्यसेत् साधकोत्तमः॥ (अ० ५। १७—२४)

२-गोगायत्रीं प्रवक्ष्यामि चतुर्वर्गफलप्रदाम्। जगदम्बायै विद्महे प्रोक्त्वा पशुरूपायै धीमहि॥
सा नो धेनुः समुच्चार्य प्रचोदयादित्युच्चरेत्। एकाक्षरेण पुटिता गोगायत्री महामनुः॥
एषा विद्या महाविद्या वसिष्ठेनाराधिता। ब्रह्मशक्तिप्रदा साक्षान्महापातकहारिणी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा अध्याय

गोपालनके नियम

भगवती श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे महादेव! गौका पालन करना बड़ा पुण्यप्रद बतलाया गया है तथापि इस विषयमें मुझे संदेह होता है। हे परमेशान! गौका पालन करनेमें बहुतसे लोग निरत हैं, किंतु वे फिर भी बहुत-से दुःखोंसे दुखी हैं और क्लेश पा रहे हैं, इसमें क्या बात है, कृपया मुझे इसे बतलायें।

भगवान् महादेवने कहा—हे महादेवि! इस प्रकारकी शंका पृथ्वीपर निवास करनेवाले मनुष्य करेंगे, इसलिये उनके हितकी कामनासे तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। देवेशि! यह परम आश्चर्यजनक रहस्यकी बात है, मैं उसका वर्णन करूँगा, सुनो। इसके जान लेनेमात्रसे ही मनुष्य पापोंसे छुटकारा पा लेता है।

हे देवि! जो गौको पशु मानकर, उसका पालन करता है, वह स्वयं साक्षात् पशु ही है। ऐसा व्यक्ति जीवनभर दुःख भोगता है। मरनेपर वह नरकमें जाता है और बादमें पशु-योनिमें जन्म प्राप्त करता है, इसलिये हे महेशानि! गायमें कदापि पशुबुद्धि नहीं करनी चाहिये। 'संसारका भरण-पोषण करनेवाली साक्षात् जगदम्बा पार्वती मुझपर कृपा कर गौके रूपमें मेरे घरमें रह रही हैं'—इस भावनाको हृदयमें धारणकर जो भक्तिभावपूर्वक गोपालन करता है, वह महान् पुण्यका भागी होता है और निःसंदेह दुःखोंसे मुक्त हो जाता है—

पशुबुद्धिं गवि कृत्वा पालनं कुरुते तु यः।
स साक्षात् पशुर्देवि दुःखमाप्नोति सर्वदा॥
देहान्ते पशुयोनिं वा नरकं याति पार्वति।
अतएव महेशानि पशुबुद्धिं न कारयेत्॥
गोरूपा जगतां धात्री कृपया तिष्ठति मे गृहे।
एवं भावं हृदि न्यस्य पालयेद् भक्तिभावतः॥
महत् पुण्यं स लभते दुःखैश्च मुच्यते ध्रुवम्।
(६।५—८)

हे देवि! अब मैं विद्वानोंद्वारा पालन करने योग्य आचार-शास्त्रका वर्णन करता हूँ। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि गौको न तो उच्छिष्ट अन्न दे, न उसका अपमान करे, न ताड़ना करे और न गोदोहनके समय गायके साथ कभी भी शठतापूर्ण व्यवहार करे। उसे पर्याप्त भोजन दे, भोजन देनेमें कभी कृपणता न करे। हे देवि! यदि गौ किसी दूसरेका अन्न आदि खा ले तो क्षमा-याचनापूर्वक उसे जितना अन्न गौने खाया है, वापस कर दे, अन्यथा पाप लगता है। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि गौको प्रयत्नपूर्वक गोष्ठमें बाँधकर रखे और भलीभाँति उसकी रक्षा करे। यदि गाय बाहर स्वच्छन्द घूमकर चरती हो तो उसकी रक्षाके लिये रक्षक साथ रहे। डंडेसे गायको न मारे, केवल मृदु वाक्योंमें हाँके। हे देवि! जिसकी गौ भूखसे पीड़ित, रक्षकके बिना अकेली, दूसरोंका अन्न आदि खाती हुई घूमती है, वह चाण्डाल होता है तथा मरनेपर नरकमें जाता है।

हे महादेवि! गौको बेचनेसे पूर्वकृत पुण्य नष्ट हो जाते हैं। वधिकके हाथ गौको बेचनेपर गोहत्याका फल मिलता है। हे सुरेश्वरि! ब्राह्मण, गोभक्त तथा गोमन्त्रका जापक प्राणोंपर संकट आ जानेपर भी गौका विक्रय न करें। हे देवि! गोपालनमें असमर्थ होनेपर मानव सुपात्र ब्राह्मण, बहिन या पुत्रीको विधिवत् गौ दान कर दे। अथवा किसी भी गोभक्तको प्रसन्नतापूर्वक गौ दे दे। वृष (बैल)को

लक्षसंख्याजपादस्य पुरश्चर्या विधीयते। अष्टोत्तरशतं चास्य त्रिसन्ध्यं प्रजपेत् ततः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मतेजमवाप्नुयात्। सर्वपूज्यो भवेद्देवि चतुर्वर्गमवाप्नुयात्॥
पञ्चवर्षान्महादेवि जीवन्मुक्तो न संशयः। सर्वसिद्धिसमायुक्तो शापानुग्रहकारकः॥
देवा अपि नमस्यन्ति अन्यलोकस्य का कथा। सर्वैश्वर्यसमायुक्तो जीवेच्च सुचिरं भुवि॥
अन्ते मयि विलीयेत सत्यं सत्यं न संशयः। गोगायत्र्या महादेवि वसिष्ठो ऋषिरुच्यते॥
छन्दस्तु देवि गायत्री आदिशक्तिस्तु देवता। गों बीजं धेनुः शक्तिः जगदम्बा तु कीलकम्॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोगः प्रकीर्तितः। गोंबीजेन षडङ्गानि विन्यसेत् साधकोत्तमः॥ (अ० ५। २५—३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वधिक (कसाई)के हाथ कदापि न बेचे। हे महेशानि! वृषकी हत्याका फल गोहत्याके तुल्य ही है। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह गो-जातिको कभी ताडित न करे। सैकड़ों अपराध करनेपर भी गायको पुष्पसे भी न मारे। हे देवि! यदि उसने अन्न आदिका भक्षण कर लिया है तो उसे मृदु वाक्योंसे रोके। यदि गाय किसीके अन्न आदि खा लेती है तो उस व्यक्तिको मेरी कृपासे अनेकों गुणा अन्न आदि प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है, यह पूर्णतया सत्य है। इसलिये हे महादेवि! ऐसा समझकर कभी भी गौपर कोप न करे तथा अपशब्द आदि भी न बोले। ऐसा करनेपर साधकके पुण्योंकी हानि होती है।

हे वरानने! लोकमें गोहत्याके समान अन्य कोई पाप नहीं है। गायकी ताड़ना, उसे मारना, गोहत्याका समर्थन करना, गोहत्यारेका साथ देना या उसकी रक्षा करना, गोमांसका भक्षण करना तथा वधिकको गाय बेचना—इन सभी कर्मोंका गोहत्याके समान ही कुफल होता है। जो मनुष्य गोमांस भोजन करनेवालोंके साथ किसी भी प्रकारका व्यवहार रखता है वह प्रतिदिन गोहत्याकृत पापफलको प्राप्त करता है—

गोहत्यासदृशं पापं नास्ति लोके वरानने॥
ताडनं हिंसनं चापि हत्यायाश्च समर्थनम्।
हन्तुः सङ्गं रक्षणं च गोमांसस्य च भक्षणम्॥
गोविक्रयं च वधिकाय गोहत्यासमं फलम्।
गोमांसभोजिभिः सार्धं व्यवहारं करोति यः॥
गोहत्याकृतपापं तु स प्राप्नोति दिने दिने।

(६। २६—२९)

गोहत्यारेका स्पर्श हो जानेपर सचैल (वस्त्रोंसहित) स्नान करना चाहिये और उस पापकी शान्तिके लिये गोगायत्री-मन्त्रका अष्टोत्तरशत जप करना चाहिये अथवा हे शाम्भवि! गोहत्यारेको उपदेश देकर गोहत्यासे निवृत्त कर देना चाहिये। ऐसा करनेपर गोहत्यारेके स्पर्शजन्य दोषका शमन हो जाता है।

हे महेशानि! विवेक ही मनुष्योंका धर्म-मार्ग-प्रदर्शक है। गोहत्यासे मानवका विवेक निश्चित ही नष्ट हो जाता है। देवेशि! विवेक नष्ट हो जानेसे ज्ञानधर्म भी नष्ट हो जाता है और अज्ञानसे धर्म नष्ट हो जानेपर काम-क्रोध आदि विकार बढ़ जाते हैं। गोहत्याके प्रभावसे लोग क्रोधावेशमें एक दूसरेको मारने लगते हैं। हे वरानने! दूसरोंके वैभवको देखकर ये ईर्ष्या करते हैं। दूसरेके दुःखकी कामना करनेसे ये हमेशा ही दुःखी रहते हैं। हे देवेशि! पाप करनेके कारण व्याकुल-चित्तवाले ये व्यक्ति रक्षित होनेपर भी भय और चिन्तासे पीडित रहते हैं और इन्हें नींद नहीं आती। कुबेरके समान धन प्राप्त कर लेनेपर भी इन्हें सुख प्राप्त नहीं होता। यह निश्चित बात है कि गोमांसका भक्षण करनेवाले लोग दूसरेके धनका हरण कर लेनेवाले, दूसरेकी स्त्रीमें अनुरक्त तथा दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेवाले होते हैं। हे देवि! ऐसे लोगोंका व्यवहार कपटपूर्ण होता है। वे प्रिय बोलेंगे, प्रिय चेष्टा करेंगे, किंतु उनमें छल-छद्म भरा होगा। गोमांसभक्षी सद्धर्मकी निन्दा करनेवाले होते हैं। ऐसे लोग विभिन्न प्रकारके दुःख भोगते हुए मरनेपर पाप-योनियोंमें जाकर शूकर, विष्ठाके कृमि या कीड़े-मकोड़े बनते हैं और रौरवादि नरकोंके भागी होते हैं।

श्रीपार्वतीजीने पुनः कहा—हे देव! बहुत-सी गायें सदा क्रोधमें रहती हैं, खुरों और सींगोंसे मनुष्योंको मारती रहती हैं, फिर उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—हे महाभागे! इस समय तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है। निःसंदेह यह परम रहस्य एवं आश्चर्यकी बात है, इसे मैं कहूँगा, सुनो—हे परमेश्वरि! तुम्हीं एक निराकार और निर्गुणरूप हो, तुम्हीं जब साकार होती हो तब सत्त्व, रज और तमोगुणसे विभूषित होती हो। इन्हीं तीन गुणोंसे तुम सगुण रूप धारण करती हो। भगवती सती (गौरी) सत्त्वगुणा, पार्वती रजोगुणा और कालिका तमोगुणा है। वस्तुतः एकमात्र तुम्हीं परमेश्वरी हो। गायें भी तुम्हारे ही स्वरूपवाली हैं, इसी कारण सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे गौएँ भी युक्त हैं। इसलिये हे वरानने! गौएँ भी सत्त्व, रज और तमोगुण-स्वभाववाली होती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

जो गौएँ सब प्रकारसे सहनशील, स्वल्पसे संतोष कर लेनेवाली और पालनमें सरल होती हैं वे सत्त्वगुणवाली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मानिनी, सुस्वादु भोजन पसंद करनेवाली, विनयसे वशमें होनेवाली और क्षणमात्रमें क्रोधित तथा प्रसन्न होती हैं, वे रजोगुणा होती हैं और जो सदा क्रुद्ध रहती हैं, दुष्टोंका संहार करनेके लिये सदा तत्पर रहती हैं, पालनेमें कष्ट-साध्य होती हैं वे तमोगुणवाली महान् कालीस्वरूप ही होती हैं। परंतु सच्चे गोभक्तको कहीं भी भय नहीं होता। पाप करनेवालोंको ही भय होता है अन्यथा भय नहीं होता। भक्तिपूर्वक गोपूजन करने तथा गो-गायत्रीका जप करनेसे क्रम-क्रमसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। हे देवि! पाप नष्ट हो जानेसे फिर भय उत्पन्न नहीं होता। गायें वशमें हो जाती हैं तथा सभी प्रकारसे प्रसन्न हो जाती हैं। हे देवि! ऐसा गोभक्त ही श्रेष्ठ गोभक्त है और वही यथोक्त फल प्राप्त करता है।

महादेवजी पुनः बोले—हे परमेश्वरि! गायका दूध माताके दूधसे भी श्रेष्ठ है। उसे किस प्रकार बेचा जा सकता है? फिर भी हे वरानने! मनुष्योंकी लोक-यात्राके लिये ब्राह्मणोंके अतिरिक्त अन्य वर्णके लोगोंको गोदुग्ध बेचनेकी आज्ञा है। हे देवि! दूधके विक्रयमें शठता नहीं करनी चाहिये। जो दूधमेंसे घृत निकालकर अथवा दूधमें जल आदिका मिश्रण करके बेचता है, वह मेरे (श्रीमहादेवके) शापका भागी होता है।

सातवाँ अध्याय
गवाह्निक-विधि

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देव! संसारमें जिसके करनेसे कुछ भी असाध्य नहीं रहता, अब मैं उस गवाह्निक-विधिको तत्त्वतः सुनना चाहती हूँ।

श्रीमहादेवजी बोले— हे शुभे! तुम्हारे स्नेहके वशीभूत होकर मैं गवाह्निक-विधिको बतला रहा हूँ, जिसके श्रवण करनेमात्रसे भी पापनाश हो जायगा। हे सुभगे! इसका अनुष्ठान करनेसे असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाता है। गवाह्निकके अनुष्ठानसे मनुष्योंके लौकिक-पारलौकिक सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। इससे अधिक श्रेष्ठ साधन संसारमें और कोई नहीं है।

ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर श्रीगुरुदेवका ध्यान करे तदनन्तर उन्हें प्रणाम करके गोष्ठमें गायके समीप जाकर दण्डवत् प्रणाम करे। फिर स्वयं गोष्ठकी सफाई आदि करे। इसके बाद नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर पुनः गोष्ठमें जाकर भक्तिपूर्वक गौका पूजन करे एवं यव (जौ) का नैवेद्य दे। तृप्तिपर्यन्त भोजन कराकर हे सुव्रते! इस मन्त्रसे दुग्ध-दोहन करे—

'ॐ अमृतं देवि ते क्षीरं पवित्रमिह पापहृत्।
त्वत्प्रसादाद्धि पूर्यन्ते नराणां सर्वकामनाः॥'

अर्थात् 'हे देवि! यह आपका दूध साक्षात् अमृत है, पापका हरण करनेवाला तथा परम पवित्र है। आपकी कृपासे मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।'

उपर्युक्त मन्त्र अथवा एकाक्षर मन्त्र (गों) या गो-गायत्रीसे भक्तिपूर्वक दुग्ध-दोहन करे। उसमेंसे कुछ दूध ग्रहणकर गायको चराने वनमें ले जाय और भक्तिपूर्वक स्वयं उसकी रक्षाके लिये हर पल उसके साथ रहे। वह जहाँ-जहाँ जाय उसके पीछे-पीछे जाय। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि गाय जब खड़ी हो तो भक्तिभावसे स्वयं भी खड़ा रहे और बैठनेपर स्वयं बैठे। जब वह जल पिये तो स्वयं भी जल पिये। हिंसक जानवरोंसे उसकी रक्षा करे तथा मक्खी, मच्छर आदि हटाता रहे। संध्याकालमें गौको घर लाकर गोष्ठमें बाँधे। फिर पूजन आदि करके दुग्ध-दोहन करे। इस प्रकार यथोक्त विधानपूर्वक इन क्रियाओंको भक्तिपूर्वक करना चाहिये। गौके गोबरमें जो जौके दाने निकलें, उनकी रोटी बनाकर गो-दुग्धके साथ भक्षण करे। इस प्रकारका अनुष्ठान भक्तिभावसे एक वर्षतक करनेपर भाग्यमें लिखी हुई विधिकी लिपि भी मेटी जा सकती है और असम्भवको भी सम्भव बनाया जा सकता है। हे देवि! इस गवाह्निक नामक अनुष्ठानको सर्वप्रथम त्रेतायुगमें श्रीवसिष्ठजीके आदेशसे राजा दिलीपने पुत्रकी कामनाके लिये बड़े ही भक्तिभावसे बहुत यत्नपूर्वक किया था। जिसके फलस्वरूप राजा दिलीपने भरत (रघु) नामक चक्रवर्ती पुत्रको प्राप्त किया था। देवि! इस गवाह्निकका फल करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं बतलाया जा सकता तथापि तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैंने इस विधानको अत्यन्त संक्षेपमें ही कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठवाँ अध्याय

गोकवच

श्रीपार्वतीजीने कहा— हे देव! मैंने सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले गोमाहात्म्यको सुना, किंतु सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले गोदेवीके कवचको आपने नहीं बतलाया। इसलिये हे प्रभो! यदि आपका मेरे प्रति स्नेह है तो अब गोकवच बतलानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले— हे महादेवि! संसारका कल्याण करनेकी इच्छासे तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। हे वरारोहे! निःसंदेह तुम्हारे स्नेहके कारण मैं उसे कह रहा हूँ, सुनो। गोरूपिणी महादेवीका कवच सभी इच्छाओंको पूरा करनेवाला, सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। इस कवचके धारण करने तथा पाठ करनेसे युद्धमें, राजकुलमें, नदी, नद, समुद्रमें, पर्वतपर, व्याघ्र, सर्प आदिसे व्याप्त निर्जन वनमें—इस प्रकार सर्वत्र रक्षा होती है। सभी शत्रु और सभी भूत-प्रेत भाग जाते हैं। हे परमेशानि! इस गोकवचके ऋषि वसिष्ठ हैं, अनुष्टुप् छन्द है, गोरूपा जगदम्बिका देवता है तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी प्राप्तिमें इसका विनियोग किया जाता है। विनियोग इस प्रकार है—

विनियोग—**ॐ अस्य श्रीगोकवचस्य वसिष्ठो ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, गोरूपा जगदम्बिका देवता, धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः**[1]।

(विनियोगके अनन्तर भावनापूर्वक गोकवचका पाठ करे।)

गोकवच

ॐ परब्रह्म शिखास्थाने शिरः पातु महेश्वरः।
ललाटे चन्द्रमा पातु सूर्यो मे चक्षुषीऽवतु॥
नासां गणेश्वरः पातु कर्णौ मे लम्बकर्णकः।
मुखे ब्रह्मा सदा पातु जिह्वायां तु सरस्वती॥
दन्तान् षडाननः पातु कपोलौ वटुकस्तथा।
कण्ठं पातु किन्नरेशः स्कन्धौ नन्दीश्वरस्तथा॥
हृदि पातु दयायुक्ता गोरूपा परमेश्वरी।
अग्निर्मे जठरं पातु पृष्ठं कूर्मो सदावतु॥
कामदेवः कटिं पातु गुह्याङ्गानि च सर्वदा।
मधुध्वंसी ऊरू पातु जानुनी मे जनार्दनः॥
पादयोर्वामनः पातु प्राणान् मृत्युंजयस्तथा।
आपादमस्तकं देहं कलत्रं वा पतिं मम॥
संतानं च धनं धान्यं वृत्तिं मेधां बलं तथा।
ग्रामं देशं च मे पातु गोरूपा परमेश्वरी॥
रणे राजकुले चापि विवादे प्राणसंकटे।
दस्युचौरभये अग्निभये मारीभये तथा॥
पर्वते विजने देशे नदीनदसमुद्रके।
सर्वदेवमयी देवी गोरूपा पातु मां सदा॥
वाङ्मनोबुद्ध्यहंकारैर्ज्ञानाज्ञानकृतानि च।
जन्मान्तरकृतानीह पापानि विविधानि च॥
दग्ध्वा सर्वाणि देवेशि धर्मे मां विनियोजय।
दुर्जना विलयं यान्तु वर्धन्तु सज्जनाः खलु॥
सर्वे धर्माश्रिताः सन्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वरि।

शिखाके स्थानमें परब्रह्म रक्षा करें और सिरकी महेश्वर रक्षा करें। ललाटमें चन्द्रमा और दोनों नेत्रोंकी सूर्य रक्षा करें। नासिकाकी रक्षा गणेश्वर, दोनों कानोंकी लम्बकर्णक, मुखमें ब्रह्मा, जिह्वामें देवी सरस्वती रक्षा करें। षडानन दाँतोंकी, दोनों कपोलोंकी वटुकभैरव, कण्ठकी किन्नरेश कुबेर, दोनों कन्धोंकी नन्दीश्वर तथा दयालु गोरूपिणी परमेश्वरी हृदय-प्रदेशकी रक्षा करें। मेरे जठर-प्रदेशकी अग्नि और पृष्ठभागकी कूर्मदेव सदा रक्षा करें। कामदेव कटिप्रदेश और गुह्य अङ्गोंकी सदा रक्षा करें। मेरे दोनों ऊरुओंकी मधुध्वंसी विष्णु और जानुओंकी जनार्दन रक्षा करें। मेरे पैरोंकी भगवान् वामन तथा प्राणोंकी भगवान् मृत्युंजय महादेव रक्षा करें। गोरूपा परमेश्वरी मेरे आपादमस्तक सम्पूर्ण देहकी, स्त्री अथवा पतिकी, संतान, धन-धान्य, वृत्ति, मेधा, बल, ग्राम तथा देशकी रक्षा करें और सर्वदेवमयी गोरूपा देवी भगवती लड़ाईके मैदानमें, राजकुलमें, विवादमें, प्राणसंकट उपस्थित होनेपर, दस्यु और चोरोंसे भय उपस्थित होनेपर, महामारी आदि महारोगोंमें, पर्वतपर, निर्जन स्थानमें, नदी, नद और समुद्रमें मेरी सब प्रकारसे सर्वदा रक्षा करें। हे देवेशि! मेरे द्वारा मन, वाणी, बुद्धि तथा

१-ॐ अस्य श्रीगोकवचस्य वसिष्ठो ऋषिरुच्यते॥
अनुष्टुप् छन्दो देवता गोरूपा जगदम्बिका। धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकारवश ज्ञान एवं अज्ञानमें इस जन्ममें तथा जन्मान्तरमें जो भी विविध प्रकारके पाप किये गये हैं, उन सभीको आप भस्म करके मुझे धर्म-मार्गमें लगायें। हे महेश्वरि! आपकी कृपासे दुर्जनोंका लय हो, सज्जनोंकी अभिवृद्धि हो और सभी धर्ममार्गका समाश्रयण करें।

फलश्रुति

इत्येतत् कवचं दिव्यं साक्षाद् वज्रोपमं परम्॥
पठेद् वा पाठयेद् वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि।
तस्य किंचिद्भयं नास्ति त्रिषु लोकेषु सुन्दरि॥
गोपूजान्ते पठेद् देवि सर्वकामानवाप्नुयात्।
आदावन्ते महेशानि गायत्रीं दशधा जपेत्॥
अन्यथा विफलं सर्वं द्वारहीनं गृहं यथा।
अष्टोत्तरसहस्रेण पुरश्चर्यास्य कीर्तिता॥
पुरश्चर्यां विना देवि न पूर्णफलमाप्नुयात्।
पुरश्चर्याकृती देवि सर्वकामानवाप्नुयात्॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥
निष्काम अयुतं कृत्वा वाचां सिद्धिमवाप्नुयात्।
लक्षवारं पठेद् देवि मम तुल्यो भवेन्नरः॥
सर्वसिद्धिमयो भूत्वा अन्ते मयि विलीयते।
क्षुद्रकामप्रसिद्ध्यर्थे अष्टोत्तरशतं पठेत्॥
बृहत्कार्यस्य सिद्ध्यर्थे अष्टोत्तरसहस्रकम्।
अयुतेन महादेवि मृत्युमपि निवर्तयेत्॥

यह दिव्य कवच साक्षात् वज्रके समान अमोघ है तथा सर्वश्रेष्ठ है। हे सुन्दरि! गोकवचका पाठ करने तथा सुननेवालेको तीनों लोकोंमें कहीं भी किसी भी प्रकारका भय नहीं होता। हे देवि! गोपूजाके अन्तमें इसका पाठ करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। हे महेशानि! इस गो-कवच-पाठके आदि और अन्तमें गो-गायत्रीका १०-१०बार जप अवश्य करना चाहिये, अन्यथा कवचका पाठ उसी प्रकार निष्फल होता है जैसे दरवाजेसे रहित घर। अष्टोत्तर-सहस्र (१००८) पाठोंसे इसका पुरश्चरण होता है। हे देवि! बिना पुरश्चरण किये पाठ करनेसे पूरा फल नहीं मिलता। हे देवि! पुरश्चरण करनेवाला व्यक्ति सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन, विद्यार्थी विद्या और मोक्षकी कामना रखनेवाला मोक्षको प्राप्त करता है। मनुष्य निष्काम होकर एक अयुत (१०,०००) पाठ करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है। एक लाख पाठ करनेवाला मनुष्य मेरे ही समान हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त करता है तथा अन्तमें मुझमें लीन हो जाता है। सामान्य कार्य अष्टोत्तरशत (१०८) पाठ और विशेष कार्य अष्टोत्तर-सहस्र (१००८) पाठ करनेसे सिद्ध हो जाते हैं। हे महादेवि! इस कवचके दस हजार पाठ करनेपर मृत्युको भी रोका जा सकता है।

नवाँ अध्याय

गोतन्त्रका माहात्म्य

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देव! आपने अत्यन्त आश्चर्यजनक गोतन्त्र बतलाया। हे शंकर! कृपाकर इस तन्त्रका माहात्म्य भी आप बतलायें।

श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि! हे महाभागे! यह तन्त्र सभी आगमग्रन्थोंका शिरोमणि है। सभी वेद, पुराण, स्मृतियाँ आदि इसकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। जिस घरमें यह तन्त्र विद्यमान रहता है तथा जहाँ नित्य इसका पाठ होता है, वहाँसे भूत, प्रेत, पिशाच, चोर आदि सभी दूर भाग जाते हैं। अलक्ष्मीका नाश होकर स्थिर लक्ष्मीका आगमन होता है। जो प्रातः-काल उठकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गोतन्त्रका पाठ करता है, उसके सभी कार्य पूर्ण हो जाते हैं। वह सभी जगह आदर पाता है तथा सदा सुखपूर्वक रहता हुआ अन्तमें स्वर्गको प्राप्त करता है।

यह गोतन्त्र सभी शास्त्रोंमें शिरोमणि है, सभी प्रकारके दुःख-क्लेशोंको हरनेवाला है, सभी प्रकारकी आशाओंको पूर्ण करनेवाला है। सभी प्रकारके पापोंको हरनेवाला, महान् पुण्य प्रदान करनेवाला और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है। [अनु०—श्रीभैरवानन्दजी नाथ]

(प्रेषक—श्रीरमादत्तजी शुक्ल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

जिसका मिलना अवश्यम्भावी है, उस परमात्मासे प्रेम करो और जिसका बिछुड़ना अवश्यम्भावी है, उस संसारकी सेवा करो।

× × ×

ठीक-बेठीक हमारी दृष्टिमें होता है। भगवान्‌की दृष्टिमें सब ठीक-ही-ठीक होता है, बेठीक होता ही नहीं।

× × ×

संसारसे सम्बन्ध जोड़ें तो दुःखोंका अन्त नहीं है और भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ें तो सुखोंका, आनन्दका अन्त नहीं है।

× × ×

ईश्वर, परलोक और धर्मको न माननेवाले नास्तिकका संग सबसे अधिक पतन करनेवाला है।

× × ×

छिपानेसे पाप और पुण्य—दोनों विशेष फल देनेवाले हो जाते हैं। इसलिये अपने पाप तो प्रकट कर देने चाहिये, पर पुण्य प्रकट नहीं करने चाहिये—*'छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥'* (मानस, लंका० ७२। २)।

× × ×

सच्ची बातको स्वीकार करना मनुष्यका धर्म है।

× × ×

जो दुनियाका गुरु बनता है, वह दुनियाका गुलाम हो जाता है, और जो अपने-आपका गुरु बनता है, वह दुनियाका गुरु हो जाता है।

× × ×

जबतक साधक अपने मनकी बात पूरी करना चाहता है, तबतक उसका न सगुणमें प्रेम होगा, न निर्गुणमें।

× × ×

कल्याण-प्राप्तिमें खुदकी लगन काम आती है। खुदकी लगन न हो तो गुरु क्या करेगा? शास्त्र क्या करेगा?

× × ×

ज्ञान मुक्त करता है, पर ज्ञानका अभिमान नरकोंमें ले जाता है।

× × ×

झूठ, कपट, बेईमानी आदि करनेसे जितनी हानि होती है, उतना लाभ होता ही नहीं अर्थात् उतना धन आता ही नहीं और जितना धन आता है, उतना पूरा-का-पूरा काममें आता ही नहीं। अतः थोड़ेसे लाभके लिये इतनी अधिक हानि करना कहाँकी बुद्धिमानी है?

× × ×

निःस्वार्थभावसे दूसरोंकी सेवा करनेसे व्यवहार भी बढ़िया होता है और ममता भी टूट जाती है।

× × ×

दूसरे हमारेमें गुण देखते हैं तो यह उनकी सज्जनता और उदारता है, पर उन गुणोंको अपना मान लेना उनकी सज्जनता और उदारताका दुरुपयोग है।

× × ×

प्रतिक्षण बदलनेवाले संसारपर विश्वास ही भगवान्‌पर विश्वास नहीं होने देता।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गोमाताकी चरण-धूलिने जीवन-दान दिया

गौकी चरण-धूलिकी एक घटना मेरे प्रत्यक्ष जीवनमें घटी है, उससे मुझे यह अनुभव हुआ कि वास्तवमें शास्त्रोंमें जो गोमाताके चरण-रजकणोंकी महिमा गायी गयी है वह पूर्णतया सत्य है और मुझे तो यह भी लगा कि चरण-धूलिके प्रभावका पूरा वर्णन कर पाना भी सम्भव नहीं है। तथापि घटना-रूपमें एक दृष्टान्त यहाँ प्रस्तुत है—

एक दिन शहरके बाहर रहनेवाले महात्माके पास कुछ लोग एक युवतीको लाये, जो बेहोश थी। उसके हाथ-पैर सुन्न थे। युवतीको लानेवाले लोग महात्माके सामने उसे रखकर प्रार्थना करने लगे—'महात्मन्! आप किसी तरह इस देवीको जीवन-दान देकर बचानेका प्रयास करें।' महात्माजी साधुप्रकृतिके थे। वे बोले—'देखो भाई! मैं इसे कैसे बचा सकता हूँ। बचानेवाले तो श्रीभगवान् ही हैं। फिर भी एक उपाय है—किसी पुण्यात्मा निष्पापकी चरण-धूलि इसके मस्तकपर लगा दी जाय तो यह युवती अच्छी हो सकती है।' इसपर एक व्यक्तिने उन्हीं महात्माकी चरण-धूलि उठाते हुए कहा—'प्रभो! आप संत-महात्मा हैं, महापुरुष हैं, हमें आप-जैसे पुण्यात्माके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हमारे लिये आपसे अधिक पवित्रात्माका मिलना कहाँ सम्भव है, अत: आपके चरण-रजको ही हम इसके मस्तकपर लगाना चाहते हैं।' इसपर महात्मा बोले—'देखो भाई! तुम्हारी भावनाएँ पवित्र हैं, तुम्हारा सोचना-समझना ठीक है, किंतु शरीर तो हाड़-मांसका है। इसमें वह शक्ति कहाँ कि किसीको जीवन-दान दे सके। इस शरीरमें जन्म-जन्मान्तरीय कितने शुभाशुभ संस्कारोंकी ग्रन्थियाँ बनी हुई हैं। तुम लोग एक काम करो, किसी गायके चरणकी धूलि इसके मस्तकपर लगाओ। गोमाता सर्वथा निष्पाप एवं सर्वथा पुण्यमयी-पवित्रमयी हैं, उनके रोम-रोममें देवताओंका वास है। उनके दर्शन, स्पर्श, सेवा आदिकी तो महिमा ही अपार है।'

साधु-महात्माकी बातें सुनकर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। महात्माजीके विनय एवं साधु-स्वभावको देखकर सभी बड़े प्रभावित हुए। उन्हें महात्माजीकी एक-एक बातमें पूर्ण सत्यता प्रतीत हुई। फिर क्या था, उन्होंने महात्माजीको प्रणाम किया और वे उठ खड़े हुए। चेतनाशून्य-सी वह युवती स्त्री वैसे ही वहींपर पड़ी थी। लोग महात्माजीकी कुटियासे ज्यों ही बाहर निकले त्यों ही उन्होंने देखा कि पासमें ही एक सवत्सा गौ घास चर रही है। वे बड़ी ही श्रद्धासे गोमाताके पास गये और उसकी प्रदक्षिणा कर उन्होंने उस पवित्र भूमिसे किंचित् रजकणोंको उठा लिया और पुन: गोमाताको प्रणाम कर वे युवतीके पास चले आये। महात्माजी यह सब देख रहे थे। महात्माजीके संकेतपर उन्होंने गोमाताके चरणोंकी वह धूलि युवतीके मस्तकपर लगा दी। कुछ ही क्षणोंमें उसका ऐसा प्रभाव हुआ कि उस युवतीने धीरे-धीरे नेत्र खोलने प्रारम्भ किये और फिर वह एकाएक बैठ गयी। अपनेको एक नवीन परिवेशमें पाकर युवती घबरा गयी, किंतु महात्माजीकी अपार कृपा और गोधूलिकी महिमाका सारा वृत्तान्त सुनकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। जिसने भी इस बातको सुना वह विस्मयसे भर गया। सभीको लगा कि सच्चे मनसे यदि गोमाताका पालन-पोषण आदि किया जाय तो वह हमारे लिये सच्चे एवं वास्तविक सुख-सम्पत्तिका भण्डार खोल देगी और फिर अन्तमें अपने गोलोकमें बुला लेगी। बोलिये गोमाताकी जय!

(श्रीअवधेशसिंहजी रघुवंशी एस्० बी०)

(२)

यज्ञके धुएँने जहरीली गैसके प्रभावको निष्क्रिय कर दिया

कुछ वर्ष पूर्वकी घटना है। भोपाल शहरके समीप एक गाँवमें एक प्रतिष्ठित सज्जन रहते थे। वे एक अच्छे जमींदार थे। लगभग २५ एकड़ जमीन थी। घरमें १०—१५ गाय-बैल तथा बछड़े थे। भरा-पूरा परिवार था। वे गायोंके बड़े भक्त थे। उनका सारा जीवन कृषि-कार्य और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसेवामें व्यतीत होता था। घर-आँगन सब गायके पवित्र गोबरसे लीपा जाता था। घरके समीपमें ही खादके लिये गोबर आदि जमा किया जाता था। वही गोबरकी खाद खेतोंमें डाली जाती थी। इससे भूमि भी खूब उर्वर बनी रहती। गायोंके लिये खूब हरा चारा उपलब्ध था।

दुर्दैववश वे सज्जन कैंसर-जैसी भयंकर बीमारीसे पीड़ित हो गये। बहुत चिकित्सा की, किंतु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। उनकी कुलदेवी भगवती दुर्गामाता थीं। उन्होंने देवीसे प्रार्थना की और यह भी संकल्प किया कि स्वास्थ्य ठीक हो जानेपर दुर्गा-पाठ तथा चण्डीयज्ञ करवाऊँगा। भगवतीकी ऐसी कृपा हुई कि उनका रोग धीरे-धीरे शान्त हो गया। वे लगभग पूर्ण स्वस्थ हो गये। अब उन्होंने दुर्गा-यज्ञके संकल्पको पूरा करनेकी सोची। तदनुसार विधि-विधानसे चण्डी-यागका आयोजन प्रारम्भ हुआ।

संयोगसे उन्हीं दिनों भोपालमें भयंकर गैस-दुर्घटना घट गयी। जहरीली गैसके रिसावसे आसपासका सारा पर्यावरण दूषित हो गया। बहुत लोगोंकी जानें चली गयीं। बहुतसे नेत्र-विहीन हो गये। जिधर देखो उधरसे करुण-क्रन्दन सुनायी पड़ा। चारों ओर हाहाकार मच गया। जहरीली गैसके प्रभावसे अनेक पशु-पक्षी भी प्रभावित हुए। आस-पासके लोग अपना गाँव छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। समूचा वातावरण ही दूषित हो गया था।

आश्चर्यकी बात यह थी कि उन कृषक सज्जनके घरके समीपका क्षेत्र जिनके यहाँ चण्डी-याग चल रहा था, जहरीली गैसके प्रभावसे अछूता ही रहा। उस यज्ञमें प्रत्येक दिन विशुद्ध गायके घीकी आहुतियाँ पड़ रही थीं तथा पवित्र शाकल्यका उपयोग हो रहा था। गायके गोबरसे बने उपलोंका भी प्रयोग हो रहा था। यज्ञ-कुण्डसे यज्ञाग्निकी ज्वालाएँ प्रकट होती थीं। यज्ञके पवित्र एवं सुगन्धित धुएँका ऐसा विलक्षण प्रभाव था कि आसपासके समीपका वायुमण्डल पूर्णरूपेण शुद्ध बना हुआ था। फलतः उस जहरीली गैसका कुछ भी दुष्प्रभाव यहाँ नहीं हो सका। विस्फोटक गैस उस क्षेत्रमें प्रविष्ट ही नहीं हो पायी। यज्ञ-समारोहमें सम्मिलित लोगोंपर गैसका कोई भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। फलतः सभी लोग सुरक्षित रहे। यह गोमाताके शुद्ध घी और गोमयके सम्मिलित पवित्र यज्ञके धुएँका ही चमत्कार था। कदाचित् उस समय वहाँ यज्ञ न हो रहा होता तो अन्य लोगोंकी तरह ये सब लोग भी जहरीली गैसकी चपेटमें आ जाते। अप्रत्यक्ष रूपसे गोमाताने ही सबकी रक्षा की।

इस घटनाकी खबर चारों ओर फैल गयी। जो भी सुने उसे सहसा विश्वास न हो, किंतु प्रत्यक्ष घटनाको देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। इस ओर वैज्ञानिकोंका भी ध्यान गया। उनके लिये तो यह एक खुली चुनौती थी। यज्ञाग्निके पवित्रतम धुएँ और साधारण धुएँमें फर्क करना उन्हें सहन कैसे हो? किंतु खोजबीनके बाद वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि 'किसी तपे हुए गर्म भागपर यदि गोबरका धुआँ आवृत हो अथवा वेष्टित हो तो उस स्थानपर दूषित गैस इत्यादिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।' यज्ञ-स्थलमें ऐसी ही स्थिति रहती है। यज्ञकुण्डसे जब घी और गोमयके संयोगसे धुआँ निकलता है तो वह आसपासके क्षेत्र तथा वायुमण्डलको पूर्ण पवित्र एवं निर्मल कर देता है।

(श्रीलक्ष्मणरावजी जोशी, एम्०ए०, साहित्यरत्न)

(३)

भगवत्स्मरणका चमत्कार

यहाँ एक ऐसे १७ वर्षीय लड़केकी सत्य घटनाका उल्लेख किया जा रहा है, जिसके पैरोंको ८ फुट लंबे काले नागने जकड़ लिया, किंतु भगवत्स्मरणकी सच्ची साधनाने उसे बचा लिया।

घटना १९७३ ई० की है। गर्मीके दिन थे। मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलेके कोयला-खानमें कार्यरत मजदूर सुखरामका पुत्र सुखदयाल मई महीनेमें एक दिन सुबह एक पनघटसे जल-भरा घड़ा सिरपर रखे घर लौट रहा था। रास्तेमें एक महुएके वृक्षके नीचेसे वह गुजर ही रहा था कि एक आठ फुट लंबे काले नागने वृक्षकी ओरसे निकलकर उसके पैरोंसे घुटनेतक कसकर लपेट लिया। सुखदयालको सचमुच साँप सूँघ गया। काटो तो खून नहीं। अब उसके लिये एक कदम भी बढ़ाना घातक था। अचानक उपस्थित विपदासे वह पत्थरकी तरह जड हो गया। उसे अपने सामने साक्षात् मृत्युके दर्शन हो रहे थे। काला नाग फन उठाये फुफकारी मार रहा था। उसे लगा कि अब मरा कि तब मरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंकर्तव्यविमूढ सुखदयालको घरेलू धार्मिक संस्कारके कारण एकाएक अपनी इष्टदेवी दुर्गा माताका स्मरण हो आया। उसने मन-ही-मन माँ दुर्गाको सच्चे हृदयसे पुकारा। बचपनमें याद किया निम्न मन्त्र उसे स्मरण हो आया, अनन्य भावसे शरणागत होकर वह आँखें बंद किये मन-ही-मन माँको पुकारने लगा—

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

अर्थात् 'हे नारायणी देवि! तुम अपनी शरणमें आये हुए दीनों एवं आर्तजनोंकी रक्षा करनेमें सदा संलग्न रहती हो और सभीके दुःख-कष्टोंका सदा निवारण करनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है।'

हे माँ! मैं भी आज बड़े कष्टमें हूँ, जीवन और मृत्युसे जूझ रहा हूँ और दीन होकर तुम्हारी शरणमें हूँ, माँ! मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ, मेरी रक्षा करो, मुझे इस काले नागसे मुक्ति दिलाओ।

वात्सल्यमूर्ति जगदम्बाके आर्तस्मरणसे उसके अन्तः-करणमें जीवनके आसार आने लगे। उसे श्रद्धा-विश्वास फलीभूत-सा होता प्रतीत हुआ। उसे लगा कि जब मेरी माँ मेरे साथ हैं तो यह नाग मेरा क्या कर सकता है। माँकी शक्तिके सामने नागकी क्या सामर्थ्य कि मुझे डँस ले। कुछ क्षण वैसे ही बीते। मार्ग तो था ही, इधर-उधरसे आने-जानेवाले लोग एकत्र हो गये। धीरे-धीरे दर्शकोंकी भीड़ जमा हो गयी, किंतु उस अतर्क्यस्थितिमें सबका पुरुषार्थ लुप्त हो गया, बुद्धि कुण्ठित हो गयी। नागपर प्रहार करना खतरेसे खाली नहीं था। सब लोग मूर्ति-लिखे-से खड़े थे और नाग फन उठाये खड़ा था। सूचना पाकर सुखदयालके परिवारके लोग भी आ गये, किंतु वे भी करें तो क्या करें। कुछ भी छेड़छाड़ करनेका मतलब था, नागका डँस लेना। परिवारके लोग घबड़ा उठे। उन्हें पुत्रका जीवन खतरेमें दिखायी पड़ा। अब तो केवल भगवान् ही चाहें तो इस काले नागसे मुक्ति दिला सकते हैं। कुछ दूर खड़े होकर सभी लोग अपने-अपने इष्टदेवसे प्रार्थना करने लगे कि 'हे भगवान्! इस बालककी जान बचाओ।'

इधर नागराज बालकको फन फैलाकर डँसनेकी तैयारीमें अधीर था। नागराजका यह सारा खेल महुएके वृक्षपर बैठे दो पक्षी तोता और नीलकंठ देख रहे थे। भगवान्की ऐसी प्रेरणा हुई कि उन पक्षियोंके मनमें दया एवं परोपकारके भाव जाग्रत् हो उठे। उन्होंने सुखदयालके जीवनको बचानेका संकल्प लिया। जैसे ही नागने सुखदयालको डँसनेके लिये फन उठाया, वे दोनों पक्षी तीव्र गतिसे उसपर टूट पड़े। वे तेजीसे आमने-सामने उड़ानें भरते और नागके फनको अपनी नुकीली चोंचसे आहत करने लगे। नाग घबरा गया और घायल हो गया। उसका फन खूनसे लथपथ होता जा रहा था। उपस्थित जनसमूह दोनों पक्षियोंके इस अकल्पित उपकारको मन्त्रमुग्ध-सा देखता रहा और सुखदयाल भय एवं आश्चर्यसे बिना हिले-डुले खड़ा रहा। उसकी प्रार्थनाने उसके हृदयमें साहसका अद्भुत संचार कर दिया था। जब नागराज पक्षियोंकी नुकीली चोंचसे अत्यधिक घायल हो गया तब वह सुखदयालके पैरोंको छोड़कर तेजीसे भाग निकला। सभी दूरतक उसे जाते देखते रहे। जब वह ओझल हो गया तो सबकी दृष्टि सुखदयालकी ओर लौट आयी। वह तो अभी चित्रलिखित-सा खड़ा ही था। उसे लगा जैसे वह स्वप्न देख रहा हो। उसके परिवारके लोग दौड़कर उससे चिपट गये। एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया। आपसमें सभी लोग कहने लगे—'देखो! भगवान्ने आज सुखदयालको बचा लिया। नहीं तो उन पक्षियोंको क्या पड़ी थी कि वे ऐसा करतब दिखाते। निश्चित ही उनके मनमें भगवान्की प्रेरणा हुई।' जिसने भी इस घटनाको सुना, वही आश्चर्यमें पड़ गया। भौतिक विज्ञानवादी तो यह चमत्कार देखकर हैरान हो गये। इस घटनाने कई नास्तिकोंको पूर्ण आस्तिक बना दिया। सभीको ऐसा लगा कि माँ जगदम्बा पुकार सुनती हैं अवश्य, बस सच्चे हृदयसे पुकारनेकी ही देर है।

(धर्मरत्न डॉ० श्रीपुरुषोत्तमदासजी कानुगो)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवधपर उच्चतम न्यायालयका निर्णय

कुछ समय-पूर्व अखबारोंमें एक समाचार आया जिसका शीर्षक था 'उच्चतम न्यायालयने कहा—गोवध धार्मिक अधिकार नहीं है'—यह निर्णय उच्चतम न्यायालयके न्यायाधीश न्यायमूर्ति कुलदीपसिंह, न्यायमूर्ति वी० एल० अन्सारिया और न्यायमूर्ति एस० वी० मजूमदारकी खण्डपीठने सुनाया। इस खण्डपीठने पश्चिम बंगाल सरकारकी विशेष अपील-याचिका रद्द करते हुए निर्णय दिया कि 'भारतमें बकरीदपर मुस्लिम सम्प्रदायद्वारा गोवध करना उनका मज़हबी अधिकार नहीं।' इस निर्णयसे जिन २६ व्यक्तियोंने याचिका दायर की थी, उन्हें यद्यपि २३ साल बाद न्याय मिला, किंतु प्रसन्नता इस बातकी है कि उच्चतम न्यायालयका यह निर्णय एक समाचार मात्र नहीं है, बल्कि भारतीय जनता जो गायको माताके रूपमें स्वीकार करती है और 'गोमाता' के उपकारोंसे उपकृत होकर अत्यधिक कृतज्ञताका अनुभव करती है, उनके लिये यह एक आह्लादपूर्ण ऐतिहासिक निर्णय है।

श्रीकेदारनाथ ब्रह्मचारीने १९७१ में कलकत्ता उच्च न्यायालयमें इस सम्बन्धमें याचिका दायर कर बकरीदके अवसरपर राज्य-सरकारद्वारा स्वस्थ गायोंके वधकी अनुमति देनेको चुनौती दी थी। ३० अगस्त १९८२ को कलकत्ता उच्च न्यायालयने इस मामलेमें फैसला देते हुए कहा था कि 'बकरीदके अवसरपर मुस्लिम समुदायके सदस्योंद्वारा गायकी कुर्बानी देना इस्लामके अनुसार अनिवार्य नहीं, परंतु पश्चिम बंगाल-सरकारने तीन सालके अंदर ही उस निर्णयके विरुद्ध स्थगनादेश ले लिया और पिछले बारह सालसे बकरीदके अवसरपर राज्यमें बड़े स्तरपर स्वस्थ गायोंका भी वध होता रहा।

अब उच्चतम न्यायालयकी खण्डपीठने निर्णय सुनाते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालयके फैसलेको सही बताया है और कहा है कि 'पश्चिम बंगाल-सरकारके 'पशु-वध-नियन्त्रण-अधिनियम, १९५०' के तहत बकरीदपर गाय काटनेकी अनुमति देना उचित नहीं है। और यह इस्लाममें आवश्यक भी नहीं है।' न्यायालयने पश्चिम बंगाल राज्य-सरकारद्वारा उच्च न्यायालयके निर्णयके विरुद्ध अपील करनेको भी व्यर्थका प्रयास कहा है, क्योंकि १९५८ में ही उच्चतम न्यायालय एम० एच० कुरैसी बनाम बिहार सरकारके एक मामलेमें निर्णय दे चुका है कि 'गोवधपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगानेसे भारतके संविधानका उल्लंघन नहीं होता।' इस बार न्यायालयने कहा कि 'पशुवध-नियन्त्रण-कानून' दुधार पशुओंके वधपर रोक-थाम और दूधका उत्पादन बढ़ानेके उद्देश्यसे बनाया गया है। इस कानूनमें स्पष्ट लिखा है कि 'स्वस्थ गायोंका वध उचित नहीं।'

इन सब बातोंसे यह सब स्पष्ट है कि देशकी कुछ राजनीतिक पार्टियाँ और सत्तालोलुप लोग अपना वोट-बैंक बढ़ानेके लिये अल्पसंख्यकोंको खुश करनेकी दृष्टिसे राम-कृष्णकी इस पवित्र भूमि भारत-जैसे देशमें गोहत्याका काला कलंक पूर्णरूपसे नहीं मिटाना चाहते।

आज भी देशमें आधुनिक यन्त्रोंसे संयुक्त नये-नये कसाईखाने बनानेकी योजना बनती है तथा गोमांसका विदेशोंमें निर्यातकर धन कमाना चाहते हैं, बदलेमें खादके लिये गोबरका विदेशोंसे आयात करते हैं। अहिंसाकी दुहाई देनेवाले देशके कर्णधारोंके लिये क्या यह लज्जाकी बात नहीं है? जिस देशमें गांधी और बुद्ध-जैसे महान् मनीषियोंने जन्म लिया और संसारको सत्य तथा अहिंसाका पाठ पढ़ाया, उस देशमें 'गाय'-जैसी निरीह और श्रेष्ठ प्राणीकी हत्या न रोकी जा सके और मांसका निर्यात हो तथा गोबरका आयात किया जाय तो इससे बढ़कर दु:ख और शर्मकी बात क्या हो सकती है?

आँकड़ोंके अनुसार आज यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि दूध न देनेवाली और ठाँठ गायें भी देशमें आर्थिक दृष्टिसे भारस्वरूप नहीं हैं। इनके भरण-पोषणका जो खर्च होता है, उससे बहुत अधिक आय केवल गोबर और गोमूत्रसे प्राप्त हो जाती है।

अत: देशकी समृद्धिके लिये यह आवश्यक है कि गोवंशकी हत्या केन्द्रीय कानून बनाकर तत्काल रोकी जाय और देशके विभिन्न भागोंमें गायोंके संरक्षण तथा संवर्धनके लिये चरागाहोंका निर्माण किया जाय, जहाँ गोपालनकी समुचित व्यवस्था हो। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जहाँ गायें रहेंगी वहाँकी वायु शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद होगी। गोवंशकी वृद्धिसे देशके वातावरण और पर्यावरणमें शुद्धता आयेगी, जनता स्वस्थ एवं समृद्धिकी ओर अग्रसर होगी, अत: इस कार्यपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

—राधेश्याम खेमका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगामी ७० वें वर्ष (सन् १९९६ ई०) का विशेषाङ्क
'धर्मशास्त्राङ्क'

मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। इस सम्बन्धमें अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें यही कहा कि '**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।**' मनुष्यको क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, इसके लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं। धर्मशास्त्रोंमें जीवनकी प्रत्येक विधाओंपर विधि-निषेधके रूपमें समुचित विवेचन और निर्देशन प्राप्त है। प्रातःकाल जागरणसे लेकर शयनतक और जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त सभी कार्य-कलाप कल्याण चाहनेवाले पुरुषके लिये अपने धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट व्यवस्था और विधानके अनुसार ही होने चाहिये।

इन सब दृष्टियोंसे आगामी वर्ष सन् १९९६ ई० में 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें 'धर्मशास्त्राङ्क' प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है।

इस अङ्कमें मुख्य रूपसे धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट सामान्य धर्म और विशेष धर्म, विभिन्न स्मृतियों, धर्मसूत्रों एवं निबन्ध-ग्रन्थोंका परिचय, साथ ही उनके प्रतिपाद्य विषयोंका संकलन, धर्मशास्त्रकारोंके उदात्त चरित्र, शौचाचार, सदाचार, यम, नियम, श्राद्ध, दान, कर्मविपाक, प्रायश्चित्त-विधान, संस्कार एवं जीवनकी विविध विधाओंपर शास्त्रीय दृष्टिका निरूपण और उनकी कथाएँ संगृहीत करनेका विचार है।

हम भारतके गण्यमान्य आचार्य आदरणीय संत-महात्माओं तथा मान्य अधिकारी मनीषी लेखकों एवं धर्मशास्त्रके ज्ञाता विद्वज्जनोंसे सादर सहयोगका अनुरोध करते हैं। हमारा विचार है धर्मशास्त्रसे सम्बन्धित प्रत्येक विधाओंपर पठनीय, विचारप्रेरक एवं अनुष्ठेय सामग्रीका संकलन इस विशेषाङ्कमें किया जाय। अतएव विद्वज्जनोंकी सेवामें विशेषाङ्ककी एक संक्षिप्त वाञ्छनीय सूची दिशानिर्देशके रूपमें साथ ही प्रेषित की जा रही है।

यद्यपि इस वर्ष विशेषाङ्कके लिये सामान्य लेख भेजनेका अनुरोध नहीं है, फिर भी विशिष्ट सामग्रीसे युक्त धर्मशास्त्रसे सम्बन्धित विषयोंको रोचक भाषामें कोई महानुभाव प्रस्तुत करना चाहें तो उनका सहर्ष स्वागत किया जायगा। अतः निवेदन है कि जो महानुभाव प्रस्तुत विषयोंपर अपने चिर-स्वाध्याय, साधना एवं अनुभवके अनुसार अपनी सामग्री भेजना चाहें, वे **आषाढ़ कृष्ण तृतीया, दिन गुरुवार (१५ जून सन् १९९५ ई०)** तक अवश्य भेज देनेकी कृपा करें।

विनीत—
राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

विषय-सूची

१-धर्मशास्त्रोंकी धर्मरूपता।
२-धर्मशास्त्र और सनातन संस्कृति।
३-'शास्त्र' शब्दकी व्युत्पत्ति, परिभाषा और व्याख्या।
४-धर्मशास्त्रके लक्षण, उनकी संख्या और विशेषताएँ।
५-श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
६-धर्मशास्त्रोंकी वेदमूलकता।
७-धर्मशास्त्रके प्रतिपादनमें स्मृतियों और निबन्ध-ग्रन्थोंका योगदान।
८-मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, नारदस्मृति, कात्यायनस्मृति, पराशरस्मृति, वसिष्ठस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, वेदव्यासस्मृति तथा बौधायनस्मृति आदि स्मृतियोंकी विशेषता और इनकी धर्म-मीमांसा।
९-मनुस्मृतिके व्याख्याता भगवान् मनुका पृथिवीके समस्त मानवोंके लिये धार्मिक संदेश।
१०-निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, हेमाद्रि आदिमें वर्णित धर्मों और धर्मशास्त्रीय निबन्ध-ग्रन्थोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन।
११-धर्मशास्त्रोंके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय।
१२-धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट सामान्य धर्म और विशेष धर्म।
१३-धर्मशास्त्रोंमें चतुर्विध पुरुषार्थ—धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका विवेचन।
१४-ज्योतिष, कर्मकाण्ड, व्याकरण, निरुक्त तथा कल्पसूत्र एवं धर्मसूत्रोंमें वर्णित धर्मशास्त्रीय धर्म-कर्मोंका विवेचन।
१५-धर्मशास्त्र और पूर्व-उत्तर—उभय-मीमांसा।
१६-सनातनधर्म ही सार्वभौम धर्म है।
१७-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित स्वधर्म—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'
१८-'निज निज धर्म निरत श्रुति रीती।'
१९-धर्मशास्त्रोंमें परलोक एवं पुनर्जन्मका वर्णन तथा कर्मविपाकसंहिताका निरूपण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित पूर्वजन्मके पापभोग, फल तथा प्रायश्चित्त-विधान।
२१-धर्मशास्त्रोंमें वर्णित स्वर्ग-नरक और पाप-पुण्यकी मीमांसा तथा नरकोंसे बचनेके अचूक उपाय।
२२-धर्मशास्त्रोंमें प्रदर्शित पातक एवं महापातकोंका प्रायश्चित्त-विधान।
२३-अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त-व्रतोंका निरूपण—चान्द्रायण, कृच्छ्रचान्द्रायण, सांतपन, महासांतपन, तप्तकृच्छ्र, शीतकृच्छ्र, पादकृच्छ्र, पराक, प्राजापत्य, नक्त तथा यावक-व्रत।
२४-धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट सदाचारकी विशेष महिमा।
२५-शौचाचार, जननाशौच, मरणाशौच तथा स्पर्शास्पर्श-विचार।
२६-धर्मशास्त्रोंमें अतिथि-सत्कारकी महिमा।
२७-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित तर्पण, श्राद्ध एवं पितृकर्मकी अनिवार्यता।
२८-धर्मशास्त्रोंमें वर्णित ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि पवित्र देश तथा तीर्थ एवं तीर्थयात्राकी महिमा।
२९-धर्मशास्त्रोंमें इष्टापूर्त-धर्मकी महिमा।
३०-धर्म और राजनीति।
३१-धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट राजाके कर्तव्य, राज्य-संचालनकी व्यवस्था तथा कर-व्यवस्था।
३२-धर्मशास्त्रोंमें उपदिष्ट व्यवहार, न्याय एवं दण्डकी व्यवस्था।
३३-धर्मशास्त्रोंमें विवेचित दाय-भाग एवं धनके बँटवारेका विधान।
३४-धर्मशास्त्रोंमें वर्णित अनेक प्रकारके पुत्रोंका वर्णन।
३५-धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट वर्ण एवं आश्रम-व्यवस्था।
३६-धर्मशास्त्रोंमें विवेचित गृहस्थ-जीवन तथा स्त्री-पुरुषोंके कर्तव्य।
३७-धर्मशास्त्रोंमें वर्णित दान-मीमांसा तथा दानसे सम्बद्ध निबन्ध-ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय।
३८-धर्मशास्त्रोंमें द्रव्य एवं पदार्थ-शुद्धिकी प्रक्रिया।
३९-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित नारी-धर्म।
४०-धर्मशास्त्रोंमें गोसेवाकी महत्ता और उसका स्वरूप।
४१-पुराण और धर्मशास्त्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध।
४२-नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र।
४३-रामायण, महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें धर्मशास्त्रका प्रतिपादन।
४४-अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रम्—इति श्रुतिः।
४५-धर्मो रक्षति रक्षितः।
४६-श्रीमद्भगवद्गीताकी दृष्टिमें धर्मशास्त्रोंकी सर्वाधिक प्रामाणिकता—'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।'
४७-रामो विग्रहवान् धर्मः।
४८-धर्मशास्त्रोंमें योग, ज्ञान एवं भगवद्भक्तिका निरूपण तथा उसकी महिमा।
४९-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, विवाह आदि विभिन्न संस्कारोंका विवेचन।
५०-धर्मशास्त्रोंमें वर्णित संध्यावन्दन, गायत्री-जप, पूजा-पाठ, जप-तप, होम, यज्ञ, अनुष्ठान आदि शुभ कर्मोंकी महिमा।
५१-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित सूक्ष्म साधन-तत्त्व।
५२-धर्मशास्त्रोंमें निरूपित कुछ मुख्य धर्म—अहिंसा-धर्म, सत्य-धर्म, अस्तेय-धर्म, ब्रह्मचर्य-धर्म, अपरिग्रह-धर्म, शौच-धर्म, संतोष-धर्म, तप-धर्म, स्वाध्याय-धर्म, ईश्वरप्रणिधान-धर्म, त्याग-धर्म, दया-धर्म, धृति-धर्म, क्षमा-धर्म, शम (मनोनिग्रह)-धर्म, दम (इन्द्रियनिग्रह)-धर्म, विद्या-धर्म, अक्रोध-धर्म, तितिक्षा-धर्म, सेवा-धर्म, न्याय-धर्म, परोपकार-धर्म, वैराग्य-धर्म, निर्लोभता-धर्म, समदर्शिता-धर्म, समता-धर्म, मित्र-धर्म, पिता-पुत्र-धर्म, गुरु-शिष्य-धर्म, सेवक-स्वामि-धर्म, पति-पत्नी-धर्म, पतिव्रता-धर्म, अतिथि-धर्म, शरणागतरक्षक-धर्म, गृहस्थ-धर्म तथा भक्तिरूपी परम धर्म।
५३-धर्मशास्त्रोंमें शील, विनय, सौम्य-स्वभाव, सत्संगति, सौहार्द, शान्ति, सद्भाव, सद्व्यवहार एवं विश्वबन्धुत्वकी महिमा।
५४-विश्वमें स्थित अन्य सभी धर्मों (जैन, बौद्ध, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जरथुस्त्र, कन्फ्यूसियस तथा इसलाम आदि) के धर्मशास्त्रोंका संक्षिप्त परिचयात्मक दिग्दर्शन।
५५-विविध धर्मोंके आदर्श चरित्र—सत्यनिष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र, राजा युधिष्ठिर, भरत, महाराज नल, महान् परोपकारी महाराज शिबि, दधीचि, महादानी कर्ण, महाराज मयूरध्वज, सुदर्शन, अतिथिधर्मा कपोत, तुलाधार वैश्य, एकलव्य, उपमन्यु, पतिव्रता मदालसा, भगवती सती, उमा, अनसूया, श्रीजानकीजी, सती सावित्री, दमयन्ती, कुन्ती, मन्दोदरी आदि श्रेष्ठ धर्मप्राणा नारियाँ इत्यादि।
५६-धर्मशास्त्र ही एकमात्र सच्चे मार्गप्रदर्शक हैं।
५७-धर्मशास्त्रोंकी अवहेलनासे दुःख एवं नरककी प्राप्ति निश्चित है।
५८-शिक्षण-संस्थाओंमें धर्मशास्त्रोंकी शिक्षाकी आवश्यकता और अपरिहार्यता।
५९-प्रमुख धर्मशास्त्रकारोंके धर्ममय उदात्त चरित्र—(१) भगवान् मनु, (२) महर्षि याज्ञवल्क्य, (३) देवगुरु बृहस्पति, (४) महर्षि पराशर, (५) महर्षि वसिष्ठ, (६) भगवान् वेदव्यास, (७) आपस्तम्ब, (८) अंगिरा, (९) अत्रि, (१०) दक्ष, (११) शातातप, (१२) शंख, (१३) लिखित, (१४) हारीत, (१५) बौधायन, (१६) आश्वलायन, (१७) गोभिल, (१८) गौतम, (१९) कात्यायन, (२०) पुलस्त्य, (२१) शाण्डिल्य, (२२) देवल, (२३) प्रजापति इत्यादि।
६०-भगवान्का अवतार धर्म और धर्मशास्त्रोंकी रक्षाके लिये ही होता है—'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'
६१-सभी शास्त्रोंका तात्पर्य एकमात्र विश्वदृश्यनिवृत्तिपूर्वक परमानन्दस्वरूप भगवत्साक्षात्कारमें ही है।
६२-'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गोसेवा-अङ्क' का पुनर्मुद्रण

२,२०,००० (दो लाख बीस हजार) प्रतियोंके प्रथम संस्करणके तुरंत बाद १०,००० (दस हजार) प्रतियोंका दूसरा संस्करण छप चुका है। गत वर्षकी भाँति इस बार भी 'कल्याण'के ग्राहकोंकी संख्यामें आशातीत वृद्धि होती लगती है, जो 'गोसेवा-अङ्क'की लोकप्रियता एवं उपादेयताका द्योतक है। सभी ग्राहक महानुभावोंसे अनुरोध है कि वे अपने इष्ट-मित्रोंको 'कल्याण' मँगवानेके लिये प्रेरित करें। अजिल्द 'कल्याण'के लिये ६५.०० (पैंसठ रुपये) एवं सजिल्दके लिये ७२.०० (बहत्तर रुपये) का मनीआर्डर प्राप्त होनेसे रजिस्ट्रीद्वारा अथवा पत्रादेश प्राप्त होनेपर अजिल्द 'कल्याण' ७०.०० (सत्तर रुपये) की वी०पी०पी० द्वारा एवं सजिल्द ७७.०० (सतहत्तर रुपये) की वी०पी०पी० द्वारा भेजा जा सकता है।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

पुनर्मुद्रित महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१-श्रीमद्भागवत-सुधासागर—इस ग्रन्थमें भगवान् वेदव्यासकृत श्रीमद्भागवत-महापुराणके बारहों स्कन्धोंकी सरल हिन्दीव्याख्या श्लोकाङ्कसहित की गयी है तथा स्थान-स्थानपर भगवान् श्रीकृष्णके मधुर लीला-रहस्योंको समझनेहेतु भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदिसे परिपूर्ण टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। मजबूत जिल्दसे सज्जित मूल्य रु० ७५.००, डाकव्यय २०.०० रुपये रजिस्ट्रीसे।

२-नारी-अङ्क—'कल्याण' वर्ष २२ सन् १९५० ई० में प्रकाशित विशेषाङ्क 'नारी-अङ्क' में भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारी-विषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और भारतीय संस्कृतिके अनुरूप यथोचित समाधान दिया गया है। विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध तथा महान् महिलारत्नोंका जीवनपरिचय उनके आचरण-सम्बन्धी प्रेरक प्रसंग अत्यधिक ज्ञानवर्धक एवं अनुकरणीय हैं। सजिल्द, मूल्य रु० ७०.००, डाकव्यय रु० ८.०० रजिस्ट्रीसे।

३-गीतादर्पण (हिन्दी)—परमश्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीद्वारा गीतातत्त्वसागरसे मथकर अन्वेषित इस ग्रन्थमें गीताके अठारहों अध्यायोंके तत्त्वोंपर प्रश्नोत्तरशैलीमें प्रकाश डाला गया है तथा प्रधान विषयोंका लेखरूपमें विस्तारपूर्वक समाधान किया गया है। गीताके शाब्दिक ज्ञान एवं व्याकरणसम्बन्धी प्रामाणिक समाधानसे पूर्ण यह साधकों एवं गीतापाठकोंहेतु विशेष उपादेय है। मूल्य रु० २५.००, डाकव्यय रु० ११.०० रजिस्ट्रीसे।

अन्य भारतीय भाषाओंके नये प्रकाशन

(१) 'गीता-माधुर्य' (असमिया)—स्वामी रामसुखदासजी महाराजकी हिन्दीमें प्रकाशित पुस्तकका अनुवाद। मूल्य रु० ५.०० डाकव्यय २.००।

(२) 'देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम' (बंगला)—स्वामी रामसुखदासजीकी हिन्दीमें प्रकाशित पुस्तकका अनुवाद। मूल्य रु० २.५० डाकव्यय २.००।

(३) 'गीता' (पाकेट साइज)—(बंगला) बंगलालिपिमें श्लोक एवं सरल बंगला भाषामें अनुवाद। मूल्य रु० ३.०० डाकव्यय २.००।

(४) 'हनुमानचालीसा' (बंगला)—बंगलालिपिमें मूल्य रु० १.०० डाकव्यय १.००।

प्रकाशनकी प्रक्रियामें

१-हिन्दू-संस्कृति-अङ्क—'कल्याण' वर्ष २४ सन् १९५० ई० में प्रकाशित इस विशेषाङ्कका ग्रन्थाकार चतुर्थ संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थमें भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, आचार-विचार और उच्चादर्शोंपर प्रकाश डालनेवाले तथ्यपूर्ण विषयोंका संकलन किया गया है। यह ग्रन्थ भारतीय संस्कृतिके अनुरूप जीवनको बनाने तथा ज्ञानवर्द्धनकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य रु० ७५.००, डाकव्यय रु० ८.००।

२-हिन्दी बालपोथी रंगीन—छोटे बालकोंको हिन्दी भाषाके अक्षर-बोध एवं प्रारम्भिक शिक्षाकी दृष्टिसे इस पुस्तकका रंगीन लेमिनेशन किया हुआ मजबूत जिल्दसहित संस्करण प्रकाशित करनेकी योजना है। मूल्य रु० २.५०, डाकव्यय रु० २.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कागजके मूल्यमें अप्रत्याशित वृद्धि

जून १९९४से मार्च १९९५ तककी मात्र दस मासकी अवधिमें कागजके उत्पादकोंने संगठित होकर छपाईके सामान्य कागजके मूल्यमें लगभग ३३ प्रतिशतकी वृद्धि की है। ऐसी चर्चा है कि और भी मूल्यवृद्धि शीघ्र हो सकती है। इस प्रकारकी मूल्यवृद्धि पहले कभी हुई याद नहीं आती। इससे उत्पन्न अभूतपूर्व स्थितिमें हमें न चाहते हुए भी अपने प्रकाशनोंके मूल्योंमें वृद्धि करनी पड़ रही है।

पाठकोंको विदित ही है कि गीताप्रेस विगत ७० वर्षोंसे अपने सत्साहित्य सर्वसाधारणको बहुत कम मूल्यमें उपलब्ध कराता आ रहा है। अनेक जीवनोपयोगी शीघ्र कल्याणकारी पुस्तकोंकी उपलब्धि तो लागतसे बहुत ही कम मूल्यपर करायी जा रही है। हमारा प्रयास है कि हम मूल्योंमें वृद्धि कम-से-कम करें और अगले संस्करणोंसे ही करें, जिससे वर्तमान मूल्यपर चिप्पी आदि लगाकर पुस्तक-विक्रेता पाठकोंसे छपे मूल्यसे अधिक मूल्य न ले सकें।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्संगके आयोजनकी व्यवस्था है। वहाँ **परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज**का वैशाख कृष्णपक्षके द्वितीय सप्ताहमें पहुँचनेका विचार है। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

सत्संगहेतु वहाँ जानेवाले सभी भाइयों और माताओं-बहनोंसे विनम्र निवेदन है कि वे सत्संग तथा भजनके उद्देश्यसे ही वहाँ पधारें; मात्र जलवायु-परिवर्तन, मनोरंजन या पर्यटनके उद्देश्यसे वहाँ नहीं जाना चाहिये। सत्संगके निमित्त स्वर्गाश्रमके इस सीमित आवास-कालमें सत्संगी भाइयोंको संयमित और नियमित साधक-जीवन बिताते हुए वहाँ आयोजित सत्संग तथा कथा-कीर्तन आदिके कार्यक्रमोंमें प्रतिदिन अनिवार्यरूपसे सम्मिलित होना चाहिये।

महिलाओंको अकेली नहीं जाना चाहिये; उन्हें पीहर या ससुरालवालों-(अथवा अन्य किसी निकट-सम्बन्धी-) के साथ ही वहाँ जाना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको अपने साथमें जहाँतक सम्भव हो नहीं लाना चाहिये। आवश्यक सामान ही साथमें ले जाना चाहिये तथा अपने सामानकी पूरी देख-रेख स्वयं ही करनी चाहिये। जिन्हें रसोइया, नौकर आदिकी आवश्यकता हो उन्हें अपने साथमें ही ले जाना चाहिये। स्वर्गाश्रममें इनका मिलना कठिन है। खाने-पीनेके सामानकी व्यवस्था वहाँ यथासाध्य की जाती है, पर दूधके प्रबन्धमें कठिनाई है। सत्संग-प्रेमी सज्जनोंको चाहिये कि वे भगवत्कृपासे प्राप्त इस दुर्लभ सुअवसरसे अधिकाधिक लाभ उठायें।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम-२४९३०४**

एक आवश्यक नम्र निवेदन

इस वर्ष (जनवरी १९९५) का विशेषाङ्क 'गोसेवा-अङ्क' फरवरी एवं मार्च मासके अङ्कोंसहित सभी ग्राहक महानुभावोंको भेजा जा चुका है। **फरवरी मासका अङ्क 'गोसेवा-अङ्क' के ही जिल्दमें पृष्ठ-संख्या ४२१ में संलग्न है, इसे अन्य अङ्कोंकी तरह अलगसे नहीं भेजा गया है।** जिन ग्राहकोंके अग्रिम शुल्क प्राप्त होनेके बाद यथासमय समायोजन हो गया था, उन्हें 'कल्याण' रजिस्ट्रीद्वारा तथा शेष ग्राहकोंको पूर्वकी भाँति वी०पी०पी० द्वारा भेजा जा चुका है। जिन ग्राहक महानुभावोंको अभीतक रजिस्ट्री, वी०पी०पी० नहीं प्राप्त हुई है वे मनीआर्डरकी पावती रसीदकी नकल जाँचहेतु भेजनेकी कृपा करें। जिन ग्राहकोंके 'कल्याण' कतिपय कारणोंसे रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० द्वारा वापस आ गये हैं, उन्हें इस विषयमें पत्र भी भेजा गया है।

व्यवस्थापक—**'कल्याण' पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

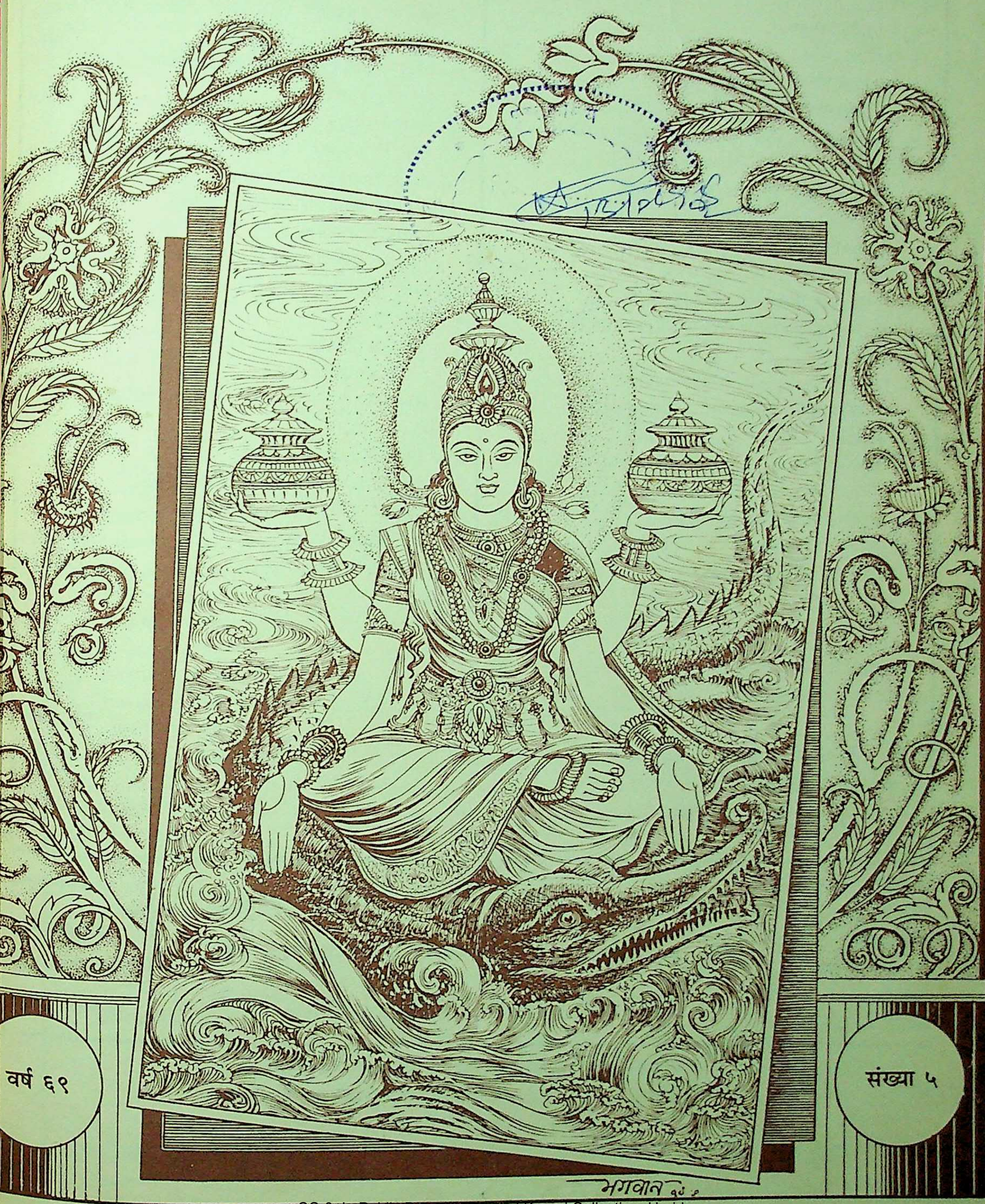

वर्ष ६९

संख्या ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, मई १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गो-गोपियोंमें गोपाल	५६७
२- कल्याण (शिव)	५६८
३- रहस्यमय प्रवचन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५६९
४- अनमोल वचन (श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्द सरस्वती परमहंसदेवजी) [प्रे०—श्रीप्रभाकर महान्ति]	५७५
५- मातृ-पितृ-भक्ति एवं श्राद्ध-तर्पणका महत्त्व (ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	५७६
६- सत्यकी रक्षा करनेवाला अन्तमें विजयी होता है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५७९
७- विष्णुप्रिया तुलसी (श्रीचाँदमलजी माहेश्वरी)	५८३
८- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५८६
९- लोकाभिराम श्रीराम [कविता] (श्रीरामस्वरूपजी पण्डित 'मयूरेश')	५८८
१०- श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय	५८९
११- गौ मातृ-रूप, धरती-स्वरूप [कविता] (डॉ० श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल)	५९३
१२- प्रेम-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	५९४
१३- गोपालन—जीवनकी अनिवार्यता (श्रीबलिरामजी महतो 'हरिचेरा')	५९५
१४- स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः जागरण (डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)	५९७
१५- पर-निन्दा—कारण और निवारण	५९८
१६- गौकी महत्ता आजके वैज्ञानिक परिवेशमें (श्रीरघुनन्दनप्रसादजी शर्मा) [प्रेषक—श्रीपुरुषोत्तमदासजी झुनझुनवाला]	६०१
१७- अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६०५
१८- *भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी)	६०६
१९- सच्चा दर्पण (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)	६०८
२०- गोमाताकी रक्षाके लिये देवताओंका आह्वान ('गोमहिमा'—योगी श्रीनरहरिनाथजी शास्त्री) [प्रेषक—श्रीरोहिणीविलास लुइटेल]	६०९
२१- पढ़ो, समझो और करो	६१०
२२- मनन करने योग्य	६१३

चित्र-सूची

१-मकरवाहिनी श्रीगङ्गाजी	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-गायों और गोप-गोपियोंसे सेवित गोपाल	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

सादे चित्र — पृष्ठ-संख्या

१-इन्द्र और सुरभिका व्रजमें आगमन	५९०
२-सुरभिद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति	५९१
३-नन्दबाबासे मधुमङ्गलकी बातचीत	५९२

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रहवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

An Appeal

We feel highly encouraged with the patronage of the issues of **The Kalyana-Kalpataru** throughout the year by our readers in India and abroad. Through divine grace it was possible to bring out the **Special Issue** of this spiritual magazine for **XL** year as **Gaṇeśa Number.**

For sometime we have been feeling like and also our attention was drawn towards the necessity of bringing out a **Special Issue** on the burning problems of the pitiable conditions of women throughout the world and a very important role they can play in spiritual elevation and character building of human beings. So **The Kalyana-Kalpataru** decided to sublimate the sense of spirituality through uplifting the moral and spiritual standard of womenfolk in general and Hindu ladies in particular. So it is decided to bring out the next Annual Number of **The Kalyana-Kalpataru** as **Woman Number.**

This issue will contain articles on any aspect of women in society mainly on the following topics. Any other topic relevant to the number, as the scholarly contributor thinks fit, can be accepted if found deserving.

1. Indian women in Vedic age
2. Female deities in Vedic literature
3. Female deities of Puranic age
4. Durgā—the Supreme female Reality
5. The concept of Umā, Satī and Pārvatī aspects
6. Sarasvatī as the primal cause of the creation (Big Bang theory)
7. The analysis of Lakṣmī Tattva
8. The concept of womanhood in Rāmāyaṇa
9. The female characters of Rāmāyaṇa
10. Pañca Kanyā (The five great ladies)
11. Womanhood in Mahābhārata Age
12. Gāndhārī and Kuntī
13. Character of Draupadī
14. Mahābhārata—the result of Draupadī's insult
15. The concept of female chastity in India
16. The importance of Pātivrata Dharma and how to observe it
17. Women in Smṛti books
18. The position of women in the known Indian History
19. Liberty to women
20. 'na strī svātantryamarhati'
21. Anatomical specialities of female structure
22. Motherhood
23. Satīprathā
24. Importance of Pātivrata in Purāṇas
25. 'yathā vrajagopikānām' (Loving Nature)
26. 'Frailty thy name is woman'
27. Woman as wife
28. Wife—the best friend
29. Mother—the best preceptor
30. Woman—the best nurse
31. Woman and administration
32. Recruitment of women in Police and Army
33. Right of equality to women—a movement
34. Women in foreign countries
35. Marriage and divorce
36. Remarriage and its result
37. The pitiable plight of women in modern age
38. The dowry system and killing
39. Brutal atrocities on women
40. Relation with her husband
41. Widowhood and Saṁnyāsa
42. Virginity—the ideal way of—
43. Female Education
44. Co-education
45. Instinctive weaknesses of women
46. Woman—a co-traveller
47. The woman and politics
48. The woman—how safe and how unsafe
49. The woman—builder of national character
50. The woman and fine arts
51. Ideal marriage
52. The woman and household life
53. Happy married life
54. 'Namastasyai'
55. Women—as promoters of spirituality
56. The vows observed by a Hindu lady

The articles are invited latest by June 30, 1995 in order to make us able to publish the number timely. The articles should not be very lengthy.

All correspondence in this regard may be addressed to—

The Editor,
The Kalyana-Kalpataru
Gita Press, P.O. Gita Press—273005
Gorakhpur (U.P.) India

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

वर्तमान वर्ष (जनवरी १९९५ ई०) का विशेषाङ्क

गोसेवा-अङ्क

[इच्छुक सज्जन मँगानेमें शीघ्रता करें]

गाय विश्वकी माता मानी गयी है—'**गावो विश्वस्य मातरः।**' मात्र हिन्दूकी ही नहीं, वरन् मानवमात्रका पोषण करनेवाली होनेसे गाय सर्वपूज्या, सर्वसेव्या तथा विश्वजननी है। गायकी धार्मिक महिमा जो वेदों और प्राचीन ग्रन्थोंमें है, केवल उसीका गुणगान करनेसे हम अपने कर्तव्यका निर्वाह न समझ लें, अपितु बराबर घटती हुई गोवंशकी संख्या और गोहत्याको रोकनेके लिये गायोंके संवर्धन और संरक्षण-हेतु सतत जागरूक रहकर हम निरन्तर प्रयत्नशील बने रहें—इस दृष्टिसे 'कल्याण' ने इस वर्ष गायके सर्वमान्य महत्त्व, सर्वोपयोगिता और संरक्षणसहित, सबके अभ्युदय और कल्याणकी शुभ भावनासे शासन, प्रशासन, सरकार, समाज तथा सर्वसाधारणजनोंका ध्यान आकृष्ट करनेके उद्देश्यसे '**गोसेवा-अङ्क**' प्रकाशित किया है।

'कल्याण'-प्रेमी पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस विशेषाङ्ककी महत्त्वपूर्ण, तथ्यपरक तथा प्रेरणाप्रद सामग्रीके एवं ग्राहकोंकी माँगके कारण इसका तत्काल दूसरा संस्करण प्रस्तुत किया गया है। अतएव इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये। इस अङ्कके साथ एक मनीआर्डर-फार्म इस उद्देश्यसे भेजा जा रहा है कि आप अपने परिचित प्रेमियोंको 'नया ग्राहक' बना सकें। वार्षिक शुल्क रु० ६५.०० (सजिल्दका रु० ७२.००) है। मनीआर्डर-फार्मपर पूरा पता पिन कोड नम्बरसहित स्वच्छ, सुस्पष्ट लिपिमें लिखा जाना चाहिये। 'कल्याण'-प्रेमी सभी पाठकों और ग्राहक महानुभावोंसे हमारा विशेष रूपसे यह विनम्र अनुरोध है कि वे कम-से-कम एक 'नया ग्राहक' अवश्य बनाकर 'कल्याण'-प्रचारके पावन कार्यमें सहयोगी हों एवं इस प्रकार भगवद्भावोंके विस्तारमें निमित्त बनें।

कल्याणके पुर्नमुद्रित विशेषाङ्क

नाम	कल्याण (वर्ष)	मूल्य (रु०)	डाकखर्च (रु०)	नाम	कल्याण (वर्ष)	मूल्य (रु०)	डाकखर्च (रु०)
शिवाङ्क	८	*		सं० नारद-विष्णु पुराणाङ्क	२८	*	
शक्ति अङ्क	९	६०.००	१०.००	सत्कथा अङ्क	३०	६५.००	१०.००
योगाङ्क	१०	६०.००	११.००	तीर्थाङ्क	३१	*	
संत अङ्क	१२	९०.००	१२.००	सं० श्रीमद्देवी भागवताङ्क	३४	७०.००	१४.००
साधनाङ्क	१५	७५.००	११.००	सं० योग वाशिष्ठाङ्क	३५	६५.००	११.००
सं० पद्मपुराणाङ्क	१९	६५.००	१०.००	सं० शिवपुराण	३६	७०.००	१०.००
सं० ब्रह्मपुराणाङ्क	२१	६५.००	१०.००	सं० ब्रह्मवैवर्त पुराणाङ्क	३७	६५.००	१०.००
नारी अङ्क	२२	७०.००	११.००	श्रीभगवन्नाम महिमा अङ्क	३९	*	
हिन्दू संस्कृति अङ्क	२४	७५.००	११.००	परलोक-पुर्नजन्माङ्क	४३	६५.००	१०.००
सं० स्कन्दपुराणाङ्क	२५	८०.००	११.००	गर्ग संहिता	४४-४५	४५.००	१२.००
भक्त चरिताङ्क	२६	८०.००	११.००	श्रीहनुमान अङ्क	४९	४०.००	१०.००
बालक अङ्क	२७	७०.००	११.००	शिवोपासना अङ्क	६७	४५.००	१०.००

* प्रकाशनकी प्रक्रियामें

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

अनुवादकोंसे निवेदन

'गीताप्रेस' के हिन्दी प्रकाशनोंका अन्य भारतीय भाषाओंमें अनुवाद करने-हेतु अनुभवी विद्वानोंके सहयोगकी आवश्यकता है। जो सज्जन सेवाभावसे अथवा उचित पारिश्रमिकके आधारपर हिन्दीसे किसी भी भारतीय भाषामें अनुवाद करनेमें सक्षम हों, वे अपनी योग्यता-अनुभव आदिका स्पष्ट विवरण यथाशीघ्र प्रेषित करें।

'गीताप्रेस' (अनुवाद-विभाग), पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

69 — 5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायों और गोप-गोपियोंसे सेवित गोपाल

कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, मई १९९५ ई० { संख्या ५ पूर्ण संख्या ८२२

गो-गोपियोंमें गोपाल

माधुरी मुरली अधर धरे।
बैठे मदनगुपाल मनोहर सुंदर कदँब तरे॥
इत उत अमित ब्रजबधू ठाढ़ीं बिबिध बिनोद करे।
गाय-मयूर मधुर-रस-माते नहीं समाधि टरे॥
झाँकी अति बाँकी ब्रजसुत की कलुष-कलेस हरे।
बसत नयन-मन नित्य निरंतर नव-नव रति सँचरे॥

गायों और गोप-गोपियोंसे सेवित गोपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मनकी नीरोगता ही सच्ची नीरोगता है। जिसका शरीर बलवान् और हृष्ट-पुष्ट है परंतु जिसके मनमें बुरी वासना, असत् विचार, काम, क्रोध, लोभ, घृणा, द्वेष, वैर, हिंसा, अभिमान, कपट, ईर्ष्या, स्वार्थ आदि दुर्गुण और दुष्ट विचार निवास करते हैं, वह कदापि नीरोग नहीं है। उसकी शारीरिक नीरोगता भी बहुत ही जल्दी नष्ट होनेवाली है।

मनका सर्वथा वासनारहित होना ध्येय होनेपर भी बहुत ही कठिन है अतएव पहले बुरी वासनाओंको दबाकर अच्छी वासनाओंका संग्रह करना चाहिये। जिसके मनमें जितनी सद्वासनाएँ होंगी वह उतना ही अधिक सुखी होगा।

मनका रोगी आदमी सदा जला ही करता है। वह कभी शान्ति और शीतलताकी उपलब्धि नहीं करता। कभी कामनासे जलता है तो कभी लोभसे, कभी अभिमानसे तो कभी वैरसे, कभी क्रोधसे तो कभी ईर्ष्यासे।

सुन्दर भी वही है जिसका हृदय सुन्दर है। जो आकृतिसे बहुत सुन्दर है, जिसके शरीरका रंग और चेहरेकी बनावट बहुत ही आकर्षक है, परंतु जिसके हृदयमें दुर्गुण और दोष भरे हैं, वह गंदे हृदयका मनुष्य सदा ही असुन्दर है। ज्यों ही उसके हृदयके भाव बाहर आते हैं त्यों ही वह सबकी घृणाका पात्र बन जाता है।

हृदयको शुद्ध करो, एक-एक दोषको चुन-चुनकर निकाल दो, सद्गुणोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर हृदयमें बसाओ, तुम्हारा हृदय देवपुरी बन जायगा। देवता वही है जिसके हृदयमें दैवी गुण भरे हैं, नहीं तो, वह देव-वेषमें असुर ही है।

हम सबको भी भगवान्का भक्त बनना चाहिये। सबमें भगवान्का परिचय पाकर मन-ही-मन सबको नमस्कार करते हुए सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। व्यवहारमें अनेकों भेद रहनेपर भी भगवान्का परिचय हो जानेपर, सब प्रकारके दोष दूर हो जायँगे। जहर निकल जायगा।

भक्त तो सबमें सर्वत्र सर्वदा अपने प्राणाराम भगवान्को देखता ही है। उसकी दृष्टिमें तो सब कुछ अपने प्राणाधार परमेश्वरका ही विलास हो रहा है। विलास ही क्यों, उसे सब कुछ भगवान् ही दीखता है। वह अपने हृदयेश्वरको नये-नये विभिन्न वेषोंमें देख-देखकर पल-पलमें प्रफुल्लित होता है, हँसता है और लीलामयकी लीलाका अभिनन्दन करता है।

भक्तके हृदयमें भगवान्का स्थान वैसे ही सर्वोपरि सुरक्षित रहता है जैसे पतिव्रता स्त्रीके हृदयमें पतिका। जैसे पतिव्रता स्त्री पतिरूपसे किसी अंशमें भी दूसरेको हृदयमें स्थान नहीं देती, इसी प्रकार भक्त भी अपने एकमात्र प्राणाराम प्रियतम परमात्माको छोड़कर दूसरे किसीको स्थान नहीं देता। वास्तवमें उसके हृदयपर तो केवल परमात्माका ही अखण्ड एकछत्र राज्य छा जाता है। वहाँ दूसरेकी सत्ता कल्पनामें भी नहीं आ सकती।

भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वगुणाधार हैं, सृष्टिकर्ता हैं, सबके एकमात्र स्वामी हैं; ऐश्वर्य, माधुर्य, कारुण्य, प्रेम आदिके अथाह समुद्र हैं, हमारे परम सुहृद् हैं। इस बातपर विश्वास होते ही उनके प्रति अपने-आप हृदय खिंच जाता है। शास्त्र और अनुभवी संतोंकी वाणीपर विश्वास करके हमें भगवान्को ऐसा समझ लेना चाहिये। जब भगवान्के सदृश कोई वस्तु हमारी दृष्टिमें न रहेगी, तब हमारा हृदय उन्हींका निवास-स्थान बन जायगा। हमारा चित्त उन्हींके चिन्तनमें डूब जायगा।

जिनके हृदयमें भगवान्का असाधारण प्रभाव प्रकट हो गया, जो भगवान्के प्रेमी हो गये, बस, उन्हींका जीवन सफल है। इस सच्ची सफलताका लौकिक ऐश्वर्य, यश और सम्मान आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इन विषयोंमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त कर चुकनेवाले मनुष्य भी वास्तवमें निरर्थक जीवन बिता देनेवाले अभागे ही हैं यदि उनका मन भगवत्प्रेमसे शून्य है।

जगत् चाहे हमें सफल-जीवन और सद्भागी समझे परंतु यदि हमारे मनमें दोष भरे हैं, कामनाकी ज्वाला जल रही है, भगवत्प्रेमसुधाका प्रवाह नहीं बह रहा है तो निश्चय समझो हमारा जीवन सर्वथा निष्फल ही है।

परंतु जिनको कोई नहीं जानता अथवा जिनको निष्फल-जीवन समझकर लोग जिनसे घृणा करते हैं और नाक-भौं सिकोड़ते हैं, उनमें हमें ऐसे पुरुष मिल सकते हैं जो वास्तवमें सफल-जीवन हैं।

जगत्को कुछ भी दिखानेकी भावना न रखकर हृदयको शुद्ध बनाओ, बुरी वासना और दुर्गुणोंको हृदयसे निकालकर उसे दैवीगुणों और भगवत्प्रेमसे भर दो। चेष्टा करो, भगवान्की शक्तिसे कुछ भी कठिन नहीं है। विश्वास करो, तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।—'**शिव**'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यमय प्रवचन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ग्रन्थका जो जितना आदर करेगा वह उससे उतना ही लाभ प्राप्त करेगा। उनके महत्त्वको समझनेवाले साधु पुरुष ग्रन्थके लिये शुद्ध आसन देते हैं, उसे वस्त्रसे लपेटकर रखते हैं, जैसे गीताजीकी पुस्तकको अपनेसे ऊँचा आसन देते हैं। कुछ वर्षों पहले श्रीमद्भागवतका सप्ताह करानेवाले भाई लोग बहुत ही आदरके साथ श्रीमद्भागवतको अपने सिरपर रखकर गाजे-बाजेके साथ शहरमें हरिकीर्तन करते हुए घुमाते थे और बड़े ही आदरसे उस भागवतकी पुस्तकको पाठ करनेवाले विद्वान् पण्डित भी अपनेसे ऊँचे आसनपर रखकर पाठ करते थे। अभी भी यह प्रणाली किसी अंशमें है—इस प्रक्रियासे महान् लाभ होता है। इसी प्रकार गङ्गाजीका आप जितना आदर करेंगे उतना आपको गङ्गाजीसे लाभ मिलेगा। किसी महात्मा पुरुषका आप जितना आदर करेंगे उतना ही उस महात्मासे आपको लाभ प्राप्त होगा। इसी प्रकार गीताका आप जितना आदर करेंगे, उतना ही आपको लाभ मिलेगा। भगवान् स्वयं गीताकी कितनी प्रशंसा करते हैं, कहते हैं—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
(गीता १८। ६८)

'यह गीताशास्त्र परम गोपनीय है, गुह्यतम है, जो मेरे भक्तोंमें इसके अर्थकी व्याख्या करेगा, मूलकी व्याख्या करेगा अथवा इसको समझायेगा, इसका प्रचार करेगा वह मेरेमें परम भक्ति करके मुझको ही प्राप्त होगा, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं।'

यदि इस विषयमें शंका हो कि क्या इसका इतना माहात्म्य है? तो इसमें शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भगवान् यह स्वयं कहते हैं कि इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये। इतना कह करके भगवान् आगेके श्लोकमें पुनः कहते हैं—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥
(१८। ६९)

जो इस प्रकार गीताके अर्थ और भावोंका व्याख्यानद्वारा प्रचार करता है, उसके समान संसारमें मेरा प्यारा काम करनेवाला और दूसरा कोई नहीं है। भगवान् यह भी कहते हैं कि भविष्यमें उससे बढ़कर हमारा प्यारा कोई होगा भी नहीं। गोपियोंके विषयमें भगवान्ने कहा है कि गोपियाँ सबसे बढ़कर मेरी भक्त हैं, किंतु यह नहीं कहा कि इनसे बढ़ करके भविष्यमें और कोई भी मेरा भक्त नहीं होगा।

जिस दिन मैंने इन श्लोकोंका पाठ किया, अर्थ समझा, तो मुझपर इसका कुछ प्रभाव पड़ा। मैंने सोचा—यह काम सबसे बढ़कर है। बहुत वर्ष पूर्व मैंने भगवन्नामके माहात्म्यपर एक लेख लिखाया था।* उसमें मैंने यह बात दिखलायी थी कि भगवन्नामका जप करनेसे महान् लाभ होता है। भगवन्नामके जपसे जो लाभ होता है और इससे मुझे यत्किंचित् लाभ हुआ है, एकमात्र गीताको छोड़कर ऐसा लाभ और किसीसे मुझे नहीं हुआ, और मैं क्या कहूँ। भगवान्के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, गीताजीका स्वाध्याय एवं गीताका विवेचन तथा विचार—इन तीनोंसे प्रत्यक्ष लाभ हो सकता है और मैं यह कह सकता हूँ कि यत्किंचित् लाभ मुझे हुआ भी है। यदि आप अभ्यास करें तो इससे आपको भी लाभ हो सकता है। इस विषयमें मेरा यही कहना है कि जिस समय गीताका पाठ हो, अर्थकी व्याख्या हो या गीताके विषयपर व्याख्यान हो उस समय कम-से-कम पाँच-सात मिनट वहाँ अपना समय देकर गीताजीका आदर रखना ही चाहिये।

एक बात और मैं आपको विशेष रूपसे कहता हूँ। मान

* यह लेख 'ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नामजप सर्वोपरि साधन है' शीर्षकसे तत्त्वचिन्तामणि भाग-१ (कल्याणप्राप्तिके उपाय) पुस्तकमें छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लें मैं व्याख्यान दे रहा हूँ और मेरे व्याख्यानके समाप्त होनेके बाद दूसरे किसी सज्जन—चाहे गृहस्थ हों या साधु—उनका यदि व्याख्यान हो तो मेरे जो प्रेमी हैं, जिनकी मुझपर दया है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे उठें नहीं। यदि मैं उठूँ तो मेरे साथ एक आदमी उठ सकता है। वह भी इसलिये कि रात्रिके समय मुझे बहुत ही कम दीखता है। इसीलिये दिनमें भी मैं एक आदमी रख लेता हूँ, जैसे अंधा आदमी रख लेता है। ज्यादा आदमियोंकी मेरे साथ उठनेकी आवश्यकता नहीं। यदि मेरे साथ ज्यादा आदमी उठें और मेरे बादमें दूसरे व्याख्यानदाताका व्याख्यान हो तो उसमें मैं केवल उसका ही अपमान नहीं समझता बल्कि मैं अपना भी अपमान समझता हूँ। इस बातपर सभीको दूसरे द्वारा व्याख्यान देनेके समय ध्यान देना चाहिये, चाहे कोई हो, सबका आदर करना चाहिये। मान लो कोई काम हो तो पाँच-सात, दस-पंद्रह मिनट-बाद नम्रतापूर्वक उठ सकते हैं, इसलिये कि व्याख्यानमें व्यवधान न हो। नहीं तो जो व्याख्यान देनेवाला है उसकी ही अवहेलना नहीं है, बल्कि उससे ज्यादा पूर्वके व्याख्यानदाताकी अवहेलना है। एक महत्त्वपूर्ण बात कहता हूँ। यदि मैं व्याख्यान समाप्त कर दूँ और उसके बाद यदि दूसरा व्याख्यान देनेवाला हो तो उस समय जो-जो भाई मेरे संगके वास्ते या मेरेसे बात करनेके वास्ते उठकर जायँ तो मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उनसे बात नहीं करूँ, मैं उन्हें कहूँ कि आप वहीं जाकर बैठें और मुझसे बात करनी है तो दूसरे समयमें करें। यह बड़े रहस्यकी बात है, महत्त्वकी बात है, इसे आप गम्भीरतासे सोचेंगे तो आपको इसका रहस्य मालूम होगा। आँख खुल जायगी, मैंने यह एक चेतावनी दी है। हरेक व्याख्यानदाताको इसके ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिये, और सुननेवाले भाइयोंको भी।

एक और भी मैं रहस्यकी बात बतलाता हूँ। व्याख्यानके समय जब मेरे ऊपर ही भार दे दिया जाता है कि आप जो ठीक समझें वही बात कहें तो उस समय मुझे विशेष विचार करके कहना पड़ता है, किंतु जो भाई लोग कह देते हैं या एक प्रकारसे सम्मति दे देते हैं कि 'इस विषयमें कहें' तो उसमें मेरेपर कुछ कम भार रहता है। पर जब मुझे ही कहना पड़ता है तो मैं सबको दृष्टिमें रखकर कहता हूँ। बातके कहनेमें जितने भाई श्रोता होते हैं, उनका जो प्रेम है, उनका जो विश्वास है, एक तो वह कारण होता ही है और दूसरा हमारे हृदयका जो भाव है, वह कारण है। आपको रहस्यकी बात बतायी जाती है कि आपकी सेवामें जो बात निवेदित की जाती है, वह सब गीता-रामायण आदि शास्त्रोंके आधारपर ही कही जाती है।

गीता साक्षात् भगवान्‌के वचन हैं। वेद ब्रह्माजीके वचन हैं और बाकी शास्त्र ऋषियोंके वचन हैं। वेदोंके जो मन्त्र हैं, उन मन्त्रोंके अर्थका जिसको प्रथम ज्ञान होता है, वही उस मन्त्रका ऋषि समझा जाता है। सूत्रमें आया है—'**मन्त्रद्रष्टारो ऋषयः।**' ऋषि संज्ञा क्यों दी गयी है? उसका क्या अर्थ है? क्या मतलब है? ऋषि शब्दका अर्थ है वेदमन्त्रोंका द्रष्टा और उनका अनुभव करनेवाला। जैसे गायत्री मन्त्र है, उसके विश्वामित्र ऋषि हैं। विश्वामित्र ऋषिको गायत्री मन्त्रके अर्थका विशेष अनुभव हुआ। भगवान्‌के जो वचन हैं, ऋषियोंके जो वचन हैं, उनके आधारपर जो सार बात है और उसमें भी जो बहुत उपयोगी बात है, उसमेंसे भी सार निकाल करके—उसका संक्षेप करके जो विशेष लाभकी बात समझी जाती है वही बात कही जाती है। भगवान्‌के जो वचन हैं और ऋषियोंके जो वचन हैं उनके पालन करनेसे, उनके अनुसार आचरण करनेसे साधकका कल्याण हो जाता है, इसमें कोई भी शंकाकी बात नहीं है। यदि मैं इसके अनुसार बन जाऊँ यानी अनुष्ठान करूँ, साधन करूँ तो मेरा कल्याण हो सकता है और आप यदि उसके अनुसार साधन करें तो आपका भी कल्याण हो सकता है। इसके ऊपर आपलोगोंको विशेष विश्वास करना चाहिये। मैं एक साधारण आदमी हूँ, इसलिये मेरी गारंटीका कोई मूल्य नहीं है, किंतु यदि आप मूल्य समझते हों तो इसके लिये मैं गारंटी भी दे सकता हूँ, उसके कल्याणमें कोई शंकाकी बात नहीं है। मेरे जो आचरण हैं उन्हें आदर्श मान करके मैं इतनी बात जोरसे नहीं कह सकता कि मेरे आचरणोंके अनुसार यदि कोई दूसरा भाई आचरण करे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसका कल्याण हो सकता है। यह बात मैं कह भी नहीं सकता और इसकी गारंटी भी नहीं दे सकता। पर जो संसारमें ऋषि-मुनि हुए हैं उनमें भी जो महापुरुष हुए हैं, जो कारक पुरुष, अधिकारी पुरुष हुए हैं, संसारमें जो जीवन्मुक्त महात्मा हैं, जो भगवान्‌के सच्चे भक्त हैं, जिनको भगवान्‌की प्राप्ति हो चुकी है, ऐसे भक्त या सच्चे योगी जिन्होंने योगके द्वारा उस परम तत्त्वको समझ लिया है यानी परमात्माकी प्राप्ति कर ली है, इन सबको महापुरुष मानते हैं, भगवान् तो महापुरुष हैं ही, और भगवान्‌ने जिन पुरुषोंको संसारके कल्याणके लिये, संसारके उद्धारके लिये ही भेजा है वे तो महापुरुषोंके भी महापुरुष हैं। ऐसे महापुरुषोंके वचनका पालन करनेसे और उन महापुरुषोंको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करनेसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, इसके लिये जोर दिया जा सकता है। ऐसे ही गीताका अनुसरण करनेके लिये भी कहा जा सकता है, क्योंकि ये भगवान्‌के वचन हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है तो उसके आधारपर कहनेमें कहीं भी कोई भी आपत्ति नहीं आती। उन्होंने स्पष्ट उद्घोष करते हुए कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(४। ७)

भगवान्‌ने धर्मके पालनके विषयमें कहा कि 'जब-जब धर्मकी हानि, पापकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। अवतार लेकर दुष्टोंको दण्ड देता हूँ, साधुओंका उद्धार करता हूँ, धर्मकी स्थापना करता हूँ।'

तो भगवान्‌के वचनोंका पालन करना और उनका अनुकरण करना चाहिये, इसी प्रकारसे भगवान्‌ने गीताके ३रे अध्यायके २१ वें श्लोकमें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

श्रेष्ठ पुरुष यानी महापुरुष जो-जो आचरण करते हैं उनके आचरणके अनुसार इतर यानी दूसरे पुरुष अपनी आत्माके कल्याणके लिये आचरण यदि करें तो उनका कल्याण निःसंदेह हो सकता है। ये महापुरुष जिस बातको प्रमाणित कर देते हैं तथा जिस बातको कहते हैं कि यह बात सत्य है, इत्थंभूत है, उसके अनुसार लोग वर्तते हैं। अपनी आत्माके कल्याणके लिये हमलोगोंको भी इसी प्रकारसे करना चाहिये। इसी प्रकार भगवान् भी स्वयं अपने कृत्यका अनुकरण करनेके लिये कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(४। १३)

भगवान् कहते हैं कि चातुर्वर्ण्य यानी चारों प्रकारके वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी मेरे द्वारा ही रचना हुई है। भगवान्‌से ब्रह्माजी पैदा हुए हैं। ब्रह्माजीके मुखसे ब्राह्मण पैदा हुए, भुजासे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्र पैदा हुए। ब्रह्माजी तो हुए सबके पिता और भगवान् हुए पितामह। भगवान् कहते हैं कि मैं ही पितामह हूँ। इसीलिये ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए तो अथवा भगवान्‌से उत्पन्न हुए तो भगवान् ही आदि होनेके कारण उन दोनोंमेंसे किसीसे उत्पन्न हुए—यह कहनेमें कोई भी दोष नहीं है। जैसे मेरा लड़का मेरी संतान और मेरा पोता मेरी संतान। '**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं**' का मतलब यह है कि चारों प्रकारके वर्ण मेरे द्वारा रचे हुए हैं। वर्णका दूसरा अर्थ होता है—चार प्रकारके प्राणी—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज। पसीनेसे जो पैदा होते हैं वे स्वेदज हैं, अण्डेसे जो पैदा होते हैं वे अण्डज हैं। पृथ्वी और जलके सम्बन्धसे जो पैदा होते हैं वे उद्भिज्ज और जेरके साथ—झिल्लीके साथ जो पैदा होते हैं वे जरायुज कहलाते हैं। इन चारों प्रकारकी आकृतिवाले प्राणी मेरे द्वारा रचे गये हैं, उनके पूर्वके जैसे गुण और कर्म थे, उनके अनुसार वे रचे गये।

गुण और कर्मोंके विभागके अनुसार चारों प्रकारके वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं यानी सारे जीव, सारे प्राणी मेरे द्वारा रचे गये हैं। इसीलिये भगवान्‌ने कहा—हे अर्जुन! उसका कर्ता होते हुए भी मुझे अकर्ता ही जान। क्योंकि वास्तवमें उसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है और मुझमें कर्तापनका कोई अभिमान नहीं है। इसीलिये उसका कर्ता होनेपर भी तू मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकर्ता ही मान। फिर समझाते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(४। १४)

मुझे कर्मोंके फलकी स्पृहा नहीं है—इच्छा नहीं है, इस कारणसे कर्म मुझे नहीं बाँध सकते। मैं कर्मोंके द्वारा लिपायमान नहीं होता। इस प्रकारसे जो मुझे जानता है वह भी कर्मोंसे कभी लिपायमान नहीं होता यानी कर्मोंके द्वारा नहीं बँधता। आगे कहते हैं—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।

(४। १५)

कर्मोंमें कर्तापनका अभिमान न रहनेके कारण और कर्मोंमें स्पृहा न रहनेके कारण, फलकी इच्छा न रहनेके कारण कर्म मुझे नहीं बाँध सकते। इस प्रकार जान करके जो पूर्वमें मोक्षकी इच्छावाले हुए, कल्याणकी इच्छावाले हुए हैं, उन लोगोंके द्वारा कर्म किये गये हैं। पूर्वमें मुमुक्षुओंने जिस उद्देश्यसे कर्म किये हैं तू भी इसी प्रकारसे इसी रहस्यको समझ करके कर्मोंका आचरण कर।

भगवान् शास्त्रविहित कर्मोंका जो आचरण करते हैं, उसका और मतलब ही क्या है? भगवान्के आदेशका पालन करना, अनुकरण करना और महापुरुषोंके आचरणका अनुकरण करना। यह बात तो बहुत ही उत्तम है और उनके वचनोंका पालन करना यह उससे भी बढ़ करके है। उससे बढ़कर कैसे? मान लो कोई एक महापुरुष हैं और उन्होंने आपको आज्ञा दी कि आप अपने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करें, उनकी सेवा करें, प्रातःकाल और सायंकाल संध्या और गायत्री भी किया करें तथा प्रतिदिन गीताजीके एक अध्यायका पाठ जरूर किया करें तो यह उनकी आज्ञा हुई। इन बातोंमें जितनी बातें कहीं, उनमें एक या दोकी स्वयंमें कमी है। आपको तो कहा कि तुम किया करो और स्वयं वे करते नहीं। मतलब यह कि जितनी पाँच-सात-दस बात कही उनमें एक या दो बात वे स्वयं नहीं करते। तो उसमें उनका अनुकरण करना चाहिये या आज्ञाका पालन करना चाहिये? उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, क्योंकि अनुकरण करनेकी बात जो साधारण जनसमूहमें कही जाती है—ब्राह्मणको भी कही जाती है, क्षत्रियको भी कही जाती है, वैश्य और शूद्रको भी कही जाती है यानी चारों वर्णवालोंको कही जाती है। तो जो जिस वर्णका होगा वह एक अपने ही वर्णके अनुसार आचरण करेगा सब वर्णके अनुसार तो आचरण करेगा नहीं। व्याख्यानमें तो ब्राह्मणका भी कर्तव्य बतलाया जाता है, क्षत्रियका भी बतलाया जाता है, साधुका भी बतलाया जाता है, गृहस्थका भी बतलाया जाता है, वानप्रस्थीका भी बतलाया जाता है और ब्रह्मचारीका भी बतलाया जाता है। बतलानेवाला जो वक्ता है—साधु है या गृहस्थी है या वानप्रस्थी है—वह तो जिस आश्रममें है, उसीके अनुसार करेगा। साधुओंमें भी अनेक सम्प्रदाय हैं, उनमें भिन्न-भिन्न अलग-अलग व्यवहार हैं, पद्धति हैं। इसलिये कोई महापुरुष हमें हुक्म देता है और वह स्वयं आचरण करता है तो दोनोंका ही अनुकरण करना चाहिये। दोनोंके ही अनुसार हमको चलना चाहिये, किंतु जब परस्परमें मतभेद हो जाय कि आचरण और आज्ञामें भिन्नता है तो ऐसी स्थिति होनेपर मेरा कहना है कि उन दोनोंमें व्याख्यानसे उपदेश और उपदेशसे आदेश बलवान् है—उनका हुक्म बलवान् है। मान लो कोई एक बड़ा हाकिम है, उसने एक हुक्म-आदेश निकाल दिया कि आज राजा साहबके लड़का हुआ है सब कोई उत्सव मनाओ और जो उत्सव नहीं मनायेगा उसे दण्ड दिया जायगा। ऐसी स्थितिमें राजाके राज्यमें रहनेवाले सभी भाइयोंको उत्सव मनाना चाहिये। यदि ऐसा आर्डर निकाल करके हाकिम स्वयं उत्सव नहीं मना रहा है और हाकिमकी इस बातको देखकर हम भी नहीं मनावें तो मुझे कैद होगी कि नहीं। क्या हाकिमको भी होगी? अस्तु, हाकिमकी कैद हो या न हो यह तो हाकिम जाने, किंतु मेरी तो होगी ही। यदि हाकिमकी भी हो और हमको भी हो तो दोनों जेलखानेमें जायँगे। इस प्रकार करनेसे हाकिमके कैद होनेसे हमें क्या लाभ मिलेगा? इससे यह बात सिद्ध होती है कि हाकिमके हुक्मका पालन करना चाहिये, न कि उनका आचरण। प्रायः हाकिम स्वयं अपने हुक्मका पालन करता है। यदि वह अपने कानूनका पालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करे तो उसके लिये अधिक दण्ड है। वकील, वैरिस्टर, हाकिम यदि कानूनका पालन नहीं करें तो सरकारसे इनको अधिक दण्ड दिया जा सकता है, क्योंकि ये अधिक दण्डके पात्र होते हैं। इसी प्रकारसे जो ज्ञानी है, योगी है, महात्मा है, उच्चकोटिका पुरुष है वह यदि अपने कथनके अनुसार आचरण नहीं करता तो उसपर अधिक भार है, उसको ज्यादा दण्ड मिलना चाहिये। इस बातको ध्यानमें रख करके ज्ञानी महात्माओंके लिये भी भगवान्‌ने प्रेरणा दी—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥
(३। २५)

हे भरतवंशी अर्जुन! जैसे एक सकामी अज्ञानी कर्मोंके फलकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य दिलचस्पीके साथ कर्मोंका आचरण करता है, उसी तरह ज्ञानी महात्मा पुरुषको भी वैसी ही दिलचस्पीसे उसीकी तरह कर्म करना चाहिये। यद्यपि उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है तो भी उसको करना चाहिये। क्यों करना चाहिये, उसकी आत्माका तो उद्धार हो गया; किंतु सबका तो नहीं हुआ न! अतः लोकसंग्रहकी इच्छा रखते हुए उसे कर्म करना चाहिये। एक सकामी पुरुष जिस प्रकार यज्ञ, दान, तप, सेवा, उपवास-व्रत या तीर्थ आदि करता है उसी प्रकारसे उसे करना चाहिये। सकामी आदमीको यह भय रहता है कि यदि मैं सुचारुरूपसे विधिके साथ, श्रद्धाके साथ नहीं करूँगा तो उसका फल मुझे नहीं मिलेगा। यद्यपि वह फलके लिये ही करता है। इसलिये विशेष सावधानीसे करता है, उसकी सावधानी और तत्परता लेनी चाहिये। जिसे फलकी इच्छा है उससे कहीं असावधानी न हो जाय इस बातके लिये भगवान्‌ने जगह-जगह चेतावनी दी है। कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
(२। ४७)

—अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें अधिकार है अर्थात् तुम्हें कर्म करना चाहिये, पर कर्मके फलमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। [यह भगवान्‌के ऊपर निर्भर करता है, कर्मोंके अनुसार फलदाता भगवान् हैं। तुम्हारा इसमें बिलकुल हाथ नहीं है, कर्ताका बिलकुल हाथ नहीं है] और भगवान् अर्जुनको फिर कहते हैं कि कर्मके फलका हेतु भी तू मत बन। कर्मके फलका हेतु कौन पुरुष बनता है? जिसकी कर्मोंमें आसक्ति है, कर्मोंमें वासना है, कर्मोंमें कर्तापनका अभिमान है, जिसमें अहंता-ममता है, वह कर्मोंके फलका हेतु बनता है तू ऐसा भी मत बन। फिर इसमें स्वाभाविक ही यह बात पैदा होती है कि मैं कर्म करूँ भी क्यों? यह बात सकामीके लिये नहीं आती, क्योंकि सकामीको तो भय रहता है कि मैं श्रद्धासे नहीं करूँगा, शास्त्रविधिके अनुसार नहीं करूँगा तो मुझे फल नहीं मिलेगा। किंतु निष्कामी फल तो चाहता ही नहीं। अतः उसके गड़बड़ होनेकी सम्भावना है, अवहेलना होनेकी सम्भावना है। इसलिये भगवान् जोर देते हुए कहते हैं कि अर्जुन! कर्मके न करनेमें भी तुम्हारी प्रीति मत हो। जैसे कर्मके करनेमें प्रीति बाँधनेवाली है, वैसे ही कर्म न करनेमें भी प्रीति बाँधनेवाली है। सिद्ध महात्मा पुरुषके लिये तो कर्मोंके करनेसे भी कोई प्रयोजन नहीं और कर्म न करनेसे भी कोई प्रयोजन नहीं। भगवान्‌ने कहा है—'**नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।**' (३। १८) कर्मोंके करने और न करनेमें उसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है कि इसमें कहीं अवहेलना न हो जाय। कोई अपनेको ज्ञानी मानकर कहे कि ज्ञानीको कोई कर्तव्य नहीं है—'**तस्य कार्यं न विद्यते**' मैं ज्ञानी हूँ, मेरे लिये कोई कर्तव्य नहीं है', ऐसा समझ करके कहीं कर्मोंका त्याग कर दे। उनके लिये एक दोहा प्रसिद्ध है—

ब्रह्मज्ञान उपज्यो नहीं, कर्म दिये छिटकाय।
तुलसी ऐसी आत्मा सहज नरकमें जाय॥

ब्रह्मज्ञान तो हुआ नहीं, कर्मोंमें तुच्छ बुद्धि होनेसे उसकी अवहेलना कर दी। तुलसीदासजी कहते हैं—ऐसे पुरुष सहजमें ही नरकमें चले जाते हैं, नरक जानेमें कोई परिश्रम नहीं होता।

इस विषयमें जो बात आपकी सेवामें प्रार्थनाके रूपमें निवेदन की जाती है, प्रायः शास्त्रोंके आधारपर ही कही जाती है। यदि हम कहें कि अपने अनुभवके आधारपर हम कहते हैं तो हमारा यह कहना 'छोटे मुँह बड़ी बात' होगी। महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर कहा जाता है। महापुरुषोंका अनुभव है और इन शास्त्रोंमें महापुरुषोंका अनुभव जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमक रहा है उसके आधारपर ये बातें कही जाती हैं। इसलिये साथमें जो यह बात कही जाती है कि उसका अनुकरण करनेसे मनुष्यका निश्चय ही कल्याण हो जाता है, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं। साथमें यह भी कहा जाता है कि आप उसका पालन करें तो आपका उद्धार हो सकता है और मैं पालन करूँ तो मेरा उद्धार हो सकता है। इस कथनका रहस्य यह है कि यदि मैं केवल यह कहूँ कि आप इसका पालन करें तो आपका उद्धार हो सकता है। इसका मतलब तो यह हुआ कि मेरा तो उद्धार हो चुका। ऐसा कोई अर्थ नहीं निकाल ले। इसलिये मैं अपनेको भी इसमें मिला लेता हूँ, क्योंकि कोई भी इसका पालन करे तो उसका उद्धार हो सकता है। वक्ताको अहंकारकी बात—अभिमानकी बात बचा करके बोलनी चाहिये। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ, मेरा अनुकरण भी साधारण है। उसका मैं उदाहरण नहीं दे सकता। किंतु संसारमें जो महापुरुष हुए हैं और हैं उन महापुरुषोंके भी महापुरुष ईश्वर और उनके भेजे हुए संसारके कल्याणके लिये जो पुरुष अधिकार लेकर आते हैं—उन महापुरुषोंके भी महापुरुष और यहाँ पुण्य-पापसे जिनका जन्म हुआ है और अपने साधनोंके द्वारा ईश्वरकी कृपासे वे परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं उन महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर कहता हूँ। भक्तिके साधनद्वारा, ज्ञानके साधनद्वारा, योगके साधनद्वारा या निष्काम कर्मके साधनद्वारा जो मुक्त हो चुके हैं, उन महापुरुषोंका हम अनुकरण करें। उनकी आज्ञाके अनुसार चलें तो हमारा कल्याण हो सकता है। तीसरी बात यह कही जाती है कि जो हमारी सेवा करे, सेवा क्या? आज्ञाका पालन या किसी प्रकारसे मदद—यह सेवा है। उसके लिये मैं यह नहीं कह सकता कि उसका कल्याण हो जायगा। क्योंकि कल्याण करनेकी तो हमारी सामर्थ्य है नहीं, इसलिये यह मैं कैसे कह सकता हूँ। यह जरूर है कि मैं उसका आभारी हूँ, यह मुझे अवश्य ही कहना चाहिये। चौथी बात यह है कि मैं जिसका विरोध करता हूँ, जिसका निषेध करता हूँ और उस कामको कोई आदमी करे तो वह मेरे साथ भी अनुचित व्यवहार करता है, मेरे साथ उसका अत्याचार है और शास्त्रोंकी भी वह अवहेलना करता है। क्योंकि प्राय: आपकी सेवामें शास्त्रोंके आधारपर ही बात कही जाती है। जैसे मैंने कह दिया कि किसी भी समय किसी भी स्थितिमें किसी भी आदमीको हमारा चित्र नहीं लेना चाहिये। इसी प्रकारकी बहुत-सी बातें हैं, जिनका निषेध किया जाता है, विरोध किया जाता है। एक दिनकी बात है जहाँ व्याख्यान होता था, वहाँ एक आदमी उस जगहकी धूल उठाने लग गया। दूसरेने उसे रोका, बोला कि यह मनाही है। इस प्रकारसे कोई आदमी वहाँकी धूल आदरसे भी लेता है तो वह पाप करता है, हमारा अपमान करता है। यदि वह हमारा लक्ष्य करके हमारे निमित्तसे ले तो। क्योंकि इस धूलिकी वह शक्ति नहीं है, इसलिये अनुचित है उस धूलसे यदि किसीका कल्याण हो, तब हम मना नहीं करेंगे किन्तु शास्त्रोंमें जो महापुरुष हुए हैं, या भगवान्‌के परिकर हैं या महापुरुषोंके भी महापुरुष भगवान् हैं, उनके चरणोंकी धूलिकी महिमा आयी है, उसमें लोगोंकी अश्रद्धा हो जायगी और उसका तिरस्कार होगा। जहाँ हम बैठे हैं, वहाँकी धूलि ले जाय तो उस धूलिकी वह शक्ति नहीं है कि उससे किसीका कल्याण हो जाय फिर उससे कल्याण होगा नहीं। तो उसकी यह दृष्टि उस ओर जायगी कि शास्त्रोंमें महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिकी यह महिमा है? इस बातको समझते हुए हमने इसका निषेध किया। यदि हम महापुरुष बन करके अपने चरणोंकी धूलि दे रहे हैं तो इस कार्यके लिये हम दण्डनीय हो जाते हैं, अपराधी हो जाते हैं। इस बातको ध्यानमें रख करके निषेध किया जाता है। यह रहस्यकी बात बतलायी।

सत्संगमें वैराग्यकी, उपरतिकी, ज्ञानकी, वेदान्तकी, अद्वैतवादकी, परमात्माके निर्गुण निराकारके ध्यानकी बातें अधिकांशमें हुआ करती हैं। किसी समय यदि दूसरा कोई प्रश्न कर लेता है तो भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यकी बातें भी हो जाती हैं। पर यदि किसी कारणसे फालतू प्रकरण चल जाता है तो सत्संगका समय नष्ट हो जाता है। हम नष्ट होना मानते हैं इसलिये कहते हैं नहीं तो सत्संगके लिये, सत्संगके उद्देश्यसे कोई भी आदमी कहीं जाता है तो उसका समय नष्ट नहीं समझा जाता। महापुरुषोंके भी महापुरुष जो भगवान् हैं, सत्संग करनेवाले उनके भक्त तथा गोपियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि—वे एक क्षण भी अपना समय बर्बाद नहीं समझा करती थीं। क्योंकि वे सारी क्रियाओंको भगवान्‌की लीलाके रूपमें देखा करती थीं। महापुरुषोंके भी महापुरुष भगवान् और भगवान्‌के भेजे हुए अधिकारी पुरुषोंके विषयकी जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। उन पुरुषोंके दर्शनसे, भाषणसे, स्पर्शसे, वार्तालापसे, चिन्तनसे हमलोगोंका कल्याण हो सकता है, हुआ है और अब भी हो सकता है तथा भविष्यमें भी होता ही रहेगा। भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया, रामजीने अवतार लिया और बहुतोंका संग हुआ, किंतु सबके विषयमें ऐसी बात नहीं देखी गयी। कारण यह है कि भगवान् श्रीकृष्णमें, भगवान् श्रीराममें उनकी श्रद्धा नहीं थी। श्रद्धा नहीं होनेके कारण वे लाभसे वञ्चित रहे। महापुरुषों, अधिकारी तथा अवतारी महान् आत्माओंमें श्रद्धा होनेसे कल्याण अवश्य हो जाता है। यहाँतक कि उनके दर्शनसे ही कल्याण हो जाता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

उस परमात्माका साक्षात् दर्शन होनेपर चिज्जड-ग्रन्थि—जड तथा चेतनकी ग्रन्थि खुल जाती है, सारे संशय मिट जाते हैं और सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जिनका जन्म संसारमें पुण्य और पापसे हुआ है और अपने साधनोंके द्वारा जो मुक्त हुए हैं, ज्ञानयोगके द्वारा, भक्तियोगके द्वारा, कर्मयोगके द्वारा—वे महापुरुष हैं। उनके लिये ऐसी बात नहीं कही जा सकती, जैसी भगवान्‌के लिये कही जा सकती है। भगवान्‌के तो स्मरणसे उद्धार हो जाता है, नामके जपसे उद्धार हो जाता है तो दर्शनसे हो जाय तो उसमें तो कहना ही क्या है! (कैसेट नं० २९५)

अनमोल वचन

(श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्द सरस्वती परमहंसदेवजी)

१-किसी भी चीजका अपव्यय करनेका नाम पाप है—चाहे वह धन हो, शरीर हो या धर्म हो। सद्-व्यवहार धर्म और अपव्यवहार पाप है।

२-चोरके साथ रहकर चोर बनना जितना आसान है, साधुके साथ रहकर साधु बनना उतना आसान नहीं है। जैसे ऊपरसे नीचे आना आसान है, पर नीचेसे ऊपर जानेके लिये काफी प्रयत्न करने होंगे, तभी कहीं ऊपर उठना सम्भव होगा।

३-जो व्यक्ति दूसरोंकी निन्दा करता है, वह स्वयं भी कभी अच्छा आदमी नहीं है।

४-घर-बार छोड़नेका नाम त्याग नहीं है, आसक्तिके त्यागको ही ज्ञानी जन त्याग कहते हैं।

५-आहारके साथ धर्मका सम्बन्ध है; क्योंकि शरीर और आत्मा एक साथ हैं। आहार सावधानीपूर्वक नहीं करनेसे धर्म नष्ट होता है।

६-सुख शरीरके किसी अङ्ग-विशेषपर प्रकाशित होता है, जबकि आनन्द पूरे शरीरमें व्याप्त होकर प्रकाशित होता है। सुख और आनन्दमें यही अन्तर है।

७-साधना और भजनमें व्यस्त रहकर जगत्‌की उपेक्षा करना धर्म नहीं है। दयामय ईश्वरके प्रेमके आदर्शपर यदि जगत्‌के जीवोंसे प्रेम किया जा सकता है, तो वही सच्चा धर्म है। संसारका त्याग करना धर्म नहीं है, आत्मत्याग ही धर्म है।

८-किसी दूसरेमें दोष दीखनेपर अपनी ओर दृष्टि डालकर देखो, तुममें भी वह दोष है अथवा नहीं।

९-चरित्रको सुधारा जा सकता है, परंतु स्वभावमें परिवर्तन होना बड़ा ही कठिन है; क्योंकि स्वभावका अर्थ है स्व-भाव। यह जन्म-जन्मान्तरके संस्कारोंका फल है।

१०-यदि बड़ा बनना चाहते हो तो पहले छोटा बनो।

११-ज्ञानवान् होकर जब किसीकी अवस्था शिशु-जैसी हो जाती है, तब वह परमहंस हो जाता है।

१२-निष्काम उपासनाको परम धर्म कहते हैं।

(प्रे०—श्रीप्रभाकर महान्ति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृ-पितृ-भक्ति एवं श्राद्ध-तर्पणका महत्त्व

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

हमारी हिंदू-संस्कृतिमें पुत्रके लिये अपने माता-पिताकी सेवा एवं उनकी आज्ञाका पालन करना महत्त्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ धर्म माना गया है। भगवती श्रुतिका कथन है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

(तैत्ति० १। ११। २)

'माताको देवता माननेवाला बनो, पिताको देवता मानो, आचार्यको देवता समझो।'

किंतु आजकल अंग्रेजी पढ़े-लिखे एवं पाश्चात्त्य सभ्यतामें पले हुए हमारे नवयुवक इस महत्त्वको धीरे-धीरे गौण करते जा रहे हैं। वे लोग माता-पिताकी सेवा करना तो दूरकी बात है, अपमान करनेतकमें भी नहीं हिचकते। यहाँतक कि दूसरोंके सामने उनकी हँसी-मजाक उड़ानेमें भी नहीं चूकते। वे लोग यह नहीं समझते कि ऐसा करनेसे उनका अपना ही पतन हो रहा है तथा अपनी ही बुद्धि दूषित हो रही है। उनकी विवेक-बुद्धि तथा अपना हित-अहित सोचनेकी शक्ति नष्ट हो रही है। पद्मपुराणके भूमिखण्डमें तो यहाँतक लिखा है—

पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुःखितमानसौ।
महागदेन संतप्तौ परित्यजति पापधीः।
स पुत्रो नरकं याति दारुणं कृमिसंकुलम्॥
पितरौ कुत्सते पुत्रः कटुकैर्वचनैरपि।
स च पापी भवेद् व्याघ्रः पश्चाद् दुःखी प्रजायते॥
मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः।
कुम्भीपाके वसेत् तावद् यावद् युगसहस्रकम्॥

(६३। ४-५, ११-१२)

'जो पापात्मा पुत्र किसी अङ्गसे हीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा महान् रोगसे पीडित माता-पिताको त्याग देता है, वह कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है। जो पुत्र कटु वचनोंद्वारा माता-पिताकी निन्दा करता है, वह पापी बाघकी योनिमें जन्म लेता है तथा और भी बहुत दुःख उठाता है। जो पापात्मा पुत्र माता-पिताको प्रणाम नहीं करता, वह सहस्र युगोंतक कुम्भीपाक नामक नरकमें निवास करता है।'

माता-पिताकी अवहेलना करनेवाले युवकोंके पतनके हजारों प्रमाण हमारे शास्त्रोंमें मिलते हैं। माता-पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना महान् पाप है।

दूसरी ओर माता-पिताकी आज्ञाका पालन एवं उनकी सेवा करनेवालोंकी सद्गति एवं सुख प्राप्त करनेके भी सहस्रों प्रमाण हमारे शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं—

पतितं क्षुधितं वृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु।
व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्॥
उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम्।
विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः॥
नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा।
नारायणसमावेताविह चैव परत्र च॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ६३। २-३, १३)

'यदि पिता पतित, भूखसे व्याकुल, वृद्ध, सब कार्योंमें असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माताकी भी वही अवस्था हो, उस समयमें भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, मैं उसके पुण्यका वर्णन करता हूँ। उसपर निःसंदेह भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। पुत्रोंके लिये माता-पितासे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। वे इस लोक और परलोकमें भी श्रीनारायणके समान हैं।'

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥

(पद्म०, सृष्टिखण्ड ४७। ९-११)

'पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता निश्चय ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या भी है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता ही प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणोंसे माता-पिता संतुष्ट रहते हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गङ्गा-स्नानका फल प्राप्त होता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताकी सेवा-पूजा करनी चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता, पिता एवं आचार्यकी सेवाके विषयमें मनु महाराजके तो और भी महत्त्वपूर्ण वचन हैं—

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

(मनुस्मृति २। २३७)

'इन तीनोंकी सेवासे ही पुरुषके सब कृत्य समाप्त हो जाते हैं, अर्थात् उसे कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। यही साक्षात् परमधर्म है। इसके अतिरिक्त अन्य सब उपधर्म कहे जाते हैं।'

नानापुराणनिगमागमसम्मत मानसके रचयिता संत गोस्वामी तुलसीदासजीने इस विषयमें भगवान् शंकरकी वाणी इस प्रकार अभिव्यक्त की है—

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥

(मानस १। ७६। २)

आजकलके पढ़े-लिखे नवयुवकोंको इस विषयपर गहराईसे विचार करना चाहिये। उन्हें माता-पिता एवं आचार्योंकी सेवामें तत्परतासे लगे रहना चाहिये। उनकी आज्ञाका पालन एवं सम्मान विशेष ध्यान रखकर लगनके साथ करना चाहिये। भूलकर भी कभी मन, वाणी एवं क्रियासे—किसी प्रकार भी उन लोगोंका अपमान-तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

माता-पिताकी सेवा तो जीवनपर्यन्त करनी ही चाहिये, परंतु उनकी मृत्युके पश्चात् उनके निमित्त श्राद्ध एवं तर्पण करना भी नितान्त आवश्यक परमधर्म है। आजके नवयुवक तो श्राद्ध-तर्पणको बिलकुल ढकोसला समझने लगे हैं। कुछ लोग तो जानते हुए भी समयाभाव एवं विभिन्न परिस्थितियोंके बहाने बनाकर श्राद्ध-तर्पणकी अवहेलना करते हैं। ऐसे मनुष्य सचमुच बड़ी भूल कर रहे हैं।

पितरोंके निमित्त किया हुआ तर्पण एवं श्राद्ध निश्चितरूपसे उन्हें मिलता है, इसमें किसी तरहकी भी शंका नहीं करनी चाहिये।

नाम-गोत्रोंके सहारे विश्वेदेव एवं अग्निष्वात्त आदि दिव्य पितर पितरोंको हव्य-कव्यकी प्राप्ति करा देते हैं। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किये हुए श्राद्धको पितर अवश्य ग्रहण करते हैं। मार्कण्डेयपुराणमें पितरोंकी स्तुति करते हुए रुचिने कहा है—

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्ति-
र्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः॥
ये देवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतो-
रश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः॥

(९६। ३२, ३८)

'जिन पितरोंकी तृप्ति अग्निमें हविष्यका हवन करनेसे होती है, जो ब्राह्मणके शरीरमें स्थित होकर भोजन करते हैं और जो पिण्डदानसे प्रसन्न होते हैं, वे पितृगण इस (श्राद्ध) में (मेरे द्वारा दिये गये) अन्न-जलसे तृप्त हों। जो पितर परम तृप्तिकी प्राप्तिके लिये अग्निमें हवन किये गये देवान्नस्वरूप शुभ कव्यका भोजन करते हैं और जो तृप्त होकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वे सभी इस (श्राद्ध) में तृप्त हों। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।'

हमारे ग्रन्थोंमें इस तरहके अधिकतर प्रमाण मिलते हैं। आजकलके युगमें भी इन बातोंको प्रमाणित करनेकी प्रत्यक्ष घटनाएँ प्रायः घटित होती रहती हैं।

श्रद्धापूर्वक किये जानेके कारण ही इसका नाम 'श्राद्ध' है। श्राद्धमें संस्कृत व्यञ्जनादि पक्वान्नोंको दूध, दही, घी, खीर आदिके साथ श्रद्धापूर्वक देनेके कारण ही इसका नाम 'श्राद्ध' पड़ा है। श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करनेवालेके कुलमें कोई क्लेश नहीं पाता। श्राद्ध न करनेसे होनेवाली हानिके विषयमें हमारे ग्रन्थ कहते हैं—

न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि वर्तते।
श्राद्धं न कुरुते यस्तु तस्य रक्तं पिबन्ति ते॥

(श्राद्धकल्पलता)

'जो यह समझकर कि 'पितर हैं ही कहाँ'—श्राद्ध नहीं करता, पितरलोग लाचार होकर उसका रक्तपान करते हैं।'

श्राद्ध-तर्पण करनेकी महत्ता एवं आवश्यकताकी विवेचना कूर्मपुराणमें भी मिलती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलेनापि च न श्राद्धः शाकेनापि करोति यः।
अमायां पितरस्तस्य शापं दत्त्वा प्रयान्ति च॥

'जो उचित तिथिपर जलसे अथवा शाकसे भी श्राद्ध नहीं करता, उसके पितर अमावस्याके दिन उसे शाप देकर लौट जाते हैं।'

श्राद्धात् परतरं नास्ति श्रेयस्करमुदाहृतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः॥

'श्राद्धसे बढ़कर और कोई कल्याणकर वस्तु है ही नहीं, इसलिये चतुर मनुष्यको सम्पूर्ण प्रयत्नपूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये।'

महर्षि याज्ञवल्क्य भी कहते हैं—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः॥

(याज्ञ० स्मृति १। २७०)

'मनुष्योंके पितरलोग श्राद्धसे तृप्त होकर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, राज्य एवं अन्य सभी सुख भी देते हैं।'

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने वनवास-कालमें भी अपने पिता दशरथजीके लिये श्राद्ध एवं तर्पण किया था। वनमें उनके पास फल-मूलके अतिरिक्त कुछ नहीं था। अतः उन्होंने पिताजीसे उन्हें फल-फूल देते हुए प्रार्थना की कि 'आप इन फल-फूलोंसे ही संतुष्ट हों।'

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि।
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति॥

(३१। १८)

'मनुष्यके पास यदि कुछ भी न हो तो केवल शाकसे ही विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करनेवालेके कुलमें कोई क्लेश नहीं पाता।'

विष्णुपुराणमें तो यहाँतक आदेश है—

न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितॄन् नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य॥

(३। १५। ३०)

'श्रद्धालुको सभी वस्तुओंके अभावमें वनमें जाकर अपनी दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर कह देना चाहिये कि मेरे पास श्राद्धके योग्य न धन है और न दूसरी वस्तु, अतः मैं अपने पितरोंको प्रणाम करता हूँ। वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति लाभ करें।'

गोस्वामी तुलसीदासजीने आदिकवि वाल्मीकिजीके मुखसे भगवान्के निवास-स्थानोंका वर्णन कराते हुए तर्पण-श्राद्ध करनेवालेके हृदयमें भगवान्का निवास-स्थान बतलाया है—

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥

(मानस २। १२८। ४)

गया-तीर्थमें पिण्डदानकी भी बड़ी महिमा है, अतः गया-पिण्डदान भी अवश्य करना चाहिये।

तर्पण एवं श्राद्धकी विधि तथा महिमा पुराणों एवं स्मृतियोंमें जगह-जगह उल्लिखित है। इसके लिये पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, मार्कण्डेयपुराण, नारदपुराण, विष्णुपुराण, गरुडपुराण एवं ब्रह्मपुराण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पुराणोंमें श्राद्ध करने एवं न करनेसे लाभ-हानिके भी अनेक कथा-प्रसंगोंका वर्णन है।

आधुनिक सभ्यतामें पले हुए लोगोंको यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि वे श्राद्ध-तर्पण न करके केवल बहुत बड़े लाभसे वञ्चित ही नहीं हो रहे हैं, अपितु पापोंके भागी भी हो रहे हैं। अतः उन्हें तर्पण एवं श्राद्ध अवश्य करने चाहिये।

जगत्की किसी भी वस्तुका विश्लेषण करनेपर उसमें सत्ता, प्रकाश, आनन्द, नाम और रूप—ये पाँच चीजें मिलती हैं। इनमें पहली तीन चीजें ब्रह्मकी अपनी हैं और शेष दो जगत्की हैं। अतएव नाम-रूपसे मन हटाकर सच्चिदानन्दमें अनुराग करो।—उपनिषद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकी रक्षा करनेवाला अन्तमें विजयी होता है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

व्यापारी जगत्का यह साधारण प्रश्न है—वे कहते हैं कि हमलोग सत्यकी रक्षा करना चाहते हैं, पर इतने नये-नये टैक्स लग गये हैं और दिनों-दिन उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है तथा उनके मारे सत्यको बचाना बहुत कठिन हो गया है। आय-कर, विक्रय-कर, सम्पत्ति-कर, व्यय-कर, मृत्यु-कर, दान-कर—कर-ही-कर है। इन सबमें यदि पूरा पैसा भरा जाय तथा ऊपरकी आमदनी न की जाय तो कुछ भी बचना कठिन है। हम यदि सचाईपर रहते हैं तो हमारे पड़ोसी व्यापारी, जो सचाईपर नहीं रहते, हमको व्यापारके क्षेत्रमें पीछे ढकेल देते हैं, हमारा कारोबार ठप हो जाता है, हम असफल हो जाते हैं और उनका काम चल निकलता है। हम भी बाल-बच्चेवाले हैं, गृहस्थ हैं। खर्चका स्टैंडर्ड बढ़ रहा है, महँगी सुरसाके मुखकी तरह बढ़ती चली जा रही है। ऐसी अवस्थामें सत्यकी रक्षा कैसे हो और क्योंकर छिपाकर पैसा न कमाया जाय या न बचाया जाय?

प्रश्न ठीक है, कठिनाई बहुत अधिक बढ़ गयी है और बढ़ती ही जा रही है, यह सत्य है। तथापि यह तो कभी नहीं कहा जा सकता कि आप झूठ बोलें, चोरी-जालसाजी करें, अनाचार-भ्रष्टाचार करें, दो तरहके बहीखाते बनायें, लोगोंको धोखा दें, कम तौलें, ज्यादा लें, बात करके मुकर जायँ अथवा नकली चीजको असली बनाकर या मिलावट करके बेचें; क्योंकि यों करनेसे परिणाममें निश्चय ही हानिके सिवा लाभ होता ही नहीं। तब क्या करें ? इसका उत्तर यह है कि सत्यपर दृढ़ता रखनी हो तो कष्ट सहन करनेके लिये तैयार रहें, नहीं तो अपनी परिस्थिति समझकर जो ठीक जँचे, वही करें।

असल बात तो यह है कि सत्यकी रक्षाके लिये हम तैयार ही नहीं हैं। एक बहुत बड़ी चीज हमारे जीवनमेंसे निकल गयी—'ईश्वरपर विश्वास और दूसरे दर्जेमें प्रारब्धपर विश्वास।' यह अत्यन्त सत्य और निश्चित सिद्धान्त है कि भगवान्का प्रत्येक विधान मङ्गलमय है और सांसारिक हानि-लाभ प्रारब्धके अनुसार ही होता है। जितना, जो कुछ लाभ या हानि होनी है उतनी ही होगी और वही होगी। हम प्रयत्न करके न तो उसमें कम-बेशी कर सकते हैं और न उसे बदल ही सकते हैं। हम झूठ बोलकर, धोखा देकर, चोरी-जालसाजी करके, किसी प्रकार भी बुराई या पापका आश्रय लेकर अधिक लाभ उठा लेंगे—यह धारणा ही सर्वथा भ्रान्त है। होगा वही, जो होना है, निमित्त चाहे जो हो। उपर्युक्त भ्रान्त धारणाको लेकर हम जो पाप करेंगे, वह पाप हमारे पल्ले बँध जायगा, जो आगे चलकर नाना प्रकारके दुःखोंके रूपमें प्रकट होगा। यहाँ लाभ उतना ही होगा, जितना होना है। हाँ, लाभकी आशामें जलते जरूर रहेंगे। लाभ दीखेगा भी, पर दूसरी ओर नुकसान हो जायगा, कहीं पैसे डूब जायँगे, कहीं और कुछ हो जायगा। बचेगा उतना ही, जितना बचना है। पाप करनेवाले या सब कुछ भूलकर अधिक-से-अधिक प्रयत्न करनेवाले अधिक कमा लेते हों—यह बात नहीं है, ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं कि बहुत बड़े-बड़े तथा बहुत अधिक संख्यामें व्यापार करनेवाले बड़े बुद्धिमान् लोग रात-दिन चिन्ता, भय, विषादका अनुभव करते तथा अथक परिश्रम करते हुए भी अन्तमें बहुत थोड़े नफेमें या कहीं-कहीं घाटेमें देखे जाते हैं और उनसे कहीं कम उद्योग करनेवाले अधिक कमा लेते हैं। बड़े कामवालोंके जब बड़ा घाटा लगता है, तब उनकी जो दुर्दशा होती है, वैसी दुर्दशा छोटे तथा थोड़े काम करनेवालोंकी नहीं होती। सांसारिक हानि-लाभमें प्रारब्धकी प्रधानता है, पुरुषार्थकी नहीं। पापके लिये तो कोई स्थान ही नहीं है। पर आजके अविश्वासी युगमें किसीसे कैसे क्या कहा जाय। सत्यका रक्षण करनेपर यदि प्रारब्धवश काम खराब हो जाय, नुकसान हो जाय या उसमें कुछ अव्यवस्था आ जाय तो लोग प्रारब्धका परिणाम न मानकर यही मानने लगेंगे कि 'हमने सत्यकी रक्षाका प्रयत्न किया, इसीसे हमको यह हानि उठानी पड़ी। हम बड़े धोखेमें आ गये। सबकी तरह हम भी करते तो ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति क्यों होती।' यद्यपि यह मान्यता है सर्वथा मिथ्या, तथापि ऐसा होना सम्भव है। इसलिये कुछ भी कहना नहीं बनता।

बहुत-से ऐसे प्रसंग देखे गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि जैसे हानि बिना इच्छा तथा बिना प्रयत्नके हो जाती है, वैसे ही लाभ भी जब होना होता है, हो जाता है। एक सज्जन एक समय बड़े संकटमें थे। भूलसे तारमें जो लिखना चाहते थे, उससे विपरीत लिखा गया या पढ़ा गया और उसीके अनुसार कोई चीज बड़े पैमानेपर खरीद ली गयी या बेच दी गयी, ठीक याद नहीं है। और उस सौदेमें उनके तीस-पैंतीस लाख रुपये आ गये, सारा संकट मिट गया, वे जो लिखना चाहते थे, उसीके अनुसार काम होता तो उन्हें उलटा घाटा लगता, जिसे वे चुका ही नहीं सकते तथा संकट और भी बढ़ जाता। यह तो एक बड़ी घटना मैंने बतायी है। छोटी-छोटी ऐसी बातें अनायास सभीके जीवनमें प्राय: होती हैं, जिनसे कल्पनामें न आया हुआ हानि-लाभ हो जाता है और आश्चर्य करना पड़ता है। अत: पाप या अन्यायका आश्रय लेनेसे हम हानिसे बच जायँगे अथवा अधिक लाभ उठा लेंगे, यह मानना सर्वथा भ्रम है।

प्राचीन समयमें—अभी कुछ ही वर्षों पूर्वतक व्यापारी लोग असत्यसे, चोरीसे डरते थे, दूसरेका पैसा बेहकका घरमें न आ जाय, इससे सावधान रहते थे। बहीखातोंमें सच्चे ही जमा-खर्च करते थे। उनका सत्यपर अटल विश्वास था। सत्यको सहज ही नहीं छोड़ते थे, बल्कि असत्यके द्वारा दीखनेवाले प्रत्यक्ष लाभको छोड़ देते थे। हम कह सकते हैं कि उस समय सादा जीवन था। इतना खर्च नहीं बढ़ा था, चीजें बहुत सस्ती थीं, आवश्यकता कम थी। साथ ही करोंका इतना भार नहीं था। न्यायानुकूल कर लगता था। यह सब सत्य है। तथापि इस बातका समर्थन नहीं किया जा सकता कि किसी भी हालतमें हमें चोरी, बेईमानी, झूट-कपट, ठगी-डकैती, धोखा-विश्वासघात करना चाहिये, व्यापारके नामपर इन पापोंका आश्रय लेना चाहिये। जो सत्यपर अटल रहता है, वह सत्यको देखेगा, पैसेको नहीं। पर वास्तवमें बात तो यह है कि सत्यका विश्वासी या सत्यपर दृढ़ रहनेवाला पुरुष परिणाममें कभी घाटेमें रहेगा ही नहीं। प्रारब्धवश पैसा तो जितना आना है, उतना ही आयेगा, पर सत्यकी रक्षा करनेवाले पुरुषपर भगवान्‌की कृपा-सुधा बरसेगी। उसका चरित्र उज्ज्वल होगा। उसके जीवनमें जलन न होकर शान्ति आयेगी। वह मानव-जीवनकी सफलता प्राप्त करके अन्तमें सच्चे अर्थमें विजयी और सफल होगा।

परंतु जो प्रलोभनमें पड़कर अपने सत्यसे डिग जाते हैं, उनका सत्य तो मिट ही जाता है, परिणाममें उनको आर्थिक दृष्टिसे भी हानि उठानी पड़ती है। बुरेका फल कभी अच्छा नहीं हो सकता। दूसरोंको धोखा देकर उनका हक ले लेना, फुसला-बहकाकर ले लेना, झूठ-कपटसे ले लेना, दूसरोंकी वस्तुपर दृष्टि डालना, उसे लेनेकी इच्छा करना, जबर्दस्ती ले लेना—ये सभी चोरी-डकैती हैं। बाहरसे डराकर-मारकर लूटनेका काम करनेवाले लोग 'डाकू' कहलाते हैं। पर इन डाकुओंको डाकू कहनेवाले लोग स्वयं कलमसे तथा अपनी बुद्धिका दुरुपयोग करके रात-दिन डकैती करते रहते हैं। यह सोनेके-से रंगके चमकीले घड़ेके अंदर भरे हुए जहरकी भाँति भलाईकी आड़में छिपी हुई भयानक बुराई—'सभ्य डकैती' है। यह कौशलपूर्ण सभ्य डकैती ऑफिसोंमें कुर्सियोंपर बैठे-बैठे की जाती है। और यह अधिक व्यापक होनेके कारण बलपूर्वक की हुई खुली डकैतीसे कहीं अधिक भयानक होती है। जब सत्यका तथा भगवान्‌का भय मनमें नहीं रहता, तब कानून कुछ नहीं कर सकता। कानून मनवानेवाले सत्ताधिकारी तथा कानून माननेवाले लोग—दोनों मिल जाते हैं, तब कानून किताबोंमें रह जाते हैं और सभ्य डकैतियाँ बड़े धड़ल्लेसे चलती हैं। अवश्य ही यह भ्रम ही है कि इस प्रकारकी डकैतीका धन रह जायगा। वह किसी और सूत्रसे निकल जायगा। सच बात तो यह है कि अन्यायका धन जाता तो है ही, पर वह आने तथा जानेमें मानव-जीवनकी बहुत कुछ अमूल्य सम्पत्ति भी साथ ले जाता है।

पर ऐसा एक मोह है जो इस घृणित काममें अच्छे कहलानेवाले लोगोंको भी लगा देता है। बहुत दिनों पहलेकी बात है। दूसरे महायुद्धको समाप्त हुए थोड़े ही दिन बीते थे। मैं किसी एक कामसे आसाम गया था। रात्रिके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय मैं एक कारसे जा रहा था। उस समय आसाममें लड़ाईसे बचे हुए बिक्री (Disposal) के मालके बड़े-बड़े सरकारी डीपो जंगलोंमें बने थे। मैंने देखा—उन डीपोंके सामने ट्रकें खड़ी थीं। कहीं पाँच, कहीं दस, कहीं पंद्रह। मैंने साथवालोंसे पूछा—'क्या बात है?' तब उन्होंने बताया कि 'इन गोदामोंमें डिस्पोजलका माल है। यहाँके व्यापारियोंसे अधिकारी मिले हुए हैं। इतने टनकी ट्रकके पीछे इतने रुपये अधिकारियोंको व्यापारी देते हैं और रात्रिके समय मनमाना माल भरकर ले जाते हैं। जाँच करनेपर बात सत्य निकली। इस निशाचरी वृत्तिको देखकर मेरे मनमें आया कि 'क्या यही व्यापार है ? क्या यही वैश्योंका आचरणीय धर्म वाणिज्य है? क्या यह चोरीका धन ठहरेगा?' पर मेरी बात तो मेरे ही मनतक रह गयी! उसे सुनता कौन ? कामनासे क्रोध या लोभ, उससे सम्मोह, सम्मोहसे स्मृतिभ्रंश और स्मृतिनाशसे बुद्धि नष्ट होकर मनुष्यका सर्वनाश हो जाता है। भगवान्ने पतनका यह क्रम बताया है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

कामना जब विवेकको ढक लेती है, तब स्मृति ही नहीं रहती कि इसका क्या परिणाम होगा। वह अंधेकी भाँति लपककर चिपक जाता है किसी कोमल वस्तुसे, पर यदि वह कोमल वस्तु विषधर सर्प होता है और उसे काट लेता है, तब हाय-हाय करता है। भगवान्ने विषय-सुखको इसी प्रकारका बतलाया है। वे कहते हैं—

विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

'विषयके साथ इन्द्रियका संयोग होनेपर पहले जो सुख अमृतके समान प्रतीत हो, परंतु परिणाममें जो विषके समान काम करे, उसको राजस सुख कहा गया है।'

आज मनुष्य विषय-सुखपर विमुग्ध है और इसीसे वह अन्याय-असत्य, चोरी, डकैती, छल-कपटसे धन बटोरकर सुखी और सम्मानित होना चाहता है। और इसी भोग-बुद्धिके कारण आज समाज भी 'चोर-पूजक' बन गया है। 'चोर-पूजा' का अर्थ यह है कि कोई किसी भी प्रकार अन्याय, अधर्म, चोरी, बेईमानीसे धन कमा ले, समाज यह नहीं देखेगा कि धन कैसे आया है। समाज केवल धनको देखेगा और उस पापसे कमाये हुए धनके धनीका सम्मान करेगा, उसे समाजका अग्रगण्य मानेगा, उसको ऊँचा आसन देगा और उसकी प्रशंसा करेगा। यही 'चोर-पूजन' है। जब समाज इस प्रकार 'चोर-पूजक' बन जाता है, तब चोरका समाजमें इतना सम्मान देखकर सबके मनमें उसी प्रकारका बननेकी लालसा जाग्रत् हो जाती है। चोरोंमें पक्के चोरकी बड़ाई होती है, चोरीमें लगनेवालेको ठीक उचित काममें लगा हुआ समझा जाता है। तब कुछ धर्मभीरु लोगोंको छोड़कर अधिकांश समाज चोर बन जाता है। फिर चोरकी पीठ ठोंकी जाती है और उसीमें गौरव माना जाता है। आज हमारे समाजकी प्रायः यही दशा हो चली है। जबतक मनुष्य बुरेको बुरा समझता है, तबतक कभी किसी भी कारणसे उसके द्वारा कोई बुरा कर्म बन जाता है तो वह पश्चात्ताप करता है और समाज भी उसे बुरा बतलाता है। इससे वह अपने बुरे कर्मको छिपाता है तथा भविष्यमें बुरा कर्म करनेसे अपनेको बचाना चाहता है, परंतु जब उसकी बुरे काममें महत्त्व-बुद्धि हो जाती है और समाज भी उसका—बुरा काम करके सफल होनेवाले मनुष्यका सम्मान करता है अर्थात् वह सफल मनुष्य समाजमें पूजनीय, समाजका अगुआ माना जाता है, श्रेष्ठ माना जाता है, तब प्रायः दूसरे सभी लोग उसका अनुकरण करके वैसा ही आचरण करने लगते हैं।

मेरे एक परिचित मित्रने पहले बताया था कि 'कलकत्तेके जहाज-घाटोंपर आयात-निर्यातका बहुत-सा माल पड़ा रहता है। वहाँके अधिकारियोंसे मिलकर, उन्हें अमुक रकम देकर, चाहे सो माल उठाकर लाया जा सकता है, यों अनायास ही अच्छी कमाई हो जाती है और बहुत-से लोग यह घृणित काम करते हैं।' मुझे पता नहीं यह बात कहाँतक सत्य है, पर यदि सत्य है तो हमारे पतनका प्रत्यक्ष परिचय है।

एक भाईने मुझको पहले बताया था कि 'एक सज्जन अमुक कम्पनीको माल सप्लाई करते हैं। पर वहाँके अधिकारी, ये सज्जन जितना माल सप्लाई करते हैं, उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूनेका बिल बनवाते हैं और उसमेंसे आधा इन्हें मिलता है और आधा वे ले लेते हैं। इन्हें जो आधी रकम मिलती है, उसमेंसे अमुक हिस्सा उन अधिकारियोंको देना पड़ता है, जो इन्हें वह ठेका दिलवाते हैं। ये यदि ऐसा न करें तो इनके हाथसे वह काम ही छिन जाता है।' यह भी हमारे पतनका एक परिचय है।

हम बेचते हैं ब्राह्मी आँवला तेल, देते हैं नकली सेंटमिला तेल, बेचते हैं काली मिर्च, देते हैं पपीतेके बीज, बेचते हैं पीपल, देते हैं कच्चे शहतूत, बेचते हैं अमुक प्रकारका बढ़िया माल, देते हैं बहुत घटिया माल। यह सभी हमारे पतनके चिह्न हैं। हमारे जीवनका स्तर ही नीचा हो गया।

लोग कहते हैं यह 'अर्थयुग' है, इसीलिये अर्थकी इतनी महत्ता है। जहाँ ब्रह्मचारीका गुरुकुल-प्रवेश ब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छासे होता था—

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।

—वहाँ आज शुरूसे ही अर्थकी इच्छासे विद्यारम्भ होता है। इसीसे उस युगके गुरुकुलवासी ब्रह्मचारीके जीवनमें और आजके छात्रावासोंमें रहनेवाले छात्रोंके जीवनमें आकाश-पातालका अन्तर हो गया है। कहाँ वह त्यागमय पवित्र जीवन, कहाँ विलासमय अपवित्र आचरण। भोगकी महत्तासे अर्थकी महत्ता बढ़ी और अर्थकी महत्तासे अनर्थमय जीवन हो गया। श्रीमद्भागवतमें कहा है—एक अर्थसे पंद्रह अनर्थ पैदा होते हैं—

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥
लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद् द्विजाग्र्यताम्।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम्॥
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्।
द्रविणे कोऽनुषजेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। १७-२३)

'धन कमानेमें, कमा लेनेपर उसको बढ़ानेमें, उसकी रक्षा करनेमें, उसे खर्च करनेमें, उसका नाश हो जानेमें तथा भोग करनेमें मनुष्यको सदा परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है। चोरी, हिंसा, असत्य, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें अर्थ (धन) के कारण ही उपजते और पनपते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि स्वार्थ और परमार्थके विरोधी इस 'अर्थ' नामक अनर्थका दूरसे ही त्याग कर दे। भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी जो स्नेहके बन्धनमें बँधे बिलकुल एक हुए रहते हैं, वे ही सब कौड़ीके कारण इतने फट जाते हैं कि तुरंत एक-दूसरेके शत्रु बन जाते हैं। ये जरा-से धनके लिये क्षुब्ध होकर क्रोधमें भर जाते हैं, बात-की-बातमें सारी सुहृदता छोड़ देते हैं, स्पर्धा करने लगते हैं और सहसा हत्या कर डालनेके लिये तैयार हो जाते हैं। जिसकी देवता भी चाह करते हैं, ऐसे मनुष्य-शरीर तथा उससे भी श्रेष्ठ ब्राह्मण-शरीरको पाकर उसका अनादर करते हैं और अपने सच्चे स्वार्थकी हत्या करके अशुभ गतिको प्राप्त होते हैं। अतः स्वर्ग और मोक्षके द्वार इस मानव-शरीरको पाकर भी कौन ऐसा मनुष्य होगा जो अनर्थोंके धाम इस अर्थ (धन) में आसक्त रहे।' (क्रमशः)

ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होगी, इसमें कोई संदेह नहीं; परंतु उस ज्ञानकी कद्र करनेवाला शुद्ध मन भी तो होना चाहिये। वैराग्यके बिना ज्ञान कभी नहीं ठहर सकता। भोजनमें जहर मिला हो और यह बात भोजन करनेवालेको मालूम हो जाय तो वह तुरंत थाली छोड़कर उठ जायगा, इसी प्रकार संसारकी अनित्यता और दुःखरूपताका पता लगते ही उससे वैराग्य हो जाता है। फिर वैराग्य मनसे हटता ही नहीं।—ज्ञानदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुप्रिया तुलसी

(श्रीचाँदमलजी माहेश्वरी)

भक्तों एवं उपासकोंके लिये जितने भगवान् विष्णु आराध्य एवं श्रद्धेय हैं, उतनी ही भगवती तुलसी भी श्रद्धेया, पूज्या एवं वन्दनीया हैं। तुलसीका हिन्दू-संस्कृतिमें अत्यधिक धार्मिक महत्त्व है। इसके साथ ही औषधिशास्त्रसे भी तुलसीका अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, देवीभागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार तुलसीकी उत्पत्तिकी कल्पभेदसे अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। एक कथाके अनुसार क्षीरसागरका मन्थन करनेपर ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, दिव्य औषधियाँ, अमृत-कलश आदि अनेक वस्तुएँ क्षीरसागरसे निकलीं। ब्रह्मासहित सभी देवोंने लक्ष्मी एवं अमृत-कलश भगवान् विष्णुको अर्पित कर दिया। भगवान् विष्णु अमृत-कलशको अपने हाथमें लेकर अति प्रसन्न हुए और उनके आनन्दाश्रु उस अमृतमें गिर पड़े, जिनसे तुलसीकी उत्पत्ति हुई, फलस्वरूप तुलसी विष्णुको बहुत प्रिय हो गयी और तबसे देवता भी तुलसीको पूजने लगे।

पद्मपुराणमें वर्णन है कि गङ्गाकी तरह तुलसी भी त्रिलोकीमें पवित्र मानी जाती है। नर्मदाका दर्शन, गङ्गाका स्नान एवं तुलसीपत्रका सेवन—ये तीनों समान-रूपसे पवित्र करते हैं। तुलसी-सेवनसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। पुष्कर आदि तीर्थों, गङ्गा आदि पवित्र नदियों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवताओंका तुलसीपत्रमें वास है। तुलसीसे सुगन्धित वायु जहाँ-जहाँ पहुँचती है, वहाँका प्राणीमात्र पवित्र हो जाता है। जैसे हर्रे बहुतेरे रोगोंको तत्काल हर लेती है, उसी प्रकार तुलसी दरिद्रता और दुःखभोग आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले अधिक-से-अधिक पापोंको भी शीघ्र ही दूर कर देती है[१]।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि पूर्वजन्ममें यह तुलसी नामकी गोपी थी और कृष्णकी बहुत प्रिय थी। राधाने इसे शाप दिया कि तुम मानव-योनिमें जन्म लो। इसपर भगवान्ने कहा कि तुम भारतवर्षमें रहकर तपस्या करो, ब्रह्मा वर देंगे, और तुम चतुर्भुजरूप विष्णुको पति-रूपमें प्राप्त करोगी। समस्त जगत्को पवित्र करनेकी योग्यता तुम्हें प्राप्त होगी। विष्णु तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानेंगे। तुम्हारे बिना पूजा निष्फल समझी जायगी और वृन्दावनमें विशेष वास करनेसे लोग तुम्हें वृन्दावनी भी कहेंगे। मैं भी पाषाणरूपमें शालग्राम बनूँगा और तुम्हारा-मेरा नित्य अखण्ड संयोग बना रहेगा। तदनुसार तुलसी तथा शालग्रामका पृथ्वीपर आविर्भाव हुआ।

विष्णुरूपी शालग्रामकी मूर्तिपर तुलसी चढ़ायी जाती है। प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता है कि तुलसी भगवान् विष्णुको बहुत ही प्रिय है और इसलिये तुलसीका एक नाम 'विष्णुप्रिया' भी पड़ा। गुणोंके कारण यह कई नामोंसे जानी जाती है। यथा—वृन्दा, विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दिनी, कृष्णजीवनी, सु-रसा (उत्तम रसवाली), ग्राम्या (गाँवोंमें बहुलतासे प्राप्त), सुलभा (हर जगह आसानीसे प्राप्त), बहुमंजरी (अधिक फूलोंवाली), देवदुंदुभी (देवताओंको आनन्द देनेवाली), शूलघ्नी (व्याधियोंको नष्ट करनेवाली) एवं वृन्दावनमें वृक्ष-रूपमें रहनेसे वृन्दावनी। महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं कि उनके प्रिय पुष्पोंमें उन्हें तुलसी-पुष्प सर्वाधिक प्रिय है। तुलसीका फूल (मंजरी) न मिलनेपर तुलसीका पत्ता, शाखा या जड़ जो भी उपलब्ध हो उससे पूजा करनेसे और इनके भी न मिलनेपर जहाँ तुलसीका पौधा रहा था, वहाँकी मिट्टीसे भी भक्ति और श्रद्धापूर्वक पूजा करनेपर वे प्रसन्न हो जाते हैं। यहाँतक कहा गया है कि तुलसी-पुष्प (मंजरी) से विष्णुकी पूजा करनेपर जन्म-मरणके चक्करसे निश्चित रूपसे मुक्ति मिल जाती है।

अंग्रेजी भाषामें इसको होली बेसिल (Holy Basil) कहते हैं और पश्चिमी देशोंमें कई प्रकारसे इसका भोजनमें बहुतायतसे उपयोग किया जाता है। तुलसीको लैटिनमें ओसिमम सेंक्ट्रम (Ocimum Sanctrum) कहते हैं। तुलसीके २२ मुख्य भेद माने गये हैं। किंतु मुख्यतया यह

१-दारिद्र्यदुःखभोगादिपापानि सुबहून्यपि॥ तुलसी हरते क्षिप्रं रोगानिव हरीतकी।
(पाता० ९४।८-९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) श्याम (श्यामा) और (२) श्वेत (रामा)—दो नामोंसे जानी जाती है। श्यामको अंग्रेजीमें (Purple Stalked) और श्वेतको (White Basil) कहते हैं। श्याम और श्वेतमें कोई विशेष अन्तर नहीं, फिर भी मान्यता है कि श्याम श्वेतसे अधिक लाभप्रद है। आयुर्वेदके अनुसार श्याममें कफनाशक गुण अधिक होता है। अतएव औषधिके रूपमें प्रायः श्यामका ही विशेष प्रयोग किया जाता है।

प्राचीन कालमें साधारण वनस्पतियाँ ही औषधिके रूपमें प्रयोगमें आती थीं और उनसे ही बड़ी-बड़ी बीमारियाँ ठीक हो जाती थीं। तुलसी भी उसी तरह एक अत्यन्त उपयोगी वनस्पति है। इससे अनेक बीमारियोंमें लाभ होता है। प्राचीन परम्पराके अनुसार प्रत्येक हिन्दू-घरमें तुलसीका पौधा रखना अनिवार्य था। प्रातःकाल स्नान आदिसे निवृत्त होकर तुलसीको जलसे सींचा जाता था एवं उसकी पूजा की जाती थी और सायंकालमें दीप-आरती की जाती थी। तुलसीके पौधेमें कई बीमारियोंके नष्ट करनेकी एवं घरके दूषित वायुको शुद्ध करनेकी क्षमता होनेके कारण इसे पुण्य वृक्षोंमें धर्म-वृक्षके रूपमें माना गया है, ताकि प्रत्येक परिवार इसका रोपण कर लाभ प्राप्त कर सके। लोग तुलसीकी माला गलेमें पहनते हैं, उसके पीछे भी वैज्ञानिक दृष्टि-विन्दु यही है कि तुलसी-माला धारण करनेवाले व्यक्तिमें रोगोंके प्रतिरोधकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है और वह भयानक रोगोंसे बचा रहता है।

आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार तुलसी स्वादमें चरपरी, गुणमें उष्ण, अग्निदीपक, कृमि-नाशक, वमन, श्वास, खाँसी, ज्वर, पित्त एवं कफ दूर करनेवाली है। इसमें सिरदर्द, पीनस (नाकका रोग), मृगी, अरुचि तथा मुखकी दुर्गन्ध नष्टकर रोगीको स्वास्थ्य प्रदान करनेकी विलक्षण शक्ति है। आयुर्वेद-चिकित्सा-विज्ञानमें तुलसीकी रोगनाशक शक्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। अस्तु, तुलसीके सेवनसे होनेवाले लाभोंका कुछ दिग्दर्शन कराया जा रहा है—

(१) कफ, खाँसी, ज्वर, जुकाम, मलेरिया, बुखार इत्यादिमें तुलसीका प्रयोग रामबाण औषधि है। अनेक आयुर्वेदिक औषधियोंमें तुलसीका सम्मिश्रण अधिक लाभप्रद माना गया है।

(२) उदर-रोग--जैसे अजीर्ण, अपच, दस्त लगनेपर, पेट-दर्द, मन्दाग्नि एवं पेटमें कीड़े पड़नेपर तुलसीका सेवन लाभकारी है।

(३) बच्चोंकी बीमारीमें—जैसे शीतला निकलनेपर, मुँहसे दूध निकालनेपर, दाँत निकलनेपर, खाँसी, जुकाम, बुखार होनेपर तुलसीका उपयोग करना लाभप्रद है।

(४) तुलसीका केवल आन्तरिक उपयोग ही नहीं बाहरी उपचार भी है। यह फोड़ा, फुंसी, घाव, चर्मरोग, दाद, खुजली, मुँहासे, झाँई, बिच्छू एवं ततैयाके काटनेपर लेप करनेसे फायदा पहुँचाती है। नाकसे खून आनेपर (नकसीर) तुलसीके रसमें कपूर मिलाकर कुछ बूँदें नाकमें टपका देनेसे तुरंत लाभ होता है।

(५) आँख, कान, नाक, दाँत, सिरदर्द इत्यादि एवं यहाँतक कि गठिया एवं जोड़ोंके दर्द आदि कई बीमारियोंमें तुलसीका बाह्य उपचार लाभकारी है।

(६) तुलसीका सेवन विटामिन 'ए', 'बी' एवं 'सी' की पूर्ति करता है।

(७) बालोंके असमय झड़नेपर तुलसी एवं आँवलाके चूर्णको पानीमें उबालकर सिर धोनेसे बालोंका झड़ना रुक जाता है।

(८) तुलसीमें एक विशेष प्रकारकी गन्ध है, जिसे मच्छर, खटमल, छछुंदर तथा साँप इत्यादि सहन नहीं कर पाते अतएव तुलसीके पास नहीं आते। तुलसीके गन्धसे मलेरियाके मच्छर भाग जाते हैं।

(९) प्लूरिसीकी बीमारीमें—(फेफड़ोंमें पानी भर जाना एवं साँस रुक-रुककर आना, छातीमें दर्द रहना) तुलसीके पत्तोंका आधा औंस रस (१५ ग्राम) जो धीरे-धीरे एक औंस (३० ग्राम) तब बढ़ाया जा सकता है, दिनमें दो बार प्रातः एवं सायं (भूखे पेट) लेनेसे लाभ होता है।

स्वर्गीय डॉक्टर श्रीसंडेसरा गत २५ वर्षोंसे तुलसीद्वारा विविध बीमारियोंका उपचार सेवाभावसे करते आ रहे थे। वे (१) आर्थ्राइटिस, ओस्टियो आर्थ्राइटिस एवं स्नायु-दर्द, (२) साइनस, (३) टॉनसिल, (४) किडनीके रोग एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किडनीमें पत्थर होना, (५) शरीरमें सूजन, (६) अनैच्छिक मूत्रस्राव, (७) सफेद कोढ़, (८) ब्लड कोलेस्ट्रोल, (९) हृदयरोग, (१०) ब्लडप्रेसर, (११) एसीडिटी, (१२) नकसीर, (१३) मानसिक दुर्बलता, (१४) हिस्टीरिया, (१५) लकवा, (१६) दमा, (१७) ग्लुकोमा आदि आँखकी बीमारियाँ, (१८) नपुंसकता, (१९) सिफलिस तथा (१०) कैन्सर-जैसी असाध्य बीमारियोंसे ग्रसित बीमारोंका केवल तुलसीका प्रयोग कर सफलतापूर्वक उपचार करते थे।

तुलसी-सेवनका समय एवं अनुपान

तुलसी-सेवनका समय भूखे पेट प्रात:कालीन विशेष उत्तम है। उसके अनुपानमें ताजा मीठा दही, गुड या शहदका प्रयोग करना चाहिये। तुलसीके ताजे हरे पत्ते १५से २५ की तादादमें (उम्रके अनुसार) पीसकर अपनी प्रकृतिके अनुकूल तीनोंमेंसे एक अनुपान पर्याप्त मात्रामें लेकर उसमें मिलाकर खा लिया जाय। आधा घंटातक कोई भी दूसरी वस्तु नहीं खानी चाहिये। चरकके मतानुसार तुलसी कभी भी दूधके साथ नहीं लेनी चाहिये; क्योंकि इससे त्वचाके रोग होनेका भय रहता है। यदि तुलसीके हरे पत्ते प्राप्त न हों तो सुखाकर रखे हुए पत्तोंका चूर्ण भी काममें लिया जा सकता है। तुलसीके नियमित सेवनसे चाय, काफी, शराब, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू आदि व्यसन भी दूर होते हैं।

वैज्ञानिकोंका कहना है कि तुलसीमें क्षय-रोग (टी० बी०) के कीटाणु, मवाद पैदा करनेवाले कीटाणु एवं टाइफाइडके कीटाणुको रोकनेकी अद्भुत शक्ति है। कोई समय था जब प्रत्येक हिन्दू-कुटुम्बमें तुलसी-क्यारा या तुलसीका गमला होना आवश्यक माना जाता था। उसके बिना घरमें एक कमी महसूस होती थी। किंतु समय-परिवर्तनके साथ आज यह स्थिति देखनेको बहुत कम ही मिलती है। प्राय: मन्दिरों आदिमें भी यह परम्परा उच्छिन्न-सी होती दीखती है। कुछ समय-पूर्वतक कई मन्दिरोंमें प्रत्येक दर्शनार्थीको तुलसीके साथ भगवान्‌का चरणामृत प्रसादरूपमें अवश्य दिया जाता था। भारतके कुछ मन्दिरोंमें आज भी तुलसीके साथ चरणामृत देनेकी प्रथा जीवित है।

तुलसीका घर-घर प्रचार एवं प्रसार बढ़ानेके लिये मन्दिरोंमें तुलसी-चरणामृत देनेकी उत्तम प्रथाको पुन: जीवित किया जाना चाहिये। समाजसेवी संस्थाएँ तुलसी-प्रचारके काममें यदि आगे आयें और ध्यान दें तो तुलसीका प्रचार घर-घर किया जा सकता है। तुलसी-साहित्यद्वारा तुलसीकी महिमा एवं उसके औषधीय गुणोंकी जानकारी जनताको प्राप्त करायी जाय और तुलसीपर साहित्य बाँटकर उसका प्रचार किया जाय। लोगोंको अधिक-से-अधिक तुलसी उगानेके लिये प्रेरित किया जाय। अपने घरके बगीचोंमें अधिक-से-अधिक पौधे लगाये जायँ, जिससे घरका एवं आस-पासका वायु-मण्डल शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्धक हो। जहाँ यह सुभीता न हो, घरमें कम-से-कम एक गमला तुलसीका अवश्य ही रखनेकी भावना पैदा की जाय। आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक धर्मार्थ औषधालयोंमें दवा देनेके साथ ही वैद्य एवं डॉक्टर बीमारको छोटी-मोटी बीमारीके लिये तुलसीके प्रयोगसे ठीक होनेवाली बीमारियोंकी जानकारी देकर उसका पालन करनेके लिये प्रोत्साहित करें तो तुलसीका प्रचार बढ़ेगा और लोगोंका हित होगा।

अस्तु, लोगोंको चाहिये कि अपनी-अपनी पहुँच एवं साधन तथा परिस्थितिके अनुसार तुलसीको प्रयोगमें लानेकी चेष्टा करें तो इससे स्वयंके साथ ही समाजका भी अवश्य कल्याण होगा। ऐसी धर्ममयी तथा कल्याणमयी विष्णुप्रिया तुलसीको नमस्कार है—

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥

(पद्म० पाता० ७६। ६६)

जो दर्शन-पथमें आनेपर सारे पाप-समुदायका नाश कर देती है, स्पर्श किये जानेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम किये जानेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचे जानेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ाये जानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसीदेवीको नमस्कार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

प्रार्थना

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हे नाथ! अब तो आपको हमारेपर कृपा करनी ही पड़ेगी। हम भले-बुरे कैसे ही हों, आपके ही बालक हैं। आपको छोड़कर हम कहाँ जायँ? किससे बोलें? हमारी कौन सुने? संसार तो सफा जंगल है। उससे कहना अरण्यरोदन (जंगलमें रोना) है। आपके सिवाय कोई सुननेवाला नहीं है महाराज! हम किससे कहें? हमारेपर किसको दया आती है? अच्छे-अच्छे लक्षण हों तो दूसरा भी कोई सुन ले। हमारे-जैसे दोषी, अवगुणीकी बात कौन सुने? कौन अपने पास रखे? हे गोविन्द-गोपाल! यह तो आप ही हैं, जो गायों और बैलोंको भी अपने पास रखते हैं, चारा देते हैं। हम तो बस, बैलकी तरह ही हैं! बिलकुल जंगली आदमी हैं! आप ही हमें निभाओगे। और कौन है, किसकी हिम्मत है कि हमें अपना ले? ऐसी शक्ति भी किसमें है? हम किसीको क्या निहार करेंगे? हमें अपनाकर भी कोई क्या करेगा? हमें रोटी दे, कपड़ा दे, मकान दे, खर्चा करे, और हमारेसे क्या मतलब सिद्ध होगा? ऐसे निकम्मे आदमीको कौन सँभाले? कोई गुण-लक्षण हों तो सँभाले। यह तो आप दया करते हैं, तभी काम चलता है, नहीं तो कौन परवाह करता है?

हे प्रभो! थोड़ी-सी योग्यता आते ही हमें अभिमान हो जाता है! योग्यता तो थोड़ी होती है, पर मान लेते हैं कि हम तो बहुत बड़े हो गये, बड़े योग्य बन गये, बड़े भक्त बन गये, बड़े वक्ता बन गये, बड़े चतुर बन गये, बड़े होशियार बन गये, बड़े विद्वान् बन गये, बड़े त्यागी, विरक्त बन गये! भीतरमें यह अभिमान भरा है नाथ! आपकी ऐसी बात सुनी है कि आप अभिमानसे द्वेष करते हो और दैन्यसे प्रेम करते हो*। अगर आपको अभिमान सुहाता नहीं है तो फिर उसको मिटा दो, दूर कर दो। बालक कीचड़से सना हुआ हो और गोदीमें जाना चाहता हो तो माँ ही उसको धोयेगी, और कौन धोयेगा? क्या बालक खुद स्नान करके आयेगा, तब माँ उसको गोदीमें लेगी? आपको हमारी अशुद्धि नहीं सुहाती तो फिर कौन साफ करेगा? आपको ही साफ करना पड़ेगा महाराज!

हे नाथ! हमारे सब कुछ आप ही हो। आपके सिवाय और कौन है, जो हमारे-जैसेको गले लगाये? इसीलिये हे प्रभो! अपना जानकर हमारेपर कृपा करो। एक मारवाड़ी कहावत है—**'गैलो गूँगो बाव़लो, तो भी चाकर राव़लो।'** हम कैसे ही हैं, आपके ही हैं। आप अपनी दयासे ही हमें सँभालो, हमारे लक्षणोंसे नहीं, जिन भरतजीकी रामजीसे भी ज्यादा महिमा कही गयी है, वे भी कहते हैं—

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
(मानस, उत्तर० १। ३)

आपके ऐसे मृदुल स्वभावको सुनकर ही आपके सामने आनेकी हिम्मत होती है। अगर अपनी तरफ देखें तो आपके सामने आनेकी हिम्मत ही नहीं होती। आपने वृत्रासुर, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ आदिका भी उद्धार कर दिया, यह देखकर हमारी हिम्मत होती है कि आप हमारा भी उद्धार करेंगे†! जैसे अत्यन्त लोभी आदमी कूड़े-कचरेमें पड़े पैसेको भी उठा लेता है, ऐसे ही आप भी कूड़े-कचरेमें पड़े हम-जैसोंको उठा लेते हो। थोड़ी बातसे ही आप रीझ जाते हो—*'तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें'* (मानस, बाल० ३४२। २)। कारण कि आपका

---

* ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च। (नारदभक्तिसूत्र २७)

†सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु। उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥
प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान। तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(मानस, बाल० २८-२९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव है—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

अगर आपका ऐसा स्वभाव न हो तो हम आपके नजदीक भी न आ सकें! आप हमारे अवगुणोंकी तरफ देखते ही नहीं। थोड़ा भी गुण हो तो आप उस तरफ देखते हो। वह थोड़ा भी आपकी दृष्टिसे है। हे नाथ! हम विचार करें तो हमारेमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, अभिमान आदि कितने ही दोष भरे पड़े हैं! हमारेसे आप ज्यादा जानते हो, पर जानते हुए भी आप उनको मानते नहीं—***'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ',*** (मानस, उत्तर० १। ३) इसीसे हमारा काम चलता है प्रभो! कहीं आप देखने लग जाओ कि यह कैसा है, तो महाराज! पोल-ही-पोल निकलेगी!

हे नाथ! बिना आपके कौन सुननेवाला है? कोई जाननेवाला भी नहीं है! हनुमान्‌जी विभीषणसे कहते हैं कि मैं तो चंचल वानरकुलमें पैदा हुआ हूँ। प्रातःकाल जो हमलोगोंका नाम भी ले ले तो उस दिन उसको भोजन न मिले! ऐसा अधम होनेपर भी भगवान्‌ने मेरेपर कृपा की* फिर तुम तो पवित्र ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए हो! कानोंसे ऐसी महिमा सुनकर ही विभीषण आपकी शरणमें आये और बोले—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

(मानस, सुन्दर० ४५)

जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी आप रक्षा करते हो, उसको सुख देते हो, यह आपका स्वभाव है—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर, राम सरिस कोउ नाहीं॥

(विनय-पत्रिका १६२)

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।

(विनय-पत्रिका १६५। ५)

हरेक दरबारमें दीनका आदर नहीं होता। जबतक हमारे पास कुछ धन-सम्पत्ति है, कुछ गुण है, कुछ योग्यता है, तभीतक दुनिया हमारा आदर करती है। दुनिया तो हमारे गुणोंका आदर करती है, हमारा खुदका (स्वरूपका) नहीं। परंतु आप हमारा खुदका आदर करते हो, हमें अपना अंश मानते हो—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७), ***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए।'*** (मानस, उत्तर० ८६। २) और अपना अंश मानकर कृपा करते हो। हमारे अवगुणोंकी तरफ आप देखते ही नहीं। बच्चा कैसा ही हो, कुछ भी करे, पर 'अपना है'—यह जानकर माँ कृपा करती है, नहीं तो मुफ्तमें कौन आफत मोल ले महाराज?

हे नाथ! जो कुछ भी हमें मिलता है, आपकी कृपासे ही मिलता है। परंतु उसको हम अपना मान लेते हैं कि यह तो हमारा ही है। यह आपकी खास उदारता और हमारी खास भूल है! महाराज! आपकी देनेकी रीति बड़ी विलक्षण है! सब कुछ देकर भी आपको याद नहीं रहता कि मैंने कितना दिया है। आपके अन्तःकरणमें हमारे अवगुणोंकी छाप ही नहीं पड़ती। आपका अन्तःकरणरूपी कैमरा कैसा है, इसको आप ही जानते हो! उसमें अवगुण तो छपते ही नहीं, गुण-ही-गुण छपते हैं। ऐसा आपका स्वभाव है! सिवाय आपमें अपनेपनके और हमारे पास क्या है महाराज! आप हमें अपना जानते हैं, मानते हैं, स्वीकार करते हैं, तभी काम चलता है नाथ! नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाती! हम जी भी नहीं सकते थे! केवल आपकी कृपाका ही आसरा है, तभी जीते हैं—

आप कृपा को आसरो, आप कृपा को जोर।
आप बिना दीखे नहीं, तीन लोकमें और॥

कृपा करके भी आपकी कृपा कभी तृप्त नहीं होती—***'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती'*** (मानस, बाल० २८। २)! ऐसी कृपाके कारण ही आप कृपा कर रहे हो! आप हमारे भीतरकी सब बातें जानते हो, पर जानते हुए भी उधर दृष्टि

* कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥ (मानस, सुन्दर० ७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं डालते और ऐसा बर्ताव करते हो कि मानो आपको पता ही नहीं, आप जानते ही नहीं! आपकी कृपा ही आपको मोहित कर देती है। आप अपने ही गुणोंसे मोहित हो जाते हो। आप अपना किया हुआ उपकार ही भूल जाते हो। अपनी दी हुई वस्तुको भी भूल जाते हो। देते तो आप हो, पर हम मान लेते हैं कि यह तो हमारी ही है! ऐसे कृतघ्न, गुणचोर हैं हम तो महाराज! पूत कपूत हो चाहे सपूत हो, पूत तो है ही। पूत कभी अपूत नहीं हो सकता। आपने कहा है कि जीव सदासे मेरा ही अंश है—'**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।**' (गीता १५। ७) अतः अपना पूत जानकर कृपा करो।

हे प्रभो! हम आपके क्या काम आ सकते हैं। क्या आपका कोई काम अड़ा हुआ है, जो हमारेसे निकलता हो? क्या हमारी योग्यता आपके कोई काम आ सकती है? यह तो केवल हमारा अभिमान बढ़ानेमें काम आती है। आपकी दी हुई चीजको हम अपनी मान लेते हैं और अपनी मान करके अभिमान कर लेते हैं—ऐसे कृतघ्न हैं हम! फिर भी आप आँखें मीच लेते हो। आप उधर ख्याल ही नहीं करते। आपके ऐसे स्वभावसे ही तो हम जी रहे हैं!

हे नाथ! हम आपसे क्या कहें? हमारे पास कहनेलायक कोई शब्द नहीं है, कोई योग्यता नहीं है। आप जंगलमें रहनेवाले किरातोंके वचन भी ऐसे सुनते हो, जैसे पिता अपने बालककी तोतली वाणी सुनता है—

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

(मानस, अयोध्या० १३६)

इसी तरह हे नाथ! हमें कुछ कहना आता नहीं। हम तो बस, इतना ही जानते हैं कि जिसका कोई नहीं होता, उसके आप होते हो—

बोल न जाणूं कोय अल्प बुद्धि मन वेग तें।
नहिं जाके हरि होय या तो मैं जाणूं सदा॥

(करुणासागर ७४)

लोकाभिराम श्रीराम

(श्रीरामस्वरूपजी पण्डित 'मयूरेश')

नयनाभिराम! लोकाभिराम! ले लो मेरा पुलकित प्रणाम!

नव मृणाल-से भी कोमलतर,
पीत वसन-युत नील कलेवर;
कर-सरोज-शर, चारु चाप-धर,
जलज-नयन त्रयलोक-मनोहर!
तव अङ्ग-अङ्गकी श्रीशोभापर
हम वारें शत-शत कोटि काम॥
नयनाभिराम०॥ १॥

चिर ज्योतिर्मय अमर-पुञ्ज तुम,
शील-शक्ति-सौन्दर्य-विनयके;
करुणामय साकार रूप तुम—
सत्य-धर्म-माङ्गल्य-विजयके।
तुम रामचन्द्र, कुल-कुमुद-चन्द्र,
मर्यादाके शिखरस्थ धाम॥
नयनाभिराम०॥ २॥

तव पद-पङ्कजके रज-कणसे,
पाहन भी पारस हो जाये;
एक तुम्हारी मृदु चितवनसे
पतझर भी पावस हो जाये!
तव कृपा-किरणसे बन जाये प्रभु!
कण्टक-कानन भी गीत-ग्राम॥
नयनाभिराम०॥ ३॥

निखिल सृष्टिकी प्राण-वायु तुम,
भारत माँके प्राण तुम्हीं हो;
मानव तो क्या, देवोंके भी
भाग्य और भगवान् तुम्हीं हो।
अग्नि-बाण-सा नाम तुम्हारा—
पापोंपर है पूर्ण विराम॥
नयनाभिराम०॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ५३२ से आगे]

अञ्जलि बाँधे देवराज खड़े हैं। कमलयोनि भी गम्भीर चिन्तामें निमग्न हैं। देवराजके मुखपर अतिशय क्लान्ति है। सारा गर्व चूर-चूर हो गया है। सोचा था—समस्त व्रजको क्षणभरमें बहा दूँगा, व्रजका चिह्नतक अवशिष्ट नहीं रहेगा; इस मर्त्य श्रीकृष्णके साथ ही नन्द, नन्दके परिवार, नन्दके अगणित बन्धु-बान्धव, असीम गोराशि—सभी जलके अतल-तलमें सदाके लिये विलीन हो जायँगे। मेरे स्थानपर अपनी पूजा करानेवाला यह गोवर्द्धनपर्वत भी चूर्ण-विचूर्ण होकर अनन्त जलराशिके प्रवाहमें कहाँ-से-कहाँ बह जायगा। जगत् देखेगा, मेरी अवज्ञाका क्या परिणाम होता है। पर सुरराजका यह गर्व धूलिमें मिल गया। सांवर्तक मेघ श्रीहत होकर व्रजसे लौटे।

शुक्ला तृतीयाको वर्षा आरम्भ हुई थी। पहले सांवर्तकने भी सोचा था—सागरकी उत्ताल तरङ्गोंकी-सी जलराशिमें बस, व्रज समाप्त होने जा रहा है। व्रजवासियोंके करुण नादका यह अन्तिम क्षण है। पर देखते-ही-देखते श्याम तमालकी-सी अङ्गकान्तिका एक बालक आया, मानो खेलने जा रहा हो। इसी तरहसे उसने सहज ही हाथ बढ़ाया और दूसरे ही क्षण विशाल गोवर्द्धनपर्वत भूमिसे विच्छिन्न होकर आकाशमें जा उठा। सांवर्तकोंने झाँककर देखा, उसके नीचे वही तमाल-श्यामल बालक खड़ा-खड़ा हँस रहा है। उसकी एक भुजा ऊपरको उठी है, तथा उसकी कनिष्ठिकापर पर्वतराज छत्राकपुष्पकी तरह टिका है। बालक पुकार रहा है—'ओ बाबा, री मैया, री ग्वालिनो, यहाँ इसके भीतर आओ; यह देखो, गिरिराज हमारे हाथके ऊपर उठ गये हैं। सभी इनके नीचे चले आओ। सभी गायोंको हाँक लाओ, डरो मत; गिरिराजने तुम्हारी रक्षाके लिये ही भूमिगर्त बना डाला है। जितने दिन वर्षा हो, इसमें सुखसे रहो। मेरे हाथसे पर्वतके गिरनेकी किञ्चित् भी आशङ्का मत करो।' बालकका आवाहन पाकर देखते-ही-देखते समस्त व्रजवासी, समस्त गोराशि, सम्पूर्ण व्रज ही उस गिरिगर्तमें जा घुसा; बाहर केवल निर्जन वनमात्र बच रहा, जिसपर मूसलाधार वृष्टि हो रही है। सांवर्तकगण चाहते थे कि एक वार फिर झाँककर देखें, गिरिगर्तके अन्तर्देशकी अवस्थाका परिचय प्राप्त करें। पर उनकी आँखोंके सामने एक अँधेरा-सा छा गया। उनके अङ्गोंसे अनवरत संचारित विद्युत्-रश्मि भी उन्हें प्रकाश न दे सकी। वे अब कुछ भी नहीं देख सके। हाँ, गिरिगर्तमें प्रविष्ट होते समय व्रजवासियोंका आनन्दकोलाहल उन्हें स्पष्ट सुन पड़ रहा था; व्रजवासी झाँककर भीतर देखते थे तथा आनन्दमें भरकर अपने साथियोंको उस विशाल गर्तका अनुभव सुनाते थे। वह ध्वनि उनके कानोंमें पड़ रही थी—

सुविन्यस्तनिःश्रेणिलब्धप्रवेशं
मणिश्रेणिविद्योतमानप्रदेशम् ।
गृहस्येव रत्नाङ्गभित्तिप्रकारं
तदूर्ध्वं च तत्तुल्यशोभाप्रचारम्॥
सुखस्पर्शमण्याचितक्षोणिभागं
समस्तावकाशादिसंधाविभागम् ।
यथापेक्षविभ्राजितस्वच्छनीरं
सुखाकारिघर्माञ्छिनीचैः समीरम् ॥
करे स्वस्य वामे तु वामे वसन्तं
गिरिं लीलयाऽऽस्पृश्य सन्तं हसन्तम्।
तदीयान्तरुद्यन्महाकुट्टिमस्थं
हरिं हारिरूपादिभिः प्रागवस्थम्॥
दधद्वेणुमानम्रहस्तप्रधानं
कदाचिन्मुदा सख्युरंसे दधानम्॥
(श्रीगोपालचम्पू)

'अहा! गिरिराजके अन्तर्देशमें जानेके लिये सुन्दर सीढ़ियाँ निर्मित हैं, समस्त अन्तर्देश मणिसमूहोंसे जगमग-जगमग कर रहा है; सुन्दर गृहके रत्नमय आँगन, भित्ति आदिके समान ही गिरिराजके आवासके रत्नमय आँगन एवं भित्तिकी रचना है; गृहके ऊर्ध्वभाग छत-प्रकोष्ठ आदि भी वैसी ही शोभाका प्रदर्शन कर रहे हैं; इसका तलदेश सुकोमल मणिसंयुक्त है; सबको स्थान देनेके योग्य यथोचित विभाग बने हुए हैं; जितनी आवश्यकता हो, उतनी मात्रामें यहाँ चम-चम करता हुआ स्वच्छ जल बह रहा है; सुखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनुतापहारी मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है। ऐसे आवासवाले गिरिराजको व्रजराजनन्दन लीलासे अपने बायें हाथपर लिये, उसे किञ्चिन्मात्र ही स्पर्श करते हुए, हँसते हुए अन्तर्देशकी एक विशाल वेदीपर खड़े हैं; उनका मनोहर रूप, परिधान आदि सब कुछ ज्यों-का-त्यों वैसा ही है; वयस् भी वही है; उनका दक्षिण हस्तकमल नीचेकी ओर लटक रहा है, उसमें वे वंशी धारण किये हुए हैं; कभी प्रसन्न होकर दाहिने हाथको सखाके कंधेपर रख देते हैं।'

इसे सुनकर ही सांवर्तक मेघोंका सारा उत्साह टूट चुका था। पर उन्हें तो अपने स्वामीका आदेश पालन करना था; अतः वे अपनी सारी शक्ति लगाकर सात दिनोंतक अनवरत जलधारा बरसाते ही रहे। प्रतिक्षण उनकी शक्ति क्षीण हो रही थी; नवमीकी रात्रि आते-आते वे सर्वथा सामर्थ्यहीन हो गये, व्रजके एक क्षुद्र अंशका भी नाश न कर सके। ऐरावतपर आसीन सुरराजका मुख म्लान हो गया। शक्ति समाप्त हो चुकी थी; मेघोंको निवारण करते हुए स्वर्ग लौट आये; किसीको मुख दिखानेकी इच्छा न होती थी। पर एक बड़ा लाभ हुआ देवराजको। मदका आवरण हटते ही व्रजराजनन्दनका स्वरूप उनके हृदयके दर्पणमें चमक उठा—ओह! जिसे मैं 'मर्त्य कृष्ण' कह रहा था, वह ईश्वरोंका भी परम महेश्वर है; उसकी इच्छासे ही मैं सुरराज बना हुआ हूँ, वह चाहे तो मैं इसी क्षण नरक-कीट बन जाऊँ और नरक-कीट मेरे आसनको सुशोभित करे। सुरराज पश्चात्तापकी ज्वालामें जलने लगे। सुरगुरु बृहस्पतिका आश्रय लिया। बृहस्पतिके परामर्शसे वे पितामह ब्रह्माके पास आये। उनसे समस्त अपराध निवेदन कर इसका निदान पानेकी आशासे अञ्जलि बाँधे खड़े रहे।

कमलयोनिने सोच-विचारके उपरान्त परामर्श दिया—

गवां कण्डूयनं कुर्याद् गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम्।
नित्यं गोषु प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदति.......॥
क्षमापनाय क्लतरस्त्वं तज्जातिमातरं सुरभीमेव भजस्व।

(श्रीगोपालचम्पू)

गोपालके भक्त गौतम आदि ऋषियोंके ये वचन हैं—'गायोंको खाज आनेपर उनकी खाज करनी चाहिये, गोग्रासका दान करना चाहिये, गोप्रदक्षिणा करनी चाहिये। जिनपर गायें सदा प्रसन्न रहती हैं, उनपर गोपाल भी प्रसन्न होते हैं। सुरराज़! अपराध क्षमा करानेके लिये तुम व्याकुल हो; तुम्हारे लिये यही पथ है कि तुम गोजातिकी माता सुरभिका आश्रय ग्रहण करो।'

श्रीकृष्णकी अवज्ञा करनेवाले सुरराजको देखकर सुरभि खिन्न हो उठी। पर बारंबार अनुनय-विनय करनेपर ब्रह्माकी अनुमतिसे इन्द्रके साथ चल पड़ी। उस दिन कार्तिक शुक्ला एकादशी थी। पुण्य वृन्दावनकी भूमिपर

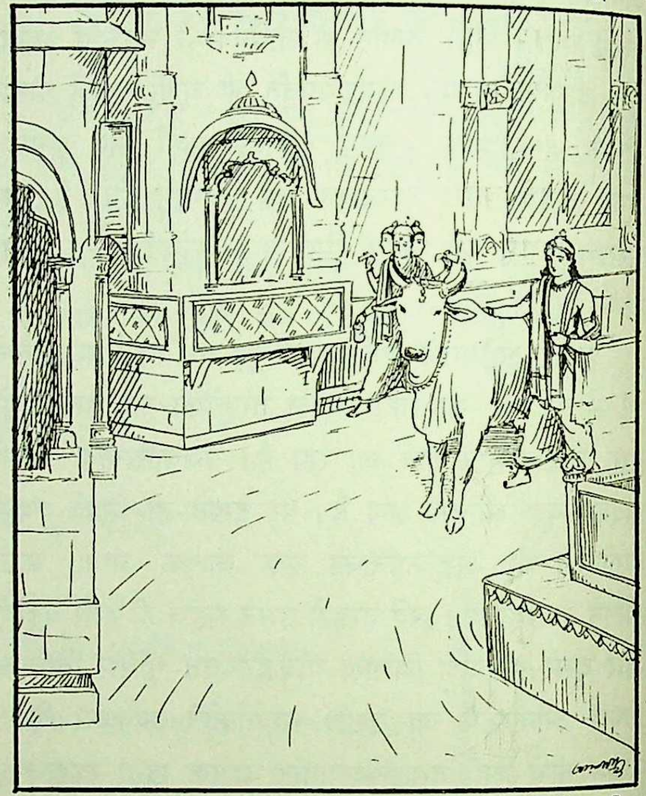

आकर इन्द्रको साथ लिये सुरभि उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगी।

व्रजराजनन्दन वनमें गाय चराने आये। पुरन्दरके अन्तर्हृदयकी व्याकुलता व्रजराजनन्दनके रसमय निर्मल हृदयमें प्रतिबिम्बित हो गयी थी। उन्हें एकान्त अवसर देनेके लिये ही उन्होंने आज अग्रजको साथ नहीं लिया, सखाओंको भी किसी प्रसङ्गसे अलग भेज दिया। एकाकी गोवर्द्धनकी रत्नशिलापर विराजमान हैं। सुरराज आकर चरणोंमें दण्डवत् गिर पड़े। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली, वाणीसे अपने-आप स्तुति निकल पड़ी। स्तुति करते-करते व्रजेन्द्रनन्दनके हस्तारविन्दका मधुरातिमधुर स्पर्श प्राप्त हुआ; देवराज निहाल हो गये, निर्भय हो गये। सुरभि अन्तरिक्षमें छिपी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख रही थी, ठीक उसी समय आ पहुँची। सुरभि प्रणाम करने जा रही थी; पर उसके पूर्व ही व्रजराजनन्दन अञ्जलि बाँधे हुए उठ खड़े हुए तथा बोले—'माँ! कैसे आयी?' सुरभि बोली—

एते मदन्वया धन्या गोत्वं त्वां सेवितुं गताः।
अहं तु नेदृक्पुण्या यद्गोचरत्वं च नागता॥

(श्रीगोपालचम्पू)

'व्रजराजनन्दन! ये मेरे वंशज धन्य हैं, जो तुम्हारी सेवाके लिये गौ बन गये। पर मैं ऐसी पुण्यवती नहीं थी, क्योंकि गौ होकर भी तुम्हारे नयनोंके सामने नहीं आयी।'

—कहते-कहते सुरभिके हृदयमें व्रजराजनन्दनका अनन्त असीम ऐश्वर्य जाग उठा, सुरभि स्तुति करने

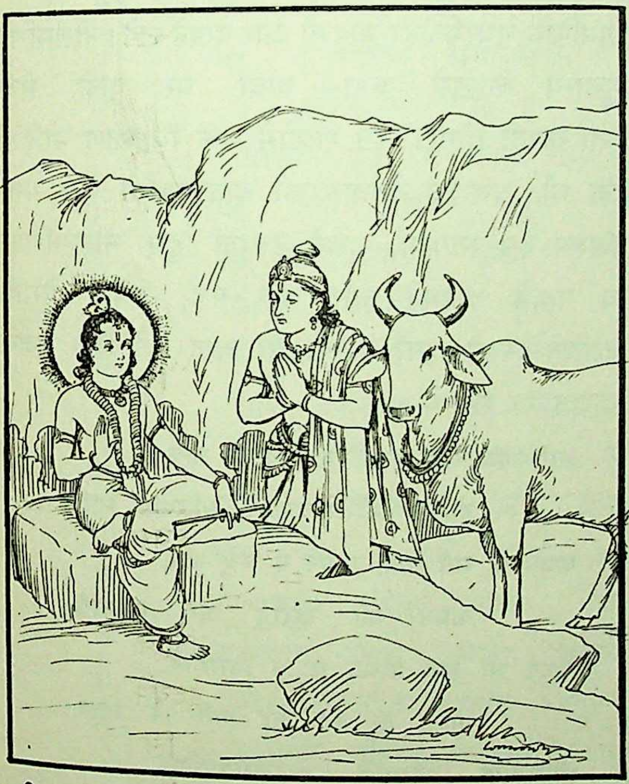

लगी—श्रीकृष्ण! इन्द्रके कोपसे हमलोग सचमुच नष्ट ही हो चले थे, पर तुम लोकनाथने हमारी रक्षा की। तुम्हीं हमारे परमदेव हो; आजसे तुम्हीं गोवंश, ब्राह्मण एवं देवोंके अभ्युदयके लिये हमारे इन्द्र बनो—

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत॥
त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः॥

(श्रीमद्भा० १०। २७। १९-२०)

उत्तरोत्तर भावसे आविष्ट होकर सुरभिने फिर कहा—'व्रजमहेन्द्रकुलचन्द्र! तुम्हारे चरणस्पर्शसे यहाँके तीर्थ सार्थक हो गये। तुम्हारे दुग्धपानसे यहाँकी गायें धन्य हो गयीं; पर स्वर्गीय गङ्गाका स्रोत एवं दूधसे भरे मेरे थन, दोनों व्यर्थ ही रहे। मेरे आराध्यदेव! उनकी सार्थकताके लिये ही मेरे मनमें स्वर्मन्दाकिनीकी धारासे एवं अपने थनकी दुग्धधारासे तुम्हारे अभिषेककी लालसा जाग उठी है; आज्ञा दे दो, हमारे इन्द्र!'

व्रजराजनन्दनके अधरोंपर एक पवित्र मनोहर मुसकान खेलने लगी; यह मुसकान ही संकेत था—**'यथेष्टमनुष्ठीयताम्'**, जैसी इच्छा हो वैसे करो। दूसरे ही क्षण देववाद्य बज उठे; गन्धर्व, अप्सरा, सुराङ्गनाएँ गान करती हुई नृत्य करने लगीं; ऋषि स्तोत्रपाठ करने लगे; ब्रह्मा-रुद्रकी जय-जय-ध्वनिसे आकाश प्रकम्पित होने लगा; एक ओर उत्फुल्ल ऐरावत स्वर्मन्दाकिनी-जलसे पूरित घट अनवरत अपनी सूँड़ोंमें उठा-उठाकर देवराजके हाथोंमें देने लगा; दूसरी ओर सुरभि अपने थनोंसे दूध बरसाने लगी; जलधारा एवं दुग्धधारा एक ही साथ झर-झर करती हुई व्रजराजनन्दनपर गिरने लगी, उनका अभिषेक होने लगा।

अभिषेकके अनन्तर व्रजराजनन्दन 'गोविन्द' नामसे अभिहित हुए। आकाशसे देवताओंने पुष्प-वृष्टि की। अन्तमें पुष्पाञ्जलिके रूपमें इन्द्र, ब्रह्मा आदिने छत्र, चामर, विविध अलंकार, लीलाकमल आदि समर्पण किये। व्रजराजनन्दनके मुखपर वही मुसकान थी। हाँ, उनके सखा दूरसे देख रहे थे, आश्चर्यमें भरकर सोच रहे थे—यह क्या कौतुक है!

इन्द्रादि देवताओंने परिक्रमा कर बिदा ली। सखा आये; देवार्पित छत्र, चामर, आभूषणोंसे खेलने लगे। परस्पर सबने शृंगार किया। संध्या होनेको आ रही थी; अतः सभी गायें बटोरकर घरकी ओर चल पड़े। श्रीदामा पूछ रहा था—दादा! वे चार मुख, पाँच मुख, सहस्र आँखोंवाले कौन थे ? व्रजराजनन्दन हँसते जा रहे थे।

आकाशमें नृत्य, वाद्य, गीत सुनकर नन्द-यशोदा आदि सभी चकित हो गये थे। नन्दरानीने व्रजराजको अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलमणिके पास भेजा; यशोदाके वात्सल्यपूर्ण हृदयमें क्षण-क्षणमें यह भय जाग उठता था—पता नहीं नीलमणिपर कोई विपत्ति तो नहीं आ रही है।

व्रजराजने आकर श्यामसुन्दरको हृदयसे लगा लिया। पूछा—बेटा! आज आकाशमें बाजे क्यों बज रहे थे, कोई नयी बात हुई क्या ? श्यामसुन्दर मुसकराकर चुप हो गये। नन्दरायने श्रीदामासे पूछा—'तू बता, बेटा! आज क्या हुआ है ?' पर श्रीदामाने कहा—'बाबा, मैं गायें बटोरने दूर चला गया था, फिर पीछे आकर देखा तो........।' बीचमें ही मधुमङ्गल बोल पड़ा—'व्रजराज! आज बड़ा कौतुक हुआ—

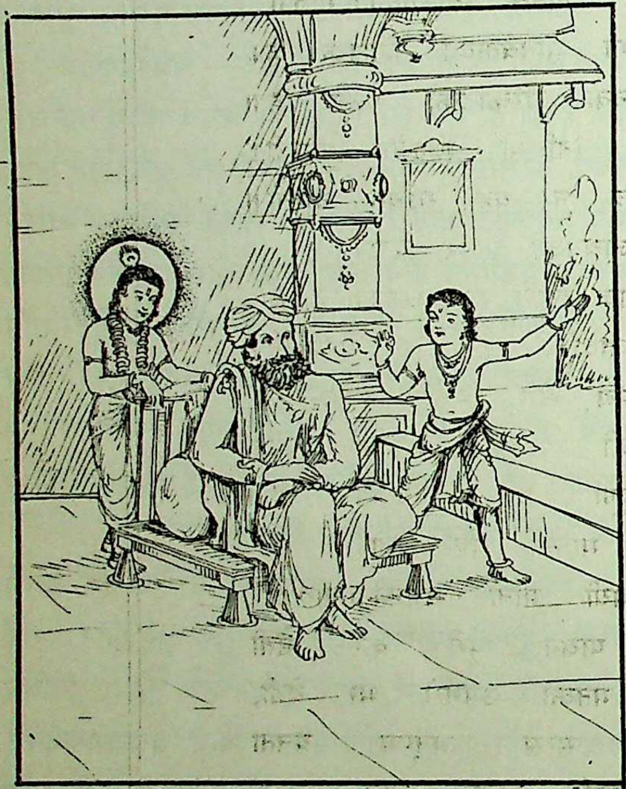

एक गाय आयी, मनुष्यकी तरह बहुत देरतक कन्हैयासे बात करती रही; एक हजार आँखोंवाला एक आदमी आया, उसने कन्हैयाको दण्डवत् प्रणाम किया; एक बहुत ही बड़ा उजला हाथी था, वह बार-बार घड़ोंमें जल भर-भरकर सूँड़से उसको दे रहा था; एक पाँच मुखोंका और एक चार मुखोंका—दो पुरुष और आये, वे कन्हैयाकी स्तुति गा रहे थे तथा सब मिलकर तुम्हारे नीलमणिपर जलकी धारा गिरा रहे थे—

> **गौरेका गिरमातनोदथ पुमानन्यः सहस्रेक्षणो-**
> **ऽनंसीत् कोऽपि करी सितः स्वरुदकान्याहृत्य शश्वद्ददौ।**
> **कौचित् पञ्चचतुर्मुखाङ्कवलितौ स्तोत्रप्रथाञ्चक्रतु-**
> **स्ते चान्ये च महामहेन सिषिचुर्गोपेश पुत्रं तव॥**

(श्रीगोपालचम्पू)

व्रजनरेश आश्चर्यमें डूबे हुए मधुमङ्गलकी बात सुन रहे हैं। मन-ही-मन सोच रहे हैं—मेरे नीलमणिपर मेरे कुलदेव नारायणकी अपार कृपा है; वे नारायण ही समय-समयपर मेरे लालमें आविष्ट हो जाते हैं, देवताओंने उन्हींकी अभ्यर्थना की होगी। सोचते हुए नन्दराय नीलमणिके मधुरमनोहर मुखकी ओर देखने लगे। नीलमणिने अमृतमय कण्ठसे कहा—'बाबा, घर चलो, मैया चिन्ता करती होगी।' इन शब्दोंमें एक विलक्षण मोहिनी शक्ति थी, व्रजराज देवताओंकी बात सर्वथा भूल गये। वात्सल्य-रस-सागरमें डूबते-उतराते हुए नीलमणिका हाथ पकड़े व्रजकी ओर चल पड़े; अपार गोराशि व्रजराजनन्दनको चारों ओरसे घेरे चल रही थी। व्रजके वन्दीजन गा रहे थे—

> **आगे गाय पाछे गाय, इत गाय उत गाय,**
> **गोबिंद कों गायन में बसिबोई भावै।**
> **गायन के संग धावै, गायन में सचु पावै,**
> **गायन की खुररेनु अंग लपटावै॥**
> **गायन सों ब्रज छायो, बैकुंठ बिसरायो,**
> **गायन के हेत कर गिरि लै उठावै।**
> **छीतस्वामी गिरधारी बिट्ठलेसबपुधारी**
> **ग्वारिया को भेस धरें गायन में आवै॥**

(क्रमशः)

भगवान्‌की खोज करना और राज्यपदकी इच्छा रखना—ये दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते; इनमें उतना ही विरोध है, जितना धूप और छायामें, आग और पानीमें। जो मनुष्य राज्यपद पाना चाहता है उसके लिये शान्तिकी इच्छा करना व्यर्थ है।—बुद्धदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौ मातृ-रूप, धरती-स्वरूप

(डॉ० श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल)

गौ मातृ-रूप, धरती-स्वरूप, यह दिव्य देवता भारतकी।
यह वेद-वन्दिता सदा रही, यह धुरी बनी जीवन-रथकी॥
इसके शरीरका रोम-रोम सूरजकी किरणों-सा द्योतित।
धौरी-श्यामल-अरुणाभ-पीत, अनगिन रंगोंसे आभासित॥
इसके सींगोंमें अतुल शक्ति, नयनोंमें प्रभुकी भक्ति भरी।
इसकी कायामें अमृत-कलश, चरणोंमें पावन धूलि भरी॥
यदि खोया गौरव पाना है, तो गौकी निधियोंको समझें।
हम नयी सृष्टि निर्माण करें, अपने अतीतके स्वागतकी॥ गौ०॥
यह चतुष्पाद पशु मात्र नहीं, गौ मानवताकी शिक्षक है।
यह है आचार्य अहिंसाकी, मौलिक संस्कृतिकी रक्षक है॥
गौ अपरिग्रह है मूर्तिमंत अपनी निधियाँ वितरित करती।
यह दानशील, अस्तेयमयी, कणमात्र न यह संचित करती॥
हम परिग्रहोंमें फँसे हुए, संग्रह जीवनका लक्ष्य बना।
दिग्भ्रान्त हुए हम भटक रहे, गति आज हमारी स्वयं थकी॥ गौ०॥
यह एक देवकी नहीं, सभी जीवोंकी है यह कामधेनु।
यह अदिति-तुल्य पूज्या सबकी, सब लेते इसकी चरण-रेणु॥
इसकी यशस्विनी सुता नन्दिनीकी दिलीपने सेवा की।
रघु-जैसे दिग्विजयी सुतने सम्पूर्ण धरित्री जीती थी॥
सारी वसुधाका दान किया, मृत्पात्र मात्रकी सम्पद् थी।
आशीषमयी, वरदानमयी, कल्याणमयी माता सबकी॥ गौ०॥
इसके मलकी गंध वायुको पावन पूरी कर देती
वह गंध विपुल ऊर्जा बनकर मनको उमंगसे भर देती,
गोमयके ईंधन-उष्मासे पक्वान्न सरस अनुपम बनता
तृणमात्र सूक्ष्म भोजन करती क्षीरोदधि अतुल उमड़ उठता,
माखन-मिश्रीका स्वाद विपुल गोकुलके गिरिधरसे पूछो।
दधिकी महिमा बतलायेगी बस मात यशोदाकी मटकी॥ गौ०॥
गौ द्वार-द्वारकी शोभा है, प्रत्येक गलीकी यात्री है
यह एक देशकी नहीं, वरन् वसुधा-कुटुम्बकी धात्री है,
गौके दोहनसे ही राजा पृथुने अकालपर जय पायी
धरतीके प्रथम कृषक बनकर जगमें फैलायी हरियायी,
हम सभी बनें शाकाहारी गोमाताकी है सीख यही।
गौ जन-जनकी गायत्री है, गौ वीणा है ऋषि नारदकी॥ गौ०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-तत्त्व

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

कामनासे युक्त होकर जो ईश्वरका भजन-चिन्तन किया जाता है, वह कामनाकी पूर्ति होने या न होनेपर ईश्वरसे विमुखता उत्पन्न करता है। जैसे बच्चा माँसे पैसा माँगता है, जबतक माँ पैसा नहीं देती, तबतक तो वह माँकी ओर देखता रहता है; किंतु पैसा मिलते ही माँसे विमुख होकर भाग जाता है। यही दशा सकाम साधककी होती है।

इसी प्रकार जो भक्ति भगवान्के गुण, प्रभाव और ऐश्वर्यको लेकर की जाती है, वह भी वास्तविक नहीं है। वह साधन-भक्ति है। प्रेम तो वह है, जो ईश्वरके साथ सम्बन्धसे होता है, जो उनको अपना माननेसे होता है। वे चाहे जैसे हों, मुझसे प्रेम करें या न करें, दयालु हों चाहे निष्ठुर हों, परंतु मेरे हैं—इस भावसे ही सच्चा प्रेम होता है। जैसे विवाहके पहले सगाई करते समय देखा जाता है कि लड़का कैसा है, परंतु जब सम्बन्ध हो जाता है, तब तो वह अपना हो जाता है, वह चाहे जैसा हो, सती स्त्रीका तो वही सर्वस्व है। उसने तो उसपर अपने-आपको निछावर कर दिया है। उसकी दृष्टि उसके गुण-दोषोंकी ओर नहीं जाती।

जो साधक भगवान्को अपना लेता है, उनसे प्रेम करना चाहता है, वह कैसा है—महान् दुराचारी है या सदाचारी, उच्च वर्णका है या नीच वर्णका—इसका भगवान् जरा भी विचार नहीं करते। जो उनको चाहता है, उनके साथ प्रेम करना चाहता है, वे उससे प्रेम करनेके लिये सदैव उत्सुक रहते हैं। साधक उनसे जितना प्रेम करता है, वे उससे कितना अधिक प्रेम करते हैं—इसका वाणीद्वारा कोई वर्णन नहीं कर सकता। भगवान्की इस महिमाको समझनेवाला साधक उनपर अपनेको न्योछावर कर देनेके सिवा और करेगा ही क्या!

यदि प्रेमकी इच्छा रहते हुए भी सचमुच प्रेम प्राप्त नहीं हुआ तो उसके न मिलनेकी गहरी वेदना होनी चाहिये। वह वेदना अवश्य ही प्रेम चाहनेवालेको प्रेमकी प्राप्ति करा देगी। यदि प्रेमकी चाह है परंतु उसके प्राप्त न होनेकी तीव्र वेदना नहीं है तो साधकको समझना चाहिये कि मेरे जीवनमें किसी-न-किसी प्रकारका अन्य रस है, जो मुझे प्रेमसे वञ्चित करनेवाला है। विचार करनेपर या तो किसी प्रकारके सद्‌गुणका या किसी प्रकारके सदाचारका रस दिखलायी देगा; क्योंकि प्रेम चाहनेवालेके मनमें भोगवासना और भोगोंका रस तो पहले ही मिट जाना चाहिये। जबतक भोगोंमें रस प्रतीत होता है, तबतक तो प्रेमकी सच्ची चाह ही नहीं होती।

भगवत्प्रेमका मूल्य सद्‌गुण या सदाचार नहीं है। अतः उस प्रेममें प्रत्येक मनुष्यका अधिकार है। पतित-से-पतित भी भगवान्का प्रेम प्राप्त कर सकता है; क्योंकि जिस प्रकार भक्तवत्सल होनेके नाते श्रीहरि अपने भक्तसे स्नेह करते हैं, वैसे ही वे पतितपावन प्रभु अधमोद्धारक और दीनबन्धु भी तो हैं ही। अतः दीन, हीन, पतितसे भी वे प्यार करते हैं। उसे भी वे अपने प्रेमका पात्र समझते हैं। वे मनुष्यसे किसी सौन्दर्य या गुणके कारण प्रेम नहीं करते; क्योंकि अनन्त दिव्य सौन्दर्य, अनन्त दिव्य सद्‌गुणोंके वे केन्द्र हैं। किसी ऐश्वर्यके कारण प्रभु प्रेम करते हों, ऐसी बात भी नहीं है; क्योंकि उनके समान ऐश्वर्य किसीके पास है ही नहीं, तो उनसे अधिक ऐश्वर्य हो ही कैसे सकता है। वे तो एकमात्र उसीसे प्रेम करते हैं, जो उनपर विश्वास करके यह मान लेता है कि मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं। बस, इसके अतिरिक्त भगवान् और कुछ नहीं चाहते, इसलिये प्रत्येक मनुष्य उनके प्रेमका अधिकारी है।

प्रेम प्रदान करना या न करना प्रभुके हाथकी बात है। वे जब चाहें, जिसको चाहें, अपना प्रेम प्रदान करें अथवा न करें, इसमें साधकके वशकी बात नहीं है; किंतु उनका प्रेम न मिलनेसे व्याकुलता और बेचैनी तो होनी ही चाहिये। छोटी-से-छोटी चाह पूरी न होनेसे मनुष्य दुःखी हो जाता है, व्याकुल हो जाता है। फिर जिसको भगवान्के प्रेमकी चाह है और प्रेम मिलता नहीं, वह चैनसे कैसे रह सकता है? उसकी वेदनाको किसी भी भोगका, सद्‌गुणका और सदाचारका अथवा सद्‌गतिका सुख भी कैसे शान्त कर सकता है?

अतः जिस साधकको गोपीभाव प्राप्त करना हो और उनकी लीलामें प्रवेश करके गोपी-प्रेमकी बात समझनी हो, उसे चाहिये कि देहभावसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण भोगोंकी वासनाका त्याग कर दे; क्योंकि जबतक देहभाव रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—ऐसा भाव होता है, तबतक गोपी-चरित्र सुनने और समझनेका अधिकार नहीं प्राप्त होता। फिर गोपी-प्रेम क्या है—यह तो कोई समझ ही कैसे सकता है।

जब भगवान् श्यामसुन्दरके प्रेमकी लालसा समस्त भोग-वासनाओंको समाप्त कर सबल हो जाती है, तब साधकका व्रजमें प्रवेश होता है। उसके पहले तो व्रजमें प्रवेश होना ही दुष्कर है। यह उस व्रजकी बात नहीं है, जहाँ लोग टिकट लेकर जाते हैं। यह तो वह व्रज है, जो प्रकृतिका कार्य नहीं, जहाँकी कोई भी वस्तु भौतिक नहीं और जिसका निर्माण दिव्य प्रेमकी धातुसे हुआ है। जहाँकी भूमि, ग्वाल-बाल, गोपियाँ, गायें और लता-पत्ता आदि सब-के-सब चिन्मय हैं। जहाँ जडता और भौतिक भावकी गन्ध भी नहीं है, उस व्रजमें प्रवेश हो जानेके बाद भी गोपीभावकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात है। दासभाव, सख्यभाव और वात्सल्यभावके बाद कहीं गोपी-भावकी उपलब्धि होती है। फिर साधारण मनुष्य उस गोपी-प्रेमकी बात कैसे समझ और कह सकते हैं।

जबतक देहभाव रहता है, तभीतक भोगवासना और अनेक प्रकारके दोष रहते हैं और तभीतक दोषोंका नाश करके चित्तशुद्धिके लिये साधन करना रहता है। चित्तका सर्वथा शुद्ध हो जाना और सब प्रकारसे असत्‌का संग छूट जाना ही सच्चा व्रजमें प्रवेश है।

अतः जिस साधकको गोपी-प्रेम प्राप्त करना हो, उसे चाहिये कि पहले मुक्तिके आनन्दतकका लोभ छोड़कर व्रजमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की कृपापर निर्भर होकर गोपी-भावको प्राप्त करे।

गोपालन—जीवनकी अनिवार्यता

(श्रीबलिरामजी महतो 'हरिचेरा')

जब बेचारेपनकी चर्चा होती है तो तुलना गायसे दी जाती है। जैसे—'वह तो गऊ है गऊ, वह बेचारी गाय है गाय।' इससे स्पष्ट है कि गायकी निरीहता युगोंसे जग-जाहिर है। गाय-जैसी सीधी-सादी शायद कुछ और है ही नहीं। सुतरां उदारतामें सर्वोच्च शिखरपर प्रतिष्ठित गाय ही है। गाय गाय ही नहीं, माता भी है—सर्वथा माँके सदृश दयालु, उपयोगी भी है। इसीलिये गायको गोमाता कहा गया है। गायने ही मनुष्यको सर्वप्रथम एक तरफ दूध-जैसा अमृत-तुल्य पेय प्रदान कर जीवन-दान दिया, तो दूसरी तरफ उसके बछड़ेने बड़ा होकर उसकी कृषिमें सहयोग दिया—हाथ बँटाया। इस तरह गायने ही मनुष्यको मनुष्य बनानेमें सर्वप्रथम सहयोग किया।

गायकी महिमासे भारतीय वाङ्मय भरा पड़ा है। किंतु विडम्बना है कि वर्तमानके तथाकथित आर्थिक विकास और वैज्ञानिक महत्त्वके युगमें गायपर महान् संकट छाया हुआ है। गाय और माय (माँ) की दशामें आज भी बहुत कुछ वही साम्य परिलक्षित होता है, जो अतीतमें था। अतीतमें माँ तीर्थके समान थी तो गाय भी उसी कोटिमें आती थी। मातृसेवासे लोग धन्य हो उठते थे तो गोसेवासे उससे भी कहीं अधिक कुछ पा जाते थे। जो जन्म देनेवाली माँसे भी प्राप्त न हो सका था, उसे गायने मनुष्यको प्रदान किया। सच तो यह कि गाय, माँ और जन्मभूमि—ये स्वर्गसे भी बढ़कर हैं। बात बस यहीं टिकती है कि हम अपनी सेवासे इन्हें हरी-भरी रखकर, प्रसन्न रखकर उनकी छाया—उनका आशीर्वाद पा सकें।

ब्रह्मके अवतार श्रीकृष्णने गोसेवा करके वृन्दावनको सुहावना बनाये रखा। दूध, दही और माखनके वे प्रेमी बने रहे। उनके गोचारण तथा गोप्रेमसे सभी परिचित हैं।

गोरस (गोदुग्ध) में वे सारे तत्त्व विद्यमान हैं, जो शरीरको पूर्ण स्वस्थ बनाये रख सकते हैं। अतः भोजनके साथ गोरसका सेवन अनिवार्य है, जो गोपालनसे ही सम्भव है। वही स्वस्थ, नीरोग और दैवी-सम्पदासे सम्पन्न रहनेका गुर (उपाय) है।

आध्यात्मिक महत्त्वकी दृष्टिसे गायका एक-एक लोम एक-एक तीर्थके समान है। अनेक तीर्थोंके पुण्यका फल एक गायकी सेवासे प्राप्त हो जाता है। गोसेवासे ही राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलीपको वंशकी प्राप्ति हुई थी। सच्ची श्रद्धासे गायकी सेवा करके हम आज भी बहुत कुछ दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति कर सकते हैं, गोसेवाके धर्मको अपनाकर तो देखें। सच तो यह है कि जिसके दरवाजेपर अन्यान्य पशु तो हों, पर गाय न हो, बैल न हो, वह मनुष्य हो सकता है, सच्चे अर्थमें हिन्दू वह नहीं है—अगर है तो अज्ञानी है। हिन्दू अपने धर्मका पालन करता है, तीर्थ-व्रत, दान-पुण्य करता है, परंतु अन्यान्य पशुओंका पालन-पोषण करते हुए भी यदि वह गायका पालन नहीं करता, तो उसका सब कुछ निष्क्रिय-सा ही समझना चाहिये। अत: गोपालन मनुष्यमात्रका तो धर्म है ही, हिन्दूका एकान्त धर्म है।

गोपालनका विशेष महत्त्व तब है, जब हम उसे आजीवन निभा सकें। ऐसा न हो कि कमजोर और बूढ़ी होनेपर उसे बेच डालें, अपने आश्रयसे दूर हटा दें। नहीं, जिस तरह हम अपनी बूढ़ी माँको आजीवन अपने सांनिध्यमें रखकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करते रहते हैं, वैसे ही उनकी भी करें। इससे उसकी आत्मा हमें आशीर्वाद देगी और हम फूल-फल सकेंगे। आज जो गायोंकी दुर्दशा है यानी उनकी स्वाभाविक मौत न होकर वे कसाइयोंके हाथ मरती हैं, उसमें हमारा भी हाथ है। यदि हम उनकी पहुँचसे उन्हें बाहर रख सकें तो ये उस दुर्दशासे निश्चय ही बच पायेंगी। अत: व्रत लें कि हम जिस भी गायका पालन-पोषण करेंगे, कमजोर और बूढ़ी होनेपर भी उसका जीवनभर अपने दरवाजेपर निर्वाह करेंगे, उसे कसाईके हाथसे बचायेंगे। गायसे मेरा तात्पर्य केवल गायमात्रसे नहीं, सम्पूर्ण गोजातिसे है—बैल और बछड़े आदि सभी इसके पर्याय हैं।

कुछ दशक पूर्वकी बात है। कृषक जब अपने सम्बन्धीके घर जाते थे तो पहला प्रसंग गोवंशको लेकर छिड़ता था। जैसे—एक पक्ष दूसरेके घरका हाल-चाल पूछता तो दूसरे पक्षका जवाब होता—'इस वर्ष अभी मेरे दरवाजेपर इतने बैल, इतनी गायें हैं, इतने बछिया-बाछी हैं, इत्यादि। गायोंके चारेकी व्यवस्था अमुक-अमुक साधनसे होती है।'

उपर्युक्त तथ्यसे स्पष्ट है कि पहले किसान बैल और गायको अपना समझकर आजीवन उसे अपने दरवाजेपर रखते और कमजोर अथवा बूढ़ी हो जानेपर भी उन्हें हरगिज न बेचते थे। ऐसा उनका स्वभाव-सा बन गया था। कदाचित् वे महसूस करते थे कि दूसरेके दरवाजेपर उन्हें या तो कष्ट होगा या नहीं तो वे कसाईके हाथ चली जायँगी। फलत: वे जिस गायका पालनकर दूध पीये होते, जवानीमें पाले होते, उन्हें बुढ़ापेमें बेचना वे गुनाह समझते थे। बैलोंके साथ भी यही बात थी।

इस आर्थिक युगमें कुछ लोग पैसेपर धर्मको बेचते नहीं हिचकते। इसीलिये जब वे महसूस कर लेते हैं कि जिस बूढ़ी गायसे भविष्यमें दूधकी आशा नहीं—बछड़े-बछियाकी आशा नहीं, उसे वे नाममात्रकी कीमत लेकर भी बेच डालते हैं। बैलोंके साथ भी यही इंसाफ देखा जाता है। लेकिन इससे वे भारी नुकसानमें पड़ते हैं, जो उन्हें दृष्टिगोचर नहीं होता। क्षणिक आर्थिक लाभका प्रायश्चित्त उन्हें उस मूक प्राणीके अभिशापसे उठाना ही पड़ता है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इससे उनकी आर्थिक दशापर कोई अच्छा असर पड़ता नजर नहीं आता। एक गरीब संतान भी अपने वृद्ध माता-पिताकी दवा-चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा करनेमें अपनी तरफसे कोई कोर-कसर नहीं रखती। फिर हम गोजातिका उपकार भूलकर उसकी लाचारीकी हालतमें उसका त्याग कर डालें—उसे नगण्य या भारी मूल्य लेकर बेच डालें, यह किसीकी आत्मा स्वीकार नहीं करती। वह मोहग्रस्त मायाग्रस्त होकर ही ऐसा कुछ करता है। इन सारी बातोंका ख्याल करके हम बुजदिलीको अपने हृदयसे हटायें और गोवंशके साथ सच्चा न्याय बरतें। गोवंशके आशीर्वादसे हमपर कोई आँच नहीं आ सकती। अत: यदि हम इस लोकमें सुख-शान्ति चाहते हों और परलोक भी सुधारनेका ख्याल रखते हों तो अविलम्ब गोपालनको इंसाफके साथ अपना लें। इससे एक साथ दोनों कार्य सधेंगे और सच तो यह कि मनुष्यमात्रका अभीष्ट भी यही है—

घरमें बच्चे, द्वारे गाय,
उसे देखकर सभी ललायँ।

अत: भूले-बिसरे अभी भी अपने भाग्यको पलटायें, सुखी और शान्त रहनेकी जीवन-पद्धति अपनायें। यथासाध्य अपने और अपनी भावी संतानोंकी सुख-समृद्धिके लिये गोपालन-धर्मको अवश्य अपनायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः जागरण

(डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

सम्पूर्ण सृष्टिमें मानव-जीवनसे श्रेष्ठ अन्य कोई जीवन नहीं है। शास्त्रोंमें मानव-जीवनकी विशेष महिमाका सोद्देश्य वर्णन किया गया है। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासका कथन है—

न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।

(महाभारत, शान्तिपर्व)

अर्थात् मानव-जीवनसे बढ़कर संसारमें कोई जीवन नहीं है। रामचरितमानसमें भी लिखा है—

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

और भी—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

जब मानव-जीवन इतना श्रेष्ठ एवं दुर्लभ माना गया है, तो इसे प्राप्त करनेका प्रयोजन एवं उद्देश्य भी कोई महान् ही होना चाहिये और वह प्रयोजन है अपनेको ऊँचे उठाते हुए भगवान्‌को प्राप्त कर लेना। यह शरीर क्षणिक एवं नाशवान् है, इसे प्राप्तकर समयके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करना चाहिये, कोई भी क्षण व्यर्थ न जाने पाये, इसके लिये विशेष सचेष्ट रहना चाहिये। सत्कर्मानुष्ठान तथा परोपकार आदि कार्योंके लिये मनके शुद्ध भावकी आवश्यकता तो है ही, साथ ही शरीर भी स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे। स्वस्थ और दीर्घायु बननेके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। वेद-वाक्योंमें भी मानव-जीवनको उन्नतिशील, स्वस्थ तथा दीर्घायु बनानेके सम्बन्धमें कहा गया है—

'शतं जीव शरदो वर्धमानः।' (अथर्ववेद ३। ११। ४)

सौ वर्षोंतक उन्नतिशील, समृद्धिपूर्ण जीवन जीओ।

और भी—

'स्वयं वर्धस्व तन्वं०।' (ऋग्वेद ७। ८। ५)

अर्थात् अपने शरीरको निरन्तर बलवान् बनाओ।

मानवका प्रकृतिके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्राकृतिक नियमोंके साथ समन्वय बनाये रखना मानवको आवश्यक है। स्वास्थ्यकी उत्तमताहेतु प्रातःकाल उठना सबसे पहला नियम है। विश्वमें जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब प्रातः-काल ही उठते रहे हैं।

सूर्योदयसे पूर्व उठनेकी और करावलोकन, भूमिवन्दना[१], मङ्गल-दर्शन[२], मातृ-पितृ तथा गुरु-वन्दन और प्रातः-स्मरणीय मङ्गल श्लोकोंके पाठ तथा शौच-स्नान आदि कार्योंसे निवृत्त होकर गायत्री आदिकी उपासना करनेकी भारतीय सनातन संस्कृतिकी सुदीर्घ परम्परा रही है। और इन सब कार्योंको नित्य-क्रियाओंका नाम दिया गया है। यदि सूर्योदयसे पूर्व उठकर ये आवश्यक कर्म न कर लिये गये तो फिर आगे उनके लिये अवकाश कहाँ? अतः प्रातः जागरणसे अपनेको स्वस्थ रखते हुए सत्कर्मोंको अवश्य ही करना चाहिये।

सूर्योदयके पहले चार घड़ीतक (लगभग डेढ़ घंटा पूर्व) 'ब्राह्ममुहूर्त' का समय माना जाता है। उस समय पूर्व दिशामें क्षितिजमें थोड़ी-थोड़ी लालिमा दिखायी देती है तथा दो-चार नक्षत्र भी आकाशमें दिखायी देते रहते हैं, इस समयको अमृत-वेला भी कहा जाता है, यही जागरणका उचित समय है।

प्रकृतिके नियमानुसार पशु, पक्षी आदि संसारके समस्त

१-शय्यासे उठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वीमाताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

अर्थात् 'समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली, पर्वतरूप स्तनोंसे मण्डित भगवान् विष्णुकी पत्नी पृथ्वी देवि! आप मेरे पादस्पर्शको क्षमा करें।

२-प्रातःकाल भूमिवन्दनाके अनन्तर गोरोचन, चन्दन, सुवर्ण, शंख, मृदंग, दर्पण तथा मणि आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शनकर गुरु, अग्नि और सूर्यादि देवोंको नमस्कार करना चाहिये—

रोचनं चन्दनं हेम मृदङ्गं दर्पणं मणिम्। गुरुमग्निं रविं पश्येन्नमस्येत् प्रातरेव हि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी प्रातः ही जगकर इस अमृत-वेलाके वास्तविक आनन्दका अनुभव करते हैं। ऐसी दशामें यदि विश्वका सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव आलस्यवश सोता हुआ प्रकृतिके इस अनमोल उपहारकी अवहेलना कर दे तो उसके लिये कितनी लज्जाकी बात है?

जो लोग सूर्योदयतक सोते रहते हैं, उनकी बुद्धि और इन्द्रियाँ मन्द पड़ जाती हैं। शरीरमें आलस्य भर जाता है तथा उनकी मुखकान्ति हीन हो जाती है। प्रातः विलम्बसे उठनेवाला मनुष्य सदा दरिद्री रहता है। देववाणीमें एक सूक्ति है—

'कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥'

जिनके शरीर और वस्त्र मैले रहते हैं, दाँतोंपर मैल जमा रहता है, बहुत अधिक भोजन करते हैं, सदा कठोर वचन बोलते हैं तथा जो सूर्यके उदय और अस्तके समय सोते हैं, वे महादरिद्री होते हैं। यहाँतक कि चाहे चक्रपाणि अर्थात् लक्ष्मीधर विष्णु भगवान् ही क्यों न हों, परंतु उनको भी लक्ष्मी छोड़ जाती हैं।

अतः सूर्योदयतक सोते रहनेकी हानिकारक आदत छोड़कर प्रातःजागरणका अभ्यास करना चाहिये। यदि हम दृढ़ संकल्प करें तो ऐसा कौन-सा कार्य है जो पूरा न हो सके।

भगवान् मनु अपनी मानवसंहितामें लिखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

(४। ९२)

अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म-अर्थका चिन्तन करे। प्रथम धर्मका चिन्तन करे यानी अपने मनमें ईश्वरका ध्यान करके यह निश्चय करे कि हमारे हाथसे दिनभर समस्त कार्य धर्मपूर्वक हों। अर्थके चिन्तनसे तात्पर्य यह है कि हम दिनभर उद्योग कर ईमानदारीके साथ धनोपार्जन करें, जिससे स्वयं सुखी रहें तथा परोपकार कर सकें। शरीरके कष्ट और उनके कारणोंका चिन्तन इसलिये करें कि जिससे स्वस्थ रहें, क्योंकि आरोग्यता ही सब धर्मोंका मूल है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

प्रातः उठते ही हाथोंके दर्शन शुभ माने गये हैं। 'आचारप्रदीप' में लिखा है—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

अर्थात् हाथोंके अग्रभागमें लक्ष्मी, मध्यमें सरस्वती और मूलभागमें ब्रह्माजी निवास करते हैं, अतः प्रातः उठते ही हाथोंका दर्शन करे।

वास्तवमें प्रातःकाल प्रकृतिमें एक अलौकिक रमणीयता आ जाती है, उसका आनन्द हमें तभी प्राप्त हो सकता है, जब हम प्रकृतिके साथ समन्वय करें। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः जागरणको ध्यानमें रखकर हम नित्य सूर्योदयसे पूर्व ही उठनेका नियम बना लें और अपने जीवनके प्रत्येक क्षणका उपयोग अच्छे कार्योंमें ही करें।

पर-निन्दा—कारण और निवारण

'पर-निन्दा हम क्यों करते हैं।'—यह प्रश्न क्या कभी हमने पूछा है अपने आपसे? अभी उस दिन एम्०ए० के एक विद्यार्थीसे यही प्रश्न पूछा गया तो वह बोला—इसके दो कारण हैं—'एक तो यह कि निन्दा करनेमें रसानुभूति होती है और दूसरे इससे दिलका गुबार निकल जाता है।'

इस रसानुभूतिका कारण?

वह है हमारे हृदयकी ओछी वृत्ति। एक बार महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयसे किसीने ऐसी ही चर्चा की तो वे कहने लगे—'भैया! तुमने क्यों याद कर रखा है यह प्रसंग? इससे न तो सम्बन्धित व्यक्तिका कोई लाभ है, न मेरा और न तुम्हारा!'

× × ×

निन्दामें हमें तभीतक रसानुभूति होती है, जबतक वह दूसरेकी होती है। यदि कहीं कोई हमारी ही निन्दा करने लगे, तब तो हमारी त्यौरी चढ़ जाती है। सही भी बात हो तो हम सफाई देने लग जाते हैं कि 'दोष और कमियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसमें नहीं होतीं? कौन है दूधका धोया?' पर यह पैमाना हम दूसरोंपर नहीं लगाते। अपनी आँखका ढेंढ़र हमें नहीं सूझता, किंतु दूसरेकी आँखका तिनका भी शहतीर-सा लगता है।

× × ×

दिलके गुबारकी बात तो प्रतिशोधकी बात है। पैरोंतले दबनेपर चींटी भी काटने लगती है। जब हम सामने जाकर किसीका विरोध नहीं कर पाते तो पीठ-पीछे उसकी निन्दा करके दिलका गुबार निकाल देते हैं। यह कोई अच्छी बात तो है नहीं।

× × ×

निन्दाके और भी कितने ही कारण हैं।

हमारा साथी, हमारा पड़ोसी, हमसे पीछे रहनेवाला या बराबरीका व्यक्ति यदि कभी हमसे आगे निकल जाता है—रुपये-पैसेमें, धन-सम्पत्तिमें, पद-प्रतिष्ठामें—तो तुरंत हमारे भीतर आग सुलगने लगती है ईर्ष्याकी और उससे निकल पड़ती हैं निन्दाकी लपटें। हम उसे अपनेसे छोटा सिद्ध करनेके लिये तरह-तरहकी बातें कह उठते हैं। निन्दाका, झूठका अम्बार लगा देते हैं हम।

अपनी प्रशंसा किसे अच्छी नहीं लगती! मनुष्य अपने हाथ अपनी पीठ ठोंकनेमें भी पीछे नहीं रहता। उसमें सापेक्षता जुड़ते ही दूसरोंकी निन्दा चालू हो जाती है।

विद्यार्थी जिस प्रकार अपने सहपाठीको अच्छे नम्बर पाते देख कह उठते हैं कि 'उसने नकल की है और परीक्षकके पास 'सोर्स' (सिफारिश) पहुँचाया है।' उसी प्रकार हम भी दूसरोंको बढ़ते देख ऐसे ही कुछ बहाने निकाल लेते हैं। उनकी उन्नतिमें धूर्तता, बेईमानी, पक्षपात आदि खोज निकालते हैं।

हमारे स्वार्थमें बाधा पड़ती है, हमारी उन्नतिमें अवरोध आता है, दुनियां हमारी इच्छाके अनुकूल नहीं चलती तो बस, हम सारा दोष दूसरोंके मत्थे मढ़ने लगते हैं। हमारी महत्त्वाकांक्षा पूरी नहीं हो पाती, हमारा विरोधी सफल हो जाता है, बस हम उसकी निन्दा चालू कर देते हैं।

हमारी मित्रमण्डलीमें वार्ता चल पड़ती है—मकान-दुकानकी, धनकी, पास-पड़ोसकी, बस निन्दाका चक्र चालू हो जाता है। उसमें हमें भी रस आता है और दूसरोंको भी।

कभी-कभी शुद्ध विनोदके साथ भी निन्दा जुड़ जाती है और फिर वह आगे बढ़ती चली जाती है सहज-ही-सहज।

× × ×

ऐसे एक नहीं, अनेक कारण हैं निन्दाके।

और उसकी प्रतिक्रिया?

निन्दासे तात्कालिक लाभ कुछ लोगोंको दीख सकता है, पर वास्तवमें वह लाभ नहीं होता।

निन्दाका प्रभाव दो-चार दिन, दो-चार सप्ताह ही नहीं, बरसोंतक टिकता है। कभी-कभी तो दस-बीस, पचीस-पचास बरसोंतक।

अमेरिकाके एक लोकप्रिय लेखक डेल कार्नेगीने 'एक बार रिचर्ड हार्डिंग डेविस नामक प्रसिद्ध लेखकसे पत्रद्वारा लेखन-सम्बन्धी कुछ बातें पूछीं। वह लेखकोंके विषयमें एक लेख लिखना चाहता था। उसने पत्रके अन्तमें लिखा—'बोलकर लिखाया, स्वयं पढ़ा नहीं।'

हुआ यह था कि कार्नेगीको किसी बड़े लेखकने अपने उत्तरके अन्तमें इसी तरह लिखा था, यह बात कार्नेगीको बड़ी प्रभावमयी जान पड़ी। 'यह बड़प्पनकी, कार्य-व्यस्तताकी निशानी है, तो मैं भी क्यों न इसका उपयोग करूँ?'

छोटा-सा पत्र। उसमें अन्तमें उसने अपने बड़प्पनकी धाक बैठानेको लिख दिया—'बोलकर लिखाया, स्वयं पढ़ा नहीं?'

डेविसने कार्नेगीके पत्रका उत्तर तो नहीं दिया, उसी पत्रको लौटा दिया यह लिखकर कि 'तुम्हारी अशिष्टतापर अशिष्टता बढ़ती ही चली जाती है।'

कार्नेगी लिखता है कि "उनका यह लिखना ठीक था, उचित था, पर मैं जल उठा। दस वर्ष बाद जब मैंने डेविसके देहान्तका समाचार पढ़ा तो मुझे यह कहते शर्म आती है कि मेरे मुँहसे निकल पड़ा—'अच्छा हुआ, मर गया।' कैसा ताना मारा था उसने मुझे!"

गलती होते हुए भी मनुष्य बरसों ऐसी बातें याद रखता है, तभी तो कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातका ज़ख्म है तलवारके ज़ख्मोंसे सिवा,

कीजिये क़त्ल पै मुँहसे कोई ईर्शाद न हो!

× × ×

सभी धर्मोंमें निन्दाकी निन्दा की गयी है, पर आज कौन ध्यान देता है धर्मकी बातोंपर? कहता रहे धर्म कि *'निन्दा करे न केनी रे'* (मत कर किसीकी निन्दा), पर हम माननेवाले हैं?

साधककी, आत्मोन्नति चाहनेवालेकी सारी प्रगति ठप हो जाती है निन्दासे। व्यावहारिक जगत्‌में निन्दासे बड़ी हानि होती है, पर हम निन्दाकी आदत पाले बैठे हैं और रात-दिन उसका कुपरिणाम भोगते हैं।

× × ×

निन्दासे मुक्त होनेका कोई उपाय भी है?

है क्यों नहीं? पर कोई उससे मुक्त होना चाहे भी तो!

उपाय तो कई हैं, पर सभी उपाय चाहते हैं—कठोर प्रयत्न, दृढ़ संकल्प और सतत जागरूकता।

१-आत्मनिरीक्षण—दूसरोंकी बुराइयाँ ढूँढ़नेकी अपेक्षा हम अपनी बुराइयाँ खोजें—अपने दोष देखें। राई-से दोषको पर्वत मानकर उसे मिटानेका प्रयत्न करें—

पराये दोष क्या देखूँ, कमी क्या मुझमें दोषोंकी।

आत्मनिरीक्षणसे पता चलेगा कि मनुष्य कब-कब और कैसे-कैसे परनिन्दा करता रहता है तथा अपने दोषोंपर पर्दा डाले रहता है। तब उसकी वृत्ति बदलेगी। स्मरण रखना चाहिये—

तेरे भावें जो करै भलौ बुरौ संसार।
'नारायण' तू बैठिके अपनो भवन बुहार॥

हम अपना मकान साफ करने लगें तो फिर हमें निन्दा करनेका अवकाश ही नहीं मिलेगा।

२-श्रम-निष्ठा—अपनेको रात-दिन श्रमके काममें, ठोस काममें रचनात्मक काममें लगाये रखना निन्दासे मुक्ति पानेका एक अच्छा उपाय है। *'खाली दिमाग शैतानका कारखाना।'* फालतू समयमें ही निन्दा आदिकी खुराफात पनपती है।

३-वाणीपर नियन्त्रण—मन लाख फड़फड़ाये, किंतु मुँहसे निन्दाके शब्द निकलने ही न देना। ज़बान बेलगाम हो तो एकदम चुप हो जाना, शान्त हो जाना, मौन हो जाना।

४-आँखोंपर नियन्त्रण—देखकर और पढ़कर भी मनुष्य निन्दामें प्रवृत्त होता है। इसलिये वाचन भी उत्तम हो और दृश्य भी उत्तम हो। आँखोंके रास्ते पराये दोष भीतर न जाने पायें। निन्दापरक साहित्य, लेख, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़नी ही न चाहिये। कोई चीज सामने आ ही जाय तो आँखें बंद कर लें।

५-श्रवणपर नियन्त्रण—कान भी पापको भीतर ले जाया करते हैं। जो आदमी *'पर अघ सुनइ सहस दस काना॥'*, वह निन्दा करेगा ही। कान हैं प्रभुकी चर्चा सुननेके लिये। पर-दोष-चर्चा सुननेके लिये नहीं। कानोंमें ऐसी चीजके पड़नेकी आशंका होते ही वे उँगली लगाकर बंद किये जा सकते हैं। एक साधक तो ऐसे मौकेपर दूर भाग जाते थे, नहीं तो कान बंद कर लेते थे।

लव बिबंदो चश्म बंदो गोश बंद।

मुँह बंद रखो। आँख बंद रखो। कान बंद रखो।

गाँधीजीके तीन बंदर यही तो सिखाते रहे, पर हम सीखें भी तो। विनोबाजीने कहा कि 'हम तो ऐसी शिकायतें डी०एल०ओ०—डेड लेटर आफिस—अपने मनके मुर्दा-घरमें भेज देते हैं, पर जाते-जाते भी ये अपने गंदे संस्कार तो छोड़ ही जाते हैं। फिर भी ऐसी बातोंपर कोई भी ध्यान न देना निन्दासे बचनेकी अच्छी तरकीब है।'

६-गुण-दर्शन—हर व्यक्तिमें वह चाहे जैसा बुरे-से-बुरा और नीच-से-नीच क्यों न हो—कुछ-न-कुछ गुण होते ही हैं। उन्हें खोजकर उनकी प्रशंसा करनेकी आदत डालें। यह दोष-दर्शन रोकनेकी रामबाण दवा है।

७-रोना—श्रीरामकृष्ण परमहंसका नुसखा। माँसे रो-रोकर प्रार्थना करना—'माँ! मुझे पवित्र बना, विकारमुक्त बना, निर्विकार बना।

माता! भव्य भावना भर दे।
× × × ईर्षा-द्वेष हृदयसे हर दे॥

रो-रोकर हृदयको निर्मल बनाना पर-दोष-दर्शनसे बचनेका अत्युत्तम उपाय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौकी महत्ता आजके वैज्ञानिक परिवेशमें

(श्रीरघुनन्दनप्रसादजी शर्मा)

गौ हमारे देश, धर्म और संस्कृतिके मान-सम्मान, ज्ञान और विज्ञानकी सदासे ही अधिष्ठात्री रही है। वैदिक ऋषियोंसे लेकर स्वातन्त्र्योत्तर-कालतकके प्राणिसमाजपर अमित उपकार करनेके कारण उसे 'अवध्या' बताया गया है। भारतीय जन-जीवनमें गौको इहलोकसे त्राण दिलाकर परलोकमें शान्ति दिलानेका माध्यम मानकर सदा ही उसे वन्दनीय और पूजनीय माना गया है।

गौकी पूजाका विधान एवं उसकी पद्धति प्राय: सम्पूर्ण देशमें समान-रूपसे व्याप्त है। सुदूर दक्षिणमें 'मट्ट पोंगल' अर्थात् 'गायका पोंगल'-उत्सव मनाया जाता है, तो उत्तरमें दीपावलीके अगले दिन गोवर्धनकी पूजा होती है। गोपालकी जन्मभूमिमें गोपाष्टमीका बड़ा महत्त्व है तो अन्य स्थानोंपर वत्स-द्वादशीको गोवत्स-पूजन बड़े हर्षोल्लाससे किया जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि भारतीय जनजीवनके हर क्षेत्रमें चाहे वह कृषिका हो या व्यापारका, धर्मका हो या संस्कृतिका, समाजका हो या साहित्यका, ज्ञानका हो या विज्ञानका और समय चाहे जन्मका हो या यज्ञोपवीतका अथवा विवाहका हो या मृत्युका तथा काल चाहे पुरातन हो या अर्वाचीन, गाय हमारे लिये सदा पावन, पूज्य और पवित्र रही है। हमारी श्रद्धाका प्रतीक होनेका इससे अधिक और क्या तथ्य होगा कि हमारे यहाँ गायके शरीरका कोई भी अङ्ग ऐसा नहीं छोड़ा गया है, जिसमें किसी-न-किसी देवताका वास न माना गया हो। इसीलिये गायके दर्शनको सदा ही बड़ा प्रिय और शुभ माना गया है। गायको हमारी सम्पूर्ण मन:कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा व्यक्ति, परिवार और राष्ट्रके विकासकी धुरी माना जाता है। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि गायका महत्त्व हमारे देशमें धर्म-संस्कृति आदि क्षेत्रोंमें तो निर्विवाद रूपसे सर्वोच्च रहा ही है, आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे भी वह विशेष उपयोगी है।

सामान्यत: विज्ञानके दो रूप हैं, एक निर्माणका और दूसरा विध्वंसका। हमारे यहाँ प्राणिजगत्के उत्थान और विकासकी हर दशा और हर दिशामें सदा निर्माणके पक्षको ही महत्त्व दिया गया है, क्योंकि हमारी संस्कृतिका मूलाधार ही निर्माणपर आधारित है, विध्वंसपर नहीं। अत: वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यमें गायका महत्त्व आँकते समय भी हमारा लक्ष्य निर्माण ही है। गायके प्रसाद-रूपमें हमें उससे मिलता है दुग्ध, मूत्र, गोबर, बछड़ा, बछड़ी, खाद और ऊर्जाका अखण्ड स्रोत। यहाँ संक्षेपमें कुछ विवेचन किया जा रहा है—

गोदुग्ध—गो-दुग्धको हमारे यहाँ अमृत कहा गया है। आयुर्वेदमें उसे मनुष्यके लिये माँके दूधके पश्चात् सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पदार्थ माना गया है। वह केवल मनुष्यके जन्म लेनेके बादसे उसमें बल, बुद्धि और आयुको पुष्ट करनेवाला ही नहीं बल्कि जन्मके पूर्वसे ही गर्भावस्थामें शिशुको पुष्ट करनेवाला मुख्य रसायन भी है। गायका दूध मनुष्यके मन, मस्तिष्क और शरीरकी शक्तिको तो बढ़ाता ही है, उसे आरोग्य बनाकर उसमें नवस्फूर्ति और नव चैतन्यका संचार भी कर देता है।

प्राचीन कालके भारतीय मनीषियोंने जिन आधारोंपर गायके दूधके महत्त्वकी स्थापना करके उससे निर्मित दही, मट्ठा, मक्खन और घीको मानव-जातिके लिये वरदान माना था, उन्हें छोड़कर आजके वैज्ञानिकोंद्वारा गोदुग्धका विश्लेषण करके जो तथ्य सामने रखे गये हैं वे भी कोई कम चौंकानेवाले नहीं हैं। आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने विश्लेषणके आधारपर गोदुग्धको मानव-शरीरके लिये सम्पूर्ण भोजन माना है। उनके विचारमें यह जल और ठोस पदार्थोंका एक ऐसा विचित्र मिश्रण (घोल) है, जिसके अंदर मनुष्यके शरीरकी हर आवश्यकताको पूर्ण कर देनेकी क्षमता है। आजके वैज्ञानिकोंका मानना है कि गोदुग्धमें ८७ प्रतिशत जल और १३ प्रतिशत ठोस पदार्थकी मात्रा रहती है। इस १३ प्रतिशत ठोस पदार्थकी मात्राका विश्लेषण करते हुए उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि इसमें ४.९ प्रतिशत शर्करा है जिसमें दुग्ध शर्करा और ग्लूकोस मिला हुआ है, ३.७ प्रतिशत घृत है जिसमें ओलिक, पामिटिक आदि ११ एसिड हैं, ३.६ प्रतिशत प्रोटीन आदि है जिसमें ल्युसन, ग्लूकेटिक एसिड, टिरोसिन, अमोनिया, फास्फोरस आदि २१ वस्तुएँ मिली हुई हैं और ०.७५ प्रतिशत क्षारोंमें पोटेशियम, सोडियम आदि १७ क्षार हैं। इनके साथ-साथ पाचक रसोंमें डायस्टेज, लेक्टेज आदि ९ एन्जाइम, विटामिनोंमें ए, ए१ तथा अनेक प्रकारके बी तथा डी और ई एवं लेक्टोक्रोम, क्रियेटिन, यूरिया, कोलिन, फास्फेट और केसीनका मिश्रण आदि १०० से अधिक पदार्थ हैं। पदार्थोंका यह विश्लेषण क्या एक चमत्कारसे कम है? क्या इतने अधिक तत्त्व किसी अन्य प्राकृतिक एक ही खाद्य पदार्थमें एकत्र सुलभ हैं?

आयुर्वेदके विद्वानोंने गायके दूधसे मानव-शरीरके लगभग सभी रोगोंका उपचार करनेके लिये कई प्रकारकी विधियोंकी खोज की है। कुशल वैद्योंद्वारा गोदुग्धसे मानव-शरीरके कल्प (नया स्वास्थ्य) करानेकी विधिसे शरीरके सभी अङ्गोंको पुष्ट करने और उनके रोगोंको नष्ट करनेका विधान किया जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखनेमें आया है कि कल्पके पश्चात् अनेक व्यक्तियोंको नया जीवन प्राप्त होता रहा है।

दूधसे बने अन्य पदार्थ—यह तो स्वाभाविक है कि मानवके लिये दूध-जैसे उपयोगी और महत्त्वपूर्ण पदार्थसे निर्मित अन्य पदार्थ भी उसके लिये उसीके समान उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होंगे। दूधसे दही बनता है, दहीसे मट्ठा और मक्खन निकलता है और मक्खनसे घी तैयार होता है। दूधकी तरह दही भी मानवके लिये सुपाच्य तो है ही, साथ ही बलवर्धक और वायुनाशक भी होता है। दहीसे निकला मट्ठा तो मानव-शरीरके लिये रामबाण औषधि है। यह अस्वस्थताके मूल वात, कफ और पित्त—इन तीनों ही कारणोंका शामक होनेके कारण अनेक रोगोंका इलाज स्वयं ही है। आयुर्वेदमें मट्ठेके आधारपर भी मानव-शरीरके लिये कल्प करानेका विधान है। गायका मक्खन और घी नेत्रोंकी ज्योतिको बढ़ानेवाला, शरीरको पुष्ट करनेवाला और शक्तिवर्धक है। गायके घीसे यज्ञ करनेपर वायुमण्डलमें एटामिक रेडिएशनका प्रभाव क्षीण हो जाता है। यही नहीं, यह घी एन्टीसेफिटिक भी होता है। चोट लगनेपर, दर्द होनेपर और घाव हो जानेकी स्थितिमें इसका प्रयोग करनेपर रोगका शमन हो जाता है।

गोमूत्र—गोमूत्रमें मानव-शरीरके अनेक रोगोंका नाश करनेवाले तत्त्व मौजूद हैं। गोमूत्रके नियमित विधिपूर्वक सेवनसे पेटके अनेक रोगोंका स्वत: उपचार हो जाता है। किसी भी बालक, प्रौढ, वृद्ध, नर-नारीकी जिगर और तिल्ली बढ़ जानेकी स्थितिमें अथवा उसके मधुमेहका रोगी हो जानेपर गोमूत्रसे बड़ा लाभ होता है। दूधको गाढ़ा करके जिस प्रकार मावा तैयार किया जाता है, वैसे ही गोमूत्रको गाढ़ा करके उससे गोलियाँ बनायी जाती हैं। उन गोलियोंके नियमित सेवनसे अनेक लोगोंको न केवल मधुमेह, बल्कि पेटके अनेक रोगोंमें लाभ हुआ है।

गोबर—जीवकी ८४ लाख योनियाँ मानी गयी हैं। इनमेंसे केवल गाय ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जिसके मलको मल नहीं वरन् मलशोधक माना जाता है। इससे किसीको घृणा नहीं होती। इसे त्याज्यकी नहीं वरन् संग्रहकी वस्तु माना जाता है। गोबर बड़ा गुणकारी और उपयोगी है। गोबर-स्नान अर्थात् शरीरपर गोबर मलकर स्नान करनेसे दाद, खुजली-जैसे त्वचा-रोगोंसे मुक्ति मिल जाती है। देखनेमें आया है कि नियमित रूपसे गोबरका काम करनेवालोंके हाथों और पैरोंमें खुजली, दाद, एग्जीमा-जैसे रोग कभी नहीं होते। आजके वैज्ञानिक युगमें विज्ञानके मानवोपयोगी कार्योंके लिये ही नहीं, उसके दुष्प्रयोगसे उपजी विनाशकारी शक्तियोंके प्रतिरोधके लिये भी यह परम उपयोगी है।

गोबरके अन्य उपयोग—गायके गोबरसे बने उपलोंके धुएँसे मच्छर मर जाते हैं। उपलोंकी राखसे विभिन्न प्रकारके कीड़ों-मकोड़ोंका नाश हो जाता है। वातावरणमें व्याप्त दुर्गन्धको भी दूर करनेमें यह राख बड़ी उपयोगी रहती है। गोबरसे लिपी दीवारों, घरों, फर्शों और अन्य स्थानोंपर मच्छर-मक्खी नहीं आते। आजके वैज्ञानिकोंका कहना है कि जिन घरोंको गायके गोबरसे लीपा जाता है, उन घरोंमें रेडियो-विकीरणका प्रभाव नहीं होता है। इसीलिये हमारे यहाँ यज्ञभूमि और अन्य पवित्र स्थानोंको गायके गोबरसे लीपनेकी व्यवस्था की गयी थी।

भूमिकी उर्वराशक्तिको बढ़ानेमें भी गोमूत्र और गोबर बड़े सहयोगी हैं। प्रतिदिन हजारों-हजारों गायोंके कटनेपर भी ११ करोड़से अधिक गोवंश आज भी हमारे यहाँ हैं। उनका पालन-पोषण आश्रमों, परिवारोंमें ही नहीं अनेक गोशालाओंमें भी होता है। देशमें अनुमानित रूपमें ३ हजार गोशालाएँ हैं। यदि ये सभी गोशालाएँ अपने यहाँ सुलभ गोवंशसे प्राप्त गोमूत्र और गोबरका पूरा उपयोग करने लग जायँ तो उससे देशकी लगभग आधी आबादीके लिये आवश्यक गैस, ढाई करोड़ टन फास्फेटयुक्त खाद और कीट-नाशक दवाइयोंका विकल्प मिल सकता है।

वाराणसीकी 'रामेश्वर गोशाला' के पशुधनके मूत्र और गोबरसे भूमिमें हुए ३०-३० फुट गहरे गड्ढोंको तथा कंकर-पत्थरोंके ढेरोंको पाटनेका कार्य किया गया था। फलस्वरूप नवम्बर, १९८६ से नवम्बर, १९९३ की अवधिमें वहाँ ९ से ११ प्रतिशत क्षारीय ऊसर सुधरा और १०० बीघा उपयोगी भूमि तैयार हुई, जिसमें ६७.५४० क्विंटल हरा चारा पैदा हुआ। वृक्षावली लगी, जिससे पर्यावरणमें सुधार हुआ। फल-फूलोत्पादन भी बढ़ा। वर्षमें तीन फसलें ली जाने लगीं। गोबरकी खादके कारण फसलोंमें कीटनाशक दवाइयोंके छिड़कनेकी आवश्यकता भी नहीं होती। इस प्रकारके कई उदाहरण अलग-अलग क्षेत्रोंमें दिये जा सकते हैं, जहाँ गोमूत्र और गोबरके उपयोगसे स्थितिमें आश्चर्यजनक अन्तर आया है।

आजके वैज्ञानिक युगमें गोबर मात्र कृषि और घरेलू उपयोगकी ही वस्तु नहीं रह गयी है, वह एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये भी उपयोगी बन गयी है। वह कार्य है, 'गोबर-गैस'का उत्पादन। आज इसे तैयार करनेके यन्त्र अनेक स्थानोंपर लग चुके हैं। और दिन-पर-दिन उनका प्रचार एवं प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। गोबर-गैसके कारण गाँवोंमें भी खाना पकानेके लिये गैसके चूल्हे, घर और बाहर रोशनीके लिये बिजलीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्ब और ट्यूबें तथा पंखे आदिका प्रयोग शुरू हो चुका है। गोबर-गैससे बड़ी मात्रामें ईंधनकी बचत हो रही है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि देशमें उपलब्ध गोबरसे इतनी गोबर-गैस तैयार हो सकती है, जिससे २० करोड़से अधिककी आबादीके लिये ईंधनके प्रश्नको सहजमें ही हल किया जा सकता है। एक गायके गोबरसे एक लीटर मिट्टीके तेलके बराबर गैस मिलती है।

एक गाय प्रतिदिन लगभग दस किलोके हिसाबसे एक वर्षमें ३६५० किलो गोबर देती है। इससे १७८८५ रुपये मूल्यकी कम्पोस्ट खाद तैयार हो सकती है। इस खादमें ८०० किलो नाइट्रोजन, ५६० किलो फास्फोरस, १०४० किलो रोटेशियम और ७७,६०० किलो न्यूटियन्ट होता है।

बछड़े-बछड़ी—आजका बछड़ा कलका बैल और आजकी बछिया कलकी गाय होती है। वे घास-फूस खाकर उस मनुष्यकी तुलनामें, जो कहीं अधिक महँगे पदार्थ खाता है, अधिक शक्ति और ऊर्जा पैदा करते हैं। सामान्यत: बैलमें मनुष्यसे कहीं अधिक मात्रामें भार वहन करनेकी सामर्थ्य होती है; क्योंकि उसमें मनुष्यकी तुलनामें दुगुनी शक्ति होती है। आजकल शक्तिकी नापका पैमाना अश्वशक्ति (हार्सपावर) को माना जाता है। इस दृष्टिसे वैज्ञानिकोंका कहना है कि मनुष्यकी १.८ हार्सपावर शक्तिकी तुलनामें बैलोंमें ३.४ हार्सपावर शक्ति होती है, बैल मानव-जातिके लिये गायके समान ही महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। इसके संसर्गसे गाय अपनी सृष्टि-रचनाके क्रमको आगे बढ़ानेमें समर्थ हो जाती है। यह गोवंशका प्रजननकर्ता तो है ही, साथ ही खेतमें हल चलाकर खेती तथा मानवोपयोगी अन्य कार्योंके लिये कुएँसे रहँटके माध्यमसे जल निकालकर, पकी हुई कटी खेतीसे दाना और भूसा अलग करनेके लिये दाँय देकर, खादके लिये मूत्र और मल देकर, कृषिजन्य सामग्रीको खेतसे निकटवर्ती मण्डियोंतक ले जाकर, सवारियों तथा सामानको एक स्थानसे ढोकर दूसरे स्थानपर ले जाकर मानवके लिये अनेक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य करता है।

यह ठीक है कि आज मालकी ढुलाई रेलगाड़ी तथा ट्रकोंके माध्यमसे काफी—बड़े परिमाणमें हो रही है, लेकिन फिर भी देशकी कुल माल-वहन-क्षमताका दो तिहाई भाग बैलगाड़ियोंद्वारा ही ढोया जाता है। रेलों और सड़क-परिवहनके देशभरमें बिछे विशाल जालके होते हुए भी वे आज मात्र एक तिहाई भाग ही उठा पाते हैं।

कृषिके आधुनिकीकरणके नामपर यद्यपि हमारे यहाँ भी विदेशोंकी नकलपर खेतीके लिये ट्रैक्टरोंको प्रोत्साहन दिया जाता है, फिर भी भारतमें ९५ प्रतिशत खेती आज भी बैलोंके माध्यमसे होती है। मात्र पाँच प्रतिशत खेती ही ट्रैक्टरोंसे की जाती है। एक अनुमानसे इस समय हमारे देशमें लगभग एक लाख ट्रैक्टर हैं, जिनका उपयोग कृषि-कार्योंमें किया जाता है। इस अनुमानसे यदि पूरा कृषि-कार्य ट्रैक्टरोंसे किया जाने लगे तो इसके लिये दो करोड़ ट्रैक्टर चाहिये। उस स्थितिमें उनके संचालनके लिये हमें सात खरब रुपयेके डीजलकी आवश्यकता होगी, जबकि आजकल पेट्रोलियम पदार्थोंका कुल आयात-व्यय लगभग दो खरब रुपये है। यही नहीं ट्रैक्टरोंके चलनेसे हमारे बैल और कृषि-कार्यमें लगे मजदूर बेकार होते जा रहे हैं। फलस्वरूप सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट बैल या तो तस्करीके माध्यमसे पाकिस्तान और बंगला देशमें अथवा अलकबीर या देवनार-जैसे क़त्लखानोंमें क़त्ल होनेके लिये चले जाते हैं। इस प्रवृत्तिको रोकना होगा।

खाद—गाय-बैलोंके मूत्र और गोबर आदिके साथ-साथ गायोंके खानेके बाद बची हुई सामग्रीको गड्ढोंमें दबाकर प्राचीन कालसे हमारे यहाँ कृषिके लिये खाद तैयार की जाती रही थी। इस खादका उपयोग कृषिके उत्पादनको बढ़ानेके लिये किया जाता था। आजके वैज्ञानिकोंका कहना है कि इससे न केवल उपजमें बढ़ोत्तरी ही होती है, वरन् रासायनिक खादसे गोबरकी खाद श्रेष्ठ है। कुछ दिन-पूर्व हालैंडसे आये एक विद्वान् श्रीउपाध्यायका कहना था कि यूरोपमें रासायनिक खादसे उत्पन्न उपजसे गोबरकी खादसे उत्पन्न उपजकी कीमतोंमें कई गुनेका अन्तर रहता है, क्योंकि वहाँ गोबरकी खादसे उत्पन्न अन्नको खानेकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, जबकि हमारे देशमें रासायनिक खादोंका प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। १९६०-६१ में हमारे यहाँ दो किलो प्रति हेक्टेयर रासायनिक खादका प्रयोग किया जाता था जो कि १९८७-८८ में बढ़कर ५१ किलो प्रति हेक्टेयर हो गया था। विदेशोंसे आनेवाले खादकी मात्राका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि १९५१-५२ से १९९१-९२ तक हमने लगभग दो खरब रुपयेकी रासायनिक खाँद विदेशोंसे आयात की। १९९१-९२ में रासायनिक खादके आयातपर ६२ अरब रुपयेकी सब्सिडी देनी पड़ी थी, जबकि अगले ही वर्ष अर्थात् १९९२-९३ में इस मदपर ६६ अरब रुपयेकी सब्सिडी दी गयी थी। चालू वर्षके आँकड़ोंकी कहानी इससे बेहतर नहीं होगी!

रासायनिक खादके प्रयोगका सबसे अधिक दु:खद परिणाम तो यह हो रहा है कि हमारी कृषियोग्य भूमिकी उर्वरा-शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नष्ट होती जा रही है अर्थात् रासायनिक खादका प्रयोग उपज बढ़ानेके स्थानपर उपजको कम करनेके लिये उत्तरदायी हो गया है। रासायनिक खादके प्रयोगके कारण खेतीमें लगनेवाले कीड़ोंको मारनेके लिये कीट-नाशक दवाइयोंके प्रयोग भी इस दिशामें कम जिम्मेदार नहीं हैं। कीटनाशक दवाइयोंके प्रयोगसे न केवल उर्वराशक्ति ही कम हुई है, वरन् उत्पादोंकी पौष्टिकतामें भी कमी आयी। यही नहीं, कीटनाशकोंके अधिकाधिक प्रयोगके कारण इनका विष कृषि-योग्य भूमिमें फैल जाता है और जलके साथ मिलकर वह भूमिके अंदर चला जाता है और वहाँके—भूमिके नीचेके पेय जलको भी दूषित कर देता है। जबकि गोवंशके गोबरकी खादका प्रयोग करनेसे भूमिकी उपज तो बढ़ती ही है, इन सब दूषित परिणामोंसे भी बचा जा सकता है।

गोबरकी खादका महत्त्व समझकर ही सम्भवतः हमारी सरकार विदेशसे अब अन्य सामग्रीकी तरह गोबरकी एक करोड़ टन खादका आयात भी करने जा रही है। यह कैसी विचित्र स्थिति बनती जा रही है कि एक ओर तो गोवंशको नष्ट होने दिया जा रहा है और दूसरी ओर गोबरकी खादका विदेशोंसे आयात किया जा रहा है। यदि गोवंशको, चाहे वह बूढ़े ही क्यों न हो गये हों उनका सुव्यवस्थित ढंगसे पालन-पोषण किया जाय तो उनसे ही इतनी अधिक मात्रामें गोबर और मूत्र मिल सकता है कि विदेशी गोबरकी खाद-आयातकी स्थिति ही नहीं रह जायगी।

ऊर्जा—विश्वके समस्त कार्य ऊर्जासे ही सम्पन्न होते हैं। ऊर्जा या तो बिजलीघरोंसे उत्पन्न की जाती है, या पशुओंद्वारा। हमारे यहाँ गोवंश-ऊर्जाका अनन्त भण्डार है। देशमें इस समय लगभग १९.४० करोड़ गाय-बैल हैं। ये सब मिलकर बिजलीघरोंद्वारा उत्पादित ऊर्जाकी तुलनामें कहीं अधिक ऊर्जाका उत्पादन करते हैं। नैरोबीमें सम्पन्न अन्ताराष्ट्रिय ऊर्जा-सम्मेलनमें स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधीने विश्व-समुदायके समक्ष जोरदार शब्दोंमें कहा था कि 'भारतके पशु अपने देशके बिजलीघरोंमें उत्पन्न २२ हजार एम० डब्ल्यू० बिजलीसे कहीं अधिक ज्यादा बिजली पैदा करते हैं, उनके स्थानपर अन्य विकल्पको विकसित करनेका मतलब खरबों रुपयेसे अधिक पूँजी-निवेश करना होगा। इसके अलावा कृषि-तन्त्रको खाद और सस्ते ईंधनका नुकसान होगा। १९९३ के आस-पासके एक अनुमानके अनुसार भारतमें एक हजार करोड़ रुपयेके खर्चेके अनुपातमें एक हजार मेगावाट बिजलीका उत्पादन हो रहा था। इधर नये आँकड़ोंके आनेसे भी ज्यादा अन्तर नहीं आया। ५ मार्च १९९४ को आयोजित पशु-ऊर्जा-सम्मेलनमें कृषि-मन्त्रीका कहना था कि देशमें ७ करोड़ ४० लाख बैलों और ८० लाख भैंसोंसे प्रतिवर्ष दस हजार करोड़ रुपयेकी चार हजार करोड़ हार्सपावर ऊर्जा प्राप्त होती है, जिसका विकल्प कोई भी मशीनरी नहीं हो सकती। गोवंशद्वारा उत्पादित ऊर्जा परिवहनके काममें अधिक आती है। देशमें प्रयुक्त होनेवाली ऊर्जामें ६६ प्रतिशत योगदान पशुओंका है। आज देशके क़त्लखानोंमें जितनी मात्रामें पशुओंको क़त्ल किया जाता है, यदि वह रोक दिया जाय तो इतनी अधिक ऊर्जा हमारे यहाँ सुलभ हो जायगी कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कारण, एक पशु अनुमानतः पाँच अश्वशक्ति ऊर्जा पैदा करता है। तब १९.४० करोड़ पशु कितनी ऊर्जा पैदा करेंगे, यह विचारणीय है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर ट्रेनिंग इन इण्डस्ट्रीयल इंजीनियरिंग (नाइट) ने रहँटमें लगे बैलोंके साथ घूमनेवाले गेयरसे बिजली उत्पन्न करनेका एक उपकरण तैयार किया है। यदि इसके द्वारा बिजलीका उत्पादन बड़े परिमाणमें शुरू हो जाता है तो गाँव-गाँवमें गोबर-गैस-प्लांटकी तरहसे रहँटसे भी पर्याप्त मात्रामें बिजली सुलभ हो जायगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गौ और गोवंश हमारे लिये वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यमें भी परम उपयोगी सिद्ध होता है।

[प्रे०—श्रीपुरुषोत्तमदास झुनझुनवाला]

शोक, मोह, दुःख, सुख और देहकी उत्पत्ति—ये सब मायाके ही कार्य हैं और यह संसार भी स्वप्नके समान बुद्धिका विकार ही है। इसमें वास्तविकता कुछ भी नहीं है।—श्रीमद्भागवत

विषय-वासनाके वशमें होकर सांसारिक बन्धनोंमें फँसना मानव-धर्म नहीं है। स्त्री, धन, पुत्र, पशु, घर, भूमि, हाथी, खजाना—ये सभी नाशवान्, क्षणभङ्गुर और चलायमान हैं। इनमें ममता रखना भूल है। एकमात्र भगवान्‌की भक्तिसे प्राप्त मोक्ष ही अक्षय और सर्वश्रेष्ठ है, अतएव सभी मनुष्योंको भगवद्भक्तिमें लग जाना चाहिये।—देवर्षि नारद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

भगवत्प्रेम यज्ञ, तप, दान, व्रत, तीर्थ आदिसे नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत भगवान्में दृढ़ अपनेपनसे प्राप्त होता है।

× × ×

जो कभी योगी और कभी भोगी होता है, वह वास्तवमें भोगी ही होता है।

× × ×

भोगी योगी नहीं होता, प्रत्युत रोगी होता है—'भोगे रोगभयम्'।

× × ×

सबमें भगवद्भाव करनेसे सम्पूर्ण विकारोंका नाश हो जाता है।

× × ×

शिष्य दुर्लभ है, गुरु नहीं। सेवक दुर्लभ है, सेव्य नहीं। जिज्ञासु दुर्लभ है, ज्ञान नहीं। भक्त दुर्लभ है, भगवान् नहीं।

× × ×

संसार प्रतिक्षण जा रहा है। जानेवालेके साथ ममता करोगे तो रोना ही पड़ेगा, पर रहनेवाले भगवान्से आत्मीयता करोगे तो सदाके लिये निहाल हो जाओगे।

× × ×

जन्मपर तो नियन्त्रण करें, पर मौतपर कोई नियन्त्रण नहीं—यह कैसी बुद्धिमानी? यह तो महान् विनाशकारी मूर्खता है!

× × ×

एक-दो संतान होगी तो घरका काम ही पूरा नहीं होगा, फिर समाजका काम कौन करेगा? खेती कौन करेगा? सेनामें कौन भरती होगा? सच्चा मार्ग बतानेवाला साधु कौन बनेगा? बूढ़े माँ-बापकी सेवा कौन करेगा?

× × ×

जहाँ वृक्ष अधिक होते हैं, वहाँ वर्षा अधिक होती है, फिर मनुष्य अधिक होंगे तो क्या अन्न अधिक नहीं होगा? प्रत्यक्ष बात है कि पहले जनसंख्या कम थी तो अनाज विदेशोंसे मँगाना पड़ता था। परंतु अब जनसंख्या बढ़ गयी तो अनाज बाहर भेजा जाता है।

× × ×

चेत करो! यह संसार हरदम रहनेके लिये नहीं है। यहाँ केवल मरने-ही-मरनेवाले रहते हैं। फिर पैर फैलाये कैसे बैठे हो?

× × ×

विचार करो, क्या ये दिन सदा ऐसे ही रहेंगे?

× × ×

मेरी कहलानेवाली कोई भी वस्तु सदा हमारे साथ नहीं रह सकती, फिर उसकी ममताके त्यागमें क्या कठिनता?

× × ×

ऐसा मान लो कि मैं भगवान्का हूँ। अगर 'मैं संसारका हूँ'—ऐसा मानोगे तो संसारका काम दूर रहा, भगवान्का भजन करते हुए भी भगवान्को भूल जाओगे।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

नखसे शिखतक गोपाल बना दो

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

दृश्य—१

[चार वर्षकी मीरा। शृंगारी मीराका शृंगार कर रही है। उसे सुन्दर लहँगा और चुनरी पहनायी है। मीरा मचल रही है।]

मीरा—(शृंगारीसे कह रही है) शृंगारी, मुझे तो लाँगदार धोती, बगलबंदी और पीताम्बरी चाहिये। यह सब उतार लो और वह सब पहनाओ जो गोपालजी पहने हैं। [गोपालजीके चित्रकी ओर संकेत करती है]

शृंगारी—देखो मीरा, दादाजीने यही वस्त्र पहननेको कहा है। तुम्हें अपनी सखी गोपालिकाके जन्मदिनपर जो जाना है।

मीरा—गोपालिकाके जन्मदिनपर! गोपालिकाके जन्मदिनपर तो मैं गोपाल ही बनकर जाऊँगी। नृत्य करूँगी, बाँसुरी बजाऊँगी और.....(कुछ रुककर) ओह हो! मटकी तो होगी नहीं, नहीं तो उसे फोड़कर माखन-मिसरी सबको लुटाती।

शृंगारी—मीरा, आज तो दादाजीकी बात मानकर यही वस्त्र पहन लो। कल शृंगार करके तुम्हें पूरा गोपाल ही बना दूँगी।

मीरा—पूर्ण गोपाल! नखसे शिखतक मैं पूरी गोपाल बन जाऊँ। फिर तो मैं मधुर बाँसुरी बजाऊँगी।

शृंगारी—मीरा, सखियाँ आ गयीं।

मीरा—(मन्दिर जाकर गोपालकी मूर्तिके सामने हाथ जोड़कर) मेरे गोपाल! आज्ञा दो अपनी सखी गोपालिकाके जन्मदिनपर जानेकी।

[मीरा गोपालको प्रणाम करती है। बाहर आती है तो देखती है सखियाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं।]

मीरा—(सखियोंसे) आनेमें विलम्ब हो गया। चलो चलें।

[मीरा और सखियाँ गोपालिकाके घरमें।]

गोपालिका—(सखियोंको देखकर प्रसन्नमुद्रामें) जय श्रीकृष्ण।

सखियाँ—(मन्द मुसकानकी मुद्रामें) जय श्रीकृष्ण।

गोपालिका—(सखियोंसे) सखियो, चलो पहले गोपालजीकी आरती उतारें, तत्पश्चात्.....।

[गोपालिका आँखें झपकाकर हँसती है, सब सखियाँ भी हँसती हैं]

एक सखी—तत्पश्चात् तुम्हें भरपूर बधाइयाँ।

[मीरा, गोपालिका और सब सखियाँ आरतीमें सम्मिलित हो जाती हैं और गोपालिकाके माता-पिता तथा अन्य लोग भी आरतीमें शामिल होते हैं।]

आरती कुंजबिहारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी॥ (टेक)
गलेमें बैजंतीमाला, बजावै मुरलि मधुर बाला।
श्रवनमें कुण्डल झलकाला, नंदके आनँद नँदलाला॥ श्रीगिरधर०॥
गगन सम अंग कांति काली, राधिका चमक रही आली,
लतनमें ठाढ़े बनमाली,
भ्रमर-सी अलक, कस्तूरी-तिलक, चंद्र-सी झलक,
ललित छबि स्यामा प्यारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी॥
कनकमय मोर-मुकुट बिलसै, देवता दरसनको तरसै,
गगन सों सुमन रासि बरसै,
बजे मुरचंग, मधुर मिरदंग, ग्वालिनी संग,
अतुल रति गोपकुमारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी॥
जहाँ ते प्रगट भई गंगा, सकल-मल-हारिणि श्रीगंगा,
स्मरन ते होत मोह-भंगा,
बसी सिव सीस, जटाके बीच, हरै अघ कीच,
चरन छबि श्रीबनवारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी॥
चमकती उज्ज्वल तट रेनू, बज रही बृन्दाबन बेनू,
चहूँ दिसि गोपि ग्वाल धेनू,
हँसत मृदु मंद, चाँदनी चंद, कटत भव-फंद,
टेर सुनु दीन दुखारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी॥
आरती कुंजबिहारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी॥

[आरतीके पश्चात् पंडितजी हवन करते हैं। तत्पश्चात् गोपालिका पंडितजीके पास बैठ जाती है। वहींपर एक कलशके ऊपर आमका पल्लव रखा है और उसपर मोली-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लपेटा नारियल। पंडितजी पासमें रखे दीपकको प्रज्वलित करके कलशके पास रख देते हैं।]

पंडितजी—(आरती-कर्ताओंकी ओर संकेत करके) यहाँपर रखे कलश और उसपर रखे नारियल तथा पासमें प्रज्वलित दीपककी महिमा आप सबको संक्षेपमें बता रहा हूँ, सुनें।

समुद्र-मन्थनमें अमृतको धारण करनेवाला यह कलश अमरत्वका स्वरूप है। कलशमें पञ्चरत्न और सर्वौषधी डाली जाती है। इससे कलशके जलमें अमृतत्वका संस्कार पड़ता है। इस अमृत-जलको तुम सब चरणामृतके रूपमें ग्रहण करोगे। नारियल श्रीफल कहलाता है और इसका प्रयोग शुभ कार्यमें होता है। यह श्री-सम्पत्ति-विभूति और कान्तिकी अभिवृद्धि करता है। कलशमें अष्ट चिरंजीवी महापुरुषोंका आवाहन करके उनका पूजन किया जाता है। इससे पूजककी आयुकी वृद्धि होती है। कलशके पास रखा प्रज्वलित दीपक इस बातका प्रतीक है कि हमारा जीवन प्रकाशमय और ज्ञानमय बने। अब तुम सब मिलकर मेरे साथ मङ्गलकामनाका शुभ पद बोलना।

पंडितजी—**ॐ अश्वत्थामा बलिर्व्यासो**

सब सखियाँ और गोपालिका—**ॐ अश्वत्थामा बलिर्व्यासो।**

पंडितजी—**हनूमांश्च विभीषणः**

सखियाँ—**हनूमांश्च विभीषणः।**

पंडितजी—**कृपः परशुरामश्च**

सखियाँ—**कृपः परशुरामश्च**

पंडितजी—**सप्तैते चिरजीविनः**

सखियाँ—**सप्तैते चिरजीविनः।**

पंडितजी—**सप्तैतान् यः स्मरेन्नित्यं**

सखियाँ—**सप्तैतान् यः स्मरेन्नित्यं**

पंडितजी—**मार्कण्डेयं तथाष्टमं**

सखियाँ—**मार्कण्डेयं तथाष्टमम्।**

पंडितजी—**जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः**

सखियाँ—**जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः।**

पंडितजी—इस श्लोकमें वर्णित अश्वत्थामा, राजा बलि, भगवान् व्यास, श्रीहनुमान्जी, श्रीविभीषणजी, श्रीकृपाचार्यजी, श्रीपरशुरामजी और श्रीमार्कण्डेयजी चिरंजीवी हैं। इनका स्मरण करनेवालोंकी आयु बढ़ती है और आरोग्यताकी प्राप्ति होती है, अतः ये अष्ट चिरंजीवी हम सबके पूजनीय हैं। ये हम सबपर कृपा करें। अब आप सब मिलकर गोपालिकाको बधाई दें।

सखियाँ—बधाई हो बधाई हो जन्म-दिनकी।
बधाई गोपालिका-जन्म-दिनकी।*

मीरा—कृष्णचरणोंमें तेरी रति-मति हो।

सखियाँ—बधाई बधाई बधाई बधाई।

[सब सखियाँ गोपालिकाको तिलक करती हैं और उपहार भेंट करती हैं। तत्पश्चात् राधा-कृष्णके सामने नृत्य और कीर्तन होता है] (क्रमशः)

---

* आज समाजके अधिकतर लोग अपने लाड़ले बच्चोंका जन्मदिन मनाते हैं अंडेसे बना केक काटकर और उसमें जलती मोमबत्तियाँ बुझाकर, जबकि शास्त्रोंमें ऐसे कार्योंका निषेध है—

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वगमौ तथा। आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत्॥

अर्थात् नाखून एवं बालोंका काटना, मैथुन, राह चलना, मांस (अंडा भी), कलह और जीवहिंसा आदि वर्धापनमें वर्जित है।

वैष्णव-रीतिमें बड़े सुन्दर वैज्ञानिक ढंगसे जन्मदिन मनानेका विधान है। हमारी धार्मिक रीतिके अनुसार तो दीपकको प्रज्वलित किया जाता है, बुझाना अशुभ माना गया है। जलता दीपक इस बातका प्रतीक है कि हमारा जीवन प्रकाशमय और ज्ञानमय हो। दीपक बुझाना और वह भी फूँक लगाकर वैसे भी हानिकारक है, इससे साँसकी बीमारी हो सकती है। अस्तु, संस्कार-पर्यन्त दीपक-घृत-दीपकको स्थायी रखना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये—

भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्। यावत् कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत् त्वं सुस्थिरो भव॥

अर्थात् हे दीप! आप देवस्वरूप एवं हमारे कर्मके साक्षी हैं, साथ ही विघ्ननाशक भी हैं। अतः जबतक हमारा यह वर्धापन-कर्म सम्पन्न न हो तबतक आप यहीं स्थिर रहें।

अतः सभी वैष्णवोंसे प्रार्थना है कि वे जन्मदिनके शुभ अवसरपर योग्य ब्राह्मण बुलाकर अपने बच्चोंका शास्त्रानुकूल वर्धापन—जन्मदिन मनायें। अपने इष्टमित्रोंको भी प्रेरित करें कि वे भी धार्मिक रीतिसे ऐसे शुभ कार्य करें। इस रीतिसे उनके बच्चोंकी आयु बढ़ेगी और बुद्धि विकसित होगी, सद्बुद्धिकी प्राप्ति होगी। बच्चोंमें सद्बुद्धि आनेसे वे माता-पिताके आज्ञाकारी बनेंगे और अनुशासनमें रहनेवाली वृत्तिके होंगे। ऐसे बच्चे ही धर्म, समाज और देशकी सेवा ठीक प्रकारसे कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चा दर्पण

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

वह एक तालाबके किनारे आ निकला। प्यासा था, तालाबके स्वच्छ जलमें पानी पीनेको झुका, तो अपनी मोहनी आकर्षक शक्ल देखकर आश्चर्यमें आ गया।

ओफ़! इतना सुन्दर सलोना रूप! यह श्वेत रंग! कपोल, नासिका, ओठ और बड़े-बड़े नेत्र। लगता था प्रकृतिने अपना सारा सौन्दर्य इस युवकपर ही उड़ेल दिया था। कुदरतके रूप-शृंगारका करिश्मा! अपने रूपपर ही वह मुग्ध हो उठा।

सचमुच नार्सिससके समान अन्य कोई इतना रूपवान् न था। इसे समाजमें अपने-जैसा और कोई खूबसूरत जवान नजर नहीं आता था। सौन्दर्य शिल्पका अद्भुत नमूना।

अपने ही सौन्दर्यमें मस्त वह अपने कुछ नौकरोंके साथ वनमें अकेला ही रहनेमें आनन्द मानता था। उसके नौकर भी उससे अधिक रूपवान् किसी दूसरेको नहीं मानते थे। वह पूरी मण्डली प्रेम, शृंगार, रूप और आकर्षणमें मस्त रहती थी।

उस मण्डलीकी मालकिन प्रतिध्वनि (गूँज) देवी थी जो सदा सुन्दरताके वर्णनमें इन्हींके गुणगान करती थी।

एक समयकी बात है।

नार्सिसस पानी पीनेके लिये एक तालाबपर आ निकला। पानी स्वच्छ निर्मल था, बिलकुल एक साफ दर्पणकी भाँति निर्विकार।

वह दोपहरकी गर्म धूपमें थक गया था। विश्राम लेनेके लिये उस तालाबके किनारे बैठ गया। पानीमें अपने सुन्दर चेहरेकी परछाईं देखी, पर उसे अपना मुखमण्डल इतना सुन्दर लगा कि देखकर वह वहीं ठक रह गया।

उसे भूख-प्यासका ख्याल ही न रहा। वैसे वह खुद अपने ही चेहरेके सौन्दर्यको देखता रहता। अपने लावण्यको निहारता रहता। प्रत्येक अङ्गको देख-देखकर विमोहित होता रहता।

एक दिन देखा, दो दिन, दस-पंद्रह दिन, महीना, यहाँतक कि सुन्दरता देखते-परखते, प्रशंसा करते-करते एक वर्ष हो गया। समय कब किसको एक-जैसा रखता है! धीरे-धीरे समय बीतता गया और प्रतिदिन सूख-सूखकर उसके शरीरका क्षय होने लगा।

एक दिन ऐसा आया कि पूरा शरीर ही नष्ट-सा होने लगा। नार्सिससको अब अपनी ही सूरत भयावनी लगने लगी। वह सोचने लगा मैं तब क्या था और अब क्या हो गया हूँ। यह मुझे क्या होता जा रहा है। उसी समय आकाशमेंसे आकाशवाणी हुई—'अरे नार्सिसस! अपना मुख देखनेका सच्चा दर्पण निर्जन वनका यह एकान्त सरोवर नहीं है। तुम संसार और समाजसे भागकर कोई अच्छा कार्य नहीं कर रहे हो। यह ईश्वरप्रदत्त शरीर परोपकार और जन-सेवाके लिये मिला हुआ है। सच्चा दर्पण यह प्राणि-जगत् है, इनके बीच जाकर इनसे पूछो कि मेरा सौन्दर्य कैसा है, व्यर्थकी रूप-राशिके मोह-जालमें तुम फँसे हो। लोगोंकी सेवा करो, सबका हृदय जीतो, तभी तुम अच्छे कहलाओगे। बाह्य सौन्दर्य तो क्षणिक है, नश्वर है, इसके आगोशमें आकर तुमने अपने चाटुकारोंसे घिरे रहकर अपना सारा समय व्यर्थमें खो दिया। अंदरकी सुन्दरता ही सच्ची सुन्दरता है। तुम्हें यह नहीं देखना चाहिये कि थोड़ेसे चाटुकार या खुशामदी सेवक क्या कहते हैं, बल्कि संसार और समाजका क्या कहना है, यह देखना चाहिये। जबतक समाजमें रहकर तुम कोई हितकारी कार्य नहीं करते, तबतक तुम्हारा जीवन निरर्थक है। समाज-सेवासे सद्गुण दृढ़ होते हैं, फूलकी तरह मुरझाते नहीं।' आकाशवाणी सुनकर नार्सिससकी आँखें खुलीं, उसे अपनी भूल मालूम हुई, पर अब क्या हो सकता था, अब तो बहुत देर हो चुकी थी। समय हाथसे निकल गया था। व्यक्तिवादको बढ़ावा देकर संकुचित होकर केवल स्वार्थ-सुखको ही सर्वस्व मान बैठना और यह सोचना कि हमारा तो सभी अच्छा है, मुझे औरोंके दुःखसे क्या मतलब? नार्सिससकी इस भूलके समान ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोमाताकी रक्षाके लिये देवताओंका आह्वान

गिरां मातर्वीणामपनय करे धारय धनु-
र्वधं धेनो रोद्धुं वधिकयुधि योद्धुं गणपते।
गणानामध्यक्ष त्यज निजमुदं मोदकभवां
महावीरातङ्कं तव भजति लङ्कापि गदया॥

वैदिकादि समग्र वाङ्मयकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती मात:! गोवधको रोकनेके लिये, गोहत्यारोंसे युद्ध करनेके लिये, बाहुदण्डमें धनुर्बाण धारण करो, कुछ समयके लिये वीणाको धर दो। गणेशजी! तुम तो समस्त देवगणोंके अध्यक्ष हो, जिस गोरससे तुम्हारा प्यारा लड्डू बनता है, उसी गोरसकी जन्मभूमि कामधेनु गौ मातापर विपदाके बादल मँडरा रहे हैं, कुछ देरके लिये मोदकका आमोद-प्रमोद त्याग दो। परशु, पाश, अंकुश लेकर अपने सायुध गणोंके साथ गोरक्षाके समरमें आ जाओ। अरे महावीर हनुमान्! तुम्हारी गदासे लंका भी आतङ्कित होती है, क्यों चुप्पी साधे बैठे हो! उसी गदाको लेकर आ जाओ, समय आ गया है।

व्रजे वृन्दारण्ये कुरुरणमुखे द्वारकपुरे
स्वरङ्गे वैकुण्ठे वससि यदि गोलोक उत ते।
हरे भूलोकेऽद्य द्यति खलकुलं गोकुलमिति
करे कृत्वा चक्रं स्वजनिभुवमागच्छ सगण:॥

हे कृष्ण! हे गोपाल! इस समय तुम व्रजमें, वृन्दावनमें, कुरुक्षेत्रके रणमुखमें, द्वारकापुरीमें, श्रीरङ्गपट्टनमें, तिरुपतिबालाजीमें अथवा अपने किसी अन्य रङ्गमञ्चमें, यद्वा वैकुण्ठमें अथवा गोलोकमें बैठे हो। किंतु आज भूलोकमें खलोंका कुल तुम्हारे प्यारे गोकुलको काट रहा है। इसलिये अपने हाथमें सुदर्शनचक्र लेकर अपने सायुध पार्षदगणोंके साथ अपनी जन्मभूमिमें आ जाओ।

उदारे केदारे वससि शिव रामेश्वरपुरे
सुरम्ये कश्मीरे पशुपतिपुरे वामरपुरे।
इदानीं ते नन्दी खलवधिकवन्दीकृत इति
त्रिशूलं स्वं नीत्वा प्रमथयुत आयाहि सपदि॥

हे कल्याणकारी शिव! हिमवत्-खण्डके उदार केदारखण्डमें केदारनाथके रूपसे, सेतुबन्ध रामेश्वरपुरमें रामनाथके रूपसे, सुरम्य कश्मीरके अमरकण्टकमें अमरनाथके रूपसे, गोरक्षक हिन्दुराष्ट्र नेपालके पशुपतिपुर काष्ठमण्डपमें पशुपतिनाथके रूपसे, अमरपुर अमरावतीमें अथवा समस्त जनताके मनोमन्दिरमें जहाँ कहीं भी वास करते हो। परंतु आज कामधेनुके सुपुत्र तुम्हारे प्यारे वाहन नन्दीको दुष्ट वधिकोंने वध करनेकी नीयतसे वन्दी कर दिया है। इसलिये अपना वही त्रिशूल लेकर सायुध प्रमथगणोंके साथ शीघ्र आ जाओ।

यदा शुम्भादीनामखिलदितिजानां भयमभूत्
तदा देवैरैक्यं विहितमहितार्तिप्रहरणे।
अभूर्दुर्गा शक्तिस्त्वमखिलखलानां बलहरा
करे धृत्वा खड्गं जहि खलदलं गामव पुन:॥

दुर्गे! जब शुम्भ-निशुम्भ, चण्ड-मुण्ड, महिषासुरादि दैत्योंका भय उत्पन्न हुआ, तब अहितकारी वैरियोंसे आयी हुई आपत्तिको हटानेके लिये ३३ कोटि देवताओंने एकता की। वही देवताओंकी संघशक्ति तुम वीराङ्गना दुर्गाके रूपमें प्रकट हुई और अखिल खलोंके दलका बल हरण करनेवाली चण्डीके नामसे मार्कण्डेयपुराणादिमें तुम्हारी अवदानकथा दुर्गा-चण्डी-सप्तशती आदिके नामसे प्रख्यात है। पुनश्च आज सर्वदेवमयी गौ मातापर वही आपत्ति आ पड़ी है। अत: उसी विद्युद्दामसमप्रभ खड्गको बाहुदण्डमें धारणकर खलोंके दलका दलन करो, गौ माताके प्राण बचाओ।

['गोमहिमा'-योगी श्रीनरहरिनाथजी शास्त्री]
(प्रेषक—श्रीरोहिणीविलास लुइटेल)

देहको चाहे जितना सुख-दु:ख हो, भक्त उसका ख्याल नहीं करते। उनकी वृत्ति एकमात्र भगवद्भक्तिमें लगी रहती है। वे नित्य भक्तिके ऐश्वर्यमें सराबोर रहते हैं।—रामकृष्ण परमहंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बड़ोंका आशीर्वाद

सर चिन्तामणि देशमुख भारतके माने हुए अर्थशास्त्री रहे हैं। ब्रिटिश-राज्यकालमें वे रिजर्व बैंकके गवर्नर थे। इनसे पहिले अर्थविभागके इतने ऊँचे पदपर किसी भी भारतीयकी नियुक्ति नहीं हुई थी। देश स्वतन्त्र होनेपर श्रीजॉन मथाई और सर षण्मुखम् चेट्टीके बाद वे केन्द्रीय सरकारमें फाइनेन्स मेम्बर (अर्थसचिव) बनाये गये। मेरठके नागरिकोंद्वारा आयोजित एक स्वागत-समारोहमें बोलते हुए आपने अपने जीवनकी एक रोचक घटनाका वर्णन किया।

श्रीदेशमुखजीने कहा कि जब मैं फर्ग्यूसन कालेज पूनाका विद्यार्थी था, तब लोकमान्य तिलकने एक दिन हमारे प्रिन्सिपल महोदयसे कहा कि 'मुझे एक आवश्यक अर्थसम्बन्धी लेख लिखना है, आप अपने किसी होशियार छात्रको भेज दें, मैं जो बोलूँ उसे वह ठीक-ठीक लिखता रहे।' प्रिन्सिपल महोदयने इस कार्यके लिये मुझे चुना और कहा कि 'आज संध्यासमय पाँच बजेके लगभग लोकमान्य तिलकजीके पास चले जाना और वे जो बोलें उसे ठीक-ठीक लिखते रहना।' मैंने इसे अपना अहोभाग्य समझा और सगर्व तिलकजीके चरणोंमें पहुँचा। अकस्मात् उस समय तिलकजीसे मिलने कुछ महानुभाव आ गये और लेख लिखानेके लिये उनके पास समय नहीं रहा। तिलकजी इससे खिन्न थे। मैंने कहा—'आप मुझे समझा दीजिये कि आप क्या लिखाना चाहते हैं। एक स्थूल-सी रूप-रेखा दे दीजिये। मैं स्वयं लेख तैयार कर लाऊँगा।' इसपर तिलकजी मुस्कराये, पर मेरा मन रखनेके लिये उन्होंने अपना विषय और मुद्दे मुझे समझा दिये। अगले दिन मैं वह लेख तैयार करके उनकी सेवामें पहुँचा, जिसे पढ़कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए बोले—'जाओ, हमने तुम्हें आशीर्वाद दिया, तुम एक दिन भारतके फाइनेन्स मेम्बर बनोगे।' तिलकजीका यह आशीर्वाद मुझे बराबर स्मरण रहा; क्योंकि मैं जानता था कि महात्माओंका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं जाता और जब मैं रिजर्व बैंकका गवर्नर बन गया तो मैंने समझा कि अब लोकमान्यका आशीर्वाद पूरा हो गया; क्योंकि रिजर्व बैंकके गवर्नर और फाइनेन्स मेम्बरके पदमें कोई ऐसा विशेष अन्तर नहीं है और इसके बाद मैं इस आशीर्वादकी बात बिलकुल भूल गया। परंतु भारतसरकारका फाइनेन्स-मेम्बर बन जानेके बाद मुझे फिर तिलकजीका आशीर्वाद याद आ गया कि यह मेरी भूल थी कि रिजर्व बैंककी गवर्नरीपर ही मैंने उनके आशीर्वादको पूरा हुआ समझ लिया था। महात्माओंका आशीर्वाद लगभग ही सत्य नहीं होता, वह तो अक्षरशः सत्य होता है।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा

(२)

गायने तालाबमें डूबनेसे बचाया

तब मेरी उम्र सात या आठ सालकी रही होगी। उन दिनों मैं अपने गाँवके एक स्कूलमें पढ़ रहा था। मेरे गाँवमें चालीससे पचास गायें थीं। गायें सुबह गाँवसे बाहर चरने चली जाती थीं। शामको चरवाहा गायें वापस चराकर लाता था। शामको गायें गाँवके तालाबमें पानी पीकर अपने-अपने घर वापस आ जाती थीं। गाँवके बाहर बड़ा तालाब था जिसके दो भाग थे। एक भागका पानी गाँववालोंके पीनेके लिये था और दूसरा नहाने तथा कपड़े धोनेके लिये था।

तालाबके बराबर बीचमें दससे बारह फुटकी सीमेंटकी दीवार थी जो लोगोंके और जानवरोंके आने-जानेका भी काम देती थी।

एक दिन शामको पाँच बजे स्कूल छूटनेके बाद हम आठ-दस बच्चे गाँवके श्रीराम-मन्दिरके पास खेल रहे थे। उतनेमें गाँवका एक साँड़ मन्दिरके पाससे निकला। आज वह गायोंके साथ न रहकर पहले ही गाँवमें आ गया था। वह रातभर मन्दिरके सामने पड़ा रहता था और सुबह सब गायोंके साथ वह भी गाँवके बाहर मैदानमें शामतक चरने चला जाता था। हम इस शान्त-स्वभावके साँड़के साथ खूब खेल करते थे। कोई कान तो कोई पूँछ खींच देता था। लेकिन साँड़ केवल अपना सींग हिलाकर ही रह जाता था। हम जरा भी इससे डरते नहीं थे।

एक दिनकी बात है। एक बच्चेने शर्त लगायी कि जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस साँड़के ऊपर बैठकर सवारी करेगा उसे खजूर खिलाया जायगा। बचपना तो था ही, मैं बातोंमें आ गया और मैंने अपनी बहादुरी दिखानेके लिये मन्दिरकी दीवारपर चढ़कर उस साँड़के ऊपर सवारी की। कुछ मिनटतक तो साँड़ शान्त खड़ा रहा। लेकिन कुछ शरारती लड़कोंने साँड़के पीछेके भागमें एक धारदार लकड़ी चूभो दी जिससे वह उछल कर भाग पड़ा। मैं डरके मारे उसके पीठके ऊँचे डिल्ले (ककुद्) को पकड़कर चिपक गया। साँड़ चारों पैरसे दौड़ता हुआ श्रीशिवजीके मन्दिरके पाससे जहाँ गाँवकी गायें पानी पी रही थीं मुझे अपने ऊपर लिये हुए धूल उड़ाता हुआ दौड़ते हुए आ निकला। चरवाहोंने चिल्लाते हुए मुझे बचानेके लिये एक मोटी लकड़ी लेकर साँड़को रोकना चाहा। लेकिन साँड़ रुका नहीं। उसने सीधा रास्ता बदला और वह तेजीसे दौड़ता हुआ दोनों तालाबके बीचके रास्तेमें भागने लगा। भयके मारे मेरा बुरा हाल था। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया था। मुझे लगा कि अब बचना मुश्किल है। आँखें बंदकर साँड़के डिल्लेको कसकर पकड़कर मैं चिपका हुआ था। साँड़के साथ मैं भी उछल रहा था। प्रभु-प्रेरणासे मैंने आँखें खोलकर सामने देखा तो मेरे दोनों तरफ तालाबका पानी लहरा रहा था। मैंने आव देखा न ताव और साँड़की पीठ छोड़कर उछलकर तालाबके पानीमें प्राण बचाने कूदा, और छपाकसे गहरे पानीमें गिरा। तैरना आता नहीं था, डूबने लगा। एक पलको तो ऐसा लगा कि तालाबके पानीसे तो साँड़की पीठ ही अच्छी थी।

गाँववाले, ग्वाला-चरवाहा और मेरे मित्र लड़के अभी मुझसे काफी दूरीपर थे। मैं थोड़ा पानी पी गया और एक बार पानीके ऊपर आया। फिर डूबा। खूब हाथ-पैर हिलाये तब दूसरी बार पानीसे ऊपर आया। चारों ओर पानी-ही-पानी नजर आया। आखिर तीसरी बार मैं थककर हिम्मत हारकर गहरे पानीमें डूबने लगा। तब मेरे शरीरसे किसी लंबी-चौड़ी लकड़ी-जैसी चीजका धक्का लगा और मोटी रस्सी-जैसी चीज हिलती हुई नजर आयी। मैंने वह मोटी रस्सी-जैसी चीज दोनों हाथसे जोरसे पकड़कर थोड़ा श्वास लेनेकी कोशिश की। लेकिन स्वच्छ हवाके बदले पानी ही पीनेको मिला। तब हरिकृपासे उस मोटी रस्सी, जिसे मैंने कसकर पकड़ रखा था, के सहारे मैं तालाबके किनारे आ पहुँचा। मैंने आश्चर्यसे देखा तो जिसे मैं रस्सी समझ रहा था वह गायकी पूँछ थी और जिस लकड़ी-जैसी चीजने मुझे धक्का मारा था, वह गायके पैर थे।

मैं आधी बेहोशीमें तालाबके किनारेपर आ गया था और वहीं बैठकर उल्टी करने लगा। गौ माता जिसने मुझे पानीमें डूबनेसे बचाया था, मेरी पीठ, हाथ तथा मुँह चाट रही थी। तब मुझे होश आया कि यह गाय तो हमारी खुद-की गाय है, जिसे मैं रोज प्रेमसे सहलाता था और कभी-कभी फल तथा शाक-भाजीके बचे हुए टुकड़े खिलाया करता था। कभी-कभी गाजर और घास भी खिला देता था। इस घटनाके बाद मेरा पूज्य-भाव गौ माताके प्रति बढ़ गया। घर आकर गायकी आरती उतारी गयी और साथ ही उसे मिष्टान्न खिलाया गया। तबसे जबतक मैं गाँवमें रहा, रोज सुबह गायकी एक बार जरूर पीठ सहलाया करता था और रोटी अपने हाथसे खिलाया करता था।

—वनराज एम्० चावरा

(३)

बाबाजीकी गो-भक्ति

मेरे परम पूज्य प्रातःस्मरणीय बाबाजी—पं० वेदनाथजी पाण्डेय गौ माताके साथ सख्य-भक्ति करते थे। वे गौके अनन्य भक्त थे। आप जहाँ कहीं भी रहते, गौ माताको साथ ही रखते और कभी भी किसी वस्तुकी याचना नहीं करते। किसी प्रलोभनमें आकर संग्रह भी नहीं करते थे। वे प्रतिदिन रात्रिमें ३ बजे शय्या त्याग देते थे। गौ माताकी चरण-वन्दना करके प्रातः भगवत्स्मरण करते, तदनन्तर अपने नित्यकर्ममें प्रवृत्त हो जाते थे। स्वाध्याय करते थे। गोमाताके शरीरमें वे रंचमात्र भी कालिख नहीं लगने देते थे। मक्खी तक भी नहीं बैठने देते। उनको खिलाये बिना कभी जलतक नहीं ग्रहण करते और गौमाता भी प्रेमको प्रकट करनेके लिये उनके शरीरको चाटने लगती थी तथा उनकी आवाज सुनकर हजारोंकी भीड़ लाँघकर पीछे-पीछे दौड़ी चली आती। गौमाताको बाबाजीके पीछे दौड़ते देखकर लोग कहने लगते कि महाराजजी! आप अपनी गैयाको क्या खिलाते हैं, जो आपका पीछा नहीं छोड़ती। हमलोग भी तो बहुत ही अच्छी तरहसे खली-दानाकी व्यवस्था रखते हैं, पर कभी आपकी गैयाकी तरह हमारी गैया हमारे पीछे नहीं दौड़ती। बाबाजी सुनकर मधुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसकान बिखेर देते। अब वे कैसे बताते कि गोमातासे वे कितना प्रेम करते हैं। गोमाताकी सेवासे बाबाजीमें कुछ विलक्षण शक्तियाँ प्रतिष्ठित थीं। वे थे भी त्याग, तपस्या, प्रेम एवं सेवाकी मूर्ति। वे फसल कटनेके बाद खेतोंसे अनाजके दाने बीन लाते और उसीसे अपना जीवन चलाते थे। उसीमें पूर्ण संतुष्ट रहते थे। वे बोलते भी बहुत कम थे। अचानक यदि कुछ बोल देते तो वह सत्य ही होता। उन्हींका आशीर्वाद है कि हम जहाँ कहीं भी रहते हैं वहाँ सदैव कुशलसे रहते हैं, आनन्दसे रहते हैं। उनके द्वारा सेवित एक गाय आज भी हमारे पास है। उसकी पूरे क्षेत्रमें बड़ी प्रसिद्धि है। हमलोग भी उसकी खूब सेवा करते हैं। इससे हमारे सभी काम बन जाते हैं और कहीं कोई कठिनाई नहीं आती।

—पं० बजरंगप्रसाद पाण्डेय

(४)

बुढ़ापासे बचनेका उपाय

आँवलोंके मौसममें नित्य प्रातःकाल व्यायाम या भ्रमणके बाद दो पके पुष्ट हरे आँवलोंको चबाकर खाये, यदि इस प्रकार कच्चे आँवले न खा सके तो उनका रस दो चम्मच और शहद दो चम्मच मिलाकर पीये। जब आँवलोंका मौसम न रहे तब सूखे आँवलोंको कूट-पीसकर कपड़ेसे छानकर बनाया गया आँवलोंका चूर्ण तीन ग्राम (एक चम्मचकी मात्रामें) सोते समय रातको अन्तिम वस्तुके रूपमें शहदमें मिलाकर या पानीके साथ ले, इस तरह तीन-चार महीना प्रतिदिन आँवलोंका प्रयोग करनेसे मनुष्य अपनी काया-पलट कर सकता है। निरन्तर प्रतिदिन सेवन करनेसे भूख और पाचनशक्ति बढ़ जाती है, गहरी नींद आने लगती है, सिर-दर्द दूर हो जाता है, मानसिक और पौरुषी-शक्ति बढ़ती है, दाँत मजबूत हो जाते हैं, बाल काले तथा चमकदार हो जाते हैं, कान्ति, ओज एवं तेजस्विताकी वृद्धि होती है और मनुष्य बुढ़ापेमें भी स्वस्थ एवं युवा-सा बना रहता है। आँवलोंमें रोगनिरोधक गुण होनेके कारण स्वतः ही रोगोंसे बचाव होता है और मनुष्य सदैव निरोगी रहकर लंबी आयु प्राप्त करता है।

आँवलेके प्रयोगके साथ सात्त्विक भोजन करे। आँवला एक उच्चकोटिका रसायन है। यह रक्तमेंसे हानिकारक और विषैले पदार्थोंको निकालनेमें सक्षम है। इसके नियमित सेवनसे रक्तवाहिनियाँ लचीली बनी रहती हैं और उनके दिवारोंकी कठोरता दूर होकर रक्तका परिभ्रमण भलीभाँति होने लग जाता है। रक्त-वाहिनियोंमें लचक बनी रहनेके कारण मनुष्यका न तो हृदय फेल होता है न ही उच्च रक्तचापका रोग होता है और न ही रक्तका थक्का बन जानेसे रुकावटके कारण मस्तिष्ककी धमनियाँ फटने पाती हैं। आँवलोंके निरन्तर सेवनसे रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि-मज्जा तथा शुक्र—इन सब धातुओंसे मलिन या मृत परमाणु देहके बाहर निकल जाते हैं। उनके स्थानपर नूतन और सबल परमाणुओंका प्रवेश हो जाता है और मनुष्य वृद्धावस्थामें भी उत्साह एवं शक्तिसे सम्पन्न बना रहता है।

—पुनमचंद राठी

(५)

ईश्वरका न्याय एवं चेतावनी

घटना पुरानी है किंतु सच्ची है, इस घटनासे अनुभव होता है कि भगवान् समय-समयपर अपने भक्तोंको सही मार्गका अवलम्बन करनेकी प्रेरणा देते रहते हैं।

उस समय जाड़ोंके दिन थे। मैं राजस्थानमें अपने ग्राम उदयपुर शेखावाटीसे जैपुर कुछ कार्यवश जा रहा था—जाते समय पिताजीने वहाँसे कुछ मेवा लानेको कहा एवं साथ ही यह भी हिदायत दी कि जैपुरमें बहुत ज्यादा मोल-तोल होता है, अतः बुद्धिमानीसे माल खरीदना, ठगा मत जाना। अतः उसी चेतावनीको ध्यानमें रखते हुए मैं मेवोंके बाजारमें गया एवं कई दूकानोंपर भावोंकी जाँच की, अन्तमें ४-५ दूकानोंके बाद एक दूकानपर पहुँचा, मेरे हाथमें सामानकी सूची थी, दूकानदार काफी चालाक होगा—अतः मैंने सूचीके अनुसार २-३ चीजोंके दाम पूछे तो उसने यह समझ लिया था कि मैं बाजारकी अन्य दूकानोंसे भाव पूछकर आ रहा हूँ, इसलिये उस भाईने मुझे, उनके दाम बाजारसे कुछ-कुछ कम करके बताये तो मैंने समझा कि यह ठीक दूकान है, यहाँ उचित दाम लगेंगे। अतः मैंने अपनी सूची उस दूकानदार भाईको सम्हलाकर कह दिया कि मैं और चीजें खरीदकर आ रहा हूँ, आप इस बीचमें सब चीजें बढ़िया देखकर ठीकसे तौलकर मेमो बनाकर तैयार रखें। थोड़ी देरके बाद और काम समाप्त करके मैं जब लौटा तो दूकानदार सब चीजें तैयार कर कैशमेमो तैयार कर रखा था। मैंने अपनी सूची लेकर कैश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेमोसे मिलाया तो मालूम हुआ कि जिन दो-तीन चीजोंके दाम मैंने उससे पूछे थे वे तो उसने जो भाव मुझे बताये थे यानी बाजारसे कुछ नीचे, उनके तो वही दाम उसने लगाये, बाकी ८-१० चीजोंमें बाजारमें जो दाम थे, उनसे भी कुछ ऊँचे लगाये, मैंने दूकानदारसे विरोध किया तो वह तैयार नहीं हुआ बाजारभाव दाम लगानेको। मुझे जल्दी थी, अत: लाचारीसे पछताते हुए दु:खित मनसे, क्योंकि उसके विश्वासके कारण मैं बेवक़ूफ़ बन चुका था, मेमोके अनुसार सामान मिलाने लगा तो देखा कि मेरी सूचीके अनुसार ३ सेर पिश्ते उसने दिये थे, किंतु भूलसे मेमोमें दाम उसने दो सेरके ही लगाये थे। अत: ज्यों ही मैं उसे उसकी भूल बतानेको था कि मेरे मनमें अचानक यह भावना उठी कि चलो अच्छा हुआ इसने मेरे साथ बेईमानी की, उसकी कसर मेरी तो पूरी हो रही है एवं इसको कोई लाभ भी नहीं हो रहा है। अत: मैंने मनमें खुश होकर उससे उसकी गलती नहीं बतायी और रुपये देकर मेवोंकी सभी छोटी-बड़ी थैलियोंको एक बड़े बोरेमें डलवाकर ताँगेमें रखकर चला। साथ ही सोच रहा था कि दूकानदारको उसकी गलतीसे उसकी बेईमानीका कोई फायदा नही हुआ—भगवान् भी कितना न्यायप्रिय है—किंतु मैंने यह नहीं सोचा कि मेरे मनमें भी तो कुछ खोट आ ही गयी, चाहे किसी कारणसे हो, चाहे दूकानदारकी बेईमानी हो—वह अपनी करनी भोगता। मुझे तो, जितनी चीज ली उसके पूरे दाम देने ही चाहिये थे—किंतु यह मेरी गलती थी। मुझे भी समझिये लोभ आ गया। किंतु वाह रे 'ईश्वरका न्याय एवं चेतावनी'। मैं मन-ही-मन ताँगेपर हिसाब लगाये जा रहा था तो जोड़नेसे पता चला कि एक सेर पिश्तेके जितने दाम हुए करीब-करीब उतने ही पैसे उसने अन्य चीजोंमें मुझसे अधिक विशेष लिये थे। मैंने देखा कि दूकानदारको कोई लाभ नहीं हुआ और न मेरे ज्यादा पैसे लगे। किंतु मेरे मनमें जो दुर्भावना आयी, उसके प्रतीकारके लिये एवं भविष्यमें फिर इस प्रकारकी पुन: गलती नहीं करूँ, इसके लिये दयालु भगवान्ने इतना सुन्दर सबक दिया जिसे कि मैं जीवनभर नहीं भूल सकता। ताँगा बाजारसे चला जा रहा था। इतनेमें पीछेसे ताँगा रोकनेकी आवाज सुनायी पड़ी तो घूमकर क्या देखता हूँ कि बोरा खिसककर ताँगेके पहियेके समीप आ गया था और उस पहियेकी रगड़से बोरा कटकर एवं उसके अंदरकी पिश्तोंवाली थैलीमें रगड़ लगकर वह भी कट गयी थी तथा सड़कपर पिश्ते गिरते जा रहे थे और लोग चुन रहे थे। हल्ला सुनकर ताँगेवालेने ताँगा रोककर पिश्ते बटोरनेकी सोची तो मैंने उसे मना करा दिया; क्योंकि पिश्ते गिरनेसे मनके अंदर एक प्रकाश-सा मालूम हुआ एवं अपने दूकानदारको एक सेरका दाम नहीं देनेकी ग्लानि हुई एवं पश्चात्ताप हुआ। डेरेपर आकर पिश्तेको तौला तो लगभग एक सेर पिश्ते गिरे थे। यों दोनोंको सजा मिल गयी—दोनोंके घरमें नहीं रहा—न खरीदारके, न दूकानदारके; क्योंकि दोनोंके मनमें बुराई आ गयी थी। यह था 'ईश्वरका न्याय एवं चेतावनी'—दूधका दूध, पानीका पानी। पिश्ते तौलनेके बाद बड़ी शान्ति मिली। इसी प्रकार भगवान् प्राय: हर मौकेपर प्रेरणा एवं सद्बुद्धि देते हैं।

—महाबीरप्रसाद पाण्डेय

मनन करने योग्य

गोसेवाका साक्षात् फल

(स्वामीजी श्रीभूमानन्दजी)

बहुत दिनोंकी बात है, एक दिन एक संन्यासी एक ब्राह्मण सद्गृहस्थके घर अतिथिरूपमें पधारे। उस परिवारमें दो ही आदमी थे—पति और पत्नी। परिवारमें कोई कमी न थी। दोनों ही धर्माचरणमें लगे रहते थे। परंतु संतानहीन होनेके कारण उनके मनमें सर्वदा कमी खटकती और अशान्ति बनी रहती थी। ब्राह्मण-दम्पतिने खूब आदर-सत्कार करते हुए संन्यासीको घरमें टिकाया और यथासाध्य उनकी सेवा की। उन दिनों सब लोगोंके मनोंमें साधु-संन्यासीके प्रति विश्वास और भक्तिका भाव था। दूसरी ओर साधुलोगोंमें भी उस समय अपने वेषके अनुसार ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार-व्यवहार, बातचीत और विवेक था।

भोजनादिके बाद विश्राम कर लेनेपर संन्यासीके साथ नाना प्रकारकी बातचीत होने लगी। गाँवके दूसरे लोग भी साधुके दर्शनके लिये आये। बातचीतके सिलसिलेमें, ब्राह्मणकी अनुपस्थितिमें एक आदमीने कहा कि 'गाँवमें इस ब्राह्मण-दम्पतिके समान सत्यवादी, नम्रप्रकृति, धार्मिक और अतिथि-सेवा करनेवाला आदमी प्रायः देखनेमें नहीं आता। किंतु दुःखकी बात यह है कि इनको संतान नहीं हुई, न जाने भगवान् इस प्रकारके धर्मात्माके ऊपर क्यों अप्रसन्न हैं।' पीछे सब लोग एक-एक करके अपने घर लौट गये, साधु उस रात ब्राह्मणके घरपर ही रहे।

दूसरे दिन प्रातःकाल साधुने अन्यत्र जानेकी इच्छा प्रकट की, किंतु ब्राह्मणने कहा कि 'आप गृहस्थके घर अतिथि हैं, भोजन बिना किये आप कैसे जा सकते हैं। दोपहरको भोजन करके विश्राम करनेके बाद आपको जहाँ जाना हो, वहाँ जाइयेगा।' संन्यासी राजी हो गये। इससे ब्राह्मण-दम्पतिने प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया। साधुने यह कहकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि 'तुमलोगोंको पुत्रका मुँह देखनेका सौभाग्य प्राप्त हो।' ब्राह्मणने किंचित् आश्चर्यपूर्वक इस प्रकारके आशीर्वादका कारण पूछा। साधुने बतलाया कि 'अतिथिसेवाके द्वारा भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं। तुमलोगोंके इतने दिनोंके अतिथिसत्कारके फलस्वरूप अब स्वयं भगवान् प्रसन्न हो गये हैं, और मुझे निमित्त करके मेरे मुखसे यह वर प्रदान कर रहे हैं। तुमलोग इस विषयमें कोई संदेह या अविश्वास न करो।'

ब्राह्मणने और भी विस्मित हो हाथ जोड़कर पूछा—'इस समय हमारा कर्तव्य क्या है ?' साधुने उत्तर दिया—'गो-सेवा'। साधु यथासमय ब्राह्मणके घरसे चले गये, ब्राह्मण-दम्पति भी एक ब्यायी हुई गाय लेकर उसकी सेवामें लग गये। गायको प्रातःकाल स्नान कराते। नयी-नयी घास लाकर खिलाते, सुन्दर पकाया हुआ अन्न तथा नाना प्रकारके शस्योंके द्वारा उसे तृप्त करनेका प्रयास करते। इसी प्रकार गोसेवा करते उनके दिन बीतने लगे। ब्राह्मणी गौके चरण धोकर उनको अपने केशोंसे पोंछती। चरणोदक मस्तकपर लगाती और पान करती। संध्याके समय गो-गृहमें दीप जलाती और उसके लिये तृणोंकी कोमल शय्या तैयार कर देती। खूब तड़के उठकर गायके घरको साफ करती। इस प्रकारकी सेवासे थोड़े ही दिनोंमें गाय और उसका बछड़ा दोनों सुन्दर हृष्ट-पुष्ट दिखलायी देने लगे। आश्चर्यकी बात यह है कि कुछ ही समयमें ब्राह्मणीको गर्भके लक्षण दिखलायी देने लगे और समय आनेपर उनको एक बालक उत्पन्न हुआ। सारे गाँवमें आनन्दका सोता उमड़ चला। सबको उस साधुके आशीर्वादकी बात याद आ गयी। फल यह हुआ कि बहुत लोग गो-सेवामें लग गये।

इस घटनाके विषयमें मैंने लड़कपनमें ही सुना था। बादको जब कालेजमें पढ़ने गया, तब कालिदासका रघुवंश पढ़ते समय देखा कि सूर्यवंशीय महाराज दिलीप जब संतानहीन होनेके कारण कुलगुरु वसिष्ठके पास अपनी दुःखगाथा वर्णन करने लगे, तब महर्षिने उनको स्त्रीके साथ गो-माता सुरभिकी कन्याकी सेवा करनेके लिये उपदेश दिया।

दिलीप तदनुसार रानी सुदक्षिणाके साथ भक्ति-भावसे वसिष्ठजीके बतलाये व्रतको धारण करके तन-मन-धनसे नन्दिनीकी सेवामें लग गये। राजा दिलीपकी गो-सेवाकी आन्तरिक परीक्षा करके नन्दिनीने उन्हें आशीर्वाद दिया। उसके फलस्वरूप सुदक्षिणाके गर्भसे रघुका जन्म हुआ।

अब भी इस विषयको पढ़ते ही मुझे अपनी बाल्यकालकी सुनी हुई घटना याद आ जाती है और गो-सेवाके माहात्म्यके विषयमें हृदयमें विश्वास और दृढ़ता उत्पन्न हो जाती है।

गो-सेवाके मांहात्म्यका वर्णन अनन्तकालतक करनेपर भी समाप्त न होगा। जान पड़ता है कि हृदयसे गो-सेवा करनेके फलस्वरूप ही गोकुलवासियोंको भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो सकी थी।

गोविन्दाय नमस्तस्मै गोपालाय नमो नमः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, जून १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् चन्द्रमौलीश्वरको नमस्कार	६१५
२- कल्याण (शिव)	६१६
३- कल्याण और उसकी प्राप्तिके उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६१७
४- भगवान्के चरण-कमलोंकी स्मृतिका महत्त्व	६१८
५- आचरणकी कसौटी (गोलोकवासी म० म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा, चतुर्वेदी)	६१९
६- सत्यकी रक्षा करनेवाला अन्तमें विजयी होता है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६२१
७- श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय	६२४
८- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६३२
९- हविर्यज्ञोंकी दक्षिणाके रूपमें गौकी महत्ता (डॉ० श्रीरामहितजी त्रिपाठी)	६३६
१०- निर्दोषताकी माँग (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	६३९
११- प्रसन्नता मेरी—मुट्ठीमें आपकी! (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	६४२
१२- धरापर आ जाओ घनश्याम [कविता] (श्रीचन्द्रकिशोरजी 'श्वेतांशु')	६४४
१३- वस्तुकी असली कीमत (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	६४५
१४- राधा बिना कृष्ण आधा (श्रीफतेहचन्दजी अग्रवाल)	६४७
१५- उड़ जायगा रे हंस अकेला [कविता] (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६४९
१६- अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६५०
१७- हानि कुसंग सुसंगति लाहू (पं० श्रीकमलेशजी व्यास 'गौड', ज्योतिर्वेत्ता)	६५१
१८- *भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी)	६५४
१९- पढ़ो, समझो और करो	६५६
२०- मनन करने योग्य	६६१

चित्र-सूची

१-श्रीकृष्णका दूधके लिये मचलना	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-भगवान् चन्द्रमौलि	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

सादे चित्र

	पृष्ठ-संख्या
१-नन्दरानीका नीलमणि एवं श्रीदेवकीजीको संदेश भेजना	६२६
२-उद्धवका नन्द-यशोदाको श्रीकृष्णका संदेश सुनाना	६२८
३-गोपियोंका उद्धवके सामने श्यामसुन्दरकी विरह-व्यथामें कराहना	६२८

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रहवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

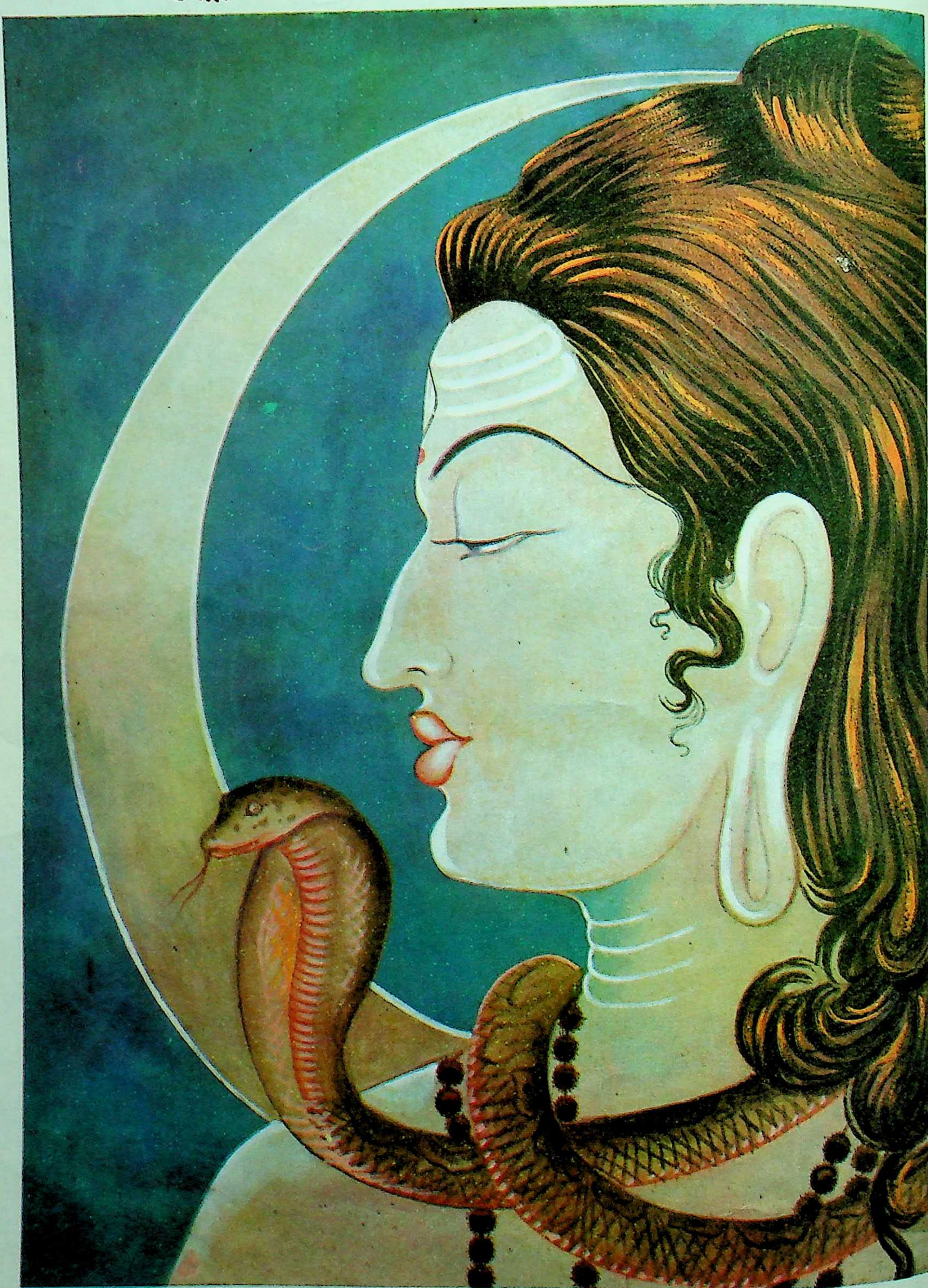

भगवान् चन्द्रमौलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

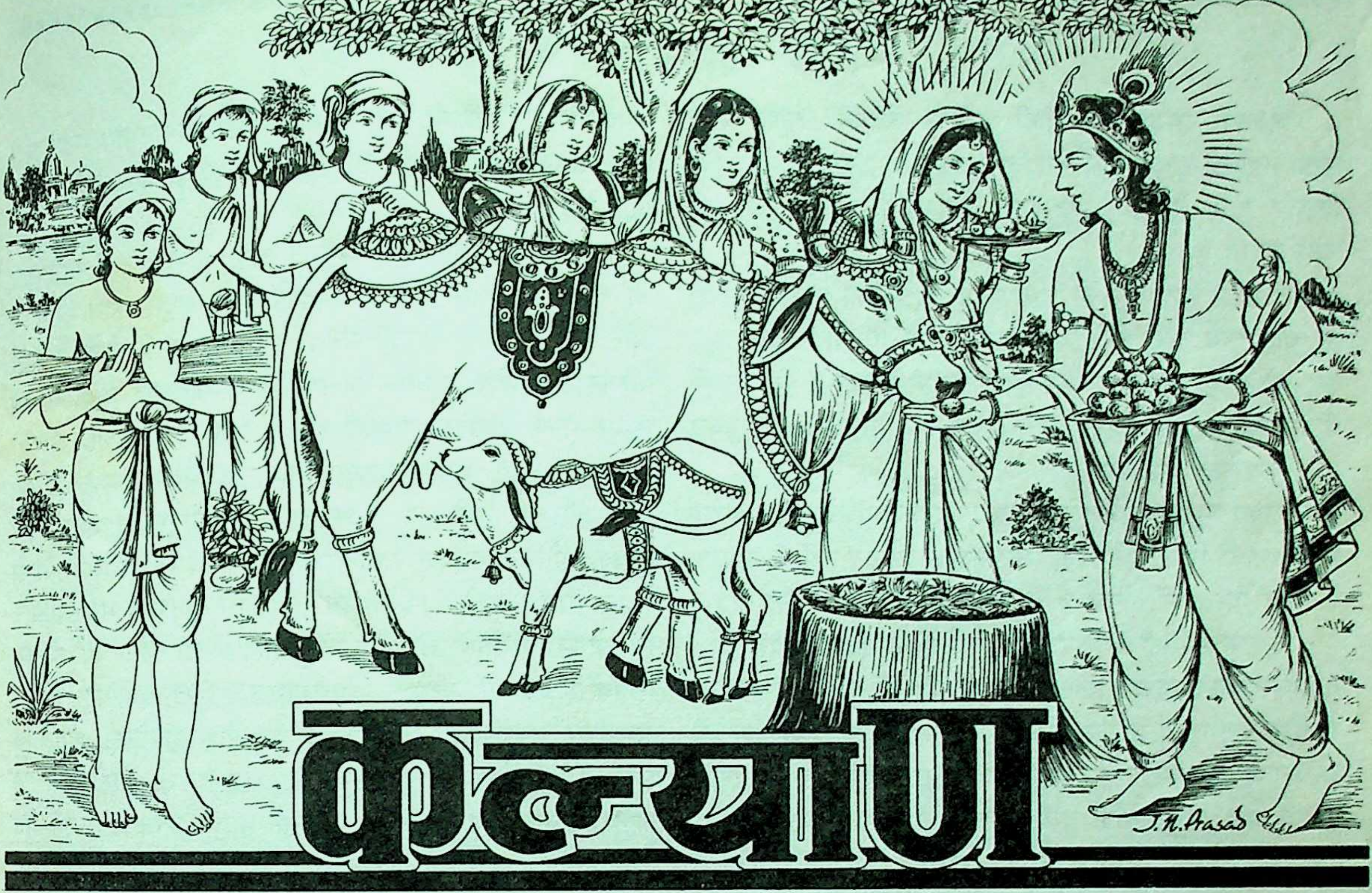

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, जून १९९५ ई० संख्या ६ पूर्ण संख्या ८२३

भगवान् चन्द्रमौलीश्वरको नमस्कार

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम्॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णानन्दमय, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र आवासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, जो सत्यमय हैं, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सत्य-प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन चन्द्रमौलीश्वर भगवान् शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

जबतक संसारके भोगोंकी चाह है तबतक मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। जितनी चाह बढ़ती है उतना ही दु:खोंका विस्तार होता है, परंतु ज्यों-ज्यों चाह पूरी होती है त्यों-त्यों चाह बढ़ती है।

दु:खोंसे छूटना हो तो चाह छोड़ो, दु:खोंको कम करना हो तो चाह कम करो और चाह कम करनी हो तो चाहको पूरा करनेकी इच्छाका त्याग कर दो। चाहरूपी आगमें विषयरूपी घीकी आहुति मत दो, उसपर संतोषका शीतल जल छोड़कर उसे बिलकुल बुझा दो।

विषय-सुखसे निराश होना सच्चे सुखकी प्राप्तिकी ओर बढ़ना है, विषयोंकी चिन्ता छूटे बिना सच्चे सुखका चिन्तन नहीं हो सकता, वे पुरुष वास्तवमें भाग्यवान् हैं जो विषय-सुखसे वञ्चित हैं।

जिसके सांसारिक विषय जितने अधिक होते हैं वह प्राय: भगवान्से उतना ही अधिक दूर रहता है, विषयी पुरुषका वातावरण ही ऐसा बन जाता है कि उसके मनमें भगवान्की ओर झुकनेकी अभिलाषा सहजमें उत्पन्न नहीं होती। भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषा सत्संग और सद्ग्रन्थोंके द्वारा भगवान्का प्रभाव जाननेसे पैदा होती है। विषयी पुरुषोंको न तो सत्संगका अवसर मिलता है और न सद्ग्रन्थोंके पढ़ने-सुननेके लिये ही फुरसत मिलती है।

उदाहरण देखना हो तो अधिकांश राजाओं, अफसरों, धनियों और अमीरोंकी दशा देख लो। यदि इनमेंसे आप कोई हों तो अपने हृदयपर हाथ रखकर सोचो। यश कमाना, लोगोंपर प्रभाव बनाये रखना, मौज-शौक करना, खुशामदियोंसे घिरे रहना, चापलूस चंदा माँगनेवालोंके संग रहना, महल-मकान बनवाना, सैर-सपाटा करना, नाटक-वायस्कोप देखना, विनोद करना, परनिन्दा और परचर्चाको कहना-सुनना, भोग-वासना पूर्ण करना, विरोधियोंको दबाना, समान सम्मान और कीर्तिवालोंको नीचा दिखाना आदि कितने ही परम आवश्यक प्रतीत होनेवाले प्रपञ्च पीछे लगे रहते हैं। सुबह उठनेसे लेकर रातको सोनेतक किसी समय भगवन्नामस्मरण और सद्ग्रन्थके अध्ययनकी कल्पना ही मनमें नहीं आती।

यथार्थ संत-महात्मा लोभहीन होनेके कारण ऐसे लोगोंके दरवाजेपर जाते नहीं। कोई स्वाभाविक दयावश चला भी जाय तो ऐसे लोग उसे किसी कामनासे आया हुआ समझकर उससे लाभ नहीं उठाते, कोई-कोई तो तिरस्कारतक कर बैठते हैं। और स्वयं वे किसी संत-महात्माके पास जाते नहीं, प्रथम तो संत-महात्मा-सम्बन्धी चर्चा ही उनके कानोंतक नहीं पहुँचने पाती, यदि कहीं चर्चा होती है तो उनपर अपने मान, कल्पित स्वरूप अथवा पोजीशनका ऐसा भूत सवार रहता है जो मान-भंगका भय दिखलाकर उन्हें, अमीर-गरीबमें समानभाव रखनेवाले और सबके साथ प्रेमसे मिलनेवाले महात्माओंके पास जाने नहीं देता।

खूब धन-दौलत, मान-सम्मान और पद-मर्यादामें रहते हुए भी भगवान्की ओर चित्त लगानेवाले पुरुष सदासे होते आये हैं और अब भी हैं पर उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी होती है और पूर्वजन्मके विशेष साधनके बलसे ही वे प्रतिकूल वायुमण्डलमें रहकर अपनी स्थितिको सम्हाले रहते हैं और लक्ष्यको नहीं भूलते।

सच्चा सुख भगवान् अथवा भगवान्के अनन्य प्रेमकी प्राप्तिमें ही है और वह तभी प्राप्त हो सकता है जब मनुष्यका जीवन उस सुखकी ओर ले जानेवाले साधनोंसे भर जाय। वे साधन विषयप्रेमसे सर्वथा विरोधी होते हैं। इसीलिये संतों और अनुभवी महात्माओंने विषयोंको विषवत् छोड़ देनेकी सलाह दी है। जो मनुष्य विषयोंसे चिपटा रहकर विषयभोगको सुख-प्राप्तिका साधन समझकर उनमें रचा-पचा रहता है और अपनेको भगवत्-प्राप्तिका अभिलाषी भी बतलाता है, वह या तो धोखेमें है या जान-बूझकर दम्भ करता है। जबतक मनुष्य अकिञ्चन नहीं बन जाता तबतक भगवान्को पानेका अधिकारी नहीं होता। अकिञ्चनता वस्तुत: मानसिक ही होती है, परंतु जो आसक्तिवश बाहरका त्याग ही नहीं कर सकता उसके लिये मानसिक अकिञ्चनता तो बहुत दूरकी बात है। त्यागका अभ्यास दोनों प्रकारसे करना चाहिये, बाहरसे भी और भीतरसे भी। जो लोग भोगोंको तुच्छ कहकर उन्हें भोगते हुए ही ब्रह्मज्ञानी बननेका दावा करते हैं वे भी धोखा खाते हैं और जो बाहरसे भोगोंका त्यागकर मनसे उन्हें निकाल देनेकी जरूरत ही नहीं समझते वे भी भ्रममें ही हैं।

जहाँतक बने विषयोंका संग्रह न करे, विषयोंका चिन्तन न करे, विषयी पुरुषोंका संग न करे, विषयासक्ति बढ़ानेवाले दृश्य न देखे, बात न सुने और इस तरहके ग्रन्थ न पढ़े। मानका, धनका, रूपका लोभ उत्पन्न होता हो तो ऐसे हर एक संगसे भरसक दूर रहे। लोकमें मान न हुआ, धन न बढ़ा तो इससे मनुष्यकी कोई हानि नहीं होती। यदि संसारके सारे सुखोंसे वञ्चित रहकर भी, संसारके दु:ख और कष्टोंसे सर्वथा पीड़ित रहकर भी मनुष्य अपने जीवनको भगवान्की ओर लगाये रख सके तो उसका जीवन सार्थक है, परंतु जो सब प्रकारसे धन-सम्पत्ति, मान-यश और लौकिक विद्या-बुद्धिसे भरपूर है पर भगवत्प्रेमसे रहित है, उसका जीवन विषयी लोगोंकी दृष्टिमें चाहे जितना ऊँचा हो, गौरवका हो परंतु असलमें वह व्यर्थ है। व्यर्थ ही नहीं, अगले जन्ममें आनेवाले महान् कष्टोंका कारण भी है।—'**शिव**'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण और उसकी प्राप्तिके उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कल्याण मुक्तिको कहते हैं, यह शब्द परमपद या परमगतिका वाचक है। कल्याणको प्राप्त करनेके प्रधान उपाय तीन हैं—(१) निष्काम-कर्मयोग, (२) ज्ञानयोग अर्थात् सांख्ययोग और (३) भक्तियोग अर्थात् ध्यानयोग। इनमें भक्तिका साधन स्वतन्त्र भी किया जा सकता है और निष्काम-कर्मयोग एवं सांख्ययोगके साथ भी।

निष्काम-कर्मयोगका विस्तृत वर्णन श्रीमद्भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायके ३९ श्लोकसे ५३वें श्लोकतक है और निष्काम-कर्मयोगद्वारा सिद्धिको प्राप्त हुए पुरुषोंके लक्षण इसी अध्यायके ५४ से ७२वें श्लोकतक वर्णित हैं।

ज्ञानयोगका विस्तारसे वर्णन द्वितीय अध्यायके ११ से ३०वें श्लोकतक है और उसीके अनुसार तृतीय अध्यायके २८वें, पञ्चम अध्यायके ८वें और ९वें तथा चतुर्दश अध्यायके १९वें श्लोकमें ज्ञानयोगीके कर्म करनेकी विधि बतलायी है। इसके अतिरिक्त पञ्चम अध्यायके १३ से २६वें श्लोकतक ज्ञानयोग और अष्टादश अध्यायके ४९ से ५५वें श्लोकतक उपासना-सहित ज्ञानयोगका वर्णन है।

पञ्चम अध्यायके २७ से २९वें, षष्ठ अध्यायके ११ से ३२वें, अष्टम अध्यायके ५ से २२वें, नवम अध्यायके ३० से ३४वें, दशम अध्यायके ८ से १२वें, एकादश अध्यायके ३५ से ५५वें और द्वादश अध्यायके २ से ८वें श्लोकतक ध्यानयोग या भक्तियोगका वर्णन है, वास्तवमें ध्यानयोग और भक्तियोग एक ही वस्तु है। इसी प्रकार श्रीगीताजीके अन्यान्य स्थलोंमें भी तीनों साधनोंका भिन्न-भिन्न रूपसे वर्णन है, इन सबमें वर्तमान समयके लिये कल्याणकी प्राप्तिका सबसे सुगम और उत्तम उपाय भक्तिसहित निष्काम कर्मयोग है। इसका बड़ा सुन्दर उपदेश श्रीगीताजीके अष्टादश अध्यायके निम्नलिखित ११ श्लोकोंमें है—भगवान् श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥
यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ५६—६६)

'मेरे परायण हुआ निष्काम-कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है। अतएव हे अर्जुन! तू सब कर्मोंको मनसे मेरेमें अर्पण करके मेरे परायण हुआ समत्व-बुद्धिरूप निष्काम-कर्मयोगका अवलम्बन करके निरन्तर मेरेमें चित्तवाला हो।'

'इस प्रकार तू मेरेमें निरन्तर मनवाला हुआ मेरी कृपासे जन्म-मृत्यु आदि संकटोंसे अनायास ही तर जायगा और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा।'

'जो तू अहंकारका अवलम्बन करके ऐसे मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि क्षत्रियपनका स्वभाव तेरेको जबर्दस्ती युद्धमें लगा देगा।'

'हे अर्जुन! जिस कर्मको तू मोहसे नहीं करना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बँधा हुआ परवश होकर करेगा।'

'क्योंकि हे अर्जुन! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। अतएव हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको एवं सनातन परमधामको प्राप्त होगा।'

'इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिये कहा है। इस रहस्ययुक्त ज्ञानको सम्पूर्णतासे अच्छी प्रकार विचार करके फिर तू जैसे चाहता है वैसे ही कर—यानी जैसी तेरी इच्छा हो वैसे ही कर।'

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण गोपनीयोंसे भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन; क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है इससे यह परम हितकारक वचन मैं तेरे लिये कहूँगा।'

'हे अर्जुन! तू केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वरको ही अतिशय श्रद्धा-भक्तिसहित निष्काम-भावसे नाम-गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और पठन-पाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो तथा मुझ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट-कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर, वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णुका मन, वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा-भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको विनय-भावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर, ऐसा करनेसे तू मेरेको ही प्राप्त होगा, यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय सखा है।'

'अतएव सर्वधर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा तू शोक मत कर!'

कैसा दिव्य उपदेश है! इसके सिवाय ध्यानयोग और भक्तियोग-सम्बन्धी ग्रन्थोंमें पातञ्जल-योगदर्शन ध्यानयोगका और नारदसूत्र तथा शाण्डिल्यसूत्र भक्तियोगके प्रधान ग्रन्थ हैं। अवश्य ही इनमें कुछ मतभेद हैं, परंतु इन ग्रन्थोंमें भक्तियोगका ही प्रतिपादन है। इन ग्रन्थोंका मनन करनेसे भक्तियोगका बहुत कुछ पता लग सकता है।

बहुत विस्तारसे न लिखकर मैंने श्रीगीताजीके कुछ श्लोकोंको उद्धृत कर तथा कुछकी केवल संख्या ही बतलाकर पाठकोंसे संकेत मात्र कर दिया है। यदि कोई सज्जन इन श्लोकोंके अर्थका मननकर उसके अनुसार चलना आरम्भ कर दें तो मेरी सम्मतिमें उनको परम कल्याण-मोक्षकी प्राप्ति बहुत ही सुगमतासे हो सकती है।

भगवान्के चरण-कमलोंकी स्मृतिका महत्त्व

श्रीसूतजी कहते हैं—

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥

(श्रीमद्भा० १२। १२। ५४)

'भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी अविचल स्मृति सारे पाप-तापरूपी अमङ्गलोंको नष्ट कर देती और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचरणकी कसौटी

(गोलोकवासी म० म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा, चतुर्वेदी)

प्राच्य सभ्यतामें शास्त्रको आचरणकी शुद्धताकी कसौटी माना गया है, परंतु पाश्चात्त्य विचारकोंकी दृष्टिमें अपना मन ही अपने आचरणोंकी शुचिता या अशुचिताकी वास्तविक कसौटी है। यद्यपि यहाँ मन और बुद्धिको एक ही समझा गया है या यों समझिये कि अन्तःकरणको यहाँ मन कहा गया है। इससे यह भी निश्चित होता है कि सभी अपने-अपने मनके अनुसार ठीक समझकर ही कोई काम करते हैं, किंतु प्रश्न उठता है कि यदि सभीके मनपर अपने-अपने आचरणका उत्तरदायित्व छोड़ दिया जाय, तब तो समाजमें बड़ा विप्लव हो जायगा। चोर, डाकू आदि भी बुरे कार्योंमें मनकी आज्ञासे ही तो प्रवृत्त होते हैं फिर अपने मनके अनुसार आचरण करनेसे उनके कार्य भी उचित कहे जाने लगेंगे। यदि यह कहा जाय कि सबके मनोऽनुकूल आचरणोंको तो नहीं परंतु शिक्षित सभ्य व्यक्तियोंके मनोऽनुकूल आचरणको प्रमाण माना जा सकता है, तब उसपर हमें यही कहना है कि शिक्षा-प्राप्तिके द्वारा अपने मनको सुसंस्कृत करनेके बाद उसके आधारपर चलना तो दूसरे शब्दोंमें शास्त्रानुसार आचरण ही हुआ। शिक्षा और शास्त्रमें तो कोई भेद नहीं, केवल नाम-मात्रका भेद है। परंतु परस्पर विरुद्ध आचरणमें जहाँ शिक्षितोंमें भी मतभेद हो जाता है, वहाँ फिर किसके मनको प्रमाण माना जाय। वहाँ फिर हमें शास्त्रका ही आधार लेना होगा। यदि अपने-अपने आचरणको उनके मनपर छोड़ दिया जाय तो इसमें भी वही आपत्ति कुछ परिष्कृत-रूपमें आयेगी जो पहले दिखायी जा चुकी है। समाजशास्त्री किसी एक व्यक्तिके आचरणकी शुद्धतापर विचार नहीं कर सकता, उसे तो प्रत्येक आचरणके व्यापक प्रभावोंको दृष्टिमें रखकर समाजको ले चलना होता है। शास्त्र तो उसीको कहते हैं जो सदा अभ्रान्त सत्य मार्गका दिग्दर्शक हो। मन या बुद्धिमें तो वैषम्य सर्वदा रहता है। बालकोंकी शिक्षाके विषयमें यदि उनके मनपर छोड़ दिया जाय तो कितने बालक होंगे जो अपने मनसे अध्ययनमें प्रवृत्त होंगे। बच्चोंका मन स्वतः पढ़ाईकी ओर प्रायः नहीं जाता। मनको आचरणकी कसौटी सिद्ध करते समय आधुनिक विचारक यह क्यों भूल जाते हैं कि उनकी पद्धतिमें फिर कानूनकी भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। परंतु शास्त्रकी मान्यतापर अविश्वास करनेवाले भी न मालूम क्यों न्यायालयकी आवश्यकताका अनुभव करते हैं। सभीका आचरण तो अपने मनोऽनुकूल है और मनकी अनुकूलता ही आचरणकी अन्तिम कसौटी है।

इसपर बुद्धिवादी समुदायकी ओरसे यह एक प्रबल तर्क दिया जाता है कि क्या शास्त्रकी बातें बिना बुद्धिके ही समझमें आ जायँगी? यदि शास्त्र समझनेके लिये भी बुद्धिकी आवश्यकता अनिवार्य है तब क्यों बुद्धिवादका निषेध किया जाता है? इसपर आर्य संस्कृतिमें यही कहा जाता है कि मुख्य शास्त्र वेद हैं और वे किसीकी बुद्धिसे प्रसूत नहीं हैं। वे ईश्वरकी प्रेरणासे महर्षियोंके हृदयमें प्रादुर्भूत हैं और यदि महर्षियोंकी बुद्धिसे ही उन्हें प्रसूत मान लिया जाय तो भी वह बुद्धि योग-समाधिद्वारा प्राप्त है, जिसे योग-शास्त्रमें ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा गया है। उस बुद्धिके अनुसार अपनी बुद्धिको चलानेसे ही बुद्धिको दोहरा श्रम दिया जाय, इसके अतिरिक्त शास्त्र भी तो किसीकी बुद्धिसे ही प्रसूत है तब अन्ततः शास्त्रवादमें भी तो बुद्धिवाद ही आया। सीधे-सीधे बुद्धिसे कार्य-अकार्यका निर्णय करनेमें क्या क्षति है? इसके लिये हमें पुनः यही कहना है, बुद्धिका अनेक बार प्रयोग करना कोई बुरी बात नहीं। बुद्धि कोई ऐसी वस्तु नहीं जो सुरक्षित रखनेके लिये बनायी गयी हो। बुद्धिके प्रयोगका यही मार्ग है, किंतु बुद्धिको कोई आधार अवश्य चाहिये। बुद्धिको यदि आप शास्त्रके समझनेसे अवकाश दे देंगे तो आपका वही हाल होगा जो बिना लगामवाले चंचल अश्वके सवारका होता है। यही बात गीतामें भी भलीभाँति समझायी गयी है। इसलिये शास्त्रानुशासनसे संवलित बुद्धिके आचरण ही कल्याणकारी और समाज-विधारक हो सकते हैं। ऐसे आचरणमें कोई त्रुटि नहीं आ सकती। शास्त्रोपेक्षा-प्रसूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि कभी आचरणोंकी उदात्तताकी ओर अग्रसर नहीं कर सकती।

सामान्य मनुष्योंकी बुद्धि तो सदा परिवर्तनशील रहती है। आज जिस बातको हमारा मन बहुत अच्छा समझता है, उसको १० दिन बाद हम अति निकृष्ट समझें, ऐसा प्रायः सर्वत्र अनुभवमें आता है। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है कि हजरत ईसामसीहके उपदेशोंको उस समयके बुद्धिमानोंने भी अनुचित समझा और इसके लिये उन्हें बहुत कष्ट झेलने पड़े। किंतु आज प्रायः सम्पूर्ण यूरोप उनके उपदेशोंका अनुगामी है। इसलिये एक मनुष्यकी या समाजकी बुद्धि स्वतन्त्र-रूपसे सत्यका निर्णय नहीं कर सकती, यह स्पष्ट हो जाता है।

प्राचीन भारतीय व्यवहारविदों और वर्तमान व्यवहार-विशेषज्ञोंकी विचारधाराओंमें एक और बड़ा भेद है। प्राचीन भारतीय आचारशास्त्रकी यह प्रबल मान्यता है कि जहाँतक शुद्धता और पवित्रताका प्रश्न है, उसका क्षेत्र न केवल हमारा भौतिक शरीर ही है, अपितु हमारे मन-बुद्धि और आत्मा भी हैं। जब हमें स्वयंको पवित्र रखनेके लिये किसी वस्तुका त्याग और किसीको ग्रहण करनेकी आवश्यकता होगी तो उसका फैसला हम अपने केवल बाह्य शरीरको ही लक्ष्यमें रखकर नहीं, अपितु मन-बुद्धि और आत्माको भी लक्ष्यमें रखकर करेंगे। आधुनिक विचारक यहाँतक साथ नहीं देते, उनका कहना है कि शरीरसे अधिक महत्त्व मनका है। यदि मन पवित्र है तो यह आवश्यक नहीं कि खाद्याखाद्य और वर्ज्यावर्ज्यके फेरमें पड़ा जाय। मनुष्यके शारीरिक आचरण उनके अपने व्यक्तिगत हैं। उसके विषयमें आलोचना करना किसी अन्यका कर्तव्य नहीं। वह जैसा उचित समझता है वैसा ही करता है, इतना ही समझ लेना पर्याप्त है। इसपर वक्तव्य यह है कि शास्त्र भी मनकी पवित्रताको ही मुख्य मानते हैं, इसलिये इस अंशमें कोई विवाद नहीं, किंतु प्रश्न यह है कि मनकी पवित्रताका उपाय क्या है? आजतक ऐसा कोई साबुन आविष्कृत नहीं हुआ जो मनको धोकर साफ कर दिया करे और मनमें परिवर्तन होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। पहले ही कहा जा चुका है कि जो १० दिन पूर्व बड़े महात्मा गिने जाते थे, आज अत्यन्त गिर गये हैं, इसके प्रत्यक्ष दृष्टान्तोंकी समाजमें कमी नहीं। फिर मन सदा ही पवित्र रहे उसके उपायका अन्वेषण तो आवश्यक होगा। हमारे प्राचीनतम सर्वमान्य छान्दोग्य उपनिषद्में इसका उपाय यही बतलाया है कि—'**अन्नमयं हि सोम्य मनः**' अर्थात् मन अन्नका ही परिणाम है। इसकी उपपत्ति भी यह है कि जो अन्न हम ग्रहण करते हैं, उसके ३ भाग हो जाते हैं, स्थूल भाग मलरूपमें परिणत होकर शरीरसे निकल जाता है। मध्यम भाग रस, रुधिर, मांस आदि क्रमसे शरीरका पोषक होता है और अतिसूक्ष्म भाग मनको पुष्ट करता रहता है। अतएव अन्न न खानेपर मन भी दुर्बल हो जाता है; यह बात वहाँ श्वेतकेतुको उपवास कराकर स्पष्ट-रूपसे प्रत्यक्ष करायी गयी है। इस प्रक्रियासे तो स्पष्ट हो जाता है कि मनको शुद्ध रखनेका उपाय आहार-विहारकी शुद्धि ही है। आहार-विहारमें रजोगुण या तमोगुणका सम्बन्ध होनेपर मनमें भी रज और तमका प्रवेश होगा और रज-तमका प्रवेश ही मलिनता है। इसीलिये आर्य शास्त्रोंमें जिनमें तमोगुण अधिक है, ऐसे पदार्थोंका उपयोग निषिद्ध ठहराया है। यह भी स्मरण रहे कि आर्य संस्कृतिमें पुनर्जन्मवाद भी मुख्य है। यह जीवन मात्र ही हमारा सब कुछ नहीं है। आगेके लिये भी बुद्धिका प्रयत्न हमें करना है, सम्भव है कि आहार आदिके रज-तमका प्रभाव स्वल्प होनेके कारण और मनमें पहलेसे सत्त्व अधिक होनेके कारण इस जन्ममें अभिव्यक्त न हो सके, किंतु किसी-न-किसी समय तो वह अवश्य व्यक्त होगा और अन्य जन्ममें हानिकर सिद्ध होगा। इसलिये इस जन्मके ऐसे दृष्टान्त कि भोजनादिका संयम न रहनेपर भी कई व्यक्ति मनसे पवित्र बने रहे, उनसे भी आर्य-संस्कृतिका सिद्धान्त कट नहीं सकता। आत्मा-पर्यन्त दृष्टि रखकर धर्म निर्णय करनेके कारण ही आर्य संस्कृतिका धर्म परिपूर्ण एवं निर्विवाद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकी रक्षा करनेवाला अन्तमें विजयी होता है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ५८२ से आगे]

आज हमने 'कामोपभोग'को ही जीवनका सार-सर्वस्व समझ लिया। इससे सत्य, न्याय, धर्म और भगवान्‌का हमें कोई भी ध्यान नहीं रहा। किसी भी तरहसे धन कमाना और उसे भोगना हमारे जीवनका एकमात्र ध्येय और उसके लिये बुरे-से-बुरा काम करना हमारे जीवनका कर्तव्य हो गया। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्॥

× × ×

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

(१६। ११-१२, १६)

'वे जीवनके अन्तिम क्षणतक रहनेवाली अपरिमित चिन्ताओंसे घिरे रहते हैं। काम और उपभोगके परायण रहते हैं और इसीको जीवनका निश्चित सिद्धान्त मानते हैं। अतएव वे विषय-सुख-आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे रहते हैं और काम-क्रोधको ही अपना बल मानकर अन्यायपूर्वक अर्थ-संग्रह करनेमें लगे रहते हैं।'

× × ×

'ऐसे वे अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले और मोह-जालसे अच्छी तरह ढके हुए कामोपभोगमें अत्यन्त आसक्त लोग अशुचि नरकोंमें गिरते हैं।'

कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय मान लेनेपर जो परिणाम होता है, वही आज हमारे सामने है। आज हम जीवनका स्तर ऊँचा उठानेकी बात बड़े जोरोंसे कहते हैं। यह जीवनका ऊँचा स्तर आचरणोंकी उच्चता नहीं, सदाचारकी प्रगति नहीं, दैवी सम्पदाका अभ्युदय नहीं—यह है 'भोगोंकी अधिकतासे भरा असंयमी जीवन। बढ़े खर्चसे दबा संकुचित परंतु प्रमादी जीवन।' आज समाजमें इसी कारण अर्थ-महत्त्व तथा अर्थ-महत्ताके साथ चोर-पूजाका प्रसार हो रहा है। कैसे भी आयें, अर्थ और अधिकार आने चाहिये और जिसके पास अर्थ और अधिकार, वही समाजका पूज्य पुरुष!!

एक भाईने मुझसे कहा—'आप व्याख्यान देते हैं, पर आपको जरूरत हो, तब पता लगे? बच्चा बीमार है, घरमें दवा नहीं है, दूधके लिये पैसा नहीं है। जाड़ेमें वह सिकुड़ रहा है, पर ओढ़ानेके लिये कपड़ा नहीं है। महिलाकी लाज ढकनेके लिये पर्दा नहीं है। ऐसी अवस्थामें क्या किया जाय?' यह बात सर्वथा सत्य है और बड़ी ही दुःखद है। इसका शीघ्र-से-शीघ्र मिटना आवश्यक है। पर यह भी कामोपभोगपरायणताका तथा अर्थ-लोलुपताका ही दुष्परिणाम है। अन्यायसे अर्थ-संचयकी प्रवृत्ति न होती तो इन दुःखी भाई-बहनोंके दुःख-कष्ट बहुत कुछ मिट जाते। हम यदि बेहकका पैसा, दूसरेके स्वत्वका धन लेना छोड़ दें तो इन भाइयोंकी दशामें बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

हमने भोगपरायणताके कारण अर्थकी आवश्यकता अत्यन्त बढ़ा ली, इससे समाजमें दुःख और भी बढ़ गया। प्राचीन युगमें 'अर्थ'की प्रधानता नहीं थी, 'त्याग' की थी। और 'अधिकार'के स्थानपर 'कर्तव्य'की प्रधानता थी। इससे 'त्याग' और 'कर्तव्य'में ही गौरव तथा महत्त्व माना जाता था। सादा पवित्र जीवन आदर्श था। कश्मीरके प्रकाण्ड पण्डित श्रीकैयटके जीवनकी बात है। वे अत्यन्त सादगीसे जीवन बिताते थे। काशीसे आये हुए कुछ विद्वानोंके अनुरोधसे कश्मीरनरेशने कैयटजीको कुछ गाँव लेनेके लिये प्रार्थना की तथा यह कहा कि 'महाराज! जिस राजाके राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण कष्ट पाते हैं, वह राजा पापका भागी होता है।' इसपर त्यागमूर्ति कैयटजी अपनी चटाई बगलमें दबाकर खड़े हो गये और अपनी धर्मपत्नीसे बोले—'हमारे यहाँ रहनेसे महाराजको पाप लगता है तो चलो, और कहीं चलें। तुम मेरी पुस्तकें ले लो।' यों कहकर चलते बने। कश्मीरनरेशने चरणोंपर सिर रखकर बड़ी कठिनतासे उनको रखा। उन्होंने राजासे कह दिया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मुझे कभी किसी वस्तुका प्रलोभन मत देना। यही मेरी सर्वोत्तम सेवा होगी।'

उस समय इस प्रकारका सहज त्याग था और त्यागमें ही गौरव था। समाजमें सम्मानित और पूज्य पुरुष त्यागी ही समझे जाते थे और बड़े-बड़े धनी-मानी उनके चरणोंपर अपना मस्तक टेककर अपनेको धन्य मानते थे। न इतनी भोगपरायणता थी न धनलोलुपता। राजालोग समय-समयपर अपना सर्वस्व—धातुके लोटे-थालीतक प्रजामें वितरण कर देते थे, जिससे समाजमें कोई भूखा नहीं रह पाता था। आजकी तरह राजनीतिक गुटबंदी नहीं थी। मिथ्या देशोन्नतिके नामपर मानव-द्रोह या जीव-द्रोह बहुत कम था। इसीसे इतनी महँगी भी नहीं थी। बहुत दिनों पहलेकी बात नहीं है, कुछ ही शताब्दियों पूर्व बंगालमें शाइस्ता खाँके जमानेमें एक रुपयेके आठ मन चावल बिकते थे। सन् १९१६ में मैं पश्चिम बंगालके एक गाँवमें राजनीतिक कारणोंसे नजरबंद था, उस समय वहाँ डेढ़ रुपये मन बढ़िया चावल मिलते थे। रुपयेका डेढ़ सेर शुद्ध घी मिलता था। अब तो वह जमाना स्वप्न ही हो गया। इसका कारण खोजनेपर एक प्रधान कारण मिलेगा—हमारी भोगपरायणता और अर्थलोलुपताकी वृद्धि। हम यदि ईश्वरका विश्वास करके भोगवासनासे रहित हो सत्यपरायण हो जायँ तथा हमारे आचरणोंमें परहितरूप धर्म आ जाय तो बहुत-सी समस्याएँ हल हो जायँ और जीवनमें एक अपूर्व शान्ति छा जाय। आज तो चारों ओर अशान्तिका हाहाकार है। अर्थ और अधिकारकी भयानक छीना-झपटी मची हुई है। तब शान्ति कैसे हो। शान्ति अंदरसे आती है। वह बाजारमें नहीं मिलती। न किसी दूकानमें बिकती है। वह है त्यागमें—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।**' शान्तिका उपाय बतलाते हुए भगवान् कहते हैं—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

अथवा—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

'जो सारी भोगकामनाओंको छोड़कर, निःस्पृह, ममतारहित और अहंकाररहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है' अथवा 'जो भगवान्‌को समस्त यज्ञ-तपोंके भोक्ता, समस्त लोकोंके महान् ईश्वर (सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर) तथा उनको जीवमात्रका सुहृद् होनेके नाते अपना सुहृद् जान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

या तो सारी कामना, अपेक्षा, ममता और अहंताको छोड़ो या सहज सुहृद् भगवान्‌के हो जाओ—तभी शान्ति मिलेगी। भोगोंसे न आजतक किसीको शान्ति मिली है न मिल ही सकती है।

जबतक भोगकामना है, तबतक हृदयमें आग जलती ही रहेगी और वह अग्निमें आहुति पड़नेपर अग्निके ज्यादा भड़कनेकी भाँति भोगोंकी प्राप्तिसे और भी बढ़ती रहेगी। सारे जहानको जबर्दस्ती जलानेवाली यह याचकता ही है। तुलसीदासजी कहते हैं—भगवान् राघवेन्द्रसे याचना करनेपर यह याचकता जल जाती है—

जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥

अतः भगवान्‌पर विश्वास करके भोगपरायणताको अपने जीवनसे निकाल दीजिये। संसारमें जो कुछ हानि-लाभ होता है, वह तो होगा ही। जैसे बिना बुलाये हानि या दुःख आते हैं, वैसे ही बिना बुलाये लाभ या सुख भी अपने-आप आयेंगे। निमित्त कुछ भी हो, जो मिलना है, वह मिलेगा ही, आप स्वेच्छासे बुराईमें निमित्त बनकर अपनेको पाप-पङ्कमें मत फँसाइये। भगवान्‌पर तथा सत्यपर डटे रहिये।

सरकारी करके सम्बन्धमें एक दलील दी जाती है, जो आपद्धर्मकी दृष्टिसे नीतिके क्षेत्रमें कुछ औचित्य भी रखती है। वह यह है कि 'यदि कोई डाकुओंका जबर्दस्त दल हमारे घरमें घुस जाय और लूटनेके लिये हमसे धनका पता पूछे तो उस समय जैसे उससे छिपाना उचित होता है, वैसे ही कोई सत्तारूढ डकैतोंकी तरह निर्दय होकर जनताके धनको लूटनेपर उतारू हो जाय तो उस समय उससे धनको छिपाना उचित क्यों नहीं है?' बात तो कुछ ठीक है, पर सत्य और भगवान्‌में विश्वास रखनेवालोंके लिये सत्य और धर्मकी रक्षाका जितना मूल्य और महत्त्व है, उतना धन-रक्षाके लिये मिथ्याचरणका नहीं है। वरं धर्म-रक्षाके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्याचरणकी तुलना ही नहीं हो सकती।

सत्य तथा भगवान्पर विश्वास रखनेवालेपर प्रारब्धवश एक बार विपत्ति आती दीख सकती है, परंतु उस प्रारब्धफलका भोग समाप्त होते ही भगवान्की ओरसे उसको सत्यरक्षा तथा भगवद्विश्वासका जो महान् पुरस्कार मिलेगा, उसकी तुलना किसी भी लाभसे नहीं हो सकती। धर्मरक्षामें कष्ट सहना ही तो तप है। जो इस प्रकार तप करता है, वह भगवान्को अत्यन्त प्रिय होता है। भगवान्पर, उनकी कृपापर, उनके मङ्गलविधानपर विश्वास करके बन्धनमें डालनेवाले इस संसारको फटकारना चाहिये। भगवान्के सामने अपनेको अत्यन्त नीच, पापी माननेवाले श्रीगोस्वामीजी भगवान्के बलपर संसारको ऐसी फटकार बताते हुए कहते हैं—

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट-आगार॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किये बिचार।
ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार।
महामोह-मृग-जल-सरिता महँ बोर्यो हौं बारहिं बार॥
सुनु खल छल-बल कोटि किये बस होहिं न भगत उदार।
सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरै मरै रजु-अहि तें बूझै नहिं ब्यवहार॥
निज हित सुनु सठ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभुके दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार॥

'अरे संसार! मैंने तुझको जान लिया, तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है, पर मेरे पास भगवान्का बल है, अतः तू मुझे नहीं बाँध सकता। तू देखनेमें ही सुन्दर है, पर विचार करनेपर तो कुछ है ही नहीं। जैसे केलेके पेड़में देखो तो उसमेंसे कभी गूदा निकलता ही नहीं। अरे, तेरे लिये मैं अनेक जन्मोंमें भटकता फिरा, पर तेरा पार नहीं पाया। तू मुझे महामोहरूपी मृगतृष्णाकी नदीमें बार-बार डुबाता रहा। अरे दुष्ट! सुन, तू चाहे करोड़ों छल-बल क्यों न करे, भगवान्का श्रेष्ठ भक्त तेरे वशमें नहीं हो सकता। तू अपनी सेनाके साथ कहीं जाकर रह, जिस हृदयमें भगवान् नन्दनन्दन न बसते हों। जो तेरा मर्म न जानता हो, उसीको अपनी चतुराई दिखा। रस्सीरूप साँपसे डरकर तो वही मरेगा, जो उसका भेद न जानता होगा। अरे शठ! अपने हितकी बात सुन, जो परिवारसहित अपनी कुशल चाहता है तो हठ मत कर। तुलसीदासके प्रभु श्रीरामजीके सेवकोंको छोड़कर तू उन्हींका सेवन कर, जहाँ मद और काम हों।'

जो भगवान्के बल-भरोसेपर काम करेगा, वह कभी परास्त नहीं होगा। अर्जुनने भगवान्की शरण ग्रहण करके उनके आज्ञानुसार युद्धारम्भ किया। युद्धमें कई बार ऐसे अवसर दिखायी दिये कि अब अर्जुन हारे, अब तो मर ही गये। पर भगवत्कृपासे वे सर्वथा सुरक्षित रहे और अन्तमें उनको विजय प्राप्त हुई। संजयने बहुत ठीक कहा—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

(गीता १८। ७८)

'जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—यह मेरा मत है।' '**हरिः ॐ तत्सत्।**' (समाप्त)

मुझमें मन लगाओ, मुझमें ही बुद्धि लगाओ, ऐसा करनेसे मुझमें ही निवास करोगे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

—भगवान् श्रीकृष्ण

× × ×

जबतक परमात्माके यथार्थ स्वरूपकी पहचान नहीं होती तभीतक अविद्यारूप और संसारी जीवरूप भासता है, वास्तव-स्वरूपकी पहचान होते ही जीवभाव और दृश्यभाव निवृत्त होकर एक परब्रह्मरूप ही दृष्टिगोचर होने लगता है।

—योगवासिष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ५९२ से आगे]

जनसाधारणकी दृष्टिमें व्रज अब सूना हो गया। व्रजराजनन्दन मथुरा चले गये। अपने पीछे वे ग्यारह वर्षकी बड़ी ही मधुर सुधामयी स्मृति छोड़ गये हैं। यह स्मृति व्रजवासियोंके हृत्पटपर अङ्कित है, जिसमें उलझे हुए उनके प्राण निकल नहीं पा रहे हैं, अन्यथा उड़कर प्राणाधार व्रजराजनन्दनके पास कभीके चले गये होते।

उन व्रजवासियोंके नेत्र श्रीकृष्णलीलामय हो चुके हैं। निरन्तर उनकी आँखोंके सामने एक लीलाचक्र घूमता रहता है। वे अनुभव करते रहते हैं—नन्दप्राङ्गणमें हरिद्रामिश्रित दधिका प्रवाह बह रहा है; यशोदाकी गोदमें एक महामरकतद्युति मनोहर शिशु है। शिशु तो निष्प्राण पूतनाके वक्षःस्थलपर खेल रहा है। यशोदा अपने प्राणधन नीलमणिको पालनेमें झुला रही हैं। गोपशिशु कोलाहल कर रहे हैं। नीलमणिने अपने नन्हे-नन्हे चरणोंको उछाला। उसीसे विशाल शकट उलट गया है। हमने आँखोंसे यह स्वयं देखा है। तृणावर्तके अङ्ग चूर्ण-विचूर्ण होकर शिलापर पड़े हैं। नीलमणि उसपर पड़ा हुआ किलक रहा है। नीलमणि चलना सीख गया। अरे! यह तो गोवत्सोंसे अब तनिक भी नहीं डरता। आज दिनभर उनकी पूँछें पकड़े घूमता रहा है। यशोदाका चञ्चल नीलमणि छिपकर नवनीत खाने आया है। स्वयं खाकर बंदरोंको वितरण कर रहा है। यह देखो, दुहनेके पहले ही बछड़ोंको खोलकर उसने सारा दूध पिला दिया। श्रीदाम मैयासे कह रहा है—मैया! नीलमणिने मिट्टी खायी है। मैया भाँड़ फोड़नेके अपराधमें नीलमणिको ऊखलसे बाँध रही है। हम सभीलोग वृन्दावन चल रहे हैं। नीलमणि भी छकड़ेपर चढ़ी हुई यशोदा मैयाकी गोदमें बैठा चल रहा है। इन बछड़ोंको चरानेके लिये आज नीलमणि सज-धजकर वन जा रहा है। व्रजाङ्गनाएँ पूछ रही हैं—'बेटा सुबल! बता तो, नीलमणिने वत्सासुरको कैसे उठाकर पटका। मेरे नीलमणि! वकासुरको चीर डालते हुए तुझे भय नहीं लगा? भला, इन सुकोमल हाथोंसे तूने व्योमासुरका कचूमर कैसे निकाला?' यशोदा कह रही हैं—'अघासुरसे रक्षा नारायणने ही की, भला उसके मुखमें जाकर नीलमणि जीवित निकल आये, यह कभी सम्भव था?' नीलमणि कालियके फनपर थिरक-थिरककर नाच रहा है। आकाशमें बाजे बज रहे हैं, देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। गोचारण करते हुए नीलमणि वनमें विविध खेल खेल रहा है। मधुमङ्गल कह रहा है—'री गोपियो! सुनो, कन्हैयाके साथ हम सब तालफल खाने बैठे ही थे कि धेनुकासुर आया। दाऊ दादाने उसे पतंगकी तरह उछाला और आकाशमें घुमाकर मार डाला।' श्रीदाम कह रहा है—'गोपियो! सुनो, हमारी गायें अलग चर रही थीं, कन्हैया खेलमें हारकर मुझे पीठपर उठाये चल रहा था, इतनेमें बालक बना हुआ प्रलम्बासुर दाऊ दादाको ले भागा। दाऊ दादाने एक मुक्कीकी चोटसे ही उसे मार डाला।' गोपशिशु मैया यशोदासे कह रहे हैं—'मैया! उसी रातकी तरह फिर आज वनमें दावानल जल उठा था। कन्हैयाके कहनेसे हमलोगोंने आँखे मूँद लीं। बस, पता नहीं उसी क्षण अग्नि कहाँ चली गयी। ओह! अनवरत मूसलाधार वृष्टि हो रही है। सात दिन हो गये, मेरे नीलमणिके हाथपर गिरिराज टिके हुए हैं। नीलमणि, नीलमणि! तेरे हाथोंमें पीड़ा तो नहीं हो रही है? नन्दराय वरुणलोकसे लौटकर कह रहे हैं—'सचमुच मेरे नीलमणिमें साक्षात् नारायण आविष्ट होकर हमलोगोंकी रक्षा करते हैं, आवेशके समय ही मेरा नन्हा-सा नीलमणि अलौकिक—असम्भव कार्य कर देता है। आवेशके समय देवता मेरे नीलमणिमें साक्षात् परम-पुरुषको देखकर उसकी अर्चना करते हैं।' गोपशिशु कह रहे हैं—'मैया! तुम्हारी छाक तो आज पहुँची नहीं, हमलोग भी जल्दीमें आज कुछ भी कलेवा साथ नहीं ले गये थे। गाय चराते-चराते भूखसे व्याकुल हो गये। ब्राह्मणोंके पास कुछ माँगने गये। उन्होंने कुछ भी न दिया। फिर द्विजपत्नियोंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर कहा, कन्हैयाका नाम सुनते ही वे सब बावरी-सी हो गयीं। अपने घरसे मिष्टान्नकी थालियाँ भर-भरकर दौड़ पड़ीं। सबने जाकर कन्हैयाको घेर लिया। बहुत देरतक कन्हैयासे कुछ कह-कहकर सब रोती रहीं; फिर लौट आयीं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनको बाह्यज्ञान नहीं है। हमलोगोंने भर पेट खाया; फिर जाकर देखा, तो वे समाधिस्थ-सी बैठी थीं, और ब्राह्मण सभी पश्चात्ताप करते हुए दुःखसे जलते हुए रो रहे थे—'हाय! हाय!! व्रजेन्द्रनन्दनके लिये हमारे सूखे हृदयोंमें जरा भी प्यार नहीं। ये स्त्रियाँ ही धन्य हैं। हमारे इस जीवनको धिक्कार है। इसमें तो आग लग जानी चाहिये।' सर्पग्रस्त नन्दकी रक्षा करके नीलमणि हँस रहा है। विद्याधर उसकी प्रदक्षिणा कर रहा है; अरिष्टासुरके संहारसे प्रसन्न होकर देवता नीलमणिपर पुष्प बरसा रहे हैं। नन्दरानी नीलमणिके सुकोमल हाथोंको हाथमें लेकर नारायणसे प्रार्थना कर रही हैं—देवाधिदेव! मेरे नीलमणिके हाथ असुरके मुखमें जाकर भी अक्षत रहे, यह तुम्हारी ही अनन्त कृपाका प्रताप है। नीलमणि संध्या-समय हाथमें दोहनी लेकर गोशालामें गाय दुहने जा रहा है, मथुराकी ओरसे रथपर चढ़ा हुआ कोई आया। नीलमणिके चरणोंमें जाकर लोटने लगा।'

इस प्रकार समस्त व्रजवासी अपने अन्तर्हृदयमें सुधामयी स्मृतिका विचित्र चित्रपट उलटते हुए लीला देखते रहते हैं। जिस समय बाह्यज्ञान होता, उस समय—'हाय, नीलमणि! तुम कहाँ गये। मेरे प्राणधन! कब आओगे, कितने दिन मथुरा और रहोगे' कहकर आँसू बहाने लगते हैं।

व्रजयुवतियोंकी करुण दशाका तो कहना ही क्या। लीलाचक्र उनके सामने भी घूमता रहता है; पर वे तो अब विक्षिप्त-सी हो गयी हैं। इस मतिभ्रमका आरम्भ तो पहले ही हो चुका था। जिस दिन वंशीध्वनि कानोंमें आयी थी, उसी दिनसे वे अनुभव करती थीं, मानो कभी वंशीरवका विराम हुआ ही नहीं। वे अधिकांश समय निश्चित भी नहीं कर पाती थीं कि किस स्थानपर स्थित होकर व्रजराजनन्दन वंशी बजा रहे हैं, निर्णय करनेके उद्देश्यसे जिधर दृष्टि ले जातीं, उधरहीसे स्वरलहरी गूँजती हुई सुनायी पड़ती। आम्र-कदम्बशाखाओंकी ओर देखतीं तो पहले दीखता—पक्षी निमीलित नयनोंसे वंशीध्वनि सुन रहे हैं; फिर दीखता, वृक्ष-शाखा, पत्र-पक्षी कुछ भी नहीं है, केवल व्रजराजनन्दन ही हैं। अरुणाभ अधरोष्ठोंपर वंशी नाच रही है और उससे उन्मादकारी मधु झर रहा है। सोचतीं—नेत्रोंका भ्रम है, श्यामसुन्दर तो वनमें गाय चराने गये हैं। अब यमुनाके तरंगोंकी ओर देखने लग जातीं; अनुभव होता—प्रवाह स्थिर—स्थगित है, तरल तरंगें घन हो गयी हैं। उनके अन्तरालसे ध्वनि आ रही है; पर दूसरे ही क्षण वही दृश्य सामने आता—यमुना, यमुनाकी तरंगोंके स्थानपर सर्वत्र व्रजराजनन्दन भरे हैं। वंशीमें सुरीला स्वर भर रहे हैं। व्रजाङ्गनाएँ विचारमें पड़ जातीं—हमारी ऐसी दशा क्यों है, हम क्यों नहीं निर्णय कर पातीं कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर सचमुच कहाँ हैं, कहाँसे वंशी बजा रहे हैं। इसी चिन्तामें आकाशकी ओर देखने लगतीं—प्रतीत होता उधरसे ही वंशीध्वनि आ रही है, और भी एकाग्र होकर दृष्टि डालतीं तो दीखता—विमानोंकी पंक्तियाँ लगी हैं, उनमें सुरललनाएँ बेसुध—मूर्च्छित-सी बैठी हैं। प्रेमावेशसे उनके वस्त्र स्खलित हो गये हैं। वे वंशीध्वनि ही सुन रही हैं; पर एक ही क्षण बाद आँखोंके सामनेसे विमान, सुराङ्गनाएँ सब कुछ अन्तर्हित होकर पुनः समस्त नील गगन वंशीधारी श्यामसुन्दरसे भर जाता; व्रजाङ्गनाएँ कुछ भी निर्णय न कर पातीं। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे व्रजराजनन्दनकी दैनन्दिनी लीलाका रस लेनेके लिये ही वे बीच-बीचमें प्रकृतिस्थ होती थीं, अन्यथा निरन्तर वंशीरवके प्रवाहमें ही बहती रहती थीं। उन व्रजकुमारिकाओंकी भी यही दशा थी, कात्यायनी-उपासनाका फल ही उन्हें मिला था—वंशीरवके उद्गमका अन्वेषण करना; प्राणोंकी उत्कण्ठासे वे उद्गमस्थलको मन-ही-मन ढूँढ़ती रहती थीं। इसीलिये मानो इन व्रजाङ्गनाओंका अथक परिश्रम देखकर ही कृपापरवश होकर दूसरे वर्ष शारदीय पूर्ण शशधरकी निर्मल ज्योत्स्नामें वंशीध्वनिने प्रत्येक गोपाङ्गनाका पृथक्-पृथक् नाम ले-लेकर आवाहन किया। इतना ही नहीं, उसने सबको अपने-आप खींच ले जाकर प्रियतम श्यामसुन्दरसे मिला दिया। वह राकारजनी 'ब्राह्मरजनी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गयी और व्रजाङ्गनाएँ चिदानन्दरसमयी रासलीलाके सुख-सुधा-समुद्रमें डूबकर कृतार्थ हो गयीं। दो वर्ष कुछ महीनोंतक व्रजाङ्गनाएँ अतुलनीय परमानन्द-रसका उपभोग प्रतिदिन करती रहीं। उनका दिन तो श्रीकृष्णभावनाके स्रोतमें समाप्त होता था और रात्रि मिलनानन्द-सिन्धुमें व्यतीत होती थी। पर हठात् सब कुछ बदल गया। अक्रूरके रथपर चढ़कर उनके प्राणाधार प्रियतम मथुरा चले गये। उनके साथ ही उनका भी सब कुछ चला गया। उनकी अन्य सारी स्मृति, सारा विवेक, सारा ज्ञान चला गया है। अब वे निरन्तर पूर्ण मतिभ्रमकी दशामें रह-रहकर रोती हुई पुकार उठती हैं—

अयि दीनदयार्द्र नाथ हे
मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदवलोककातरं
दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

'मेरे स्वामिन्! तुम तो निष्ठुर नहीं हो, तुम्हारा हृदय तो अपार असीम करुणासे भरा है। किसीका भी दुःख तुम देख नहीं सकते। अब तो कंसका भी भय नहीं रहा। अब तो तुम्हीं मथुरेश हो। जो चाहो सो कर सकते हो; फिर मेरे पास क्यों नहीं आते? मेरे जीवनधन! मैं तुम्हें कब देखूँगी? तुम्हारे दर्शनके लिये मेरा हृदय अतिशय कातर हो रहा है, भ्रमित हो रहा है। हाय! मैं क्या करूँ?

व्रजाङ्गनाओंके शरीर क्षीण हो गये हैं, वह ताम्बूल-राग-रञ्जित अधरपुट अब नहीं है, अङ्गोंपर आभूषण भी नहीं हैं, किसी मलिन वस्त्रसे अपने अङ्गोंको आच्छादित रखकर प्रियतम श्रीकृष्णका नाम रटती रहती हैं। नेत्रोंसे अविरल अश्रुप्रवाह बहता रहता है।

इन्हींकी तरह यशोदाजी भी विक्षिप्त हैं। प्रातःकाल जिस क्षण नीलमणि विदा हुए, ठीक उसी क्षणपर वे प्रतिदिन तोरणद्वारपर आकर बैठ जाती हैं और पुकारने लगती हैं—

जसोदा बार बार यों भाषै।
है ब्रज में कोउ हितू हमारो, चलत गोपालहि राखै॥
कहा काज मेरे छगन-मगन कों, नृप मधुपुरी बुलायो।
सुफलक-सुत मेरे प्रान हनन को, कालरूप ह्वै आयो॥
बरु ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलो।
इतनो ही सुख कमलनयन मेरी, अँखियन आगे खेलो॥
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लाऊँ।
तेहि बिछुरत जो जीवौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ॥
कमलनैन-गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ, दुखित नंदकी रानी॥

दासियाँ प्रबोध देती हैं, पर नन्दरानी इस राज्यमें हों तब तो प्रबोध सुनें, वे तो मन-ही-मन अपने नीलमणिको ढूँढ़ती हुई न जाने कहाँ-से-कहाँ घूमती रहती हैं। कभी-कभी कुछ बाह्य ज्ञानकी दशामें मथुराके राजपथपर जा बैठती हैं, जो मिलता है उसीसे नीलमणिको संदेश देती हैं। नीलमणिको संदेश देकर फिर देवकीजीको संदेश देती हैं—

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत निज रहियो॥
जदपि टेव तुम जानत उन की, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कों माखन रोटी भावै॥
तेल उबटनो अरु तातो जल देखत ही भजि जावै।
जोइ-जोइ माँगत, सोइ-सोइ देती, क्रम-क्रम करि-करि न्हावै॥
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासियाँ पकड़ लाती हैं, नन्दरानी दधि-भांडके पास जाकर बैठ जातीं और रोने लगती हैं—

मेरे कुँअर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धर्‌यो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै॥
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज में आनंद हुतो सो, मुनि मनसहु न गहै।
सूरदास स्वामी बिन गोकुल, कौड़ी हू न लहै॥

यह दशा तो विवेकयुक्त मानव-प्राणियोंकी है। व्रजेन्द्रनन्दनकी गायोंकी दशा भी कम हृदयविदारक नहीं है। उनके शरीर सूख गये हैं, तृण चरना उन्होंने छोड़ दिया है, उनके थनोंसे दूध झरना बंद हो गया है, निरन्तर मथुराकी ओर ताकती हुई वे अतिशय खिन्न-मन भटकती रहती हैं—

धेनु नहीं पय स्त्रवत उदित मुख चरत नहीं तृन कंद।

धौरी, धूमरीके गोवत्सोंने तो दूध ही पीना छोड़ दिया है। श्रीकृष्णका नाम सुनते ही वे चौंक उठते हैं, चारों ओर दृष्टि घुमा-घुमाकर देखने लगते हैं।

इस तरह अपने विरहमें जलते हुए व्रजकी दशाका प्रतिरूप व्रजराजनन्दनके हृदयपर पड़ रहा है; वे भी तदनुरूप भावोंसे भावित होकर एकान्तमें रो पड़ते हैं। सान्त्वना देने योग्य एकमात्र अग्रज बलराम ही हैं, जो एकान्तमें अनुजके आँसू पोंछा करते हैं। सान्दीपनिकी पाठशालामें व्रजराजनन्दनका दिन तो पाठग्रहण, गुरुसेवामें व्यतीत होता है पर रात व्यतीत होती है व्रजकी मधुर मनोहर स्मृतिमें। दिनमें भी गुरुदेवकी गायोंको चारा डालते समय उनकी आँखें छलछल करने लगतीं तथा पासमें कोई न होता तो उनके कण्ठोंमें बाँह डाल वे रोने लग जाते, मानो हृदयमें बसी हुई धौरी-धूमरीकी करुण आँखोंसे निकला हुआ अश्रुनिर्झर ही श्यामसुन्दरकी आँखोंसे निर्गत हो रहा है। जो हो, चौंसठ दिनका पाठ पूराकर व्रजराजनन्दन पितृगृहमें लौट आये हैं, रोहिणी मातासे एकान्तमें जाकर व्रजकी बातें पूछते हैं। रोहिणी मैया कुछ ही दिनों पहले व्रजसे लौटी हैं; रोहिणीने जो कुछ कहा, उसे सुनकर व्रजराजनन्दनका धैर्य जाता रहा। व्रज जाना तो सम्भव था नहीं, अतः अग्रजकी गोदमें सिर रखकर व्रजराजनन्दन सिसकियाँ भरने लगे। भला, जिनके संकल्पमात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड क्षणभरमें सृष्ट होकर पुनः दूसरे ही क्षण विलीन हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान् सर्वैश्वर्यनिकेतन स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दरके लिये तीन कोसकी दूरीपर स्थित वृन्दावन जाना सम्भव नहीं हो सका। धन्य है लीलाविहारीकी मधुर लीला! अस्तु, अग्रजने ही सान्त्वना दी, फिर परामर्श दिया कि 'तुम उद्धवको व्रज भेज दो।' व्रजराजनन्दनकी लीलाशक्तिने ही तो उद्धवको चुना था, इसीलिये उनका नाम सुनते ही व्रजराजनन्दन उत्फुल्ल हो उठे। एकान्तमें सखाको सब समझाया, उनका शृंगार किया; यथायोग्य सबके लिये संदेश देने लगे, पत्र लिखने लगे। उस समय व्रजराजनन्दनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी, कण्ठसे वे स्पष्ट बोल नहीं पा रहे थे, पर उद्धव तो अपनेको आत्मानन्दकी अनुभूति करनेवाला पुरुष समझते थे, उन्हें आश्चर्य हो रहा था, साक्षात् भगवान् होकर व्रजराजनन्दनमें इतनी व्याकुलता क्यों? यह संकल्प आया ही था कि व्रजराजनन्दनकी सर्वज्ञताशक्तिने लीलाशक्तिको संकेत कर दिया; अब व्रजराजनन्दनके उस प्रेमिल संदेशमें भी आत्मज्ञानका पुट लग गया, पत्रमें भी। ऐसे संदेशको लेकर उद्धवजी व्रज पहुँचे।

नन्ददम्पति बैठे थे। उद्धवको देख कुछ देर वे नीलमणिके मिलनका-सा सुख अनुभव करने लगे। अतः नीलमणिके समान ही उद्धवकी आवभगत हुई; अब परम सुखका अनुभव करते हुए मैया-बाबाके प्रति उनके नीलमणिने जो संदेश दिया था, उद्धव वही कहने जा रहे हैं। उद्धव बोले—नन्दरानी! नन्दराय! श्रीकृष्णने तुम्हारे लिये मुझसे कहा है—

ऊधौ इतनौ कहियो जाय।
हम आवेंगे दोऊ भैया, मैया जनि अकुलाय॥
याकौ बिलग बहुत हम मान्यो, जो कहि पठयौ धाय।
वह गुन हम कों कहा बिसरिहैं, बड़े किए पय प्याय॥
और जु मिलौ नंद बाबा सों, तौ कहियो समुझाय।
तौलौं दुखी होन नहीं पावैं धौरी धूमरि गाय॥
जद्यपि यहाँ अनेक भाँति सुख, तद्यपि रह्यो न जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरदास देखौं ब्रजबासिन तबहिं हियौ हरषाय॥

संदेशके उत्तरमें बाबा-मैया केवल रो पड़े। नन्दरानीका रोना तो थमा ही नहीं, नन्दने किसी प्रकार आत्मसंवरण किया। अपने नीलमणिकी बात उद्धवको सुनाने लगे; पर कुछ ही सुना पाये थे कि प्रेमसे विह्वल हो गये, आगे बोल न सके। उद्धवने श्रीकृष्ण-तत्त्वका उपदेश किया, पर नन्ददम्पति तो रोते ही रहे। श्रीकृष्णकी चर्चा सुनकर धौरी, धूमरि श्रीकृष्णकी प्यारी गायें भी वहाँ आकर एकत्र हो गयीं, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, पर वे बोलना नहीं जानती थीं। नन्द मानो उनकी सान्त्वनाके लिये ही अन्तर्यामीकी प्रेरणासे संदेश सुनकर भी पुनः पूछने लगे—

जानीमः प्रत्येकं गा मनुते स स्वतोऽप्यधिकाः।
निजकरकवलैः पुषितास्ताः किं चित्ते समाहरति?

(श्रीगोपालचम्पूः)

'हम सभी जानते हैं मेरा नीलमणि गायोंको अपनेसे भी अधिक प्यार करता है, प्रत्येक गायके प्रति उसका अपने शरीरसे भी अधिक प्रेम है, गायोंको वह अपने हाथसे ग्रास देता था, उसके हाथके ग्राससे ही हमारी गायोंका पोषण होता था; मेरा नीलमणि इन गायोंको स्मरण करता है क्या?'

उद्धवकी आँखोंमें इनकी बात सुनकर बरबस आँसू आने लगे। रातभर नीलमणिकी ही चर्चा होती रही। उद्धव प्रबोध करते रहे, पर नन्ददम्पतिकी अश्रुधाराका विराम नहीं ही हुआ।

दूसरे दिन उद्धव व्रजाङ्गनाओंसे संदेश कहने गये। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे व्रजाङ्गनाएँ आज किञ्चित् प्रकृतिस्थ हो गयी थीं, पर उपदेशके उपक्रममें 'श्याम' नाम सुनते ही वे प्रेमावेशमें बेसुध-सी हो गयीं—

सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलक रोम सब अँग भए, भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे, गदगद गिरा, बोल्यो जात न बैन॥
बिबस्था प्रेम की।

श्यामसुन्दरका संवाद पाकर तो वे मूर्च्छित हो गयीं—

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयौ।
पुलकित आनन कमल अंग आबेस जनायौ॥
बिहबल ह्वै धरनी परीं ब्रज-बनिता मुरझाय।
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय॥
सुनौ ब्रजनागरी।

आत्मानन्दानुभूतिका अभिमान—गर्व उद्धवके अन्तरालसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाँक रहा था। व्रजराजनन्दनका आत्मज्ञान-सम्पुटित संदेश लेकर वही गर्व अब बाहर निकला। पूरी शक्ति लगाकर उसने व्रजसुन्दरियोंको समझाना चाहा; आत्मज्ञानकी सरिता बहा दी। पर वह सरिता, व्रजसुन्दरियोंके डुबोनेकी बात तो दूर रही, उनके चरणोंको स्पर्शतक न कर सकी; वे इसके तटपर अलग खड़ी रहकर श्यामसुन्दरकी विरह-व्यथामें कराहती ही रहीं।

दिन एक पहर चढ़ आया। यही वेला थी जब कि कोटि-कोटि प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दर गाय चराने वन जाया करते थे। गोपियोंके हृदयमें गोचारणपरायण नन्दनन्दनकी मधुर मनोहर छबि नाच उठी। कुछ ही दूरपर गायें सचमुच जोरसे डकार रही थीं, मानो श्यामसुन्दरको ढूँढ़ रही हों; उनके पास ग्वाले उदास-मुँह खड़े थे, उन्हें शान्त करनेका प्रयास कर रहे थे। गोपियोंने एक बार दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा। उन्हें दीखता है, एक ओर हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं, तथा दूसरी ओर उन्हें न देखकर गायें डकार रही हैं, ग्वाले भी रो रहे हैं। व्रजसुन्दरियोंके धैर्यका बाँध टूट गया। अपने दुःखसे नहीं, उन मूक गायोंके दुःखसे, ग्वालोंके दुःखसे। वे उस भावनाजात श्रीकृष्ण-विग्रहके सामने आकुल होकर पुकार उठीं—

अहो! नाथ! रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं।
नंदनंदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं॥
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ-ग्वारन सुख लेहु।
दुख-जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु॥
निठुर ह्वै कहा रहे?॥

सबकी आँखोंके सामने एक-एक श्रीकृष्ण हैं, और उन्हें सुना-सुनाकर व्रजाङ्गनाएँ अपना हृदय हलका कर रही हैं, पर हृदय हलका तो हुआ नहीं बल्कि भावके आदान-प्रदानसे आवेश शिथिल हो गया और यह स्मृति जाग उठी कि प्राणधन मथुरा गये हुए हैं। फिर क्या था, विरहसागर उमड़ा, सब एक साथ ही रो पड़ीं—

ता पाछे एक बारही रोईं सकल ब्रजनारि।
हा करुनामय नाथ हो केसौ कृष्ण मुरारि!!
फाटि हिय दृग चल्यौ॥

विरहसागर हृदयका बाँध तोड़कर आँखोंकी राह बह चला, व्रजसुन्दरियाँ उसीमें डूब गयीं; प्रवाह वेगसे आगे बढ़ा, उद्धव भी उसमें बह चले।

उमग्यौ ज्यों तहँ सलिलसिंधु लै तन की धारन।
भीजत अंबुज नीर कंचुकी भूषन हारन॥
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधौ चले बहाय।
भलें ग्यान की मेड़ हौं ब्रजमें प्रगट्यों आय॥
कूल के तृन भये॥

उद्धवका जीवन ही बदल गया। वे अब कुछ और ही हो गये हैं। अब उनका एक ही काम है—श्रीकृष्णलीला गा-गाकर व्रजवासियोंको सुख देना। मुखसे लीला गाते रहते और नेत्रोंसे जल बहता रहता। व्रजाङ्गनाओंकी प्रेमदशा देखकर उद्धवको इच्छा हुई—'मैं यदि वृन्दावनके किसी गुल्म-लता-ओषधिके रूपमें परिणत हो जाता और गुल्म-लतादिरूपमें अङ्कुरित हुए मुझपर इन व्रजसुन्दरियोंकी चरणधूलि पड़ जाती तो मैं कृतार्थ हो जाता।' भावावेग न सँभलनेपर उद्धव उच्च-कण्ठसे गाने लगे—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६१)

कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं।
आवत जात सुभाय परे मोपै परछाहीं॥
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाय।
मोहन होहिं प्रसन्न जो, यहि बर माँगौं जाय॥
कृपा करि देहिं जौ॥

अब उद्धवको कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो श्यामसुन्दर तो यहीं हैं, मथुरा कभी गये ही नहीं। उनका हृदय उत्तरोत्तर प्रेमसे भरता जा रहा है। वे सर्वथा भूल-से गये हैं कि यहाँसे लौटकर सखा श्यामसुन्दरको भी यहाँका कुशल सुनाना है। कई दिन नहीं, कई महीने बीत गये। तब कहीं स्मृति आयी और वे व्रजसे विदा हुए। विदा होते समय रोती हुई व्रजाङ्गनाएँ मूक संदेश दे रही हैं, रोती हुई यशोदा नीलमणिके लिये नाना उपहार दे रही हैं। सबसे अन्तमें गायोंको रोती देखकर मैया नीलमणिको यह संदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने लगीं—

ऊधौ इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय॥
जल समूह बरसति अँखियन ते हूँकत लेतहि नाउँ।
जहाँ जहाँ गोदोहन करते ढूँढत सोइ सोइ ठाउँ॥
परति पछारि खाइ तेही छिन अति ब्याकुल ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारे हैं बारि मध्य ते मीन॥

उद्धवका रथ चल पड़ा। व्रजाङ्गनाएँ मूर्च्छित हो गयीं। गायें डकारती हुई कुछ दूरतक दौड़कर गयीं, पर कृशशरीरसे थककर वे भी गिर पड़ीं; उद्धव सिसक-सिसककर रोते हुए जा रहे हैं।

व्रजराजनन्दनसे मिलनेपर भी उद्धवका रोना थमता नहीं है; रोते-रोते ही उद्धवने सबका संदेश श्यामसुन्दरको सुनाया; संदेशका उपसंहार था—

कहा लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम तुम बिन उन लोगनि, जैसे दिवस बिहात॥
गोपी ग्वार गाइ गोसुत वे, मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत, अंबुजगन बिनु पात॥
जो कहुँ आवत देखि दूरि तें, सब पूँछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहि न खात।
सूरस्याम सदेसन के डर, पथिक न उहि मग जात॥

व्रजराजनन्दनके नयनोंसे भी अनवरत अश्रुधारा बहती जा रही है। उनके कपोल, वक्षःस्थल सभी भीग रहे हैं। उद्धवकी बात सुनकर बीच-बीचमें गद्‌गद-कण्ठसे केवल इतना कह देते हैं—उद्धव! व्रजको मैं एक क्षणके लिये भी भूल नहीं पाता—

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहिं।
हंससुताकी सुंदर कँगरी अरु कुंजनकी छाँहि॥
वे सुरभी, वे बच्छ, दोहनी, खरिक दुहावन जाँहि।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाँहि॥
यह मथुरा कंचनकी नगरी मनि मुकताहल जाँहि।
जबहि सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु नाहिं॥
अनगन भाँति करी वह लीला, जसुदा नंद निबाहिं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछिताहिं॥

व्रजराजनन्दनने आँखें बंद कर लीं। उद्धव मन-ही-मन सोचने लगे—'आह! श्यामसुन्दर बड़े निष्ठुर हैं, अन्यथा इन गो-गोप-गोपियोंका करुणक्रन्दन सुनकर ये अभी मेरे साथ व्रज चल पड़ते।' सखाके मनमें यह विचार आते ही व्रजराजनन्दनकी आँखें खुल गयीं। इस बार उनके मुखपर एक मन्द मुसकान थी। यह मुसकान मानो अचिन्त्यलीला-महाशक्तिको कुछ संकेत करनेके लिये ही आयी थी। दूसरे ही क्षण, उद्धवकी आँखोंके सामने मथुराका अस्तित्व विलीन हो गया। उद्धव देख रहे हैं—सामने मधुर वृन्दावन है, व्रजराजनन्दन गोचारणके लिये वृन्दावनसे निकले हैं; अद्भुत शोभा है—

भक्तिच्छेदाढ्यचर्चो मलयजघुसृणैर्धातुचित्राणि बिभ्रद्
भूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं
केयूरे कङ्कणे श्रीयुतपदकटकौ नूपुरौ शृंखलां च॥
आत्मैकदृश्यगान्धर्वाप्रतिबिम्बकरम्बितैः।
दधद्वक्षस्ययं हारं गुम्फितं स्थूलमौक्तिकैः॥
शृंगं वामोदरपरिसरं तुन्दबन्धान्तरस्थं
दक्षे तद्वन्निहितमुरलीं रत्नचित्रां दधानः।
वामेनासौ सरललगुडीं पाणिना पीतवर्णां
लीलाम्भोजं कमलनयनः कम्पयन् दक्षिणेन॥
वंशीविषाणदलयष्टिधरैर्वयस्यैः
संवेष्टितः सदृशहासविलासवेषैः।
गन्तुं वनाय भवनाद्वनजेक्षणोऽयं
मुष्णन् मनो मृगदृशामथ निर्जगाम॥

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

व्रजराजनन्दनके ललाटमें चन्दन-केसरकी खौर लगी है, कपोलोंपर धातुचित्रोंका शृंगार किया हुआ है, अतिशय सुन्दर बहुत-से वस्त्रोंसे सुसज्जित हैं, सिरपर मयूरपिच्छका मुकुट है, कानोंमें कुण्डल हैं, वक्षःस्थलपर गुञ्जाहार, सुनिर्मित रत्नमाला, वैजयन्ती एवं कौस्तुभ हैं। भुजाओंमें अंगद शोभा पा रहे हैं, दोनों हाथोंमें कंकण हैं, अँगुलीमें मुद्रिका हैं, दोनों चरणोंमें मनोहर कड़े, नूपुर तथा कटिमें क्षुद्रघण्टिका धारण किये हुए हैं। मोतीके बड़े-बड़े दानोंका बना हुआ एक हार वक्षःस्थलपर लटक रहा है, इस हारके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक दानेमें श्रीराधाका प्रतिचित्र अङ्कित है, अवश्य ही इस चित्रको एकमात्र श्रीकृष्ण ही देख पाते हैं, और किसीके ध्यानमें यह चित्र नहीं आता। उदरकी बाँयीं ओर टेँटमें सींग खोंसा है, टेँटमें ही दाहिनी ओर रत्नजटित मुरली खोंसी हुई है, बायें हाथमें पीले रंगकी छड़ी है, दाहिने हाथसे लीलाकमल नचाते जा रहे हैं। उनके सभी सखा भी उन्हींके समान वंशी, शृंग, लकुटिया आदिसे सुशोभित हैं, उनके समान ही उनके मुखपर भी हास एवं कौतुकप्रियता है, वेष भी उन्हीं-जैसा है। इस प्रकार सज-धजकर व्रजाङ्गनाओंका मन हरण करते हुए कमलनयन व्रजराजनन्दन वन जानेके लिये घरसे निकले हैं।

अपार गोराशि श्रीकृष्णको घेरे हुए चल रही है। अब वे व्रजकी समीपवर्ती भूमिमें निर्मित गोशालाके पास आ पहुँचे हैं, गोशालाकी शोभा देख-देखकर मुग्ध हो रहे हैं—

गोमयोत्पलिकाकूटैर्गिरिशृंगनिभैर्युतम् ।
वासितावासमत्तानां षण्डानां सङ्गरोद्धुरम्॥
कृष्णलीलां प्रगायद्भिर्विहसद्भिः परस्परम्।
गोमयावचयव्यग्रैर्गोपदासीशतैर्वृतम् ॥
गोयानवत्सवारणव्यग्रगोपशतान्वितम् ।
गोमयोत्पलिकाकृद्भिर्जरद्गोपीगणैर्युतम् ॥
गवां स्थानिश्रेणीस्फुटितमभितोऽल्पावृतिचयो-
ल्लसद्वत्सावासस्फुरिततलवृक्षावलिचितम् ।
करीषक्षोदस्योच्चयमृदुलभूमीतलमसौ
व्रजाभ्यर्णं पूर्णं व्रजधनजनैर्वीक्ष्य मुमुदे॥

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

गोशालामें गिरिशृंगकी तरह ऊँचे-ऊँचे गोबर-कंडोंकी थाक लगी है; इधर-उधर ऋतुमती गायोंके पीछे मत्त साँड़ोंके टोल युद्धमें संलग्न हैं, शत-शत गोपदासियाँ गोमय-सङ्कलनमें व्यस्त हैं, उनके मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णलीलाका कलित गान हो रहा है, परस्पर एक-दूसरेको हँसाती हुई आनन्दमें निमग्न होकर गोबर चुन रही हैं। गायोंको वनमें जाती देखकर उनके गोवत्स साथ जानेके लिये उछल-कूद रहे हैं, शत-शत गोप उन गोवत्सोंको रोकनेमें लगे हैं। वृद्ध गोपियाँ गोबर पाथ रही हैं। गायोंके विश्रामके लिये सुन्दर आवास बने हैं; गोवत्सोंके लिये वृक्षोंके नीचे छोटी छतके गृह बने हैं। शुष्क गोमय-चूर्णसे वहाँकी भूमि मृदुल बन गयी है। ऐसी धन-जनपूर्ण गोशालाको देखकर व्रजराजनन्दनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा।

उद्धव दिनभर लीला देखते रहे। अब व्रजराजनन्दनने कंधेपर हाथ रखा, तब भावसमाधि टूटी। देखा नन्दनन्दन मुसकरा रहे हैं।

संध्या हो चली है। अबतक उद्धवने भी भावसमाधिमें संध्यातककी लीला ही देखी है। व्रजराजनन्दनका हाथ पकड़कर वे प्रासादकी ओर चल पड़े। आँखोंमें आवनी लीला भरी थी, वे अभी भी देख रहे हैं—

कमल मुख सोभित सुंदर बेनु।
मोहनलाल बजावत गावत आवत चारें धेनु॥

साथ ही अन्तर्हृदयमें मानो कोई कह रहा है—उद्धव! इन व्रजाङ्गनाओंसे, गोपोंसे, गायोंसे, वृन्दावनसे व्रजराजनन्दन कभी अलग नहीं होते; ये जहाँ हैं, वहाँ श्रीव्रजराजनन्दन भी हैं ही!! (समाप्त)

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। ३८)

हे भगवन्! हमारी वाणी आपके गुणगानमें लगी रहे, हमारे कान आपकी कथाके परायण रहें, हाथ आपकी सेवामें, चित्त आपके चरणोंके चिन्तनमें, सिर आपके निवासस्थल सम्पूर्ण संसारको प्रणाम करनेमें और दृष्टि आपकी प्रत्यक्षमूर्ति संतोंके दर्शनमें लगी रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

सर्वत्र भगवद्दर्शन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें देरी होनेका एकमात्र कारण है—उत्कट अभिलाषाकी कमी, और इस कमीका कारण है—सांसारिक सुखकी चाहना। हमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, हमारा कल्याण हो जाय, हमें तत्त्वज्ञान हो जाय, हमारा भगवान्‌में प्रेम हो जाय, हम जीवन्मुक्त हो जायँ, हम जन्म-मरणसे रहित हो जायँ, हम सब दुःखोंसे छूट जायँ* आदि किसी भी एक बातकी जोरदार इच्छा होनी चाहिये कि उसके बिना रह न सकें। जैसे, किसीके मनमें यह जोरदार इच्छा हो जाय कि गङ्गा कैसे मिले? गङ्गाके पासमें कैसे पहुँचें? गङ्गाको कैसे जानें? गङ्गाके दर्शन कैसे हों? और कोई जानकार आदमी सामने बहती हुई नदीकी तरफ संकेत करके बता दे कि यही गङ्गा है तो गङ्गाकी प्राप्तिमें कितनी देरी लगी? क्या परिश्रम हुआ? पहले अपनी दृष्टिमें वह नदी थी, अब दृष्टि चली गयी कि यह तो गङ्गा है—इतनी ही बात है।

एक बार किसी भाईने सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे कहा कि हमें भगवान्‌के दर्शन करा दो! सेठजीने कहा कि भाई, हमारी सामर्थ्य नहीं है। उसने फिर कहा तो सेठजी बोले कि मैं दर्शन करा दूँ तो आप मानोगे नहीं। अगर आप मान लोगे तो दर्शन करा देता हूँ। उसने कहा कि आप सत्यवादी हैं—ऐसा प्रसिद्ध है। अतः आप कहोगे तो मैं मान लूँगा। सेठजी उसको बाहर ले गये और सूर्यकी तरफ संकेत करके बोले कि देखो, ये भगवान् हैं! वह भाई बोला कि सूर्यको तो हम नित्य ही देखते हैं! सेठजीने कहा कि शास्त्रोंने सूर्यको भगवान् कहा है। ईश्वरकोटिके पाँच देवताओंमें भी सूर्यका स्थान है। अतः सूर्य भगवान् हैं—इसमें क्या संदेह है? तात्पर्य है कि भगवान्‌की प्राप्तिमें देरी नहीं है। परंतु उसकी प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषा नहीं है, इसीलिये देरी हो रही है।

अगर घरमें कोई आदमी भूखा हो तो आप उसको दाल, भात, हलवा, पूरी आदि कुछ भी बनाकर दे सकते हैं, पर भूख नहीं दे सकते। भूख तो उसकी खुदकी चाहिये। इसी तरह उत्कट अभिलाषा खुदकी चाहिये। उत्कट अभिलाषा होनेपर भगवत्प्राप्तिमें देरीका कारण ही नहीं है। आप देखनेको तैयार और भगवान् दीखनेको तैयार, फिर देरीका कारण क्या है?

भगवान्‌की प्राप्ति बड़ी भारी सुलभ है! ऐसा सुलभ दूसरा कोई काम हो ही नहीं सकता। सुलभता-दुर्लभता, सुगमता-कठिनता तो वहाँ होती है, जहाँ कुछ करना पड़ता है अथवा जहाँ प्रापणीय तत्त्वसे दूरी होती है। जहाँ कुछ करना ही नहीं पड़ता, उसमें क्या सुलभता और क्या दुर्लभता? क्या सुगमता और क्या कठिनता? भगवान् अत्यन्त सुलभ कैसे हैं? अब इसपर विचार किया जाता है।

साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके वचन हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

'बहुत जन्मोंके अन्तमें अर्थात् मनुष्यजन्ममें 'सब कुछ वासुदेव ही है'—ऐसा जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

तात्पर्य है कि मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, खंभा, मकान, जमीन, कपड़ा आदि जो कुछ भी देखने, सुनने, चिन्तन करने आदिमें आ रहा है, वह सब भगवान् ही हैं। भगवान्‌के सिवाय किंचिन्मात्र भी दूसरी चीज नहीं है—इस बातको अभी, वर्तमानमें ही मान लें। स्वयं भगवान्‌के वचन हैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

'हे धनंजय! मेरेसे बढ़कर (इस जगत्‌का) दूसरा कोई

---

* परमात्माकी प्राप्ति, कल्याण, तत्त्वज्ञान आदि सभी तत्त्वसे एक ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंचिन्मात्र भी कारण नहीं है। जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् मेरेमें ही ओतप्रोत है।'

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

(गीता ७। १०)

'हे पृथानन्दन! सम्पूर्ण प्राणियोंका अनादि बीज मुझे जान।'

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(गीता ७। १२)

'जितने भी सात्त्विक, राजस और तामस भाव हैं, वे सब मेरेसे ही होते हैं—ऐसा समझो। परंतु मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(गीता १०। ३९)

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियोंका जो बीज है, वह बीज मैं ही हूँ; क्योंकि मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।'

जैसे बीज ही वृक्ष बना है, ऐसे भगवान् ही संसार बने हैं। भगवान् ही सम्पूर्ण स्थावर-जंगम प्राणियोंके बीज हैं। इतना ही नहीं, इससे भी आगे भगवान् कहते हैं—'**सदसच्चाहमर्जुन**' (गीता ९। १९) 'सत् और असत् भी मैं ही हूँ।' संसारमें सत् और असत्‌के सिवाय और कुछ नहीं है। शरीर असत् है, उसमें रहनेवाला जीवात्मा सत् है। शरीर परिवर्तनशील है, जीवात्मा अपरिवर्तनशील है। शरीर नाशवान् है, जीवात्मा अविनाशी है। भगवान् कहते हैं कि परिवर्तनशील भी मैं हूँ और अपरिवर्तनशील भी मैं हूँ; नाशवान् भी मैं हूँ और अविनाशी भी मैं हूँ। अर्जुन भी कहते हैं—'**त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्**' (गीता ११। ३७) 'आप सत् भी हैं, असत् भी हैं और सत्-असत्‌से पर जो कुछ भी है, वह सब भी आप ही हैं।'

अब भगवान्‌की प्राप्तिमें देरी किस बातकी है? परिश्रम किस बातका है? ये गङ्गाजी हैं—इसमें क्या देरी लगी? क्या परिश्रम पड़ा? भगवान् तो गङ्गाजीसे भी विलक्षण हैं। गङ्गाजी तो एक जगह हैं, पर भगवान् सब जगह हैं। भगवान् स्वयं कह रहे हैं कि सब कुछ मैं-ही-मैं हूँ, मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है—'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय**' (गीता ७। ७) यदि कोई कहे कि इस बातपर हमारा विश्वास नहीं है तो यह उसकी कमी है, तत्त्वकी कमी नहीं है। भगवान्‌पर विश्वास नहीं करेंगे तो क्या उस शरीर या संसारपर विश्वास करेंगे, जो क्षणभंगुर है, नाशवान् है? भगवान्‌की वाणीपर तो विश्वास करते नहीं और चाहते हैं अपना कल्याण! यह कैसे सम्भव है? भगवान्‌के वचनोंपर विश्वास न करना भगवान्‌का तिरस्कार है, अपराध है। अगर उनके वचन हमारी समझमें नहीं आयें तो यह बात दृढ़तासे मान लें कि हमारी समझमें कमी है, तत्त्वमें कमी नहीं है। फिर अनुभव हो जायगा। कारण कि सच्ची बात सच्ची ही रहेगी, झूठी कैसे हो जायगी? भले ही हमारी समझमें नहीं आये, हमारी दृष्टिमें नहीं आये, पर सब कुछ भगवान् ही हैं—इसमें कोई संदेह नहीं है।

ज्ञानमार्गमें यह बात आती है कि देखने, सुनने, चिन्तन करने आदिमें जो कुछ आता है, वह सब असत् माया है—

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च॥

(श्रीमद्भा० ११। २८। ४)

'संसारकी सब वस्तुएँ वाणीसे कही जा सकती हैं और मनसे सोची जा सकती हैं; अतः वे सब असत्य हैं। जब द्वैत नामकी कोई वस्तु है ही नहीं, तो फिर उसमें क्या अच्छा और क्या बुरा?'

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

(मानस, अयोध्या० ९२। ४)

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥

(गीता १८। ४०)

'पृथ्वीमें या स्वर्गमें अथवा देवताओंमें तथा इनके सिवाय और कहीं भी ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणोंसे रहित हो।'

परंतु भक्तिमार्गमें यह बात आती है कि देखने, सुनने, चिन्तन करने आदिमें जो कुछ आता है, वह सब भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हैं—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ (शब्दादि विषय) ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अत: मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आप विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें अर्थात् स्वीकार कर लें।'

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

(मानस, बाल०७)

न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(गीता १०। ३९)

'मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है।'

तात्पर्य है कि ज्ञानमार्गमें सब कुछ प्रकृतिरूप है और भक्तिमार्गमें सब कुछ भगवद्रूप है।

ज्ञानमार्ग जड़ताके त्यागमें काम आता है और भक्तिमार्ग भगवान्के प्रेममें काम आता है। ज्ञानमार्गमें परमात्मा संसारमें व्याप्त हैं—'**मया ततमिदं सर्वम्**' (गीता ९। ४), '**ईशावास्यमिदं सर्वम्**' (ईश०१) और भक्तिमार्गमें संसाररूपसे परमात्मा ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। ज्ञानमार्गमें गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं—'**गुणा गुणेषु वर्तन्ते**' (गीता ३। १८) और भक्तिमार्गमें भगवान् ही भगवान्में बरत रहे हैं—'**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति**' (गीता ६। ३०)। ज्ञानमार्गमें साधक अपने लिये उपयोगी होता है और भक्तिमार्गमें साधक भगवान्के लिये उपयोगी होता है; क्योंकि भगवान् प्रेमके भूखे हैं, ज्ञानके नहीं। भक्त भगवान्से प्रेम करता है और भगवान् भक्तसे प्रेम करते हैं; अत: उनमें प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम होता है।

सब कुछ भगवान् ही हैं—इस बातको कोई जानना चाहे तो वह एकान्तमें बैठ जाय और यह प्रार्थना शुरू कर दे कि हे नाथ! मैं आपको कैसे जानूँ—'**कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्**' (गीता १०। १७)! सब कुछ आप ही हैं—इसको मैं कैसे जानूँ! कैसे जानूँ! कैसे जानूँ! इस तरह भीतरसे लगन लगा दे। एक कहानी है। एक बहुत दरिद्र आदमी था। वह एक महात्माके पास गया और बोला कि 'महाराज! मेरेपर बहुत कर्जा है। खाने-पीनेकी, रहनेकी, कपड़ेकी बहुत तंगी है। ऐसी कृपा करो कि कर्जा उतर जाय।' महात्माने पूछा कि 'तेरे घरमें बड़ी चीज क्या है?' वह बोला कि 'एक स्नान करनेकी बड़ी शिला है, जिसपर बैठकर मैं स्नान किया करता हूँ। उससे बड़ी और कोई चीज नहीं है।' महात्मा बोले कि 'तू अभी जाकर बैठ जा और कहना शुरू कर दे कि यह शिला सोनेकी हो जाय .... शिला सोनेकी हो जाय......... शिला सोनेकी हो जाय .... शिला सोनेकी हो जाय! इतना सोना तो काफी है न?' वह बोला कि 'महाराज! कर्जा तो उसके एक टुकड़ेसे ही उतर जायगा!' महात्मा बोले कि 'अब तू जा और चौबीस घंटेतक इस बातकी धुन लगा दे।' वह आदमी घर गया और 'शिला सोनेकी हो जाय'—ऐसा कहना शुरू कर दिया। ऐसा कहते-कहते तेईस घंटे बीत गये तो उसने देखा कि अभी शिलाका एक टुकड़ा भी सोनेका नहीं हुआ। फिर भी वह कहता गया। चौबीस घंटे पूरा होनेमें पाँच-दस मिनट रह गये, तब भी शिला नहीं बदली। पर वह कहता गया। जब एक मिनट बाकी रहा, तब वह कहते-कहते उकता गया और बोला कि सोनेकी नहीं होती तो लोहेकी ही हो जाय! उसके ऐसा कहते ही चट वह शिला लोहेकी हो गयी! उसने महात्माके पास जाकर कहा कि 'महाराज! वह शिला तो लोहेकी हो गयी! वह या तो पत्थरकी ही रहती या सोनेकी हो जाती, लोहेकी कैसे हो गयी?' महात्माने कहा कि 'तू उकता गया, इसलिये तेरे कहनेसे वह लोहेकी हो गयी। अगर तू उकताता नहीं और 'शिला सोनेकी हो जाय'—यह कहता रहता तो वह सोनेकी ही हो जाती; क्योंकि वही समय कहनेका था।'

इस तरह साधकको चाहिये कि वह उकताये नहीं और आठों पहर भगवान्के पीछे पड़ जाय कि 'मैं आपको कैसे जानूँ!', 'हे नाथ! मैं आपको जान जाऊँ!' ऐसी प्रार्थना सभी कर सकते हैं; क्योंकि भगवान्के अंश होनेसे सबका भगवान्पर अधिकार है। भूख तंग करे तो रोटी खा ले, प्यास तंग करे तो जल पी ले, नींद तंग करे तो सो जाय, पर अपनी लगन नहीं छोड़े। मन लगे चाहे न लगे, ध्यान लगे चाहे न लगे, पर प्रार्थना नहीं छोड़े। भगवान् बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयालु हैं, प्राणिमात्रके सुहृद् हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५। २९)। दया करके वे अपने-आपको जना देंगे। इससे सुगम साधन और क्या होगा?

प्रश्न—कोई आदमी हमें गाली देता है तो वहाँ भगवान्‌को कैसे देखें?

उत्तर—उपनिषद्‌में आया है कि शब्द (वाणी) ही ब्रह्म है—'**वाग् वै ब्रह्मेति**' (बृहदा० ४। १। २)। संतोंकी वाणीमें भी यही बात आयी है—

जो तू चेला देह को, देह खेह की खान।
जो तू चेला सबद को, सबद ब्रह्म कर मान॥

अत: शब्द भगवान्‌का ही स्वरूप है। कोई अच्छा कहे या मन्दा कहे, वह भगवान् ही है। वराहावतारमें भगवान् सूअर भी बनते हैं और वामनावतारमें ब्रह्मचारी ब्राह्मण भी बनते हैं। सूअर और ब्राह्मण—दोनों ही भगवान् हैं। जब सूअर भी भगवान् हैं तो क्या गाली भगवान् नहीं हैं?

कोई कैसा ही बर्ताव करे, पर आप '**वासुदेवः सर्वम्**' को मत छोड़ो। एक संत नदीमें स्नान कर रहे थे। उन्होंने एक बिच्छूको जलके प्रवाहमें बहते हुए देखा। वे अपने हाथसे उसको जलसे बाहर फेंकने लगे तो बिच्छूने उनके हाथमें डंक मार दिया। संतने फिर बिच्छूको स्पर्श किया तो उसने फिर डंक मार दिया। संत बिच्छूको बार-बार हाथसे बाहर फेंकनेकी चेष्टा करते थे और वह बार-बार डंक मारता था। एक आदमी यह सब देख रहा था। वह बोला कि कैसे मूर्ख हो! बिच्छू बार-बार डंक मारता है, फिर भी आप उसका स्पर्श करते हो! संत बोले कि बिच्छूका स्वभाव है कि जो छुवे, उसको डंक मार देना और मेरा स्वभाव है कि कोई मरता हो तो उसको बचा देना। जब बिच्छू अपना बुरा स्वभाव भी नहीं छोड़ता, तो फिर मैं अपना अच्छा स्वभाव कैसे छोड़ दूँ? तात्पर्य है कि अगर दुष्ट व्यक्ति अपनी बुरी बात नहीं छोड़ता तो आप अपनी अच्छी, सर्वश्रेष्ठ बात क्यों छोड़ो?

प्रश्न—शास्त्रोंमें संसार असत्य है—ऐसा क्यों कहा गया है? सब कुछ भगवान् ही हैं—यही बात सब जगह क्यों नहीं कही गयी?

उत्तर—संसारको असत्य इसलिये कहा गया है कि आप उससे सुख लेना चाहते हो। जैसे, मन्द अन्धकारमें रस्सी साँपकी तरह दीखती है। जो उसको देखकर डर जाता है, उसको कहते हैं कि 'डरो मत, यह साँप नहीं है, यह तो रस्सी है।' परंतु जो उसको देखकर नहीं डरता, उसको कहते हैं कि 'यह रस्सी है'। ऐसे ही जो संसारसे सुख चाहता है और जिसके भीतर 'संसार सत्य है, सुखरूप है'—ऐसा प्रभाव पड़ा हुआ है, उसके लिये भगवान् कहते हैं कि यह संसार दुःखालय और नाशवान् है—'**दुःखालयमशाश्वतम्**' (गीता ८। १५)। परंतु जो संसारसे सुख नहीं चाहता, जिसपर संसारका प्रभाव नहीं है, उसके लिये कहते हैं कि सब कुछ भगवान् ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)।

संसार प्रकृतिका कार्य है और प्रकृति भगवान्‌की शक्ति है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता ७। ४)

'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्चमहाभूत और मन, बुद्धि तथा अहंकार—यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी अपरा प्रकृति है।'

'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।'

(श्वेताश्वतर० ४। १०)

'माया तो प्रकृतिको समझना चाहिये और मायापति महेश्वरको समझना चाहिये।'

भगवान्‌की शक्ति होनेसे प्रकृति और उसका कार्य भगवत्स्वरूप ही हैं; क्योंकि शक्ति शक्तिमान्‌से अलग नहीं हो सकती। जैसे शरीरके गोरे या काले रंगको शरीरसे अलग नहीं कर सकते, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओंको शरीरसे अलग नहीं कर सकते, ऐसे ही प्रकृतिको भगवान्‌से अलग नहीं कर सकते। जैसे मनुष्य अपनी शक्ति (बल, ताकत, विद्वत्ता, योग्यता, चातुर्य, सामर्थ्य आदि) के बिना तो रह सकता है, पर मनुष्यके बिना शक्ति नहीं रह सकती, ऐसे ही भगवान् शक्तिके बिना रह सकते हैं, पर भगवान्‌के बिना शक्ति नहीं रह सकती। तात्पर्य है कि शक्ति भगवान्‌के अधीन (आश्रित) है, भगवान् शक्तिके अधीन नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिमान्‌के बिना शक्तिकी स्वतन्त्र सत्ताका अभाव होता है। अतः भगवान्‌की शक्ति होनेसे प्रकृतिकी भी स्वतन्त्र सत्ताका अभाव है।

वास्तवमें परमात्माका स्वरूप समग्र ही है। परमात्मामें कोई शक्ति न हो—ऐसा नहीं हो सकता। अगर परमात्माको सर्वथा शक्तिरहित मानें तो परमात्मा एकदेशीय ही सिद्ध होंगे। जैसे मनुष्य अवस्थाओंसे सर्वथा रहित नहीं हो सकता, कोई-न-कोई अवस्था (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा या समाधि) तो उसमें रहेगी ही, ऐसे ही परमात्मा सर्वथा शक्तिरहित नहीं हो सकते। उनमें शक्तिका परिवर्तन अथवा अदर्शन तो हो सकता है, पर शक्तिका अभाव नहीं हो सकता। इसलिये गीतामें प्रकृति और पुरुष दोनोंको 'अनादि' कहा गया है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

(१३। १९)

विश्वरूपको भी गीतामें 'अव्यय' कहा गया है—

योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥

(११। ४)

'त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता'

(११। १८)

संसाररूप अश्वत्थ-वृक्षको भी 'अव्यय' कहा गया है—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

(गीता १५। १)

इससे सिद्ध हुआ कि जड़-चेतन, स्थावर-जंगम रूपसे जो कुछ दीख रहा है, वह सब भगवान् ही हैं। भगवान्‌के बिना कुछ भी नहीं है। परंतु भोग और संग्रहकी आसक्तिके कारण मनुष्यको सब कुछ जड़-ही-जड़ दीखता है! तात्पर्य है कि जड़ संसार केवल जीवकी कल्पना है। वास्तवमें सब-की-सब वस्तुएँ चिन्मय भगवत्स्वरूप हैं। भगवान्‌के सिवाय मैं-तू-यह-वह कुछ भी नहीं है अर्थात् 'मैं' भी भगवान्‌का स्वरूप है, 'तू' भी भगवान्‌का स्वरूप है, 'यह' भी भगवान्‌का स्वरूप है और 'वह' भी भगवान्‌का स्वरूप है। भगवान् कण-कणमें पूरे-के-पूरे हैं। प्रह्लादजीके कहनेपर भगवान् नृसिंहरूपसे खंभेमेंसे प्रकट हो गये; क्योंकि वे वहाँ पहलेसे ही थे! इसलिये साधकको वृक्ष, नदी, पहाड़, पत्थर, दीवार आदि कुछ भी दीखे, वह उसमें अपने इष्ट भगवान्‌को देखकर प्रार्थना कर सकता है कि हे नाथ! मुझे अपना प्रेम प्रदान करो; हे प्रभो! आपको मेरा नमस्कार हो, जैसा कि अर्जुनने कहा है—

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोऽषि ततोऽसि सर्वः॥

(गीता ११। ४०)

'हे सर्व! आपको आगेसे नमस्कार हो! पीछेसे नमस्कार हो! सब ओरसे ही नमस्कार हो! हे अनन्तवीर्य! अमित विक्रमवाले आपने सबको समावृत कर रखा है; अतः सब कुछ आप ही हैं।'

हविर्यज्ञोंकी दक्षिणाके रूपमें गौकी महत्ता

(डॉ० श्रीरामहितजी त्रिपाठी)

वैदिक धर्मकी प्रधान विशेषता उसके मूलमें निहित यज्ञोंकी प्रधानता है। ध्यातव्य है कि यज्ञकी पूर्णता एवं सफलता यज्ञके पाँच अवयवोंपर अवलम्बित रही है। जिन्हें क्रमशः देवता, द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विज् एवं दक्षिणाके नामसे अभिहित किया गया है। इसीलिये यज्ञको पांक्त कहा गया है[1]। जहाँ एक ओर यज्ञमें यज्ञके फलप्रदाता देवता होते हैं, एवं देवताको द्रव्यार्पणार्थ मन्त्र विनियुक्त होते हैं, वहीं दूसरी ओर मन्त्रोंके विनियोग और यज्ञानुष्ठानोंकी सम्पूर्ण क्रिया-विधियोंके विद्वान् ऋत्विज् भी होते हैं। ऋत्विजोंपर यज्ञ केन्द्रित रहता है और ऋत्विजोंकी संतुष्टि दक्षिणा-पदार्थोंमें संनिहित रहती है। क्योंकि दक्षिणा ही यज्ञानुष्ठानको दक्षता प्रदान करती है[2]। दक्षिणाको यज्ञका प्राणतत्त्व कहा गया है,

(१) 'पांक्तो वै यज्ञः।' ऐतरेय ब्राह्मण १। १। १। ४ एवं गोपथ ब्राह्मण, उ० भा० २। ३; (२) निरुक्त—१। ३—९, शतपथ ब्राह्मण ४। ३। १। ३-४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ एवं दक्षिणा परस्पर एक-दूसरेके पूरक हैं।

जिस प्रकार आहुतियोंसे देवताओंको प्रसन्न किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यदेवों (ऋत्विजों) को दक्षिणाद्वारा प्रसन्न किया जाता है। दक्षिणा प्रदान न करनेसे यज्ञ विनष्ट हो जाता है। श्रुति-वचन है कि जो यजमान दक्षिणायुक्त यज्ञसे यजन करता है, वह शुभ फलको यज्ञमें स्थापित किये रहता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक यज्ञोंकी सफलता दक्षिणापर अवलम्बित है।

दक्षिणा किस वस्तु अथवा पदार्थके रूपमें देय है? इस सम्बन्धमें आर्ष मनीषाने आर्ष साहित्यमें साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया है। वैदिक यज्ञोंके दक्षिणापदार्थोंकी विवेचना करते हुए शतपथकारने दक्षिणाके रूपमें हिरण्य, गौ, वस्त्र एवं अश्व—इन चार श्रेष्ठ पदार्थोंका निर्धारण किया है[३] तथापि ऋचाओंसे लेकर परवर्ती याज्ञिक ग्रन्थोंमें आचार्योंका अभिमत यह सिद्ध करता है कि वैदिक यज्ञोंकी दक्षिणा-हेतु प्रदेय वस्तुओंमें गाय सर्वोत्तम पदार्थ है। गौकी दक्षिणा श्रेयस्कर एवं अधिक फलप्रदायी मानी गयी है[४]।

गोपथकारने तो गायकी दक्षिणाकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करते हुए यहाँतक कहा है कि 'दिव्य गुणोंसे सम्पन्न गायकी दक्षिणा प्रदान करनेसे यजमानको दिव्य गुणोंका प्रिय धाम और तेजस्‌की प्राप्ति होती है[५]। गायकी दक्षिणा इतनी महिमामण्डित हुई है कि मन्त्रसंहिताओंसे लेकर समग्र आर्ष साहित्यके अन्तर्गत दक्षिणा-पदार्थके रूपमें गायकी प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी। उपनिषदोंमें तो गौ-दक्षिणाकी महत्ता और भी पराकाष्ठापर दृष्टिगत होती है। कठोपनिषद्‌के अन्तर्गत गाय और दक्षिणामें पर्याय-सम्बन्ध परिलक्षित हुआ है अर्थात् 'दक्षिणा' पदसे गायका ही अर्थ ग्रहण किया गया है[६]। पुराणोंके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि यज्ञोंकी दक्षिणाके रूपमें क्रमशः गौ, स्वर्ण, अश्व, तिल, गज, रथ, भूमि एवं गृह आदि उत्तम पदार्थोंमें गायकी महत्ता अक्षुण्ण है।

गायकी दक्षिणाको जहाँ एक ओर यज्ञोंमें श्रेष्ठता प्रदान की गयी है, वहीं दूसरी ओर गायोंकी विविधताका प्रतिपादन भी प्रस्तुत किया गया है। उत्तम कोटिकी गायकी दक्षिणासे यजमान उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवासका अधिकारी हो जाता है, जितने गायके शरीरपर रोम होते हैं[७]।

शास्त्रोंमें गौके विविध वर्ण, अवस्था, संख्या, स्वरूप एवं आकार-प्रकारके अनुसार भी दक्षिणाके विधान विहित हैं। कपिला गायकी दक्षिणाको अपरार्कने सर्वश्रेष्ठ माना है। इसी प्रकार श्वेत, बभ्रु, चितकबरी, पष्ठौही, सवत्सा, श्यामा, अनडुही एवं स्थूल-पृषती आदि गायोंका उनके रंग, रूप, अवस्था आदिको आधार मानकर दक्षिणार्थ विधान किया गया है। इन विधानोंकी अपनी विज्ञानसम्मत विशिष्टता भी है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें स्पष्ट किया गया है कि विविध प्रकारकी गायोंकी दक्षिणासे अनेकविध कामनाओंकी पूर्ति होती है[८]। याज्ञवल्क्यने कहा है कि—'कपिला गायका प्रदाता यजमान अपनी सात पीढ़ियोंको तारकर स्वयंको पापसे रक्षा करता है[९]। प्रचुर मात्रामें दूध देनेवाली, सवत्सा धेनु, पृषती, रोहिणी और श्यामा-सदृश गायोंकी दक्षिणापर आचार्योंने विशेष बल दिया है। ज्ञातव्य है कि एक ही यज्ञ-प्रसंगमें विभिन्न श्रौताचार्योंने विविधवर्णा गायोंकी दक्षिणाका विधान करते हुए गायोंकी वर्णानुसारी विशिष्टताका प्रतिपादन भी किया है। गायकी कोई भी विधा चाहे वह रंगको आधार बनाकर विहित हो अथवा आयु, स्वास्थ्य एवं प्रजननशीलता आदिको मानकर सुनिश्चित की गयी हो, दक्षिणा-हेतु उपयुक्त मानी गयी है।

विविध वैदिक यज्ञोंमें गायको कितने रूपोंमें दक्षिणार्थ स्वीकृति प्राप्त है—यह अनेकशः यज्ञोंके अनुसार उदाहरणार्थ देखा जा सकता है—अतिरात्र नामक यागमें चितकबरी एवं श्वेतवर्णा गौकी दक्षिणा तैत्तिरीय प्रस्थानोंमें सादर प्रदेय है। जब कि शुक्ल यजुर्वेदीय शाखामें सौत्रामणीसंज्ञक यज्ञकी दक्षिणाहेतु सवत्सा गौको मान्यता प्राप्त है। मैत्रायणी शाखाके आचार्य मानवने इसी प्रसंगमें अभिवान्या गायका विधान किया है। इतना ही नहीं, गायके विशिष्ट अङ्गोंके परीक्षणके अनुसार भी दक्षिणार्थ उसकी प्रदेयता सुनिश्चित की गयी

(३) शतपथ ब्राह्मण ४। ३। ४। ७—'चतस्रो वै दक्षिणाः। हिरण्यं गौर्वासोऽश्वः; (४) मनुस्मृति ४। २३३; (५) गोपथ ब्राह्मण, उ० भा० ३। १९; (६) कठोपनिषद् १। १। २-दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश....; (७) याज्ञवल्क्य-स्मृति १। २०४-२०५, अग्निपुराण २१०। ३०; (८) तैत्तिरीय ब्राह्मण १। ७। ३। २—८; (९) याज्ञवल्क्य-स्मृति १। २०५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। एतदर्थ सम्पूर्ण याज्ञिक ग्रन्थोंके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि भूरे कानवाली, काली आँखोंवाली, काली पूँछवाली एवं काले नथुनोंवाली तथा चितकबरी गायोंकी दक्षिणाके बहुशः विधान विहित हैं।

संख्यानुसार गायोंकी दक्षिणापर भी विशेष बल दिया गया है। एक गायसे लेकर सहस्रों गायोंकी दक्षिणाके विधान वैदिक यज्ञोंमें उपलब्ध होते हैं। यज्ञानुसार गौकी दक्षिणा संख्यायित करते हुए श्रौताचार्योंने अनेकविध विचार व्यक्त किये हैं। प्राधान्येन देखनेसे ज्ञात होता है कि अग्न्याधान, दर्शपूर्णमास, वरुणप्रघासादि यज्ञोंमें प्रायः सभी आचार्योंने एक जोड़ी गायकी दक्षिणापर विशेष विधान दिया है। इसी क्रममें विचार करनेपर ज्ञात होता है कि निरूढपशुबन्ध याग एवं राजसूय यागकी देवियों-हेतु हविर्विधान-प्रसंगमें पष्ठौही, उत्सृष्टा एवं गर्भिणी गौको भी दक्षिणार्थ उपयुक्त माना गया है।

स्मरणीय है कि अनुपयुक्त गायोंकी दक्षिणा करनेका सर्वथा निषेध किया गया है। आचार्य आश्वलायनने स्पष्ट रूपमें निर्देश किया है कि वृद्धा गायको दक्षिणामें नहीं देना चाहिये[१०]। इस तथ्यका उल्लेख उपनिषद्, महाभारत एवं अन्य ग्रन्थोंमें भी किया गया है[११]। कठोपनिषद्‌में अपने पिताद्वारा अशक्ता गायोंको दक्षिणास्वरूप प्रदान करते हुए देखकर नचिकेताने जो शंका की थी, वह सत्य ही है—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥

(१। १। ३)

अर्थात् जो (अन्तिम बार) जल पी चुकी हैं; जिनका घास खाना समाप्त हो गया है; जिनका दूध (अन्तिम बार) दुह लिया गया है; जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी हैं; ऐसी (निरर्थक, मरणासन्न) गौओंको देनेवाला वह यजमान उस लोकको जाता है, जहाँ आनन्द ही नहीं है। अस्तु, अति वृद्धावस्थावाली अशक्ता गायोंको दक्षिणा-स्वरूप किसी भी ऋत्विज्‌को नहीं देना चाहिये।

हविर्यज्ञोंकी दक्षिणा—सप्त हविर्यज्ञों—(१) अग्न्याधान या अग्न्याधेय, (२) अग्निहोत्र, (३) दर्शपौर्णमास, (४) आग्रयण, (५) चातुर्मास्य, (६) निरूढपशुबन्ध और (७) सौत्रामणिकी दक्षिणाहेतु गौ क्रमशः इस रूपमें विहित है—

[१] अग्न्याधान-संज्ञक यज्ञकी पूर्णाहुतिके पश्चात् चारों प्रधान ऋत्विजों (होता, अध्वर्यु, उद्गाता एवं ब्रह्मा) को अनेकविध दक्षिणा-पदार्थोंके साथ अनिवार्यतः एक-एक गाय प्रदान करनेका विधान प्रायः सभी आचार्योंने प्रस्तुत किया है। साथ ही इसमें गाय एवं अन्य पदार्थोंकी संख्या-वृद्धिको यजमानकी सामर्थ्यपर छोड़ दिया गया है। अग्न्याधानमें अन्वाहार्य अग्निकी स्थापनाके अनन्तर यजमानद्वारा छः, बारह अथवा चौबीस गायोंको दक्षिणास्वरूप ऋत्विजोंको प्रदान किया जाता है[१२]। पुनराधान-यज्ञकी दक्षिणा अग्न्याधानवत् ही है, किंतु कतिपय आचार्योंने ऋत्विजोंकी संतुष्टि-अर्जनार्थ सर्वान्तमें छः गायें प्रदान करनेका विशेष निर्देश किया है।

[२] अग्निहोत्र होमकी दक्षिणाहेतु उस गायको विहित किया गया है, जिस गायका सर्वप्रथम अग्निहोत्र होमके लिये दोहन किया गया हो[१३]। इसमें अष्टाकपाल पुरोडाशयागके पात्राधानकालमें सवत्सा धेनु अवश्यमेव दातव्य है[१४]।

[३] दर्शपौर्णमासेष्टिके इडाप्राशन-प्रसंगमें आचार्य शाण्डिल्यने एक जोड़ी गाय दक्षिणार्थ देनेका उल्लेख किया है। कतिपय आचार्योंने होताको एक धेनु तथा ब्रह्मा नामक ऋत्विज्‌को एक गाय अथवा एक जोड़ी गायका विधान किया है[१५]। ध्यातव्य है कि आचार्य मानवने तो कपालोंके नष्ट हो जानेपर इस प्रसंगकी दक्षिणाहेतु एक जोड़ी गायोंको विहित किया है[१६]। दर्शपौर्णमासेष्टिके स्थालीपाक-होममें भी एक गायकी दक्षिणा देनेका विधान प्राप्त होता है।

[४] आग्रयणेष्टिकी दक्षिणामें जहाँ अनेकशः पदार्थोंका विधान है, वहीं दूसरी ओर सभी पदार्थोंके साथ अनिवार्यतः ऐसी गाय प्रदान करनेका नियम भी है, जो भूरे एवं पीले रंगकी अथवा पिशङ्गाक्षि हो[१७]।

(१०) आश्वलायन श्रौतसूत्र १८।२३।१०७६—'न वृद्धा दीयते दक्षिणा।' (११) कठोपनिषद् १।१।३; महाभारत, अनु० ६६।५३ एवं ७७। ५-६; (१२) शतपथ ब्राह्मण २।२।२।३—'षड् द्वादश चतुर्विंशति वा दद्यात्।'; (१३) वैखानस श्रौतसूत्र १२।१६।१।१७—'यां प्रथमामग्निहोत्राय दुहन्ति सा अग्निहोत्रस्य दक्षिणा।' (१४) सांख्यायन श्रौतसूत्र २।८।१, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १।३; (१५) श्रौतपदार्थनिर्वचनम्, पृ० ७८। ३६; (१६) मानव श्रौतसूत्र ५।१।१।२६—'....गौर्दक्षिणा।'; (१७) सत्याषाढ श्रौतसूत्र ६।८।५।४४-४५, आश्वलायन श्रौतसूत्र ३१।६३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५] चातुर्मास्य यज्ञके वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध एवं शुनासीरीयसंज्ञक चारों पर्वोंकी दक्षिणाओंमें भी गायको प्रधानतया प्रयुक्त किया जाता रहा है। अध्वर्युनामक ऋत्विज्हेतु प्रथमज वत्ससहित गाय प्रदान करनेका उल्लेख सभी आचार्योंने उपन्यस्त किया है।

[६] निरूढपशुबन्ध-यागकी दक्षिणामें हिरण्य, वस्त्र एवं विभिन्न प्रकारके फलोंके साथ प्रधानतया एक गाय प्रदान करनेका विधान आर्ष साहित्यमें विहित है[१८]।

[७] सौत्रामणि नामक प्राक्सौमिक यज्ञके अन्तर्गत सोमरस-निषेचनके प्रथम एवं अन्तिम दिनमें प्रदेय गायोंकी संख्या एक सहस्र तथा द्वितीय दिवसकी दक्षिणामें चारों प्रधान ऋत्विजोंको ४८,००० (अड़तालिस हजार) गायें और सहायक ऋत्विजोंको उनके वर्गके अनुसार क्रमशः २४,०००, १२,००० एवं ६,००० गायें प्रदान किये जानेके उल्लेख हैं[१९]। कौकिली सौत्रामणि-संज्ञक यागमें भी गायोंको दक्षिणार्थ अनिवार्य बतलाते हुए उनकी संख्या न्यूनतम ३३ निर्धारित की गयी है[२०]।

पूर्वलिखित विवेचनोंके आधारपर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सनातनधर्मके मेरुदण्ड-स्वरूप यज्ञोंके अनुष्ठानोंकी सम्यक् सफलता दक्षिणाविधानोंद्वारा सम्भव रही है। दक्षिणा-पदार्थोंकी अनेकधाओंमें गायकी दक्षिणा अपरिहार्य एवं अतुलनीय पदार्थके रूपमें अनादिकालसे मान्यता प्राप्त रही है। हविर्यज्ञोंकी किसी भी विधाकी आनुष्ठानिक सफलता-हेतु गौ माताको ऋत्विजोंके लिये दक्षिणास्वरूप अवश्यमेव प्रदान करनेका विधान है। दक्षिणा-पदार्थोंमें गायकी महिमा सर्वोत्कृष्ट स्वीकृत है। इसीलिये दक्षिणाका पर्याय भी गाय बन गयी है। अतएव कहा जा सकता है कि जहाँ एक ओर वैदिक यज्ञोंकी परिपूर्णता उसके पञ्चावयवोंपर अवलम्बित है, वहीं दूसरी ओर दक्षिणा नामक अङ्गकी सम्पूर्णता गोमाताद्वारा ही सम्भव रही है।

निर्दोषताकी माँग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

अपनेको अथवा दूसरोंको बुरा समझनेका एकमात्र कारण भूतकालकी घटनाओंके आधारपर वर्तमानकी निर्दोषताको आच्छादित कर देना है; क्योंकि कोई भी व्यक्ति सर्वांशमें कभी बुरा नहीं होता और न सभीके लिये बुरा होता है। बुराई उत्पत्ति-विनाश-युक्त है, नित्य नहीं। जो नित्य नहीं है, उससे नित्य-सम्बन्ध सम्भव नहीं। ऐसी दशामें अपनेको अथवा दूसरोंको सदाके लिये बुरा मान लेना प्रमादके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सभीका वर्तमान निर्दोष है। यह सभीका अनुभव है। जब हम अपने किसी भी दोषकी चर्चा करते हैं, तब यह मानना ही पड़ता है कि वह दोष भूतकालका है, वर्तमानमें तो किये हुए दोषकी स्मृति है, दोषयुक्त है, दोषयुक्त प्रवृत्ति नहीं। किसी प्रवृत्तिकी स्मृति किसीका स्वरूप नहीं है। जो स्वरूप नहीं है, उसको अभेद-भावसे अपने अथवा दूसरोंमें आरोप करना क्या न्याययुक्त निर्णय है? कदापि नहीं। अतः अपनेको अथवा दूसरोंको वर्तमानमें बुरा समझना विवेक-विरोधी निर्णय है। इस निर्णयसे अपनेमें अपराधी-भाव दृढ़ होता है और दूसरोंके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। अपराधी-भाव आरोपित कर कोई भी निरपराध नहीं हो सकता; क्योंकि जैसा अहंभाव होता है, वैसी ही प्रवृत्ति होती है। अहं प्रवृत्तिका मूल है अथवा यों कहिये कि कर्ता ही कर्मके रूपमें व्यक्त होता है। इस दृष्टिसे अशुद्ध कर्तासे शुद्ध कर्मकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। शुद्ध कर्म शुद्ध कर्तासे ही होता है। कर्मकी शुद्धि तभी हो सकती है, जब कर्ता शुद्ध

(१८) बौधायन श्रौतसूत्र २८।१२।१३; (१९) विशेषहेतु द्रष्टव्य है—धर्मशास्त्रका इतिहास—भाग १, पृ० ५६९। (२०) कात्यायन श्रौतसूत्र १९।४।६; मानव श्रौतसूत्र ५।२।३४—त्रयः त्रिंशद् दक्षिणास्तासां धेनुर्वडवा....;।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय। अतः कर्मकी शुद्धिके लिये कर्तामें शुद्धताकी प्रतिष्ठा करना अनिवार्य है, जो वास्तवमें विवेक-सिद्ध है।

दूसरोंके प्रति उत्पन्न हुई घृणा समीपतामें भी दूरी उत्पन्न कर देती है अर्थात् बाह्य दृष्टिसे दो व्यक्ति, दो वर्ग, दो देश समीप रहते हुए भी आन्तरिक दृष्टिसे एक-दूसरेसे दूर हो जाते हैं। इसका परिणाम बड़ा ही भयंकर होता है। परस्पर वैर-भावकी बड़ी ही गहरी खाई बन जाती है। वैर-भाव अपने और दूसरेके विनाशमें हेतु है तथा समस्त संघर्षोंका मूल है। वैर-भाव व्यक्तिके मस्तिष्कको इतना अस्वस्थ कर देता है कि वह वस्तुस्थितिका यथेष्ट परिचय नहीं कर पाता। उसे विपक्षीमें दोष-ही-दोष प्रतीत होने लगते हैं। यह द्वेषकी महिमा है कि वह द्वेष-पात्रमें गुणका दर्शन नहीं होने देती। किसीका द्वेष किसीका राग अवश्य बन जाता है। जिस प्रकार द्वेष गुणका दर्शन नहीं होने देता, उसी प्रकार राग दोषका दर्शन नहीं होने देता। वैर-भाव अपना दोष और विपक्षीका गुण देखने नहीं देता।

अपने दोषको जाने बिना उसका त्याग नहीं हो सकता और दूसरेके गुणको जाने बिना उससे एकता नहीं हो सकती। इस कारण वैर-भाव न तो कभी परस्पर एकता होने देता है और न संघर्षका नाश ही। वैर-भावके समान अन्य कोई ऐसा वैरी नहीं है, जिसकी उत्पत्ति दूसरोंको बुरा समझनेसे होती हो। अतः किसीको बुरा समझना अपना बुरा करना है। यदि मानव निर्दोष होना चाहता है तो उसे अपनेको और दूसरोंको वर्तमानमें निर्दोष मानना ही पड़ेगा; क्योंकि यह विवेक-सिद्ध है।

भूतकालके दोषोंकी स्मृतिने ही वर्तमानकी निर्दोषताको ढक दिया है। यदि भूतकालकी स्मृतिके आधारपर किये हुए दोषोंको न दुहरानेका महाव्रत ले लिया जाय तो स्मृतिसे असहयोग करनेकी सामर्थ्य आ जाती है और अपनेमें अपराधी-भावका विनाश हो जाता है, जिसके होते ही वर्तमानकी निर्दोषताका स्पष्ट बोध हो जाता है और फिर उसका प्रभाव शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदिपर स्वतः होने लगता है। इतना ही नहीं, उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति निर्दोष होने लगती है, जिससे समाजमें निर्दोषता विभु हो जाती है। उसके न चाहनेपर भी उसे आदर तथा प्यार मिलने लगता है; क्योंकि निर्दोषताकी माँग मानवमात्रको है। उसका जीवन दोषयुक्त प्राणियोंको निर्दोष बनानेमें पथ-प्रदर्शन करता है।

अपनी निर्दोषताको सुरक्षित रखनेके लिये दूसरोंको दोषी न मानना अनिवार्य है। प्राकृतिक नियमके अनुसार किसीको बुरा समझना सबसे बड़ी बुराई है; क्योंकि किसी-को बुरा समझनेका परिणाम उसकी वर्तमान निर्दोषतामें बुराईकी दृढ़ स्थापना करना है। किसीको बुरा बनाना बुराईको व्यापक कर देना है। की हुई बुराई सीमित है, असीम नहीं; किंतु किसीको बुरा मानकर तो बुराईकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही करना है। किसीका बुरा चाहना बुराई करनेकी अपेक्षा कहीं अधिक बुराई है और किसीको बुरा समझना बुरा चाहनेकी अपेक्षा भी कहीं अधिक बुराई है। इस कारण किसीको बुरा समझनेके समान और कोई बुराई हो ही नहीं सकती। जो किसीको बुरा समझता है, उसके जीवनमें अशुद्ध संकल्पोंका नाश नहीं होता। अशुद्ध संकल्पोंकी उत्पत्ति अशुद्ध कर्मको जन्म देती है। अतः दूसरेको बुरा समझकर कोई भी व्यक्ति अशुद्ध कर्मसे बच नहीं सकता। इस दृष्टिसे दूसरेको बुरा समझना अपनेको बुरा बनानेमें मुख्य हेतु है। किसी भी मानवको किसीको बुरा समझनेका कोई अधिकार नहीं है। यहाँतक कि कोई स्वयं ही अपनी बुराई स्वीकार करे, तब भी उसकी वर्तमान निर्दोषताकी चर्चा करते हुए उसे यह विश्वास दिलाना चाहिये कि सभीका वर्तमान निर्दोष है। हाँ, यह अवश्य है कि वर्तमानकी निर्दोषताको सुरक्षित रखनेके लिये किये हुए दोषोंका त्याग अनिवार्य है।

जब मानव अपनी अथवा दूसरोंकी वर्तमान निर्दोषताको स्वीकार कर लेता है, तब उसे भूतकालमें किये हुए दोषोंके त्याग करनेमें बड़ी ही सुगमता हो जाती है। यह नियम है कि जिसमें अपराधी-भावका अन्त हो जाता है, उसमें निर्दोषताकी अभिव्यक्ति स्वतः होने लगती है अर्थात् निर्दोषताका प्रभाव उसके शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिपर होने लगता है और फिर उसके दैनिक जीवनसे समाजमें निर्दोषता फैलने लगती है। निर्दोषताकी स्वीकृतिमें ही उसकी व्यापकता विद्यमान है। इस रहस्यको जान लेनेपर मानवमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी सुगमतापूर्वक निर्दोषतासे अभिन्न हो सकता है।

अब यदि कोई कहे कि अपनेको निर्दोष माननेसे तो मिथ्या अभिमानकी उत्पत्ति होगी, जो स्वयं बहुत बड़ा दोष है; पर बात ऐसी नहीं है। अभिमानकी उत्पत्ति तो तब होगी, जब हम अपनेको निर्दोष और दूसरोंको दोषी मान लेंगे। जिसने सभीकी निर्दोषता स्वीकार की है, उसमें समताकी अभिव्यक्ति होगी, अभिमानकी नहीं। समता योग है, अभिमान भोग है। यह सभीको मान्य होगा कि भोगकी सिद्धि विषमतामें है, समतामें नहीं। अपनेको दोषी और दूसरोंको निर्दोष, दूसरोंको दोषी और अपनेको निर्दोष मानना विषमता है। विषमताका नाश सभीमें निर्दोषताकी स्थापना करते ही स्वत: हो जाता है। विषमताके नष्ट होते ही भोग योगमें विलीन हो जाता है। योग सामर्थ्यका प्रतीक है। सामर्थ्यके आते ही जो नहीं करना चाहिये, उसकी उत्पत्ति ही नहीं होती और जो करना चाहिये, वह स्वत: होने लगता है अथवा यों कहिये कि दोषकी उत्पत्ति ही नहीं होती और निर्दोषता जीवनमें ओतप्रोत होकर अपने-आपको स्वयं प्रकाशित करने लगती है। निर्दोषताकी माँग जीवनकी माँग है। इस माँगको किसी प्रकार भी मिटाया नहीं जा सकता। जिसको मिटाया नहीं जा सकता, उसकी पूर्ति अनिवार्य है। भूतकालके किये हुए दोषोंके आधारपर वर्तमानकी निर्दोषताको अस्वीकार करना दोषोंको जन्म देना है और वर्तमानकी निर्दोषताको स्वीकार करना दोषोंके अस्तित्वको ही समाप्त कर देना है।

वर्तमानकी निर्दोषताको स्वीकार किये बिना किसीके जीवनमें निर्दोषताकी अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। यह सभीका अनुभव है कि सर्वांशमें तो कोई अपनेको दोषी मानता ही नहीं। गुण और दोषयुक्त स्वीकृति सभीमें स्वभावसे ही होती है। दोषकी स्वीकृति भूतकालकी घटनाओंके आधारपर और गुणोंकी स्वीकृति-स्वभावसिद्ध होती है। यदि मानव अपने किये हुए दोषोंके त्यागका महाव्रत लेकर केवल स्वभावसिद्ध निर्दोषताको स्वीकार करे तो गुण-दोषयुक्त द्वन्द्वात्मिका स्थितिका नाश हो जाता है, जिसके होते ही अहंभावरूप अणु सदाके लिये मिट जाता है और फिर एकमात्र निर्दोषता रह जाती है, जो पहले भी थी, अब भी है और सदैव रहेगी।

जो नष्ट होती है, वह निर्दोषता नहीं है। जो सदैव रहती है, वही निर्दोषता है। दोषोंकी उत्पत्ति होती है। निर्दोषता अनुत्पन्न है। देहाभिमानके कारण अनुत्पन्न निर्दोषतापर व्यक्ति दोषोंका आरोप कर बैठता है। देहाभिमान अविवेक-सिद्ध है, वास्तविक नहीं। निर्दोषताकी माँग कामनाओंको खाकर स्वत: देहाभिमानको नष्ट कर देती है। इस दृष्टिसे निर्दोषताकी माँगमें ही उसकी प्राप्ति निहित है।

देहाभिमानके कारण किये हुए दोषोंके आधारपर नित्य-प्राप्त निर्दोषतासे दूरी तथा भेद स्वीकार कर बेचारा व्यक्ति अपनेको दोषी मान बैठता है। उसका परिणाम यह होता है कि निर्दोषकालमें भी भूतकालके दोषोंकी स्मृतिसे भयभीत होकर वह अपनेको दोषी मानता है और निर्दोष होनेकी लालसाको पूरा करनेके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रयास करता रहता है; किंतु अपनेको दोषी माननेके कारण उसके प्रयास निष्फल होते हैं। अपनेको दोषी मान लेनेपर वह दोषयुक्त प्रवृत्तिमें स्वाभाविकता और निर्दोषतामें अस्वाभाविकता मानने लगता है; परंतु जब निज विवेकके प्रकाशमें वर्तमान वस्तुस्थितिका अध्ययन करता है, तब उसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि जिन दोषोंकी स्मृति आ रही है, वे भूतकालमें किये गये थे।

यह सभीका अनुभव है कि अपराध करनेपर जब मनुष्यको भय होता है, तब उसमें स्वाभाविक ही यह संकल्प उत्पन्न होता है कि अब मैं भूल नहीं करूँगा। इस स्वाभाविकी प्रेरणासे यह सिद्ध हो जाता है कि अपराध करनेसे पूर्व व्यक्ति निरपराध था और अब निरपराध रहना चाहता है। आदि और अन्तमें निर्दोषता-ही-निर्दोषता है। मध्यमें उत्पन्न किये गये दोषोंके आधारपर आदि और अन्तमें रहनेवाली निर्दोषता मिट नहीं सकती। यदि किसी प्रकार वह मिट जाती तो जीवनमें उसकी माँग ही न होती, किंतु उसकी माँग मानवमात्रके जीवनमें रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्नता मेरी—मुट्ठीमें आपकी!

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है कई बरस पहलेकी।

दोपहरकी वेला। अचानक एक बुजुर्ग साथी पधारे। आते ही अपने घर-परिवारकी चर्चा करने लगे और उसीके दौरान लगे फफक-फफककर रोने।

मैं तो हैरान।

आँसू पोंछकर मैंने उन्हें सान्त्वना दी— 'भाई साहब! मैं हाजिर हूँ आपकी सेवाके लिये। आप जी छोटा न करें।'

बात यह हुई कि हमारी भाभी साहिबा कुछ कड़े स्वभावकी हैं। भाई साहब ठहरे सीधे-सरल, सहनशील। वे उनका अत्याचार सहते हैं, सहते हैं, रात-दिन सहते हैं। पर मानवकी सहनशीलता भी तो कभी-कभी जवाब दे देती है।

ऐसे ही एक पीड़ित क्षणमें अत्यन्त दुःखी होकर वे पधारे थे मेरे घर। बोले—'मुझे और कुछ न चाहिये। कभी जरूरत पड़नेपर मैं कुछ समयके लिये तुम्हारे पास आकर शान्तिपूर्वक रह सकूँ।'

'अवश्य, अवश्य!' मैंने उन्हें आश्वासन दिया।

सम्पन्न, भरा-पूरा परिवार। कमाऊ बाल-बच्चे। भाई साहब सेवा-निवृत्त होकर भी कुछ-न-कुछ काम करके थोड़ा-बहुत कमा लेते हैं। घरमें कोई खास दिक्कत नहीं, समस्या नहीं। फिर भी भाई साहबकी प्रसन्नता रहती है मुट्ठीमें भाभी साहिबाकी।

× × ×

मुझे सुननेको मिला १४ अगस्त, १९५८ को एक संतके श्रीमुखसे काशीमें।

बोले—'मधुकरीके लिये जा रहा था एक दिन। देखा एक परिवार प्रसन्नतासे विह्वल। कुतूहल जगा। पूछा—'बात क्या है?'

एक लड़की बोली— 'बाबा! भैया बी०ए० में पास हो गये। तार आया है अभी-अभी।'

पूछा—'पास होनेकी यह प्रसन्नता तुम्हें कहीं दिखायी पड़ती है' सब हँस पड़े। किसीने कोई जवाब नहीं दिया।

फिर पूछा—'भैया पास हुआ है तो कल फेल तो हो नहीं जायगा; पर आज तुम्हें जितनी प्रसन्नता है, कल भी इतनी ही रहेगी?'

सब बोले— 'कल तो आजकी-सी प्रसन्नता नहीं रहेगी।'

'क्यों नहीं रहेगी कल? और आज भी तो तार आनेके पहले यह प्रसन्नता नहीं थी। इसका मतलब क्या है? हमारी कोई कामना पूरी होती है तो हम प्रसन्न, बहुत प्रसन्न। कहीं हमारी सारी कामनाएँ पूरी हो जायँ तब तो कहना ही क्या! पर किसीकी सारी कामनाएँ कभी भी पूरी हुई हैं? फिर जरा-सी देरके लिये प्रसन्नतामें डूब जानेका कोई अर्थ है?'

प्रसन्नता, तारके एक पुर्जेमें कैद।

× × ×

आज तो लाटरीका युग है, पर यह बात तबकी है, जब अंग्रेज भारतमें राज्य करते थे।

एक अंग्रेज साहबने एक टिकट खरीदा लाटरीका। मौज आ गयी, अपने खानसामाके नामसे भी एक टिकट खरीद लिया। किस्मतकी बात। कभी-कभी खुदा भी देता है तो छप्पर फाड़कर! खानसामाके नाम लाटरीका इनाम निकल आया।

अब साहबने खानसामाको बुलाया और बिना कुछ कहे बेंत उठाकर लगा सड़ासड़ उसे पीटने।

खानसामा रोता-चीखता रहा। साहब पीटता रहा। जब खानसामाकी रग-रग पीड़ासे छटपटाने लगी, तब साहबने लाटरीका पर्चा उसे देते हुए कहा—'ले, तू लाटरीका इनाम जीत गया!'

खानसामाका दर्द आनन-फानन हवा हो गया।

खुशीमें, प्रसन्नतामें मस्त हो उठा वह।

साहब उसे इतना न पीटता तो सम्भवतः खानसामा खुशीका उफान न सम्हाल पाता और टें बोल जाता।

प्रसन्नता, लाटरीके इनामसे, अर्थ-प्राप्तिसे बँधी हुई।

× × ×

यों हमारी प्रसन्नताके एक नहीं, अनेक मुकाम हैं। रुपया-पैसा, धन-दौलत, अनुकूल स्त्री-पुत्र, जमीन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायदाद, परीक्षामें सफलता, अच्छी नौकरी, पद, अधिकार, नामवरी आदि।

लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा—सभीमें हमारी प्रसन्नता छिपी है। जिन लोगोंके माध्यमसे हमारी ये कामनाएँ पूरी होती हैं, उनकी मुट्ठीमें है हमारी प्रसन्नता।

× × ×

पत्नीसे सुख मिलेगा, वह रात-दिन सेवा करेगी, हमारे इशारेपर नाचेगी, हरदम 'म्याऊँ' बनी रहेगी। हमारी ये अपेक्षाएँ पूरी हुईं तो हम प्रसन्न, नहीं तो हमारा जीवन चौपट।

बेटेसे सुख मिलेगा, बुढ़ापेमें वह लकड़ीका काम देगा, हमारी सेवा करेगा, हमारी आज्ञाका पालन करेगा, जीते-जी ही नहीं, मरनेपर भी पानी देगा। ऐसा हुआ तो हम प्रसन्न, अन्यथा हमारे दुःखका पार नहीं।

माता-पिता, भाई-बन्धु, घर-परिवार— सभीसे हमारी अपेक्षाएँ हैं तरह-तरहकी। सभी लोग हमसे सद्व्यवहार करते हैं, हमारी फरमाइशें पूरी करते हैं तो हम प्रसन्न, अन्यथा हम अप्रसन्न।

क्या तमाशा है। प्रसन्नता हमारी, मुट्ठीमें इन सब लोगोंकी।

× × ×

साधु-संन्यासी हैं। दुनिया छोड़ दी, इससे क्या? उनकी प्रसन्नता है—भक्तों और चेलोंकी मुट्ठीमें। उन्होंने पर्याप्त सेवा की; सम्मान किया; आदर किया; तब तो बाबाजी प्रसन्न नहीं तो कबीरकी दुहाई देते हैं—

या जग सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया रे।

× × ×

दफ्तरमें साहब और बड़े बाबूकी मुट्ठीमें हमारी प्रसन्नता रहती है। इतना ही नहीं, चपरासी महोदय भी उसे हथिया लेते हैं। वे यदि ठीकसे सलाम बजाते हैं, घंटी बजाते ही दस्तबदस्त आ खड़े होते हैं और आज्ञाका पालन करते हैं तो हम प्रसन्न, अन्यथा उसकी नौकरी खा जानेको भी हम तैयार हो जाते हैं।

× × ×

हमारी दूकानपर ग्राहकोंकी भीड़ रहती है और वे हमसे सम्मानपूर्वक बोलते हैं, तब तो हम प्रसन्न, अन्यथा हम जरा देरमें मनका संतुलन खो बैठते हैं।

प्रसन्नता हमारी, मुट्ठीमें ग्राहकोंकी।

× × ×

घर-बाहर, यत्र-तत्र-सर्वत्र सैकड़ों-हजारों लोगोंसे हमारा सम्पर्क होता है। अच्छा व्यवहार मिला तो हम प्रसन्न, अन्यथा हमारा पारा चढ़ते देर नहीं।

× × ×

शामका वक्त है। मैं प्रसन्न बैठा हूँ। आप चुपकेसे सामने आकर मेरे सीनेपर पिस्तौल तान देते हैं— 'धर दे, जो कुछ हो तेरे पास'। पलक मारते मेरी प्रसन्नता उड़ंछू। मेरा अङ्ग-अङ्ग भयसे थर-थर काँपने लगता है। 'बचाओ'-की आवाज भी मुँहसे नहीं निकल पाती, घिग्घी बँध जाती है।

भयका कोई प्रसंग हो, क्षोभ और उद्वेगका कोई प्रसंग हो, ईर्ष्या-द्वेषका, अर्थनाशका, किसी आत्मीयके जीवन-मरणका, रोग-बीमारीका कोई प्रसंग हो, तुरंत हमारी प्रसन्नताका दिवाला बोल जाता है।

लोग हमारी प्रशंसा करें और हमें कुछ दें—धन दें, पद-प्रतिष्ठा दें, अधिकार और गद्दी दें—ऐसी वासना हृदयसे निकलती ही नहीं।

तुलसी बाबाने ठीक ही कहा है—

'कोउ भल कहउ, देउ कछु—असि वासना न उर तें जाई।'

हमारी प्रसन्नता इसी वासनामें कैद है।

इसकी पूर्ति हुई तो हम प्रसन्न। पूर्ति न हुई, उसमें बाधा पड़ी तो हम अप्रसन्नताके किस गर्तमें जा पड़ेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं।

शरीर-रचना-विज्ञान—एनॉट्मीका विद्वान् जॉन हंटर हृदयकी तीव्र उत्तेजना—(जिससे अचानक हृद्गति बंद होकर मनुष्यकी मृत्यु हो सकती है)-की अपनी मान्यताके सम्बन्धमें कहता है—

मेरा जीवन उस दुष्टकी कृपापर आश्रित है, जो मुझमें क्रोध भड़का सकता है।

क्रोध भड़का, मैं उत्तेजित हुआ, फिर मैं कौन-सा ऊटपटांग काम कर बैठूँगा, इसका कोई ठिकाना है? तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह सोचनेका भी मौका न रहेगा कि जान जायगी या रहेगी।

× × ×

यदि कोई मेरी आलोचना करता है, मुझपर व्यंग्य कसता है, मेरा विरोध करता है, मेरा अपमान-तिरस्कार करता है, मुझे धमकाता या मारता है तो देखते-देखते मेरी प्रसन्नता गायब हो जाती है। मेरी प्रसन्नता उसकी मुट्ठीमें चली जाती है।

× × ×

गीतामें स्थितप्रज्ञके लक्षणोंमें पहला लक्षण है—

'मनमें उठनेवाली सारी कामनाओंका त्याग और आत्मासे आत्मामें ही संतुष्ट रहना'—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
(२। ५५)

यह आत्मासे आत्मामें संतुष्ट होना क्या है?

यही कि मेरी प्रसन्नता मेरी मुट्ठीमें हो, आपकी मुट्ठीमें नहीं।

वह भी कोई प्रसन्नता है, जिसकी चाभी दूसरेके हाथमें हो?

मेरी प्रसन्नता, मेरी खुशी मेरे हाथमें हो, तब तो कोई बात; अन्यथा जिसके हाथमें उसकी कुंजी रहेगी, वह जब चाहे मेरी प्रसन्नता छीन लेगा।

परायी मुट्ठीमें रहनेवाली, पराधीन बनाये रखनेवाली प्रसन्नता मेरे किस कामकी? यह प्रसन्नता नहीं, छलना है, धोखा है, भ्रम है, झूठ है।

× × ×

भक्तका लक्षण बतलाते हुए गीता कहती है—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
(१२। १५)

'जिससे किसी जीवको उद्वेग न हो और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त न हो; हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग जिसे विचलित न कर सकें, वह भगवान्का प्यारा भक्त है।'

× × ×

मतलब?

यही कि भक्त वह, जिसकी प्रसन्नता उसकी अपनी मुट्ठीमें रहती है। जिससे न तो दूसरोंको उद्वेग होता है, न वह स्वयं किसी भी स्थितिमें किसीके द्वारा उद्विग्न होता है।

उसीकी प्रसन्नता स्थायी प्रसन्नता होती है।

उसीकी प्रसन्नता सच्ची प्रसन्नता होती है।

ऐसा प्रसन्न व्यक्ति न दुःखोंसे विचलित होता है, न द्वन्द्वोंसे।

कोई भी व्यक्ति, कोई भी वस्तु, कोई भी परिस्थिति उससे उसकी प्रसन्नता छीन नहीं सकती। हर परिस्थितिका वह स्वागत करता है—

यां यों भी वाहवा है औ वों भी वाहवा है!

काश, हम ऐसी प्रसन्नता पा सकें।

धरापर आ जाओ घनश्याम

(श्रीचन्द्रकिशोरजी 'श्वेतांशु')

धरापर आ जाओ घनश्याम।
विरह-विदग्ध विकल सब प्राणी तड़पें आठों याम॥ धरा०॥
अन्तर आकुल कसक रहा औ तपन लगे निज धाम।
विरहानलमें झुलस रहे सब खग-मृग तरु-तृण प्राण॥ धरा०॥
तुम बिन माधव नींद न आवे, मिले न दिवस आराम।
दे दो अपनी दर्शन-भिक्षा सुन्दर चरित ललाम॥ धरा०॥
मैं हूँ याचक तुम हो दाता दान करो कल्याण।
तुम ही हो मम स्वामी-त्राता और न अपना आन॥ धरा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुकी असली कीमत

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

'राजन्! एक अतिथि द्वारपर खड़े हैं। श्रीमान्के दर्शन करना चाहते हैं।'

'अतिथि! कैसे हैं? कौन हैं?'

'साधु-वेश, भगवा वस्त्र, हाथमें कमण्डलु-चिमटा, लंबे केश, उत्सुक मुद्रा! एक महात्मा द्वारपर हैं। जरूरतके समय ही साधु लोग आते हैं।'

'क्या कुछ माँगने आये हैं? भिक्षा माँगनेके अनेक स्थान हैं। राजाके यहाँ क्या काम भिखारियोंका?'

'जी, वे मामूली भिखारी नहीं हैं। कोई पहुँचे हुए महात्मा लगते हैं। शायद दर्शनके अभिलाषी!'

सबने प्रार्थना की, 'महात्माको दरबारमें आने दिया जाय।' उदार राजाने आनेकी स्वीकृति दे दी। सब साधुके अंदर आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। कैसे हैं महात्मा? क्या कहते हैं? क्या चाहते हैं? सभासदोंके मनमें सैकड़ों शंकाएँ थीं। साधु राजाके दरबारमें कैसे आ गये। किधर भूल पड़े आज! उनकी क्या माँग हो सकती है?

इतनेमें सौम्य मुद्रामें गेरुवा वस्त्र धारण किये, साधुने दरबारमें प्रवेश किया।

राजाने स्वागतमें कहा—'प्रणाम महात्माजी! कहिये आज मुझपर कैसे यह कृपा की?'

'मैंने आपका विमल यश सुना था। अब आपका शिष्टाचार देखकर मनमें संतोष अनुभव कर रहा हूँ। आपके मधुर वचनों, स्वागत-सत्कारसे आत्मा प्रसन्न हो गयी है।'

'जी हाँ, मैं मानता हूँ कि राजा हो या मामूली आदमी, अफसर हो या मातहत सभीको शिष्टाचारी होना चाहिये। मधुरतायुक्त व्यवहार मेरी आदत बन गयी है।'

'राजन्! सद्व्यवहार, सदाचार आदि शिष्टाचारके ही अङ्ग हैं। शिष्टाचारी मन, वचन और कर्म, किसीसे किसीको हानि नहीं पहुँचाता, वह दुर्वचन कभी नहीं बोलता, न मनसे किसीका बुरा चाहता है। तुम्हें अपनी ऊँची स्थितिका घमंड नहीं है, यह मुझे रुचा।'

राजाने उत्तर दिया—'किसी भी तरहके अभिमानको शिष्टाचारमें गुंजाइश नहीं रहती।'

'इतना ही नहीं', महात्माजीने बातोंमें रस लेते हुए कहा—'शिष्टाचारकी ऐश्वर्यवृद्धिके साथ-साथ उसकी निरभिमानता, नम्रता और विनयशीलता भी बढ़ती जाती है। आपमें.....।'

बीचहीमें राजा बोल उठा—'जी, मैं किस काबिल हूँ, भला।.....आप आत्मभावके कारण मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।'

'नहीं, नहीं, सो बात नहीं।'

'तो फिर क्या बात है महाराजजी?'

'प्रत्यक्षको प्रमाण क्या? जैसे फलोंके बोझसे पेड़ झुक जाते हैं, वैसे आप-जैसे भले आदमियोंकी लौकिक सम्पदाएँ ऐश्वर्यके बढ़नेपर भी नम्रता और विनयशीलतासे बढ़ जाती हैं।'

यह निर्णय सुनकर राजा प्रसन्न हो गये। अब क्या था; प्रसन्नतामें उन्होंने अतिथिकी बड़ी खातिर की। दर्शनीय चीजें दिखलायीं।

और तो और, राजा साधुकी योग्यता और व्यवहारसे इतना खुश हुआ कि उसे अपना रत्न-भण्डारतक दिखाने लगा। रत्न-भण्डारकी छबि अनोखी थी। अहह! चारों ओर धन-सम्पदा, स्वर्ण-मुद्राएँ, चाँदी-सोनेकी ईंटें रखी थीं। तरह-तरहके कीमती रत्न करीनेसे जमे थे। ऐसे मूल्यवान् हीरे, मोती, नीलम, पन्ने आदि रत्न किसीको कब देखनेको मिलते हैं? एक-एक पत्थरकी कीमत लाखों रुपये होगी। उस खजानेमें जानेसे पहले न जाने कितने सतर्क पहरेदारों और जागरूक सैनिकोंको पार करना पड़ता था। राजाको अपने इस विपुल रत्न-भण्डारपर विशेष गर्व था। रत्न-भण्डार दिखाकर राजाने साधुका चेहरा देखा। उसपर प्रसन्नताकी रेखाएँ आकाशमें चमकते सितारोंकी भाँति स्पष्ट थीं। राजाकी आत्मा मयूरकी तरह नाच उठी। 'जरूर साधुको मेरा रत्न-भण्डार पसंद आया है। मेरे द्वारा सहेजकर रखे हुए इन हीरों, मोतियों, नीलम, पन्नों आदि कीमती रत्नोंसे वह प्रभावित हो रहा है', यह सोचकर राजाको तृप्तिका शीतल अनुभव हुआ। वह साधुके मुँहसे प्रशंसा सुनना चाहता था।

'कहिये, आपको यह सब कुछ कैसा लगा?' उसने उत्सुकतासे पूछा। साधु अभीतक चुप था।

'क्यों, क्या बात है? शब्द आपकी जिह्वापर क्यों अटके हैं? कहिये.....!'

'मेरी एक शंका है, छोटी-सी जिज्ञासा। इजाजत दें, तो एक बात पूछूँ?'

'हाँ, हाँ, शौकसे पूछिये न!'

'महाराज! इन कीमती पत्थरोंसे आपको सालभरमें कितनी आय हो जाती होगी?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवाल सुनकर राजाको यकायक हँसी आ गयी। अतिथि साधु है, दुनियासे वैरागी। इसे दुनियाकी बेशकीमती धन-सम्पदा, रत्न, मूल्यवान् हीरोंका क्या पता? वह उनकी कीमत क्या जाने? देखनेमें ये हीरे, मोती, नीलम आदि रत्न कितने छोटे-छोटे हैं, पर इनकी कीमत करोड़ोंमें आँकी जाती है। एक ही हीरा काफी बड़ी जमीन-जायदाद खरीद सकता है। एक मोतीसे आदमीका जीवन सुखसे कट सकता है। एक नीलम बड़े उत्सवोंमें खर्चेके लिये काफी है। साधु पत्थरोंकी आय पूछता है! सांसारिक ज्ञानमें यह कैसा शून्य है, छिः छिः।

राजा बोला—'महात्माजी! इनसे तो कुछ आमदनी नहीं होती। उलटे इन बहुमूल्य रत्नोंकी रक्षाके लिये बहुत-से पहरेदार और सैनिक नौकर रखने पड़ते हैं। इनकी चोरीका बड़ा डर रहता है। डकैत, बदमाश, लुटेरे यहाँ डकैती करनेके नये-नये तरीके सोचते रहते हैं। इन्हें लूटने-खसोटनेमें एक दो क़त्ल भी हो जाय तो वे कर बैठते हैं। इनकी सुरक्षाके लिये राज्यका बहुत-सा धन खर्च करना होता है। इनमेंसे कई मूल्यवान् रत्न तो मुझे मेरे पुरखोंसे धरोहर मिले हैं। वे बहुमूल्य रत्न कई पीढ़ियोंसे हमारे पास सुरक्षित चले आ रहे हैं। मैं उन्हें अपने राज्यकी अमूल्य निधि मानता हूँ।'

राजा सोच रहा था कि उन रत्नोंकी कीमत और प्रशंसा सुनकर साधु और भी तारीफ करेगा।

लेकिन यहाँ कुछ और बात थी। साधु बोला— 'महाराज, मैंने आपके कीमती पत्थरोंको देखा। मैं आपको इन सबसे बड़ा और इनसे भी बहुमूल्य पत्थर दिखलाना चाहता हूँ।'

क्या कह रहा है, यह साधु! राजाको बिजलीका करेंट मार गया। कहाँ ले जायगा? मुझसे अधिक अमीर इस राज्यमें कौन हो सकता है? जरूर, इन सबसे बड़ा और अधिक मूल्यवाला पत्थर देखना चाहिये।

वह अतिथिके साथ जानेको राजी हो गया।

साधु आगे-आगे और भावुक किंतु दम्भी राजा पीछे-पीछे चले जा रहे थे। अमीर-बस्ती समाप्त हो गयी। मध्यवर्गकी बस्ती शुरू हो गयी। चलते-चलते मध्यवर्गके घर भी खत्म। और यह लीजिये, झोंपड़ियाँ चालू हो गयीं। दीन-हीन गरीबोंके कच्चे, टूटे-फूटे मकान, गिरी हुई अवस्था, आर्थिक विवशताके मूर्तिमान् रूप.....।

राजा मन-ही-मन सोच रहा था, 'यहाँ इस गंदी बस्तीमें साधु मुझे कहाँ ले जा रहे हैं? शायद कोई जमीनमें गड़ा हुआ गुप्त खजाना है, जिसमें कहीं अधिक कीमती रत्न हैं। बदबूके कारण नाक-सिकोड़े वे चले जा रहे थे।

अकस्मात् साधु एक जगह रुके।

'अरे, यह किसका मकान है?'

'राजन्, क्षमा करें।' साधुने एक झोंपड़ीकी ओर इशारा कर कहा, 'वह कीमती पत्थर इसी झोंपड़ीमें है।'

'ठीक, शायद इसीमें धरतीमें गड़ा हुआ होगा। मेरा अनुमान सत्य है।' राजाने मन-ही-मन सोचा।

झोंपड़ी किसी गरीब बुढ़ियाकी थी।

'आइये, अंदर चलें।' 'माँजी, आपके घर राजा पधारे हैं। बाहर आकर उनका स्वागत कीजिये', साधु प्रेममिश्रित स्वरमें बोले।

गरीब वृद्धा लकड़ी टेकती हुई बाहर निकल आयी।

'आइये, आइये। मेरे धन्य भाग जो राजा मुझ गरीबकी झोंपड़ीमें पधारे हैं। मैं किस प्रकार आपका स्वागत-सत्कार करूँ?' वृद्धा भौंचक्की रह गयी।

'हम आपकी झोंपड़ीके अंदर जायँगे!'

'शौकसे आइये, पधारिये। झोंपड़ीको पवित्र कीजिये।'

दोनों अतिथि अंदर गये।

अंदर गरीबीका ताण्डव था। मजबूरीका विकराल रूप! एक ओर टूटी-सी खाट, कुछ फटे चिथड़े,... आलोंमें मिट्टीके काले तथा कुरूप बर्तन,.... टाट्का बिछौना,.... एक कोनेमें चूल्हा,.... कुछ अधजली लकड़ियाँ,...और वृद्धाकी चक्की।

वृद्धा लज्जित-सी एक ओर खड़ी थी।

'महाराज, मैं गरीब हूँ। बड़ी आर्थिक मजबूरीमें दिन काट रही हूँ। जो कुछ गाँवसे अन्न मिल जाता है कूट-पीसकर गुजारा करती हूँ।'

साधु उस चक्कीकी ओर संकेत करते हुए बोले—'राजन्! ये पत्थर आपके अनुपयोगी पत्थरोंसे कहीं कीमती हैं।'

राजाने आश्चर्यसे पूछा—'महात्माजी, यह किस तरह? आप कह क्या रहे हैं?'

साधु बोला—'इनके द्वारा यह निराश्रित विधवा जीवन-निर्वाह कर लेती है। वस्तुका महत्त्व उसके रंग और रूपसे नहीं, उसकी उपयोगितासे समझना चाहिये।'

उत्तर सुनकर राजा चकित हो उठा।

वह सोचने लगा—'ये असंख्य बहुमूल्य हीरे मेरे लिये बेकार बोझ हैं। ये किसी काम नहीं आते। एक तिजोरीसे दूसरी तिजोरीमें बंद पड़े रहते हैं। लेकिन चक्कीमें लगे हुए पत्थर प्रतिदिन आटा पीसकर वृद्धाके काम आते हैं। साधु ठीक कहता है, वस्तुका महत्त्व उसके बाहरी रंग और रूपसे नहीं, उसकी उपयोगितासे समझना चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा बिना कृष्ण आधा

(श्रीफतेहचन्दजी अग्रवाल)

वह सुन्दर चित्रकार थी; किंतु उसने अपनी चित्राङ्कन-कलाका कभी अभिमान नहीं किया था। उसका नाम उसके गुणोंके अनुकूल था। 'चित्रा' नाम था उसका। उसका धाम था कृष्णकी पवित्र क्रीडास्थली 'गोकुल'। चित्राङ्कनकी कलामें वह इतनी निपुण और सिद्धहस्त थी कि किसी भी वस्तु, पक्षी, पशु, ताल-तलैया या मानवका चित्र कल्पनामात्रपर बना लिया करती थी। बस, उसे हाथमें तूलिका उठा लेने भरकी देर होती कि चित्र सर्वोत्कृष्ट एवं हृदयाकर्षी बन जाता।

'चित्रा' अपने कुशल-व्यवहार एवं मधुर स्वभाव तथा अद्भुत चित्राङ्कन-कलाके कारण आस-पासके क्षेत्रोंकी तो बात ही क्या दूर-दूरतक चर्चित हो गयी थी।

वह बचपनसे ही 'कृष्ण'-भक्तिमें अनुरक्त थी। अपने आराध्य कृष्णका सुन्दर-सा चित्र वह बना सके, इसी प्रयासमें आज वह एक महान् चित्रकार बन गयी थी। उसकी ख्याति इतनी विस्तृत हो गयी थी कि किसीको भी चित्र बनवाना होता तो उसे बस एक ही नाम सूझता 'चित्रा'। किंतु इतनेपर भी चित्रा संतुष्ट नहीं थी। उसे अपनी चित्राङ्कन-कलापर कभी-कभी संदेह होने लगता था। वह सोचा करती यदि मैं इतनी प्रतिभासम्पन्न चित्रकार हूँ तो क्यों नहीं अभीतक नन्दबाबाके नटखट श्यामसुन्दर कन्हैया मेरी ओर आकर्षित हुए? उन्होंने आजतक कभी भी मुझे अपना चित्र बनानेके लिये नन्दभवनमें आमन्त्रित क्यों नहीं किया? निश्चय ही अभी मैं पूर्णरूपसे चित्राङ्कन-कलामें निपुण नहीं हो पायी हूँ। अचानक फिर उसे दूसरे ही क्षण याद आता—मथुरा-नरेशने भी तो मुझसे अपना चित्र बनवाया था और उस चित्रसे इतने संतुष्ट हुए थे कि उन्होंने अपने दरबारमें राज्यशिल्पी-जैसा उच्चस्थान प्रदान करना चाहा था। मैंने ही तो उनके प्रस्तावको ठुकरा दिया था।

चित्रा 'कृष्ण' के नटखट स्वरूपको हृदयमें बसा घंटों गुमशुम बैठी रहती, सोचती रहती, कितना अच्छा होता यदि मैं चित्रकार न होकर 'ग्वालिन' होती। कृष्ण-कन्हैयाको रोज माखन खिला पाती, रोज उसे देख पाती। उसके साथ धेनु चराने भी चली जाती, भले ही कोई कुछ भी कहता। मैं किसीकी परवा न करती। इस प्रकार मन-ही-मन कृष्णका स्मरण करते हुए चित्रा राधाजीके भाग्यको सराहती तथा कभी-कभी उसे राधाजीसे ईर्ष्या-सी होने लगती। चित्रा सोचती कहाँ चित्तचोर सुन्दर श्याम और कहाँ वह गाँवकी राधा। उसके घाघरेमें तो सदा गोबर लगा रहता है, पर भाग्य देखो सदा श्यामसुन्दरका सामीप्य प्राप्त है उसे। धिक्कार है मुझे और मेरी कलाको जो कृष्णके सामीप्यसे वञ्चित है।

इस प्रकार नित्य शुद्ध और पवित्र हृदयसे 'चित्रा' 'कृष्ण'का चिन्तन किया करती। श्रीकृष्ण तो सदासे ही भाव और भक्तिके भूखे, भक्तवत्सल और अन्तर्यामी हैं। वे चित्राके विचित्र एवं निर्मल-निर्भ्रम प्रेमसे अन्ततः एक दिन द्रवित हो ही उठे और अचानक घरमें रूठकर बैठ गये।

प्रातःकालका समय है, यशोदा मैया सोच रही हैं क्या बात है आज लाला माखन माँगने नहीं आया। दूसरे दिनों तो भले ही सूर्य उदय होना भूल जाय, किंतु वह माखन माँगना नहीं भूलता। माखन, माखनकी रट लगा देता है। आज क्या बात है? माँ यशोदाकी चिन्ता स्वाभाविक थी। वे विचलित-सी हुईं नन्दबाबाके पास गयीं। पूछा—आपने कन्हैयाको कहीं भेजा है? नहीं तो, भला वह कोई कार्य करता है जो मैं उसे कहीं भेजता! कल रात चन्द्रावलीकी मटकी फोड़ आया था। इसलिये भयवश मेरे सामने तो आ ही नहीं सकता। नन्दबाबाके उत्तरसे यशोदा अधिक चिन्तित हो उठीं, बोलीं—'अरे तो फिर कहाँ गया?' इतनेमें ही आवाज आयी कृष्णकी—'मैया, अरी ओ मैया! मैं यहाँ हूँ, किंतु मैं क्यों बताऊँ कि मैं कहाँ हूँ। मैं तो आज रूठा हुआ हूँ। और रूठनेवाला चुप रहता है, इसलिये मैं नहीं बताता।' नन्दबाबा और माँ यशोदा दोनों अपने कान्हाकी ऐसी बातें सुनकर मुँह दबाकर हँसने लगे। मैयाने देखा आवाज पलंगके नीचेसे आ रही है। उन्होंने झुककर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलंगके नीचे देखा, कन्हैया मुँह फुलाये घुटने मोड़े चुपचाप बैठा है। पसीनेसे तर हुआ श्यामल मुँह कुम्हला-सा गया है। यशोदा मैयाने प्राय: नीचे लेटते हुए पलंगके नीचेसे कन्हैयाको निकाला और वात्सल्यप्रेमके साथ अङ्कमें भरकर चूमने लगीं। फिर गोदमें बैठाकर प्रेमपूर्वक अपने आँचलसे कृष्णके शरीरका पसीना पोंछने लगीं। पुन: पंखा लहराते हुए पूछा—'क्यों रूठा है मेरा लाला कुछ पता तो चले।' 'मुझे अपना चित्र बनवाना है' तुनककर बोले जगत्पिता बालरूप कृष्ण।

मैया यशोदाको जोरोंकी हँसी आ गयी। आज तुझे यह चित्र बनवानेकी क्या सूझी? रोज तो माखनके लिये रूठा करता था, फिर आज चित्रके लिये क्यों?

सभीके चित्र हैं हमारे भवनमें; केवल मेरा ही नहीं है, मेरे साथ यह अन्याय क्यों? मेरा भी चित्र तत्काल बनवाया जाय, सभी चित्रोंके ऊपर लगाया जाय, तभी मैं मानूँगा। अन्यथा रूठा ही रहूँगा। मचलते हुए कहा कृष्णने।

नरोत्तम कृष्ण जानते थे, मेरा रूठना न तो मैया सह सकती हैं और न नन्दबाबा। मेरे रूठे रहनेपर अवश्य ही मेरा चित्र बनवाया जायगा और चित्र बनानेके लिये मेरी प्रिय भक्ता चित्राको ही बुलाया जायगा। इस प्रकार चित्राकी मन:कामना पूर्ण की जा सकेगी। वही हुआ जो कृष्ण चाहते थे। चित्राको बुलवाया गया, वस्तुत: इसी बहाने श्रीकृष्ण चित्राको कुछ शिक्षा भी देना चाहते थे।

आज चित्राकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। वह हर्षोत्फुल्ल हो रही थी, आज वह दिन आ गया था, जिसकी वर्षोंसे उसे प्रतीक्षा थी तथा जिस उद्देश्यसे उन्होंने चित्राङ्कन-कलाको अपने जीवनयापनका माध्यम बनाया था। वह बेसुध-सी हुई नन्दभवन जानेकी तैयारीमें जुट गयी।

नन्दभवनमें बैठी हुई चित्रा कृष्णके स्वरूपका चिन्तन कर ही रही थी कि इतनेमें ही अचानक उसके जीवनाधार कृष्ण वहाँ आ पहुँचे। वे तुरंत एक छोटी-सी चौकीपर खड़े होते हुए चित्रासे बोले—'चित्र सुन्दर बनाना, मेरी तरह ही।' चित्रा भावविभोर हो अपलक कुछ क्षण कृष्णको निहारती रही। सुधि लौटनेपर एक हाथमें तूलिका पकड़ी और दूसरेमें चित्रपट और चाहा कि कृष्णका चित्र बनाना आरम्भ करूँ, पर यह क्या उसके हाथ शिथिल क्यों हो गये? तूलिकाको क्या हो गया, वह क्यों नहीं चलती? उसने अपने-आपको संयत किया और चित्र क्यों अङ्कित नहीं हो रहा है, इसका अनुसंधान करने लगी। ओह! उसे ध्यान आया, कृष्ण तो टेढ़ा खड़ा है, कदाचित् यही कारण है जो चित्र नहीं बन पा रहा है। उसने कृष्णको आदेश दिया—'सीधे खड़े रहो।' कृष्णने शरारती लहजेमें कहा—'सखी! यह कैसे सम्भव है? मैं तो हमेशासे ही नटखट और टेढ़ा हूँ, मैं क्या-क्या चीजें सीधी करूँ? मेरा मुकुट टेढ़ा, मेरी बाँसुरी टेढ़ी, मेरा नाम टेढ़ा। क्या तुम नहीं जानती मेरा एक नाम बाँकेबिहारी भी है और बाँकेका अर्थ तो टेढ़ा ही होता है न? तुम एक काम करो, मेरा टेढ़ा ही एक चित्र बना दो।' चित्रा मन्त्रमुग्ध-सी हुई कृष्णके वचनोंको सुन रही थी। उसे ऐसा लगने लगा जैसे वह चित्राङ्कन करना ही भूल गयी है। जिस चित्राके हाथमें तूलिका आनेमात्रसे ही चित्र स्वयं ही बन जाया करते थे, वह आज हस्तविहीन-सी हो गयी थी। उसका शरीर रोमाञ्चित हो थर-थर काँप रहा था। उससे कृष्णका चित्र नहीं बन रहा था। चित्रा किंकर्तव्यविमूढ हुई चुपचाप बैठ गयी। वह चित्र नहीं बना पानेके कारण लज्जाका अनुभव कर रही थी। उसकी आँखोंसे आँसू निकलना ही चाहते थे कि कृष्ण उसकी मन:स्थिति भाँपकर बोले—'अच्छा, ठहरो जरा मैं माखन खाकर आता हूँ, तब बनाना मेरा चित्र। उस समय मेरा चित्र हृष्ट-पुष्ट बनेगा, अन्यथा मैं चित्रमें कमजोर-सा दीखूँगा।' कृष्ण चले गये बहाना बनाकर।

चित्रा अकेली रह गयी भवनमें, अब वह अपने आँसुओंके वेगको रोक नहीं पायी। सुबकते-सुबकते न जाने कब वह बेसुध-सी हो गयी या उसकी आँख लग गयी। उसने देखा कि कृष्ण उसके सामने खड़े हैं और उससे कह रहे हैं—'सखी चित्रे! मैं तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। यह सच है कि तुमने हमेशा मुझे अपना आराध्य माना, किंतु साथ ही तुम मेरी प्रियतमा, मेरी सर्वेश्वरी, मेरी शक्ति राधासे ईर्ष्या करती रही। किंतु भद्रे! कदाचित् तुम्हें ज्ञान नहीं कि मैं और राधारानी एक-दूसरेके अभिन्न अङ्ग और पूरक हैं। राधाके बिना, हे चित्रे! मैं अधूरा हूँ, इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी भक्त प्राय: यह कहा करते हैं कि 'राधा बिना कृष्ण आधा' अर्थात् भद्रे! राधाके बिना मेरी भक्तिका कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है और इसी कारण तुम मेरी छबि नहीं बना पा रही हो। चित्रा, यदि तुम्हें मेरा चित्र अङ्कित करना है तो मेरे इस स्वरूपको अपने हृदयमें स्थान दो।' ऐसा कहकर कृष्णने चित्राको अपने पूर्णस्वरूपका दर्शन कराया। चित्राने देखा कृष्णके शरीरका आधा भाग राधाका है और आधा भाग कृष्णका। चित्राने देखा कृष्णका सम्पूर्ण स्वरूप कभी राधाके स्वरूपमें परिवर्तित हो जाता और कभी कृष्णके स्वरूपमें तथा कभी आधे अङ्गमें कृष्ण होते और आधेमें राधा।

चित्रा कृष्णकी इस अद्भुत लीलाको देखकर तथा उनके पूर्णरूपको देखकर आश्चर्यचकित रह गयी। उसने स्वयंको धिक्कारा—'अरे, वह जिसे गाँवकी एक साधारण-सी बालिका, ग्वालिन, छोरी समझे बैठी थी, वह तो पराशक्ति है। वह तो कृष्णकी लीला-सहचरी है।'

अचानक उसकी चेतना वापस आयी। उसने सच्चे हृदयसे राधाका आह्वान किया, तुरंत ही उसने देखा चतुर्भुज-रूपमें तेजपुंज लिये राधा उसके सामने खड़ी मुसकरा रही हैं, साथमें खड़े हैं नटखट कन्हैया।

कहना न होगा उसके बाद चित्राने जो कृष्णका चित्र बनाया वह अतिललित, सुन्दर तथा भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण था। आज चित्राकी चित्राङ्कन-साधना पूर्ण हो गयी थी, आज उसके जीवनमें माधुर्य-रसकी अजस्र धारा प्रवाहित हो उठी थी।

भक्तिमती चित्राके इस वृत्तान्तसे यह स्पष्ट हो जाता है कि निरन्तरके ध्यानाभ्याससे और साधनादार्ढ्यसे भगवान्‌का मिलन सबके लिये सम्भव है। कहा भी है—

यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

उड़ जायगा रे हंस अकेला

उड़ जायगा रे हंस अकेला। दिन दोयका दरसन मेला॥
राजा भी जायँगे योगी भी जायँगे
गुरु भी जायँगे चेला॥ उड़ जायगा०॥
मात-पिता भाई-बन्धु भी जायँगे
और रुपयोंका थेला॥ उड़ जायगा०॥
तू भी जायगा रे तेरा भी जायगा
यह सब मायाका खेला॥ उड़ जायगा०॥
तन भी जायगा रे मन भी जायगा
तू क्यों हुआ है गैला॥ उड़ जायगा०॥
कौडी रे कौडी माया जोडी
संग न चलेगा अधेला॥ उड़ जायगा०॥
साथी रे साथी तेरे पार उतर रहे
तू क्यों रहे है अकेला॥ उड़ जायगा०॥
राम नाम निष्काम रटो नर
बीति जात है बेला॥ उड़ जायगा०॥
एक साथ दो पंछी बैठे
एक गुरु एक चेला॥ उड़ जायगा०॥

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

जैसे व्यापार वह बढ़िया होता है, जिसमें ज्यादा पैसे मिलें, ऐसे ही साधन वह बढ़िया होता है, जिसमें मन ज्यादा भगवान्‌में लगे।

× × ×

अपने लिये सुख चाहनेसे नाशवान् सुख मिलता है और दूसरोंको सुख पहुँचानेसे अविनाशी सुख मिलता है।

× × ×

भोगीके द्वारा सबको दुःख मिलता है और योगीके द्वारा सबको सुख मिलता है।

× × ×

भगवान् हमारे हैं, पर मिली हुई वस्तु हमारी नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌की है।

× × ×

किसी व्यक्तिको भगवान्‌की तरफ लगानेके समान कोई पुण्य नहीं है, कोई दान नहीं है।

× × ×

जो बदलनेवाले (संसार) की इच्छा करता है, उससे सुख लेता है, वह भी बदलता रहता है अर्थात् अनेक योनियोंमें जन्मता-मरता रहता है।

× × ×

एक-एक व्यक्ति खुद सुधर जाय तो समाज सुधर जायगा।

× × ×

जिसको हम सदा अपने पास नहीं रख सकते, उसकी इच्छा करनेसे और उसको पानेसे क्या लाभ?

× × ×

अब मैं पुनः पाप नहीं करूँगा—यह पापका असली प्रायश्चित्त है।

× × ×

मरनेपर स्वभाव साथ जायगा, धन साथ नहीं जायगा। परंतु मनुष्य स्वभावको तो बिगाड़ रहा है और धनको इकट्ठा कर रहा है। बुद्धिकी बलिहारी है!

× × ×

जो हमारेसे धन-सम्पत्ति, सुख-सुविधा, मान-आदर आदि कुछ भी चाहता है, वह हमारा कल्याण नहीं कर सकता।

× × ×

जो दूसरोंकी सेवा नहीं करता और भगवान्‌को याद नहीं करता, वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी ही नहीं है।

× × ×

प्रेमी भक्त भगवान्‌के प्रभावसे आकृष्ट नहीं होते, प्रत्युत भगवान्‌के अपनेपनसे आकृष्ट होते हैं।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हानि कुसंग सुसंगति लाहू

(पं० श्रीकमलेशजी व्यास 'गौड', ज्योतिर्वेत्ता)

सज्जनोंकी संगति सत्संगति है। इस संसारमें सज्जन-दुर्जन, अच्छे-बुरे दोनों स्वभावके लोग हैं। सभी शास्त्रों, महाभारत, रामायण तथा पुराणोंमें सत्संगतिकी विशेष महिमा गायी गयी है और उन सभीका निचोड़ यही है कि आत्मकल्याणकामीको चाहिये कि वह सदा अच्छे लोगों, साधु-स्वभाववाले लोगोंका ही संग करे। साधु लोगोंका—सज्जन लोगोंका आचार-विचार, आहार-विहार ही सदाचार कहलाता है और वही सबके लिये कल्याणकारी है, इसलिये अनुकरणीय होता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह दुःसंगका सर्वथा सर्वतोभावेन परित्यागकर सत्पुरुषोंका ही संग करे—

ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।

(श्रीमद्भा० ११। २६। २६)

संतोंका—साधु पुरुषोंका एक क्षणका संग भी बहुत मूल्यवान् होता है—

संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३०)

अजामिल महान् पापी था, किंतु एक क्षणके सत्संगने उसकी जीवनधारा ही बदल दी। वह सर्वदाके लिये भगवान्का प्रिय हो गया और भगवत्पथका पथिक बन गया—

इति जातसुनिर्वेदः क्षणसंगेन साधुषु।

(श्रीमद्भा० ६। २। ३९)

इसी प्रकार बालक ध्रुवको देवर्षि नारदजीके साथ पाँच मिनटका संग होनेसे ही भगवद्भक्ति प्राप्त हो गयी और राजा परीक्षित्को सात दिनमें तत्त्वज्ञान हो गया। ऐसी घटनाओं और सत्य वृत्तान्तोंसे हमारे शास्त्र-ग्रन्थ भरे पड़े हैं। इनमें किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं, ये बातें पूर्णतः सत्य हैं। इसी प्रकार यदि कोई सत्संग करे तो उसे भी ऐसा ही होगा यह निश्चित सिद्धान्त है।

इसीके साथ यह भी निश्चित है कि जिस प्रकार एक क्षणके सच्चे सत्संगसे व्यक्ति नरसे नारायण बन सकता है, उसी प्रकार एक क्षणके कुसंगसे वह पतनके गर्तमें गिर जाता है, फिर पुनः संतकी कृपा एवं भगवान्के अनुग्रहके बिना उसका उद्धार होना कठिन है।

देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्रोंमें एक बड़े महत्त्वका सूत्र आया है—

'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च'

अर्थात् महात्माओंका संग, अच्छे लोगोंका संग मिलना बड़ा कठिन है और साधारणतया वह अप्राप्य ही है, परंतु यदि हमें ऐसे पुरुषोंका संग मिल जाय तो उसका फल अमोघ होता है।

सज्जनोंके साथमें हम अपनेको एक शान्त, भयमुक्त, शुद्ध एवं आनन्ददायक वातावरणमें पाते हैं, जिससे वैषम्य, अभाव, दुःख, चिन्ता और परेशानीके सारे भाव मिट जाते हैं। यह नश्वर जीवन कमलके पत्तेपर पड़े हुए जलके समान तरल और अत्यन्त चञ्चल है। कब समाप्त हो जायगा, किसीको ज्ञात नहीं है। स्त्री-पुत्र, यश-वैभव, धन-सम्पत्ति आदि सभी सुख, ऐश्वर्य देखते-ही-देखते पानीके बुलबुलेकी तरह कब और कहाँ विलीन हो जायँगे, यह भी नहीं मालूम। फिर क्यों हाय-हाय मची रहती है, क्या इसपर कभी विचार किया आपने! यदि आप विचार करेंगे तो पायेंगे कि इस अनित्य संसारमें आकर अनित्य जीवन धारण करके अनित्य सुख-ऐश्वर्यमें जीवनके अमूल्य समयका खर्च कर देना महान् भूल नहीं है तो और क्या है? जब आप ऐसा निश्चित कर लेंगे तो उसका उपाय भी आपको स्वतः ही ज्ञात हो जायगा कि मनुष्यको अपना जीवन आत्मकल्याण किंवा भगवत्सेवा, संत-सेवा अथवा सत्संगमें लगा देना चाहिये। क्योंकि इस दुष्कर संसार-सागरसे शीघ्र उतरनेका सहज और सरल उपाय एकमात्र सत्संग है। अतएव दुःसंगको छोड़कर सत्संगका ही अवलम्बन लेना चाहिये। भगवान् कपिलदेवने कहा है—

सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। २५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् सत्पुरुषोंका संग इस लोकमें आधि-व्याधि और शोक-तापसे विमूढ़ हुए मनुष्यके हृदय और मनको सुख देनेवाला है। क्योंकि साधु-संगमें मेरी लीलाशक्तिको प्रकट करनेवाली कथाएँ सुननेको मिलती हैं और उस कथामृतसे शीघ्र ही मुझमें अर्थात् मोक्षस्वरूप भगवान्में श्रद्धा, रति और भक्ति प्राप्त होती है।

यह सत्संग सचमुच अनेक जन्मोंके पुण्योदय होनेपर प्राप्त होता है। और इस सत्संगको संसारमें पुण्यवान् लोग ही प्राप्त करते हैं। यह सत्संग अज्ञानजनित मोहान्धकारको नष्टकर हृदयके महामोहरूपी तमका भेदकर शुद्ध प्रकाशमय विवेक उत्पन्न कर देता है। विवेक उत्पन्न होनेपर प्राणीका जीवन प्रकाशमय हो उठता है। उसकी सारी दुर्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, कामना-वासना विलीन हो जाती है और फिर दु:संगका तनिक प्रभाव भी उसपर हो नहीं पाता। काष्ठके संयोगसे जैसे लोहा जलपर तैरता है, पुष्पका आश्रय पाकर जैसे तुच्छ कीड़ा देवताओंके मस्तकपर चढ़ जाता है, वैसे ही सत्पुरुषोंके संसर्गसे विषयासक्त मनुष्य भी सब पापोंसे छूटकर भगवत्सांनिध्यको प्राप्त कर लेता है।

ईदृग्विध सत्संगी मनुष्योंका हृदय बड़ा ही कोमल होता है, वे जिसको अभय देकर अपने आश्रयमें ले लेते हैं, उसको यदि कभी पापकी ओर जाते देखते हैं तो उसी क्षण उसे पापसे बचाकर उसके मन-तनके सारे पाप-कीचड़को धोकर उसे अपने आश्रयमें रख लेते हैं। रस्सीसे बँधा हुआ घड़ा जैसे जलमें डूबनेपर भी फिर ऊपर उठा लिया जाता है, इसी प्रकार पापमें डूबते हुए मनुष्यको भी, जिसकी जीवनडोर संतके हाथमें होती है, उसे संत पुरुष सत्-मार्गमें लगाकर पुण्यवान् बना देते हैं, इस प्रकार सत्संगके द्वारा मनुष्यका कौन-सा उपकार नहीं होता!

इस जलते हुए संसारमें संत पुरुषोंका संग पापोंमें लगे हुए अनीतिपरायण मनुष्यकी कुबुद्धिको दूरकर उसे सुबुद्धि प्रदान करके उसके हृदयको स्वच्छ कर देता है। पापके कीचड़से लिपटे हुए चित्तका पाप-पंक धोकर चित्तको निर्मल और पवित्र कर देता है तथा पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम सभी जीवोंके प्रति करुणा वितरण करनेके लिये मनुष्यको आगे बढ़ा देता है,सचमुच सज्जनोंकी संगति जीवका कौन-सा मंगल नहीं कर देती—

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति
चेतश्चिरन्तनमघं चुलुकीकरोति।
भूतेषु किं च करुणां बहुलीकरोति
संगः सतां किमु न मंगलमातनोति॥

जैसे पानीका अपना कोई आकार नहीं होता, उसे जैसे पात्रमें रखा जाय, वह वैसा ही आकार धारण कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य भी प्राय: जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे लोगोंकी सेवा करता है और जैसा बननेकी आशा करता है वह प्राय: वैसे ही स्वभाववाला हो जाता है। जैसे सफेद वस्त्रको जिस रंगमें रँगा जाय, वह उसी रंगका हो जाता है। वैसे ही साधु, असाधु, तपस्वी या चोर जिस-किसीका संग किया जाता है, वैसे ही स्वभावकी प्राप्ति होती है, अतएव बहुत सावधान रहना चाहिये—

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥

(महा०शान्ति० २९९। ३३)

मनुष्य अच्छे-बुरे, नीच-ऊँच तथा श्रेष्ठ जैसे पुरुषोंका संग करता है, उसका अनुसरण करता है, वह वैसा ही बन जाता है और प्रतिफलमें वह वैसा ही पाता है। नीचोंका संग करनेसे बुद्धि हीन एवं मलिन हो जाती है। अपने समानवालोंका संग करनेसे समानता ही प्राप्त होती है और श्रेष्ठ सज्जनोंका संग करनेसे व्यक्ति सज्जनता ही प्राप्त करता है तथा स्वयं भी सज्जन बन जाता है—

हीयते हि मतिस्तात नीचैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥

(हितोपदेश)

संगतिका मानवपर बड़ा प्रभाव पड़ता है—स्वाति नक्षत्रके जलकी बूँद केलेकी संगतिमें कपूर, सीपमें मौक्तिक तथा सर्प-मुखमें विषका रूप धारण कर लेती है, इसलिये जैसी संगति होगी वैसा ही उसका फल भी प्राप्त होगा—

कदली सीप भुजंग मुख स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये तैसो ही फल दीन्ह॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्टका साथ पद-पदपर दु:खदायी होता है और अच्छेका संग अच्छा ही बना देता है। एक कथा कही जाती है कि एक बार एक व्यक्ति कुसंगतिमें पड़कर चोरी करना सीख गया। धीरे-धीरे वह कुख्यात डाकू बन गया और एक बार उसने उस नगरके राजकोषपर डाका डालनेकी योजना बनायी। रात्रिके समय वह वेश बदलकर राजमहलके पिछवाड़ेकी तरफ आया और पिछली खिड़कीसे राजमहलके अंदर झाँकने लगा। उसने देखा कि वहाँ राजा अपने सलाहकारोंके साथ गुप्त मन्त्रणा कर रहे हैं। राजा कह रहा था 'जो साधु पुरुष होगा मैं उसीके साथ अपनी कन्याका विवाह करूँगा।' इतना सुनकर चोरके मनमें लोभ जाग्रत् हुआ कि यदि राजकन्यासे मेरा विवाह हो जाय तो मुझे बहुत सारा धन तो यूँ ही प्राप्त हो जायगा और मैं सुखी भी हो जाऊँगा। उसका चोरीका विचार बदल गया। अब उसने सोचा कि मैं भी साधु पुरुष बनकर राजाके सामने विवाहका प्रस्ताव रखूँगा। रात यों ही बीती। प्रात:काल उस चोरने साधु पुरुषका-सा वेश बनाया और वह हाथमें माला लेकर राम-नाम जपता हुआ गङ्गाके किनारे चला आया जहाँ साधुमण्डली बैठी हुई थी।

कुछ समय बाद वही राजा अपनी सुलक्षणा तथा रूपवती कन्याको लेकर साधुमण्डलीमें आया और उसने उनके समक्ष अपनी कन्याके विवाहका प्रस्ताव रखा, किंतु जिसका मन भगवान्‌के भजनमें लग गया, उसे इन बन्धनोंसे क्या प्रयोजन! साधु-मण्डलीने साफ मना कर दिया। अब बारी आयी उस साधु बने डाकूकी। क्योंकि सभीने नकार दिया था, किंतु सत्संग तथा भगवन्नाम-जपका उसपर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसकी तो मनोवृत्ति ही बदल गयी। कुछ देर पहलेतक जो एक महान् डाकू था, चोरी, लूटपाट, हत्या ही जिसका एकमात्र लक्ष्य था, आज थोड़ी देरके सत्संगने भले ही वह कृत्रिम ही था, उसका जीवन ही बदल दिया। अब तो उसे भी राम-भजनका चस्का लग गया, साधुसंगतिसे वह स्वयं भी सचमुचमें साधु बन गया। उसने भी राजाके प्रस्तावको ठुकरा दिया, अब वह भी उसी साधुमण्डलीका एक सदस्य बन गया।

यह है सत्संगतिका प्रभाव। यह कहानी भले ही असत्य हो, किंतु सत्संगतिकी महिमामें किंचित् भी असत्यता नहीं।

जैसे साधुकी साधुतासे साधुता आ जाती है, वैसे ही असाधुके संगसे व्यक्ति असाधु ही बन जाता है। जैसे अति निर्मल जल भी कीचड़के संग—संयोगसे मलिन हो जाता है, वैसे ही दुर्जनके संगसे सुजनका चरित्र भी दूषित हो जाता है। भ्रमसे भी यदि मनुष्य दुष्ट-संगमें पड़ जाता है तो फिर उसका संग-त्याग बहुत ही कठिन हो जाता है। कुसंगसे क्रम-क्रमसे काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश होकर अन्तमें मनुष्यका सर्वनाश हो जाता है—'**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।**' इसलिये—

सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्॥

(गरुड० पूर्व० ११३)

'सज्जनोंके साथ रहना चाहिये, सज्जनोंका ही संग करना चाहिये, विवाद करना हो तो वह भी सज्जनोंसे ही करना चाहिये और सज्जनोंसे ही मित्रता भी करनी चाहिये। असज्जनसे तो कोई सम्पर्क ही नहीं रखना चाहिये।'

सकल तजि, भजि मन! चरन मुरारि।
स्रुति, सुम्रिति, मुनि जन सब भाषत, मैं हूँ कहत पुकारि॥
जैसैं सुपनैं सोइ देखियत, तैसैं यह संसार।
जात बिलै ह्वै छिनक मात्र मैं, उघरत नैन-किवार॥
बारंबार कहत मैं तोसौं, जनम-जुआ जनि हारि।
पाछैं भई सु भई सूर जन, अजहूँ समुझि सँभारि॥

(सूर-विनय-पत्रिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

मैं गिरधर लूँगी

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ६०७ से आगे]

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

दृश्य—२

[आज कुछ महात्मा मीराके घर आकर ठहरे हैं।]

दूदाजी—मीरा, हमारे यहाँ महात्मा पधारे हैं। अभी उनका संकीर्तन होगा। चलो हम भी संकीर्तनमें सम्मिलित हों।

मीरा— जी दादाजी, चलिये। *(दोनों प्रस्थान करते हैं)*

[दूदाजी और मीरा संकीर्तनमें पहुँचते हैं। संकीर्तन हो रहा है।]

कृष्णा, कृष्णा, राधा कृष्णा।
कृष्णा कृष्णा, राधा कृष्णा॥
राधा कृष्णा, राधा कृष्णा।
गोपी कृष्णा, गोपी कृष्णा॥
मन मोहन कृष्ण, मधुसूदन कृष्ण।
मुरारे कृष्णा, मधुसूदन कृष्णा॥

[दूदाजीने महात्माओंको प्रणाम किया। मीरा एक महात्माके गोपालके प्रति एकाएक आकर्षित हो उठी। वह गोपालजीको ही निहारती रह जाती है। उनकी रूप-माधुरी उसके हृदयमें बस गयी। मीरा सुध-बुध खो बैठी। उसे भान ही नहीं रहा कि वह कहाँ खड़ी है और उसके आस-पास कौन लोग हैं। उसका गिरधरके साथ पूरा तादात्म्य है।]

दूदाजी—मीरा बेटी, महात्माओंको प्रणाम करो।

[मीरा दूदाजीकी ओर देखती है और गोपालको प्रणाम करती है।]

दूदाजी—बेटी, मैंने तुम्हें महात्माओंको प्रणाम करनेको कहा है।

[मीरा, जिसके हृदयका तार गिरधरसे जुड़ा है, झुँझलाकर पूछती है।]

मीरा—दादाजी, आपने मुझे कुछ कहा?

दूदाजी— हाँ बेटी। महात्माओंको प्रणाम करो।

[मीरा महात्माओंको प्रणाम करती है। उसके तुरंत बाद गिरधरको देखकर प्रसन्न होती है।]

दूदाजी—*(महात्माओंसे)* महाराज, ठाकुरको भोग तो लग गया। कुछ प्रसाद ग्रहण कर लें।

महात्मा—जी चलिये।

[प्रसाद पानेके लिये सब प्रस्थान करते हैं। मीरा सबके साथ बाहर जाकर वापस आ जाती है और अकेली उस एक महात्माके ठाकुरके सामने बैठ जाती है। हँसती है। ठाकुरको उठाकर गलेसे लगाकर प्यार करती है।]

मीरा—आप तो मुझे देखकर हँस रहे थे, अब बात तो करो।

[गलेसे लगाती है। उसी समय दूदाजी और उस महात्माका प्रवेश।]

दूदाजी—*(मीराको गोपालको गले लगाते देखकर)* महाराज, क्षमा करना मीरा नादान बच्ची है।

महात्मा—नहीं महाराज, मीराके इस प्रेम-भावकी तो सराहना करनी चाहिये। न जाने गिरधरकी क्या इच्छा है।

[मीरा ठाकुरको विराजमान कर दूदाजीसे लिपटकर कहती है।]

मीरा—दादाजी, मुझे यह गोपाल ले दो न।

दूदाजी—हाँ बेटी, मैं तुम्हें इससे भी सुन्दर ठाकुर मँगवा दूँगा।

मीरा—नहीं दादाजी, मैं तो इन्हींको लूँगी।

दूदाजी—अपने मन्दिरमें पहलेसे ही ठाकुर चतुर्भुजनाथ तो हैं ही।

मीरा— नहीं, मुझे यही गिरधर गोपाल अच्छे लगते हैं। ले दो न दादाजी।

दूदाजी—बेटी, साधु महाराज अपने सेव्य इष्टको भला क्यों देने लगे। (महात्मासे) महाराज, आप देख रहे हैं न इस नादान बच्चीका हठ। मैं इसे कैसे समझाऊँ।

मीरा—बाबा, दे दो न मुझे। यह मुझे बहुत प्रिय लगते हैं।

महात्मा—बेटी, मेरे तो यह प्राण हैं। मैंने इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनभर सेवा की है। भला प्राणोंको कैसे दे दूँ।

मीरा—बाबा, गोपाल मुझे देखकर हँसते हैं।

दूदाजी—चलो मीरा, हठ नहीं करते। *(मीराके कानमें)* आज बहुत देर हो गयी। कल फिर कीर्तनमें आयेंगे। तब गोपालजीको ले जायँगे।

मीरा—बाबा, कल दे दोगे न?

महात्मा—*(कुछ सोचते हुए)* अच्छा कल देखेंगे।

[मीरा दूदाजीके साथ चलने लगती है। गोपालजीकी ओर देखती है। वह उसे देखकर फिर हँसते हैं। मीरा एक क्षणके लिये रुकती है।]

दूदाजी—चलो न मीरा।

[मीरा और दूदाजीका प्रस्थान, इधर घबराये हुए महात्मा गोपालजीसे कहते हैं—]

महात्मा—गोपालजी, मैं तो यहाँ आ भी नहीं रहा था। गिरधर, यह कैसी विचित्र लीला है तुम्हारी। आप मेरी परीक्षा तो नहीं ले रहे हैं?

[महात्मा जल्दीसे झोलेमें पूजाका सामान डालते हैं। गोपालजीको प्रणाम करते हैं और एक सुन्दरसे वस्त्रमें ढककर दूसरे झोलेमें डालते हैं। शाम होते ही वह वहाँसे चल देते हैं।]

दृश्य—३

मुझे मीराके पास ले चलो

[चलते-चलते महात्मा एक फूसकी कोठरी देखते हैं। गोपालजीको एक कपड़ा बिछाकर शयन करवा देते हैं। स्वयं भी सो जाते हैं। महात्माको गोपाल स्वप्नमें आते हैं।]

गिरधर गोपाल—तुम्हारी सेवा अब पूरी हुई। मैं तुम्हें यहाँ इसलिये लाया था, क्योंकि मुझे मीराका रसामृतसे भरपूर सांनिध्य चाहिये। तुम मुझे वापस मीराके पास ले चलो।

[महात्मा चौंककर उठते हैं, गोपालजीकी ओर देखते हैं। स्वप्नको केवल स्वप्नमात्र ही समझते हैं।]

महात्मा—न जाने कैसे-कैसे स्वप्न आते हैं। मन उड़ता है तो इसकी गतिका ठौर-ठिकाना नहीं।

[अँगड़ाई लेते हुए सो जाते हैं। सोते ही फिर स्वप्न आता है।]

गिरधर गोपाल—बाबा! यह यथार्थ है, स्वप्न नहीं। मुझे तुरंत मीराके पास ले चलो।

[महात्मा चौंककर उठते हैं। देखते क्या हैं कि जो वस्त्र गोपालजीके ऊपर डाले थे, वे उतरे हुए हैं और वह अलगसे कीचमें सने पड़े हैं।]

महात्मा—गोपालजी, आपकी ऐसी ही इच्छा है तो चलिये चलते हैं।

दृश्य—४

मीराको गोपाल-प्राप्ति

[मीराका घर। मीरा रो रही है। घरके लोग हठीली मीराको समझा-बुझा रहे हैं।]

मीरा—मुझे मेरे गोपाल ले दो। वही गोपाल, जो मुझे देखकर हँसते हैं। उसी मधुर चितवनके दर्शन करवा दो। महात्मा मेरे गोपालको लेकर चले गये। अब मैं क्या करूँ? गोपाल! मेरे गोपाल!

हरी मेरे जीवन प्रान-अधार।
और आसरो नाँहीं तुम बिन तीनूं लोक मँझार॥
आप बिना मोहि कछु न सुहावै निरख्यौ सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मती बिसार॥

दूदाजी—अधीर न हो मीरा। मैं तुम्हें......*(महात्माका प्रवेश)* देखो, महात्मा गोपालजीको लेकर आ गये।

महात्मा—गिरधर गोपाल तो मीराके ही होना चाहते हैं। (कुछ देर रुककर) रातको इन्होंने मुझे सपनेमें आदेश दिया, मैं इन्हें मीराके पास पहुँचाऊँ। मैं तो इनकी इच्छा और मीराकी लगनके आगे नतमस्तक हूँ।

[मीरा हँसते-हँसते भाव-विभोर हो जाती है। हाथ फैलाकर गोपालजीको लेती है और गिरधरको लेकर प्रसन्नतासे नाच उठती है। फिर सीधे पूजा-गृहमें ले जाती है और डिब्बेमेंसे मिष्टान्न निकालकर भोग लगाती है। पट खोलकर भजन गाती है और नृत्य करती है।]

बसो मोरे नैननमें नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरि सूरति नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजंती-माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल॥

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

'शिव'नामके पुकारकी महिमा

यह बात मेरे बचपनकी है। उस समय मेरी उम्र लगभग ८ वर्षकी रही होगी। बचपनवाली आदत थी—सड़कपर घर बनाते और अन्तमें उसे बिगाड़कर वापस घर चले जाते। मेरा घर नदीके किनारे था। उस टोलेका नाम था रामघाट। टोलेका जैसा नाम था वैसे ही विचारवाले उसमें बसते भी थे। उस टोलेमें एक अच्छे विचारवाले रामायणीजी थे, वे हम सभी बच्चोंको अच्छी-अच्छी बातें समझाते। उनके कहनेपर हम सब बच्चोंने नदीके किनारे एक पीपलके पेड़के निकट दो हाथ लंबा-चौड़ा एक मिट्टीका शिवमन्दिर बनाया। हमलोग नदीमें प्रतिदिन प्रातः स्नान करके शिवजीकी पूजा करते और स्कूलसे अवकाश मिलनेपर उसीके किनारे जानवरोंको चराया करते थे। जब जानवर चरने लगते तो हम सभी कीर्तन करने लगते, हमलोग मिलकर गाते—

'राम नाम लड्डू गोपाल नाम घी,
हरि नाम मिश्री तू घोर-घोर पी'

—इसमें बड़ा आनन्द आता। कुछ हमसे भी छोटे-छोटे वालक थे जो लड्डू और मिश्री कहनेमें बड़े खुश होते थे और जोर-जोरसे ताली पीटकर गाते थे।

एक बारकी बात है हम सभी बच्चे कीर्तनमें मस्त थे, उसी समय कीर्तनकी आवाज सुनकर वे रामायणीजी आ गये और हम सभी बच्चोंका मनोबल बढ़ाने लगे। रामायणीजी सचमुच ही साधु थे। उनका काम था टूटी हुई सड़कपर मिट्टी भरना। खानेके लिये एक पैसेकी भिक्षा माँगते और जब चार पैसा हो जाता तो सत्तू खरीदकर खा लेते और फिर सड़क भरनेमें लग जाते। खानेभर सत्तूका मूल्य उन दिनों चार पैसा ही लगता था। घरमें बूढ़ी माँ छोड़कर और कोई नहीं था। हम सब बच्चोंका घर भी उनके समीपमें ही था। हम बच्चोंका प्रायः रोजका यही क्रम रहता।

एक दिन रविवारको मैं जानवरोंको चराने गया। उस दिन कोई साथी नहीं आया; क्योंकि मौसम ठीक नहीं था। देखते-देखते एक बादलका टुकड़ा पश्चिम दिशासे जल्दी-जल्दी बढ़ने लगा और कुछ ही क्षणोंमें आँधी-पानीके साथ ओले भी पड़ने लगे। मैं घबड़ाकर झटपट उस मन्दिरमें घुस गया, जिसमें एक आदमीके बैठनेभरकी जगह थी। भयके मारे काँपने लगा और शिवमन्दिरमें कीर्तन करनेके स्वभाववश अनायास 'जय शिव, जय शिव'की ध्वनि निकलने लगी। मुझे लगता था कि अब प्राण निकलनेहीवाले हैं। उस समय भयंकर दृश्य था—आँधीका नंगा नृत्य हो रहा था। अब मुझे भगवान् शंकरके सिवा और कुछ सूझ ही नहीं रहा था। जानवर तो किसी तरह गाँवकी ओर भाग गये, किंतु मैं वहीं फँस गया। बिजली कड़कनेकी भयंकर आवाजसे और भी भयका माहौल बन गया था। मन्दिरमें दुबका हुआ मैं 'जय शिव, जय शिव'का उच्चारण किये जा रहा था और यही प्रार्थना कर रहा था—प्रभो, आज इस संकटसे आप ही उबार सकते हैं।

वैसे ही कुछ देर हुई होगी, मैंने देखा कि मेरे बड़े भाई सिरपर छतरी-सी कोई चीज रखे इधर-उधर मेरा नाम ले-लेकर चिल्ला रहे थे। आँधी-पानीमें कुछ साफ नजर नहीं आ रहा था। मैं भी जोरसे चिल्लाया। मेरी आवाज उन्होंने पहचान ली और वे दौड़ते हुए मन्दिरके पास आ पहुँचे। मुझे लगा कि भोले बाबाने ही मेरी रक्षाके लिये भाईको यहाँ भेज दिया है। मेरी जान-में-जान आयी। भाईसाहबने मेरा हाथ पकड़कर ज्यों ही मुझे बाहर खींचा और हमलोग थोड़ा-सा हटे ही थे कि उसी समय गड़गड़ाहटकी आवाजके साथ बड़ी जोरसे बिजली कड़की, एक तीव्र प्रकाशसे हमारी आँखें चौंधिया गयीं। बिजली पासके ही पीपलके पेड़पर गिरी और हमने देखा कि पेड़की एक लंबी बड़ी-सी डाल टूटकर ठीक उसी छोटे मन्दिरके ऊपर गिरी, जिसमें मैं दुबका हुआ बैठा था। मन्दिर टूटकर ध्वस्त हो गया। यह देखकर मैं और भी घबड़ा उठा यदि ठीक समयपर भाईने आकर मुझे वहाँसे हटा न लिया होता तो आज मेरी भी वही स्थिति होती जो मन्दिरकी हुई। यह तो मुझपर भगवान् शिवकी साक्षात् कृपा हुई थी। उन्होंने ही प्रेरित कर मेरे भाईको ठीक समयपर वहाँ पहुँचाकर मुझे मन्दिरसे हटा लिया था। धन्य है प्रभो! आप याद करनेवालोंकी किस प्रकार रक्षा करते हैं।

आज भी जब मुझे वह दृश्य याद आता है तो रोमाञ्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो आता है और फिर बाबा भोलेनाथकी असीम कृपा समझकर मैं मुग्ध हो उठता हूँ।

—दर्पनारायण सिंह

(२)

मैं पिछले जन्ममें राधा थी

कभी-कभी असत्य एवं आश्चर्यजनक-सी लगनेवाली बातें असत्य न होकर पूरी तरह सत्यतासे भरी होती हैं। यहाँ ऐसी ही एक पुनर्जन्मकी सत्य घटनाका वर्णन किया जा रहा है, जिसमें बस-दुर्घटनामें मृत्युको प्राप्त एक चार वर्षीया बालिकाने दुबारा जन्म लिया और वह अपने पूर्वजन्मकी सारी बातोंको बतलाती है, इसकी जाँच करनेपर सब कुछ सही पाया गया।

हुआ यूँ कि आजसे लगभग ९ वर्ष-पूर्व हिंडौन-करौली-मार्गपर रामद्वारेके निकट बस-दुर्घटनामें 'राधा' नामकी एक बालिका अपने प्राण गँवा बैठी और उसीने पुनः महुआ तहसीलके रोथडिया गाँवमें सिरिया जाटव नामक एक जाटव-परिवारमें जन्म लिया है। यहाँ इसका नाम 'रामनिरी' रखा गया है। जबसे रामनिरीने होश सँभाला है, वह बराबर यही जिद करती आयी है कि मैं 'रामनिरी' नहीं हूँ, मैं तो 'राधा' हूँ और यह इस घरकी किसी भी चीजका प्रयोग करनेसे कतराती है तथा घरके सदस्यों एवं भाई-बहनोंसे बात करना भी नहीं चाहती और न अपने माँ-बापको असली माँ-बाप मानती है। उसकी ऐसी बातोंको देख-सुनकर घरवाले सभी परेशान रहने लगे। पास-पड़ोसतक भी यह बात फैल गयी। जो भी सुनता उसे बड़ा ही कौतूहल होता। उसका ध्यान बँटानेके लिये माता-पिताने उसे स्कूलमें भेज दिया, किंतु वहाँ भी उसका वही हाल रहा। जहाँ कहीं भी वह 'राधा' यह नाम सुनती, दौड़ती चली आती। जब अध्यापकोंने उससे पूछा—'अच्छा बेटी! तुम सच-सच बताओ, ऐसा क्यों कहती हो?' तो उसने वही सब बताया कि मैं पूर्वजन्ममें राधा थी, एक बस-दुर्घटनामें मेरी मृत्यु हो गयी थी। मेरे पूर्वजन्मके पिताका नाम रमेश पटवा तथा माताका नाम कमला पटवा है। पहले तो सभी लोग बालिकाका मस्तिष्क ठीक नहीं है, इस प्रकारसे उसकी बातोंकी उपेक्षा कर देते थे, किंतु जब आये दिन ऐसी बातें होने लगीं तो अध्यापकोंने इस बातका उल्लेख गाँवके सरपंचसे किया। तब सरपंचने उसके पिता सिरिया जाटव तथा एक अध्यापकको बातोंका पता लगाने तथा जानकारी लेनेके लिये हिंडौन भेजा। रामनिरी भी उनके साथमें थी। जैसे ही वे लोग हिंडौनके बस-स्टैंडके समीप रामद्वारेके पास पहुँचे, वैसे ही बालिका रामनिरी पिताका हाथ छुड़ाकर बड़ी तेजीसे रामद्वारेकी ओर दौड़ पड़ी, जहाँ कि उसके कथनानुसार ९ वर्ष-पूर्व उसका परिवार रहा करता था। वहाँ पहुँचकर वह किवाड़ोंको खटखटाने लगी। रामनिरीके पीछे उसके पिता तथा वे अध्यापक भी दौड़े। यह देखकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। सिरिया जाटवको यह समझमें ही नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है। वे पास-पड़ोसके लोगोंसे इस सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे।

इसी बीच बालिकाकी दृष्टि रामद्वारेके पास रह रहे बाबापर पड़ी तो वह उन्हें पहचान गयी और बाबाका नाम लेकर चिल्लाने लगी। कुछ ही देरमें वहाँ भीड़ जमा हो गयी। जब बालिकासे ९ वर्ष-पूर्व हुई घटनाके बारेमें पूछा गया तो उसने सब कुछ सही-सही बता दिया और वहाँके निवासियोंने भी कहा कि जो यह कहती है सत्य ही कहती है। ९ वर्ष-पूर्व यहाँ बस-दुर्घटनामें 'राधा' नामक बालिकाकी मृत्यु हुई थी।

तदनन्तर बालिकाको उसके कहे-अनुसार उसके पहले जन्मके माँ-बापके पास ले जाया गया तो उसने अपने माँ-बाप तथा भाइयोंका सही-सही नाम बता दिया तथा ऐसी अनेक बातें बतलायीं कि सभीको यह विश्वास हो गया कि निश्चित ही पूर्वजन्मकी राधाने रामनिरी बनकर जन्म लिया है। रामनिरीके पूर्वके माता-पिताको भी सब सच जान पड़ा।

आज यह बालिका रामनिरी पुनः राधा बनकर अपने पूर्वजन्मके माता-पिता रमेश पटवा तथा कमलाके परिवारमें आकर रह रही है। इसके माता-पिता बहुत प्रसन्न हैं कि दुर्घटनामें मृत्युको प्राप्त उनकी बच्ची जिंदा होकर फिर उन्हें मिल गयी है। उसकी माता कमलाका भी यही कहना है कि यह मेरी राधा ही है और इसकी शक्ल भी पहलेवाली राधासे पूरी मिलती है। जब इस बालिका रामनिरी (अब राधा) से पूछा गया कि मृत्युके बाद तुम कहाँ गयी तो उसने बताया कि 'वह ऊपर चली गयी थी, वहाँ एक व्यक्ति मुरली बजा रहा था और उसीने मुझे रोथडिया गाँवमें जाटव परिवारमें जन्म लेनेको कहा था।' जिस दिन इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालिकाके पिता सिरिया जाटव इसे हिंडौन शहरमें रमेश पटवा (राधाके पिता) के यहाँ छोड़ने गये थे, उस समय उससे बिदा होते समय वात्सल्यवश उनकी आँखोंसे आँसू उमड़ आये और वे पटवा भाईसे इतना ही कह पाये कि 'देखो भाई! जब भी तुम रामनिरीका विवाह करोगे मुझे अवश्य सूचित करना, इसने हमारे यहाँ जन्म लिया है और मैंने इसे बड़े लाड़-प्यारसे पाला है, किंतु दैवका कुछ ऐसा विधान बना कि यह अब तुम्हारी पुत्री हो गयी है, किंतु मैं इसे भूल नहीं पाऊँगा।' पिताकी आँखें उस समय और भी नम हो आयीं जब रामनिरीसे राधा बनी इस ९ वर्षीया बालिकाने अपने तनके कपड़े उतारकर नयी माँ कमला पटवाके यहाँके नये कपड़े पहन लिये। आज रामनिरी (राधा) अपने माता-पिता तथा भाइयोंके साथ रहकर बहुत प्रसन्न है। [नवज्योति]

(३)

गायका फैसला

हजारीबागसे पश्चिम लगभग पचीस किलोमीटरकी दूरीपर प्रकृतिकी सुरम्य गोदमें बसा हुआ एक गाँव है—कटकमसाँडी। उसमें पं० गोपालदास नामक एक गोभक्त रहते हैं। उनके पास एक गाय है, जो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है। उन्होंने पाँच वर्ष-पूर्व इस गायको बलबलके मेलेमें खरीदा था। यह गाय इतनी भोली-भाली, सुन्दर एवं दुधार है कि पंडितजीका पूरा परिवार दिनभर उसकी सेवामें लगा रहता है। गायके घरमें आनेके बादसे गोपालदासजीके यहाँ सुख-शान्ति बढ़ी है और उनकी आर्थिक स्थितिमें भी भारी सुधार हुआ है। अतः उन्होंने इसका अन्नपूर्णा नाम रख दिया।

जिस समय उन्होंने इसे खरीदा था, उस समय यह गाभिन थी। बच्चा देनेमें केवल पाँच महीने बाकी थे। पंडितजीने एक चरवाहेको गाय चरानेके लिये दे दी। चरवाहा अन्य पशुओंके साथ इसे भी चरानेके लिये जंगल ले जाने लगा। गाय रोज संध्याको लौट आती थी। पूरा परिवार प्रसन्न था इसके स्वभावसे।

एक दिन अचानक चरवाहेने दिनके दो बजे सूचना दी कि 'दो आदमी आये और उन्होंने मुझे पेड़से बाँध दिया। मैं बँधा चिल्लाता रहा, किंतु उन्होंने मेरी एक न सुनी और वे आपकी गायको पता नहीं कहाँ ले गये। मेरे चिल्लानेकी आवाज सुनकर लकड़ीका गट्ठर ला रहे एक आदमीने मेरा बन्धन खोला। मैंने उनका पीछा किया, किंतु वे किस ओर गये पता नहीं चल सका।'

यह सुनकर पंडितजी सपरिवार व्याकुल हो गये। गायकी तलाशना शुरू किया। एक महीना बीत गया। परंतु अन्नपूर्णाका कहीं पता नहीं चला। इसी तरह छः महीने बीत गये। पंडितजीने निराश होकर तलाशना छोड़ दिया। परंतु अन्नपूर्णाका बिछुड़ना उन्हें कष्ट देता रहा।

सावनका महीना था। आकाश मेघोंसे घिरा हुआ था। वर्षा हो रही थी। पंडितजी एक यजमानके यहाँ बाजोबार जा रहे थे। जब वे दुआरी गाँवसे गुजर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि सोहन राणाके दरवाजेपर खूँटेसे बँधी उनकी अन्नपूर्णा बच्चेको पिला रही है। वे वहाँ पहुँचे और उसे पुचकारने लगे—'क्यों रे अन्नपूर्णा, तू हमें भूल गयी। हमने तुझे क्या तकलीफ दी थी रे! बता अन्नपूर्णा, बताती क्यों नहीं रे!' और वे फफक-फफक रोने लगे।

अन्नपूर्णा भी उन्हें भूल नहीं पायी थी। उन्हें सूँघने और चाटने लगी। रोनेकी आवाज सुनकर सोहन राणा बाहर निकला और लगा उनपर बरसने—'पंडितजी, यह क्या तमाशा कर रहे हैं? भागिये यहाँसे।'

पंडितजी बार-बार कहने लगे, यह गाय उनकी है। वह उन्हें दे दे। परंतु उसने उनकी एक न सुनी। उन्हें बाहर धकेलते हुए उसने अपने बेटोंको पुकारा और अनेक अपशब्द भी कह डाले।

पंडितजीका माथा ठनका। वे तड़प-से उठे। क्रोध उबलने लगा, किंतु उन्होंने विवेकसे काम लिया। हजारीबाग कोर्ट पहुँचकर उन्होंने न्यायकी पुकार की। तारीख-पर-तारीख पड़ने लगी। प्रश्नोंकी झड़ी लग गयी। पंडितजीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। अन्तमें उन्होंने अपने-आपको सँभाला और न्यायाधीशसे करबद्ध प्रार्थना करते हुए कहा—'हुजूर, मैं ठहरा गरीब ब्राह्मण और उसपर भी कम पढ़ा-लिखा। वकील साहबके सवालोंके उत्तर मैं ठीक-ठीक नहीं दे सकूँगा। यदि सरकार मेरी बातोंको मानकर गायको मँगानेकी कृपा करें तो गाय ही यह बतला देगी कि वह किसकी है।'

न्यायाधीशने उनकी बात मान ली। यह बात धधकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगकी तरह आस-पास सभी जगह फैल गयी। फैसलेकी तिथि निश्चित की गयी और गाय मँगा ली गयी। कुछ चारा देकर खुली स्थितिमें गायको कुछ दूरीपर रखा गया।

क्या होगा, यह जाननेके लिये लोगोंकी भीड़ लग गयी। कार्यवाही शुरू हुई। न्यायाधीश महोदयने पंडितजीसे पूछा—'गाय कैसे बतलायेगी कि वह किसकी है, इसका कोई ठोस प्रमाण चाहिये।'

पंडितजीने कहा—'इस गायको पहले राणाजी बुलायें। उसके बाद मैं बुलाऊँगा। जिसके बुलानेसे गाय आकर अपना प्रेम दिखाने लगे, वह उसीकी होनी चाहिये हुजूर।'

ऐसा ही किया गया। राणा बुलाते-बुलाते थक गया, पर गाय हिलीतक नहीं।

अब पंडितजीकी बारी आयी। उन्होंने ममताभरी आवाजमें रोते हुए पुकारा—'अन्नपूर्णा! ओ अन्नपूर्णा! भरी सभामें मेरी लाज बचा।. आ अन्नपूर्णा! आ!'

लोग दायें-बायें भागने लगे। अन्नपूर्णा हुँकारती और छलाँगें भरती हुई आयी और बहुत दिनोंके बाद ससुरालसे लौटी बेटीके समान पंडित गोपालदाससे लिपटने लगी। सबने देखा अन्नपूर्णा रो रही है। पंडितजी मिठाइयाँ खिलानेकी कोशिश कर रहे हैं। पूरा न्यायालय तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठा। गायके फैसलेको देखकर सभी अवाक् रह गये।

—श्रीशिवकुमारजी शर्मा, 'सुशील', साहित्याचार्य, एम्० ए०

(४)

रोते गये हँसते आये

बात सन् १९८० की है, तब मैं रेलवेमें अधिकारी था। अगस्त १९७९ से मैं अत्यन्त बीमार था। बुखार जाता ही नहीं था। कई डॉक्टरों, विशेषज्ञों, वैद्यों, हकीमोंका इलाज किया, परंतु शारीरिक कष्ट बना ही रहा। मेरी बीमारीसे मेरी धर्मपत्नी और बच्चे भी दुखी थे। खर्च भी बहुत हो रहा था और शरीरमें दिन-प्रतिदिन कमजोरी भी बढ़ती ही जा रही थी। यहाँतक कि मैंने उम्मीद छोड़ दी थी कि मैं अब ठीक भी हो सकता हूँ। अपनी बढ़ती बीमारीसे हताश होकर एक दिन अपनी पत्नीको मैंने रुपये-पैसेके लेन-देनका सब हिसाब-किताब भी समझा दिया।

मेरी पत्नी धार्मिक प्रवृत्तिकी है। वह रोज रामायण पढ़ती है और सुन्दरकाण्डका पाठ भी करती है। मैं तो केवल राम-नामका ही जाप करता हूँ। एक दिन उसने मुझसे कहा—मैं जानती हूँ कि आपकी सेहत ठीक नहीं है, पर भगवान् रामकी प्रार्थनासे आप बिलकुल ठीक हो जायँगे। भगवान्पर भरोसा रखिये वे तो दीनबन्धु हैं, दीनानाथ हैं, हमारी आर्त पुकार भी वे अवश्य सुनेंगे। कल रामनवमी है। हमलोग अयोध्याकी पावन भूमिमें रामजन्मके शुभ अवसरपर पवित्र सरयू नदीमें स्नान करके उनका प्रसाद ग्रहण करें, इसलिये अयोध्या चलना चाहिये। अपनी धर्मपत्नीकी बातें सुनकर मेरे मनमें भी आशाका संचार हुआ। मुझे नव-जीवनके आसार नजर आने लगे। तीर्थस्थानोंकी महिमा मैंने सुन रखी ही थी, आज वह अवसर उपस्थित हो चुका था। मेरी तबीअत तो ठीक थी नहीं, कमजोरी भी बहुत थी पर मैंने भी अयोध्या जानेका मन बना लिया।

रामनवमीको प्रातः हम दोनों अयोध्याके लिये चल पड़े। स्टेशनसे सरयू नदीके पवित्र घाटपर किसी तरह सहारा देते-देते वह मुझे ले आयी। मैं अत्यन्त थक चुका था। शरीरमें अत्यन्त शिथिलता थी। सरयू नदीके घाटपर उसने स्नान किया और मुझे भी कहा कि हाथ-मुँह धो लीजिये। मैंने मुँहपर जैसे ही कुछ छींटे डाले तो बहुत अच्छा लगा। मेरा मन हुआ कि स्नान भी कर लूँ। अपनी पत्नीसे अपने मनका भाव प्रकट किया तो उसने भी हाँ कर दी। मैंने स्नान किया और बहुत आनन्दका आभास हुआ। बस पूछिये मत मानो मेरा कायाकल्प हो गया। स्नान करते ही शरीरमें स्फूर्तिकी तरंग दौड़ गयी और मैं चंगा हो गया। अपनेको स्वस्थ-सा महसूस करने लगा। ऐसा लगा जैसे मुझमें शक्तिका संचार हो गया हो। इसके उपरान्त हमने कनकभवनमें भगवान् रामके जन्मोत्सवकी झाँकीके दर्शन किये, प्रसाद ग्रहण किया और फिर अयोध्याजीमें सभी मन्दिरोंमें दर्शन करने गये। उसी रातको हम लखनऊ वापस पहुँच गये। बीमार गये थे, स्वस्थ होकर चले आये। यह सब अयोध्याधाम, पुण्यसलिला सरयूजीके स्नान तथा भगवद्दर्शनका ही फल था।

उस दिनके बाद आजतक मैं नीरोग हूँ। मुझे यह विश्वास हो गया कि भगवान् रामकी कृपासे रोता हुआ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति हँसने लगता है। उनकी कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

—के० के० शर्मा

(५)

उसे सबकी खबर है

ठीक दिन, तिथि एवं वर्ष तो याद नहीं, पर इतना अवश्य याद है कि उस समय श्रीलालबहादुरजी शास्त्री रेल-मन्त्री थे। उनकी घोषणाके अनुरूप प्रत्येक ४०-५० मीलकी दूरीके लिये स्थानीय ट्रेनोंका परिचालन प्रारम्भ हो गया था और हम दैनिक यात्रियोंको '३९ अप हाबड़ा-दिल्ली जनता एक्सप्रेस'के तुरत पश्चात् '३८३ अप मोकामा दानापुर पैसेंजर गाड़ी'की सुविधा उपलब्ध हो गयी थी। हमें आने-जानेमें काफी आराम हो गया था।

एक दिन संयोगवश मैं बड़े प्रयत्नके बावजूद भी 'जनता एक्सप्रेस' पकड़ न सका। गाड़ी छूट गयी। मैं दौड़ता-दौड़ता हाँफ गया था, अत: टिफिनका थैला लिये एक बेंचपर बैठ गया। थकान दूर होनेपर समय काटनेके विचारसे प्लेटफार्मके एक छोरसे दूसरे छोरतक चहलकदमी करने लगा। उस दिन मैं ही एक अभागा व्यक्ति था, जिसकी गाड़ी छूट गयी थी बाकी लोग जा चुके थे। प्लेटफार्मपर कहीं कोई दूसरा यात्री दिखायी नहीं पड़ा। इसी बीच किसीके धीरे-धीरे कराहनेकी आवाज सुनायी पड़ी। मैं पीछे मुड़ा, देखा कि एक बेंचपर एक कृशकाय वृद्ध महिला पड़ी है। मुझे आते देख वह चुप हो जाती और जब मैं कुछ दूर निकल जाता तो फिर वह कराहने लगती।

मुझे कुछ शंका हुई। मैं उसके पास जाकर रुक गया। वह घबड़ाकर उठ बैठी। यह देख मैं उसके समीप बैठ गया। पूछा—'माँ! तुम्हें क्या तकलीफ है?' उसने कहा—'बेटा, कुछ नहीं।' मैंने फिर पूछा—'तो फिर कराहती क्यों हो? क्या किसीने मारा-पीटा है या गाड़ीमें किसीने तुम्हारे साथ लूट-पाट की है?'

उसने कहा—'बेटा! मैं पवना जिला (उस समयका पूर्वी पाकिस्तान और आजका बँगला देश) की रहनेवाली हूँ। गाड़ीमें लुटेरोंने सब कुछ लूट लिया और टिकट-चेकरने मुझे यहाँ उतार दिया। बेटा! मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मुझे प्यास भी लगी है, पासमें पानीका नल हो तो मुझे बता दो।'

मुझे बुढ़िया माँपर बड़ी दया आयी। मैंने शीघ्र ही पानी लाकर उसे पिलाया, सान्त्वना दी और उससे गन्तव्य स्थानके बारेमें पूछा, साथ ही हर सम्भव सहायता देनेकी इच्छा व्यक्त की और उससे कुछ खाने-पीनेका आग्रह किया। बहुत अनुनय-विनय करनेपर वह खाना खानेको राजी हुई। मैंने टिफिनबक्स निकाला और उसके सामने रख दिया। वह पहले तो थोड़ा हिचकी, किंतु फिर उसने खाना भी खाया, पानी पिया और बोली—'बेटा! पवनासे चलनेके बाद मैंने कुछ खाया नहीं था, भूखसे मैं कराह रही थी। तुमने मुझपर बहुत एहसान किया है, अल्ला तुम्हें खुश रखेगा। लेकिन बेटा! लगता है तुम आज भूखे ही रहोगे, तुमने तो अपना सारा भोजन मुझे करा दिया है।' इसपर मैंने कहा—'माँजी! मेरा यहाँ घर है, मैं दफ्तर जा रहा हूँ, वहाँ कैंटीनमें दोपहरका भोजन कर लूँगा। तुम मेरी चिन्ता न करो।' मेरा उत्तर सुनकर उसके चेहरेपर अनेक भाव चढ़ने-उतरने लगे। फिर उसने मुझसे आस-पासके मुस्लिम महल्लेका पता पूछा और बोली—'बेटा! तुम दफ्तर जाओ, मैं अपने मज़हबके लोगोंसे मिलकर, उनसे इमदाद (सहायता) लेकर लखनऊ चली जाऊँगी।'

तब निश्चिन्त होकर मैं दफ्तरको रवाना हुआ। घरसे लाया भोजन तो मैंने बुढ़िया माँको करा दिया था, अतः मैंने कैंटीनमें भोजन करनेकी सोची। दोपहरके समय जब मैं कैंटीन जानेको उठा और अपने जेबोंमें हाथ डाला तो उन्हें खाली पाया। बात यह हुई थी कि गाड़ी पकड़नेकी हड़बड़ीमें पैसे लेना मैं भूल गया था। लाचार मैं अपनी जगह बैठ गया। ऑफिसमें मेरे सहयोगीगण अपना-अपना भोजन निकालकर खाने लगे और मैं मूक दर्शक-सा बैठा रहा। इतनेमें मेरा एक सिन्धी मित्र आ पहुँचा। उसने कहा—'अरे बड़े बाबू! तुम भोजन नहीं कर रहे हो?' मैं उन्हें क्या उत्तर देता, मैंने यूँ ही कह दिया—'मैं पहले ही भोजन कर चुका हूँ।' मेरे सहकर्मियोंका ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हुआ। उन लोगोंने कहा—'नहीं, बड़े बाबूने नाश्ता नहीं किया है। शायद आज नाश्ता लाना भूल गये हैं।' उनमेंसे एकने मेरे थैलेसे टिफिनबक्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाला, उसे खोला, देखा तो बक्स धोया-पोंछा हुआ था। लोगोंने कहा—'लगता है आज बड़े बाबूको नाश्ता लानेमें धोखा हुआ है।'

मेरा सिन्धी मित्र मुझे बरबस खींचता हुआ कैंटीन ले गया और उसने मुझे भरपेट भोजन कराया।

मैंने मन-ही-मन भगवान्‌को धन्यवाद दिया। प्रभो! तुम धन्य हो, तुम्हें सबकी खबर है। तुम किसीको भूखे नहीं रखते, विशेषकर उसको जो अपना भोजन दूसरोंको अर्पण करता है।

—रामनारायण सहाय वर्मा

मनन करने योग्य

गाँव छोटा, मानव बड़ा

कुछ वर्ष-पूर्व जर्मनीसे एक दम्पति (पति-पत्नी) भारत आये थे। बंबईसे दिल्ली जाते समय ट्रेनमें उनसे मेरी भेंट हो गयी। भेंट मित्रतामें बदल गयी, फिर तो चार महीने हम साथ-साथ घूमे। उनके साथ सामान बहुत थोड़ा था। एक हाथपेटी और एक बगलका झोला। एक दिन शामको कुछ दूर पैदल चलकर हम तीनों एक छोटे-से गाँवके बाहर, एक कुएँके पास, जिसमें रहँटसे जल चल रहा था, आये। हाथ-मुँह धोकर जलपान किया और फिर बगलके बड़की छायामें लेट गये।

वहाँ एक पुजारी-जैसे भाईने आकर कहा—राम, राम। भाई! कहाँसे आ रहे हो?

'नमस्कार, भाई!' मैने कहा—आ रहे हैं अगले गाड़ीके स्थानसे। साथ ये मेहमान हैं। अब अँधेरा हो गया है, जाना तो था आगे, लेकिन.......।'

'बस, बस, बापजी! मैं समझ गया।' दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—यों उजाड़में क्यों पड़े हो? चलो मेरे साथ। वह जो सामने दीख रहा है, भोलानाथका मन्दिर है, वहाँ रैनबसेरा करो। जरा भी संकोच न करना। सब कुछ मिलेगा वहाँ, तुम लोगोंके लायक..।'

'मित्रो! उठिये। ये गृहस्थ अपनेको बुलाने आये हैं।' मैंने उन जर्मन दम्पतिको उठाते हुए कहा। हमसे आगे जाकर घरका दरवाजा खोलते हुए पुजारीने कहा—आओ, आओ बापजी! यह तुम्हारी जगह है, यहाँ सब कुछ है—सोने-बिछानेको, बैठनेको। मैं जरा दीपकको तेज कर दूँ। थकान मिटाओ। नाश्ता भेज रहा हूँ। क्या खाओगे? दूध है, गरम-गरम मोटी रोटी है, भिंडीका साग है और अचार है—क्यों चल जायगा न? 'महाराज! यह तकलीफ न उठाइये। हमारे पास जो कुछ है, उसीसे हमारा चल जायगा।' मैंने विवेककी बात कही।

मुँह बिचकाकर हँसते हए पुजारी बोले—'अरे भाई! तू तो इस देशका है। इस देशका स्वरूप ही है—अतिथिको रोटी और जगह देना, अतिथिको सब कुछ दे देना; फिर यह तो बाबा भोलानाथका मन्दिर है। यहाँके प्रसादको क्या वापस किया जाता है? यों कहते हुए वे चले गये।

मैंने विदेशी दम्पतिको ये सब बातें समझाकर बतायीं। वे तेज आवाजसे बोल उठे—

'हाउ मेगनिफिसंट! हाउ गोडली। योर भारत इज़ वंडरफुल।' (आपका भारतवर्ष कितना दिव्य, विचित्र, आनन्दमय और सुन्दर देश है।)

थोड़ी ही देरमें तीन थालियाँ आ गयीं—'लो, करो शुरू' पुजारीने विनयके साथ कहा।

जर्मन पतिने मुझसे कहा—'इसकी तबीअत ठीक नहीं है, यह भोजन नहीं करेगी, हम दोनों बैठें। यह दूध लेगी।'

मैंने पुजारीसे कहा—'एक थाली वापस ले जाइये, बहिनकी तबीयत ठीक नहीं है, यह नहीं खायेगी।'

चिन्ताभरे चेहरेसे वे बोले—'क्या हो गया मेरी बेटीको? तुम दोनों भोजन करो। मैं तुरंत गाँवमेंसे वैद्यजीको बुलाता हूँ। लाओ दूध—इसमें सोंठ-पोदीना डालकर उबाल लाऊँ।' वे दूधकी कटोरी लेकर गये। हमलोगोंने कौर भरना शुरू किया। महाराज तुरंत ही वापस आये और थालीमें दूधको ठंढा करते हुए बोले—'उठ बेटी! यह उबला दूध पी ले। ज्यादा गरम नहीं है, पीने-जैसा है। वैद्यजी अभी आ रहे हैं उठ बेटी।' इनको यह ख्याल नहीं रहा कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिन उनकी भाषाका अर्थ नहीं समझती, पर इतना विश्वास जरूर था कि यह हृदयका भाव जरूर समझ जायगी। हुआ भी यही, जर्मन बहिन उठ बैठी और चेहरेका पसीना पोंछकर उसने थाली होठोंपर लगा ली। जीवनमें इस प्रकारसे पीनेका कदाचित् उसका यह पहला ही अनुभव था।

दरवाजेमें प्रवेश करते ही साठ वर्षके वैद्यजी बोले—'महाराज! कौन बीमार है? क्या हो गया है?'

'आइये बापजी! ये विदेशी मेहमान हैं। इस बहिनकी तबीअत ठीक नहीं है; कुछ खाया नहीं है, देखिये न आप।' बगलमें बैठकर वैद्यजीने नाड़ी हाथमें ली और बहिनकी तरफ देखते रहे। नाड़ीके ठपके गिने और उन्होंने कहा—'कोई खास बात नहीं है। जरा थकानका भारीपन है। यह पुड़िया जलके साथ दो और शान्तिसे सोने दो। सबेरा होते-होते सब ठीक हो जायगा।' वैद्यजीने स्वयं ही उसे दवा खिला दी और बहिनकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटी! अब सो जा। मैं बाहर रहूँगा। अरे पुजारी! अभी मुखियाजी और महाजनके सेठ आ रहे हैं। हम तीनोंकी गुदड़ी बाहर डाल देना और तुम भी वहीं सो रहना। ये दोनों मेहमान भीतर सो जायँगे।'

सबेरे आठ बजेतक चाय-नाश्ता हो गया। मेरे विदेशी मित्रने मेरे सामने देखा और इशारेसे समझाया कि 'हाथपेटी तथा बगलका झोला नहीं मिल रहे हैं। वे पत्नीके हैं' सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा। मैं घबराया, पर मैंने उनसे कहा—'अभी पता लगाता हूँ, आप चिन्ता न करें।' मैं बाहर आया। वे तीनों बाहर चौकीपर बैठे थे—पुजारी, मुखिया पटेल और महाजनके सेठ।

मैंने कहा—'बहुत बुरा हो गया। अब क्या होगा?'

तीनों एक साथ बोल उठे—'क्या हो गया, कुछ बताओ तो।' मैंने कहा—'विदेशी मेहमानकी हाथपेटी और झोला नहीं है। लगता है—कोई उठा ले गया। इनकी पेटीमें सात हजार रुपयेके नोट थे और झोलेमें कुछ कीमती चीजें।'

उन्होंने मेरे मुखकी तरफ देखा। फिर एक-दूसरेसे आँखें मिलायीं।

शायद कुछ बातें कीं—आँखोंसे ही। फिर सेठने कहा—'कोई हरकत नहीं होगी। हमारे गाँवकी सीमामें भोलानाथके मन्दिरमें और हम गाँवके लोगोंके बीचमें चोरी हो जाय—यह हमारे लिये बड़ी शर्मकी बात है। आप दो घड़ी इन्हें इधर-उधरकी बातोंमें लगाये रखिये। मैं घर जाकर अभी-अभी लौटकर आता हूँ। चलो मुखिया!' यों कहकर वे दोनों तेजीसे निकलकर चले गये।

मैं अपने मित्र दम्पतिके पास आया और मैंने उनसे कहा—'आप जरा भी घबरायें नहीं, हमारे देशमें चोरी होती ही नहीं—यहाँ तो रामका राज्य है।' और सीताहरणसे लेकर रावणवध तककी बात पूरी हो, इसके पहले ही सेठ, मुखिया और महाराज लौट आये 'लो, अतिथिदेव! आपके ये सात हजार रुपये, झोलेके बाबत ये दो हजार और पेटीके पचास रुपये तथा ये एक सौ रुपये हम सबकी ओरसे आपको बिदाईके'—देखते-देखते नौ हजार एक सौ पचास रुपये मेरे हाथमें आ गये। मैंने मेहमानको समझाते हुए रुपये देनेके लिये उनकी ओर हाथ बढ़ाया।

'अरे पुजारी बाबा, ओ पुजारी बाबा'—बाहरसे आवाजें आयीं और एक आदमी दूसरे एक जवान लड़केका कान पकड़े उसे खींचकर अंदरकी ओर लाता दिखायी दिया। उसने कहा—'यह देखो, यह कालिया। कैसा काला काम किया इसने?' श्वासको नीचे बैठाते हुए वह जोर-जोरसे कहने लगा—'देखो, इन साहबकी पेटी और झोलेकी क्या दशा की है इसने। उस बावड़ीकी सीढ़ियोंपर बैठा यह पत्थरसे तोड़ रहा था। मैंने बगलसे आते हुए देखा।' अरे, यह तो मेरा कालिया है।

पुजारीने चिल्लाते हुए कहा—'अरे भगले! तूने यह क्या किया? गाँवकी नाक ही काट डाली, कुपात्र कहींका।'

भगलेने रोते-रोते कहा—'बापजी! मैं आप सबकी गाय हूँ। मैंने तो इसके अंदर अच्छी खानेकी चीज मिलेगी—यही समझकर इसे लिया और खोला। देखा तो कागजोंका ढेर। मुझे क्या करना है इन चित्रलिखे कागजोंका। आप देख लें, सब ठीक हैं न? मैंने कुछ भी लिया नहीं है। मुझे जरूरत ही नहीं थी इनकी।'

बारह बजे—हम तीनों, गाँवके उपर्युक्त तीनों, कालिया या भगला—सबने साथ बैठकर हलुआ-पूरी-पकौड़ी-भुजियेका भोजन किया। [अखण्ड आनन्द]

—लक्ष्मण लाल० ल० मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्मुद्रित एवं प्रकाश्यमान

'कल्याण' के अति उपयोगी पुराने विशेषाङ्क

[आरम्भिक तथा बादके कुछ वर्षोंमें 'कल्याण' के ग्राहकोंकी संख्या थोड़ी होनेसे विशेषाङ्क सीमित संख्यामें छापे जानेके कारण उनका लाभ उस समय बहुत-से सज्जन न उठा सके; अतएव उन अङ्कोंकी उपयोगिता और अत्यधिक माँगको ध्यानमें रखते हुए गत तीन-चार वर्षोंसे उन दुर्लभ पुराने विशेषाङ्कोंको पुनर्मुद्रित किया जा रहा है। उनमेंसे अबतक बीससे अधिक विशेषाङ्क पुनः प्रकाशित हो चुके हैं। उसी शृङ्खलामें निम्नलिखित तीन विशेषाङ्क प्रेमी पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत हैं। इच्छुक सज्जनोंको इन्हें मँगाकर विशेष लाभ उठाना चाहिये।]

पुनर्मुद्रित—

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र) [वर्ष ३७—सन् १९६३ ई०] —इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ ही सर्वशक्तिमान् कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके देवताओंकी एकरूपता, महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका बड़ा ही विशद तथा सुन्दर प्रतिपादन है। इस दृष्टिसे श्रद्धा-सम्पन्न पुरुषोंके लिये यह विशेषाङ्क दैवी साधनोंके द्वारा देशको वर्तमान महान् संकटोंसे मुक्त कराने, तन-धन-जनकी रक्षा कराने, आसुरी शक्तियोंका शीघ्र पराभव कराने और जीवनमें पूर्ण विजय तथा सफलता दिलानेमें उपयोगी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। अतएव इसकी सामयिक महत्ता और उपयोगिता उल्लेखनीय है। इसके अनेक स्तवन तथा स्तोत्र साधकमात्रके लिये चमत्कारी और कल्याणकारी हैं।

पृष्ठ-संख्या ७०४, भावपूर्ण बहुरंगे चित्र ८, रेखाचित्र १२०, मूल्य ६५.०० रु०, डाकखर्च (रजिस्टर्ड डाकसे) अतिरिक्त।

प्रकाशनकी प्रक्रियामें—

शिवाङ्क (सचित्र) [वर्ष ८—सन् १९३४ ई०]—इसमें शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनके साथ शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर ज्ञानप्रद और तात्त्विक मार्गदर्शन है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके सचित्र परिचय-सहित, भारतके सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिरों तथा शैवतीर्थोंका भी इसमें प्रामाणिक वर्णन है। मुद्रण-प्रक्रिया पूरी हो जानेपर शीघ्र उपलब्ध होगा।

तीर्थाङ्क (सचित्र) [वर्ष ३०—सन् १९५७ ई०]—इसमें तीर्थोंकी महिमा, स्वरूप, वर्तमान स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्गदर्शनसहित देव-पूजन-विधि एवं तीर्थोंमें पालन करने योग्य तथा त्यागने योग्य बातोंका भी उपयोगी दिशा-निर्देश है। भारतके प्रायः समस्त तीर्थोंकी खोजपूर्ण जानकारी देनेवाला यह विशेषाङ्क सर्वसाधारणसहित तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष उपयोगी है। प्रकाशनकी प्रक्रिया पूर्ण होते ही शीघ्र उपलब्ध होगा।

ग्राहक महानुभाव कृपया ध्यान दें

'कल्याण' के सभी ग्राहकोंसे एक बार पुनः प्रार्थना की जाती है कि वे पत्र-व्यवहार करते समय या मनीआर्डर आदि भेजनेके समय अपना पूरा पता तथा ग्राहक-संख्या सुस्पष्ट लिपिमें कृपया अवश्य लिखें। कतिपय महानुभाव अपनी ग्राहक-संख्या लिखना भूल जाते हैं, जिससे उत्तर देनेमें अनपेक्षित विलम्ब होता है। ग्राहक-संख्यारहित पत्रोंके उत्तर या अङ्क आदि समयपर न मिलनेसे ग्राहकोंको असंतोष होना स्वाभाविक है। अतः सभी सज्जनोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे पत्रोंपर अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें; अपितु प्रत्येक पत्र-व्यवहारमें इसे अवश्य लिखें।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत-सार

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥

'मनुष्य इस जगत्‌में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे।'

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

'अज्ञानी मनुष्यको प्रतिदिन हर्षके हजारों और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं; किंतु विद्वान् मनुष्यके मनपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।'

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

'मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता! धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है, अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं, तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते!'

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु (राग) अनित्य है।'

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति॥

'यह महाभारतका सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री' के नामसे प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।'

(महाभारत, स्वर्गारोहण० ५। ६०—६४)

देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम

(लेखक—परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वर्तमानमें हमारा देश किस ओर जा रहा है और उसका भविष्यमें कितना भयंकर परिणाम हो सकता है—इस ओर लक्ष्य कराना ही इस पुस्तिकाका उद्देश्य है, जिससे समयके रहते-रहते देशके भावी विनाशसे बचा जा सके। थोड़े ही समयमें इस पुस्तिकाकी १,४०,००० प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। खान-मन्त्रालय, नई दिल्लीके राज्यमन्त्री माननीय श्रीबलरामसिंहजी यादव इस पुस्तिकाके विषयमें लिखते हैं—

'समकालीन विषय-वस्तु एवं देशवासियोंद्वारा इस संदर्भमें किये जा रहे अनुभव एवं उनकी पीड़ा आदिका जिस प्रकार इस पुस्तिकामें उल्लेख किया गया है, वह श्लाघ्य है। मैं आपकी इस मूल भावनासे शत-प्रतिशत सहमत हूँ कि प्राणिमात्रको स्वाध्यायी, परिश्रमी, संयमी एवं चरित्र-निर्माणकी ओर अग्रसर होना चाहिये। यही उसके दुःखोंके निवारणका सही माध्यम है।'

पाठकोंसे विनम्र प्रार्थना है कि वे कम-से-कम एक बार तो यह पुस्तिका अवश्य ही पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, जुलाई १९९५ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१-सरस्वती-वन्दना ६६३
२-कल्याण (शिव) ६६४
३-आत्मानुभूति (महर्षि श्रीरमण) ६६५
४-भगवान्‌के आयुध-आभूषण आदि धारण करनेका रहस्य तथा अपनेको उनका प्रिय पात्र बनाना (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६६७
५-भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन सुलभ हैं (श्रीभँवरलालजी परिहार) ६७२
६-भगवान्‌में मन लगनेके उपाय (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ६७६
७-नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥ (श्रीप्रेमप्रतापजी भारद्वाज) ६७८
८-भक्तिमें प्रेमतत्त्व (श्रीमदनगोपालजी शर्मा) ६८२
९-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६८३
१०-एक ही परमात्मा (श्रीमोहनकुमारजी शर्मा) ६८७
११-लीला और धाम (श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश) ६८८
१२-दर्शन, विज्ञान, श्रद्धा और उदारता—मानवका सौन्दर्य (ब्रह्मलीन प्रज्ञाचक्षु संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) [प्रेषक—श्रीदुर्गाप्रसादजी] ६९०
१३-जीभपर अमृतका झरना ६९१
१४-आयुर्वेदमें गौका महत्त्व (आचार्य डॉ० श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराणदर्शन-तीर्थ) ६९४
१५-महत्त्वपूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ६९५
१६-*भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी) ६९७
१७-मानव और गाय—यह कैसा रिश्ता? (श्रीहरिकृष्ण-दासजी गुप्त 'सियहरि') ७०१
१८-श्रीराम-पद-महिमा [कविता] (डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी) ७०२
१९-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ७०३
२०-पढ़ो, समझो और करो ७०४
२१-मनन करने योग्य ७०८

चित्र-सूची

१-गोप्रेमी श्रीकृष्ण (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-श्रीहंसवाहिनी (रंगीन) मुख-पृष्ठ

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें) डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रहवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीहंसवाहिनी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ } गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, जुलाई १९९५ ई० { संख्या ७ पूर्ण संख्या ८२४

सरस्वती-वन्दना

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे। सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात्॥
सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम्। देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः॥
पातु नो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती। प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या॥
लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः। एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः। वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च॥
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने। विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते॥

शरत्कालमें उत्पन्न कमलके समान मुखवाली और सब मनोरथोंको देनेवाली शारदा सभी सम्पत्तियोंके साथ मेरे मुखमें सदा निवास करें। मैं उन वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे मनुष्य देवता बन जाता है। बुद्धिरूपी सोनेके लिये कसौटीके समान सरस्वतीजी, जो केवल वचनसे ही विद्वान् और मूर्खोंकी परीक्षा कर देती हैं, हमलोगोंका पालन करें। सरस्वति! लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा एवं धृति—इन आठ मूर्तियोंसे मेरी रक्षा करो। सरस्वतीको नित्य नमस्कार है, भद्रकालीको नमस्कार है और वेद, वेदान्त, वेदाङ्ग तथा विद्याओंके स्थानोंको प्रणाम है। हे महाभाग्यवती ज्ञानस्वरूपा कमलके समान विशाल नेत्रवाली ज्ञानदात्री सरस्वति! मुझे विद्या दो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

शरीर, वाणी और मनसे न तो स्वयं ऐसा कोई कार्य करो जिससे वायुमण्डलमें दूषित भाव फैले और न ऐसे दूषित वायुमण्डलमें रहो जिसका प्रभाव तुम्हारे शरीर, वाणी और मनपर हो। मनुष्य जो कुछ भी शरीरसे कर्म करता है, वाणीसे शब्दोच्चारण करता है और मनसे चिन्तन करता है, उसका प्रभाव वहाँके वायुमण्डलपर पड़ता है; उसके परमाणु वहाँके वायुमण्डलमें न्यूनाधिकरूपसे फैल जाते हैं, जो उस वायुमण्डलमें रहनेवाले प्रत्येक वस्तुपर अपना प्रभाव डालते हैं।

जिस प्रकार मनमें कभी बुरे विचार नहीं लाने चाहिये, उसी प्रकार वाणीसे भी किसी बुरे शब्दका उच्चारण नहीं करना चाहिये। अश्लील, असत्य, अहितकर, व्यर्थ, अप्रिय, अपमानजनक, क्रोधभरी, दर्पपूर्ण नास्तिकताका समर्थन करनेवाली, भय और अभिमानसे भरी वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिये। ऐसी वाणीका उच्चारण करनेसे वहाँका वायुमण्डल दूषित होता है। जिसको लक्ष्य करके ऐसी वाणी बोली जाती है, उसपर तो बुरा असर होता ही है; परंतु जहाँतक वह ध्वनि जाती है, वहाँतकके प्राणियोंके मनोंपर वह बहुत बुरा असर डालती है। जैसे शूरताकी वाणीसे मनुष्यमें शूरता आती है, वैसे ही कायरोंकी भयभरी वाणी लोगोंको कायर बना देती है। रणवाद्य और चारणोंकी जोशीली कविताओं और संतोंकी वैराग्यकी बानियोंका अद्भुत प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है।

इसी प्रकार शरीरसे—किसी भी इन्द्रियसे ऐसी कोई चेष्टा नहीं करनी चाहिये, जो वायुमण्डलको दूषित करनेवाली हो। सारांश यह कि मनको सदा शुद्ध संकल्पों और सत्-विचारोंसे भरे रखो, वाणीके द्वारा सदा सत्य, हितकर, मधुर और उत्तम वचन बोलो और शरीरसे सर्वदा-सर्वथा उत्तम क्रिया करो। इसीमें अपना और जगत्का हित है। इसी प्रकार जहाँ ऐसे शुद्ध मन, वाणी और शरीरवाले सज्जन महानुभाव रहते हों, उन्हींके समीप रहो और उन्हींका संग करो। न स्वयं बुरा वायुमण्डल पैदा करो और न बुरे वायुमण्डलमें निवास ही करो।

जो अपने मनमें वैरकी भावना रखता है, वह जगत्में अपने वैरी उत्पन्न करता है। जो प्रेमका संकल्प करता है, वह प्रेमियोंकी संख्या बढ़ाता है। जो भोगोंमें मन लगाता है, वह भोगोंमें रचा-पचा रहता है। जिसके मनमें शूरता है, वह शूरताका वातावरण पैदा करता है। जो कायर है, वह कायरता फैलाता है। जो भक्त है, वह भक्त पैदा करता है। जो अभक्त है, वह नास्तिकता फैलाता है। जो भयसे काँपता है, वह आसपास भयका विस्तार करता है। जो निर्भय रहता है, वह सबको निर्भय बनाता है। जो सुखी है, वह जगत्को सुखी करता है। जो रात-दिन शोक, दुःख और विषादमें डूबा रहता है, वह सबको यही चीजें देता है, और जो भगवान्में प्रेम करता है, वह भगवत्प्रेमियोंकी संख्या बढ़ाता है। अतएव सब विषयोंको सर्वदा दूरकर केवल भगवत्प्रेमसे ही हृदयको सर्वथा भर दो। कदाचित् ऐसा न कर सको तो मनमें सदा आदर्श सात्त्विक शुद्ध विचारोंका पोषण करो और उन्हींको बढ़ाओ। ऐसा करनेसे तुम्हारे आसपासका वायुमण्डल सात्त्विक बन जायगा। सात्त्विक विचारोंकी क्रमशः वृद्धि होते रहनेसे तुम्हारी संकल्पशक्ति बढ़ जायगी, फिर तुम अपने सद्विचारोंको बहुत दूर-दूरतक लोगोंके हृदयकी गहराईतक पहुँचाकर सबको सात्त्विक बना सकोगे। तुम सुखी बनोगे और बिना ही किसी उपदेश-आदेशके स्वभावतः ही जगत्के बहुत बड़े भागको भी सुखी बना सकोगे।

सात्त्विक और शुद्ध विचार ये हैं—अहिंसा, सत्य, शौच, दया, प्रेम, दान, क्षमा, संयम, त्याग, वैराग्य, निरभिमानिता, एकान्तप्रियता, कोमलता, सरलता, नम्रता, सेवाभाव, सहिष्णुता, परधर्मके प्रति सम्मान, द्वेषहीनता, समता, संतोष, गुणग्राहकता, दोष-दृष्टिका अभाव, सुहृद्पन, ममता तथा अहंकारका अभाव, मान-बड़ाईकी सर्वथा अनिच्छा, सर्वभूतहित और भगवत्परायणता आदि।

बस, मन-वाणी-शरीरसे निरन्तर सावधानी और लगनके साथ इन्हीं सब सद्गुणों और सत्संकल्पोंको बढ़ाते रहो। स्वयं तर जाओगे और असंख्य प्राणियोंको तारनेमें सहायक होगे।—'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मानुभूति

भक्त—आत्माकी अनुभूति कैसे हो सकती है?

महर्षि—आत्मानुभूति कोई बाहरकी वस्तु नहीं कि उसकी पुनः प्राप्ति हो सके। वह तो पहलेहीसे विद्यमान है। 'मैंने अभी आत्मानुभूति नहीं की' इस आशयवाले भावको मनसे निकाल देना चाहिये।

निश्चलता या शान्ति ही आत्मानुभूति है। एक पल भी ऐसा नहीं है जब आत्मा विद्यमान न हो। जबतक संदेह हो या 'मैंने नहीं जाना' का भाव बना रहता है, तबतक वैसे संदेह या उस प्रकारके विचारको मनसे निकाल देनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। आत्माको अनात्मा समझनेके कारण ही अन्यथा-विचार उठते हैं। जब अनात्माका नाश हो जाता है, तब केवल विशुद्ध आत्मा बचा रहता है। स्थान देनेके लिये वहाँकी भीड़को हटाना आवश्यक है, जगह तो कहीं बाहरसे लानी नहीं है।

भक्त—यदि वासनाक्षयके बिना आत्मानुभूति सम्भव न हो, तो प्राणीको इस जीवनमें उस अवस्थाकी प्राप्ति कैसे हो सकती है जबकि उसकी वासनाएँ बिलकुल नष्ट न हुई हों?

म०—उस अवस्थामें तो तुम अब भी हो।

भक्त—क्या इसका मतलब यह है कि आत्मामें लीन रहते हुए वासनाएँ जैसे और जब उठें वैसे और तब उनका नाश करते रहना चाहिये?

म०—तुम जैसे हो वैसे ही बने रहो तो भी वे अपने-आप नष्ट हो जायँगी।

भक्त—मैं आत्माको कैसे पा सकता हूँ?

म०—आत्माको पाना—ऐसा कुछ है ही नहीं। यदि पानेकी बात होती तो उसका यह मतलब होता कि अब यहाँ वह नहीं है तथा उसे प्राप्त करना है। जिसकी नयी प्राप्ति होती है, उसे खो भी सकते हैं। तब वह अनित्य ही होगा। जो अनित्य है उसके लिये प्रयत्न ही क्यों किया जाय? इसलिये मैं कहता हूँ कि आत्माको पाना नहीं है। तुम ही आत्मा हो, तुम पहलेहीसे विद्यमान हो।

बात यह है कि तुम अपनी आनन्दमय दशासे अपरिचित हो। बीचमें अज्ञान आकर आनन्दमय विशुद्ध आत्मापर परदा डाल देता है। यह अज्ञानरूपी परदा जो कि मिथ्या ज्ञान है उसे दूर करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। शरीर, मन आदिको 'आत्मा' मानते हो यही तुम्हारी भूल है। इसलिये मनसे मिथ्या विचारको हटाना जरूरी है। ऐसा होनेपर केवल आत्मा विलसित रहता है।

इसलिये आत्मानुभूति सबके लिये है। आत्मज्ञानके सम्बन्धमें मुमुक्षुओंके बीचमें कोई अन्तर उत्पन्न नहीं होता। 'मैं कर सकूँगा?' यह संदेह और 'मैंने जाना नहीं' ये विचार ही विघ्न-रूप हैं। इसलिये पहले इन विघ्नोंसे छूटनेका प्रयत्न करो।

भक्त—समाधिका उपयोग क्या है? क्या वहाँ विचारशक्ति रहती है?

म०—समाधि एक ही सत्यका दर्शन करा सकती है। विचार सत्यके ऊपर परदा डाल देते हैं। इसलिये समाधिको छोड़कर अन्य स्थितिमें सत्यका दर्शन नहीं हो सकता।

समाधिमें केवल 'मैं हूँ' की भावना रहती है, दूसरे विचार होते ही नहीं। निश्चल रहना ही 'मैं हूँ' की अनुभूति है।

भक्त—यहाँ मुझे समाधि या निश्चलताकी जो अनुभूति मिलती है उसे अन्यत्र कैसे पा सकता हूँ?

म०—यहाँ तुम अपनेको जिस वातावरणमें पाते हो, उसीके कारण तुम्हारी यह वर्तमान अनुभूति है। यह अनुभूति तुम इस वातावरणके बाहर भी पा सकते हो? तुम्हारी अनुभूति क्षणिक है। जबतक वह कायम न रहे, तबतक उसे साधना आवश्यक है।

भक्त—जिसका अधिष्ठान जीवभावसे परे है और जिसके अंदर सब कुछ समाया हुआ है ऐसा भान जिसे होता है, ऐसे चैतन्यके स्पष्ट प्रकाशका अनुभव कई बार किसी बिरलेको ही होता है। ज्ञानके सिद्धान्तोंको बाजूमें रखकर, ऐसे दुर्लभ प्रकाशको प्राप्त करके टिकाये रखने तथा उसे उत्तरोत्तर बढ़ानेके लिये भगवान् मुझे कैसे उपायकी सलाह देते हैं? ऐसे अनुभवके अभ्यासमें काम छोड़कर एकान्तवास करना आवश्यक है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म०—'बाहर'? यह बाहर और भीतर किसके लिये है? जबतक कर्ता और कर्म है तभीतक ये सब टिक सकते हैं। और ये उभय भी किसके लिये हैं? खूब निरीक्षण करके देखोगे तो मालूम हो जायगा कि ये दोनों कर्तामें समा जाते हैं। अब सोचो कर्ता कौन है? यह विचार तुमको कर्तासे भी परे जो शुद्ध चैतन्य है वहाँ पहुँचाता है।

जीवात्माके माने हैं मन। यह मन परिमित है। पर विशुद्ध चैतन्य सीमाओंसे परे है और उसकी प्राप्ति अन्वेषण करनेसे होती है।

प्राप्त करना—आत्मा शाश्वत है। तुम्हें उसके दर्शनको अटकानेवाले परदेको हटाना चाहिये।

टिकाये रखना—एक बार यदि तुमको आत्मज्ञान हो जाय, तो वह तुम्हारे नित्य प्रत्यक्ष अनुभवका सीधा विषय हो जाता है। वह सदा बना रहेगा। उसे टिकाये रखनेकी बात ही नहीं उठती, क्योंकि वह कभी गुम नहीं होता।

बढ़ाना—आत्माको बढ़ाना तो होता ही नहीं है। क्योंकि वह सदैव संकोच तथा विस्ताररहित है।

अभ्यास—स्वाभाविक शान्तिमें पड़नेवाली बाधाओंका निवारण ही अभ्यास है। तुम अभ्यास करो चाहे न करो स्वाभाविक स्थितिमें सदा बने रहते हो। तुम जैसे हो वैसे रहकर प्रश्नरहित तथा शंकारहित बनकर रहना ही तुम्हारी स्वाभाविक दशा है।

एकान्तवास—आत्माकी अनुभूति ही एकान्त है। आत्माके लिये कोई वस्तु परायी नहीं है। एकान्तके लिये एक स्थान या दशासे दूसरे स्थान या स्थितिमें पहुँचना पड़ता है। आत्मासे भिन्न और कुछ है ही नहीं। जब आत्मा ही सर्वत्र है तब एकान्त असम्भव और अकल्प्य है।

भक्त—समाधिकी प्राप्तिके बाद क्या मनुष्यको सिद्धियोंकी भी प्राप्ति होती है?

म०—सिद्धियोंके प्रदर्शनके लिये उसे माननेवाले दर्शककी आवश्यकता होती है। अर्थात् सिद्धियोंके प्रदर्शकमें ज्ञान नहीं होता है। इसलिये सिद्धिका विचार करना ही अनुचित है। केवल ज्ञान हमारा लक्ष्य है। उसीको प्राप्त करना है।

भक्त—क्या मेरे आत्मज्ञानसे दूसरोंको लाभ मिल सकता है?

म०—अवश्य। सचमुच यही सबसे बड़ी सेवा है जो तुम दूसरोंकी कर सकोगे। जिन महानुभावोंने जब कभी सत्यका दर्शन किया, उनको अपनी आत्माकी प्रशान्त गहराईमेंसे ही आत्मज्ञान मिला है। पर वस्तुतः उस स्थितिमें दूसरे कोई सहायक नहीं हैं। जैसे सोनार भिन्न-भिन्न गहनोंकी कीमत लगानेमें केवल सोनेको कसकर देखता है, वैसे ही सिद्ध पुरुष केवल आत्माको देखता है। जब तुम अपनेको शरीर मानते हो तभी नाम और रूप तुम्हारे सामने आते हैं। जब तुम देहभावसे आगे बढ़ जाओगे तब 'दूसरे' भी लुप्त हो जायँगे। ज्ञानी पुरुष जगत्को अपनेसे भिन्न नहीं देखता है।

भक्त—साधु—संतपुरुष साधारण जनताके बीच मिल-जुलकर रहें तो विशेष अच्छा नहीं होगा?

म०—दूसरे कहाँ हैं कि उनसे मिल-जुलकर रहें? आत्मा ही साथ है।

भक्त—देशभक्त होना हमारा कर्तव्य नहीं है?

म०—तुम्हारा कर्तव्य 'यह' या 'वह' बनना नहीं पर तुम्हारे मूल स्वरूपके अनुसार बनना है। केवल 'अस्मिता' 'हूँ' में सब समा गया है। 'स्थिर रहो' यही उसका सार है।

निश्चलताका अर्थ क्या है? वह है, अपनेपनका नाश करो। नाम और रूप ही सारे दुःखोंका कारण है। 'मैं-मैं' आत्मा है। 'मैं यह हूँ', यह अहंकार है। जब 'मैं' का प्रतिपादन केवल 'मैं'-रूपमें होता है तब वह आत्मा है। जब वह स्वरूपको छोड़कर इधर-उधर दौड़-धूप करता है 'मैं यह हूँ, वह हूँ, मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ' तब वह अहंकार है।

भक्त—तो फिर ईश्वर कौन हैं?

म०—आत्मा ही ईश्वर है। 'मैं हूँ' यह ईश्वर है। यदि ईश्वर आत्मासे भिन्न हो, तो वह आत्मा-रहित ईश्वर होगा। वह मूर्खताकी बात है।

आत्माकी प्राप्तिके लिये केवल निश्चल बनना आवश्यक है। इससे आसान क्या हो सकता है? इसलिये आत्म-विद्याकी प्राप्ति बहुत ही सुलभ कही गयी है।

(महर्षि श्रीरमण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के आयुध-आभूषण आदि धारण करनेका रहस्य तथा अपनेको उनका प्रिय पात्र बनाना

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् सुदर्शनचक्र आदि आयुध क्यों धारण करते हैं? इसका क्या रहस्य है, क्या तत्त्व है? इस विषयको वास्तवमें भगवान् ही जानते हैं, पर अपनी बुद्धिके अनुसार अनुमानसे बतलाया जाता है, वह ठीक भी हो सकता है और नहीं भी। भगवान्‌के प्रकट होने—अवतार लेनेके तीन हेतु गीतामें बतलाये गये हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(४। ८)

भगवान् कहते हैं कि 'साधुओंका उद्धार करनेके लिये, दुष्टोंका संहार करनेके लिये और धर्मकी स्थापना करनेके लिये प्रत्येक युगमें मैं प्रकट होता हूँ—अवतार लेता हूँ।'

भगवान्‌के आयुध दुष्टोंका संहार करनेके लिये हैं—दुष्ट शरीरके बाहर भी हैं और भीतर भी। बाहरके जो राक्षस, दैत्य आदि दुष्ट-प्रकृतिके हैं, इनको मारनेके लिये भगवान् हर समय आयुध धारण किये रहते हैं। हमारे भजन-ध्यानमें कोई भी बाहरका शत्रु विघ्न नहीं डाल सकता; क्योंकि हमारे प्रभु सब प्रकारसे हमारी रक्षा करते हैं। जब-जब रक्षा करनेकी बात आयी है, तब-तब भगवान्‌ने रक्षा की है। जैसे—जब दुर्वासा ऋषिने अम्बरीषको मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न की, उस समय भगवान्‌के चक्रने स्वयं उनकी रक्षा की। जब कृत्या अम्बरीषको मारनेके लिये दौड़ी तो सुदर्शनचक्रने उसे मार डाला और दुर्वासाको चेतावनी दी कि तुम अब सावधान हो जाओ! चक्रके भयसे दुर्वासा चारों ओर भागते फिरे, कहीं ठौर नहीं मिली। अन्तमें भगवान्‌के पास गये तो भगवान्‌ने कहा कि 'मैं तो भक्तके अधीन हूँ, तुम उसीकी शरण जाओ। तुम्हारे लिये और कोई दूसरा उपाय नहीं है।' दुर्वासा हाथ जोड़े 'त्राहि माम्, त्राहि माम्, रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए अम्बरीषके पास आये, अम्बरीष पहलेसे ही हाथ जोड़कर तैयार थे। अम्बरीषने सुदर्शनसे प्रार्थना की कि 'हे देव! इस ब्राह्मणकी आप रक्षा करें।' यह है भक्तोंका भाव।

इसी प्रकार प्रह्लाद भगवान्‌की भक्तिमें डटा रहा। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको भगवान्‌की भक्ति न करनेके लिये बहुत समझाया, किंतु प्रह्लादने कहा कि यह मेरे वशकी बात नहीं है। मैं भगवान्‌की भक्ति नहीं छोड़ सकता। जब भगवान्‌की भक्ति न छोड़ने तथा अपनी बात न माननेके कारण हिरण्यकशिपुने दण्ड देनेके लिये शण्डामर्कसे कहा कि 'इसे तुम मार डालो', तब हिरण्यकशिपुके आदेशसे शण्डामर्कने कृत्या उत्पन्न की और उसे प्रह्लादपर छोड़ा। उसी समय भगवान्‌का चक्र चला और उसने कृत्याका नाश कर डाला तथा शण्डामर्कको भी मार डाला। प्रह्लादने सोचा कि 'मेरे कारण गुरुपुत्र मारे गये यह बड़ा पाप हुआ।' अब उनको जीवित करनेके लिये प्रह्लादने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! यदि गुरुपुत्रमें मेरा पहले भी द्वेष न रहा हो तथा अब भी न हो तो उसके प्रभावसे ये मेरे मरे गुरुपुत्र जीवित हो जायँ।' फलतः वे जीवित हो गये।

भक्तका भाव ऐसा होना चाहिये जैसा प्रह्लाद और अम्बरीषका था। भगवान्‌के चक्रका यही कर्तव्य है, चक्रने अपने कर्तव्यका पालन किया। भगवान्‌का जैसे चक्र है उसी प्रकारसे उनकी गदा है, वह भी दुष्टोंका संहार करनेके लिये, अत्याचार करनेवालोंको शिक्षा देनेके लिये है। ऐसे ही हमारे हृदयमें यदि काम, क्रोध और लोभ आक्रमण करें तो उनका भी विनाश करनेके लिये ये शस्त्र तैयार हैं। ये हृदयके भीतरसे विषयोंका विनाश कर देते हैं।

भगवान्‌के शंखकी कथा इस प्रकार कही गयी है—ध्रुवके कपोलपर जब भगवान्‌ने शंख छुआ दिया तो शंख छुवानेके साथ ही ध्रुवको सारे शास्त्रोंका ज्ञान हो गया। और भगवान्‌की वह स्तुति करने लगा। भगवान्‌ने ध्रुवसे वर माँगनेके लिये कहा, इसपर ध्रुवने कहा—'प्रभो! आप वर माँगनेके लिये कहते हैं तो मैं यही वर माँगता हूँ कि मुझे वेद-शास्त्रोंका ज्ञान बिना पढ़े ही हो जाय।' पाँच वर्षके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवके गालसे भगवान्‌ने शंख छुआ दिया तो ध्रुवको सारे शास्त्रोंका ज्ञान बिना पढ़े ही हो गया।

शंख शत्रुओंके हृदयको कम्पित कर देता है। शंख बजाकर शत्रुओंके हृदयको कम्पित कर देनेकी बात महाभारतमें जगह-जगह आती है। जब कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, तब अर्जुनके रथपर बैठे हुए भगवान्‌ने पाञ्चजन्य शंख बजाया और अर्जुनने देवदत्त नामक शंख बजाया। इससे धृतराष्ट्र-पक्षके योद्धाओंके हृदय विदीर्ण हो गये।

भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा थी कि मैं अस्त्र लेकर युद्ध नहीं करूँगा। जब शंख भी आयुधका काम करता है तो संग्राम शुरू होनेके पहले भगवान्‌ने शंख क्यों बजाया? भगवान्‌ने अस्त्र न चलानेकी प्रतिज्ञा की थी, न कि शंख नहीं बजानेकी। भगवान् बिना अस्त्र चलाये ही—अपने शंखसे ही सारा कार्य कर लेते थे। इसी प्रकार हनुमान्‌जी ध्वजाके ऊपर बैठकर गर्जना करते थे। प्रतिपक्षी एकदम घबरा जाते थे। कहीं-कहीं तो ऐसी बात आती है कि हनुमान्‌जीकी गर्जना सुनकर हाथी और घोड़े मल-मूत्र करने लग जाते थे। अर्जुन बाणोंसे, भीम गदासे लड़ाई करते थे और हनुमान्‌जी गर्जना करके, भगवान् शंख बजा करके अर्जुनकी सहायता करते थे। अस्त्र ग्रहण करके अस्त्र नहीं चलाते थे, सहायक बनकर गये थे, सहायता करते थे, सहायता करनेके लिये तो चुने गये थे, उन्होंने सहायता की, अस्त्र नहीं चलाया।

कमलके लिये भगवान् यह दिग्दर्शन कराते हैं कि सृष्टिके आदिमें मेरी नाभिसे कमल पैदा हुआ, कमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीसे यह सारा संसार उत्पन्न हुआ। संसारकी उत्पत्ति करनेवाला यह मेरा कमल है। भगवान्‌के आयुधोंकी बात मैंने अपने भावके अनुसार बतलायी है। कहाँतक ठीक है, कहाँतक ठीक नहीं है, यह तो भगवान् ही जानें। भगवान्‌का तत्त्व और रहस्य, आयुधोंका तत्त्व और रहस्य भगवान् ही जानते हैं। हमारी तो बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं सकती। यह तो हमारे मनका भाव है, हमारा अनुमान है, हमारी एक धारणा है।

इसी प्रकारकी दूसरी बात यह है कि भगवान्‌के गलेमें माला, वस्त्र, आभूषण किसलिये हैं? ये भक्तोंका आनन्द बढ़ानेके लिये हैं। इनसे भक्त लोग खुश हो जाते हैं। इसका भी एक रहस्य है, यह भगवान्‌की प्राप्तिका बड़ा सुगम उपाय है। भगवान्‌के स्वरूपोंमें किसीका मन लगे तो भगवान् उसे मिल सकते हैं। अपने मनको जो चीज अच्छी लगे, वही भगवान्‌के अङ्गपर सजानी चाहिये, जिससे मन फिर प्रभुको छोड़कर अन्यत्र न जाय। हम सबके मनकी आसक्ति माला आदिमें, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंमें, सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंमें स्वाभाविक ही है, इसलिये भगवान्‌को ऐसा सजाना चाहिये कि जिसे देखकर मन आह्लादित हो जाय—गद्‌गद हो जाय। इस स्थितिमें भगवान्‌को हम देखते रहें, ध्यान करते रहें और भगवान् हमारा ध्यान करें।

हमारा मन ५६ प्रकारके भोगोंकी ओर जाता है, तो भोग लगाना भगवान्‌की पूजाका एक अंग है। इसलिये जब भगवान्‌की हम पूजा करें तो जिसे हम बढ़िया-से-बढ़िया चीज समझें उसे भोग-सामग्रीमें लाकर रखें। अपना मन भगवान्‌की उस भोग-सामग्रीमें ही लग जाय यानी भगवान्‌को जो अर्पण किया गया है, उसमें लग जाय तो भगवान्‌के लिये अर्पित भोग हमारे लिये प्रसाद हो जाता है। भगवान्‌को निवेदित करके हम उस प्रसादको पायें तो उससे हमारी बुद्धि शुद्ध हो जाय। इसी प्रकार हमारे दिलमें कीमती चीजों—हीरा, पन्ना, माणिक और बढ़िया रत्नका आदर है। उसे भगवान्‌के आभूषणोंमें, मुकुटमें, कुंडलमें लगायें। रत्नोंसे जड़े हुए दामी वस्त्रसे भी भगवान्‌को सजाये, दामी पुष्पोंकी माला जिसमें बड़ी भारी सुगन्धि आती हो उससे सजाये। कहावत है कि 'सोनेमें सुगन्धि।' सुगन्धिवाले सोनेके पुष्प कैसे? जैसे कुबेरके बगीचेमें होते हैं, उनमें सुगन्धि बहुत बढ़िया आती है। एक समय कुबेरके बगीचेसे पुष्प उड़कर गंधमादन पर्वतके ऊपर आ गये थे। वे द्रौपदीको मिले। द्रौपदी भीमसे कहने लगी कि ऐसे पुष्प जहाँ हों वहाँसे लाओ। भीम उनका पता लगाकर कुबेरके बगीचेमें पहुँचे और वहाँसे बहुत-से पुष्प तोड़कर द्रौपदीके लिये ले आये। अपनेको तो मनसे ही मँगाना है। सभी पुष्प वहाँसे ही मँगायें, बल्कि भाव यह रखें कि कुबेर ही अपने बगीचेसे पुष्प लेकर आये हैं, माला लेकर आये हैं। भगवान्‌की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजामें कुबेरको भी शामिल करें तो उनका भी कल्याण हो जाय। देवताओंको भी शामिल कर लें। हम ऐसी भावना करें कि देवताओंने पहलेसे ही सब बढ़िया-बढ़िया सामग्री लाकर रखी है और उन पुष्पोंमें जो सुगन्धि है वह अलौकिक है। फिर समय पाकर हमको सुगन्धि भी आने लगे। भगवान्‌में, भगवान्‌की मालामें जो गंध आती है, उस गंधसे हृदयका भाव इतना सात्त्विक हो जाता है कि वह परमात्माकी प्राप्तिके लिये अधिकारी बन जाता है। भगवान्‌के गलेमें माला पहनाकर जब भगवान्‌से माला ग्रहण करते हैं तब अपना अहोभाग्य समझना चाहिये, आनन्दमें खूब मुग्ध होना चाहिये। खूब तृप्त होना चाहिये। इसी प्रकार जितनी सामग्री—ऋतुफल, पूगीफल, ताम्बूल आदि भगवान्‌को निवेदित किये गये हों, वे सब हमारे लिये प्रसाद हो गये, उन्हें ग्रहण करनेसे अपनी बुद्धि शुद्ध होती है।

अपने मनको यदि वैराग्य प्यारा लगे तो उससे भगवान्‌को सजाना चाहिये। शिवजीकी पूजामें शिवजीका ध्यान करना चाहिये। ऐसा ध्यान करना चाहिये कि मानो शिवजी विभूति लगाकर ध्यानावस्थामें मस्त हैं। शरीरमें राख लगा रखी है और उन्होंने बाघम्बर ओढ़ रखा है। यदि भगवान् श्रीरामका ध्यान करना है तो विरक्त वेषधारी वनवासी रामका ध्यान करे। भगवान् श्रीराम १४ वर्षतक वनमें रहे। वनमें जानेके समय कैकेयीने मुनियोंके पहनने लायक जो वस्त्र रामको लाकर दिये श्रीरामने बड़ी प्रसन्नतासे वे वल्कल-वस्त्र पहने और श्रीरामके अनुरूप श्रीलक्ष्मणने भी भ्रातृ-भावमें विभोर होकर विरक्तवेषी वनवासीके वल्कल-वस्त्र पहने तथा मृगचर्म ओढ़ा। इसी प्रकार कैकेयीने वल्कल-वस्त्र सीताको भी दिये, इसपर सीता भगवान् श्रीरामसे बोलीं—भगवन्! स्त्रियाँ ऐसे वस्त्रोंको किस प्रकार पहनती हैं, मुझे इसका ज्ञान नहीं है। प्रभो! आप बतलाइये। उस समय भगवान्‌ने लज्जा त्यागकर सभामें वस्त्रोंको हाथमें ले लिया और सीताजीको पहनानेके लिये तैयार हुए। यह देखकर सारी प्रजा, सभी सभासद् रोने लगे। वसिष्ठजी बर्दाश्त नहीं कर सके। उन्होंने कहा—'अरी दुष्टा कैकेयी! क्या दशरथसे तुमने यह भी वरदान माँगा है कि जनकनन्दिनी सीता भी वल्कल-वस्त्र पहन करके वनमें जायँ। यदि ऐसी बात नहीं है तो सीताको वल्कल-वस्त्र देनेका तुम्हें क्या अधिकार है? सीता तो वनमें अपने पतिकी सेवाके लिये जा रही है, अपने पातिव्रत-धर्मकी दृष्टिसे, अपनी इच्छासे जा रही है। तुम्हें लज्जा नहीं आती। सीताने जिन वस्त्रोंको पहन रखा है, उन्हींको पहन कर वनमें जायगी।' कैकेयी लज्जित हो गयी। सीता राजपोशाक पहनकर भगवान्‌के साथ वनमें गयी।

यदि वैराग्य प्यारा हो तो भगवान्‌को वही वस्त्र पहनाना चाहिये, उसी प्रकारका सजाना चाहिये, जिससे हमारे चित्तमें वैराग्य हो, संसारसे उपरति हो। अथवा भगवान्‌का जो स्वरूप अपनेको प्यारा लगे, वैसा ही भगवान्‌को सजाना चाहिये। भगवान् विष्णु लक्ष्मीके पति हैं, जिनके हृदयमें लक्ष्मीका निवास है। जो लोग लक्ष्मीका आदर करते हैं, धनका आदर करते हैं, ऐश्वर्यका आदर करते हैं, उन पुरुषोंको उचित है कि वे भगवान्‌को कीमती-कीमती आभूषणोंसे सजायें। अच्छे वस्त्रोंसे सजायें। बढ़िया-बढ़िया चीज भगवान्‌के गलेमें पहनायें, रत्नोंकी माला, चंद्रहार, मोतियोंकी माला और सोनेकी माला—ये सब भगवान्‌के गलेमें सजायें। वैराग्यप्रिय विरक्त भक्तको विरक्त-वेषमें भगवान्‌को सजाकर उनका ध्यान करना चाहिये।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि **'वीतरागविषयं वा चित्तम्'** (समाधिपाद ३७) परमात्म-विषयक धारणासे चित्त वशमें हो जाता है। अत: मनको स्थिर करनेके लिये, मनको अपने वशमें करनेके लिये, मनको एक देशमें बाँधनेके लिये परमात्म-विषयक धारणा करनी चाहिये। चित्तको एक देशमें बाँधनेका नाम धारणा है। विषयोंका चिन्तन जिसके चित्तसे हट गया है, वह वीतराग है। यह अर्थ ब्रह्म-पुरुषका है, इसको अपने चित्तका विषय बनाना वैराग्यवान् पुरुषोंका ध्यान करना है। वैराग्यवान् पुरुष संसारमें बहुत हुए हैं—जैसे—शुकदेव, सनकादि, ऋषभदेव तथा जडभरतजी आदि विरक्त संसारसे उपरत हुए, किंतु भगवान् शङ्कर और श्रीरामचन्द्रजी तो योगियोंके योगी और विरक्तोंके भी विरक्त हैं। यदि आप विष्णुके उपासक हैं तो आपको रामका ध्यान करना चाहिये। श्रीविष्णु ही रामके रूपमें त्रेतामें प्रकट हुए। देवताओंके आराधना करनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्ने कहा कि मैं दशरथके यहाँ चार रूपसे अवतार लूँगा—राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। इन रूपोंमें भगवान् प्रकट हुए। इनमें प्रधान तो साक्षात् भगवान् राम ही थे और सभी उनके अंश थे। इसलिये भगवान् विष्णु ही राम हैं, उनसे अलग नहीं हैं। किंतु जिस समय भगवान् राम चौदह वर्ष वनमें रहे, उस समय विरक्त होकर विचरे। यद्यपि जगज्जननी श्रीसीता सेवाके लिये साथमें रहीं, फिर भी भगवान् ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक रहे। इसी प्रकार लक्ष्मण ब्रह्मचर्यका पालन करते रहे। इतनी ही बात नहीं, भरत और शत्रुघ्न भी राज्यका शासन करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करते रहे; क्योंकि वे समझते थे कि जिस प्रकार श्रीराम और लक्ष्मण वनमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उसी प्रकार हमको भी रहना चाहिये। वाल्मीकिरामायणमें बतलाया गया है कि भरत और शत्रुघ्न ही नहीं, अपितु जितने मन्त्री थे, सबने उसी प्रकार वल्कल-वस्त्र पहन करके १४ वर्ष अपना जीवन बिताया। पद्मपुराणमें यह बात आती है कि हनुमान्जी अयोध्यामें जाकर देखते हैं कि श्रीभरतजी महाराज पादुकाओंकी सेवा कर रहे हैं। पादुकाको पुराण सुना रहे हैं, साथमें सारे मन्त्री और शत्रुघ्न भी हैं। हनुमान्जीने संदेश दिया कि भगवान् राम विमानमें बैठ करके आ रहे हैं। हनुमान्जी देखते हैं कि मन्त्रियोंसहित भरत और शत्रुघ्नका जीवन कैसा है। वे वल्कल-वस्त्र पहने हैं। मुनिलोग जो कंद-मूल फल खाते हैं, वही उनका भोजन है। भूमिपर शयन करते हैं तथा ब्रह्मचर्यव्रतसे रहते हैं। क्योंकि जब भगवान् राम और लक्ष्मण वनमें चौदह वर्ष ब्रह्मचर्यव्रतसे निवास करते हैं तो हमलोग विषय-भोगोंको कैसे भोगें। भगवान् राम जब जमीनमें शयन करते हैं तो हम ऊपर कैसे लेटें। वे सोचते हैं कि हमें तो जमीनमें गड्ढा खोदकर उसमें शयन करना चाहिये। ये आदर्श भाव हैं। तुलसीकृत रामायणमें यह बात बतायी गयी है कि भगवान् रामके विरक्तरूपका ध्यान करना चाहिये। शिवके उपासकको ध्यानावस्थामें बैठे भगवान् सदाशिवका ध्यान करना चाहिये। हमको भगवान् शिवकी नकल करनी है। क्योंकि भगवान् शिव अपने इष्टका ध्यान करते हैं। इसलिये यदि हमारे इष्ट शिव हैं तो हम शिवका ध्यान करें। ऐसा करनेसे वहाँ मन रुक जाता है। अतः मनको रोकनेके लिये अपने मनमें भगवान्के स्वरूपको सजाकर भगवान्का ध्यान करना चाहिये। अपनेको ऐसा बनाना चाहिये जिससे भगवान् हमारे ऊपर आसक्त हों। भगवान् जैसा चाहते हैं तथा भगवान्को जो बातें प्यारी लगती हैं वैसा हमको बनना चाहिये। इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवान्को अपना भक्त प्रिय है। किन लक्षणोंवाला भक्त प्रिय है? यह बात गीताके १२ वें अध्यायके १३ वें श्लोकसे १९ वें श्लोकतक कही गयी है, उन्हें अपनेमें धारण करना चाहिये, यदि भगवान्को बुलाना है और अपनेमें भगवान्को आसक्त करना है तो भगवान्को प्रेमास्पद और अपनेको प्रेमी बनाना चाहिये। ऐसी दशामें भगवान्के लिये हम प्रेमास्पद हो जायँगे और भगवान् हमारे प्रेमी हो जायँगे। भगवान्के लिये ऐसा कर देना चाहिये कि वे हमारे ऊपर आसक्त हो जायँ। यहाँ आसक्तका मतलब यह है कि 'हम भगवान्के लिये अति प्यारे हो जायँ।' 'प्यारा' दो प्रकारका होता है—एक प्रिय होता है तथा एक अतिप्रिय होता है। भगवान्ने गीताके १२ वें अध्यायके १३ वें श्लोकसे लेकर १९ वें श्लोकतक जो लक्षण बतलाये हैं उनको जो धारण करता है, वह भगवान्को अतिशय प्यारा होता है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

—इस प्रकारका भक्त मुझको प्यारा है। कैसा भक्त? जो सारे भूतोंमें द्वेषभावसे रहित है और सबमें हेतुरहित प्रेम करनेवाला, सबपर दया करनेवाला है। जिसकी किसीके प्रति ममता नहीं है, दिलमें न अभिमान है न अहंकार, किसीसे किसी प्रकारका बदला नहीं चाहता चाहे कोई कितना ही अपराध क्यों न कर दे, सुख और दुःखकी प्राप्तिमें जो सम है और हर समय आनन्दमें मगन है, संतुष्ट है, कुछ भी प्राप्त होनेमें जिसे संतोष है, जिसकी बुद्धि स्थिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और मन वशमें है, जिसने भगवान्‌में मन और बुद्धिको लगा दिया है। भगवान् कहते हैं कि ऐसा मेरा भक्त मुझको प्यारा है। दो श्लोक मैंने आपको बतलाये, बाकी श्लोक आप देख सकते हैं, इनके अनुसार साधन करनेवाला मुझे अत्यन्त प्रिय है।

अपनेसे किसी प्रकारकी छोटी अवस्थावालोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये उसे बतलाया जाता है। आज्ञा देनेवालेको आज्ञा देनेके समय यदि अपने स्वार्थकी बात हो तो नहीं कहनी चाहिये। यदि कह दी गयी हो और वह काममें नहीं लाये तो मनमें दुःख नहीं करना चाहिये। बात ऐसी कहनी चाहिये, जिससे संसारका हित हो या जिसके प्रति आज्ञा दी जाती हो उसका हित हो। यदि यह मालूम हो जाय कि यह बात काममें नहीं ला सकेगा, कठिनाई पड़ती है तो उसको संकोचमें नहीं डालना चाहिये, यानी नहीं कहनी चाहिये। मालिक होकर भी अपनेमें मालिकपनेका अभिमान लाकर वह बात नहीं कहनी चाहिये। प्रेमसे समझाकर ही कहनी चाहिये। संसारका जिसमें हित हो इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। मान लो कोई संस्था है तो संस्थाका हित हो और यदि कोई व्यक्ति हो तो व्यक्तिका हित हो, ऐसी बात कहनी चाहिये। अपने स्वार्थ और सेवाकी बात न्याययुक्त, धर्मयुक्त हो तो अपनी स्त्री, अपने पुत्र अथवा नौकरोंको कह सकता है।

भगवान्‌के प्रभावकी कोई सीमा नहीं है। वह अपरिमित है, वाणीकी सामर्थ्य नहीं है कि उसको कह सके। संसारमें जो कुछ भी शक्ति, प्रभाव, महिमा देखनेमें आती है, वह सब मिलकर सागरमें बूँदके समान भगवान्‌के प्रभावका एक अंश है। सारा-का-सारा ब्रह्माण्ड परमात्मामें सागरके एक बुदबुदेके समान है। उसी प्रकार सारे-के-सारे ब्रह्माण्डमें जो भी शक्ति, प्रभाव, सामर्थ्य प्रतीत होता है, वह सब परमात्माके एक अंशका ही प्रादुर्भाव है। संसारमें कोई भी ऐसी बात नहीं है जो परमात्मा नहीं कर सकते। भगवान्‌के लिये कोई भी बात असम्भव नहीं है। संसारके प्राणी जो पात्र नहीं हैं, अपात्र हैं, कुपात्र हैं, उन सबका भगवान् चाहें तो क्षणमात्रमें उद्धार कर सकते हैं। भगवान्‌के लिये उद्धार करनेमें, नीति-न्यायका विचार नहीं है। भगवान् कोई भी काम करें, उनके लिये कुछ भी अनुचित नहीं है। वह सब कुछ कर सकते हैं, वे सर्वसामर्थ्यवान् हैं। न करें तो अपना मङ्गल समझना चाहिये। उनके सामर्थ्यके विषयमें कुछ भी कैसे बतलाया जा सकता है। भगवान्‌के रहस्यकी बात भगवान् ही जानते हैं। दूसरा कोई बतला ही नहीं सकता। हम तो एक महात्मा पुरुषके रहस्यको भी नहीं बतला सकते। क्योंकि अपने हृदयके भावको, स्वरूपके तत्त्व-रहस्यको महात्मा ही जानते हैं। वह स्वसंवेद्य है, वह आप ही जानते हैं। वह पर-संवेद्य नहीं हैं—दूसरे नहीं जान सकते। जब एक महात्माके तत्त्व-रहस्यको दूसरा महात्मा नहीं समझ सकता तो दूसरा कोई समझेगा ही क्या? परमात्माके रहस्यको परमात्मा भी किसी अंशमें ही बतला सकते हैं, क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं। भगवान् भी बतलायेंगे तो वाणीसे ही बतलायेंगे। आप भी अपने हृदयका भाव दूसरोंको बतलाना चाहें तो पूरा-पूरा नहीं समझा सकते। यदि कहें कि हम तो असमर्थ हैं पर भगवान् तो सर्वसमर्थ, सामर्थ्यवान् हैं, उनके लिये तो कुछ भी असम्भव नहीं है, सो तो ठीक है पर भगवान्‌के लिये ऐसी बात होनेपर भी वर्णन तो वाणीसे ही किया जायगा। भगवान् कहते भी हैं—यह रहस्यकी बात है, यह गोपनीय बात है, गुह्यतर है, गुह्यतम है, सर्वगुह्यतम है—इस प्रकार भगवान् रहस्यकी बात कहते भी हैं। रहस्य भाव है और वाणी क्रिया है। रहस्य समझनेकी चीज है, वह वाणीमें नहीं आ सकता। उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। प्रेम और श्रद्धा—ये भी भाव हैं। इसी प्रकार तत्त्व और रहस्य—ये सब भी भाव हैं। ये सब भाव शुद्ध हैं, शुद्ध और तीक्ष्ण बुद्धिसे समझे जाते हैं। श्रद्धाकी, प्रेमकी, निष्काम भावकी, तत्त्व और रहस्यकी, भगवान्‌के गुणोंकी, महात्माओंके गुणों, तत्त्व-रहस्यकी, भगवान्‌के लीला-तत्त्व-रहस्यकी—ये सभी बातें शास्त्रोंमें लिखी हैं और शास्त्रोंमें उनका बड़ा विस्तार है। इसलिये सभी बातें कहनेमें आयेंगी नहीं; क्योंकि वाणीमें समा नहीं सकतीं। किंतु जितनी बात बतलायी जाती है और हमलोग समझते हैं, उसका शतांश भी हम काममें लायें तो हमारा कल्याण हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गाका प्रवाह रात-दिन बहता है, सारे संसारके लोग उसका पान करने लगें तो सबकी पिपासा बुझ सकती है और गङ्गा वैसे-की-वैसी ही बहती रहती है, उसमें कोई कमी नहीं आती। गङ्गा भी परिमित है, उसमें भी कमी आ सकती है, किंतु भगवान्‌के गुण, तत्त्व-रहस्यकी सीमा नहीं है। भगवान् जब प्रकट होते हैं, अवतार लेते हैं तो उनके दर्शनसे, भाषणसे, स्पर्शसे, वार्तालापसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, इसमें कोई बड़ी बात नहीं। भगवान्‌के स्वरूप और नाम-लीला आदिकी स्मृतिसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, भगवान्‌के नामके उच्चारणसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, तब उनके दर्शन-भाषण-स्पर्श-वार्तालापसे कल्याण हो जाय उसमें तो बात ही क्या है! इन सबके प्रभावसे मनुष्य अपना ही नहीं दूसरोंका भी कल्याण कर सकता है। सारे संसारका कल्याण कर सकता है। ऐसी उनमें योग्यता आ जाती है।

सबसे गोपनीय बात तो भगवान्‌ने गीतामें बतलायी है, अपने-आपका परिचय दिया है। और भी बहुत-सी गोपनीय बातें हैं, पर सबसे बढ़कर बात है अपने-आपका दिग्दर्शन कराना। स्वयं प्रकट होकर यह बतला देना और कह देना कि—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८। ६५)

तू मेरेमें मनको लगा दे, मेरा ही भक्त बन जा, मुझसे प्रेम कर, मेरी आज्ञाका पालन कर, मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर—ऐसा करनेसे तेरा निश्चय ही कल्याण हो जायगा, क्योंकि तू मेरा भक्त है, अतिशय प्यारा है। इसलिये तेरे हितके लिये यह बात कही है। तुम्हारे प्रति सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तू निश्चय ही मुझको प्राप्त हो जायगा, इसमें कुछ भी संशयकी बात नहीं है। इसमें यह भाव भरा हुआ है। यह सबसे बढ़कर बात है, भगवान् फिर कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सारे धर्मोंको मुझ परमात्मामें समर्पण कर दे और मेरी शरण आ जा! फिर मैं तुम्हारे पहलेके किये पापोंसे, वर्तमानके पापोंसे एकदम मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। किसी बातकी चिन्ता मत कर निश्चिन्त हो जा। उपर्युक्त दो श्लोक बहुत ही रहस्यके हैं। (कैसेट नं० ३४०)

भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन सुलभ हैं

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है भगवान्‌को प्राप्त करना। यह बात अधिकांश अध्यात्मप्रेमी सत्संगी सज्जन जानते हैं, किंतु लोक-परलोकके सम्पूर्ण मायिक सुखोंको तथा मान-प्रतिष्ठा-बड़ाईको पतनका द्वार समझकर और उसका सर्वथा त्यागकर भगवान्‌के भजनमें दत्तचित्त होकर लगनेवाले तथा इसके फलस्वरूप श्रीभगवान्‌के देव-दुर्लभ दर्शनोंका लाभ उठाकर कृतकृत्य हो जानेवाले भाग्यशाली पुरुष बिरले ही होते हैं। भजन-साधनमें लगे दीखनेवाले कई पुरुषोंको भी भगवत्प्राप्ति होती हुई नहीं देखी जाती, अतः यह मान्यता प्रचलित हो गयी है कि भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करना बहुत ही कठिन है, किंतु सच्चे हृदयसे भगवान्‌के दर्शनोंकी इच्छा रखनेवाले और नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करनेवाले साधकको तो भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन निश्चित एवं सुलभ हैं। श्रीभगवान्‌ने स्वयं कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

—'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शनका सर्वोत्तम एकमात्र उपाय 'परम विशुद्ध अनन्य प्रेम' ही है। यह अनन्य भगवत्प्रेम साधकको क्षणमात्रमें भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन करानेमें समर्थ है। इस अनन्य परम विशुद्ध भगवत्प्रेमकी पहचान यह है कि भगवान् इतने प्यारे एवं मधुर लगने लगें कि उनसे मिले बिना हृदय तड़फने लग जाय। जिस प्रकार मछलीको जलके बिना कुछ भी नहीं सुहाता, उसी प्रकार साधकको भगवान्के बिना कुछ भी न सुहाये। भगवान्के बिना साधकका खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना सब कुछ भार बन जाय। किंतु भगवान्के दर्शनमें प्रमुख बाधा है—सांसारिक जड—नाशवान्, प्राणी, पदार्थ-परिस्थितियोंकी कामना करना। साधकके हृदयमें जबतक जड—नाशवान् पदार्थोंका आदर तथा महत्त्व विद्यमान है, तबतक भगवान्के दर्शनोंकी तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं हो सकती। यहाँतक कि मुक्तिकी कामना भी भगवान्के दर्शनोंकी तुलनामें अत्यन्त तुच्छ है।

संतोंने कहा है—

चाह चुड़ैली रामदास, सब नीचन में नीच।
तूँ तो परब्रह्म था, जो चाह न होती बीच॥

चाह—कामना ही एकमात्र दीवार है, जो साधक और भगवान्के बीचमें बनी हुई है। जिनकी वासनाएँ पूर्णतः शान्त नहीं हो गयी हैं, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है—

अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्॥

(श्रीमद्भा० १। ६। २२)

कामनारूप दीवारके ढह जानेपर भगवान्के दर्शनोंमें विलम्ब नहीं होता। यमराज नचिकेतासे कहते हैं—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठोप० २। ३। १४)

साधकके हृदयमें स्थित जो कामनाएँ हैं, वे सब-की-सब जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और यहीं ब्रह्मका अनुभव कर लेता है। भक्तराज प्रह्लाद भी यही कहते हैं—

विमुञ्चति यदा कामान् मानवो मनसि स्थितान्।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते॥

(श्रीमद्भा० ७। १०। ९)

'कमलनयन! जिस समय मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है।'

कामना करनेसे भगवत्प्राप्तिमें बाधा लगनेके अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं है। दुःख, शोक, अभाव, जलन, रोग, नरक, जन्म-मरण—ये सभी कामनाहीके फल हैं। साधक यदि कामनाका अशेषतया त्याग करके भगवत्प्राप्ति कर ले तो उसकी कामना सदा-सदाके लिये निवृत्त हो जाय—अभावका ही अभाव हो जाय। वस्तुतः भगवान्की प्राप्तिमें ही सबकी प्राप्ति है। भगवत्प्राप्ति बिना सबकी प्राप्ति व्यर्थ है।

हम मानव-जीवनका महान् अमूल्य समय धन-सम्पत्ति, पद-अधिकार, मान-बड़ाई आदिकी प्राप्तिमें लगा रहे हैं—यह स्वयंके साथ ही भगवान्के साथ भी महान् विश्वासघात है। अपने-आपसे पूछना चाहिये कि हम जिन नाशवान्, जड पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये महान् परिश्रम कर क्लेश उठा रहे हैं तथा अपने मानव-जीवनको बर्बाद कर रहे हैं—वे वस्तुएँ हमारे साथ निरन्तर रहेंगी क्या? हम उनके साथ निरन्तर रह सकते हैं क्या? वर्तमान कालमें ही वे वस्तुएँ हमसे निरन्तर छूट नहीं रही हैं क्या? हमारा सम्पूर्ण परिश्रम एवं प्रयास अन्ततः 'कुछ भी नहीं किया,' 'कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ' में बदल नहीं जायगा क्या? यदि 'हाँ', तो यह महान् हानि किसकी हो रही है? इसका फल कौन भोगेगा? जरा विवेकपूर्वक विचार करें।

हमें अपना सम्पूर्ण समय, समझ एवं प्रयास उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये लगाना उचित है, जिसकी प्राप्तिके पश्चात् हमेशा-हमेशाके लिये परिश्रम-प्रयत्न करना समाप्त हो जाता है। फिर कभी भी किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ता। सर्वदा-सर्वदाके लिये विश्राम एवं चैनकी प्राप्ति हो जाती है। हमेशा-हमेशाके लिये कुछ भी करना, जानना एवं प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। वह अलौकिक वस्तु है—हमारे अभिन्न प्राणाधिक प्रियतम भगवान्! इन्हींकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करनेवाले भाग्यशाली मनुष्य बुद्धिमानोंके सिरमौर हैं—

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। २२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विवेकियोंके विवेक और चतुरोंकी चतुराईकी पराकाष्ठा इसीमें है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीरके द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य परमात्माको प्राप्त कर लें।'

भगवान्‌के बिना हमारा काम चल रहा है—यह हमारे लिये बड़ी ही चिन्ता और शोककी बात है। हम खुशीसे खाते-पीते हैं, सोते हैं, बातें करते हैं, किंतु भगवान्‌के नहीं मिलनेका हमें जरा भी दु:ख नहीं है। ऐसे जीवन और पशु-पक्षीके जीवनमें क्या अन्तर है?

साधकको अपना यह सुदृढ़ निश्चय बनाना चाहिये कि इस सम्पूर्ण जीवनमें मुझे एक भगवान्‌की प्राप्ति ही करनी है। सांसारिक काम हों या न हों, सुख आये या दु:ख, धनवत्ता हो या निर्धनता, निन्दा हो या स्तुति, कोई नाराज हो या प्रसन्न—मुझे इसकी कोई परवा नहीं है। बस, एक भगवान् मिलने चाहिये, फिर सांसारिक स्थिति चाहे कुछ भी हो जाय। इस प्रकार संसारसे पूर्णतया निरपेक्ष होकर भगवत्प्राप्तिके साधनमें लगनेपर ही भगवान् जल्दी-से-जल्दी मिलते हैं।

साधककी विह्वलता एवं आतुरता देखकर भगवान् कृपापूर्वक ही दर्शन देते हैं। कोई भी साधन वस्तुत: भगवान्‌को दर्शन देनेके लिये बाध्य नहीं कर सकता, अत: अपने साधनका आश्रय न लेकर भगवान्‌की कृपाका ही आश्रय लेना चाहिये। भगवान् इतने कृपालु हैं कि वे हमारा 'पुराना हिसाब' कभी नहीं देखते, केवल वर्तमानकी स्थिति ही देखते हैं। जब वे देखते हैं कि साधकके मनमें केवल उन्हींके प्रेमकी प्यास जग उठी है तथा उनके विरहमें वह तिल-तिल जल रहा है, तभी वे अपने देव-दुर्लभ दिव्य दर्शन तथा सुकोमल-करकमलका संस्पर्श प्रदानकर साधकको निहाल कर देते हैं।

साधकको यह विश्वास बढ़ाना चाहिये कि वह चाहे जिस किसी भी स्थितिमें है—उसे भगवान् मिल सकते हैं। अपनी अयोग्यता तथा साधन-भजनकी कमीकी ओर न देखकर भगवान्‌की कृपाकी ओर ही ललचायी दृष्टिसे देखना चाहिये। क्योंकि भगवान्‌की कृपाके बलपर पापी-से-पापी व्यक्तिको भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। बेटा चाहे कितना ही अयोग्य एवं दोषी क्यों न हो—वह अपनी माँसे मिलनेके लिये पूरा-पूरा योग्य है। बस, इसी माँ-बेटेके सम्बन्धको स्वीकारकर तथा यथार्थत: पहचानकर भगवान्‌से मिलनेके लिये पुकार मचानी चाहिये। फिर भगवान्‌के आनेमें विलम्ब नहीं होगा।

भरतजीको यह विश्वास था कि भगवान् बड़े भारी कृपालु एवं प्रेमी हैं। अपने भक्तोंके दोषोंकी ओर तो उनकी दृष्टि जाती ही नहीं। अत: अपने विरदकी ओर ध्यान देकर ही भगवान् अवश्य-अवश्य पधारेंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
(रा० च० मा० ७। १। ६-७)

भरतजीके इस दृढ़ विश्वासके कारण भगवान्‌को समयपर अयोध्या आना ही पड़ा।

हमें यह मनुष्य-शरीर भगवान्‌की कृपासे ही मिला है। हमारे अनन्त जन्मोंके असंख्य पाप थे, किंतु उन सभीके फलको स्थगित करके भगवान्‌ने कृपा करके यह मनुष्य-शरीर प्रदान किया है। हमारे पाप भगवान्‌की कृपाको हमें मनुष्य-शरीर देनेसे रोक नहीं सके। इसी प्रकार हम यदि भगवान्‌की कृपाका ही अनन्य आश्रय ले लें तो हमारे असंख्य-अनन्त पाप-ताप एवं सारी अयोग्यताएँ भी भगवान्‌को दर्शन देनेसे रोक नहीं सकतीं। हमारी अयोग्यता एवं दोषों-अवगुणोंके कारण भगवान् हमें दर्शन नहीं देंगे—ऐसा मानना तो एक प्रकारसे भगवान्‌को दर्शन देनेसे रोकना है तथा उनकी अनन्त अपार कृपाका तिरस्कार करना है।

बालिने बड़ा भयंकर पाप किया था और स्वयं भगवान् भी उसे कहते हैं कि तू बड़ा पापी है—तुझे मारनेमें कोई दोष नहीं है। तू अधम है, अभिमानी है—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥
(रा० च० मा० ४। ९। ७-१०)

किंतु बालि था बड़ा चतुर। उसने भगवान्‌के अत्यधिक संवेदनशील कृपामय स्वरूपको पकड़ा एवं कहा—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥
(रा० च० मा० ४। ९)

—'अन्तकालमें आपकी शरणमें पड़ा हूँ—क्या अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मैं पापी हूँ?' (गीतामें घोषणा कर रखी है कि तू मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा। (गीता १८। ६६)) बस, इतना सुनते ही कृपामयकी कृपा उमड़ पड़ी। उन्होंने बड़े प्यारसे बालिके सिरपर अपना कर-कमल रखा और कहा—*'अचल करौं तनु राखहु प्राना।'* (रा० च० मा० ४। १०। २)

जो भगवान् एक क्षण पहले ही बालिको बड़ा भारी पापी बता रहे थे, वे ही भगवान् बालिके शरणमें आते ही उसके सम्पूर्ण पापोंकी ओर आँख बंद करके उसे अमर बनानेकी बात कह रहे हैं। कैसा आश्चर्य! शरणागतिकी कैसी अपार महिमा!

बस, भगवान्‌के इसी कृपामय स्वरूपपर विश्वास करके उनके सुर-मुनि-पूजित चरणकमलोंपर अपने-आपको न्योछावर कर देना चाहिये।

फिर तो उन कृपामूर्तिको प्रकट होना ही पड़ेगा। वे रुक नहीं सकते। उनके मनमें अपने भक्तके प्रति असीम प्रेम एवं करुणा है। जो कुछ विलम्ब होता है, वह हमारी ओरसे ही होता है। हम ही उन्हें सच्चे दिलसे चाहते नहीं हैं।

जब नदीमें जोरकी बाढ़ आती है, तब आस-पासकी सब गंदगी—कूड़ा-कचरा उसमें बह जाता है। इसी प्रकार भगवान्‌की कृपाकी बाढ़में हमारी सम्पूर्ण अयोग्यता तथा पाप-ताप आदि सब बह जायँगे—हम तत्काल भक्त बन जायँगे। उनकी स्वयंकी घोषणा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मुझको भजता है तो वह साधु-भक्त ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।'

भगवान्‌के शीघ्र दर्शन-प्राप्तिके लिये दो बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी ओर हमारा ध्यान प्रायः जाता नहीं है। प्रथम तो यह कि साधक भगवान्‌को अपना सबसे अधिक प्यारा—प्राणोंसे भी अधिक प्यारा समझे। उनके सामने लोक-परलोक—सभीको अत्यन्त तुच्छ समझकर सर्वस्व उनके चरणोंपर समर्पित कर दे। दूसरी यह कि उसके वे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भगवान् अभी इसी समय उसके सामने ही उपस्थित हैं, क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं। निर्गुण-निराकार-रूपमें ही नहीं, अपितु सगुण-साकाररूपमें भी उपस्थित हैं—ऐसा दृढ़तापूर्वक माने। दृढ़तापूर्वक ऐसा माननेपर वे दीखने भी लग जायँगे। तत्पश्चात् अपने प्राणोंकी पूरी व्याकुलतासे उनको पुकारे।

सर्वोत्तम बात तो यही है कि भगवान् मिलें या न मिलें—इसकी परवा न करके उनके निरन्तर भजनमें ही तत्परतापूर्वक लग जाय। वे अत्यधिक प्यारे लगें तथा मनको उनके मधुर चिन्तनको छोड़कर कुछ भी सुहाये ही नहीं तथा दृष्टिपथमें उनकी मधुर मूर्ति ही झिलमिलाती रहे—ऐसी चेष्टा सदैव बनी रहे। उनको क्षणभरके लिये भी भूलना सहन न हो। फिर तो भगवान्‌को बिना ही बुलाये आना पड़ेगा, क्योंकि प्रभु स्वयं महान् प्रेमी हैं। अपने प्रेमी भक्तसे मिले बिना वे स्वयं ही नहीं रह सकते।

भगवान्‌के स्वभावकी एक विचित्रता है कि वे अपने कृपामय स्वरूपका परिचय साधकको सहसा नहीं देते हैं। साधकको लगता है मानो भगवान् उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। किंतु ऐसी बात किंचिन्मात्र भी नहीं है। साधककी चित्तवृत्ति संसारसे सभी ओरसे हटकर पूर्णरूपसे भगवान्‌में ही लग जाय तथा उसका भगवान्‌की ओर एक प्रबल आकर्षण पैदा हो जाय तथा संसार सर्वथा विस्मृत हो जाय—ऐसी व्यवस्था करनेके लिये ही भगवान् तनिक कठोर-से बने रहते हैं। किंतु यथार्थतः उनका हृदय अत्यन्त ही कोमल है तथा साधक जल्दी-से-जल्दी उनसे मिल जाय—ऐसी व्यवस्था ही वे किया करते हैं। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि किसी भी परिस्थितिमें निराश न होकर दुगुने उत्साहसे भगवान्‌की ओर ही बढ़ते रहें—

हरि से लगा रहु रे भाई। तेरी बनत बनत बनि जाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌में मन लगनेके उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक बार श्रद्धेय श्रीभाईजीने सत्संगके अवसरपर साधन-भजन-सम्बन्धी जिज्ञासाओंका इस प्रकार समाधान किया—

प्रश्न—हमारा मन भगवान्‌में कैसे लगे एवं उनकी कृपामें विश्वास कैसे हो? इसका कोई सरल उपाय हो तो बतलानेकी कृपा करें।

उत्तर—भगवान्‌में मन कैसे लगे, इसके दो उपाय हैं, बड़े सरल एवं अमोघ। एक है उनकी कृपामें पूर्ण एवं दृढ़ विश्वास तथा दूसरा है उनका सतत भजन।

भगवान्‌की कृपामें विश्वास कैसे हो, इसका उत्तर है विश्वासी पुरुषोंका संग करना। विश्वासी पुरुषोंका संग करनेसे भगवान्‌में दृढ़ विश्वास होता है। जिन्होंने विश्वाससे लाभ उठाया है, वे इसकी महत्ता जानते हैं। उनके जीवनको देखकर, उनका अनुकरण करके एवं उनके साथमें रहकर हम बहुत लाभ उठा सकते हैं। किंतु हमारा मन इसके लिये तैयार नहीं है, यह तो संसार एवं विषयभोगोंके लिये तैनात बैठा है, तब यह इनको छोड़कर भगवान्‌के लिये कैसे तैयार हो? यह तैयार होता है भगवान्‌के सतत भजनसे। भगवान्‌में अटल विश्वास होनेसे भजन होता है। अटल विश्वास और सतत भजन—इन दोनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भजनसे भगवान्‌में विश्वास दृढ़ होता है एवं विश्वाससे भजनमें तीव्रता आती है। इससे भजन बढ़ता है, दृढ़ होता है एवं मूल्यवान् बनता है।

विश्वासका स्वरूप क्या है?—जो किसी अवस्थामें हिलानेपर भी नहीं हिले, पक्का एवं दृढ़ निश्चयी हो। किंतु जो विश्वास नरकोंके डरसे, किसी प्रकारके भयसे, अर्थके लोभसे अथवा किसी प्रकारके प्रलोभनसे हिल जाय वह विश्वास नहीं है। किसीने तुलसीदासजीसे कहा कि आपके राम तो १२ कलावाले ही थे, किंतु भगवान् कृष्ण तो १६ कलाओंसे युक्त थे। यह क्या बात है? आपके रामजीमें कमी कैसे? तुलसीदासजीने आश्चर्यसे कहा—भगवान् राम १२ कलाओंसे युक्त थे यह तो मुझे आज ही पता चला, वे मेरे लिये बहुत ही सर्वोच्च एवं समादरणीय हैं। तुलसीदासजीने इसपर ध्यान ही नहीं दिया, क्योंकि वे तो केवल अपने रामजीमें महत्ता ही देखते थे। कमी कभी देखते ही नहीं थे। कहनेका मतलब यह है कि उनके विश्वासमें किसी तरहकी कमी नहीं आयी। विश्वाससे निष्ठा होती है। इससे भी भजनमें तीव्रता होती है। भजन करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। हमारेमें विश्वास नहीं होता, इसका खास कारण यही है कि हमारे अन्तःकरणमें मलराशि जमी हुई है; यह मलराशि ही हमारे विश्वासको विकसित नहीं होने देती। इसीके कारण मन भगवान्‌में नहीं लगता, इस कूड़ेको जलानेके लिये भगवान्‌का भजन आग है, इस आगके प्रज्वलित होते ही मलरूपी कूड़ा क्षणभरमें ही जलकर भस्म हो जाता है। इस भजनकी आगसे 'मन' पवित्र एवं शान्त होगा और इसके शान्त होते ही भजन अपने-आप ही होने लग जायगा।

इस प्रकार भजनसे विश्वास एवं विश्वाससे भजन होता है, दोनों सहोदर भाई हैं। भजनसे निष्ठा होगी एवं निष्ठासे भगवान्‌की साक्षात् प्राप्ति हो जायगी। इससे ज्यादा प्राप्य वस्तु कोई भी नहीं है। यह सोचना कि 'इसके अनुष्ठानसे मुझे यह फल मिलेगा'—इस प्रकारसे फलका अनुसंधान ठीक नहीं है, यह वृत्तिमें चञ्चलता पैदा करता है, इस कारण मन साधनमें नहीं लगता।

हमें यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि साधनकी अन्तिम सिद्धि प्राप्त करके ही रहना है एवं इष्टके पादारविन्दोंमें दृढ़ एवं सच्चा अनुराग पैदा करना है। यह कैसे होगा, क्यों होगा, क्या होगा—ये मनकी कल्पनाएँ उत्पन्न होनी ही नहीं चाहिये, नहीं तो सिद्धि प्राप्त होनी असम्भव ही नहीं दुष्प्राप्य है। फलानुसंधान साधनमें दृढ़ता उत्पन्न होने नहीं देता, इसलिये साधनमें फलानुसंधानका लोप कर देना चाहिये। इस प्रकार क्रमशः पहले विश्वासको दृढ़ रखना चाहिये। फलतः निष्ठाकी जागृति होगी। निष्ठासे भजनमें तेजी एवं अधिकाधिक उत्कण्ठा पैदा होने लग जायगी। अन्तमें यह भजन हमें प्राप्य स्थान एवं लक्ष्य स्थानपर ले जायगा, अर्थात् भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी।

प्रश्न—किस नामका जप, ध्यान एवं पूजा आदि करें?

उत्तर—सत्य तत्त्वको भगवान् कहो या ब्रह्म जो कुछ भी कहो आखिरकार मूलमें वस्तु एक ही हैं। सत्य तत्त्व भगवान् तो एक ही हैं। इस एकको पानेके लिये भिन्न-भिन्न रास्ते, भिन्न-भिन्न रुचियाँ एवं भिन्न-भिन्न भावनाएँ हैं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित बात है कि साधनमें प्रारब्ध, वर्ण एवं आश्रमके अनुसार भेद होना ही है। यह सिद्धान्तकी बात है कि साधनकी अनेकता हो सकती है, किंतु साध्यकी तो एकता ही रहती है। सबको आना है, तो अपनी-अपनी दिशासे ही आना पड़ेगा। यह नहीं कि एक ही दिशासे सब आयें। जैसे किसीको स्वर्गाश्रम आना है तो कोई बम्बईसे आयेगा, कोई पंजाबसे एवं कोई कलकत्तेसे आयेगा। सब एक ही मार्गसे आयें, यह सम्भव नहीं। एक भगवान्‌को मानकर अपनी निष्ठा एवं रुचिके अनुसार भगवान्‌की उपासना करनी चाहिये। उग्र स्वभाववालेको यह शिक्षा दी जाय कि तुम मधुर-मधुर मुरली बजानेवाले गोपियोंके श्यामसुन्दरकी उपासना करो तो उससे कभी भी उस मधुर मूर्तिकी उपासना नहीं होगी। उसे रणाङ्गणमें सुसज्जित भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करायें तो सुगमतासे उसका ध्यान लग जायगा। तो सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है, उसके अनुसार ही वह भगवान्‌की उपासना या ध्यान कर सकता है। रुचिके प्रतिकूल उससे नहीं होगा। मैंने पहले एक सज्जनको देखा था, उनका स्वभाव तेज था। उनको किसी पंडितने सरस्वतीकी पूजाके लिये कहा। उन्होंने बहुत चेष्टा की सरस्वतीका ध्यान लगानेके लिये, किंतु अन्ततक उनका ध्यान सरस्वतीमें नहीं लग सका। उनकी जाँच की गयी कि क्या बात है, इनका ध्यान सरस्वतीमें क्यों नहीं लगता? जाँच करनेपर उनका स्वभाव उग्र पाया गया, तब उनको भगवती छिन्नमस्ता देवीका यह ध्यान बतलाया गया कि 'देवी छिन्नमस्ताके हाथमें खप्पर है और एक हाथमें मस्तक, उसमेंसे रक्त गिर रहा है, उस रक्तको महारानी छिन्नमस्ता पान कर रही हैं।' छिन्नमस्ता और सरस्वती देवी दोनों एक ही हैं, किंतु उनका उग्र स्वभाव नहीं बतलाया गया, इसीसे उनका ध्यान नहीं लगा, अब उनका ध्यान उनमें स्वत: ही बड़ी सुगमतासे लग गया, कोई भी कठिनाई महसूस नहीं हुई।

साधन एवं स्थिति दोनों भिन्न-भिन्न हैं, चाहे विष्णुका ध्यान हो चाहे शंकरका, चाहे रामका हो या श्यामका अथवा दुर्गाका, जिसका मन जहाँ लगे, जिसमें जिसको सुविधा हो, वही रूप उसके लिये सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ है। जिस स्वरूपमें स्वत: ही रुचि उत्पन्न हो जाय, उसी स्वरूपका ध्यान उसके लिये उचित है। हाँ, एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये, अपने स्वरूप और अपने इष्टदेवमें अनन्यता रहे, उसमें सर्वोच्च-बुद्धि रखे। राघवेन्द्रके साधक मानें कि राघवेन्द्र ही सर्वोपरि, सर्वाधार, सर्वसमर्थ एवं सर्वशक्तिमान् भगवान् हैं। यह समझना चाहिये कि जो लोग भगवान् शङ्करके उपासक हैं अथवा सूर्य, गणेश, देवी एवं धर्मके उपासक हैं, वे हमारे राघवेन्द्रके ही उपासक हैं, राघवेन्द्र ही उनके द्वारा पूजे जाते हैं, केवल नामोंमें भिन्नता है। सूर्य, शङ्कर, गणेश एवं धर्म आदि हमारे राघवेन्द्रके ही स्वरूप हैं।

इस प्रकार फिर राघवेन्द्रमें ही अनन्यता हो जाती है। यदि हम उनको अलग-अलग स्वरूपवाले मानें, उनकी तुलना करें कि मेरे इष्टदेव उनसे श्रेष्ठ हैं, तो यह अपने इष्टदेवका अपमान करना है। ऐसी धारणा गलत एवं भ्रान्त है, इसे अपने हृदयसे निकाल देना चाहिये। इसी प्रकार यदि हम अलग-अलग मानें तो भगवान् भी एक नहीं रहे, उनकी भी भिन्न-भिन्न सत्ता हो गयी। जबतक एक मानते हैं तभीतक भगवान् हैं, अनेककी कल्पना करते ही भगवान्‌की सत्ता अपनी दृष्टिमें उठ जायगी। अत: उनका एक ही स्वरूप मानना चाहिये। उनके रूप एवं लीला सब नित्य हैं। वे तो नित्य हैं ही। जो पूर्ण है, उसके लिये शब्दावलीद्वारा विवेचन नहीं किया जा सकता। वे सबसे परे हैं। बुद्धि उनको अपने तुच्छ ज्ञानद्वारा सोचती है, किंतु वे बुद्धिसे परे हैं। इसलिये वे सोचनेमें नहीं आते। किंतु हम विचार करते हैं कि हमने उनको सोच लिया, इसी अज्ञान एवं अविद्याद्वारा वे हमें दुर्लभ हो रहे हैं। हम यदि भगवान्‌को अपनी बुद्धिमें लायें तब तो वे बुद्धिजन्य भगवान् हो गये। वे बुद्धिसे अप्रसूत हैं, गीताकी भाषामें उनको समग्र ब्रह्म कहा गया है। वे ही कृष्ण हैं, वे ही शङ्कर हैं। लोग उनके कितने ही नाम-रूप मानते हैं, किंतु वे एकके ही अनेक नाम-रूप हैं, मूल तत्त्व तो एक ही है, यह समझमें आनेसे ज्ञान होगा। यह मानना चाहिये कि वे एक भगवान् ही अनेक रूपोंमें पूजित होते हैं। एक बार तुलसीदासजी वृन्दावन गये, उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहके सामने कहा—

'कहा कहौं छबि आजु की भले बने हो नाथ'

प्रभो! आपकी आजकी छबिके लिये मैं क्या कहूँ, कौन-सी उपमा दूँ। आज तो आपने विचित्र ही रूप धारण कर लिया है। यह उनकी अनन्यताका परिचायक है। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखिये आगे क्या कह रहे हैं—

तुलसी मस्तक तब नवे, जब धनुष बाण हो हाथ॥

नाथ! आपने बड़ा बढ़िया स्वाँग रच रखा है, आपकी छबि मन-मोहिनी है, किंतु मुझे तो आपने ही कह रखा है कि धनुष और बाणधारीके सामने ही मस्तक नवाया करो, इसलिये मैं लाचार हूँ। आप धनुष-बाण धारण कीजिये, तब मैं आपको मस्तक नवाऊँगा।

अपने इष्टमें सर्वोच्च-बुद्धि होना ही भगवान्‌की अनन्य उपासना है। इसमें साम्प्रदायिकता नहीं होती। उनका नाम-रूप कैसा? जैसा रूप वैसा ही नाम। जिसे जो नाम अच्छा लगे, वही उसके लिये उपास्य है। सभी नाम भगवान्‌के हैं।

साधकको दो बातें ध्यानमें रखनी चाहिये—अपने इष्टमें और अपने साधनमें सर्वोच्च-बुद्धि रखे। पुराण आदि जिस-किसी भी शास्त्र-ग्रन्थोंमें देखिये सर्वत्र एक ही तत्त्वको लेकर उसकी स्तुति आदि की गयी है, नाम-रूप चाहे जो भी हो। जो विशेषण भगवान् विष्णुको दिये हैं, वे ही राम, श्याम एवं गणेश तथा दुर्गा आदि देवोंमें लगाये गये हैं। कोई भी रूप हो, उसको सर्वोच्च मानकर उसकी स्तुति-प्रार्थना की गयी है। 'निर्गुण नीचा है एवं सगुण साकार ऊँचा है'—यह भावना अगर मनमें आयेगी तो उस एक तत्त्वसे मन हट जायगा। अतः साधकको चाहिये कि वह एक निष्ठासे अग्रसर होता रहे तो फिर उस एक लक्ष्यपर वह स्वतः ही पहुँच जायगा।

नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥

(श्रीप्रेमप्रतापजी भारद्वाज)

श्रीसीतारामजीके गुणसमूहरूपी पवित्र वनमें विहार करनेवाले संतप्रवर श्रीतुलसीदासजीने संसाररूपी बन्धनसे छुड़ानेवाले श्रीरामचरित्रका गुणगानकर लोगोंके लिये कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर दिया। वास्तवमें रामचरितमानस भक्त और भगवान्‌के मधुर प्रेमालापका उच्चतम निदर्शक है। भक्तकी क्या इच्छा है, उसे किस बातकी चाहना है, वह भगवान्‌से क्या माँगता है, साथ ही हमें भी भगवान्‌से क्या माँगना चाहिये और भगवान्‌की हमपर कितनी अनन्त कृपा है, इसका इसमें पग-पगपर गोस्वामीजीने वर्णन किया है। और यही दिखाया है कि भक्तको चाहिये कि वह भगवान्‌से किसी लौकिक सुख-भोगकी कामना न कर उनके चरणकमलोंकी अखण्ड प्रीतिकी ही याचना करे। गोस्वामीजीने ग्रन्थके प्रारम्भमें ही प्रभु श्रीराम एवं कल्याणमयी जगज्जननी माता सीताकी प्रार्थना कर अपनी माँग उनके सामने प्रस्तुत कर दी—

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन॥

फिर क्या था, भक्तवत्सल महादानी नारायणने क्षीरसागर छोड़कर तुलसीके हृदयमें निवास कर लिया।

स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी महारानी शतरूपाजीने द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेमसहित जाप कर, *'नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम'* के साक्षात् दर्शन पाये और उन्हींको पुत्ररूपमें माँग लिया। प्रभु-कृपासे उन्हीं दम्पतिने दशरथ और कौसल्याके रूपमें भगवान् रामको अपने पुत्रके रूपमें पाया। अपना मनोरथ पूर्णकर दोनों प्रभुचरणोंमें लीन हो गये।

रामावतारमें प्रभु श्रीराम मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रके साथ जा रहे थे, मार्गमें श्रीरामके पवित्र और दोषनाशक चरणोंका स्पर्श पाते ही तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी, चरणोंमें लिपट गयी, अश्रुधारासे चरण धोये और माँग लिया—

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

अहल्याने मोक्ष नहीं माँगा, केवल चाहना की कि भगवन्! मेरा मनरूपी भौंरा आपके चरणकमलकी रजके प्रेमरूपी रसका सदा पान करता रहे और मनचाहा वर पाकर आनन्दमें भरी हुई वह पतिलोक चली गयी।

महर्षि विश्वामित्रजीकी कृपासे प्रभु श्रीरामने धनुषभंग कर राजा जनक और सीतामाताका संताप दूर किया और जब बारात बिदा होने लगी तो विदेहराज जनकजीने श्रीरघुनाथजीके समक्ष माँग रख दी—

बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥

मैं बार-बार हाथ जोड़कर माँगता हूँ कि मेरा मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूलकर भी आपके चरणोंको न छोड़े।

भक्त केवटके प्रेममें भरे वचनोंमें प्रभुपदरजकी अनोखी प्रीति झलकती है।

केवट भगवान्से अपनी प्रेमासिक्त माँग रखते हुए कह पड़ा—

'मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥'

हे प्रभु! यदि आप अवश्य ही पार जाना चाहते हों तो मुझे पहिले अपने चरण-कमल पखारनेके लिये कह दें। भक्त अपनी माँग मनवानेके लिये लालच भी देता है— मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता और धौंस भी देता है प्रभुको—

बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

केवटके प्रेमके वशीभूत भगवान् केवटसे कहते हैं—

बेगि आनु जल पाय पखारू । होत बिलंबु उतारहि पारू॥

भक्त केवट *'अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥'* चरणोंको धोकर और सारे परिवारसहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले अपने पितरोंको भवसागरसे पार कर फिर आनन्दपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्रको गङ्गाजीके पार ले गया।

आगे चलकर चित्रकूटमें प्रभु रामका मिलन होता है एक ऐसे भक्तसे, जिसके आगे रघुनाथजी भी अपने-आपको सँभाल नहीं सके। वे हैं भरतजी, जिनके लिये देवताओंने भी कहा—

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

यह एक ऐसा अनुपम भक्त है जो प्रभु रामसे अवलम्बन माँगता है, जिसकी सेवा करके अवधि (१४ वर्ष) बिता दे। श्रीरामके हर प्रकारसे समझानेपर भी भरतके मनमें संतोष नहीं हुआ तो—

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

और भक्तने *'सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि'*— प्रभुकी चरण-पादुकाओंको सिंहासनपर विराजितकर १४ वर्ष निर्विघ्न बिता दिये। अन्तमें प्रभु-आगमनपर भरतजीने प्रभुके चरण पकड़ लिये। पृथ्वीपर पड़े हैं, उठाये नहीं उठते; तब कृपासिन्धु श्रीरामने उन्हें बरबस उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर—

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥

कमलके समान नेत्रोंसे जल बह रहा है। और कृपानिधान भरतजीसे कुशल पूछते हैं। भगवान्का बड़ा ही कोमल, मृदुल, सरल, सरस, मधुर और मनोहर स्वभाव है। वास्तवमें उनके समान वे ही हैं। उनके समान अहैतुक दयालु, निःस्वार्थ प्रेमी, सुहृद्, शरणागतवत्सल, दीनबन्धु, पतितपावन दूसरा कोई नहीं है।

वन-प्रवासमें श्रीरामकी भेंट होती है ऋषि-मुनियोंसे, जिन्होंने अपनी-अपनी प्रार्थनाएँ प्रस्तुत कीं और प्रभुने उनकी इच्छाएँ पूर्ण कीं। महामुनि अत्रिने प्रभु-मिलनपर माँग प्रस्तुत की—

'चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि।'

हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके चरणकमलोंको कभी न छोड़े।

मुनिश्रेष्ठ शरभंगजीने तो शरणागत-हितकारी, करुणाकन्दके दर्शन कर प्रार्थना की—

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥

हे नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले सगुणरूप श्रीरामजी! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित (आप) निरन्तर मेरे हृदयमें निवास कीजिये।

मुनि सुतीक्ष्णजीको जब प्रभु रामके दर्शन हुए तो उन्होंने भी ऐसी ही माँग पेश की—

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

महर्षि अगस्त्यजीने भगवान्से निवेदन किया—

यह बर मागउँ कृपानिकेता । बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥

प्रभु रामके विविध भक्तोंमें एक ऐसा भक्त भी है जो हठपूर्वक वैर-भक्ति करके भगवद्धाम प्राप्त करता है। बहिन शूर्पणखासे समाचार मिलनेपर रावण विचार करता है—

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

दशानन जानता है कि इस तामस-शरीरसे भजन तो होगा नहीं, अतएव वह मन, वचन और कर्मसे वैर बढ़ानेका निश्चय करता है और अन्तमें प्रभुमें लीन हो जाता है। संत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदासजी महाराज लिखते हैं—'*तासु तेज समान प्रभु आनन।*'—मरते समय रावणका तेज प्रभु रामके मुखमें समा गया—

यह था रावणकी भक्तिका विचित्र रूप।

रावणद्वारा सीताहरण रोकनेके प्रयासमें गीधराज जटायु घायल होकर प्रभु श्रीरामके आगमनपर उन्हें बताते हैं कि रावण सीताका हरण करके दक्षिण दिशामें गया है। तब भगवान् राम उन्हें 'तात' कहकर शरीर बनाये रखनेका अनुरोध करते हैं, परंतु जटायु प्रभु-वन्दना करते हुए अखण्ड भक्तिका वर माँगकर परम धाम सिधारते हैं—

सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥
अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

भक्तवत्सल रामने अपने हाथों उनका क्रिया-कर्म कर उन्हें हरिधाम दिया। वे भक्तोंकी हर इच्छाकी पूर्ति करते हैं। अपने चरणोंमें प्रीति देखकर प्रभुने कबंध-जैसे ब्रह्मद्रोही राक्षसको भी गति दी।

प्रभु राम भक्तोंको भूलते नहीं, मुनि-आश्रमोंमें न पधारकर शबरीके आश्रममें पधारते हैं—शबरीकी अविरल भक्तिके वशीभूत होकर, नवधा भक्तिका उपदेश देकर उसे हरिपदमें लीन कर देते हैं—

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख, हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥

पम्पासरोवरपर भगवान् रामको विरहयुक्त देखकर मुनि नारद अपने शापको यादकर, दु:खी होते हैं—आकर प्रभुका गुणगान करते हैं और माँगते हैं—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥

और प्रभु राम उन्हें एवमस्तु (ऐसा ही हो) कहकर कृतार्थ करते हैं।

ऋष्यमूक पर्वतकी तलहटीमें ब्राह्मण-रूपमें परमभक्त हनुमान् प्रभु-चरणोंमें लिपट जाते हैं—पुलकित शरीरसे प्रार्थना करते हैं—'हे नाथ! मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामीके और पुत्र माताके भरोसे निश्चिन्त रहता है। प्रभुको सेवकका पालन-पोषण करना ही पड़ता है।' '*अस कहि परेउ चरन अकुलाई।*' और रामको मिलता है भक्त नहीं सेवक, इसलिये—

तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

प्रभु श्रीराम सेवकको उठाकर हृदयसे लगा लेते हैं और अपने अश्रुजलसे उसे शीतल करते हैं। भगवान्‌का कहना है—'मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है, मुझे छोड़कर उसका दूसरा कोई सहारा नहीं होता।'

सेवक हनुमान्‌द्वारा सुग्रीवसे मित्रता करानेपर प्रभु राम मित्रके सहायतार्थ वानरराज बालिका वध करते हैं। परंतु उसकी नम्रता देखकर प्रभु उसे शरीर रखनेका अनुरोध करते हैं। बालि इस नश्वर शरीरके बदले माँग लेता है—

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥

बालि जानता है कि कर्मवश कई योनियोंमें जाना होगा, अत: हर योनिमें रामपदमें अनुराग माँगता है—मुक्ति नहीं भक्ति माँगी, जो अन्तमें हरिपदमें लीन कर देती है।

भक्तप्रवर हनुमान्‌के सत्प्रयत्नसे प्रभु रामको एक और अनन्य भक्त मिलता है—

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥

यहाँ भक्त अपने-आपको '*सहज पापप्रिय तामस देहा*' कहकर रावणका भाई होना बताता है और शरणागति चाहता है, यह कहकर—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

भक्तवत्सल राम उठा लेते हैं भक्त विभीषणको और 'लंकेश' कहकर सब कुछ देते हैं—अपनी भक्ति तथा वही सम्पत्ति जो शिवजीने रावणको दस सिरकी बलि देनेपर दी थी—'*निज जन जानि ताहि अपनावा॥*'

रावण-वधके बाद ब्रह्माजी स्तुतिकर भगवान् रामसे कहते हैं—

'हे दीनदयालु! मेरी उस विभेद करनेवाली बुद्धिको हर लीजिये। हे महाराज! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके चरण-कमलोंमें सदा मेरा अनन्य प्रेम रहे'—

नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥

परंतु सुरराज इन्द्रकी माँग अलग है, वे कहते हैं कि मुझे तो आपका यह सगुण कोसलराजस्वरूप ही प्रिय लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रभो! आप श्रीजानकीजी तथा छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयको अपना घर बनाइये। हे रमानिवास! मुझे अपना दास जानकर अपनी भक्ति दीजिये—

बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत॥
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमा निवास॥

तभी सुअवसर जानकर सुजान शंकरजीने भी पुलकित-शरीर एवं गद्‌गद-वाणीसे प्रभु रामका गुणगान किया तथा माँग प्रस्तुत की—

अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर॥

त्रिभुवनके स्वामी राजा रामको अयोध्याके राजसिंहासनपर विराजित देखकर चारों वेद प्रभुका गुणगानकर वर माँगते हैं कि हम मन, वचन और कर्मसे विकारोंको त्यागकर आपके चरणोंमें ही प्रेम करें—

करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

वेदोंके अन्तर्धान होते ही आशुतोष शिवजी अयोध्यामें प्रभुके दर्शनकर गद्‌गद-वाणीसे स्तुति करते हैं—'हे राम! हे रमारमण! हे जन्म-मरणके संतापका नाश करनेवाले! आपकी जय हो; हे अवधपति! मुझे आप अपनी अनपायिनी भक्ति और सत्संग दीजिये'—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

इस माँगमें एक नयी दिशा है—शंकरजी अचल भक्तिके साथ-साथ भक्तोंका सत्संग भी माँगते हैं—इसलिये कि भक्ति तभी रंग लाती है, जब उसे भक्तोंका सत्संग प्राप्त होता है।

अवधनरेश होनेके बाद प्रभु रामकी नर-लीला प्रारम्भ होती है।

ऐसे ही समयमें एकान्त पाकर सनकादि मुनि आये, प्रेमविह्वल होकर उन्होंने प्रभुकी प्रार्थना की और अविचल प्रेमाभक्ति माँगी—

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

श्रीरामके अनन्य भक्त काकभुशुण्डि भी उनके शिशु-चरित्र देखते-देखते मायाके वशीभूत हो गये, उनकी प्रभुताका स्मरणकर शरीरकी सुध-बुध भूल गये, पुकारा—हे आर्तजनोंके रक्षक! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये—

धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥

भगवान् भक्तकी इस अवस्थासे द्रवीभूत हो जाते हैं और कह उठते हैं—

काकभसुंडि माँगु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥
ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥

राम सब देनेको उत्सुक हैं, जो मनको भावे माँग ले—पर सच्चे भक्तको तो केवल भक्ति चाहिये और काकभुशुण्डि माँगते हैं—

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥
भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥

और भक्तको भगवान्‌ने भक्तिके साथ-साथ सर्वगुण-सम्पन्न कर दिया। अपना निज सिद्धान्त बताया—

'मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥'

अजर-अमर कर दिया भक्तको यह कहकर—

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥

रामकथाकी पूर्णाहुतिपर संतप्रवर तुलसीने भी प्रभु रामसे कुछ माँगकर अमरता प्राप्त की—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

विचित्र लीला है भक्त और भगवान्‌की। पाया सबने, किसीने प्रेमसे, किसीने भक्तिसे, किसीने वैरसे। आइये, मोह और भ्रमको त्यागकर, सांसारिक भोग-सुखको छोड़कर प्रभु रामकी भक्तिमें लीन हो जायँ, इसीमें कल्याण है। संत तुलसीदासजीने भी कहा है—

नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत, सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी, राम पद अनुरागहू॥

हे मनुष्यो! अनेकों प्रकारके कर्म, अधर्म और बहुतसे मत—ये सब शोकप्रद हैं—इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो। क्योंकि—

तुलसी सीताराम कहु, दृढ़ राखहु बिस्वास।
कबहूँ बिगरे ना सुने रामचंद्र के दास॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिमें प्रेमतत्त्व

(श्रीमदनगोपालजी शर्मा)

भक्तिका तात्पर्य उस भावसे है जो अपने आराध्यके प्रति पूर्णतः समर्पित हो। भगवान्‌के प्रति समर्पित प्रेम भी अपने-आपमें भक्ति ही है। सही मानेमें प्रेमके बिना भक्तिकी एक सीढ़ी भी चढ़ना मुश्किल है। भक्तिके क्षेत्रमें प्रेम अपरिहार्य है। यहाँ प्रेमके बिना कुछ नहीं होता। प्रेम जितना सबल होगा, भक्ति भी उतनी सबल होगी और भक्तको उतने अधिक माधुर्य एवं आनन्दकी अनुभूति होगी।

भक्तिके लिये मनमें प्रीति होनी चाहिये, नीरस मन कुछ पानेका प्रयास करे भी तो रीता ही रह जाता है, साधना करनेपर भी उसके हाथ कुछ नहीं आता, उलटे भटकन ही बढ़ती है। भक्तका प्रेम भव्य और दिव्य होता है, वह उस अनिर्वचनीय प्रेममें ही हर समय आकण्ठ निमग्न रहता है, उसे किसी औरकी ओर ध्यान देनेका समय ही नहीं रहता, उसकी स्थिति उन प्रेम-दीवानी गोपियों-जैसी हो जाती है, जिनके मनमें केवल श्यामसुन्दर बसे रहते हैं। उनके मनमें तो प्रियतम श्रीकृष्णकी वंशीका दिव्य संगीत गूँजता रहता है। वह मन किसी निराकारकी जटिल बातको कैसे और क्यों समझेगा!

प्रेमका भक्तिसे अत्यन्त अन्तरङ्ग सम्बन्ध है, इसीलिये दोनोंके समन्वयसे विकसित प्रेमाभक्ति ईश्वर-प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। इसमें भटकावका कोई स्थान नहीं है तथा भक्त थोड़े ही प्रयासोंसे अपने आराध्यकी कृपा पानेका अधिकारी हो जाता है।

प्रेममें पवित्रता है, परिपूर्णता है। प्रेम आनन्दकी उत्ताल तरंगोंवाला अथाह सागर है। भक्तिका सार है। भगवान्‌को भी भक्त प्रिय हैं, क्योंकि वे भक्तोंसे प्रेम करते हैं। भगवान् भक्तके प्रेममें बँधे चले आते हैं, वे कहते हैं—'मैं तो भक्तोंके प्रेमके अधीन हूँ।' प्रेमका साम्राज्य अपने-आपमें अलग है। प्रेमकी चरम स्थिति पा लेनेपर न कोई सेवक रहता है और न कोई स्वामी; सब एकाकार हो जाता है। भगवान् और भक्त दोनों एक-दूसरेके इशारेपर नाचते हैं, दोनों ही एक-दूसरेकी प्रेम-डोरमें बँधे हैं, भला नाचेंगे क्यों नहीं? यदि भक्तके हृदयमें प्रेम नहीं है, अनुराग नहीं है, मधुरता नहीं है तो वह इस क्षेत्रमें आगे बढ़ नहीं सकता, अपने आराध्यका मधुर भाव ही—सेवा ही प्रेमाभक्ति है। भक्त भगवान्‌का संकीर्तन करते हैं, भगवान्‌की लीलाओंका गान करते हैं, लीलाओंको तल्लीनतासे देखते हैं—इन सबमें उन्हें अपार तृप्ति मिलती है, आनन्दकी प्राप्ति होती है। भक्त सब कुछ भगवान्‌के लिये कर रहा है, उसका सब कुछ भगवान्‌को समर्पित है, उसका अपना कुछ नहीं है, वह केवल निश्चल-भावसे अपने आराध्यके प्रति प्रेमकी लौ लगाये हुए है।

आराध्यके प्रति निरन्तर वर्धमान प्रीतिकी इच्छा ही प्रेम है, भक्त प्रेम-दीवाना होकर रस-साधनाकी ओर अग्रसर होता है और आराध्यकी अनन्त सौन्दर्य-मण्डित छबिपर मुग्ध हो जाता है। यह चिन्मय सौन्दर्य उसे प्रेमानन्दसे आकण्ठ पूरित कर देता है और तब प्रेमी भक्तके हृदयमें उनके प्रिय आराध्य आ विराजते हैं और आराध्यके हृदयमें भक्तको आनन्दमय स्थान मिल जाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्यकी स्वाभाविक गति विषयमुखी है और विषयमुखी मानवका भक्तिकी ओर जाना मुश्किल कार्य है। यह ठीक है कि मानव विषयमुखी है, पर उसकी इस प्रवृत्तिको मोड़ा जा सकता है। विषयोन्मुख व्यक्ति यदि सम्पूर्ण निष्ठाके साथ कुछ दिन सत्संगतिमें रहे और भजनोन्मुख हो जाय तो निश्चितरूपसे ईश्वरके प्रति उसमें प्रेम जाग्रत् हो जायगा। यदि एक बार वह अपने आराध्यके प्रति आकर्षित हो गया तो फिर वापस पिछले रास्तेपर कभी नहीं लौटेगा; क्योंकि दिव्य प्रेममें प्रबल शक्ति होती है, उसका आकर्षण चुम्बकीय होता है, जिसे एक बार पकड़ लेता है, उसे फिर कभी छोड़ता नहीं। प्रभुके इसी प्रेमसे लौ लग जाय तो फिर समझना चाहिये कि बेड़ा पार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

सब जग ईश्वररूप है

(वासुदेवः सर्वम्)

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीताका सर्वोपरि सिद्धान्त है—'**वासुदेवः सर्वम्**' अर्थात् सब कुछ भगवान् ही हैं। संसारके विषयमें दार्शनिकोंके अनेक मतभेद हैं। कोई अजातवाद मानता है, कोई दृष्टिसृष्टिवाद मानता है, कोई विवर्तवाद मानता है, कोई परिणामवाद मानता है, कोई आरम्भवाद मानता है, पर गीता कोई वाद न मानकर '**वासुदेवः सर्वम्**' को ही मुख्य मानती है। '**वासुदेवः सर्वम्**' में सभी वाद, मत समाप्त हो जाते हैं। कारण कि जबतक अहम्‌की सूक्ष्म गंध रहती है, तभीतक दार्शनिकोंमें और दर्शनोंमें मतभेद रहता है, जबकि '**वासुदेवः सर्वम्**'में अहम्‌की सूक्ष्म गंध भी नहीं रहती। इसलिये महात्मा तो सभी दार्शनिक हो सकते हैं, पर '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव करनेवाला महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होता है। भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

'बहुत जन्मोंके अन्तमें अर्थात् मनुष्यजन्ममें 'सब कुछ वासुदेव ही है'—ऐसा जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, ध्यानयोगी, लययोगी, हठयोगी, राजयोगी, मन्त्रयोगी, अनासक्तयोगी आदि कई तरहके योगी हैं, जो अपने योगमें सिद्ध हो गये हैं, मुक्त हो गये हैं, पर उनको भगवान्‌ने दुर्लभ नहीं बताया है, प्रत्युत 'सब कुछ वासुदेव ही है'—इसका अनुभव करनेवाले महात्माको ही दुर्लभ बताया है। परंतु अपने लिये भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे पार्थ! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

तात्पर्य है कि भगवान् '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव करनेवाले महात्माको तो दुर्लभ बताते हैं, पर अपनेको सुलभ बताते हैं। इसलिये एक संतने कहा है—

हरि दुरलभ नहिं जगत में, हरिजन दुरलभ होय।
हरि हेर्‌याँ सब जग मिलै, हरिजन कहिं एक होय॥

संसारमें भगवान् दुर्लभ नहीं हैं, प्रत्युत महात्मा दुर्लभ है। ऐसा कोई देश, काल, वस्तु, क्रिया, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति, घटना नहीं है, जिसमें भगवान् परिपूर्ण न हों। भगवान् तो सब जगह हैं, पर भगवान्‌का प्यारा भक्त सब जगह नहीं होता। इसलिये कहा है—

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
हरि रीझै जग देत हैं, हरिजन हरि ही देत॥

भगवान् प्रसन्न होते हैं तो जीवको मानव-शरीर देते हैं। उस मानव-शरीरसे नरक, स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त कर सकता है; ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको भी प्राप्त कर सकता है*; और चौरासी लाख योनियोंको भी प्राप्त कर सकता है। परंतु भगवान्‌के भक्त नरक, स्वर्ग आदि नहीं देते, प्रत्युत भगवान्‌को ही देते हैं! ऐसे भक्तका स्वरूप गीता बताती है कि वह '**वासुदेवः सर्वम्**'—इस ज्ञानवाला होता है।

जैसे, आमका बगीचा होता है। उसमें बिना ऋतुके आमका एक फल भी नहीं होता, तो भी वह बगीचा आमका ही कहलाता है। अमरूदके बगीचेमें एक भी अमरूद देखनेमें नहीं आता, तो भी वह बगीचा अमरूदका ही कहलाता है। गेहूँकी खेतीमें एक दाना भी गेहूँका नहीं मिलता, तो भी वह खेती गेहूँकी ही कहलाती है। कारण यह है कि पहले आमके बीज बोये गये, फिर उनसे वृक्ष हुए और अन्तमें उनमें आमके फल (बीज) आयेंगे, इसलिये बीचमें भी वह बगीचा आमका कहलाता है। आरम्भमें अमरूदके बीज बोये गये और अन्तमें भी वृक्षोंपर

* नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥ (मानस, उ० १२१। ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरूदके फल (बीज) आयेंगे, इसलिये बीचमें भी वह बगीचा अमरूदका कहलाता है। पहले गेहूँ बोया गया, अन्तमें भी गेहूँ ही आयेंगे, इसलिये बीचमें भी वह खेती गेहूँकी कहलाती है। भगवान्‌ने गीतामें अपनेको संसारका सनातन और अव्यय बीज बताया है—

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्॥ (७।१०)

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ (९।१८)

भगवान् कहते हैं—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

(गीता १४।४)

'हे कौन्तेय! सम्पूर्ण योनियोंमें प्राणियोंके जितने शरीर पैदा होते हैं, उन सब (व्यष्टि शरीरोंकी) मूल प्रकृति तो माता है और मैं बीज-स्थापन करनेवाला पिता हूँ।' सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्तिके चार खानि अर्थात् स्थान हैं—(१) जरायुज—जेरके साथ पैदा होनेवाले मनुष्य, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता आदि, (२) अण्डज—अण्डेसे पैदा होनेवाले पक्षी, साँप, गिलहरी, छिपकली आदि, (३) उद्भिज्ज—पृथ्वीका भेदन करके ऊपरकी तरफ निकलनेवाले वृक्ष, लता, दूब, घास, अनाज आदि, और (४) स्वेदज—पसीनेसे पैदा होनेवाले जूँ, लीख आदि। इन चार स्थानोंसे चौरासी लाख योनियाँ पैदा होती हैं। इन योनियोंमें दो तरहके जीव होते हैं—स्थावर और जंगम। वृक्ष, लता, दूब, घास आदि एक ही जगह रहनेवाले जीव 'स्थावर' हैं और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चलने-फिरनेवाले जीव 'जंगम' हैं। इन जीवोंमें भी कोई जलमें रहनेवाले हैं, कोई आकाशमें रहनेवाले हैं और कोई भूमिपर रहनेवाले हैं—

जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥

(मानस, बाल० ३।२)

इन चौरासी लाख योनियोंके सिवाय देवता, पितर, गन्धर्व, भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, बालग्रह आदि भी कई योनियाँ हैं। इन सम्पूर्ण योनियोंके बीज भगवान् हैं—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(गीता १०।३९)

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियोंका जो बीज है, वह बीज मैं ही हूँ। कारण कि मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।'

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः॥

(श्रीमद्भा० १।३।५)

'यही भगवान् नारायण अनेक अवतारोंके अव्यय बीज हैं। इनके छोटे-से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी सृष्टि होती है।'

अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त जीव हैं, पर सभीका एक ही बीज है! तात्पर्य यह हुआ कि देखने, सुनने, चिन्तन करने आदिमें जो आता है, वह सब भगवान् ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'। संसारके आदिमें भी भगवान् थे और अन्तमें भी भगवान् रहेंगे, फिर बीचमें दूसरी चीज कहाँसे आयी? भगवान् कहते हैं—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० २।९।३२)

'सृष्टिके पूर्व भी मैं ही था, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था और सृष्टिके उत्पन्न होनेके बाद जो कुछ भी यह दृश्यवर्ग है, वह मैं ही हूँ। जो सत्, असत् और उससे परे है, वह सब मैं ही हूँ तथा सृष्टिके बाद भी मैं ही हूँ एवं इन सबका नाश हो जानेपर जो कुछ बाकी रहता है, वह भी मैं ही हूँ।'

अतः भगवान् ही संसाररूपसे दीखते हैं। जैसे गेहूँकी खेती बीचमें घासरूपसे दीखती है। यदि किसी अनजान आदमीको वह खेती दिखायी जाय और कहा जाय कि यह गेहूँ है तो वह कहेगा कि 'तुम ठगाई करते हो, मैंने गेहूँके सैकड़ों बोरे खरीदे और बेचे हैं। यह गेहूँ कैसे हो सकता है? यह तो घास है।' परंतु जानकार आदमीको वह घास न दीखकर गेहूँ ही दीखता है। ऐसे ही अनजान आदमी कहते हैं कि 'ये तो मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, पहाड़ आदि हैं, ये भगवान् कैसे हो सकते हैं? यह तो संसार है, भगवान् है ही कहाँ? किसीने देखा हो तो बताओ, कहाँ है ईश्वर?' परंतु जानकार आदमीको वह संसार न दीखकर भगवान् ही दीखते हैं। उसकी दृष्टिमें सब भगवान्-ही-भगवान् हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमके बगीचेमें आमकी गुठली ही वृक्ष बनती है और अन्तमें आमका फल शेष रहता है। फल तो खानेके काम आ जाता है; और अन्तमें आमकी गुठली ही शेष रहती है। बीचमें वृक्ष दीखता है तो यह गुठलीकी विकृति है। यदि विकृतिको देखें तो वृक्ष है और मूलको देखें तो गुठली है। ऐसे ही विकृतिको देखें तो संसार है* और मूलको देखें तो भगवान् हैं। विकृतिको देखना गलती है; क्योंकि अन्तमें विकृति तो रहेगी नहीं, मूल ही रहेगा। अतः विकृतिको न देखकर मूलको देखना परमात्मदृष्टि है। परमात्मदृष्टिसे परमात्मा-ही-परमात्मा दीखते हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

एक ही जल बर्फ, कोहरा, बादल, ओला, वर्षा, नदी, तालाब, समुद्र आदि अनेक रूपोंमें हो जाता है। कड़ाहीमें बर्फ डालकर उसको अग्निपर रखा जाय तो बर्फ पिघलकर पानी हो जायगी। फिर पानी भी भाप हो जायगा और भाप परमाणु होकर निराकार हो जायगा। जल ही कोहरारूपसे होता है, वही बादलरूपसे होता है, वही ओलारूपसे होता है, वही वर्षारूप होकर पृथ्वीपर बरसता है, वही नदीरूपसे होता है, वही समुद्ररूपसे होता है। अनेक रूपसे होनेपर भी तत्त्वसे जल एक ही रहता है। ऐसे ही भगवान् अनेक रूपसे बन जाते हैं। जैसे जल ठण्डकसे जमकर बर्फ हो जाता है और गरमीसे पिघलकर और भाप बनकर परमाणुरूप हो जाता है, ऐसे ही अज्ञानरूपी ठण्डक (जाड़े) से भगवान् स्थूल संसाररूपसे हो जाते हैं और ज्ञानरूपी अग्निसे सूक्ष्म होकर '**वासुदेवः सर्वम्**' रूपसे हो जाते हैं। जल चाहे बर्फरूपसे दीखे या भाप, बादल आदि रूपोंसे दीखे, है वह जल ही। जलके सिवाय कुछ नहीं है। ऐसे ही भगवान् चाहे संसाररूपसे दीखें या अन्य रूपोंसे दीखें, हैं वे भगवान् ही। हमारे और सूर्यके बीचमें कुछ नहीं दीखता, पर वहाँ भी परमाणुरूपसे जल भरा है। जल चाहे बर्फ-रूपमें होनेसे दीखे अथवा परमाणु-रूपमें होनेसे न दीखे, तो भी होता वह जल ही है। इसी तरह जो दीखता है, वे भी भगवान् हैं और जो नहीं दीखता, वे भी भगवान् हैं—'**त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्**' (गीता ११। ३७)। सब जगह भगवान्-ही-भगवान् हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

जैसे, हमें हरिद्वार याद आता है तो मनमें हरिकी पैड़ी दीखती है, उसमें लोग स्नान करते हुए दीखते हैं, गंगाजी बहती हुई दीखती हैं, गंगाजीमें मछलियाँ दीखती हैं, आदि-आदि। यह सब-का-सब मन ही बना हुआ है। मनसे हरिद्वारका चिन्तन छूटते ही कुछ नहीं रहता, केवल मन रहता है। ऐसे ही भगवान्ने संकल्प किया—'**बहु स्यां प्रजायेय**' तो भगवान् ही संसाररूपसे प्रकट हो गये और संकल्प छोड़नेपर संसार नहीं रहेगा, केवल भगवान् ही रहेंगे। अतः एक ही भगवान् अनेक रूपोंमें बने हुए हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

खाँड़के कई तरहके खिलौने होते हैं, पर उन सबमें खाँड़के सिवाय और कुछ नहीं होता। खाँड़की कोई छतरी बनी हुई है, कोई चिड़िया बनी हुई है, कोई मकान बना हुआ है, पर गलनेपर वे सब एक हो जाते हैं। सोनेके अनेक गहने बनते हैं। उनमें कोई पैरमें पहननेका होता है, कोई कमरमें पहननेका होता है, कोई नाकमें पहननेका होता है, कोई कानमें पहननेका होता है, कोई गलेमें पहननेका होता है, कोई हाथोंमें पहननेका होता है आदि-आदि। उन गहनोंके अलग-अलग नाम, रंग, आकृति, उपयोग, तौल, मूल्य होते हैं। परंतु उन सबमें एक सोनेके सिवाय अन्य कुछ नहीं होता। इसी तरह अनेक तरहकी सृष्टि दीखते हुए भी एक भगवान्के सिवाय कुछ नहीं है। तात्पर्य है कि जैसे जलसे बनी हुई चीज जल ही है, खाँड़से बनी हुई चीज खाँड़ ही है, सोनेसे बने हुए गहने सोना ही हैं, ऐसे ही भगवान्से बना हुआ सब संसार भगवान् ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

सब जग ईश्वर रूप है, भलो बुरो नहिं कोय।
जैसी जाकी भावना, तैसो ही फल होय॥

एक वैरागी बाबा थे। वे गणेशजीका पूजन किया करते थे। एक बार उनको रामेश्वरम् जाना था, पर पासमें पैसे नहीं थे। वे सुनारके पास गये और उससे बोले कि भैया! ये मेरे गणेशजी और उनका चूहा है, इनको लेकर तुम मुझे पैसे दे दो। सुनारने तौलकर बताया कि इतना मूल्य तो गणेशजीकी मूर्तिका है और इतना मूल्य चूहेकी मूर्तिका है।

* संसारको सत्ता और महत्ता देनेसे ही इसको विकृति कहा गया है। असत् संसाररूपसे सत्ता और महत्ता न दें तो यह चिन्मय भगवत्स्वरूप ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैरागी बाबा बोले कि 'क्या बात करते हो मूर्ख कहींके! चूहा तो वाहन है और गणेशजी उसके मालिक हैं, दोनोंका एक मूल्य कैसे हुआ?' सुनार बोला कि 'बाबाजी! मैं गणेशजी और चूहेकी बात नहीं कहता हूँ, मैं तो सोनेकी बात कहता हूँ।'

एकनाथजी महाराजने भागवत, एकादश स्कन्धकी टीकामें लिखा है कि एक सोनेसे बनी हुई विष्णु भगवान्‌की मूर्ति है और एक सोनेसे बनी हुई कुत्तेकी मूर्ति है। विष्णु भगवान् श्रेष्ठ एवं पूज्य हैं, कुत्ता नीच (अस्पृश्य) एवं अपूज्य है। परंतु तौलमें बराबर होनेके कारण दोनोंका बराबर मूल्य है*। बाहरी रूपको देखें तो दोनोंमें बड़ा भारी फर्क है, पर सोनेको देखें तो दोनोंमें कोई फर्क नहीं! इसी तरह संसारमें कोई महात्मा है, कोई दुरात्मा है; कोई सज्जन है, कोई दुष्ट है; कोई सदाचारी है, कोई दुराचारी है; कोई धर्मात्मा है, कोई पापी है; कोई विद्वान् है, कोई मूर्ख है—यह सब तो बाहरी दृष्टिसे है, पर तत्त्वसे देखें तो सब-के-सब एक भगवान् ही हैं। एक भगवान् ही अनेक रूपसे बने हुए हैं। जानकार आदमी उनको पहचान लेता है, दूसरा नहीं पहचान सकता। जैसे, आमके बगीचेमें वृक्ष खड़े हैं। उनमें एक भी आम नहीं है। परंतु जानकार आदमीकी दृष्टिमें वे सब आम हैं। वे उसको आमका ही बगीचा कहते हैं। ऐसे ही महात्माकी दृष्टिमें सब कुछ भगवान् ही हैं। तत्त्वज्ञ महात्माकी दृष्टि सम होती है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

'महात्मालोग विद्या-विनययुक्त ब्राह्मणमें और चाण्डालमें तथा गाय, हाथी एवं कुत्तेमें भी समरूप परमात्माको देखनेवाले होते हैं।'

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। १४)

'जो ब्राह्मण और चाण्डालमें, चोर और ब्राह्मण भक्तमें, सूर्य और चिनगारीमें तथा कृपालु और क्रूरमें समानदृष्टि रखता है, उसको महात्मा समझना चाहिये।'

ऐसे समरूप परमात्माको देखनेवाले महात्मा संसारको जीत लेते हैं—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

(गीता ५। १९)

'जिनका अन्तःकरण समतामें स्थित (राग-द्वेषसे रहित) है, उन्होंने इस जीवित-अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसारको जीत लिया है।'

उनमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि नहीं रहते। उनकी समबुद्धि स्वतः अटल बनी रहती है। जब एक भगवान्‌के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं, तो फिर कौन द्वेष करे और किससे करे?

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(मानस, उत्तर० ११२ ख)

प्रश्न—जब सब कुछ भगवान् ही हैं तो फिर जड़-चेतन, विनाशी-अविनाशीका भेद कहाँसे आ गया?

उत्तर—यह भेद मनुष्यसे आया है अर्थात् मनुष्यने ही इस भेदको पैदा किया है और वही इसको मिटा सकता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि इस जगत्‌को जीवने ही धारण किया है—'**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्**' (७। ५)। राग-द्वेषके कारण ही संसार नाशवान्, जड़ दीखता है। भीतरमें राग-द्वेष न हों, समता हो, तो संसार भगवत्स्वरूप ही दीखेगा।

वास्तवमें सब कुछ चिन्मय ही है, पर राग-द्वेषके कारण वह जड़, लौकिक दीखता है। राग-द्वेष न हों तो एक चिन्मय तत्त्व (भगवान्) के सिवाय कुछ है ही नहीं। जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, विनाशी-अविनाशी सब एक भगवान् ही हैं, भेद केवल राग-द्वेषके कारण है। राग-द्वेषका भी कारण मोह अथवा अज्ञान है—

'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला'

(मानस, उत्तर० १२१। १५)

मोह मिटनेसे 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—यह स्मृति प्राप्त हो जाती है—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा**' (गीता १८। ७३)।

* सुवर्णविष्णु सुवर्णश्वान। एक पूज्य एक हीन। विकूं जातां मोल समान। वंद्य निंद्य जाण आत्मत्वीं तैसें॥ २९५॥
(श्रीमद्भा० ११। २९। १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः 'वासुदेवः सर्वम्' तो सदासे ही है और सदा ही रहेगा, पर मोहके कारण उसका अनुभव नहीं होता। तात्पर्य है कि बुद्धिमें जड़ता (मोह) होनेसे ही जड़ दीखता है। बुद्धिमें जड़ता न हो तो सब कुछ चिन्मय ही है। जैसे आँखोंपर जिस रंगका चश्मा चढ़ायें, वैसा ही रंग सब जगह दीखता है, ऐसे ही राग-द्वेषादि जैसी वृत्तियाँ होती हैं, वैसा ही संसार दीखता है।

साधकसे गलती यह होती है कि वह अपनेको अलग रखकर 'वासुदेवः सर्वम्' को देखता है। वास्तवमें केवल दीखनेवाला संसार ही भगवत्स्वरूप नहीं है, प्रत्युत देखनेवाला भी भगवत्स्वरूप है। अतः साधकको ऐसा मानना चाहिये कि अपनी देह-सहित सब कुछ भगवान् ही हैं अर्थात् शरीर भी भगवत्स्वरूप है, इन्द्रियाँ भी भगवत्स्वरूप हैं, मन भी भगवत्स्वरूप है, बुद्धि भी भगवत्स्वरूप है, प्राण भी भगवत्स्वरूप हैं और अहम् (मैंपन) भी भगवत्स्वरूप है।

सब कुछ भगवान् ही हैं—इसको माननेके लिये साधकको बुद्धिसे जोर नहीं लगाना चाहिये, प्रत्युत सहजरूपसे जैसा है, वैसा स्वीकार कर लेना चाहिये। इसलिये श्रीमद्भागवतमें आया है—

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतो मुक्तसंशयः॥

(११। २९। १८)

तात्पर्य है कि 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—इस भावसे भी उपराम हो जाय, इसका भी चिन्तन न करे अर्थात् न द्रष्टा (देखनेवाला) रहे, न दृश्य (दीखनेवाला) रहे और न दर्शन (देखनेकी वृत्ति) ही रहे, केवल भगवान् ही रहें। इसलिये भगवान्ने कहा है—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ (शब्दादि विषय) ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आप विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें अर्थात् स्वीकार करके अनुभव कर लें।'

एक ही परमात्मा

सम्पूर्ण संसार परमात्माकी अनुपम कृति है। परमात्माकी शक्ति—प्रकृति (माया) जड-चेतन—सभी जीवोंका उनकी आज्ञाके अनुसार सृजन-पालन एवं संहार करती है। जीवोंके शरीर पञ्चतत्त्वसे बने हुए हैं और सभीमें एक ही चेतन आत्मा विराजमान है। सत्त्व, रज एवं तम—इन तीन गुणोंके न्यूनाधिक्यसे जीव-विशेषकी वासना एवं बीजानुसार उनके आचार-विचार, आहार-विहार भिन्न-भिन्न प्रकृतिके होते हैं। संसारमें सभी धार्मिक जन इस जगत्का नियन्ता एक ही मानते हैं। परमात्मा एक ही है, केवल देश-कालके अनुसार नाम-रूपका भेद होता है। सभी जीवोंकी देहको बनाकर सर्वशक्तिमान् परमात्मा स्वयं उसमें सूक्ष्मरूपसे प्रविष्ट होकर स्वयं क्रीडा करते हैं।

मनुष्य जो परमात्माकी सर्वश्रेष्ठ कृति है उसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें वे ही परमात्मा व्याप्त हैं, ऐसा सर्वदा ध्यान रखना चाहिये और किसी भी जीवके साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये; क्योंकि परमात्मा स्वयं अनन्त हैं और दूसरोंके प्रति किये गये हमारे व्यवहारोंको प्रत्येक पल देखते रहते हैं। अतः हमें दुर्लभ मानव-देह पाकर अपने विचार पवित्र रखकर किसीके अंशका हरण नहीं करना चाहिये और उन्हें सर्वदा याद रखना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यकी आयु सीमित है। इसलिये कलके ऊपर कोई कार्य नहीं छोड़ना चाहिये। ईश्वर-प्राप्तिका साधन—*'जीवे दया, नामे रुचि'* है अर्थात् सम्पूर्ण जीवोंपर दया करे और भगवान्के नामका स्मरण करे। वे परमात्मा कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, उनकी अनन्त सामर्थ्य है। वे सम्पूर्ण जीवोंके लिये समान हैं—'समोऽहं सर्वभूतेषु।' अतः राग-द्वेषके भावको छोड़कर कल्याणके मार्गपर अग्रसर होना चाहिये। (श्रीमोहनकुमारजी शर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला और धाम

भगवान् श्रीकृष्णने माखन चुराकर खाया, उन्होंने गोपियोंके साथ रासलीला की। उनकी इन लीलाओंका रहस्य प्रत्येक मनुष्य नहीं समझ सकता—

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं। उनकी बड़ी ही अलौकिक और दिव्य लीलाएँ हुआ करती हैं। उन्हें कोई विरले भाग्यवान् प्रेमीजन ही देख पाते हैं। वे भगवान् हमारे पास भी बैठे हुए हैं, परंतु हमारे पापोंके कारण हमें दीखते नहीं। भगवान् कहते हैं 'मैं तो भक्तोंका ऋणी हूँ। सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य आदि मुक्तियाँ तो उन्हें मैं ब्याजमें दे देता हूँ। उनका मूल तो मेरे पास जमा ही रहता है। किंतु वे प्रेमी भक्त इन चारों मुक्तियोंको मेरे द्वारा दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते'—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

श्रीरघुनाथजीके चरित्रमें शंका मत करो, इस सम्बन्धमें कुछ भी न कहो। वे जो कुछ करते हैं, ठीक ही करते हैं। बेठीक कर ही नहीं सकते। श्रीरघुनाथजीको जब हम ईश्वर समझ चुके हैं तो उनके कार्योंमें तर्क करनेकी क्या आवश्यकता है। महान् पुरुष जो करते हैं, उसे आदर्शरूप नहीं मानना चाहिये। उनके उपदेशको आदर्श मानना चाहिये।

'**काशीमरणान्मुक्तिः**'—इस शास्त्र-वाक्यमें कोई संदेह नहीं—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

—ये सब भगवान्‌के धाम हैं। इन धामोंमें रहकर शुभ कर्म करनेसे अवश्य मुक्ति होगी। यदि धामका महत्त्व न हो तो उसे कौन मानेगा? काशी, वृन्दावन, गङ्गा, यमुना आदि सब मुक्तिके धाम हैं।

रासलीला नित्यलीला है। वह एक क्षणके लिये भी बंद नहीं होती। किंतु उसे सब देख नहीं सकते हैं। जिनकी दिव्य दृष्टि होती है वे ही देख सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी माखनचोरी-लीला अथवा वस्त्रहरण-लीला तो ऐसी ही लीला है जैसी आजकलके एक छोटेसे पाँच-छः वर्षके बच्चेकी हो। भगवान् श्रीकृष्ण कुछ चपल थे। आज भी बच्चे खाने-पीनेकी चीजोंको अपने और अपने अन्य मित्रोंके घरोंमेंसे चपलतापूर्वक निकालकर खा-पी जाते हैं। उनका यह कार्य क्या चोरीकी सजा पाने योग्य समझा जाता है? यह बालककी चपलता ही है तथा चपल बालक अपने माता-पिता एवं अन्य सब लोगोंको भी अच्छा ही लगता है। चीरहरण-लीला आदि भी ऐसी ही हैं। इनमें दोष देखनेवालोंको कम-से-कम उस समयकी भगवान्‌की आयुका ध्यान तो रखना ही चाहिये। क्या पाँच वर्षकी अवस्थाके बालकके ऐसे कार्य दण्डनीय समझे जाते हैं?

इसी प्रकार यदि उन्हें केवल मनुष्य या योगिराज मानें तो भी उनकी इन लीलाओंमें किसी प्रकारका दोष देखना उचित नहीं है। योगियोंको कौन सिद्धि प्राप्त नहीं होती? फिर भी क्या वे किसी बुरी नीयतसे माखन-मिसरी चुराकर खायेंगे? अथवा किसी दूषित विचारसे कुमारी कन्याओंके वस्त्र उठाकर ले जायेंगे और माँगनेपर उन्हें तत्काल दे देंगे? और यदि उन्हें साक्षात् परब्रह्म समझो तब तो उनसे किसीका परदा या परायापन हो ही क्या सकता है? ऐसी अवस्थामें उनसे भिन्न है ही कौन, जिसकी वे चीज चुरायेंगे? तब तो सब चीजें उन्हींकी होंगी और वे अपनी चीजोंकी यथोचित व्यवस्था करेंगे। जिस दृष्टिसे भी देखें, भगवान् कृष्णके चरित्रमें कोई दोष दिखायी नहीं देता। परंतु उनका महत्त्व और वास्तविकता ही किसीकी समझमें आना कठिन है। जब साधारण खिलाड़ी भी रंगभूमिपर आकर अपनी वास्तविकताको ऐसा छिपाता है कि वह किसीपर प्रकट ही नहीं होती तो फिर जब साक्षात् विश्वेश्वर लीला करने लगें तो उन्हें कौन पहचान सकता है? जब पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जीवित थे तो बंगालके एक प्रसिद्ध नाट्यकारने उन्हें एक नाटक देखनेके लिये आमन्त्रित किया। परंतु विद्यासागरजी समयाभावके कारण उनका अभिनय देखनेके लिये नहीं जा सके। एक दिन उन्हें समय मिला और वे नाटक देखनेके लिये गये तो उस दिन 'नीलके व्यापारका नाश' इस नाटकका अभिनय दिखाया जा रहा था। विद्यासागरजी एक ऊँचे दर्जेमें बैठे खेल देख रहे थे। उन्होंने देखा कि एक गोरा नीलकी खेती करनेवाला एक भारतीय किसानकी स्त्रीपर अत्याचार कर रहा है। बस, यह देखकर वे ऐसे उत्तेजित हुए कि उन्होंने अपने पैरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चप्पल निकालकर उस गोरेपर खींच मारी। सब लोग देखते रह गये। परंतु नाट्यकारने झट मञ्चपर खड़े होकर अपने अभिनयकी सराहना की कि 'आज मेरा अभिनय दिखाना सफल हुआ जो विद्यासागरजी-जैसे महान् पुरुषको भी यह लीला सच्ची घटना जान पड़ी।' यह अवस्था तो हमारे चतुर अभिनयकर्ताओंकी है। फिर भला जब स्वयं जगदीश्वर एक बच्चेका अभिनय करनेके लिये संसारमें आयें और साधारण सांसारिक पुरुष उनकी वास्तविकताको पहचान ले तो उनका अभिनय कच्चा ही कहलायेगा। इसलिये हर किसीकी समझमें उनकी लीला नहीं आ सकती।

जो लोग श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका आध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं और कहते हैं कि 'उन्होंने वस्त्रहरण नहीं किया, किंतु भक्तोंके मनको चुराया था, माखन नहीं चुराया था, गोपियोंका हृदय चुराया था।' ऐसा कहकर उन मधुर लीलाओंको केवल रूपकमात्र सिद्ध करते हैं, उनका यह मत यथार्थ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वेदों और दर्शनोंके पारगामी, महान् पण्डित भगवान् व्यासजी कोई कच्ची बुद्धिके बच्चे नहीं थे जो मन चुरानेकी बातको सीधे-सीधे न लिखकर लोगोंको भ्रममें डालते। क्या उन्होंने भक्तोंका मन चुरानेकी बात नहीं लिखी? फिर इसी जगह वे उसे इस प्रकार क्यों दिखाते? यह झूठा अध्यात्मवाद भक्तोंको अच्छा नहीं लगता, वरन् उनके कोमल चित्तको ठेस पहुँचाता है।

रासलीला आदि देखनेका अधिकारी वही हो सकता है, जिसने अपने चित्तको लीन करके उसपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली हो, अन्यथा उसमें लौकिक बुद्धि हुए बिना नहीं रह सकती।

जो दिव्य वृन्दावन है वह तो महापुरुषोंको ही दीख पड़ता है। सामान्य पुरुष उसे कुछ नहीं जान सकते।

राधा और कृष्ण दोनों ही चिन्मय हैं। वस्तुतः ये दो नहीं, एक ही तत्त्व हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा और उसकी किरण दो नहीं, एक ही वस्तु हैं, उसी प्रकार राधा-कृष्ण भी एक ही चिन्मय तत्त्व हैं। केवल लीलारसके प्राकट्यके लिये ये दो हो जाते हैं।

उपास्य देवविग्रहमें तीन प्रकारकी दृष्टियाँ होती हैं—लौकिक, शास्त्रीय और दैवी। (१) यह पत्थर है—इसे लौकिक दृष्टि कहते हैं। (२) यह भगवान्‌का स्वरूप है—इसका नाम शास्त्रीय दृष्टि है। (३) यह साक्षात् चिन्मय है—इसको दैवी दृष्टि कहते हैं। इसी प्रकार स्त्रीमें भी यह अस्थि-मांसका थैला है—इसे लौकिक दृष्टि समझना चाहिये।

व्रजवास तीन प्रकारसे होता है—शरीरसे, वाणीसे और मनसे। पहले तो शरीर व्रजमें रहना चाहिये। फिर वाणीद्वारा व्रजरसका आस्वादन किया जाय। महावाणी अथवा अष्ट सखा या अन्य व्रजरसिकोंके पदोंका गान और आस्वादन वाणीसे व्रजवास करना है, तथा मन भी व्रजमें ही लगा रहे—यह मनसे व्रजमें रहना है। यदि कोई तीनों प्रकारका व्रजवास करे तो अति उत्तम है।

भक्तको भगवान्‌का प्रसाद सर्वदा पाना चाहिये। उसमें ऐसा विचार कभी नहीं करना चाहिये कि यह रोटी है या पूड़ी अथवा अच्छा है या बुरा। यदि ऐसा विचार रहेगा तो भक्तको इस जन्ममें तो भक्ति या प्रेम प्राप्त हो नहीं सकेगा। प्रसादमें विशुद्ध प्रसादबुद्धि ही रहनी चाहिये। जैसा कहा है—

जगन्नाथका भात । जगत पसारे हाथ॥

श्रीवृन्दावन तो नित्य और चिन्मय धाम है। जो जीव वृन्दावनमें पहुँच जाता है वह नित्यानन्दमें मस्त रहता है तथा श्रीसरकारके नित्यलीलास्वरूप रासका सुख भोगता है। परंतु इस वृन्दावनतक तो सिद्ध पुरुषोंकी ही पहुँच होती है। साधकका वहाँ प्रवेश नहीं है। साधकके लिये तो यही अच्छा है कि कुछ दिनोंतक वृन्दावनमें रहे और दर्शन करके लौट आये। साधक और सब तीर्थोंमें तो रह सकता है, किंतु वृन्दावनमें रहना कठिन है। इसका कारण यह है कि वृन्दावनके चारों ओर सत्त्व, रज और तमोगुणकी तीन खाइयाँ बहुत चौड़ी हैं। वृन्दावन जानेवाले अधिकांश यात्री इनमेंसे ही किसी खाईमें पड़े रहते हैं। असली वृन्दावनतक तो उनकी पहुँच ही नहीं होती। जो इन तीनों गुणोंको पार कर लेता है, वह त्रिगुणातीत पुरुष ही उस दिव्य वृन्दावनमें पहुँच सकता है। वृन्दावनमें आज भी ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जो निरन्तर नित्यधामके आनन्दमें ही डूबे रहते हैं और छः-छः महीनेतक श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शनोंको भी नहीं जा पाते।

खाँड़के खिलौनेके प्रत्येक अङ्गमें परिपूर्णरूपसे खाँड़ मौजूद है। इसी प्रकार इष्ट मूर्तिके प्रत्येक अङ्गमें चिदानन्द परिपूर्णरूपसे विद्यमान है।

(श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन, विज्ञान, श्रद्धा और उदारता—मानवका सौन्दर्य

(ब्रह्मलीन प्रज्ञाचक्षु संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मानव-जीवनका सौन्दर्य और समुचित विकास दर्शन, विज्ञान, श्रद्धा और उदारतामें है, पर विज्ञानको दर्शनके अधीन रहना चाहिये, क्योंकि विज्ञान कामनापूर्तिमें सहयोग देता है और दर्शन मानवको निष्काम बनाता है।

जगत् और जगत्पतिके लिये उपयोगी

निष्काम हुए बिना कामनापूर्ति मनुष्यको पराधीनतामें आबद्ध करती है। पराधीन प्राणी कभी भी अपने लिये उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता और जो अपने लिये अनुपयोगी है, वह जगत्के लिये तथा जगत्पतिके लिये कभी उपयोगी नहीं हो सकता।

दर्शन हमें सर्वप्रथम अपने लिये उपयोगी होनेकी सामर्थ्य प्रदान करता है। अपने लिये उपयोगी होनेपर स्वभावसे ही उदारता तथा परम प्रेमकी अभिव्यक्ति होती है।

उदारता सामाजिक समस्याओंको हल करनेमें समर्थ है और प्रेमका प्रादुर्भाव होनेपर जीवनमें किसी प्रकारकी परिच्छिन्नता शेष नहीं रहती अर्थात् अनन्तसे आत्मीयता एवं एकता सिद्ध होती है। इस दृष्टिसे मानव-जीवनमें श्रद्धास्पदके प्रति अविचल श्रद्धा अनिवार्य है, क्योंकि श्रद्धारहित जीवन भारसे दबा रहता है और पराश्रय लेता रहता है, जो विनाशका मूल है।

विज्ञानपर नियन्त्रण जरूरी

पराधीनतासे परिच्छिन्नता, भेद तथा भयका जन्म होता है, जो किसीको अभीष्ट नहीं है। सभीको निर्भयता, स्वाधीनता तथा समताकी स्वाभाविक माँग है, जिसकी पूर्ति मानव दर्शनसे ही कर सकता है।

विज्ञान मानवको दृश्यके सम्बन्धमें सोचने, समझने एवं उसके उपयोग करनेमें सहयोगी सिद्ध होता है। विज्ञान एक प्रकारका बल है। बलके द्वारा सेवा-कार्य हो सकता है, भोग हो सकता है, किंतु बलके द्वारा अभावका अन्त नहीं होता, अपितु मिथ्या अभिमान ही पोषित होता है।

अभिमानी चाहे कितना ही सबल क्यों न हो, उसे पराधीनतामें आबद्ध होना ही पड़ता है। इसलिये विज्ञानको दर्शनके अधीन रहना चाहिये।

ज्ञान-विज्ञान और श्रद्धा

विज्ञानसे प्राप्त सामर्थ्यका उपयोग यदि ज्ञान एवं विवेकपूर्वक नहीं किया जायगा तो विज्ञान अहितकर सिद्ध होगा, जो किसीको अभीष्ट नहीं है। इसी प्रकार श्रद्धारहित ज्ञान-विज्ञान मानवको शून्यता और विलासितामें डुबो देता है। आस्था और श्रद्धा चेतनाको जीवित रखती है, जो साधकको शून्यमें आबद्ध नहीं होने देती, बलका सदुपयोग कराती है और उसको विलासी नहीं होने देती। इस दृष्टिसे ज्ञान-विज्ञानके साथ श्रद्धाको रखना अनिवार्य है।

विश्व और विश्वनाथ

दर्शन दृश्यकी (संसारकी) आस्थाका नाश करता है और श्रद्धा दृश्यके (संसारके) आधार तथा प्रकाशक (भगवान्) से आत्मीयता सजीव करती है। इस कारण मानव-जीवनमेंसे दर्शन तथा श्रद्धाको मिटाया नहीं जा सकता। विज्ञानके बिना कार्य करनेकी सामर्थ्य नहीं आती। सामर्थ्यके बिना सृष्टिकी सेवा नहीं होगी और सेवाके बिना रागकी निवृत्ति तथा सुन्दर समाजका निर्माण नहीं होगा। इसलिये उदारतापूर्वक विज्ञानके सदुपयोगद्वारा सेवा करें एवं विश्वके साथ एकता स्थापित करें, साथ ही दर्शन और श्रद्धाके आधारपर विश्वनाथके साथ आत्मीयता और प्रेम करें।

दृश्यका आकर्षण एकमात्र मूल-जनित रागसे उत्पन्न होता है और नवीन रागको जन्म देता है। दर्शन मानवको रागरहित करनेमें हेतु है। इस कारण दर्शनके प्रकाशमें ही सर्वतोमुखी विकास होता है। यदि जीवनमेंसे दर्शनको निकाल दिया जाय तो विकासकी कौन कहे, विनाश अवश्य हो जाता है।

मानवता-विहीन मानव

दर्शनसे ही हम मानव कहलानेके अधिकारी हैं। दर्शनके बिना मानवमें मानवताकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। मानवता-विहीन मानव पशुओंसे भी अधिक निम्नकोटिमें आ जाता है। इस कारण मानवमात्रके जीवनमें दर्शन, श्रद्धा, विज्ञान और उदारताका सौन्दर्य अत्यन्त आवश्यक है।

[प्रेषक—श्रीदुर्गाप्रसादजी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीभपर अमृतका झरना

बचपनमें बूढ़ी नानीसे एक कहानी सुनी थी। कहानीका तत्त्व यह था कि साँपका डँसा हुआ भी जी जाता है, किंतु जीभका डँसा बुरी तरह तड़प-तड़पकर, रिस-रिसकर, बिन्दु-बिन्दु मरता है। तब समझ नहीं पाया, अचेत था। किंतु ज्यों-ज्यों उम्र होती गयी, दुनियामें घूमने-फिरनेके अवसर मिले, आँखें खोलकर देखना पड़ा, तब समझमें आया कि जीभ भी डँसती है और डँसती ही नहीं, ऐसा डँसती है कि मुँहसे आहतक नहीं निकलती और शरीर-मन सब जलकर क्षार हो जाता है।

कहते हैं, प्रकृतिने जीभपर अमृतका लेप किया था। पशुओंको चोट लग जाती है, घाव हो जाता है तो वे उसे जीभसे चाट-चाटकर अच्छा कर लेते हैं। किंतु मनुष्य तो पशुका स्वामी ठहरा, वह भला पशुसे क्यों सीखने लगा? शायद इसीलिये हमारी जीभका अमृत-लेप सूखता जा रहा है। जीभपर अमृतका एक झरना था, अब सूख गया है। स्वभावत: तीखे काँटोंसे क्षेत्र भर गया है और झरनेके आस-पास जो कलियाँ खिलती थीं और फिर चटखकर फूल बन जाती थीं, वे फूल मुँहसे झरते थे और गृहको सुगन्धसे भर देते थे, वह सब तेजीसे स्वप्न होता जा रहा है।

पहले छुटपनसे बच्चोंको बोलना सिखाया जाता था—किससे कैसे बोलना चाहिये, कब बोलना चाहिये। गुरुजनोंके प्रति विनीत होकर श्रद्धापूर्वक बोलना, अपनेसे छोटोंके प्रति गहरे स्नेह एवं करुणाके साथ बोलना और बराबरवालोंसे मैत्रीभावसे बोलना। एक क्रूर विद्रोहकी वाणी उन सबको निगल गयी है। हमारा तरुण वर्ग समझता है कि जैसे यह उसकी बहुत बड़ी सफलता है, बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि उसकी दृष्टिसे जो कुछ जीर्ण है वह तो मिटनेके लिये है ही और जब उसे एक दिन मिटना ही है तो लात मारकर उसे तोड़ देना, मिटा देना ज्यादा अच्छा है। बाढ़ जब आती है तो कूल-कछारोंकी परवा नहीं करती। जो है, उसे तोड़ती, डुबाती चलती है।

कौन कहे इनसे कि सदियोंके प्रयत्नके बाद यदि मानवने केवल मिटाना ही सीखा है और यह भी न जाना कि कालके सत्यमें न प्राचीन कुछ है, न नवीन कुछ है, तो समझिये कि कुछ न जाना, कुछ न सीखा। यह पुराना और नया मानवकृत कृत्रिम भेद है। सत्यकी स्पृहा जहाँ है, शिवकी जिज्ञासा जहाँ है, मंगलकी साधना जहाँ है—वहाँ पुराना-नया जैसा कुछ नहीं है! इन्द्रियजन्य ज्ञान और प्रेरणा तथा अनुभवसे मनुष्य सीखता है। नया केवल पुरानेका संस्कार मात्र है, शरीरमात्र नया होता है, प्राणशक्ति, अन्त:प्रेरणा पुरानी ही होती है—यही है मानवकी निरन्तरता। इन्द्रियाँ नयी, आत्मा पुरानी, परिवेश नया, प्रेरणा पुरानी, शैली नयी, विचार पुराने, अभिव्यक्ति नयी, प्रवृत्ति पुरानी। इसीसे कालको लाँघती हुई संस्कृतिकी निरन्तरता, संस्कृतिकी धारा अक्षुण्ण रहती है— मंगलके लिये मानवकी साधनाकी निरन्तरता, यही शिवकी मानसी पूजा है।

हाँ, तो कहना यह है कि आजके जीवनमें जो संघर्ष है, अपनेको भी बार-बार काट देना है, आत्म-अस्वीकृति है, वह कुछ तो परिस्थितिवश है और कुछ अपनी बनायी हुई—आदमीका अपने ऊपर नियन्त्रण न रह जानेके कारण है, अपनी विवशताकी अनुभूतिके कारण है। आश्चर्य तो यह है कि जब आधुनिक मानवताके चरणोंमें विज्ञानने शक्तिके अगणित उपहार रख दिये हैं, तब मानव मानसिक धरातलपर दीन एवं पंगु बन गया है। उसकी खीझ ही अपनेको अङ्गीकार न कर सकनेके कारण है।

जो कठिनाइयाँ हमारे मनकी हैं, हमारी पैदा की हुई हैं, स्वभावगत हैं, उन्हें दूर करना ही मानवका पुरुषार्थ है। हम दूर न जाकर जब अपने ही चतुर्दिक् अपने परिवारोंमें देखते हैं तो ऐसा लगता है कि आज वाणीके असंयमके कारण जीवनका सौख्य लुप्त होता जा रहा है। पुरुषने अपनेको परिस्थितिकी धारामें डाल दिया है, जीवन-संघर्ष प्रबल हो जानेके कारण और अपने मनका व्यवहार जीविकाक्षेत्रमें न पानेके कारण वह खीझसे भरा, अहंसे अस्थिर और अतृप्तिसे पीड़ित है। उसके मनकी इस अतृप्तिका आंशिक समाधान गृह है, जहाँ एक अनुगता एवं सहधर्मिणी नारी, एक प्रेममयी माँ, एक स्नेहार्द्र सहोदराकी कल्पनाने उसके लिये एक शान्ति-लोक, एक स्वर्ग, एक विश्राम-कक्षकी रचना की है। क्या होगा यदि यह स्वर्ग नरकके रूपमें बदल जाय? क्या होगा यदि शान्ति-लोकसे विषभरी ज्वालाएँ उठने लगें? क्या होगी मनोदशा यदि प्यारके रससे भरी धरती उसके चरणोंके नीचेसे हट जाय और दुनियामें उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षणभर ठहरकर दम मारनेकी जगह भी न रहे?

अगणित गृह जीभके विष-दंशसे मिट्टीके ढेरमात्र रह गये हैं, अगणित हृदय—उमंगोंसे भरे हृदय, सम्भावनाओंसे पूर्ण हृदय, शुभ कामनाओंसे प्रेरित हृदय, सूखकर काष्ठ-जैसे कठोर हो गये हैं। जीभके विषमें बुझे एक बाणने मानवको देवतासे क्रूरकर्मा राक्षस बना दिया है, देखते-देखते हरा-भरा यौवन एवं जीवनके रससे प्लावित गृहस्थियाँ चिताकी भाँति धू-धू करके जल गयी हैं और आदमी बस देखता रह गया है—सम्मोहित निष्प्राण।

संसारके रथकी वल्गा (लगाम) नारीके हाथ है। वही है उसे चलानेवाली। वही है गृहस्थ-जीवनकी अधिष्ठात्री देवी, वही है सतत दानमयी अन्नपूर्णा। दानकी वृत्ति उसमें सहज है, पालनकी वृत्ति उसमें सहज है। प्यारके लिये, सेवाके लिये दान—सर्वस्व दान भी उसके लिये सहज है और इसी दानसे, यही अपनेको देकर वह बर्बर असंस्कृत अहंमें डूबे बाधा-बन्ध-विहीन पुरुषको पालतू, ग्रहणशील, संयत और नियन्त्रित बना पाती है। मधुर भाव ही नारीका सर्वस्व है। अमृतका दान ही उसकी प्रवृत्ति है और प्रणत होकर शिरोभूषण बन जाना ही उसकी कला है। पुरुषके पराक्रमसे जब नारीकी करुणा, नारीकी ममता, नारीकी सतत स्नेह करनेकी शक्तिका विनियोग होता है, तब गृह स्वर्ग बन जाता है।

जो नारी बोलनेमें शर्बत घोलती है और हँसनेमें जिसके मुँहसे फूल झड़ते हैं, वह लक्ष्मी-स्वरूपा है, नारायणी है, कल्याणी है। उसको पाकर गृह धन्य हो उठता है। पुरुषके मन एवं वाणीके काँटे उसकी अमृत-धारामें बह जाते हैं, कर्दम एवं मल सब धुल जाता है, उसके चतुर्दिक्का वातावरण हलका, उमंगोंसे भरा, स्फूर्तिदायी हो उठता है। यह देखी हुई बात है कि किस प्रकार लक्ष्मीनारायणकी स्वर्ग-सी गृहस्थी वाणीके विषसे देखते-देखते राख हो गयी। किन साधोंसे वह घरमें पुत्रवधू लाये थे। बहूमें गुण कम न थे। पाककलामें पारंगत, सीने-पिरोने, कसीदे इत्यादिकी कलामें कुशल, गा भी लेती थी। किंतु बड़ी तुनुक-मिजाज, रह-रहकर भभक उठनेवाली, बात-बातमें ससुरालपर व्यंग्य और अपने मायकेकी बड़ाई। कभी सासने सामान्य-भावसे कह दिया कि बहू, ऐसा कर लेना, यह बना लेना। बस, वह बोल उठती—'करूँगी क्यों नहीं अम्माजी। बापने बेच दिया है, बस, आज्ञाका पालन करना तो मेरे भागमें है ही।' और दिनभरकी खीझ वह सीधे-सादे पतिपर, जो प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्ता भी थे, उतारती—'व्याख्यान तो आप बहुत देते हैं कि औरतोंके साथ यह होना चाहिये, वह होना चाहिये, पर जब वक्त आता है..........। मैं क्या जानती थी कि हाथीके दाँत खानेके और, दिखानेके और होते हैं। आप मुझे घरकी दासी बनानेके लिये ही लाये थे?' ऐसी बातें सुनकर पति महोदय सहम कर रह जाते। इस तरहकी बातें जब-तब होती रहती हैं। नतीजा यह होता है कि सबके दिल एक-दूसरेसे फट जाते हैं। सदिच्छाओंके होते हुए, स्नेहके होते हुए, सुविधाओंके होते हुए भी लोगोंने दुर्भाग्यके आगे कंधे डाल दिये।

प्रश्न उठता है कि क्या मिला इस नारीको? क्या दिया उसने पतिको? जिस घरमें वह आयी थी और जिसकी मालकिन बन सकती थी, जिसकी रानी हो सकती थी, अपनी मुसकान, जिसमें चाँदनी भर सकती थी, अपने हृदयके रससे सींचकर जिस घरको अटूट, अभेद्य बना सकती थी, जिसे लेकर स्वयं निर्मित हो सकती एवं दूसरोंका निर्माण कर सकती थी, उसे अपनी विषैली जिह्वाके डंक मार-मारकर उसने समाप्त कर दिया—खुद मर गयी और दूसरोंको मार दिया। उसे मरना ही कहा जायगा, ऐसा जीवन जिसमें उमंगें नहीं, निराशाओंके गर्तमें सदाके लिये डूबी घिसटती जिंदगी, जिसमें पग-पगपर काँटे हैं, लू है, तपन है, खीझ है, पतझड़ है, परंतु जहाँ वसंतका कोकिल एक बार भी नहीं बोलता, जहाँ फूल कभी नहीं खिलते, जहाँ दक्षिणी पवन कभी नहीं बहता—मौतसे भी भयानक, अंदरसे सुलगती हुई जिंदगी। जरा-सी अकड़, जरा-सी असावधानी, तीखे दो बोल, जिह्वाके डंकने कितना महँगा सौदा कर लिया। उसके पति अन्तमें यक्ष्माके शिकार हुए। किंतु वह जीते रहते तो भी स्थितिमें कोई अन्तर न पड़ता। सर्वनाशिनी जिह्वा सब कुछ चाटकर ही शान्त होती है!

यदि लक्ष्मीनारायणका मामला व्यक्तिगत होता तो गनीमत होती, परंतु उनके घर जो दुर्घटना घटी, आज एक सामान्य बात हो गयी है। यह जहर घर-घर फैलता जा रहा है।

किंतु ऐसा भी नहीं है कि दुर्भाग्यकी इस अँधियारीमें सौभाग्यकी चाँदनी कहीं है ही नहीं। आज भी सैकड़ों घरोंमें नारीके गृहलक्ष्मी और कल्याणी-रूपके दर्शन होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। लक्ष्मी-सीता एवं अन्नपूर्णाएँ आज भी अस्तित्वहीन नहीं हो पायी हैं। मरुभूमिमें सैकड़ों घर हरित शाद्वलकी भाँति स्वर्गोपम बने हुए हैं।

बड़ा गरीब था सक्सेना! बाप बचपनमें मर गये थे, घरमें दो छोटे भाई, दो बहिनें और माँ। कोई चारा नहीं, सहारा नहीं। परंतु दृढ़ निश्चयके पगोंकी गति कौन रोक सकता है? पुस्तकालयसे किताबें ले-लेकर उसने पढ़ाई की। ट्यूशन करके, इधर-उधर काम करके बहिन-भाइयोंको भी पढ़ाता रहा वह। कालान्तरमें सब कष्ट दूर हो गये। बहिनें अच्छे घर गयीं, भाई भी काममें लग गये। उसने डरते-डरते अपनी शादी की, किंतु बहू क्या आयी कि घरके भाग्य खुल गये—अँधेरेमें जैसे बिजलीकी कौंध हो। उसके पिता भी उसे बहुत छोटी छोड़कर मर गये। मामाके यहाँ पली। पढ़ी-लिखी, फिर अध्यापन-कार्यसे कई हजार रुपये एकत्र किये। इन्हीं रुपयोंसे मामाने उसका विवाह कर दिया। बोलती तो ऐसा लगता कि मुँहसे शब्द नहीं, मिठास टपक रही है। सासके चरणोंमें ऐसी चिपटी मानो उसे अपनी खोयी माँ मिल गयी। दिन-रात घरके काममें लगी रहती। इतना परिश्रम करती कि लोग देखकर दाँतों-तले उँगली दबाते। एक दिन सक्सेनाने कहा—'मुझे बड़ा दुःख होता है कामिनी, जबसे मेरे घर आयी हो, तुम्हें चैन नहीं, जरा भी विश्राम नहीं।' कामिनी बोली—आप कहते क्या हैं। मैं तो कुछ जानती-वानती भी नहीं। परंतु यह मेरा घर है। मैं इसे ठीक न रखूँगी, मैं न करूँगी तो कौन करेगा? आपको और अम्माको जरा भी सुखी कर पाती हूँ तो आनन्दसे मन भर जाता है। यही है मेरी शक्ति। मैं कभी नहीं थकती। सदा रससे भरी-भरी, उमगी-उमगी। कभी यह किया, कभी वह किया। घरमें, घरके प्रत्येक व्यक्तिमें समा गयी है। जहाँ देखो, वही है। घर उसके हृदय-रससे छलकता रहता। कामिनी थोड़ी देरके लिये भी कहीं चली जाती तो हर एक उसके अभावका अनुभव करता। हर आदमी उससे खुश है, क्योंकि वह हर एकसे खुश है। हर आदमी अनुभव करता है कि उसके घर गृहदेवी आ गयी है। रससे छकी, प्रेममें पगी, उमंगोंमें रँगी कामिनीको पाकर घर धन्य हो गया है।

यह घर लक्ष्मीनारायणजीके घरकी अपेक्षा गरीब, सामान्य-सा घर था—परिस्थितिका मारा। सुविधा-सुखकी सामग्रीके नामपर यहाँ कुछ न था, परंतु जहाँ पहले घरमें सब कुछ होकर भी प्राण ही न था, वहाँ इस घरका कंकाल गहरी प्राणवत्तासे पनप उठा। हर बात मार्दवमें सनी, हर चीज रसमें डूबी, मानो गृहदेवीकी मुसकराहटमें द्वार एवं दीवारें गद्गद हो उठी हों, मानो उसकी मधुर वाणीमें दैन्य, दुःख, अभाव, अतृप्तिके कुश-कण्टक गल गये हों।

आपने कभी मुसकानका सम्मोहन देखा है? आपने कभी प्यारकी वाणी सुनी है? यदि देखी और सुनी हो तभी आप उसका रस ग्रहण कर सकते हैं। मृतक जी उठता है, जीर्ण रोगी स्वस्थ हो जाता है। दूसरेके लाभके अतिरिक्त मृदुला जिह्वाकी स्वामिनी स्वयं सबसे अधिक लाभमें रहती है। पहले तो वही जीती है, तब दूसरेको जिलाती है। पहले वही आशासे तरंगित होती है, प्रेमसे भर उठती है, रससे उमड़ती है। उसमें शक्तिकी धारा फूटती है। स्प्रिंगपर जैसे बड़ा भार भी तुल जाता है, वैसे ही मृदुल हृदयके रससे धुलकर काँटे भी फूल हो जाते हैं? प्रेमकी सबसे बड़ी सार्थकता भी तो यही है कि वह कभी घटता नहीं, कभी थकता नहीं,कभी रिक्त होता नहीं, और न यही देखता है कि दूसरा उसे क्या देता है, उसके लिये क्या करता है। उसका आनन्द अपनेको देने, अपनेको उँडेलनेमें है, दूसरेका दान ग्रहण करनेमें नहीं। नारी तर्कसे नहीं, अन्तःप्रेरणासे इसे समझ पाती है और जो समझ पाती है वह अपने इंगितमात्रसे चतुर्दिक् स्वर्गकी रचना करती चलती है।

जीवनपर मरणका अन्धकार छा गया है। काल-भुजंगके फूत्कार-सी आँधियोंमें मन अस्थिर है। कटुताकी बाढ़ आ रही है। मानव-संस्कृतिकी सम्पदाएँ विचलित हैं। ऐसे समय दो मीठे बोल, प्राणोंके रसमें डूबे बोल सुननेके लिये प्राण विकल हैं। ऐसे संकट-कालमें घर-घर जगज्जननीकी कलाओंमें व्यक्त होकर तुम उठो। जीभपर अमृतका झरना बहने दो, गृहको पावन होने दो, नरकको स्वर्ग बनने दो, मरुस्थलीमें फूल खिलने दो—यही है तुम्हारा गौरव, यही है तुम्हारी सार्थकता, यही है तुम्हारे जीवन-शब्दका अर्थ। हृदयका अमृत जीभपर उमड़ने दो। झरनेके ऊपरसे कठोरताके शिलाखण्डको, आवरणको हटा दो। अब देखो, तुममें कितना रस है, कितना जीवन है, कितना अमृत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदमें गौका महत्त्व

(आचार्य डॉ० श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराणदर्शन-तीर्थ)

त्रिसूत्रात्मक आयुर्वेद—चिकित्साशास्त्रका आविर्भाव प्राणियोंकी व्याधिके निवृत्तिके रूपमें सृष्टि-संरचनाके पूर्व पितामह ब्रह्माद्वारा हुआ था। सृष्टि-संरचनाके आरम्भमें नानाविध जलचर एवं चतुष्पद-जीवोंकी सर्जनाके पश्चात् मानवकी रचना हुई। चतुष्पद-जीव-निकायोंमें मानवके लिये सर्वोपयोगी प्राणीके रूपमें गौका महत्त्वपूर्ण स्थान है। गौको पृथ्वी, वाणी तथा इन्द्रिय-शब्दोंसे अभिहितकर आर्योंने अपने प्राचीन ग्रन्थोंमें गौको विशेष समादर दिया है। विश्वके विस्तृत विभिन्न ग्रन्थोंमें गौकी कल्याणकारिणी सर्वोपयोगिताकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की गयी है। गौकी समादरणीयता तथा सर्वोत्कृष्टताका इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा! पुराणोंमें वर्णन आया है कि गौके रोममण्डलमें अनेक देवोंका निवास है। इसके प्रतिपादनमें आर्योंने अपनी दैनिक प्रार्थनामें गौके सर्वाङ्गीण महत्त्वको स्वीकार किया है—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे यमपाशं व्यपोहति॥

तात्पर्य यह कि गायें हमारे आगे-पीछे तथा समीपमें सदा रहें और हम गायोंके मध्य रहते हुए अपने जीवनके क्षणोंको आनन्दमय बनाते रहें। गायें सदासे ही लोकपालोंकी लक्ष्मी अर्थात् सम्पत्तिरूपमें प्रतिष्ठित रही हैं। गायें यज्ञोंके लिये प्रचुर घृत प्रदान करनेके साथ मानवको यमपाशसे मुक्त कर देती हैं—मानवके विभिन्न व्याधियोंका निर्हरण करती हैं।

गौकी इससे अधिक महत्ता और क्या होगी कि इसे भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्ण आदिकी समकक्षता प्रदान की गयी है और प्राणदायिनी औषधियोंके उत्पाटनमें श्रीराम-कृष्ण तथा ब्राह्मणोंके साथ ही गौसे भी यह प्रार्थना की गयी है कि वह अपने तप एवं तेजसे इस औषधिमें प्रविष्ट होकर व्याधियोंका विनाश कर मानवके लिये कल्याणकारक बने—

महेन्द्रामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि।
तपसा तेजसा वापि प्रशाम्यध्वं शिवाय वै॥

(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान ३०। १०)

दीर्घायुष्कामीय अध्यायोंमें रसायनके महत्त्वका निर्देशन करते हुए कहा गया है—

अत्र गव्यं तु सम्प्रोक्तं जीवनीयं रसायनम्।

अर्थात् गव्यजनित पदार्थोंका सेवन सर्वश्रेष्ठ जीवनीय रसायन है।

द्वापरयुगमें व्रज और वृन्दावनमें लाखों-लाख गायोंका समूह रहता था। गोदुग्ध तथा नवनीतके सेवनसे श्रीकृष्ण, बलराम तथा गोपगणोंने अपरिमित शक्ति अर्जितकर कंस आदि क्रूर दैत्योंका संहार किया था।

गोदुग्धके विषयमें आयुर्वेद-चिकित्साशास्त्रियोंने कहा है कि—

गोक्षीरमनभिष्यन्दि स्निग्धं गुरु रसायनम्।
रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः॥
जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम्॥

(सुश्रुतसंहिता, सूत्र० ४५-४६)

भारतीयोंके प्रत्येक शुभकर्मके आरम्भमें देह-शुद्धिके रूपमें पञ्चगव्य—गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमय तथा गोमूत्रके प्राशनका विधान है।

अनेक आयुर्वेदीय औषधियोंका निर्माण गोमूत्रद्वारा होता है। गोमूत्रमें रोग-निर्हरणकी अद्भुत शक्ति निहित है। सर्पदंशकी आरम्भिक अवस्थामें प्रत्येक दस मिनटके पश्चात् गोमूत्रके साथ 'संजीवनी-वटी'के प्रयोगसे मानवमें नवजीवनका संचार होता है। यदि मानव प्रतिदिन गोमूत्रका सेवन करे तो उसके अस्वस्थ होनेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मधुमेहकी तीव्रतामें गौको साबूत गेहूँ खिलानेके पश्चात् उसके गोबरसे निकले गेहूँको धो-सुखाकर उसकी रोटी बनाकर खानेसे विशेष लाभ होता है।

संग्रहणीकी तीव्र अवस्थामें मात्र गोतक्रके सेवनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपूर्व लाभ होता देखा गया है—

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात्।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम्॥

(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान १५। ४३)

अत्यन्त क्षीणकाय सद्य:मातृहीन बालकके लिये गोदुग्धका सेवन अमृतत्वका कार्य करता है। अत: गोमाताको माताका द्वितीय पद प्राप्त है।

रक्तदोष-जैसे तीव्रतम विकारमें गोमूत्रसे आशातीत लाभ देखा गया है।

आयुष्कामीय रसायनोंके सेवनके पूर्व और रसायनके सेवनकालमें देव, गौ तथा ब्राह्मणोंको आगे कर रसायन-कुटीमें प्रवेश तथा गौ, ब्राह्मण और देवोंकी अर्चनामें रत रहनेका निर्देशन मिलता है—

देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥

(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान १। ११)

चरकसंहिता आदि आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें यह निर्दिष्ट है कि देव, द्विज, गुरु एवं गौकी अवहेलनासे दुश्चिकित्स्य कुष्ठ आदि व्याधियोंका उद्भव होता है। इसके प्रतीकारके लिये गोग्रास, गोप्रदक्षिणा तथा गो-सेवाका विधान बतलाया गया है।

आयुर्वेदका प्रत्येक स्थल गौ एवं गौके दुग्ध आदि पदार्थोंके वर्णनसे परिपूरित है। सच पूछा जाय तो यदि आयुर्वेदसे गौको हटा दिया जाय तो आयुर्वेदकी महत्त्वहीनतामें कोई संदेह नहीं है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

महाभारतके वनपर्वमें युधिष्ठिर-यक्ष-संवादका प्रकरण मानव-मात्रके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ही नहीं, उपयोगी भी है। पाण्डव जब वनवासमें थे, तो वे एक समय मुसीबतमें फँस गये थे। वे एक मायामृगके पीछे दौड़े, थक गये, पसीनेसे तर-बतर हो गये, पर वह मायामृग गायब हो गया। वे एक वृक्षके नीचे विश्रामके लिये बैठ गये, उन्हें जोरकी प्यास लग रही थी। महाराज युधिष्ठिरने सर्वप्रथम नकुलको पानीकी खोजमें भेजा। एक सरोवरके पास पहुँचकर ज्यों ही नकुलने पानी पीना चाहा, उसी समय आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'इस सरोवरका पानी पीनेका साहस न करो, यह तालाब मेरे अधिकारमें है, यदि तुम मेरे प्रश्नोंका सही उत्तर दे दोगे तो तुम जलका उपयोग कर सकते हो, यदि प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे पाओगे तो तुम अचेत हो जाओगे।' आकाशवाणी सुनकर पहले तो नकुल विचलित हुए, किंतु प्यास अधिक लगी थी, अत: रोके जानेपर भी उन्होंने पानी पी ही लिया। पानी पीना क्या था कि वे अचेत होकर वहीं तालाबके किनारे गिर पड़े। जब नकुल वापस नहीं लौटे तो चिन्तित हो युधिष्ठिरजीने सहदेवको भेजा। उनके साथ भी वही बात हुई। वे भी अचेत हो गिर पड़े। इसी प्रकार एक-एक कर सभी भाई पानीकी खोजमें गये, किंतु वे यक्षके प्रश्नोंके जवाब न दे सके, इसलिये तालाबके किनारे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। अन्तमें महाराज युधिष्ठिर जलाशयके पास पहुँचे तो उन्हें भी आकाशवाणी सुनायी दी—'तुम्हारे भाइयोंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर नहीं दिया, इसलिये मेरे शापसे उनकी मृत्यु हुई है। यदि तुम पानी पीना चाहते हो तो पहले मेरे सवालोंका उत्तर दो, नहीं तो तुम्हारी भी यही गति होगी।'

धर्मराज स्वयं युधिष्ठिरकी परीक्षा लेना चाहते थे, वे पहले मायावी मृग बने थे, अब भयंकर डरावने यक्षके रूपमें सरोवरसे निकले। युधिष्ठिरने कहा—'ठीक है, तुम प्रश्न पूछो। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा।' इसपर यक्षने अनेक प्रश्न पूछे और महाराज युधिष्ठिरने उनके जो उत्तर दिये उनका कुछ सार भाग यहाँ दिया जा रहा है। प्रत्येक जिज्ञासुको इनपर अवश्य विचार करना चाहिये—

यक्षने पूछा—'युधिष्ठिर, बताओ धनोंमें उत्तम धन कौन-सा है और सबसे बड़ा धनी कौन है?'

रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, जमीन-जायदाद आदि सभी धन हैं। अब यह कैसे तय किया जाय कि कौन-सा धन सबसे बेहतर है? लोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अपनी पूँजी संचित कर रहे हैं। अमीरोंकी गगनचुम्बी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, महल, आलीशान इमारतें खड़ी हैं, बड़े-बड़े कारोबार हैं। पैसेके पीछे समाजमें झूठ, फरेब, हिंसा, डकैती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाचार सब कुछ होता है। सभी अपने-अपने धनको उत्तम कमाई मानते हैं।

पर धर्मराज युधिष्ठिरका उत्तर था—'धनोंमें उत्तम धन तो शास्त्र-ज्ञान है—(**धनानामुत्तमं श्रुतम्**)। और जो मनुष्य प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख और भूत-भविष्यत्—इन द्वन्द्वोंमें सम है, वही सबसे बड़ा धनी है तथा जो निःस्पृह, शान्तचित्त, सुप्रसन्न और सदा योगयुक्त है, वही सब धनियोंका स्वामी है।'

मनुष्य और पशुमें केवल बुद्धिबल और विवेकका ही अन्तर है। पशु केवल एक क्षणकी बात ही सोच सकता है, जबकि मनुष्य दूरदर्शिता, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग, यातायात, चिकित्सा, अध्यात्म, मनोविज्ञान, दर्शन, धर्म आदिमें जो अद्भुत विकास पाते हैं, वह मानवकी विलक्षण बुद्धि, प्रतिभा-कौशल, दूरदर्शिताके ही सुखद परिणाम हैं। बुद्धि-बल वह महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके समुचित विकास और परिष्कारद्वारा ही ज्ञानका विकास होता है, इसलिये 'ज्ञान ही सर्वोत्तम धन है।'

प्रश्न—'लोकमें श्रेष्ठ धर्म क्या है?' (**कश्च धर्मः परो लोके**)।

उत्तर—'समाज और संसारमें दया ही श्रेष्ठ धर्म है।' (**आनृशंस्यं परो धर्मः**)। और सबके सुखकी इच्छा रखना ही उत्तम दया है (**दया सर्वसुखैषित्वम्**)। वास्तवमें यदि अपनेसे दीन-हीन, असहाय, बीमार, आश्रित, बच्चों, वृद्धों, जरूरतमन्द लोगोंपर दया न की जाय, विकलाङ्गोंपर दया करके सेवा-सहायता न दी जाय, तो समाज कैसे उन्नति करेगा?

प्रश्न—'किसके साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती?' (**कैश्च संधिर्न जीर्यते**)।

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—'सत्पुरुषोंके साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती' (**संधिः सद्भिर्न जीर्यते**)। दूसरेके चरित्र, मन्तव्य, धर्म, हैसियत, विद्या, बुद्धि और अनुभव आदिको परखकर विद्वानों एवं सत्पुरुषोंसे ही मित्रता करनी चाहिये। कुसंगति मनुष्यके सर्वनाशका कारण बन सकती है।

प्रश्न—'पृथ्वीसे भी भारी चीज क्या है?' (**किंस्विद् गुरुतरं भूमेः**)।

उत्तर—'माताका गौरव पृथ्वीसे भी अधिक है।' (**माता गुरुतरा भूमेः**)। माताकी सेवा, दया, वात्सल्य तथा उसका निःस्वार्थ भाव सबसे भारी चीज है। माताका ऋण कभी भी नहीं उतरता। माताकी जितनी भी सेवा की जाय, कम है। माताके समान दूसरा कोई सच्चा गुरु भी नहीं है।

प्रश्न—'दुर्जय शत्रु कौन है?' (**कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसाम्**)।

उत्तर—'मनुष्यके मनोविकारोंमें क्रोध (उत्तेजना) सबसे दुर्जय शत्रु है' (**क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुः**)। क्रोधी अपने कार्योंसे उत्पन्न होनेवाले भयानक फल, वैर-विरोध, झगड़ों, अपमान, तुच्छ बातोंकी भी परवाह नहीं करता। उसे मनमें बसानेसे वह ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार करने लगता है। मानसिक संतुलन खो जाता है और अन्याय, अत्याचार शुरू हो जाता है।

प्रश्न—'सच्चा सुखी कौन है?' (**को मोदते**)।

उत्तर—'जिसके सिरपर ऋण (कर्ज) न हो' (**अनृणी**)।

प्रश्न—'संसारमें सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?' (**किमाश्चर्यम्**)।

उत्तर—'नित्य ही प्राणी यमलोक जा रहे हैं, बच्चे-जवान, स्त्री-पुरुष किसी भी आयु, वर्गके अमीर-गरीब, कमजोर-मजबूत, भले-चंगे नये-नये रोगोंसे ग्रसित होकर, युद्ध, अकाल, महामारी, भूकम्प, दुर्घटनाओं, वैर-विरोध और हिंसासे मर रहे हैं, फिर भी जो बचे हुए हैं, वे सदा-सर्वदा जीनेकी इच्छा रखते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य भला और क्या होगा?'

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महा०, वन० ३१३। ११६)

प्रश्न—'चलनेके लिये उत्तम मार्ग कौन-सा होता है?'

उत्तर—'जिस सीधे-सादे सन्मार्गसे, धर्मके रास्तेसे श्रेष्ठ जन, साधु-विद्वान्, महान् जन चले हैं, जो धर्मशास्त्रोंके उपयुक्त है, परिस्थितियोंके अनुसार उचित है, निष्कण्टक है, झूठ-कपट आदिसे दूर है, वही मार्ग प्रशस्त है। उसी मार्गसे चलना चाहिये' (**महाजनो येन गतः स पन्थाः**)।

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरने यक्षको अपने तर्कसम्मत धर्ममय उत्तरोंसे संतुष्ट कर दिया। फलतः धर्म-भावना, विवेक और बुद्धि-चातुर्यसे प्रसन्न होकर यक्षने उनके भाइयोंको जीवन-दान दिया। वे यक्ष और कोई नहीं युधिष्ठिरके पिता साक्षात् धर्मराज थे और युधिष्ठिरकी परीक्षा ले रहे थे।

ये उत्तर आज भी महत्त्वपूर्ण और विचारणीय हैं। जीवनमें इन्हें काममें लानेसे महान् लाभ होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

[गताङ्क पृ०-सं० ६५५ से आगे]

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

दृश्य—५

गिरिधरसे ब्याह

[मीरा गिरिधरको गोदीमें लिये शृंगार कर रही है। चौकीपर पधराकर भोग लगाती है। इसी समय शहनाई बजनेकी आवाज सुनायी देती है। मीरा बड़ी माँसे पूछती है।]

मीरा—बड़ी माँ, ये गाजे-बाजे कैसे बज रहे हैं? *(सहसा उठकर सीढ़ीपर चढ़कर नीचे देखती है।)* बड़ी माँ, यह घोड़ेपर कौन बैठा है? उसके सिरपर क्या है?

बड़ी माँ—बेटी! यह दूल्हा है। पीछे चल रहे लोग बराती हैं। यह सिरपर सेहरा पहनकर विवाह करने जा रहा है।

मीरा—विवाह क्या होता है माँ?

बड़ी माँ—पति-पत्नीका शुभ बन्धन ही विवाह होता है।

मीरा—बन्धन! बड़ी माँ, बन्धनमें तो बँध जाना होता है। वह शुभ कैसे हो सकता है?

बड़ी माँ—मीरा, तुम तो बातको टेढ़ा करके कहती हो। बन्धन शुभ भी तो हो सकता है?

मीरा—*(गाजे-बाजेकी ओर इशारा करके)* तो ये गाजे-बाजे क्यों?

बड़ी माँ—मीरा, शुभ अवसरपर बाजे तो बजाये ही जाते हैं।

मीरा—बड़ी माँ, शुभ अवसर क्या होता है?

बड़ी माँ—*(मीराकी ओर मुख करके समझाती है)* मीरा, शुभ अवसर वह है, जैसे लगनको शुभ अवसर कहा जाता है।

मीरा—मेरा लगन किसके साथ होगा बड़ी माँ?

बड़ी माँ—तेरा दूल्हा! *(प्यारका भाव दिखाते हुए)* तेरा दूल्हा एक सुलक्षण राजकुमार होगा।

मीरा—बड़ी माँ, वह सुलक्षण राजकुमार कौन है?

बड़ी माँ—*(थोड़ा झेंपकर इधर-उधर देखती है)* समय आनेपर पता चलेगा मीरा!

मीरा—बड़ी माँ, अभी बता दो न।

बड़ी माँ—*(मीराके हाथमें गोपालको देखते हुए)* इन्हीं गिरिधर गोपालसे।

मीरा—माँ, तुमने मेरे मनकी बात कह दी। माँ! गिरिधर गोपालसे मेरा विवाह कब होगा?

बड़ी माँ—*(कुछ वात्सल्य-मुद्रामें)* मीरा, तू बड़ा हठ करती है। तुझे सभी बातोंका उत्तर अभी-इसी समय चाहिये। जाओ, गिरिधरके साथ अभी ब्याह कर लो।

[मीरा भाग जाती है और सखियोंको बुलाती है।]

मीरा—*(खिड़कीसे झाँकते हुए)* अरी सखियो! जल्दी आओ, एक बहुत बड़ा और शुभकार्य करना है।

[छोटी-बड़ी सखियाँ कमरेमें आ जाती हैं।]

मीरा—*(सखियोंकी ओर इशारा करके)* सखियो! मैंने आज तुम सबको न्योता है। मेरा अभी-अभी ब्याह होनेवाला है।

एक सखी—*(मीरासे हँसकर)* मीरा, ब्याह! अभीसे! और इसी समय? किसके साथ?

मीरा— *(गिरिधर गोपालकी ओर संकेत करते हुए)* इन्हीं गिरिधर गोपालके साथ। तैयारी करो। ढोलक, झाँझ-मजीरे बजाओ और सब मिलकर ब्याहके मङ्गल गीत गाओ। तबतक मैं लहँगा-चुनरी पहनती हूँ।

[मीरा लहँगा-चुनरी पहनने जाती है, इधर गाजे-बाजे होने लगते हैं। मीरा लहँगा और चुनरीमें आ जाती है।]

एक सखी—मीरा, इस शुभ अवसरपर कुछ गाकर सुनाओ न!

मीरा—*(लयसे गाती है)*—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे पिया जान न दीजै, हो।
चलो री सखी! मिला राखिये नैनन, रस पीजै, हो।
स्याम सलौनो साँवरो, मुख देखत जीजै, हो।
जोई जोई भेषसों हरि मिले, सोई सोई कीजै, हो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बड़भागन रीझै हो॥

[बड़ी माँका प्रवेश । मीरा सज-धजकर खड़ी है। गिरिधर गोपाल सामने खड़े हैं। मीराको समझाती है।]

बड़ी माँ—अरी मीरा, गिरिधर गोपालको दाहिनी ओर बैठा। *(मीरा गिरिधर गोपालको अपनी दाहिनी ओर बैठाती है)* लो मीरा, तेरा ब्याह हो गया। अब दूल्हेको और सब सखियोंको भोजन करवाओ।

दृश्य—६

गोपाल-सेवाकी विधि

[समय प्रातः। वह महात्मा जिन्होंने गिरिधर गोपाल मीराको दिये थे, आज पुनः आते हैं। दूदाजी महात्माको मीराके पास लाते हैं।]

मीरा—*(महात्माजीको देख नम्रतासे हाथ जोड़कर)* जय श्रीकृष्ण महाराज! *(मीरा महात्माको साष्टाङ्ग प्रणाम करती है)।*

महात्मा—*(मीराको संकेत करके)* बेटी, सेवा कैसी चल रही है?

दूदाजी—*(महात्माजीसे मीराकी दिनचर्या बताते हैं)* महात्माजी, मीरा तो दिन-रात गिरिधर गोपालकी सेवामें ही तल्लीन रहती है। इसको मुझसे भी मिलनेका समय नहीं। और इसने गिरिधरसे ब्याह भी कर लिया है।

महात्मा—*(प्रसन्नमुद्रामें)* यह अच्छा किया। इनके संग कोई सम्बन्ध तो जोड़ना ही चाहिये। तभी इनसे प्रीति बढ़ती है।

दूदाजी—वह कैसे महाराज?

महात्मा—इनको माता, पिता, बन्धु या सखा मानकर या इनके सेवक होकर इनकी निष्काम सेवा करो—नाता जोड़ो तो प्रीति जल्दी और अधिक बढ़ती है।

मीरा—यह तो मेरे पति हैं महाराज! *(अन्तराल)*

महात्मा—*(स्वगत)* गोपालकी सखियाँ भी कात्यायनीकी पूजा करते समय नन्दनन्दनको पति-रूपमें प्राप्त करनेकी कामना करती थीं।

मीरा—*(महात्मासे)* महाराज, इनकी सेवाकी विधि क्या होनी चाहिये?

महात्मा—मीरा, प्रेममें कोई भी सेवा इनको प्रिय है। प्रेममें नेम कहाँ। वैसे प्रातः उठकर, नहा-धोकर इनको जगाना चाहिये। जगाते समय मधुर पद इन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। बाल-भोगमें इनको माखन-मिसरी बहुत प्रिय है। फिर ऋतुके अनुसार इनको गरम या ठंडे पानीसे स्नान। अत्यधिक सुन्दर शृंगार धारण करवाना। समयके अनुसार भोग और आरती।

मीरा—*(महात्माजीसे)* आजसे इनकी सेवा इसी रीतिसे होगी।

[समय प्रातःकालका। मीरा गिरिधर गोपालजीका मन्दिर सजाती है। शय्याके ऊपर मुलायम और जड़ाऊ गद्दा बिछाती है। एक ओर जल-झारी रखती है तथा एक बड़े कटोरेमें माखन-मिसरी मिलाती है और एक ओर सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण सजाती है। साथ-साथ गिरिधर गोपालको जगानेके लिये पद गाती है—]

जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे॥ टेक॥
रजनी बीती भोर भयो है, घर-घर खुले किवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कंगना के झनकारे॥
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर-नर ठाड़े द्वारे।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे॥
माखन-रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, सरण आयकूँ तारे॥

[गीत गाती हुई मीरा अपने गिरिधर गोपालको आह्लाद-मुद्रामें कानोंमें कुण्डल और गलेमें माला पहनाती है। मुकुटमें जब मोर-पंखी लगाती है तो गोपाल सिर हिला देते हैं और मुकुटसे मोर-पंखी कुछ खिसक जाती है, गोपाल मुसकरा देते हैं। गोपालके सामने भोग रखती है तो गोपालजी अरोग लेते हैं। मीरा भजन गाती हुई नाचती है—]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ॥ टेक॥
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके सँग खेलूँ, ज्यूँ ज्यूँ वाहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो देवै सोइ खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीति पुराणी, उन बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावै तितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥

दृश्य-७

विवाह-प्रस्ताव

[दासी मीराको सूचना दे रही है—मीराजी, आपके ताया राणा वीरमदेव चित्तौड़से अभी-अभी वापस आये हैं। वे आपको पूछ रहे थे। अभी इधर ही आ रहे हैं, राणा वीरमदेवका प्रवेश।]

वीरमदेव *(मीरासे)*—बेटी मीरा, तुम्हारे सौभाग्यकी कहाँतक सराहना की जाय। *(अन्तराल)* चित्तौड़ाधिपति महाराज संग्रामसिंहने तुझे पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। युवराज कुमार भोजराज उनके सबसे बड़े पुत्र हैं।

[मीरा अपने तायाको 'बाबूसी' कहकर सम्बोधित करती है]

मीरा—*(स्नेह दिखाते हुए)* बाबूसी, मेरा तो विवाह विधिवत् बाल्यावस्थामें ही हो गया। गिरिधर गोपाल मेरे पति हैं।

वीरमदेव—*(मीरासे विनोदमें समझाते हुए)* मीरा, गिरिधर गोपाल तो सबके पति हैं ही। वही माता-पिता हैं, वही सर्वस्व हैं। बेटी, मनुष्य-देह पाकर भगवान्की पूजा करना तो बहुत अच्छा है, परंतु संसारके नियमोंका पालन भी करना होता है। और फिर मैंने तुम्हारे पिताको वचन दिया था, तुम्हारा विवाह किसी कुलीन परिवारमें करूँगा। क्या तुम चाहती हो मेरा वचन झूठा हो?

मीरा—*(फूट-फूटकर रोती है)* बाबूसी, मैंने कौन-सा अपराध किया। मैं इन चरणोंसे दूर नहीं रहूँगी।

[तायाजी इस बातसे अपना अपमान समझकर अप्रसन्नकी मुद्रामें आँखोंको पोंछते बाहर जाने लगते हैं।]

मीरा—*(रोते-रोते)* बाबूसी, इसमें रुष्ट होनेकी क्या बात है?

वीरमदेव—मीरा बेटी, मेरी तो नाक कटेगी। सगाईके इतने सुन्दर प्रस्तावको मैंने इसलिये स्वीकृति दी कि तुम राज करोगी। मैं जो भी करूँगा, तुम्हारी भलाईके लिये। इतना अच्छा प्रस्ताव तो बड़े भाग्यसे मिलता है।

मीरा—तो यह सुख किसी औरको लेने दो। मेरा सारा सुख तो गिरिधरसे जुड़ा हुआ है।

वीरमदेव—मीरा, ऐसी बात है तो मैं तो जीने योग्य भी न रहूँगा। किसीको कौन-सा मुख दिखाऊँगा।

[वीरमदेव मीराकी बड़ी माँसे जाकर कहते हैं।]

वीरमदेव—देखोजी, एक जटिल समस्या आ गयी है। मीराने अपना लगन गिरिधरसे कर लिया। इधर मैं राणा संग्रामसिंहको वचन दे चुका हूँ और अब मीरा हठ कर रही है। तुम्हीं उसे समझाओ न।

[मीराकी 'बड़ी माँ' का प्रस्थान, वह मीराके पास पहुँचती है।]

बड़ी माँ—*(मीराको प्रेमसे पासमें बिठाकर)* मीरा बेटी, तुम्हारे तायाजी तुम्हारे हठसे बहुत दु:खी हैं।

मीरा—माँ, तुमने तो मेरा विवाह गिरिधरसे कर दिया था न!

बड़ी माँ—*(बात काटती और हँसती हुई)* अरी पगली, वह भी कोई विवाह था। विवाह तो विधि-विधानसे होता है।

मीरा— *(प्यारसे लजीले-भावमें)* माँ, मैंने सब विधि-विधान कर लिये। विधिपूर्वक भाँवरें भी ले लीं।

बड़ी माँ—*(मीराकी बात सुनकर)* मीरा, विधि-विधानके अनुसार तो वर और वधूके वस्त्राञ्चल बाँधकर भाँवरें होती हैं।

मीरा—*(आश्चर्यके साथ)* वस्त्राञ्चल! तुम निर्जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्त्राञ्चलके बाँधनेकी बात करती हो। मैंने अपने मन-मन्दिरमें उन्हीं गिरिधरके प्रेमकी गाँठ बाँधी और यह कसती ही गयी। आज तो मेरा मन-मन्दिर और गिरिधरका हृदय एकाकार हो गया है। *(अन्तराल)*

बड़ी माँ—*(मीरासे)* मैं मानती हूँ मीरा, कि गिरिधरसे ऐसा प्रेम सभीको करना चाहिये, परंतु....।

मीरा—*(माँसे)* यहाँ परंतुके लिये कोई स्थान नहीं है माँ, गिरिधरसे विवाह करनेके पश्चात् मैं अपनी चूड़ी नहीं फोड़ूँगी, माँग नहीं मिटाऊँगी।

बड़ी माँ—*(अचम्भेमें)* कैसी माँग और कैसी चूड़ी? किसने भरी और किसने पहनायी? क्या स्वयं ही पहन ली?

मीरा—माँ, यह खेल नहीं। देख लो माँ, गिरिधरको वरकर आज भी मेरे तन-वदनसे हल्दी, केसर, कपूर आदिके उबटनकी सुगन्धि आ रही है और ये मेरे मेंहदी-रचे हाथ। माँ, देख लिये सब प्रमाण!

बड़ी माँ— *(मीराके हाथोंको देखती और सूँघती हुई)* मीरा, यह क्या लीला है?

मीरा— *(माँसे)* लीला मेरे गिरिधरकी। उनकी, जिन्होंने मुझे कृपाकर स्वीकार किया, अपनाया। *(गाती है—)*

माँ, मोहे गिरधर मिल्या जी, पूरब जनम के भाग।

बड़ी माँ—*(मीरासे पूछती है)* और जिस सगाईकी तुम्हारे तायाने हाँ की, उसका क्या होगा?

मीरा—माँ, मैं भी तुमसे एक प्रश्न करती हूँ। क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारी बेटी दो पति करे। अविनाशीको पति करनेके बाद नाशवान्‌को?

बड़ी माँ—नहीं बेटी! पर राणाकी सगाई कैसे लौटायी जाय। लोकनिन्दा और राणाके कोपकी दुधारी तलवारसे कौन रक्षा करेगा?

मीरा—मेरे गिरिधर गोपाल।

बड़ी माँ—*(आँचलमें मुख छिपाती रोती हुई)* अच्छी बात मीरा। बेटी, तू अपनी बात ही मना ले। हम ही मरेंगी। मैं समझती थी, मैंने तुम्हारी ताई होनेके नाते तुम्हें माँसे भी अधिक चाहा है, तू मुझे निराश न करोगी। ऐसी स्थितिमें मेरा जीवन-धारण रखनेसे क्या लाभ?

मीरा—*(माताके गलेसे लिपटकर)* माँ, मेरी बड़ी माँ! रोओ मत। मुझे माँकी कोई याद नहीं। तुम्हींने पूरा, बल्कि माँसे भी अधिक प्यार दिया। तुम्हारे गर्म-गर्म आँसू मेरे सुखको जला देंगे। *(सिसकियाँ भरते हुए धीरेसे)* माँ, मैं वही करूँगी जो तुम कहोगी।

[मीरा माँको छोड़कर गिरिधरके पास चली जाती है। सिसकियाँ भरती भजन गाती है—]

छोड़ मत दीजो जी महाराज॥ टेक॥
मैं अबला बल नाँय गुसाई, तुम्हीं मेरे सिरताज।
मैं गुणहीन गुण नाँय गुसाई, तुम समरथ महाराज॥
थाँरी होय के किणरे जाऊँ, तुम्हीं हिवड़ारो साज।
मीरा के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज॥

दृश्य—८
विवाह

[मीराको सखियाँ जयमाला पहनानेके लिये ले जा रही हैं। मीराके हाथमें जयमाला दे देती हैं। मीरा जयमाला पकड़े रखती है। उसकी सहेलियाँ उसका हाथ उठाकर जयमाला पहनवा देती हैं। मीराकी दृष्टि नीचेकी ओर झुकी रहती है। ब्याहके भाँवरें पड़ते हुए गिरिधरकी मूर्ति मीराकी अँगूठीमें दिखायी पड़ती है तथा उन्हींपर मीराकी दृष्टि जम जाती है। मीराकी बिदाईकी तैयारी। सब सखियोंका रुदन। रोती हुई बड़ी माँ मीराको गले लगाती है। कुछ क्षण रोती रहती है, फिर पूछती है—]

बड़ी माँ—मीरा बेटी, हमने हर प्रकारका सामान तुम्हारे लिये दिया है। यह तो तुम्हें विदित ही है। बेटी, तुम्हारे मनमें किसी वस्तुकी इच्छा हो तो निःसंकोच कह दो।

मीरा—*(सिर नीचा किये संकोचमें)* माँ, मेरे गिरिधर। *(यह कहते ही मीरा फूट-फूटकर रोने लगती है)*

[बड़ी माँ मीराको सान्त्वना देते हुए सखियोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिधर लानेका आदेश देती है। मीरा गिरिधरको अपनी भुजाओंमें भरकर आलिङ्गन-मुद्रामें दीखती है। रुदन-अवस्थामें डोली उठा ली जाती है।

भोजराज और मीरा एक बग्घीमें बैठकर भ्रमण करने जाते हैं। थोड़ी दूरपर एक मन्दिर दीखता है। भोजराज मीराको निकटमें बैठनेको कहते हैं।]

भोजराज—मीरा, आओ मेरे निकट बैठो।

मीरा— *(भोजराजसे नम्रता और शीलताके साथ)* मैं आपका हृदयसे आदर करती हूँ। आपके लिये मेरे मनमें उच्च भाव हैं। किंतु पतिरूपमें मेरा सम्बन्ध तो गिरिधर गोपालसे है। मैं उन्हींकी चेरी बन चुकी हूँ। आप मुझसे किसी प्रकारके सांसारिक सम्बन्धकी आशा न रखें।

[भोजराज बग्घीके घोड़ोंको थाम लेते हैं।]

भोजराज—ठीक है, ऐसा मैंने पहले भी कई लोगोंके मुखसे सुना था। मैं तुमसे सांसारिक सम्बन्ध नहीं रखूँगा।

[बग्घीके घोड़ोंको वापसीके लिये मोड़ते हुए]

(क्रमशः)

मानव और गाय—यह कैसा रिश्ता?

(श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'सियहरि')

खूँटेसे बँधे हुए बछड़ेको मानवने बन्धन-विमुक्त किया। उसने दौड़कर अपनी माँके थन मुँहमें लिये। गायका वात्सल्य-स्रोत उमड़ पड़ा और दुग्ध-धारा बछड़ेके मुखमें पड़ने लगी।

इने-गिने क्षण ही बछड़ेको स्तन-पान करते हुए बीते होंगे कि अपनेको दक्ष एवं कर्म-तत्पर माननेवाले मानवने उसकी रस्सी खींचकर पुनः उसे खूँटेसे बाँध दिया। उसकी जननी तड़प उठी। उसने दौड़कर उसके पास जाना चाहा; पर स्वयं भी खूँटेसे बँधी थी। जा न सकी। मन मारकर बेचारी विवश नेत्रोंसे अपने लालाको निहारती रह गयी।

इधर मानव अपनेपर...,अपनी करनीपर, अपनी बुद्धिमत्ता एवं शक्ति-सम्पन्नतापर गर्व करते हुए दुहनी लेकर गायका दूध दुहने बैठ गया। सहनशीलताकी मूर्ति, करुणाकी मूर्ति गायने किंचिन्मात्र भी विरोध न कर उसके पात्रको दुग्धसे भर दिया।

अपनी मानवतापर गर्व करते हुए मानवने पुनः बछड़ेको बन्धन-विमुक्त कर दिया—दुही गायके थन चूसनेमात्रके लिये। गायको भी माता कह, एक-दो हाथ उसके पीठ और गलेपर फेरकर उस युक्ति-विशारदसे उसे (अपनी समझमें) बहला-फुसला दिया।

पर यहीं मानव भूलमें था। भोली गाय बहली-फुसली नहीं थी, वरन् उसका भोलापन...उसका सीधापन उस मानवको वह अन्तिम सारभूत तथ्य अवगत करा गया था, जिसे खोज निकालनेका श्रेय मानव स्वयं लेता है। 'सबमें एक आत्मा है, सब एक ही हैं'—इस भावनासे विभोर होते हुए उस गायने मानवको पुत्र मान लिया और सहज-भावसे, प्रसन्न-मनसे, अपने बछड़ेके भूखा रहते हुए भी वह उसे दूध पिलाने, पिला-पिलाकर पालने-पोसने लगी।

लेकिन सारभूत तत्त्वकी खोज करनेवाला...उसे खोज निकालनेवाला....उसका दिग्दिगन्तमें प्रचार-प्रसार करनेवाला मानव स्वयं उस तत्त्वको हृदयङ्गम न कर सका, उसे अपनेमें रचा-पचा न सका। गायको माता कहकर भी वह उसके बछड़ेको अपना छोटा भाई न समझ सका। उसके पेट भर लेनेपर ही दूध दुहना उसे स्वीकार न हुआ।

इतना भी होता तो गनीमत थी, पर मानव तो आज ऐसी करुणामयी गाय—अपनी माताके ही वधपर उतारू है? हाय! हाय! यह कैसा रिश्ता है माँ-बेटेका। यह कैसी मानवता है? अरे मानव! तुझे ऐसा करते क्या शर्म भी नहीं आती?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम-पद-महिमा

(डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

प्रभो! राम! तेरे चरणोंकी महिमा अपरम्पार है॥

तेरे चरण-परससे पवि-सम शिला हो गयी दिव्य कामिनी;
तेरे पदकी गरिमासे बन गयी भीलनी अमर-भामिनी।
तेरे पदकी अनुकम्पासे हनूमान आराध्य हो गये;
तेरे पदकी प्रभुतासे केवटके गुण जनसाध्य हो गये॥
भक्त नमन तेरे श्रीपदका करता बारम्बार है।
प्रभो! राम! तेरे चरणोंकी महिमा अपरम्पार है॥

तेरे पदको भज पापीजन भवसागरके पार हो गये;
तेरी पद-पाथोज-कृपासे नरक स्वर्गके द्वार हो गये।
तेरे पदके दिव्य दरससे सुर-नर-मुनि बड़भागी होते;
तेरे पदके सरस परससे जीव स्वर्गके भागी होते॥
दुखियारोंका सदा एक ही तेरा पद आधार है।
प्रभो! राम! तेरे चरणोंकी महिमा अपरम्पार है॥

तेरे श्रीचरणोंमें जो भी एक बार नत होता है;
दे देता तू उसे अभयपद, वह नर सुर-सम्मत होता है।
तेरे चरणोंकी छायामें एक बार जो आ जाता है;
भवके तीनों तापोंसे वह मुक्ति सनातन पा जाता है॥
भव-पीड़ित जीवोंका तेरी पदरज ही उपचार है।
प्रभो! राम! तेरे चरणोंकी महिमा अपरम्पार है॥

अन्तर्मनसे जो करता है तेरे पदका ध्यान निरन्तर;
जाती नहीं दीनता उसके द्वार कभी भी भूल-भटककर।
तेरा पद तो कल्पवृक्ष है, हर इच्छा पूरी कर देता;
शत-शत अभावके सागरको क्षणभरमें पूरा भर देता॥
तेरा पद करुणा-वरुणालय, सुखका विपुलागार है।
प्रभो! राम! तेरे चरणोंकी महिमा अपरम्पार है॥

तेरी पद-मकरन्द-सुरभिमें जो आसक्त सदा होता है;
जगकी उत्कट विषय-गन्धमें आसक्त कभी ना होता है।
तेरे पद-नखके प्रकाशसे उर-पुरका तम हट जाता है;
अग-जग ज्योतिर्मय हो जाता भव-पथ सुखसे कट जाता है॥
तेरी चरण-तरी गहता जो, उसका बेड़ा पार है।
प्रभो! राम! तेरे चरणोंकी महिमा अपरम्पार है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

जो जगत्‌को नहीं जानते, वही जगत्‌में फँसते हैं और जो परमात्माको नहीं जानते, वही परमात्मासे विमुख होते हैं।

* * *

नाशवान्‌में अपनापन अशान्ति और बन्धन देनेवाला है।

* * *

अगर अपनी संतानसे सुख चाहते हो तो अपने माता-पिताको सुख पहुँचाओ, उनकी सेवा करो।

* * *

नामजप सभी साधनोंका पोषक है।

* * *

दूसरोंकी तरफ देखनेवाला कभी कर्तव्यनिष्ठ हो ही नहीं सकता; क्योंकि दूसरोंका कर्तव्य देखना ही अकर्तव्य है।

* * *

मुझे सुख मिल जाय—यह सब पापोंकी जड़ है।

* * *

विद्या प्राप्त करनेका सबसे बढ़िया उपाय है— गुरुकी आज्ञाका पालन करना, उनकी प्रसन्नता लेना।

* * *

कामनाके कारण ही कमी है। कामनासे रहित होनेपर कोई कमी बाकी नहीं रहेगी।

* * *

कामनाका सर्वथा त्याग कर दें तो आवश्यक वस्तुएँ स्वतः प्राप्त होंगी; क्योंकि वस्तुएँ निष्काम पुरुषके पास आनेके लिये लालायित रहती हैं।

* * *

रुपये मिलनेसे मनुष्य स्वतन्त्र नहीं होता, प्रत्युत रुपयोंके परतन्त्र होता है; क्योंकि रुपये 'पर' हैं।

* * *

सुख पाना चाहते हो तो दूसरोंको सुख दो। जैसा बीज बोओगे, वैसी ही खेती होगी।

* * *

प्रेमीकी बात प्रेमी ही समझ सकता है, ज्ञानी नहीं। फिर अज्ञानी तो समझ ही कैसे सकता है!

* * *

जहाँ लौकिक सुख मिलता हुआ दीखे, वहाँ समझ लें कि कोई खतरा है!

* * *

भगवान्‌को पुकारनेसे जो काम होता है, वह विवेक-विचारसे नहीं होता।

* * *

सांसारिक वस्तुके मिलनेपर तो अभिमान आ सकता है, पर भगवान्‌के मिलनेपर अभिमान आ सकता ही नहीं, प्रत्युत अभिमानका सर्वथा नाश हो जाता है।

* * *

भगवान्‌के न मिलनेका दुःख हजारों सांसारिक सुखोंसे बढ़कर है।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अतिथि-सत्कारका चमत्कार

घटना सन् १९७४ की है, तब मैं नगरपालिका एटामें प्रधान अध्यापक था, मेरे सेवानिवृत्त होनेका समय समीप आ गया था। एक उच्च अधिकारीने मुझसे कहा—पंडितजी, अगर आप कुछ रुपये खर्च करें तो मैं एक सालकी नौकरी और दिलवा सकता हूँ। मेरे मनमें लोभ जागा और उनके कहनेमें आ गया । मैंने रुपये उन्हें दे दिये। उन्होंने बहुत कोशिश की, परंतु वे इस कामको करा न सके। अन्ततः मैं सेवानिवृत्त हो गया, स्कूलसे मेरी बिदाई हो गयी। मैं घर आ गया। मेरी धर्मपत्नी बड़ी साधु प्रकृतिकी थी। अतिथि-सत्कारमें उसे बड़ा ही आनन्द आता। घरपर कोई भी आता, उससे यह अवश्य पूछ लेती कि 'भूखे-प्यासे तो नहीं हो,' अगर वह कहता कि 'हाँ माँ भूखा हूँ' तो वह उन्हें तुरंत जो भी उपलब्ध रहता खानेको देती।

अपने गाँवमें दो मन्दिर हैं। एक श्रीठाकुरजीका तथा दूसरा श्रीशंकरजीका। वहाँ अधिकतर महात्मा लोग आते रहते हैं, उनके भोजन आदिकी व्यवस्था भी हमारे घरसे प्रायः होती रहती थी। इस सेवामें मेरी पत्नीको खूब अच्छा लगता था। ऐसे ही समय बीतता गया। एक दिन मैं अपने घरमें चारपाईपर लेटा था और मेरी धर्मपत्नी दरवाजेके पास जमीनपर बैठी थी। उसी समय मैले-कुचैले वस्त्र पहने हुए एक व्यक्ति हमारे घरके समीप स्थित चबूतरेपर आकर बैठ गया। उसे देखकर मेरी पत्नीको दया आ गयी, वह उसके पास गयी, और पूछने लगी—'तुम भूखे-प्यासे मालूम पड़ते हो, भोजन करोगे ?' वह खुशी-खुशी बोला—'हाँ अम्मा भूखा तो हूँ।' मेरी पत्नी 'ठहरो' कहकर थालीमें भोजन लेकर आयी और उसके आगे रख दिया, पीनेको पानी भी दे दिया। जब वह भोजन कर चुका, तब बोला 'माँजी, क्या बाबा रिटायर हो गये हैं।' वे बोलीं—'हाँ बेटा, इन्हें डेढ़ महीना हो गया, घर ही बैठे हैं।' इसपर वह बोला—'माँ! इनको परसों जगह मिल जायगी।' इसपर जब मैंने उससे कहा—'भाई! इस कामके लिये मैंने रुपये भी खर्च किये हैं, किंतु मेरा काम नहीं हुआ। फिर भला तुम्हारे कहनेमात्रसे कैसे हो जायगा।' 'किंतु आपको परसों जगह अवश्य मिल जायगी' ऐसा कहकर वह चला गया। हम दोनोंको अतिथि देवताकी बातोंपर विश्वास नहीं हुआ, किंतु दूसरे ही दिन एक चपरासी आया और बोला— 'साहब! आपको साहबने बुलाया है, आप मेरे साथ ही चलें।' मैं उसके साथ ऑफिस पहुँचा। वहाँ मुझे सेवा करनेका आदेश मिला। वह आदेश मैंने उस अधिकारीको दिखाया, जिसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा— 'वाह शर्माजी! जो काम मैं रुपये लेकर न कर सका वह काम आपका सहजहीमें हो गया।'

उस अधिकारीको भी अपनी भूल महसूस हुई और मुझे भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये घूसखोरी-जैसे निन्दित मार्गका सहारा लिया था। लेकिन भगवान्ने ऐसा चमत्कार दिखलाकर सचेत कर दिया कि गलत एवं निन्दनीय मार्गके अवलम्बनसे कोई भी कार्य सफल नहीं होता, इसमें न तो रिश्वत लेनेवालेकी भलाई है और न रिश्वत देनेवालेकी। अतः इस मार्गका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। मुझे अपने कार्यमें सफलता जो मिली वह तो अतिथि देवताओंको श्रद्धापूर्वक भोजन कराने एवं उनकी सेवा करनेसे प्राप्त हुई। उस दिन जो सर्वथा अकिंचन व्यक्तिको बड़ी ही श्रद्धापूर्वक भोजन कराया गया, उस अतिथिदेवकी अन्तरात्माने प्रसन्न होकर जो आशीर्वाद दिया, उसीसे हमारा काम बना। तबसे अतिथि-सेवामें हमारा विशेष विश्वास बढ़ गया।

—रामस्वरूप शर्मा

(२)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

हमारे पड़ोसमें एक उच्च अधिकारी रहते हैं। वे मेरे साथ प्रतिदिन प्रातः टहलने जाते हैं। हम लोग टहलनेके दरमियान अनेकों विषयपर बातें किया करते हैं। वे साहब पूजा-अर्चामें बिलकुल ही विश्वास नहीं रखते, हमेशा नास्तिकों-जैसी बातें किया करते हैं, किंतु उनमें एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र बात जो मैंने देखी वह यह थी कि वे प्रतिदिन सुबह-शाम नियमितरूपसे हनुमानचालीसाका पाठ किया करते। यह देखकर मुझे बड़ी उत्सुकता रहती।

एक दिन बातों-ही-बातोंमें मैंने पूछा—'अरे साहब! आप न तो भगवान्‌में विश्वास करते हैं और न आपमें श्रद्धा-भक्ति है, फिर प्रतिदिन सुबह-शाम जो आप नियमितरूपसे हनुमानचालीसाका पाठ करते हैं, इसका क्या रहस्य है? मेरे मनमें कई दिनसे यह प्रश्न कौंध रहा है, आज आप इसे बतला ही दें। आखिर ऐसे विरोधाभासका क्या तात्पर्य है?'

उन्होंने कहा—'मिश्रजी देखिये, बात कुछ ऐसी है कि जब मैं सात-आठ बरसका था तो मुझमें एक विचित्र आदत थी, वह यह कि मैं सोते-सोते उठता और नींदमें ही दरवाजेकी कुंडी खोलकर घरसे बाहर निकलकर सड़कोंपर रातमें घूमा करता। यदि कोई परिचित मिल जाता तो मुझे घर वापस पहुँचा देता। एक दिन तो मेरी नींद तब खुली जब गश्त लगानेवाले सिपाहीने मुझे थाने पहुँचा दिया। पुलिसवाले मुझे घर लाये और मेरी विधवा माँको डाँट-फटकारकर हिदायतें दे गये कि बच्चेके प्रति सावधानी बरतें अन्यथा दुर्घटना घट सकती है। माँ अब मेरे कमरेको बाहरसे साँकल चढ़ाकर बंद करने लगी। मैं नींदमें उठकर दरवाजा पीटता था और माँके आवाज देनेपर जाग जाता था। यह क्रम बहुत समयतक चलता रहा।

मेरे इस मर्जका माँने बहुत इलाज करवाया, पर कुछ लाभ न हुआ। पासमें ही एक पंडितजी रहते थे। माँने उनको सारा किस्सा बताया और कुछ उपाय पूछा। उन्होंने मेरी माँको प्रतिदिन सुबह-शाम हनुमानचालीसाका नियमित पाठ करनेकी सलाह दी और हर मंगलवारको हनुमान्‌जीके मन्दिरमें दर्शन करनेको कहा। माँको उनकी बातोंमें विश्वास हो गया और उन्होंने सारे इलाज बंद कर दिये तथा हनुमान्‌जीकी अर्चना करने लगीं। हनुमान्‌जीकी कुछ ऐसी कृपा हुई कि एक माहके अंदर ही मेरा नींदमें उठकर दरवाजा पीटनेका उपक्रम बंद हो गया।

माँ जब कुछ बूढ़ी हो चुकीं, तब उन्होंने हनुमानचालीसाका पाठ करना मुझे सौंप दिया और कुछ ही दिनोंमें वे चल बसीं। तभीसे माँकी आज्ञा शिरोधार्य करके हनुमानचालीसाका सुबह-शाम पाठ करना मेरी नियमित क्रियाओंमें शामिल है। आप इसे चाहे जो भी कहें, पर मैं तो इसे अपनी दिवंगत माँकी निशानी और उनकी आज्ञाका पालनमात्र मानता हूँ।'

उनकी बातें सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये सज्जन एक ओर भगवान्‌पर तो विश्वास नहीं रखते, किंतु दूसरी ओर अपनी माँकी आज्ञाका पालन करते हुए हनुमानचालीसाका पाठ करते रहते हैं। मेरी उलझन बनी रही, लेकिन फिर मुझे लगा कि चाहे जैसे भी हो श्रद्धासे अथवा अश्रद्धासे भगवन्नाम लिया जाय तो वह कभी भी निष्फल नहीं होता। क्योंकि भगवान्‌की भक्ति वैरभावसे भी की जाय तो वह फलदायी होती ही है। ये सज्जन भले ही हनुमानचालीसाकी महिमा न समझकर भी अपनी माँकी आज्ञा समझकर पालन करते हैं तो काम तो इनसे भी अच्छा ही बनता है। भला बजरंगबलीकी कृपा इनपर भी क्यों न बरसती। मानकर पाठ नहीं करते तो क्या हुआ, बिना माने तो करते ही हैं। वैसे तो भावकी मुख्यता है, किंतु यदि बिना भावके भी अच्छी क्रिया बन पड़े तो दयालु भगवान् इसका ख्याल नहीं करते, कल्याण कर ही देते हैं।

—गंगाप्रसादजी मिश्र

(३)

दान की गयी गायने कुएँमें रक्षा की

उत्तरप्रदेशके एटा जिलेके बागबारा गाँवकी बात है। गाँवके प्रतिष्ठित पंडित रामसहायजी तथा उनके पुत्र बिहारी परम भक्त तथा गौ माताके अनन्य सेवक थे। बालकृष्ण उनके इष्टदेव थे।

रामसहायजी तथा उनके पुत्र पंडित बिहारीजी श्रीकृष्णकी अनन्य पूज्या गौ माताके प्रति अनन्य श्रद्धा रखते थे। वे गोसेवा तो करते ही थे, ब्राह्मणोंको श्रद्धा-भावसे गोदान भी करते रहते थे।

पं० रामसहायजीने अपने घरके पास एक कुआँ खुदवाया था। कुआँ बन रहा था। एक दिन उनके पुत्र बिहारीजी कुएँकी मेढ़पर बैठे थे कि मिट्टीका गोला अचानक ढह गया और बिहारीजी उसके साथ अधबने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुएँमें जा गिरे। आस-पासकी मिट्टीमें वे दब गये।

किसीको इस बातका पता नहीं चल पाया कि बिहारी कुएँमें दब गये हैं। उनकी चारों ओर खोज होने लगी। तीसरे दिन किसीको शक हुआ कि कुआँ ढह जानेके समय कहीं बिहारीजी मिट्टीमें न दब गये हों।

परिवारके लोगोंने समझ लिया कि यदि कुएँमें, मिट्टीमें दब गये होंगे तो उनकी निश्चित ही मृत्यु हो गयी होगी। चिन्ताके मारे सभीका बुरा हाल था, लोगोंने कुएँकी मिट्टी हटानी शुरू कर दी।

कई फुट मिट्टी हटानेके बाद लोगोंको बिहारीजीके हाथकी अँगुलियाँ दिखायी दीं। अँगुलियोंको हिलते देखकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे और तेजीसे मिट्टी हटायी जाने लगी।

मिट्टी हटानेपर बिहारीजीको कुएँके मलवेसे निकाल लिया गया। तीन दिनोंतक मिट्टीमें दबे रहनेपर भी बिहारीजीको जीवित देखकर उनके पिता तथा अन्य सम्बन्धी आश्चर्यचकित हो उठे। बिहारीजीने अपने पिता श्रीरामसहायजीको बताया कि पिताजी! मेरे प्राणोंकी रक्षा इस प्रकार हुई—आपने जो सफेद गायकी सेवाके बाद उसे दान किया था मुझे लगा कि ठीक वही गाय मेरे कुएँमें मिट्टीके साथ गिरते ही वहाँ आ पहुँची। उसने मुझे अपने चारों पैरोंके नीचे सुरक्षित रखा तथा तीन दिनतक वह अपने थनोंसे दूध पिलाती रही।

इस सत्य घटनाको सुनकर सभी चकित हो उठे।

—श्रीशिवकुमारजी गोयल

(४)

एक अन्नदाता

बात उस समयकी है, जब देशमें अनाज-बंदी जारी थी। हमारा परिवार काफी बड़ा था। रसदकी दूकानसे सप्ताहमें एक बार अनाज मिलनेकी व्यवस्था थी। एक सप्ताहके लिये हमें जो अनाज मिलता, वह हमारी आवश्यकताको देखते हुए बहुत ही कम होता था। बड़ी कठिनाईसे तीन-चार दिन चलता। शेष दिन अत्यन्त अभावमें गुजरते। पेटके लिये बाध्य होकर ब्लैक-मार्केटकी शरण लेनी पड़ती थी। दुगुने दाम देकर भी काम बन जाय तो बड़ा भाग्य— ऐसी अवस्था थी। पर वैसा भी कठिनतासे हो पाता था।

दिन-प्रतिदिन पैसोंका मूल्य घटता जा रहा था। बदलेमें अनाजके भाव बढ़ते जा रहे थे। भूखसे मरनेवाले मनुष्योंका रुपयोंसे पेट नहीं भरता। उन्हें तो आवश्यकता है एकमात्र अन्नदेवकी । अतएव मुँहमाँगे दाम देकर भी सहजमें पेट-पालन नहीं होता था। पर ब्लैक-मार्केटसे अनाज मिलनेमें भी विघ्न आने लगे। कुछ समय बाद पैसा भी अन्न-प्राप्ति करवानेमें असमर्थ होने लगा। अन्तमें एक दिन वह समय आ ही गया, जिसका भय मेरे मनमें पहलेसे ही बना हुआ था। उस दिन हमारे घरमें अनाजका एक दानातक न था। राशनका अनाज किसी तरह कलतक चला था। अब बिना सप्ताह बदले वहाँ अन्न मिलनेकी गुंजाइश नहीं थी। ब्लैकवालोंके पास भी अन्नका अभाव हो गया था। अतः सुबहसे ही अनाजकी खोज जारी कर दी गयी, पर जो भी बाहर जाता, निराश होकर खाली हाथ लौट आता। दोपहरतक कुछ बनते न देखकर संध्याको कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा—इस निराधार आशासे जी कड़ा करके दोपहरका समय बिना भोजनके निकाल दिया।

सुबह जो हवा थी, वही संध्याको भी कायम है। इस बातका निश्चय करनेके लिये हमें कुछ कम प्रयास नहीं करने पड़े। किंतु अब कलेजा मुँहकी ओर आने लगा। सब लोग भूखसे व्याकुल होने लगे। किस प्रकार अन्न प्राप्त करें? इस विकट प्रश्नने हमें चक्करमें डाल दिया। इसी समय—स्व० श्रीशिवाजी लाड—जिनसे हमारा वर्षोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था, अकस्मात् हमारे घर आये। पिताजीसे अपने पूर्वजीवनकी कुछ बीती-पुरानी बातें करनेमें उन्हें विशेष आनन्द आता और इसीलिये वे कभी-कभी पिताजीसे बातें करने चले आया करते थे। इनकी धार्मिक कार्योंके प्रति भी विशेष रुचि थी। इसीका परिणाम यह हुआ था कि आर्थिक अवस्था साधारण होनेपर भी आप द्वारका और बद्री-केदार—दोनों धामोंकी यात्रा कर चुके थे। एवं शेष दोनों धामोंकी यात्रा करनेके विचारमें थे।

घरकी खेती होनेके कारण इनका अपना कारोबार ठीक था। लड़के भी कमानेवाले और समझदार थे। किसी बातकी चिन्ता करने-जैसी अवस्था न थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने घरमें प्रवेश किया। हमारे बहुत-कुछ मना करनेपर भी, घरकी वर्तमान कहानीको हमारे मुरझाये चेहरोंने, उनकी तजुर्बेकार आँखोंके सामने प्रकट कर दिया। वे तुरंत वापस लौट गये।

कुछ ही मिनटोंके बाद देखते हैं, श्रीलाड महोदय स्वयं अनाजकी गठरी उठाये हमारे घरमें पुनः उपस्थित हैं। यह दृश्य देखकर हम सब एक ही साथ आश्चर्य और उनकी उदारताके प्रति श्रद्धामें डूब गये।

उनसे माँगनेपर अन्न मिल जायगा, यह तो हम पहलेसे ही जानते थे। इसके पूर्व अनेकों बार उनके द्वारा हम लाभ भी उठा चुके थे। किंतु अन्नकी तंगीके इस जमानेमें सुहृदोंको बार-बार कष्ट देना ठीक नहीं, यह विचारकर उनको धर्म-संकटमें डालना हम उचित नहीं समझते थे। इसीसे उनसे कुछ कहा नहीं था। आज वे स्वयं ले आये। हमें भी अनाजकी आवश्यकता थी ही। अतः हमने गठरी रखवा ली। कृतज्ञताके भावसे हमारे सिर झुक गये थे। अन्न वैसे बहुत अधिक नहीं था, पर इस समय तो एक-एक दाना बहुमूल्य था। इस अद्भुत दाताकी ओर देखें भी तो कैसे? हमारे मस्तक हार्दिक कृतज्ञतासे झुक रहे थे।

अनाज माप लिया और पिताजी बाजार-भावसे उसकी कीमत देने लगे। ब्लैक-मार्केटकी कीमत चुकाना उनसे दुराव दिखाने-जैसा था। हमारे सारे परिवारको, जिसने उपकृत किया, उसका अपमान भला हम कैसे कर सकते थे?

पर बात यहीं समाप्त नहीं हो गयी। हमारे इस अन्न-दाताने एक ऐसा खेल दिखाया कि जिसे देखकर हम तो दंग रह गये। पिताजी जब उन्हें पैसे देने लगे तब उन्होंने कहा—'मैं व्यापारी तो हूँ नहीं जो आपसे कीमत लूँ। अनाज बेचना मेरा धर्म नहीं है। यह तो मैंने केवल अपने कर्तव्यका पालन किया है।'

देवदूतके इस वाक्यका उत्तर हम साधारण मानव दें भी तो क्या दें? उनका औदार्य और सौहार्द हमारे मनको साक्षात्कारकी ओर ले जा रहा था।

—नामदेव वाडेकर

(५)

श्रीबजरंगबलीकी अद्भुत कृपा

प्रस्तुत संस्मरण लगभग सात-आठ वर्ष पूर्वका है। उस समय मैं ठाकुरगंज रेलवे स्टेशनमें सहायक स्टेशन-मास्टरके पदपर कार्यरत था। एक दिनकी घटना है। मैं अपनी ड्यूटीपर था और मुझे साइडिंग लाइनसे हापरका एक डब्बा मालगाड़ीमें जोड़ना था। 'हापर' एक विशेष प्रकारका डब्बा होता है, जिसमें केवल गिट्टीका लदान किया जाता है। डब्बा जोड़नेके लिये ज्यों ही इंजन साइडिंग लाइनमें गया, संयोगवश हापरके डब्बेमें इंजनका एक हलका-सा धक्का लगा जिससे हापरका डब्बा अपने-आप आगेकी ओर लुढ़कने लगा। साइडिंग लाइनके अन्तिम छोरमें एक अति साधारण स्तरका अस्थायी अवरोधक लगा हुआ था तथा अवरोधकके पीछेकी ओर १०-१५ फुट गहरी एक बड़ी खाई थी, जो पानीसे भरी थी। हापरका डब्बा जब अपने-आप लुढ़कने लगा तो शंटिंग करनेवाले कर्मचारी उसे रोकनेका प्रयास करने लगे, किंतु वे असफल रहे। डब्बेके चक्केके नीचे रेल-लाइनपर गिट्टी (पत्थरके छोटे-छोटे टुकड़े) रखना शुरू किया गया, पर वह भी असफल सिद्ध हो रहा था। क्योंकि चक्का जब गिट्टीपर चढ़ता तो उसकी गति थोड़ी धीमी हो जाती, पर ज्यों ही चक्का गिट्टीके चूर्णको पार करता उसकी गति और भी बढ़ जाती। उस क्रममें मैंने देखा कि डब्बेकी गति घटनेके बजाय और बढ़ती ही जा रही है। खाई अब मुश्किलसे ६-७ फुटकी दूरीपर रह गयी। परिणाम भी मुझे स्पष्ट दीखने लगा था। शंटिंग करनेवाले सारे कर्मचारी हताश हो एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। यह देख मैं भी हतप्रभ था। फिर भी मैंने उसी क्षण अदम्य साहस बटोरकर अपने इष्टदेव श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण किया और 'जय बजरंगबली' उच्चारण करके डब्बेके सामने जाकर लाइनपर पीठकी ओर चलते हुए अपने दोनों हथेलियोंसे डब्बेको रोकना शुरू किया। पीछे हटनेके क्रममें मेरा एक सेंडल तो अवश्य टूट गया, पर डब्बा २-३ फुट चलनेके बाद ही रुक गया। शंटिंग करनेवाले सारे कर्मचारी यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो ठिठके-से रह गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने भी अपनी दोनों आँखें मूँदकर संतोष एवं आत्मविश्वासका एक दीर्घ श्वास लिया, पर मुझे आश्चर्यसे अधिक अपने आराध्यदेव श्रीबजरंगबलीकी अद्भुत कृपापर अपार गर्व हो रहा था कि इतना बड़ा डब्बा जो कि अनेक प्रयत्नोंके बाद भी नहीं रुक रहा था, मेरे साधारणसे हाथके जोरसे कैसे रुक गया? मुझमें आखिर इतनी शक्ति कहाँसे आ गयी। फिर मुझे लगा कि निश्चित ही मेरे प्रभु हनुमान्‌जीने ही मेरे शरीरमें प्रवेशकर इस अद्भुत शक्तिका संचार किया और मुझे निमित्त बनाया। मुझे लगा उन्हींकी कृपासे यह सब कुछ हुआ। अनिष्ट तो टला ही, मैं स्वयं चार्जशीटसे वञ्चित रहा तथा मेरे सभी कर्मचारी भी दोषरहित हो गये। यह है सच्चे मनसे बजरंगबलीजीके शरण जानेका परिणाम! मैंने अपने मनकी बात सभीको बतलायी। सभी साथी सुनकर हनुमान्‌जीके प्रति विनयावनत हो गये। यह घटना मेरे जीवनकी एक अविस्मरणीय घटना हो गयी। तबसे जब भी मैं ड्यूटीपर जाता हूँ, पहले श्रीबजरंगबलीजीका स्मरण करता हूँ और उन्हींका आश्रय ग्रहणकर अपना कार्यभार सँभालता हूँ।

—बी० पी० प्रजापति

(६)

गोमूत्रका चमत्कार

मेरे हाथमें कुछ समयसे बड़ी तेज खुजली रहती थी। अंग्रेजी दवाएँ—ट्यूब आदि लगाता रहा, उससे थोड़े समयके लिये मामूली आराम होता था, किंतु फिर वैसी ही खुजलाहट होने लगती । खुजलाते-खुजलाते खून-सा निकल आता था, और फिर बड़ा दर्द होता था। कई दवाइयाँ कीं मगर कोई खास लाभ नहीं हुआ। मैंने 'कल्याण' के 'गोसेवा-अङ्क'में गोबर तथा गोमूत्रकी अद्भुत चमत्कारी घटनाएँ पढ़ीं, जिनमें खाज-खुजली, दाद, एक्जिमा तथा कोढ़ आदि बहुत कठिन रोगोंके गोमूत्र-गोबरसे ठीक होनेके उपाय भी दिये गये हैं। पढ़कर मनमें हुआ कि क्यों न मैं भी आजमाइश करूँ। गोमूत्र लगाकर देखूँ कि क्या होता है। हमारे यहाँ काली गायका एक बछड़ा है। मैंने उसके गोमूत्रका संग्रह किया और उसीसे बराबर हाथोंको धोने लगा। मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, गोवत्स-मूत्र लगाते ही तत्काल खुजलीमें कुछ आराम-सा मुझे मिलने लगा। कुछ देरके लिये तो मैं खुजलीको भूल ही गया। मैं 'गोसेवा-अङ्क' पढ़नेमें लग गया, खुजली याद भी न रही। थोड़ी देर बाद जब पढ़नेसे ध्यान हटा तो ख्याल आया कि मैं तो खुजला रहा था, बड़ी मीठी खुजली थी, हाथ हटानेका जी नहीं होता था, यह तो एक जादू-सा हो गया। तबसे थोड़ी-थोड़ी देरके बाद मैं पुनः उस स्थानपर गोवत्स-मूत्र लगा रहा हूँ, इससे मुझे बहुत लाभ हुआ है। धीरे-धीरे खुजली कम हो रही है।

मैंने 'गोसेवा-अङ्क'में गोमूत्र-गोमय आदिकी जैसी महिमा लिखी हुई पढ़ी, उसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ और मुझे लगा कि हमारे ऋषि-मुनियोंने कितनी सच्ची एवं उपयोगी बातें हमारे हितके लिये लिखी हैं, किंतु हमारा दुर्भाग्य है कि हम उनपर विश्वास ही नहीं करते, यह विडम्बना नहीं तो और क्या है?

—परशुराम हंस

मनन करने योग्य

(१)

पड़ोसीका धर्म

हमारे घरके सामने ही एक पंडितजी रहते हैं। उनका अत्यन्त उदार हृदय है, वे द्वेष करनेवालोंके साथ भी प्रेम तथा मैत्रीका व्यवहार करते हैं। अधिकांश समय पूजा-पाठमें, भगवद्भजनमें बिताते हैं। इनके पड़ोसमें एक भाई रहते हैं, उनका असली नाम तो दूसरा है। पर यहाँ उनका वनराज यह कल्पित नाम रखा गया है। यह वनराज बहुत ही क्रूर-स्वभावका तथा लड़ाकू आदमी है। यह अपने साधुहृदय पड़ोसी पंडितजीसे बहुत द्रोह करता था। बात-बातपर उन्हें खरी-खोटी सुनाया करता। पंडितजी सदा शान्त रहते। यह उनके घरमें कूड़ा-कचरा डाल दिया करता। पंडितजी चुपचाप उसे झाड़-बुहारकर बाहर फेंक देते। एक दिन वनराजने पंडितजीपर यह झूठा आरोप लगाया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने गुंडोंको मेरे घरमें चोरी करनेके लिये कहा है। फिर पंडितजीको नीचा दिखानेके लिये मनमाने शब्दोंसे उनका बड़ा अपमान किया। पंडितजीने चुपचाप सब सहन कर लिया। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। कुछ देर बाद वनराज बाहर चला गया। उसका लड़का साँवर छतपर गेंद खेल रहा था। अचानक गेंद खेलते-खेलते वह जोरसे नीचे गिर पड़ा। वह सीधा पंडितजीकी खाटपर गिरा। धमाकेकी आवाज सुनकर पंडितजी दौड़े आये, देखा तो साँवरके सिरसे खून निकल रहा था। उन्होंने उसके घावपर पट्टी बाँधी और स्वयं पंखा झलने लगे। जब खून बहना बंद हुआ तो बाबूजीकी मोटरमें उसे दवाखाने ले गये। वहाँ पंडितजीने डॉक्टरको फीस देकर चिकित्सा करनेको कहा और चिकित्सा करवायी।

वनराजने घर आनेपर जब सारा हाल सुना तो उसे अपनी करनीपर बड़ा खेद हुआ। उसका मन पसीज गया। उसने दवाखाने जाकर सब हाल देखा-सुना तो पंडितजीके चरणोंमें लोट गया। पंडितजीने कहा—'भाई! मैंने कोई बहुत सराहनीय काम नहीं किया है। हर मनुष्यका जो कर्तव्य है, वही किया है। इसमें मेरी प्रशंसाकी कौन-सी बात है। तुम मेरी व्यर्थ ही बड़ाई कर रहे हो।' यों कहकर पंडितजीने वनराजको गले लगा लिया। वनराजका हृदय सर्वथा बदल गया। मनुष्य बुरा बर्ताव करनेवालेके साथ भी अच्छा बर्ताव करे तो उसकी अपनी अच्छाई तो सुरक्षित रहती ही है, वह बुरेको भी अच्छा बना देता है। यही मानव-धर्म है। पड़ोसीका तो यह विशेष धर्म है।

—च० ना० त्रिवेदी

(२)

नीयतमें भेद

बिहारीलाल और रामजीदास दो सगे भाई थे। बिहारीलाल बड़े थे, रामजीदास छोटे। दोनोंके पत्नियाँ थीं और दोनोंके ही दो-दो लड़के थे। परस्पर बहुत प्रेम था। श्रीबिहारीलाल ही बड़े होनेके नाते घरके मालिक थे। चारों बच्चोंको वे ही सँभालते, उनके लिये कपड़े बनवाने, फल-मिठाई लाने, पढ़ाईकी व्यवस्था करने आदि सब कार्य बड़ी दिलचस्पीसे बिहारीलाल करते। घरकी तथा बच्चोंकी ओरसे रामजीदास निश्चिन्त थे। बिहारीलालके दोनों बालकोंका जैसा पिताजीपर अधिकार था, ठीक वैसा ही रामजीदासके दोनों बालकोंका ताऊजीपर। बिहारीलाल भी किसी प्रकारका भी भेदका बर्ताव कभी नहीं करते। चारों बच्चोंके लिये सब चीजें समान आतीं। घरमें रामजीदासकी पत्नीके लिये भी, जो कुछ आवश्यक होता, जेठजी ही सब करते और उनके किसी बर्तावसे रामजीदासकी पत्नीको कभी कोई शिकायत नहीं हुई। रामजीदास दूकानका काम देखते, घरकी सारी देखभाल बिहारीलाल करते।

एक दिन छुट्टी थी, दूकानें बंद थीं। अतएव रामजीदास घरपर ही थे। मकानके बाहरके आँगनमें एक कुर्सीपर बैठे कुछ पढ़ रहे थे। चारों बालक खेल रहे थे। बिहारीलाल बच्चोंके लिये फल आदि लाने बाजार गये थे। बच्चे बिहारीलालजीकी बाट देख रहे थे, क्या फल लाते हैं। थोड़ी ही देरमें बिहारीलालजी लौट आये। वे एक झोलेमें आठ केले और आठ आम लाये थे। उनके आते ही रामजीदास बड़े भाईके सम्मानार्थ कुर्सीसे उठकर एक ओर खड़े हो गये। बिहारीलाल कुर्सीपर बैठ गये। चारों बालक खेलना छोड़कर फलोंके लिये बिहारीलालजीके समीप आकर फल माँगने लगे। रामजीदास बच्चोंकी उत्सुकता देखने लगे। बिहारीलालका उस ओर ध्यान नहीं था। वे झोलेमेंसे फल निकाल रहे थे बच्चोंको देनेके लिये। केले तो एक-से थे। बिहारीलालने झोलेसे निकालकर दो-दो केले चारों बालकोंको दे दिये। बचे आठ आम। आमोंमें चार कुछ घटिया तथा छोटे थे। चार उनसे कुछ बढ़िया जातिके तथा बड़े थे। बिहारीलालने झोलेसे आम निकाले। चारों बच्चे हाथ फैलाये खड़े थे। बिहारीलालके बालकोंके नाम थे—मदन, विजय (मटकू) और रामजीदासके लड़कोंके नाम थे—मोहन तथा केसू। बिहारीलालके चार आम एक हाथमें थे, चार दूसरेमें। बच्चे निर्दोष भावसे लपके। मदन तथा मटकू जिस हाथकी ओर लपके, उसमें घटिया छोटे आम थे। मदन तथा मटकूको झटककर बिहारीलाल अलग हटाने लगे। वे नहीं हटे, तब दूसरे बढ़िया बड़े आमवाले हाथको बिहारीलालने मोहन तथा केसूकी ओरसे हटाकर यों घुमाया कि जिससे मोहन-केसू उन आमोंको न ले सकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और घटिया आमवाले हाथको उधर घुमाकर मोहन-केसूको वे आम दे दिये और मदन-मटकूको बढ़ियावाले दे दिये।

रामजीदास बड़े कौतूहलसे सर्वथा निर्दोषभावसे बच्चोंका खेल देख रहे थे, परंतु बड़े भाई बिहारीलालकी इस क्रियाको देखकर रामजीदासके मनमें बड़ा क्षोभ हो गया। घटियावाले आम स्वाभाविक ही उसके बच्चे—मोहन-केसूको दिये गये होते और बढ़ियावाले भी सहज ही मदन-मटकूको मिल जाते तो जरा भी बुरी बात नहीं थी। दोनों हाथोंमें सहजरूपमें लिये हुए आम थे, जिस ओर जो बच्चे आये, उन्हींको वे मिल गये। पर बिहारीलालकी आज यह स्पष्ट चेष्टा हुई कि बढ़ियावाले आमके हाथको उन्होंने जान-बूझकर मोहन-केसूके सामनेसे हटाकर अपने बच्चे मदन-मटकूको वे आम दे दिये और मोहन-केसूको घटिया आमवाला हाथ उनकी ओर घुमाकर वे आम दिये। रामजीदासको यह बात ठीक समझमें आ गयी कि आज भाई बिहारीलालके मनमें भेद-बुद्धि आ गयी। आम मामूली चीज हैं, थोड़े-से पैसोंके हैं—इससे मतलब नहीं, असल बात है—भेद-बुद्धिकी।

लड़के तो आम लेकर चले गये। उन्हें तो घटिया-बढ़ियाका कोई ज्ञान था नहीं। अवश्य ही आज कुछ नयी-सी बात तो बच्चोंको लगी। मदन-मटकू समझ नहीं सके कि बाबूजीने—हम जो आम ले रहे थे, वे न देकर दूसरे क्यों दिये। इसी प्रकार मोहन-केसूको भी कुछ अचरज-सा लगा। पर उन निर्दोष बच्चोंके मनमें किसी पाप-भावनाका ध्यान नहीं आया। किंतु रामजीदासके मनमें दूसरा भाव आ गया और बच्चोंके अलग चले जानेके बाद रामजीदासने आकर भाई बिहारीलालसे कहा—'भाईजी! हमें आजसे बँटवारा करके अलग-अलग हो जाना है और इसमें कोई भी कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि आप अपनी इच्छासे मुझे जो कुछ देंगे, वही मुझे हृदयसे स्वीकार होगा।' रामजीदासकी बात सुनकर बिहारीलाल चौंके। उन्हें अपनी नीयतकी बात तो याद आ गयी, पर वे समझ रहे थे कि रामजीदासने क्यों मेरी ओर देखा होगा और क्यों इसे कोई संदेह ही हुआ होगा। बिहारीलाल बोले—'भैया! क्या बात हो गयी, तुम ऐसा क्यों कह रहो हो?' रामजीदासने नम्रतासे स्पष्ट कहा—'भाईजी! आज एक ऐसी अनहोनी बात मैंने देखी, जिसकी मेरे मनमें कल्पना ही नहीं थी। बच्चोंको आम देनेके समय मेरी नजर इधर चली गयी। बात मामूली थी, पर मैंने समझ लिया कि आज भाईजीके मनमें अपने बच्चों तथा मेरे बच्चोंमें भेद आ गया। और जब भेद आ गया, तब फिर साथ रहनेमें कुशल नहीं है। इसीसे मैंने अलग होनेकी बात कही है।'

बिहारीलालकी आँखोंमें आँसू आ गये, उन्होंने कहा—'सच्ची बात है, भैया! मेरी बुद्धि मारी गयी थी, मैंने जो पाप कभी नहीं किया, वह आज कर बैठा! मेरी बुद्धिमें भेद आ गया। मेरे मनने कहा—बढ़िया आम मदन-मटकूको दे दो। मैंने मनकी यह कुशिक्षा मान ली। भैया! इसका दण्ड मुझे भगवान् देंगे। तुमसे क्षमा माँगने लायक तो मैं रहा नहीं। तुम तो मुझपर विश्वास करके अपने स्त्री-बच्चोंकी सारी देख-रेखका भार मुझे देकर निश्चिन्त हो गये थे। मैंने बुरी नीयतसे तुम्हारे साथ घोर विश्वासघात किया। यह छोटा पाप नहीं है। अवश्य ही अलग होनेपर मेरे प्राण भी देहसे अलग हो जायँगे। पर इस पापका तो यही प्रायश्चित्त है।' यों कहकर बिहारीलाल जोर-जोरसे रोने लगे। बिहारीलालके सच्चे पश्चात्तापयुक्त आँसुओंकी धाराका रामजीदासके हृदयपर विलक्षण प्रभाव पड़ा। उसके मनका सारा क्षोभ बह गया। उसने बड़े भाईके पैर पकड़ लिये तथा रोकर क्षमा माँगी। इतनेमें बच्चे भी वहीं आ गये। वे आश्चर्यसे देख रहे थे—आज ताऊजी और चाचाजी रो क्यों रहे हैं? बिहारीलालकी स्त्री वहाँ आ गयी। रामजीदासकी स्त्री भी दूर खड़ी होकर सब देखने-सुनने लगी। दोनों ही बड़ी भली स्त्रियाँ थीं। सब बातें जानकर दोनोंको बड़ा दुःख हुआ। वे भी रो पड़ीं। पवित्र आँसुओंने सदाके लिये मलिन भावोंका मूलोच्छेद ही कर दिया। सारा परिवार परम सुखी हो गया। यह बात सिद्ध हो गयी कि सुख त्यागमें है, स्वार्थमें नहीं।

—गोविन्दराम शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजत रे मनुजाः कमलापतिम्

भुजगतल्पगतं घनसुन्दरं गरुडवाहनमम्बुजलोचनम्।
नलिनचक्रगदादरमव्ययं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ १॥
अलिकुलासितकोमलकुन्तलं विमलपीतदुकूलमनोहरम्।
जलधिजाङ्कितवामकलेवरं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ २॥
किमु जपैश्च तपोभिरुताध्वरैरपि किमुत्तमतीर्थनिषेवणैः।
किमुत शास्त्रकदम्बविलोकनैर्भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ३॥
मनुजदेहमिमं भुवि दुर्लभं समधिगम्य सुरैरपि वाञ्छितम्।
विषयलम्पटतामपहाय वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ४॥
न वनिता न सुतो न सहोदरो न हि पिता जननी न च बान्धवः।
व्रजति साकमनेन जनेन वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ५॥
सकलमेव चलं सचराचरं जगदिदं सुतरां धनयौवनम्।
समवलोक्य विवेकदृशा द्रुतं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ६॥
विविधरोगयुतं क्षणभङ्गुरं परवशं नवमार्गमलाकुलम्।
परिनिरीक्ष्य शरीरमिदं स्वकं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ७॥
मुनिवरैरनिशं हृदि भावितं शिवविरिञ्चिमहेन्द्रनुतं सदा।
मरणजन्मजराभयमोचनं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ८॥
हरिपदाष्टकमेतदनुत्तमं परमहंसजनेन समीरितम्।
पठति यस्तु समाहितचेतसा व्रजति विष्णुपदं स नरो ध्रुवम्॥ ९॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीकमलापत्यष्टकं सम्पूर्णम्॥

रे मनुष्यो! जो शेषशय्यापर पौढ़े हुए हैं, नीलमेघ-सदृश श्यामसुन्दर हैं, गरुड जिनका वाहन है और जिनके कमल-जैसे नेत्र हैं, उन शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी अव्यय श्रीकमलापतिको भजो॥ १॥ भौंरोंके समान जिनकी काली-काली कोमल अलकें हैं, अति निर्मल सुन्दर पीताम्बर है और जिनके वामाङ्गमें श्रीलक्ष्मीजी सुशोभित हैं, रे मनुष्यो! उन कमलापतिको भजो॥ २॥ जप, तप, यज्ञ अथवा उत्तम-उत्तम तीर्थोंके सेवनमें क्या रखा है? अथवा अधिक शास्त्रावलोकनके पचड़ेमें पड़नेसे ही क्या होना है? रे मनुष्यो! बस, श्रीकमलापतिको ही भजो॥ ३॥ इस संसारमें यह मनुष्य-शरीर अति दुर्लभ और देवगणोंसे वाञ्छित है—ऐसा जानकर विषय-लम्पटताको त्यागकर रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ४॥ इस जीवके साथ स्त्री, पुत्र, भाई, पिता, माता और बन्धुजन कोई भी नहीं जाता, अतः रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ५॥ यह सचराचर जगत्, धन और यौवन सभी अत्यन्त अस्थिर हैं—ऐसा विवेकदृष्टिसे देखकर रे मनुष्यो! शीघ्र ही कमलापतिको भजो॥ ६॥ यह शरीर नाना प्रकारके रोगोंका आश्रय, क्षणिक, परवश तथा मलसे भरे हुए नौ मार्गोंवाला है—ऐसा देखकर रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ७॥ मुनिजन जिनका अहर्निश हृदयमें ध्यान करते हैं, शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि समस्त देवगण जिनकी सर्वदा वन्दना करते हैं तथा जो जरा, जन्म और मरणादिके भयको दूर करनेवाले हैं, रे मनुष्यो! उन श्रीकमलापतिको भजो॥ ८॥ दास परमहंसद्वारा कहे गये इस अत्युत्तम भगवान् हरिके अष्टकको जो मनुष्य ध्यान लगाकर पढ़ता है, वह अवश्य ही भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त कर लेता है॥ ९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान वर्ष (जनवरी सन् १९९५ ई०) का विशेषाङ्क 'गोसेवा-अङ्क'

[इच्छुक सज्जन मँगानेमें शीघ्रता करें]

भारतीय संस्कृतिने प्राचीन कालसे ही 'गो-भक्ति' और 'गोपालन'को बड़ा महत्त्व दिया है और इसे सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य माना है। गाय मात्र हिन्दूकी ही नहीं, वरन् मानवमात्रका पोषण करनेवाली होनेसे वह सर्वपूज्या, सर्वसेव्या तथा विश्वजननी है, इसीलिये वेदमें गायको 'अघ्न्या' (जो वधके योग्य नहीं है) कहा गया है। किंतु बड़े ही दुःखकी बात है कि उपर्युक्त तथ्योंके विपरीत दिन-प्रतिदिन घटती हुई गोवंशकी संख्या और बढ़ती हुई गोहत्या आज हमारी भारी चिन्ताका विषय और इस देशके लिये कटुतम कलंकका कारण बना हुआ है। गोरक्षाका प्रश्न मात्र हमारी (हिन्दूमात्रकी) धार्मिक भावनाका ही नहीं, अपितु हम सबके सहित सम्पूर्ण राष्ट्रके हित, समृद्धि और अर्थव्यवस्थाका भी यह सुदृढ़ आधार है तथा समग्र देशके हित और राष्ट्रके चिन्तनका यह सर्वोपरि विषय है, इसीलिये 'कल्याण' ने इस वर्ष शासन, प्रशासन, सरकार तथा समाज और देशके अग्रणी नेताओंसहित जन-जनका ध्यान—गो-संवर्धनके इस सबसे ज्वलन्त प्रश्नकी ओर आकर्षित करनेके उद्देश्यसे गोविषयक (समस्याओं, आँकड़ों और संदर्भोंसहित) विस्तृत विवरणसे युक्त **'गोसेवा-अङ्क'**—विशेषाङ्क प्रकाशित किया है।

'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस अङ्कका विषय सामयिक और सार्वजनिक रुचिका होने तथा इसकी तथ्यपरक प्रेरणादायी सामग्रीके फलस्वरूप—विशेष माँग होनेके कारण, अबतक २,३०,००० प्रतियोंके दो संस्करण थोड़े समयमें ही प्रकाशित हो चुके हैं। कुल पृष्ठ-संख्या (फरवरीके परिशिष्टाङ्कसहित) ४७० (विषय-सूची आदिके ८ पृष्ठ अलग हैं), बहुरंगे चित्र १३, सादे चित्र ४५, बहुरंगा आकर्षक आवरण। वार्षिक शुल्क रु० ६५.०० (सजिल्दका रु० ७२.००) है। इसकी अब कुछ सीमित प्रतियाँ ही बची हैं; अतः इच्छुक महानुभावोंको इसे मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

बहुत दिनोंसे अप्राप्य पुनर्मुद्रित महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१-श्रीमद्भागवत अंग्रेजी सटीक (दो खण्डोंमें)—(मूल श्लोक एवं अंग्रेजी अनुवाद) काफी दिनोंसे अप्राप्य इस ग्रन्थका संस्करण ऑफसेटकी नवीन प्रविधिसे फोटो टाइप सेटिंग कराकर पुनर्मुद्रित किया गया है। ऑफसेटकी आकर्षक छपाई, मजबूत जिल्दसहित मूल्य रु० १६०.००, डाकव्यय ३०.०० (रजिस्ट्रीसे)।

२-श्रीमद्भगवद्गीता (रोमन) अंग्रेजी—गीताका मूल पाठ रोमनमें (Transliteration), एवं अंग्रेजी अनुवाद। रंगीन आकर्षक आवरणसहित यह संस्करण हिंदी न जाननेवाले पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द, मूल्य रु० १०.००, डाकव्यय ३.००।

३-श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य)—(मूल, संस्कृतमें भाष्य तथा हिन्दी अनुवाद) भगवान् शंकराचार्यने गीतापर किये गये शांकरभाष्यमें गीताके गूढ़ भावोंका विवेचन किया है और मनुष्यके लिये उच्चतम आदर्शका निश्चय किया है तथा उसको प्राप्त करनेके सुलभ-से-सुलभ साधन बताये हैं। ऑफसेटकी स्वच्छ छपाई, मजबूत जिल्दसहित, मूल्य रु० ४०.००, डाकव्यय रु० १५.०० (रजिस्ट्रीसे)।

४-श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध—(सटीक) श्रीमद्भागवतमहापुराण वेदोंकी समता रखनेवाला है तथा भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। इसमें ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग आदिके साथ ही भगवान्‌के विचित्र चरित्रोंका इतना सरस वर्णन है कि व्यक्ति पढ़ते ही आनन्द-सागरमें डूबने लगता है। इस 'एकादश स्कन्ध' में परम शान्ति प्रदान करनेवाले उपदेशोंका संग्रह है। मूल्य रु० १६.००, डाकव्यय रु० ४.००।

५-एक महात्माका प्रसाद—संतोंकी महिमा अवर्णनीय है। वे सबके अज्ञानान्धकारका नाश करके विमल ज्ञानका प्रकाश प्रदान करते हैं और अपनी अमृतमयी वाणीसे सबको परम शान्ति देते हैं। इस पुस्तकमें सच्ची भावनासे एक महात्माके पास रहकर उनके श्रीमुखसे सुनी हुई वाणी तथा लोगोंकी शंकाओंके निवारणार्थ मङ्गलमय उपदेशोंका संग्रह है। मूल्य रु० १२.००, डाकव्यय रु० ३.००।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

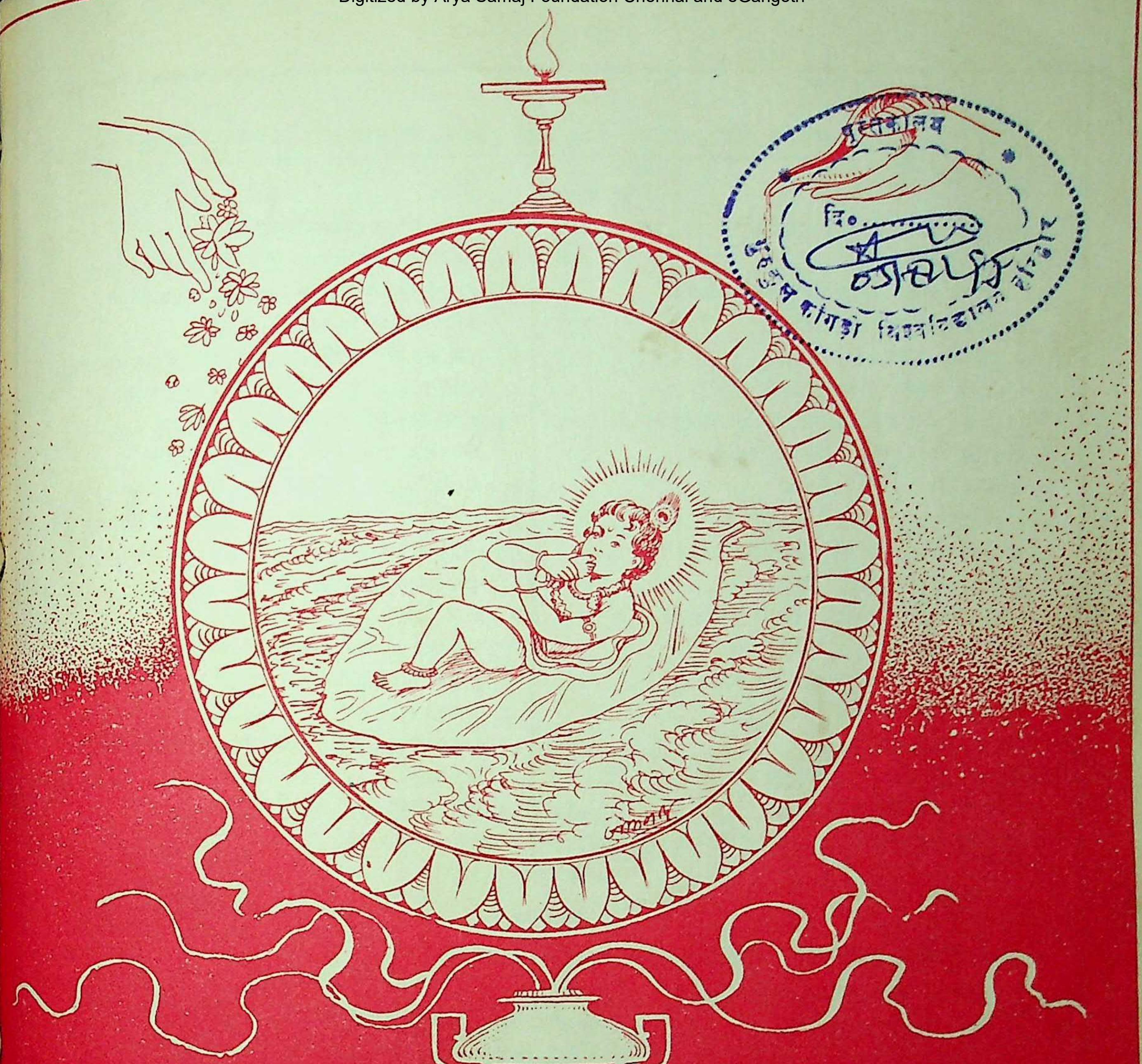

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि॥

कल्याण

वर्ष ६९ संख्या ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, अगस्त १९९५ ई०

विषय ... पृष्ठ-संख्या

१-चित्रकूटमें श्रीसीताराम-लक्ष्मणकी झाँकी ... ७११
२-कल्याण (शिव) ... ७१२
३-सबसे सगे भगवान् (ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) ... ७१३
४-मृत्युके प्रवाहको रोकनेका उपाय ... ७१४
५-भगवान्के निराकार स्वरूपका वर्णन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ७१५
६-आसक्ति ही मृत्यु है (श्री जय जय बाबा) ... ७२१
७-चरन-कमल अवराधों [कविता] (श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा') ... ७२२
८-भजनकी सारभूत बातें (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... ७२३
९-त्याग, सेवा और प्रेम (डॉ० श्रीरामनरेशसिंहजी) ... ७२५
१०-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ... ७२७
११-दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ और पूर्णब्रह्म श्रीरामभद्र (श्रीनिमाइचरणजी मिश्र) ... ७३०
१२-हे रामदूत! हे पवनपुत्र! [कविता] (श्रीअनूपकुमारजी गुप्त 'अनूप') ... ७३२
१३-शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे [कविता] (कवि अब्दुल गफ्फार एडवोकेट) ... ७३३
१४-गौ माताके अनन्त लाभ (प्रो० श्रीकृष्णलालजी भल्ला) ... ७३४
१५-अनित्य जीवनसे निराशा (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ... ७३५
१६-बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन (डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०) ... ७३६
१७-रामभक्तिरूपी चिन्तामणि (प्रो० श्रीउमेशकुमारजी श्रीवास्तव, एम्० कॉम०, साहित्य-विशारद) ... ७३९
१८-हमारी संस्कृति—पतनकी ओर (रोमिका बत्रा) ... ७४१
१९-भारतीय आर्ष-जीवनका ऊर्जा-स्रोत—गाय और पञ्चगव्य (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, डी० एस्-सी०) ... ७४३
२०-*भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी) ... ७४६
२१-साधनोपयोगी पत्र ... ७४८
२२-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ... ७५१
२३-पढ़ो, समझो और करो ... ७५२
२४-मनन करने योग्य ... ७५७

चित्र-सूची

१-प्रलयपयोधिमें वटपत्रपर बाल मुकुन्द (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-चित्रकूटमें श्रीसीता-राम-लक्ष्मणकी झाँकी (रंगीन) मुख-पृष्ठ

(सादे चित्र)

१-अन्त्यज बालक और एकनाथ ... ७५७
२-एकनाथद्वारा गधेको जीवन-दान ... ७५८

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रहवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

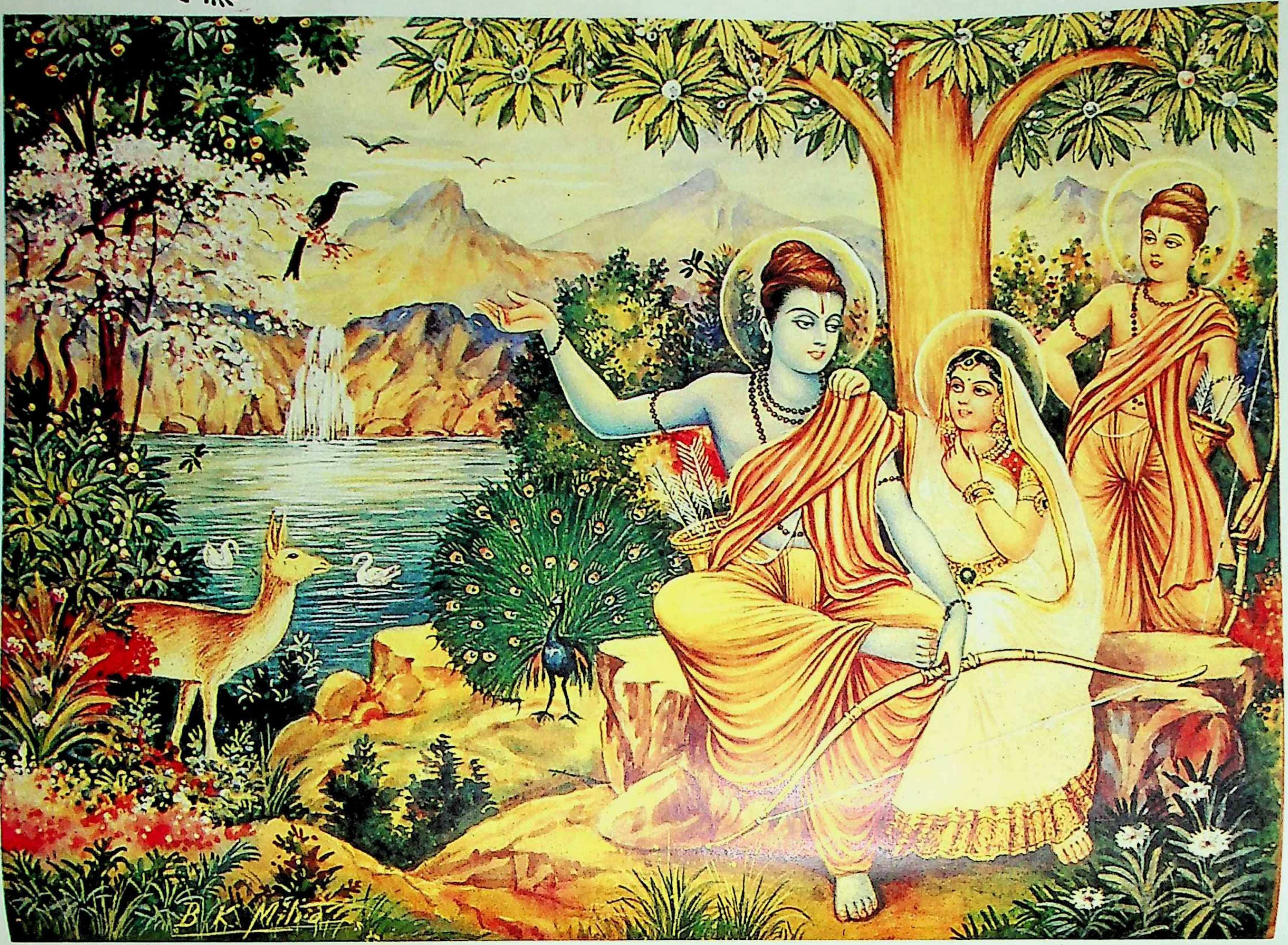

चित्रकूटमें श्रीसीता-राम-लक्ष्मणकी झाँकी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, अगस्त १९९५ ई० | संख्या ८ | पूर्ण संख्या ८२५

चित्रकूटमें श्रीसीताराम-लक्ष्मणकी झाँकी

लोने लाल लषन, सलोने राम, लोनी सिय,
चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु-तर हैं।
गोरे-साँवरे सरीर पीत नील नीरज-से
प्रेम-रूप-सुखमाके मनसिज-सर हैं॥

लोने नख-सिख, निरुपम, निरखन जोग,
बड़े उर-कंधर बिसाल भुज बर हैं।
लोने लोने लोचन, जटनिके मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं॥
लोने लोने धनुष, बिसिष कर-कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सरघर हैं।
प्रिया प्रिय बंधुको दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु कुंज, सिलातल, दल, फूल, फर हैं॥

ऋषिनके आश्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं,
लागी मधु, सरित झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुप-पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं॥
प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत
भूरिभाग भये सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात-कोल
जाको सिसकत सुर बिधि-हरि-हर हैं॥

—गोस्वामी तुलसीदासजीकृत गीतावली (अयोध्याकाण्ड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

पुराने इतिहासों, पुराणों और अन्य ग्रन्थोंसे पता लगता है कि किसी जमानेमें मनुष्य प्राप्त भोग-सुखोंको छोड़कर परमात्म-सुखके लिये लालायित था। उसने अपने जीवनका उद्देश्य ही मान रखा था, आत्माको जानना—परमात्माको प्राप्त करना। गर्भाधान-कालसे इसीके लिये तैयारी होती थी और जीवनभर इसीकी शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—ये चार वर्ण मनुष्यके इस अन्तिम ध्येयकी प्राप्तिके लिये ही बनाये गये थे और इनकी सुव्यवस्थापूर्ण पद्धति मनुष्यको क्रमशः परमात्माकी ओर ले जाती थी। शिक्षाका उद्देश्य ही था, मनुष्यको पूर्ण सुखकी प्राप्तिके साधन बतला देना!

समयने पलटा खाया, मनुष्यकी दृष्टि नीचे उतरी, ध्येय पदार्थ नीची श्रेणीका हो गया, अब तो यहाँतक हुआ कि भोग-सुख ही जीवनका लक्ष्य समझा जाने लगा—खूब धन हो, सम्मान हो, सत्ता हो, अधिकार हो, प्रभुत्व हो। इनकी प्राप्तिके लिये चाहे जिस साधनका प्रयोग करना पड़े, चाहे जिस उपायसे काम लिया जाय, झूठ, कपट, छल, द्रोह, हिंसा किसीके लिये रुकावट नहीं, काम होना चाहिये, सफलता मिलनी चाहिये। आश्चर्य तो इसी बातका है कि मरणधर्मा मनुष्य दूसरेको लूटकर, मारकर स्वयं सुख-शान्तिसे जीना चाहता है।

किसी जमानेमें परमात्माकी प्राप्तिके लिये तप होते थे, आज भोगोंकी प्राप्तिके लिये होते हैं! कभी भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण होता था, आज भोगोंकी प्रतिमा पूजी जाती है! कभी देहात्मबोध छोड़कर ब्रह्मात्मबोध किया जाता था, अब ब्रह्मात्मबोधकी अनावश्यकता समझी जाकर उस मार्गके पथिकोंको भी देहात्मबोधकी शिक्षा दी जाती है। बड़े-बड़े मनीषी, तपस्वी, संयमी पुरुष भी आज भोगोंकी प्राप्ति करने-करानेके लिये जीवनकी और धर्मकी बाजी लगाये बैठे हैं और इसीको धर्म समझा जा रहा है! इस भोगपरायणता—इन्द्रिय-सुखपरताका परिणाम क्या होता है? मनुष्योंमें राक्षसी भावोंका उदय, द्वेष-हिंसा-प्रतिहिंसाका प्राबल्य, घोर अशान्ति और सुखके नामपर दुःखपूर्ण जीवन-यापन।

आज जो कुछ हो रहा है इसके अधिकांशमें न ज्ञान है, न निष्काम कर्म है और न भक्ति है। ज्ञानमें प्रधान बाधा है देहाभिमानकी, सो उसको खूब बढ़ाया जा रहा है। निष्काम कर्मयोगमें प्रधान बाधक है स्वार्थबुद्धि, जिसकी वृद्धिके लिये प्रत्येक सम्प्रदाय और दल जोरोंके साथ संगठित हो रहे हैं और भक्तिमें प्रधान प्रतिबन्धक है शरणागतिमें कमी—भगवान्‌पर पूर्ण निर्भर न होना, सो यह भी प्रत्यक्ष ही है। सच्चा ज्ञानी, सच्चा निष्कामकर्मी और सच्चा भक्त कभी छल, कपट, दम्भ, असत्य, अन्याय और हिंसा आदिका अवलम्बन नहीं कर सकता।

अज्ञानजनित भोग-लोलुपताके अन्धकारने हमारे ज्ञानको ढँक लिया है और चारों ओरसे इस अन्धकारको और भी घन करनेका अथक प्रयत्न हो रहा है। इस अन्धकारकी घनताको ही ज्ञानका प्रकाश कहा जाता है। हम 'कामोपभोगपरायण' होकर सैकड़ों आशाकी फाँसियोंमें बँधे हुए काम-क्रोधादि साधनोंसे 'कामभोगार्थ' अन्यायपूर्वक 'अर्थप्राप्ति' के उपायोंमें लग रहे हैं। मोहने हमें घेर लिया है। अभिमानने हमें अंधा कर दिया है, लोभने हमारी वृत्तिको बिगाड़ दिया है, मदने हमें उन्मत्त बना दिया है, इसीसे आज हम 'अहंकार-बल-दर्प-काम-क्रोध' का आश्रय लेकर 'सर्वभूतस्थित' भगवान्‌के साथ द्वेष करने लगे हैं। इन आसुरी भावोंका परिणाम नरककी यन्त्रणाएँ और अधम गतिके सिवा और क्या हो सकता है?

मनुष्यको सावधान होकर यह सोचना चाहिये कि यहाँ सभी भोग-सुख अनित्य हैं, बिजलीकी भाँति चञ्चल हैं। शरीर कच्चे घड़ेके समान अचानक जरा-सी ठेस लगते ही नष्ट हो जानेवाला है, इसलिये भोगोंसे मन हटाकर भगवान्‌में प्रेम करें। भगवान्‌के लिये ही जगत्‌के सारे कार्य करें। जगत्‌के लिये भगवान्‌को कभी नहीं भुलाया जाय। भगवान्‌के लिये जगत्‌को छोड़ना पड़े तो आपत्ति नहीं, परंतु जगत्‌के लिये भगवान् कभी न छूटें। यदि मनुष्य इस प्रकार निश्चय कर ले तो फिर जगत्‌के छोड़नेकी भी जरूरत नहीं पड़ती, सारा जगत् भगवन्मय ही तो है। —'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे सगे भगवान्

(ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

जीवात्मा सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माका अंश है। जैसे घटाकाश, महाकाश, शरावाकाशके भीतर, बाहर और मध्यमें महाकाश, कटक, मुकुट, कुण्डल आदिकोंके भीतर, बाहर और मध्यमें सुवर्ण, और तरंगके भीतर, बाहर एवं मध्यमें जल विद्यमान है, वैसे ही चेतन, अमल, सहज, सुखराशि जीवात्माओंके भीतर, बाहर और मध्यमें सच्चिदानन्द परमात्मा विद्यमान हैं। इस दृष्टिसे जीवात्मा भगवान्का पुत्र, अंश एवं स्वरूप है। जैसे शूकर-कूकरके बच्चे शूकर-कूकर होते हैं, सिंहके बच्चे सिंह होते हैं, वैसे ही '**अमृतस्य पुत्राः**', '**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७) इत्यादि श्रुति-स्मृतिके अनुसार भगवान्का पुत्र या अंश जीवात्मा भगवान्का स्वरूप ही सिद्ध होता है। जैसे निर्मल जल पृथ्वीपर पड़ते ही मलिन हो जाता है, वैसे ही शुद्ध चिदात्मा मायाके संसर्गसे मलिन हो जाता है। भगवान् जीवोंके परम अन्तरङ्ग और घनिष्ठ सम्बन्धी हैं। संसारकी सब वस्तुओंका वियोग अनिवार्य है। कलत्र, पुत्र, मित्र, क्षेत्र आदि सभी वस्तुओंके साथ जीवात्माका सम्बन्ध गौण ही है, मुख्य सम्बन्ध तो भगवान्का ही है। जीवात्मा स्वर्ग-नरक, जहाँ भी जाय, भगवान् ही उसके साथ होते हैं, अन्य सभी लोग उससे सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। अघासुरके मुखमें ग्वाल-बाल प्रविष्ट हो गये, उसके विषसे उन्हें जलते हुए देखकर प्रभु श्रीकृष्ण भी उसके मुँहमें प्रविष्ट हो गये। संसारमें किसीकी प्रीति या शक्ति ऐसी है, जो एक साँपके मुखमें पड़े पुत्र या मित्रके साथ स्वयं भी उसमें प्रविष्ट हो जाय? किसी स्त्रीका पुत्र कूपमें गिरता है। वह कूपके तटपर खड़ी होकर चिल्लाती है—'दौड़ो, दौड़ो, बच्चेको निकालो', पर कूपमें उतरनेकी हिम्मत उसकी नहीं होती, फिर साँपके मुखमें प्रविष्ट होनेको कौन तैयार रहेगा?

गाढ़-से-गाढ़, विषम-से-विषम स्थानोंमें जीवात्माका साथी भगवान् ही है। माँके पेटमें, विभिन्न योनियोंमें, नरकमें, किं बहुना, जहाँ भी जीवात्माको जाना होता है, भगवान् वहीं जाते हैं। जैसे महाकाश घटाकाशका, जल तरंगका संग नहीं छोड़ सकता, वैसे ही भगवान् जीवात्माका संग नहीं छोड़ते। जब जीवात्मा अपने असली सम्बन्धी भगवान्को भूलकर नकली सम्बन्धियोंके मायाजालमें फँस जाता है, तभी माया उसे दु:ख-महोदधिमें डालकर उसके मस्तिष्कको ठिकाने लानेका प्रयत्न करती है। जब प्राणी यहाँतक उन्मादी बन बैठता है कि ईश्वर और धर्मको अनावश्यक समझने लगता है, भगवान्के ही बनाये दिल-दिमागसे अपनी वैज्ञानिक चमत्कृतियोंपर मुग्ध होकर कहता है कि 'वैज्ञानिक दृष्टिसे पार्थिवादि प्रपञ्चों या प्रकृतिसे ही सम्पूर्ण काम सिद्ध हो जाते हैं, ईश्वर और धर्म तो केवल झगड़ेकी जड़ है या भीरु प्राणियोंके मनका एक वहम है', तब कहीं व्यापक भूकम्पोंद्वारा, कहीं महामारियोंद्वारा, कहीं प्राकृतिक विकट तूफानों या विश्वव्यापी नरसंहारोंद्वारा प्राणियोंको वह माया परमात्माका स्मरण दिलाती है। फिर भी जैसे कल्याणमयी, करुणामयी, पुत्रवत्सला अम्बा अपने शिशुओंका कभी भी अहित नहीं चाहती, वैसे ही प्रभु भी कभी भी प्राणियोंका अहित नहीं चाहते। तभी तो वे निरीश्वरवादी प्राणियोंका भी कल्याण चाहते हैं, उनपर भी वे कुपित नहीं होते। इसी आशापर तो ब्रह्माजीने कहा था कि 'हे नाथ! यद्यपि मैंने आपकी कौतुकपूर्ण क्रीड़ामें विघ्न डाला, आपके बछड़ों और ग्वाल-बालोंका हरण करके बड़ा ही अपराध किया, तथापि प्रभो! जैसे अम्बा गर्भगत शिशुके पैर चलानेको अपराध नहीं मानती, वैसे ही आप हमारे ऐसे कर्मोंपर ध्यान न दें। प्रभो! सम्पूर्ण विश्व ही आपके उदरमें है, फिर गर्भगत शिशुके समान ही प्राणियोंके अपराधोंको क्षमा करना क्या उचित नहीं है?'

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। १२)

प्रभुने ब्रह्माजीको क्षमा भी कर दिया। उन्होंने शास्त्रोंद्वारा सरल-से-सरल उपाय बता रखा है—पत्र, पुष्प, फल, जल, नमस्कारमात्रसे ही वे प्रसन्न हो सकते हैं। कुछ भी न हो तो केवल मनसे ही पूजन-स्मरण, और वह भी न बने तो भाव-कुभाव, जिस-किसी तरह भगवान्के नाम-जपसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमगति प्राप्त हो सकती है। जब एक अदृष्ट तत्त्वकी ओर, जो वस्तुतः सबका द्रष्टा या असली स्वरूप है, विश्वास होगा, तब सम्पूर्ण दुनियाके सम्बन्ध—नाते अपने-आप फीके लगने लगेंगे। कलत्र, मित्र, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, क्षेत्र, वित्त आदि सभी सांसारिक वस्तुओंका सम्बन्ध केवल स्थूल-देहके साथ ही है। उसके नष्ट होते ही वे सब सम्बन्ध अपने-आप ही छूट जाते हैं—

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति।
तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता॥

(पाद्मीय भागवत-माहात्म्य ५। ६१)

'जो अन्न प्रातःकाल पकाया जाता है, वह सायंकालतक बिगड़ जाता है, फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी?' फिर ऐसे विनश्वर, क्षणभङ्गुर शरीरका आत्माके साथ कहाँतक सम्बन्ध रह सकता है? एक जन्मकी बात कौन कहे, जन्म-जन्मान्तरों, युग-युगान्तरों, कल्प-कल्पान्तरोंके देहों एवं तत्सम्बन्धी पुत्र-पौत्र-कलत्रोंका स्मरण करें तो चित्तकी क्या दशा होगी? यही समझकर भगवदाद्य श्रीशंकराचार्यचरणोंने कहा था—

कति नाम सुता न लालिताः
कति वा नेह वधूरभुञ्जि हि।
क्व नु ते क्व च ताः क्व वा वयं
भवसंगः खलु पान्थसंगमः॥

(श्रीशंकरदिग्विजय ५। ५३)

'जन्म-जन्मान्तरोंमें कितने ही पुत्रोंका लालन नहीं किया, कितनी सुन्दरी रमणियोंका संस्पर्श नहीं किया, परंतु आज कहाँ वे पुत्रादि, कहाँ वे रमणियाँ, कहाँ हम सब? यह संसारका संगम केवल यात्रियोंके संगके समान ही अस्थिर है।' स्थिर सम्बन्ध तो एकमात्र भगवान्‌का ही है, जो स्वर्ग-नरक, कहीं भी जीवका संग नहीं छोड़ते। जीवात्मा और परमात्मा—दोनों ही एक शोभन पंखवाले सुपर्ण पक्षी हैं, दोनों सुपर्ण एक जातिके पक्षी हैं, इसलिये भी उन दोनोंका आपसमें मुख्य सम्बन्ध है। साथ ही दोनोंकी परस्पर पूर्ण मैत्री है। परमात्मा पालक सखा है, जीवात्मा बालक सखा, दोनोंकी ही 'चेतन, अमल, सहज सुख-राशिरूप' से ख्याति भी है। कहीं साजात्य एवं सख्य-सम्बन्ध होनेपर भी दुर्दैवयोगसे भिन्न देश रहनेके कारण सम्बन्ध कमजोर हो जाता है, परंतु यहाँ तो एक ही शरीररूप वृक्षपर जीवात्मा-परमात्मा—दोनों ही पक्षी रहते हैं। अतः साजात्य, सख्य, सादेश्य—तीनों तरहके सम्बन्ध दृढ़ हैं। यद्यपि भगवान् जडवर्गसे सर्वदा असस्पृष्ट और निर्लेप ही रहते हैं, तथापि चिद्रूप जीवात्माके साथ तो भगवान्‌का तादात्म्य या अभेद सम्बन्ध रहता है। अतः साजात्य, सख्य, सादेश्यके समान ही सायुज्य भी सर्वदा ही रहता है। जैसे कभी घटाकाश महाकाशसे वियुक्त नहीं होता, तरंग जलसे पृथक् नहीं होती, घट-शरावादि मृत्तिकासे वियुक्त नहीं होते, कटक-मुकुटादि सुवर्णसे पृथक् नहीं होते, वैसे ही जीवात्मा कभी भी भगवान्‌से पृथक् नहीं होता, किंतु अपने असली सम्बन्धी भगवान्‌को भूल जानेसे ही प्राणी अनेकानर्थपरिप्लुत भवाटवीमें भटकता और दुःख पाता है। जब और जहाँ कहीं भी वह सावधान होकर भगवान्‌की ओर दृष्टि करता है, प्रभु उसपर पूर्ण कृपा करके उसे अपना लेते हैं।

मृत्युके प्रवाहको रोकनेका उपाय

श्रीकुन्तीजी कहती हैं—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥

(श्रीमद्भा० १। ८। ३६)

'भक्तजन बार-बार आपके चरित्रका श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं। वे ही अविलम्ब आपके उस चरण-कमलका दर्शन कर पाते हैं, जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको सदाके लिये रोक देता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के निराकार स्वरूपका वर्णन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—अर्जुन! मैं तुमसे विज्ञानके सहित ज्ञानकी बात कहूँगा, जिससे तू संसारसे मुक्त हो जायगा। फिर इसकी प्रशंसा करते हैं—यह सब विद्याओंका राजा होनेसे राजविद्या है तथा सबसे गोपनीय होनेसे राजगुह्य है और परम पवित्र है तथा सबसे उत्तम चीज है। इसका फल भी प्रत्यक्ष है और धर्ममय है। यह साधनमें भी सुगम है और अविनाशी है। इस प्रकारसे विशेषण दे करके निराकारका ध्यान बतलाते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(गीता ९। ४-५)

मेरा जो निराकार स्वरूप है उससे संसार परिपूर्ण हो रहा है, जैसे आकाशमें बादल आकाशसे परिपूर्ण है। उसके बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे आकाश परिपूर्ण है। आकाश व्यापक है, बादलमें परिपूर्ण है। भगवान् कहते हैं कि इसी प्रकारसे इस संसारमें मैं परिपूर्ण हूँ। यानी संसार तो बादलके जैसा है, और मैं उसमें आकाश-जैसा हूँ। फिर कहते हैं कि '**मत्स्थानि सर्वभूतानि**'—सारे मनुष्य-प्राणी मेरेमें स्थित हैं। जैसे आकाशमें सारे बादल स्थित हैं, वैसे सारे भूत-प्राणी मुझ परमात्मामें स्थित हैं। फिर इसके विपरीत कहते हैं कि उन भूतोंमें मैं नहीं हूँ। पहले तो कहते हैं कि उन भूतोंमें मैं व्यापक हूँ और आगे जाकर कहते हैं कि उन भूतोंमें मैं नहीं हूँ—'**न च मत्स्थानि सर्वभूतानि।**' सब भूत-प्राणी मेरेमें स्थित हों ऐसी भी बात नहीं। '**मत्स्थानि सर्वभूतानि**' और '**न च मत्स्थानि भूतानि**' सारे भूत-प्राणी मेरेमें स्थित हैं और सारे भूत-प्राणी मेरेमें स्थित नहीं हैं। '**पश्य मे योगमैश्वरम्**' मेरे योगका अद्भुत-अलौकिक ऐश्वर्य देख। '**भूतभृन्न च भूतस्थो०**' भूतोंको धारण करनेवाला मेरा स्वरूप है, किंतु भूतोंमें नहीं है। '**ममात्मा भूतभावनः**' मेरी आत्मा या स्वरूप भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला है। यह इसका शाब्दिक अर्थ है। इसका भाव समझना चाहिये, तत्त्व, रहस्य समझना चाहिये। यदि वास्तवमें इसका तत्त्व समझमें आ जाय तो उसके कल्याण होनेमें विशेष विलम्ब नहीं है। यहाँपर यह विचार करना है कि यहाँका जो कथन है, वह किस दृष्टिसे है। व्याप्य-व्यापकभावकी दृष्टिसे है या आधार-आधेयकी दृष्टिसे है अथवा कार्य-कारणकी दृष्टिसे है। इसका उत्तर यह है कि सभी दृष्टिसे भगवान्‌का कथन है—भगवान् इस संसारमें व्यापक हैं। संसार व्याप्य है, भगवान् उसमें व्यापक हैं। भगवान् आधार हैं और संसार उसमें आधेय है तथा भगवान् इसके कारण हैं और संसार इसका कार्य है। भगवान् संसारके उपादान-कारण भी हैं और निमित्त-कारण भी। '**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**'—इसमें तो व्याप्य-व्यापकका भाव दिखलाया है, कहा है कि संसार तो व्याप्य है और मैं उसमें व्यापक हूँ। जैसे उपनिषदोंमें—'**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्**'—जगत्‌में ईश्वर व्यापक है। ईश्वर परिपूर्ण है, ईश्वरद्वारा आच्छादित है। नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर सब जगह ईश्वर ही उसमें ओतप्रोत है। इसी प्रकारसे यहाँ यह कहना है कि संसार व्याप्य है और भगवान् उसमें व्यापक हैं, परिपूर्ण हैं। नीचे-ऊपर सब जगह भगवान्-ही-भगवान् हैं। यहाँ आधे श्लोकमें व्याप्य-व्यापक-भाव दिखलाया कि भगवान् व्यापक हैं और संसार व्याप्य है। जैसे बादल व्याप्य और आकाश उसमें व्यापक है, और '**मत्स्थानि सर्वभूतानि**'—इसमें यह बात दिखलाते हैं कि मैं सारे भूतोंका आधार हूँ और सारे भूत मुझमें आधेय हैं। जैसे आकाश बादलोंका आधार है और बादल आधेय है। '**ममात्मा भूतभावनः**'—मेरा स्वरूप भूतोंके भावको उत्पादन करनेवाला है। इसमें यह बात दिखायी कि भगवान् इसके उपादान-कारण हैं। जैसे सारे बादल आकाशसे उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही विलीन हो जाते हैं, वैसे ही ये प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ परमात्मासे उत्पन्न होते हैं। आकाशसे वायु उत्पन्न होती है, वायुसे तेज और तेजसे बादल उत्पन्न होते हैं। आकाश ही इनका मूल उपादान-कारण है। इसी प्रकारसे भगवान् कहते हैं कि इस संसारका उपादान-कारण मैं ही हूँ, क्योंकि यह सारा संसार मुझसे ही विस्तारको प्राप्त होता है। जब यह सारा संसार भगवान्‌का संकल्प है तो यह भगवान्‌का स्वरूप ही है। **'पश्य मे योगमैश्वरम्'**—मेरी योग-शक्तिको तू देख, मेरी रचना देख। रचना करनेवाले भी भगवान् हैं, इसलिये निमित्त-कारण भी भगवान् ही हुए। ये बातें आपको आकाश और बादलके दृष्टान्तसे समझनी चाहिये।

बादलोंकी जगह तो यहाँ संसार है और आकाशकी जगह भगवान्। भगवान् आकाशकी तरह निराकार हैं, आकाशसे भी विशेष हैं; क्योंकि आकाश तो जड है और भगवान् चेतन हैं। अत: एक प्रकारसे यह समझना चाहिये कि बादलोंमें आकाश जैसे व्यापक है, यों ही भगवान् सारे संसारमें व्यापक हैं। बादलोंके लिये आधार आकाश ही है, नहीं तो बादलोंकी कोई गुंजाइश ही नहीं। उसी प्रकार संसारके आधार भगवान् हैं और भगवान्‌के बिना संसारकी गुंजाइश ही नहीं। और आकाश ही बादलोंका उत्पादक भी है और कारण भी। इसी प्रकारसे भगवान् भी संसारके उत्पादक होनेसे कारण हैं। आकाश जड है और भगवान् चेतन हैं, इसलिये भगवान् उपादान-कारण भी हैं और निमित्तकारण भी, रचनेवाले भी हैं। ये बातें बतलायीं—**'पश्य मे योगमैश्वरम्।'** इतना ही नहीं भगवान् इसका धारण-पोषण करनेवाले हैं, पालन-पोषण करनेवाले हैं। **'भूतभृत्'** जो शब्द है इससे यह बात प्रत्यक्ष होती है।

अब यह बतलाया जाता है कि भूतोंमें मैं स्थित नहीं हूँ और भूत भी मेरेमें स्थित नहीं हैं यह बात कैसे ? भूतोंमें मैं हूँ और मेरेमें सारे भूत हैं यह बात कैसे? इसके लिये उत्तर है—जैसे आकाशके अंदर बादलोंका समूह है, लाखों बादल आकाशके एक अंशमें हैं और आकाश जो है उन बादलोंमें अनुस्यूत है, यह तो प्रत्यक्ष देखते हैं। इसी प्रकारसे जो यह ब्रह्माण्ड है, एक नहीं अनेक ब्रह्माण्ड हैं, सारे-के-सारे ब्रह्माण्ड उस परमात्माके अंदर हैं। जैसे बादलोंका समूह आकाशके अंदर है। सारे ब्रह्माण्ड—अनन्त ब्रह्माण्ड उस परमात्माके निराकार-रूपमें स्थित हैं और वह निराकार परमात्मा सभी ब्रह्माण्डोंमें है या सारे ब्रह्माण्डमें अनुस्यूत है—व्यापक है, जैसे बादलोंमें आकाश। आकाश बादलोंके भीतर भी है और बाहर भी। परमात्मा इस ब्रह्माण्डके भीतर भी हैं और इस ब्रह्माण्डके बाहर भी। जिस प्रकारसे आकाशमें बादल उत्पन्न होता है और विलीन हो जाता है, उसी प्रकारसे यह संसार परमात्मासे उत्पन्न होता है और उसीमें लय हो जाता है। यह समझना चाहिये कि बादलोंके समूहकी भाँति यह दृश्य वर्ग संसार है, क्योंकि यह संसार निराकार परमात्माका स्वरूप है। जैसे आकाश निराकार और भगवान् भी निराकार, आकाश भी अक्रिय और भगवान् भी अक्रिय, आकाशका स्वरूप अनन्त तथा भगवान्‌का स्वरूप भी अनन्त, जैसे आकाश निर्विकार और भगवान् भी निर्विकार। किंतु कई बातें ऐसी हैं जो भगवान्‌में हैं और आकाशमें नहीं हैं। भगवान् अचिन्त्य हैं, भगवान् किसीका विषय नहीं हो सकते। पर आकाशका हम चिन्तन कर सकते हैं। जो भी वस्तु किसीका विषय हो जाती है वह जड समझी जाती है। ज्ञाता चेतन समझा जाता है और ज्ञेय जड। जाननेवाला परमात्मा है और जाननेमें आनेवाले पदार्थ जड हैं। अत: आकाश जड है और परमात्मा चेतन। इसलिये आकाश अचिन्त्य नहीं है, किंतु भगवान् अचिन्त्य, अलक्ष्य, अनिर्देश्य हैं। किंतु आकाशमें ये बातें नहीं हैं, आकाशका निर्देश किया जाता है। हम कह सकते हैं कि यह जो फैला हुआ है यह आकाश है। किंतु इस प्रकार भगवान्‌को हम नहीं कह सकते कि यह जो फैला हुआ है यह भगवान् है। आकाशको हम अपनी बुद्धिसे लक्ष्य भी कर सकते हैं, किंतु परमात्माको हम लक्ष्य भी नहीं कर सकते। इस वास्ते परमात्मा अनिर्देश्य है, अलक्ष्य है, अव्यक्त है, चिन्मय है और अचिन्त्य है। आकाश अचिन्त्य नहीं है। आकाशकी अपेक्षा बहुत-सी बातें उसमें विशेष हैं। किंतु जितनी बातें आकाशमें घट सकें उतनी बातें तो भगवान्‌में घटती ही हैं। उससे जो अधिक घटती है सो बात विशेष है।

जब भगवान् कहते हैं कि 'सारे संसारमें मैं हूँ, सारे ब्रह्माण्डमें मैं हूँ, सारे भूतोंमें मैं हूँ और सारे भूत मेरेमें हैं।' यह तो समझमें आ गयी, किंतु यह समझमें नहीं आया कि सारे भूत मेरेमें नहीं हैं और सारे भूतोंमें मैं नहीं हूँ—ये इस प्रकार जो दो विपरीत बातें हैं ये समझमें नहीं आयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाशके दृष्टान्तसे सारे भूत-प्राणियोंमें मैं हूँ और सारे भूत-प्राणी मेरेमें हैं, यह बात तो समझमें आ गयी, परंतु भूतोंमें मैं नहीं हूँ और भूत भी मेरेमें नहीं हैं इतना अंश समझमें नहीं आया। यह समझाया जाता है, ध्यान दें।

आकाश जड है, किंतु थोड़े कालके लिये उसको चेतन मान लो। यदि आकाश यह कहे कि सारे भूतोंमें मैं हूँ और सारे भूतोंमें मैं नहीं हूँ तो आकाशका यह कहना सही है कि सारे भूतोंमें—सारे बादलोंमें, वायुमें, जलमें और पृथ्वीमें—इन चारों भूतोंमें आकाश कायम होनेसे उन सबमें व्यापक है, किंतु आकाशमें ये नहीं हैं। यदि कहो कि यह बात समझमें नहीं आयी तो समझिये—जिस समय बादल आकाशमें नहीं या बादलकी उत्पत्तिके पूर्व केवल आकाश ही था और बादल जब मिट जाते हैं, तब केवल आकाश ही रहता है और बीचकी अवस्थामें आकाश जो है वह बादलमें है। यदि कहो कि यही सत्य है तो ऐसी बात नहीं है बल्कि आदिमें भी आकाश अपनेमें स्थित है और अन्तमें भी। इसलिये बीचकी अवस्थामें भी आकाश वास्तवमें अपने-आपमें स्थित है, बादलोंमें स्थित नहीं है। यदि बादलोंमें स्थित होता तो बादलोंके नाश होनेसे उतने आकाशका भी नाश हो जाता। आकाश तो कायम रहता है और बादल उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं। बादल जब नहीं था तब भी आकाश था और बादल जब नहीं रहेगा तब भी आकाश रहेगा। इसी प्रकार महाप्रलयके समयमें यदि संसार नहीं है तो उस समय भगवान् अपने-आपमें स्थित हैं। सृष्टिके आदिमें भी भगवान् थे और सृष्टिके अन्तमें भी भगवान् अपने-आपमें रहेंगे। अतः बीचकी अवस्थामें या सृष्टिकालमें भी भगवान् यानी परमात्मा अपने-आपमें स्थित हैं। इस वास्ते यह कहना ठीक है कि जिस समय संसार है उस समय संसारमें परमात्मा है और परमात्माके एक अंशमें संसार है। और जिस समयमें प्रलय हो जाता है उस समयमें संसार नहीं है। इसी प्रकार जब बादल मिट जाते हैं तब आकाशमें बादल नहीं हैं। तो यह वास्तविक बात है कि परमात्मा अपने-आपमें नित्य स्थित हैं। जैसे आकाश अपने-आपमें नित्य स्थित है, आकाशमें बादल होते हैं, गरजते हैं, बरसते हैं, बिजली चमकती है, शब्द होता है, किंतु थोड़ी देरमें सब समाप्त हो जाते हैं। आकाश उनसे कभी लिपायमान नहीं होता। आकाश तो ज्यों-का-त्यों ही रहता है। इसी प्रकार ब्रह्ममें सृष्टि होती है, मरते हैं, जन्म लेते है, नाना प्रकारकी क्रिया होती है, परंतु परमात्मा आकाशकी तरह सदैव निर्लेप रहते हैं। यह बात समझमें आ गयी होगी कि जिस समयमें सृष्टि है उस समय सृष्टिमें परमात्मा व्यापक है और जिस समय सृष्टि नहीं है उस समयमें परमात्मा अपने-आपमें स्थित है, किंतु गम्भीरतासे सोचनेपर पता लगता है कि आकाशके माफिक बादलोंकी उत्पत्तिके पहले भी आकाश अपने-आपमें स्थित है और बादल शान्त होनेके बाद भी आकाश अपने-आपमें स्थित है। तो यह समझना चाहिये कि बादलके कालमें भी आकाश अपने-आपमें स्थित है बादलमें नहीं। इसी प्रकार परमात्मा अपने स्वरूपमें सदा स्थित है। संसारकी उत्पत्ति होनेके पहले भी परमात्मा थे, संसारका नाश होनेके बाद भी परमात्मा रहते हैं। किसमें? अपने-आपमें। तो सृष्टिमें भी परमात्मा अपने-आपमें स्थित हैं सृष्टिमें नहीं, यदि सृष्टिमें होते तो सृष्टिका नाश होनेसे उतने हिस्सेका परमात्माका भी नाश हो जाता। जैसे बादलोंके नाश होनेसे आकाशके उतने हिस्सेका नाश हो जाता; किंतु आकाश तो कायम रहता है। यदि कहो कि यह बात भी समझमें आ गयी, लेकिन यह बात समझमें नहीं आयी कि यह संसार परमात्मामें नहीं है। **'न च मत्स्थानि भूतानि'** तो यह बात भी ठीक है। यदि संसार परमात्मामें होता, यह बात सच्ची होती तो अपने रूपमें सदा कायम रहता। किंतु संसार सदा कायम तो रहता नहीं। **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २। १६) —सत्य वस्तुका कभी अभाव नहीं होता और मिथ्या वस्तु कभी कायम नहीं रहती। यह संसार इस रूपमें कायम नहीं रहता है। इसलिये यह संसार परमात्मामें नहीं है। आकाशमें बादल सदा कायम नहीं रहता, कभी है कभी नहीं है। जिस समय यह संसार परमात्मामें विलीन हो जाता है, या मनुष्यको ब्रह्मका ज्ञान हो जाता है तो फिर उनकी दृष्टिमें यह सृष्टि नहीं रहती। उनकी जो दृष्टि है वही असली दृष्टि है। मूर्खोंकी, अज्ञानियोंकी दृष्टिका कोई मूल्य नहीं है। ज्ञानकी दृष्टिमें, अद्वैतवादकी दृष्टिमें संसारका अत्यन्त अभाव सदा ही है। यह संसार न हुआ, न है और न रहेगा। अजातवादकी दृष्टिमें यह संसार कभी जन्मा ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमानमें भी नहीं है और भविष्यमें भी नहीं रहेगा। यदि कहो कि प्रतीति हो रही है तो प्रतीति तो ऐसे हुआ करती है जैसे आकाशमें नेत्रोंके दोषसे तिरमिरे (जाले) प्रतीत होते हैं, तो क्या वे तिरमिरे हैं? हैं ही नहीं, वहाँ तो आकाश है, शुद्ध आकाश है। किंतु परमात्माका जो स्वरूप है वह कैसा है? वह अलक्ष्य है, अनिर्दिष्ट है, अचिन्त्य है, तो फिर हम उसका ध्यान कैसे करेंगे। ध्यान जब किया जाता है तो उसके साथमें उनके जो दिव्य गुण हैं उसको शामिल करके ही किया जाता है। बुद्धिकी जो वृत्ति है वह है ज्ञान और ज्ञानके आश्रित जो गुण हैं इनसे सम्पन्न जो भगवान्का स्वरूप है, उसे सगुण कहते हैं। और उस सगुणके दो भेद होते हैं एक साकार और दूसरा निराकार। प्रकरण निराकारका है। गुण भी निराकार ही होते हैं। गुणोंसे सम्पन्न जो भगवान्का स्वरूप है उसका ध्यान होता है। वह है तो निराकार, किंतु दिव्य गुणोंसे पूर्ण है, उसका ध्यान होता है। दिव्य गुण क्या हैं? भगवान्के जो स्वरूप सत्, चित्, आनन्द बताये गये हैं, यह उनका स्वरूप है। किंतु जिस समयमें हम इसे बुद्धिसे समझते हैं तो एक प्रकारसे निराकार होते हुए, निर्गुण होते हुए भी उनको हम किसी आकृतिमें देखते हैं। आकृति मायिक होती है, इस वास्ते परमात्माका जो स्वरूप है वह मायाविशिष्ट है, मायासे मिले हुए परमात्माके स्वरूपका ही ध्यान होता है, नहीं तो ध्यान नहीं हो सकता। कैसा परमात्माका स्वरूप है? ऐसा समझो कि परमात्मा है और वह कैसा है? चेतन है। भगवान्ने गीतामें बतलाया है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

परमात्माका स्वरूप आठवें अध्यायके इस २१वें श्लोकमें बतलाया है। परमात्माका कैसा स्वरूप है? वे अव्यक्त हैं, निराकार हैं, अक्षर हैं उनका क्षय नहीं होता है उसीको परम गतिके नामसे कहा गया है।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥

—इस श्लोकमें इस आनन्दमय परमात्माके विषयमें कहते हैं, सारे शब्द अस्तित्वके वाचक हैं, वह अक्षर है, माने उसका क्षय नहीं होता, वह घटता नहीं। वह अनिर्देश्य है उसका अँगुलीसे निर्देश नहीं किया जा सकता, कि वह परमात्मा है। अँगुलीसे आकाशका निर्देश किया जा सकता है, परंतु परमात्माका निर्देश नहीं किया जा सकता। इसलिये अनिर्देश्य है और अव्यक्त है माने निराकार है, उसका कोई आकार नहीं। सर्वव्यापी है, सबके बीचमें वह परमात्मा है। अचिन्त्य माने मनसे उसका ध्यान नहीं होता। क्यों नहीं होता? इसलिये कि मनका विषय नहीं। वह अचिन्त्य है। चित्त उसका चिन्तन नहीं कर सकता। इस वास्ते बतलाया कि वह अचिन्त्य है और आकाशकी तरह सब जगह व्यापक है। '**सर्वत्रगम्**' कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ परमात्मा न हो और कूटकी भाँति स्थित है, अचल है, कोई क्रिया नहीं, चलनेकी क्रिया नहीं, हिलनेकी क्रिया नहीं और भावरूप है, ध्रुव सत्य है वह परमात्मा वास्तवमें है। ये सत्ताके वाचक शब्द हैं। इसी प्रकारसे जो भगवान्का स्वरूप जाननेमें आ सके जिसे माया-विशिष्ट कहते हैं, बुद्धि-विशिष्ट कहते हैं, उसीकी व्याख्या गीताके तेरहवें अध्यायमें बारहवें श्लोकसे लेकर सत्रहवें श्लोकतक की गयी है। वहाँ भगवान् कहते हैं कि—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥

हे अर्जुन! जो ज्ञानमें आनेवाला है, जानने योग्य ब्रह्मका स्वरूप है, जो जाना जा सकता है, ऐसे ब्रह्मके स्वरूपकी मैं तेरे प्रति व्याख्या करूँगा, तुमसे कहूँगा, तू जब उसको समझ जायगा तो अमृतको प्राप्त हो जायगा यानी उस ब्रह्मको प्राप्त हो जायगा, परमात्माको प्राप्त हो जायगा। तो साधनकालमें जो साधक ब्रह्मका स्वरूप निराकार होते हुए भी, निर्गुण होते हुए भी उस निराकाररूपमें उसकी उपासना करेगा और उसके फलस्वरूप वह असली जो परमात्माका स्वरूप है उसको प्राप्त हो जायगा।

'ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि'

जो ज्ञेय है उसे मैं तेरे लिये कहूँगा।

'यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।'

जिसको जानकर मनुष्य अमृतको प्राप्त हो जाता है। मुक्त हो जाता है। परमात्माको प्राप्त हो जायगा। वह परमात्मा कैसा है? वह अनादि है और परब्रह्म है। उसको सत् भी नहीं कहा जा सकता और असत् भी नहीं कहा जा सकता। असत् करके इसलिये नहीं कहा जा सकता कि वह ध्रुव सत्य है, '**सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।**' नित्य और सत् बतलाया, तो है तो सही वह। तो कैसा है? वह चेतन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

यह गीताके १३वें अध्यायका १७वाँ श्लोक है। भगवान् कहते हैं—संसारमें जितनी भी ज्योतियाँ हैं उन ज्योतियोंका भी ज्योति है—उन सबका प्रकाशक है। सारी ज्योतियाँ परमात्मासे ही हैं। जितनी भी जड ज्योतियाँ हैं, उन सबका वह प्रकाशक है। ज्योतियोंके भीतरमें जो चमत्कारी दृष्टि है वह परमात्मासे ही है। क्योंकि—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५। १२)

सारे विश्वको, सारे भूमण्डलको प्रकाश देनेवाले सूर्यमें जो तेज है, चन्द्रमामें जो तेज है, अग्निमें जो तेज है माने ज्योति है वह सब मेरेसे ही है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्रमण्डल, बिजली, अग्नि—ये जितनी जड ज्योतियाँ हैं यह सब भगवान्‌से ही हैं। इस वास्ते वह ज्योतियोंकी ज्योति है। इन जड ज्योतियोंसे परेकी चीज जिनसे पदार्थोंका ज्ञान हो वे ज्योतियाँ हैं। नेत्रसे रूपका ज्ञान होता है, कानसे शब्दोंका ज्ञान होता है, त्वचासे स्पर्शका ज्ञान होता है। जिह्वासे स्वादका ज्ञान होता है, नासिकासे गन्धका ज्ञान होता है, तो ये सब ज्योतियाँ हैं, इनसे इन सबका ज्ञान होता है; उदाहरण देकर बतलाया जाता है—

कोई भाई मुझसे मिलने आया, उसने मुझे देख लिया और मैंने उसे देख लिया। वहाँ नेत्र-ज्योति है। आँख-ज्योति है। हम दोनों यदि अंधे होते तो एक-दूसरेको नहीं देख सकते। एक-दूसरेको देखकर जो ज्ञान हुआ वह नहीं होता। जहाँ नेत्र-ज्योति नहीं है वहाँ कौन ज्योति है? वहाँ शब्द ज्योति है। शब्दसे कैसे? जैसे मैं पुकारता हूँ किसी भाईको कि क्या शरणानन्दजी महाराज बैठे हुए हैं, उसने कहा—हाँ। तो दोनों आदमी अंधे होते हुए भी शब्दके बलपर उन्हें एक-दूसरेका ज्ञान हो जाता है—और उनसे जाकर मिल लेते हैं। पास-पास बैठकर बातचीत कर लेते हैं। दोनों ही अंधे आदमी हैं तो वहाँ ज्ञान हुआ शब्दसे। अतः यहाँ शब्द-ज्योति है। यदि ऐसा मौका लग जाय कि दोनों ही अंधे हों और दोनों ही गूँगे हों, दोनों ही बहरे हों तों वहाँ एक-दूसरेको कैसे पहचानें। वहाँ भी कोई ज्योति है? वहाँ स्पर्श-ज्योति है। एक-दूसरेको छू करके समझ लेगा। तो इससे यह मालूम होता है कि ये सब ज्योतियाँ हैं। विषय भी ज्योति है, इन्द्रियाँ भी ज्योति हैं और यह सब ज्योतियाँ परमात्मासे हैं। इसलिये वह ज्योतियोंका ज्योति है। इससे परे जो ज्योति है वह मन है जिसे पाँचों विषयोंका ज्ञान है, पाँचों भूतोंका ज्ञान है, इस वास्ते मनके द्वारा सबका ज्ञान हो जाता है। पर मनका ज्ञान इन्द्रियोंको नहीं होता, विषयोंको नहीं होता। इसलिये मन ज्योति है और मनसे परे जो ज्योति है वह है बुद्धि। जिससे मालूम हो जाता है कि मेरा मन कलकत्ते चला गया, बंबई चला गया, मेरा मन आज ठीक-ठिकाने नहीं है। जहाँ बुद्धिद्वारा यह बात समझमें आ जाती है वहाँ बुद्धि-ज्योति है और बुद्धिका भी ज्ञान होता है आत्मासे। आज मेरी बुद्धि ठीक नहीं है। आज मेरी बुद्धि मलिन है। मेरी बुद्धि इस समय बहुत तीक्ष्ण है। यह ज्ञान जो होता है आत्माको, तो आत्मज्योति इन सबसे परेकी ज्योति है। आत्मज्योतिसे भी और परेकी ज्योति है? भक्तिके मार्गमें परमात्मज्योति उससे परेकी ज्योति है। ज्ञानके सिद्धान्तमें आत्मा और परमात्मा एक ही चीज है, उससे परे कोई चीज है ही नहीं। और भक्तिके मार्गमें जीवसे भेद किया जाता है। आत्मज्योतिसे परमात्मज्योति महान् है। इसलिये भगवान्‌का स्वरूप जो जाननेमें आनेवाला है वह ज्योतियोंकी भी ज्योति है। वह ही सारी ज्योतियोंका प्रकाशक है, दुनियामें जितनी भी ज्योतियाँ हैं परमात्मासे ही हैं, उनमें परमात्मासे ही ज्योतिपन आया है और सत्ता आयी है। या यूँ कहो कि उसमें जो कुछ भी सत्ता और सत्‌भूति है वह परमात्मासे ही है। परमात्मा ही उस ज्योतिमें स्थित है। तम जो अज्ञान है और तम जो अन्धकार है उससे परमात्मा एकदम विलक्षण है अन्धकारसे रहित है। जैसे सूर्यके पास भी अन्धकार नहीं जा सकता तो परमात्माकी तो बात ही क्या है? और अज्ञानसे भी रहित है—**'तमसः परमुच्यते ज्ञानम्०।'** ज्ञान माने चेतनस्वरूप। जाननेमें आनेवाला वह जड और जाननेवाला चेतन है। परमात्मा जड नहीं है, चेतन है। जितने जाननेमें आनेवाले पदार्थ हैं, पाँचों भूतोंसे लेकर बुद्धितक जितने जड पदार्थ हैं और इन सबका कारण अव्याकृत माया है वह भी जड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परमात्मा जड नहीं है, परमात्मा चेतन है। परमात्मा जाननेके योग्य है इस वास्ते उसका नाम ज्ञेय है। ज्ञेयके ऊपर प्रकरण आरम्भ हुआ और ज्ञेयमें ही समाप्त होता है। उपक्रम भी ज्ञेयमें, उपसंहार भी ज्ञेयमें। भगवान् गीताके १३वें अध्यायके १२वें श्लोकमें कहते हैं—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।

मैं तुमको ज्ञेय कहूँगा जिसको जानकर साधक अमृतको प्राप्त हो जाता है। और यहाँ ज्ञेयका प्रकरण समाप्त किया जाता है। '**ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्**'—यह १७वें श्लोकके उत्तरार्धमें समाप्त किया जाता है। परमात्मा ज्ञेय यानी मानने-जाननेके योग्य है, मतलब यह कि चेतनस्वरूप है और जाननेके योग्य है, कैसे जाना जाय? '**ज्ञानगम्यम्**' बुद्धिकी वृत्तिरूप जो ज्ञान है उसके द्वारा गम्य हैं। क्योंकि भगवान् गीतामें कहते हैं—'**बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्**' इन्द्रियोंके परे हैं, किंतु बुद्धिके द्वारा निर्गुण निराकार परमात्माका आनन्दमय स्वरूप ज्ञानमें आता है। '**सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयम्**' सूक्ष्म दृष्टिवाले पुरुष सूक्ष्म-बुद्धिसे उस परमात्माका अनुभव करते हैं। इसीलिये इसकी ज्ञेय संज्ञा है। तो जाननेके योग्य है और बुद्धिके द्वारा अचल, शुद्ध, सूक्ष्म, पवित्र हुई तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा परमात्माके स्वरूपका अनुभव होता है। और वह है कहाँपर? वह परमात्मा सबके हृदयमें आत्मारूपसे विराजमान है '**हृदि सर्वस्य विष्ठितम्**।' सबके हृदयमें आत्मा बोल करके जो लक्ष्य कराया गया वह कौन है? शरीरमें जो द्रष्टा, साक्षी पुरुष, ज्ञाता पुरुष-रूपसे है। जो इस प्रकारसे जानता है कि यह शरीर है, ये इन्द्रियाँ हैं, यह मन है, यह बुद्धि है इन सबको जाननेवाला जिसे हम ज्ञाता कहते हैं, जिस ज्ञाताको दूसरा कोई भी नहीं जान सकता वह ज्ञाता स्वयं अपने-आपको जानता है, इस प्रकार वह सबके हृदयमें ज्ञाताके रूपमें विद्यमान है। सबके बीचमें वह चमकता है। इस प्रकार उस परमात्माके चिन्मय स्वरूपको बताया। यह समझना चाहिये कि परमात्माका स्वरूप कैसा है? परमात्मा सत्-चित्-आनन्दका स्वरूप है, ध्रुव सत्य है, उसका कभी अभाव नहीं है, भावरूप है, '**सद्भावे साधुभावे च**' यह सत् शब्द भावका वाचक है। इसका प्रयोग भावके विषयमें किया जाता है और श्रेष्ठ भावमें भी किया जाता है, साधु-भावमें किया जाता है यह सत् परमात्माका वाचक है, तो परमात्मा है बस इतना-सा दृढ़ निश्चय हो जाय तो उससे परमात्मा छिपकर नहीं रहते। उसके लिये प्रकट हो जाते हैं, किंतु दृढ़ विश्वास होना चाहिये। दर्शन न होनेपर भी परमात्माके विषयमें यह विश्वास है कि भगवान् हैं। हम नहीं जानते कि भगवान् कैसे हैं, किन्तु हैं यह हमें पूरा विश्वास है। जब ऐसा विश्वास हो जाता है तो इसके लिये भगवान् आगे जा करके अपने-आप ही प्रकट हो जाते हैं। जैसे प्रह्लादको यह पूरा विश्वास था कि भगवान् हैं। कहाँ हैं भगवान्? मुझमें भी हैं, आपमें भी हैं, इस खंभेमें भी हैं, तलवारमें भी हैं, सब जगह भगवान् हैं। जब सब जगह भगवान् हैं यह भाव हो जाता है तब भगवान् छिपकर नहीं रह सकते।

और आगे बढ़नेपर तो बात ही क्या है कि भगवान् कैसे हैं? भगवान् चेतन हैं, चेतन मतलब द्रष्टा हैं, साक्षी हैं। भगवान्का स्वरूप केवल चिन्मय है। हमारे शरीरमें है, जैसे आत्माका स्वरूप है। यह तो अल्पज्ञ है और वह सर्वज्ञ है। वह चेतनके सिवाय कुछ भी नहीं है। जब यह निश्चय कर ले कि भगवान् हैं और चेतन हैं बस परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, फिर वह कैसा चेतन है उसका ज्ञान आगे जाकर आप ही हो जाता है—जब भगवान् प्रकट हो जाते हैं। वह चेतन है, वही आनन्द है और आनन्द ही चेतन है। वह अत्यन्त आनन्दस्वरूप है। आनन्द-ही-आनन्द है—ऐसा आनन्द कि इन्द्रियोंकी वहाँ पहुँच ही नहीं है ऐसा आनन्द है, बुद्धिके द्वारा ग्रहणमें आता है, ऐसा आनन्द है, आनन्दरूप है। जिस समय उस आनन्दमय परमात्माको बुद्धिके द्वारा अनुभव कर लेता है फिर वहाँसे चलायमान नहीं होता और वहाँ परमात्माका ज्ञान उत्पन्न होता है, उस अज्ञानका नाश होकर ज्ञान भी शान्त हो जाता है और केवल आनन्दमय परमात्मा ही रह जाता है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(गीता ६। २१)

इस प्रकार निराकार परमात्माका ध्यान बतलाया गया। (कैसेट नं० २५२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्ति ही मृत्यु है

(श्री जय जय बाबा)

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥

(महाभा०, आश्वमेधिकपर्व १३। ३)

'मम' अर्थात् 'मेरा' यह दो अक्षर ही मृत्युरूप है और **'न मम'** अर्थात् 'मेरा कुछ भी नहीं है', यह तीन अक्षरोंका पद सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण है।

आसक्ति क्या है?

किसी व्यक्ति, वस्तु या विचार, मान्यता या सिद्धान्तमें राग हो जाना, उसे अपना मानकर उसमें तादात्म्य कर लेना—उसे छातीसे चिपकाकर रखना यही आसक्ति है।

आसक्तिरूपी चेप बहुत खतरनाक है। जैसे शरीरपरके घावपर चिपकायी हुई चेपयुक्त पट्टीके उधेड़नेमें जैसा शारीरिक कष्ट होता है, वैसे ही मनपर लगा हुआ आसक्तिका चेप जब हमारी इच्छाके बिना जबरदस्ती उधेड़ दिया जाता है, उस समय मृत्युके समान महान् दु:ख भोगना पड़ता है और इसके लिये हम स्वयं जिम्मेदार हैं। यदि आसक्तिकी पट्टी न लगायें तो निर्लेप रहनेसे फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

आसक्ति अर्थात् राग एक महान् क्लेश है। पातञ्जलयोगसूत्रमें बताया गया है—

'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।'

(२। ३)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश हैं जो क्रियायोगद्वारा निर्बल किये जा सकते हैं।

मृत्यु निश्चित है तथा मरते समय कुछ भी साथ नहीं ले जा सकते, यह सब जानते हुए मनुष्य व्यक्ति और वस्तुओंमें राग करके आसक्त हो रहा है, यह कितना अज्ञान है। इसको समझाते हुए भगवान् बुद्धने कहा है—

असंशयं मृत्युरिति प्रजानतो
नरस्य रागो हृदि यस्य जायते।
अयोमयीं तस्य परैमि चेतनां
महाभये रज्यति यो न रोदिति॥

(बुद्धचरित ४। ९९)

'मृत्यु निश्चित है, इसमें कोई संशय नहीं। यह सब कुछ जानते हुए भी जिस मनुष्यके हृदयमें सांसारिक व्यक्तियों अथवा वस्तुओंमें अनुराग हो रहा हो उसकी चेतनाको मैं लोहेके समान जड और मरी हुई मानता हूँ, क्योंकि मृत्युरूपी महाभय सामने उपस्थित होनेपर भी वह रोता नहीं, अपितु उपर्युक्त वस्तुओंके उपभोगमें आनन्द ले रहा है।'

ज्ञानियोंने अपनी नि:संदिग्ध अनुभूतिके द्वारा कहा है कि एकमेवाद्वितीय परब्रह्म परमेश्वरके अतिरिक्त किसी अन्यका अस्तित्व है ही नहीं। जो कुछ भी अन्यरूपसे दीख रहा है वह मायाके कारण है। जो दृश्य हमारी इन्द्रियोंको दीख रहा है वह असत् है, मिथ्या है। इन्द्रियाँ हमको धोखा दे रही हैं। हमको गलत सूचना दे रही हैं। ऐसा स्वयं इन इन्द्रियोंके सम्मोहनके कारण हो रहा है, यही बात भगवान् सनत्सुजात राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं—

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां
मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा
स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात्॥

(महाभा०, उद्योग-सनत्सुजातपर्व १। १०)

अर्थात् यह भोगप्रवृत्ति ही इन्द्रियोंका महामोह है, क्योंकि मिथ्या पदार्थोंके प्रति इस जीवकी निश्चित प्रवृत्ति है, अत: यह उन मिथ्या पदार्थोंके संयोगसे अपने स्वरूप (स्वाभाविक ब्रह्मभाव)से भ्रष्ट होकर विषयोंका स्मरण करते हुए सब प्रकार उन्हींका सेवन करता है।

यह आसक्तिका चेप इतना सूक्ष्म है, इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म है कि यह आपके कब लग गया, इसका प्रारम्भमें आपको पता ही नहीं लगता और जब आपको इसका पता लगता है, तबतक यह बहुत दृढ़ हो जाता है।

आसक्ति केवल व्यक्ति या वस्तुओंमें ही नहीं होती, बल्कि अपने विचारोंकी, अपने सिद्धान्तोंकी, अपनी मान्यताओंकी, अपने द्वारा किये गये कार्योंकी भी होती है।

इन्द्रियजनित विषयोंके संसर्गसे होनेवाली कामोपभोगरूप आसक्ति साक्षात् मृत्युके समान है और प्रगाढ आसक्ति मृत्युका कारण बन जाती है। हमको निरन्तर अन्तर्निरीक्षण करते रहना चाहिये कि हमारे हृदयके किस कोनेमें आसक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिपी हुई है, उसे जानकर विवेकके द्वारा उसे नष्ट कर देना चाहिये और कोई नयी आसक्ति पैदा ही नहीं होने देनी चाहिये।

अतः न तो विषयोंका सेवन करे और न विषयासक्त मनुष्यका संग ही करे। इनसे सदा दूर ही रहना चाहिये। उनसे सम्भाषण करना तो दूर उनके दर्शन भी नहीं करने चाहिये, क्योंकि उनके दर्शनमात्रसे ही पापसे संसर्ग होनेकी सम्भावना रहती है।

भगवान् कपिलदेव अपनी माता देवहूतिको उपदेश देते हुए कहते हैं—'माताजी! सन्मार्गपर चलते हुए भी यदि इस जीवका किन्हीं जिह्वा और उपस्थेन्द्रियके भोगोंमें आसक्त हुए विषयी पुरुषोंसे समागम हो जाता है और वह उनमें आस्था करके उन्हींका अनुगमन करने लगता है तो पहलेके समान ही फिर नारकी योनियोंमें पड़ता है। जिनके संगसे इस (जीव) के सत्य, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, वाणीका संयम, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियोंका संयम तथा ऐश्वर्यादि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं, उन अत्यन्त शोचनीय स्त्रियोंके क्रीडामृग (खिलौना), अत्यन्त मूढ़ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका संग कभी नहीं करना चाहिये[1]।

आसक्तिरूपी पाप ही मृत्यु है। यह बात तो समझमें आ गयी। अब विचार करना है कि इस विपत्तिसे हमारी रक्षा कैसे हो। देवासुर-संग्राममें असुरोंने बहुत बड़ी मायाकी सृष्टि की और स्वयं उस मायाके प्रभावसे छिप गये। न दीखनेके कारण उनपर प्रहार भी नहीं किया जा सकता था। उस समय देवता बहुत दुःखी हुए। उन्होंने इस आसुरी मायाका प्रतीकार करनेके बहुत प्रयत्न किये, परंतु वे इसमें सफल नहीं हुए। तब देवताओंने विपत्तिसे अपनी रक्षा करनेके लिये विश्वके जीवनदाता भगवान्‌का ध्यान किया। ध्यान करते ही भगवान् प्रकट हो गये। परमपुरुष परमात्माके प्रकट होते ही उनके प्रभावसे असुरोंकी वह माया विलीन हो गयी। ठीक वैसे ही जैसे जग जानेपर स्वप्नकी वस्तुओंका पता नहीं लगता। ठीक ही है, भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंसे मुक्त कर देती है—

तस्मिन् प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा
माया विनेशुर्महिना महीयसः।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते
हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्॥

(श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)

देवताओंकी तरह हम भी आसक्तिरूपी पापमय मृत्युसे त्राण पानेके लिये भगवान्‌का ध्यान करें, वे निश्चय ही आकर हमारी रक्षा करेंगे। यदि आप आसक्तिरूपी आसुरी वृत्तिसे दुःखी हैं और अपने प्रयत्न तथा प्रयाससे इसका नाश नहीं कर सकते तो आर्तहृदयसे भगवान्‌का ध्यान करके उनसे इस आसक्तिरूपी मृत्युसे अपनेको बचानेकी प्रार्थना कीजिये, वे अवश्य आपकी रक्षा करेंगे।

चरन-कमल अवराधों

(श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा')

माई! मो निर्धन कौ धन माधौ।
साधन कोटि छोटि अति ह्वै रहे, चरन-कमल अवराधों॥
जा विधि राखहिं रहौं ताहि विधि, दूजी साध न साधौं।
'साँवर' प्रभु बसिहौं पद-नख-तर, काह करै भव बाधौ॥

१. यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः। आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत्।
सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा। शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम्॥

(श्रीमद्भा० ३। ३१। ३२-३३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजनकी सारभूत बातें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

कल्याणकामी साधकको तीव्र भजन एवं नामजप करना चाहिये और उसमें पूरा विश्वास करना चाहिये, श्रद्धा सच्ची होनी चाहिये, इससे भजनमें तीव्रता एवं रस आयेगा। अपने इष्टमें सर्वोच्चबुद्धि एवं सर्वसमर्थता तथा सर्वलोकेश्वरका भाव होना चाहिये, साथमें मनका भाव विशुद्ध एवं निर्मल होना चाहिये। यदि इस प्रकार हमारा भाव होगा तो हमको अवश्य लाभ होगा, यदि हमारी श्रद्धामें और भी ज्यादा निष्ठा होगी तो भगवान्का साक्षात् दर्शन हमें हो जायगा। इसलिये भजनमें तीव्रता होनी चाहिये।

यह सच्ची बात है कि जो कुछ भी दृश्य वस्तु है, सब भगवान् हैं। किसी सज्जनने यह कहा कि 'राम-कृष्णका दर्शन कराओ' तो भई, यह तो मेरेमें ताकत है नहीं, यह ताकत तो राम-कृष्णमें ही है, उनकी ही कृपासे उनके दर्शन हो सकते हैं। अपनी उत्कट चाहसे उनको मजबूर कर दो कि उन्हें दर्शन देना ही पड़े। केवल आना ही नहीं पड़े, उन्हें तो इतना मजबूर कर दो कि तुम उनके जिस रूपको देखना चाहो, उसी रूपमें वे तुम्हें दर्शन दें। किंतु यह मेरे हाथके—वशकी चीज नहीं कि आपको दर्शन करा सकूँ। भगवान्का प्राकट्य दुर्लभ नहीं है; किंतु दुर्लभ है उनकी अनन्य आवश्यकता महसूस करनेकी एवं उनकी अनन्य शरणागति ग्रहण करनेकी। यदि ऐसा हो जाय तो फिर सुगमता एवं सरलतासे उनके दर्शन हो सकेंगे। जब भगवान्के बिना मन मरने लगेगा, तब वे अवश्य आयेंगे। वे हमारे मनमें प्रवेश कर जायँगे या तो वे अपना मन हमें दे देंगे अथवा हमारा मन वे ले लेंगे। वैदिक कर्मोंमें सबका अधिकार नहीं है; किंतु भगवान्की भक्तिमें सबका समानाधिकार है। भक्तिके वशमें हुए भगवान् शबरीके पास जाते हैं, किंतु अपने ज्ञानके गर्वमें फूले हुए ऋषि-मुनियोंके पासमें नहीं जाते। वे रैदासके पासमें जा सकते हैं, किंतु राजाके पास नहीं। उनको बुलानेके लिये भक्तिकी उत्कट आवश्यकता है। जब मन आर्त होकर एवं विकल होकर उनको पुकारेगा तो वे शीघ्र ही हमें दर्शन देंगे।

प्रश्न—भगवान्का भजन किस भावसे करना चाहिये?

उत्तर—भगवान्के जिस रूपकी हम उपासना करते हैं, उस रूपमें अटल एवं पक्का विश्वास होना चाहिये। नहीं तो भगवान् हमारी ओर ताकेंगे ही नहीं, वे हमें असहायकी भाँति छोड़ देंगे, किंतु उस अटल विश्वाससे वे हमें छोड़ेंगे ही नहीं। किसी वस्तुकी उनसे चाहना नहीं रखे, मोक्षकी भी इच्छा नहीं रखे, इसको भी ठुकरा दे। भगवान्की भक्तिमें मोक्षका कोई भी मूल्य नहीं है। भक्तलोग तो भगवान्की भक्तिमें ही मस्त रहते हैं, उनकी कोई इच्छा उद्भूत होती ही नहीं। भजन ऐसा हो कि एकनिष्ठ, जहाँ मनको ले जाना चाहे, वहीं ले जाय, ऐसा मनपर अधिकार रखना चाहिये। भगवान्की भक्तिमें अन्तर नहीं आना चाहिये, भजनमें व्यर्थकी बातें नहीं करनी चाहिये, तैलधारावत् भगवान्का भजन करना चाहिये, उसके लिये भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

—इस प्रकार जो नित्य-निरन्तर अनन्य-चित्तसे मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे मैं बड़ी सुगमतासे दर्शन दे देता हूँ।

भगवान्के भजन करनेके कुछ नियम ये हैं—

१-भगवान्में मन अटल एवं दृढ़तासे लगा रहे।

२-जिसका हम भजन करते हैं, उसमें पक्का विश्वास रखना चाहिये। उसे सर्वोपरि मानना चाहिये।

३-भजन विश्वासपूर्वक होना चाहिये।

४-भजनमें भजनीयका ही ध्यान हो। ध्यानके बीचमें किसी दूसरेका चिन्तन नहीं करना चाहिये।

५-जिसका ध्यान लगाये, उसका स्वरूप भी आँखोंके सामने आता रहे। मनसे तो उनके स्वरूपका चिन्तन हो एवं वाणीके द्वारा उनका नित्य-निरन्तर जप चलता रहे। स्वरूप-चिन्तन एवं जप दोनों साथमें चलते रहें।

६-भगवान्के भजनमें, दूसरेके भजनके साथ अवज्ञाका एवं तिरस्कारका भाव कदापि नहीं रहे। यदि हम भगवान् श्रीरामका नाम लेते हैं, तो भगवान् शंकरका नाम लेनेवालेमें तुच्छ-बुद्धि न हो। अपनेको तो भगवान्में ही भरोसा रखना चाहिये, दूसरा चाहे कुछ भी करे। दूसरे उपासकके देवतामें, इष्टमें, पूजामें विरोध नहीं करना चाहिये। जो भी नाम-जप हो, श्रद्धायुक्त होना चाहिये।

जो कुछ भी सुने उसे धारण करनेसे श्रद्धाकी वृद्धि होगी, श्रद्धा आगे परिपक्वावस्थामें आकर विश्वासके रूपमें आ जायगी। इससे फिर भगवान्की ही स्मृति रहेगी। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे फिर भजन भावके साथमें होगा, उसमें हमारा अनन्य-प्रेम हो जायगा एवं अनन्य श्रद्धा स्वतः ही हो जायगी। जहाँ भगवान्‌में प्रेम होगा वहाँ निष्काम भाव अपने-आप ही आ जायगा। प्रेमसे यदि हम भगवान्‌का नाम-स्मरण करेंगे तो अपार शान्ति हमें मिलती रहेगी। प्रेमका यह स्वभाव ही है कि वह सुख देता है। तो उसकी स्मृतिमें जिज्ञासा जाग्रत् होनेपर स्वतः ही सुख होगा। नाम प्रियतमका है, यह बात उस स्मृतिमें अनुभूत होती रहेगी। किसीकी माँसे कहे कि तेरा बेटा ऐसा अच्छा है तो माताका हृदय प्रफुल्लित हो जायगा। सगाई हुई तो लड़कीमें यह स्वतः ही आरोप हो गया कि अमुक मेरा पति है। उसमें स्वतः ही प्रेम बढ़ता जायगा। कहीं उसकी बात होगी तो वह लुक-छिप करके भी सुननेकी चेष्टा करेगी। कहीं प्रियतमका फटा हुआ टुकड़ा भी मिल जाय तो उसको सुखानुभूति होगी। जबतक भजनमें रति नहीं, प्रेम नहीं, तबतक उसे सुखकी प्राप्ति कदापि नहीं होगी। यदि वह ऐसा सोचता है कि क्या करें, प्रेम करना पड़ता है तो ऐसे विचारवालेको सुख कदापि नहीं मिलेगा।

जपनीयमें यदि रुचि हो तो सुख अपने-आप ही होता है। रूप, अभ्यास, रुचिमें नियमकी आवश्यकता होती है। अभ्यासमें तो घड़ीकी आवश्यकता रहती है। मन यदि ध्यानमें नहीं लगे, तब भी जबर्दस्ती लगाना चाहिये, आगे जाकर स्वतः ही उसमें स्वाद आने लगेगा। फिर प्रेम भी बढ़ने लग जायगा। स्वाभाविक ही होता रहेगा। उससे छूटता नहीं, क्योंकि उसे तो उसमें ही स्वाद आने लग जाता है। यदि प्रेम हो तो गोपाङ्गनाओं-जैसा होना चाहिये। ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये कि भगवान्‌के बिना मन लगे ही नहीं। यह चीज अभ्याससे होगी, इसलिये अभ्यास करते रहना चाहिये। यह सिद्धान्त है कि जिस काममें मन लगता है, वह काम बड़े सुन्दर ढंगसे होता रहता है, इसी प्रकार मन भगवान्‌में लगा देना चाहिये, ऐसा लगाये कि फिर छुड़ानेपर भी मन भगवान्‌से छूटे नहीं। यह भाव होना चाहिये। यह भाव जब मूर्तिमान् होता है तो वह राधा बन जाता है, फिर वह महाभाव हो जाता है। यह भक्तिमार्गी जीवके लिये परम आकांक्षाका भाव है।

भजनको भीतर-ही-भीतर छोड़ना चाहिये, उसको गुप्त ही रखे, जिस प्रकार लोभी अपने धनको प्रकट नहीं रखता, उसी प्रकार हमको भजन गुप्त रखना चाहिये। प्रेमकी गहराईमें उतर करके भगवान्‌पर अपनेको न्योछावर कर देना चाहिये, फिर उसे निर्मल प्रेम-रस मिलेगा, नहीं तो यदि प्रेमके नामपर शरीरमें ही प्रेम रह जाता है तो वह कलंकित करनेवाला प्रेम है, अन्तमें वह कलंकित ही करेगा। उससे जन्म-बन्धनसे छुटकारा नहीं होगा, बारम्बार जन्म-मरणके चक्करमें आना पड़ेगा। प्रेमी अपनेको प्रेममें ही छिपानेकी कोशिश करता है। प्रेमका वितरण नहीं होता, प्रेमी अंदर-ही-अंदर अपनेसे बातें करता रहता है। मन-ही-मनमें वह अटपटी बातें बकता रहता है। जहाँ प्रचारके लिये प्रेम होता है, वहाँ सूक्ष्मरूपसे कामना आ जाती है। जहाँ अपनेमें सुखकी अभिलाषा जागे तो मान लेना चाहिये कि कोई अंदर छिपी हुई वासना जाग पड़ी है।

प्रेम भगवान्‌का ही स्वरूप है जब यह प्रेम मनमें उद्भूत होता है तो सारी इन्द्रियोंमें शान्ति एवं ज्ञानकी बहुलता हो जाती है। यह प्रेम वाणीके द्वारा वर्णनमें नहीं आता, यह तो हृदयकी गोपनीयसे-भी-गोपनीय वस्तु है। यह तो खुले हुए रूपमें अपने प्रियतमसे मिलता है, इसमें दोनों (भक्त एवं भगवान्) की आत्माएँ मिलकर एक हो जाती हैं। जहाँ प्रेम नहीं वहाँ किसी-न-किसी प्रकारसे लेना शेष है। वहाँ प्रेम ठहरता नहीं, ठहरता है भी तो मोटे रूपमें। जैसे दिन एवं रात्रि चाहें कि हम दोनों एक साथमें रहें तो नहीं रह सकते या तो दिन ही रहेगा या रात्रि ही रहेगी। दोनों किसी भी स्थितिमें एक साथ नहीं रह सकते। इसी प्रकार प्रेम एवं संसार एक साथमें नहीं रह सकते। राम एवं सांसारिक पदार्थ दोनों नहीं मिल सकते। जहाँ राम हैं वहाँ काम नहीं, काम तो रामसे कोसों दूर है। संसारके ध्वंसावशेषकी धूलि लगाकर प्रेमी नाचता है। जहाँ मनोरथ है, वहाँ प्रेम किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकता। इसलिये प्रेमका स्थान ऊँचा है। एक सज्जन मुझसे कहते हैं कि आप 'ज्ञानके बाद प्रेम होता है' ऐसा कहते हैं तो क्या ज्ञान प्रेमसे छोटा है? नहीं! छोटा नहीं है, उसे हृदयसे ग्रहण करो। बात यह है कि ज्ञानमें भी प्रेम छूटना नहीं चाहिये। जबतक ज्ञानमें प्रेमका समावेश नहीं हो तो मानना चाहिये कि अभी वास्तविक ज्ञानकी कमी है। प्रेममें ज्ञान छूटता नहीं। कुछ ऐसे ज्ञानी होते हैं, जैसे—शुकदेव, नारद, व्यास—ये भी जब भगवान्‌के सौन्दर्यका दर्शन करते हैं तो ज्ञानके रहते हुए भी प्रेमका स्वाद चखने लग जाते हैं।

किसी महात्मामें कोई इच्छा होती है तो वह भगवदिच्छासे ही होती है, भगवान् कहेंगे कि संसारमें जाओ एवं पापियोंको अपने ज्ञान तथा भक्तिद्वारा मुक्त करो, तो वह उनके कथनानुसार करेगा। प्रेमियोंके भगवान् प्रेममय होते हैं। देवी कुन्तीने कहा कि 'भगवान् बिना हेतु ही ऋषि-मुनियोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान देनेके लिये आते हैं।' वे सर्वत्र, सर्वदा सब जगह हैं, किंतु होते हुए भी सर्वरहित भी हैं। वे सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। आधारसे परे हैं। वे कब मिलते हैं, इसका हम निश्चित समय नहीं देते। श्रद्धा-प्रेमके अनुसार भगवान् मिलते हैं। उनको प्राप्त करनेके भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, किंतु जाते हैं केवल एक परमेश्वरके पास। निष्ठा एवं विश्वास पक्का रखना चाहिये।

भगवान्‌का भजन गुप्त रखना चाहिये। इससे भजन करनेवालेको बड़ा लाभ होता है, इसपर एक दृष्टान्त याद आ गया, वह आपको बताया जाता है। एक राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा थे, गुप्त भजनानन्दी, अंदर-ही-अंदर भजनरूपी पूँजी इकट्ठी करते थे, किंतु किसीको पता नहीं लगा कि राजा इतना भजन करनेवाला है। सब यही सोचते कि यह पक्का नास्तिक है। भगवान्‌का एक बार भी नाम नहीं लेता, इसी प्रकारकी कल्पना लोग किया करते थे। राजाकी रानी साहिबा भी बड़ी भजनवाली थीं, वह भी यही सोचतीं कि ये भगवान्‌का नाम नहीं लेते, वे पतिसे भजन करनेका आग्रह भी किया करती थीं, किंतु वे इसकी बातपर ध्यान नहीं देते थे। रानी बिचारी बड़ी दुखित रहतीं कि ये भगवान्‌का नाम नहीं लेते। एक दिन सोते समय राजाके मुखसे स्वाभाविक ही रामका नाम निकल गया, अब तो रानी बहुत प्रसन्न हुई, उसने अपना बड़ा भाग्य समझा, क्योंकि सोते समय उसके पतिके मुखसे राम-नाम निकल गया। रानीने आदेश दिया कि सारे नगरमें बाजे बजें एवं उत्सव मनाया जाय। रानीकी आज्ञानुसार सब हुआ, जब बाजे बजने लगे तो राजाने पूछा कि आज क्यों बाजे बज रहे हैं? आज न तो कोई पर्व है न और कोई उत्सव। रानीने कहा कि आपने अबतक भगवान्‌का नाम नहीं लिया, किंतु रात्रिमें आपके मुखसे रामनाम निकला। इसलिये इस खुशीमें यह सब हो रहा है। राजाने कहा कि क्या रामका नाम मेरे मुखसे निकल गया। रानीने कहा—'हाँ'। तब तो निकल ही गया, अब हमेशाके लिये निकल जायगा, राजाने अपने प्राणोंको निरुद्ध किया एवं प्राणोंका परित्याग कर दिया। कहनेका मतलब है कि अपने भजन-ध्यानको गुप्त रखना चाहिये।

जहाँ राम हैं, वहाँ प्रेम अवश्य है। जहाँ राम नहीं, वहाँ प्रेम पासमें फटकेगा ही नहीं। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने जार-प्रेमको गुप्त रखती है, ऐसे ही हमको अपना भजन, ध्यान, जप गुप्त रखना चाहिये। इससे हमको शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति होगी।

एक सज्जनने मुझसे यह कहा कि मैं पहले पक्का नास्तिक था, किंतु मेरी पत्नीने मुझे आस्तिक बनाया। उसने कहा कि आप रामायणके दो पन्ने तो बाँच लिया करें। मैंने बाँचना शुरू कर दिया, फिर पाठ करते-करते रामायणमें मेरी इतनी भक्ति हो गयी कि अब मुझसे बिना पाठ किये रहा नहीं जाता। हमें भी ऐसा भाव रखना चाहिये, माताओं तथा बहिनोंको और भी चेष्टा करनी चाहिये कि वे अपने पतियों एवं कुटुम्बवालोंको आस्तिक बनायें।

त्याग, सेवा और प्रेम

(डॉ० श्रीरामनरेशसिंहजी)

सभी योनियोंमें मानव-शरीर सर्वोत्तम योनि है, जो परम कृपालु प्रभुकी असीम अहैतुकी कृपासे लोक और परलोक—इन दोनोंको बना लेनेके लिये जीवको मिल पाती है। मनुष्य-शरीर धारण करना जीवके लिये परम सौभाग्यकी बात है। अन्य जीवकी तरह मानव-जीवनका लक्ष्य भोग नहीं है, बल्कि योग है अर्थात् जीवात्मा और परमात्माका मिलन है। भगवत्प्राप्ति अर्थात् अपने स्वरूपकी ठीक-ठीक जानकारी करना ही मानव-जीवनका सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। जब लक्ष्यका निर्धारण सुदृढ़तापूर्वक हो जाता है तब प्रभुकी कृपाका अवलम्बन ग्रहण कर जीव उस दिशामें प्रयत्नपूर्वक बढ़ता जाता है और अपने परम लक्ष्यको सहज ही प्राप्त कर लेता है। अत: हम अपने जीवनके लक्ष्यका निर्धारण करें और उस दिशामें चल पड़ें, फिर देखें कि यात्रा कितनी सुखद होती है और मंजिलतक कितनी सहजताके साथ पहुँचकर हम परमानन्दकी प्राप्ति कर लेते हैं। आनन्दको प्राप्त करना ही सही अर्थमें मानव-जीवनकी सार्थकता है।

इसके लिये आवश्यक है कि हम त्याग, सेवा और प्रेममय जीवन जीना सीखें। त्यागका भाव है कि हम त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करें। हम शरीर और संसारमें आसक्त न हों। आसक्ति ही सारे दु:खोंका मूल कारण है। यह शरीर और यह संसार एक-न-एक दिन छूटनेहीवाला है। शरीर और संसार अपना नहीं है। जो अपना नहीं है, उसे अपना मान लेनेपर तो एक-न-एक दिन धोखा होगा ही। 'मैं हूँ' और 'यह मेरा है', यही है आसक्ति, यही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन और यही है सारे दु:ख और विपत्तियोंका कारण। अनासक्त होते ही जीव आनन्दमय हो जाता है। उसे परमानन्दकी अनुभूति होने लग जाती है। त्यागपूर्वक इस शरीर और संसारमें रहना ही वैराग्य कहलाता है। राग यदि संसार और शरीरसे है तो हम दु:खी हैं और यदि हम अनासक्त-भावसे इस संसार और शरीरमें हैं तो संसार और शरीरमें रहकर भी हम शरीर और संसारमें नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें आते ही जीव शिव हो जाता है, सुख-दु:खके परे हो जाता है। वह परमानन्दकी अनुभूति करने लग जाता है। इसी स्थितिको भगवत्प्राप्त-स्थितिकी संज्ञा दी जाती है। त्याग एक ऐसा साधन है, जो जीवको शिव बनाता है, जीवात्माको परमात्मा बनाता है, लोक और परलोकको सफल बनाता है। अत: हमें त्यागपूर्वक इस शरीर और इस संसारमें रहना चाहिये।

परमात्माके द्वारा जो भी हमें शक्ति मिली है, जो भी हमारे पास गुण हैं या ऐश्वर्य है—ये सभी परमार्थके लिये, सेवाके लिये ही हैं। इन्हें परमार्थमें—सेवामें ही लगाकर हम इनका सदुपयोग कर सकते हैं। स्वार्थमें अपने गुणोंका, अपने बल एवं शक्तिका, अपने ऐश्वर्यका प्रयोग किसी तरह हितकर नहीं है। हमें परमात्माके द्वारा प्राप्त सारी शक्ति संसारकी सेवाके लिये ही मिली है। इस बातको हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिये कि सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। यही असली मानवधर्म है, जो व्यक्तिको ऊँचा उठाता है और परमपदकी प्राप्तिमें सहज ही सहायक होता है। स्वार्थका त्यागकर परमार्थकी राहपर चलना ही असली सेवा है, नि:स्वार्थभावसे दूसरे जीवकी सेवा करना ही असली सेवा है और इसीमें जीवका स्वार्थ-परमार्थ दोनों सध जाता है। सेवाके भावसे ओत-प्रोत व्यक्ति ही सही अर्थमें मानव है। सेवा हम तन, मन, धन—जिस प्रकारसे भी कर सकें, करें और सेवाके बदलेमें कुछ न चाहें, तभी सेवाका असली आनन्द हम ले सकेंगे।

हमारे भीतर रहनेवाला अहंतत्त्व ही हमें सेवक नहीं बनने देता। 'मैं हूँ' और 'यह मेरा है', यही अहं-तत्त्व है। अहंकार व्यक्तिको नीचे गिरा देता है। जीवात्मा और परमात्माके बीच 'अहं' ही एक मोटी दीवालके रूपमें स्थित है, जो जीवात्माको परमात्मासे मिलने नहीं देता।

सत्य तो यह है कि मैं कुछ नहीं हूँ और मेरा यहाँ कुछ नहीं है। यहाँतक कि यह शरीर जिसे मैं ढोये चलता हूँ, सदा वह भी अपना नहीं है। अगर यह संसार और यह शरीर अपना होता तो सदा हमारे पास रहता। पर ऐसा नहीं होता है। एक-न-एक दिन हमारा यह शरीर और हमारा यह संसार हमें छोड़ ही देता है और हमें अकेले ही यहाँसे जाना पड़ता है। यही सत्य है और यही है वास्तविकता। हमें इस सत्यके साथ रहना चाहिये, इस वास्तविकताका ज्ञान सदा रहना चाहिये।

अपने भीतर रहनेवाले प्रेम-तत्त्वको हम विकसित करें। व्यक्तिमें हृदयकी प्रधानता होनी चाहिये, बुद्धिकी नहीं। ऐसा होनेपर हम परमात्मतत्त्वसे सहज ही परिचित हो सकेंगे। प्रेम-तत्त्व ही परमात्मतत्त्व है। और हृदयाकाशमें ही परमात्मप्रभु भक्तके प्रेमरूपी सागरमें निमग्न रहते हैं। हमारा हृदय सदा प्रेमसे सराबोर रहे। परमात्माके पावन स्मरणमें हम आनन्दमग्न रहें। ऐसा हमारा सहज स्वभाव हो जाय तो बस, फिर काम बननेमें देर नहीं।

प्रेम एक अनमोल तत्त्व है। प्रेम परमात्मतत्त्वका ही नाम है। प्रेम ही परमात्मा है और परमात्मा ही प्रेम है। प्रेम ही व्यक्तिको सही अर्थमें मानव बनाता है। भगवान्‌को केवल निश्छल प्रेम ही प्रिय है। प्रेमसे भगवान् सहज ही द्रवित हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजीको केवल प्रेम ही प्रिय है। जिसे जानना हो वह प्रेमतत्त्वके द्वारा भगवान्‌के स्वरूपको ठीकसे जान सकता है—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

× × ×

सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

भक्तोंको जब भी भगवान्‌से वर माँगनेका संयोग मिला है तब-तब उन्होंने भगवान्‌के श्रीचरणोंमें प्रेममय अखण्ड भक्तिका ही वरदान माँगा है—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

सारांश यह कि मानव-जीवनमें त्याग, सेवा और प्रेमका बहुत महत्त्व है। ये तीनों तत्त्व अनमोल तत्त्व हैं। इनका जिसने सदुपयोग किया, उसका मानव-जीवन सही अर्थमें सफल एवं सार्थक हुआ। संत-महात्मा कहते हैं कि त्याग अपने लिये सुरक्षित रखो, सेवा दूसरेके लिये सुरक्षित रहे और प्रेम परमात्माके लिये सुरक्षित रहे, इतना हुआ तो मानव-जीवन सफल हुआ। हम त्यागी बनें, हम सेवक बनें और हम भगवत्प्रेमी बनें तो हम त्याग, सेवा और प्रेमके महत्त्वको समझकर उसका अपने व्यावहारिक जीवनमें प्रयोग कर धन्य-धन्य हो जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

भगवत्प्राप्तिका सुगम तथा शीघ्र सिद्धिदायक साधन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जो साधन करनेवाले हैं, परमात्मतत्त्वको प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे भाई-बहनोंके मनमें एक बात रहती है कि कोई ऐसा सीधा-सरल मार्ग बता दे, जिससे हम सुगमतासे और तत्काल परमात्माकी प्राप्ति कर लें। उनके लिये एक विशेष साधन बताया जाता है।

एक ऐसी स्थिति है, जहाँ पहुँचनेपर मनुष्य कृतकृत्य, ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य हो जाता है अर्थात् उसके लिये कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता। वहाँ पहुँचनेके लिये तीन मार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। कर्मयोगसे कृतकृत्यता हो जाती है, ज्ञानयोगसे ज्ञातज्ञातव्यता हो जाती है और भक्तियोगसे प्राप्तप्राप्तव्यता हो जाती है। यह अन्तिम स्थिति है। अगर कोई साधक कमर कस ले कि मेरेको तो उस अन्तिम स्थितिकी तत्काल प्राप्ति करनी है, उसके लिये एक ऐसा साधन बताया जाता है, जिससे वह सब साधनोंसे ऊँचे उठकर उस अन्तिम स्थितिका आरम्भमें ही अनुभव कर सकता है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् उद्धवजीसे कहते हैं—

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतो मुक्तसंशयः॥
अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

(११। २९। १८-१९)

'जब सब जगह परमात्मबुद्धि की जाती है, तब सब कुछ परमात्मा ही हैं—ऐसा दीखने लगता है। फिर इस परमात्मदृष्टिसे भी उपराम होनेपर सम्पूर्ण संशय स्वतः निवृत्त हो जाते हैं।'

'मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय।'

तात्पर्य है कि सब जगह एक परमात्मा-ही-परमात्मा परिपूर्ण हैं—**'सर्वं ब्रह्मात्मकम्'**। उसमें न मैं है, न तू है, न यह है, न वह है; न भूत है, न भविष्य है, न वर्तमान है; न सर्ग है, न प्रलय है; न महासर्ग है, न महाप्रलय है; न देवता है, न मनुष्य है; न पशु है, न पक्षी है; न भूत है, न प्रेत है, न पिशाच है; न जड़ है, न चेतन है; न स्थावर है, न जंगम है; कुछ भी नहीं है! एक परमात्मा ही इन सब रूपोंमें बने हुए हैं। इस बातको दृढ़तासे मान लें, स्वीकार कर लें। यह सब साधनोंसे श्रेष्ठ साधन है। भागवत एकादश स्कन्धके उन्तीसवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोककी टीकामें एकनाथजी महाराज भगवान्की ओरसे लिखते हैं कि हे उद्धव! सबमें मेरेको देखनेसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है—यह मैं माँ देवकीकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ!*

सब कुछ भगवान् ही हैं—यह बात हमारेको दीखे चाहे न दीखे, हम मानें चाहे न मानें, हम जानें चाहे न जानें, हमारेको अनुभव हो चाहे न हो; परंतु यह दृढ़तासे स्वीकार कर लें कि बात वास्तवमें यही सर्वोपरि है। कमी है तो हमारे माननेमें कमी है, वास्तविकतामें कमी नहीं है। जैसे, पहले क-ख-ग आदि अक्षरोंको सीखते हैं, फिर पुस्तकोंमें वे वैसे ही दीखने लग जाते हैं, ऐसे ही पहले केवल इस बातको मान लें कि 'सब कुछ भगवान् ही हैं', फिर वैसा ही अनुभव होने लग जायगा। इसका अनुभव करनेके लिये कुछ करना नहीं है, कहीं आना-जाना नहीं है। भजन-ध्यान, सत्संग-स्वाध्याय आदि जो कर रहे हैं, वे करते रहें। इसके लिये कोई नया साधन नहीं करना है, केवल दृढ़तासे स्वीकार कर लेना है कि सब कुछ परमात्मा ही हैं। कारण कि सृष्टि-रचनाके समय भगवान्ने कहींसे कोई मसाला, सामग्री नहीं मँगायी, प्रत्युत यह संकल्प किया कि मैं एक ही बहुत रूपोंसे हो जाऊँ—

'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' (छान्दोग्य० ६। २। ३)

---

* यापरी कायावाचामनें। सर्वभूतीं भगवद्भजन। हेंचि मुख्यत्वें श्रेष्ठ साधन। भक्त सज्ञान जाणती॥ ३८०॥ ब्रह्मप्राप्तिचें परम कारण। हेंचि एक सुगम साधन। मजही निश्चयें मानलें जाण। देवकीची आण उद्धवा॥ ३८१॥ (एकनाथी भागवत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति' (तैत्तिरीय० २। ६)

'एकं रूपं बहुधा यः करोति' (कठ० २। २। १२)

'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति' (गोपालपूर्वतापनीय०)

वे एक ही परमात्मा अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं। उनके रूप असंख्य हैं—**'अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे'**। चौरासी लाख योनियाँ हैं और एक-एक योनिमें करोड़ों-अरबों जीव हैं, पर सब-के-सब एक परमात्मा ही हैं। इस बातको मान लें और जहाँतक बने, कभी भूलकर भी शरीरसे किसीके अहितका बर्ताव न करें, मनसे किसीके अहितका चिन्तन न करें, वाणीसे कड़वी बात कहकर किसीको दु:ख न दें। इस विषयमें सावधान रहें। कभी चूक हो जाय तो चरणोंमें गिरकर माफी माँग लें। भूल हो जाय तो फिर उसको सुधार लें। एक मारवाड़ी कहावत है—***'पड़ पड़ सवार होवे।'*** अर्थात् घोड़े, साइकिल आदिपर चढ़ते ही मनुष्य सवार नहीं हो जाता, प्रत्युत कई बार पड़ने (गिरने) के बाद सवार होता है। इसी तरह कोई भूल हो जाय तो आगे सावधान हो जायँ।

एक कहानी है। एक सिंहने शृगाली (सियारी) के बच्चेको अकेला देखा तो दयावश होकर उसको उठा ले आया और सिंहनीको दे दिया। सिंहनीके दो पुत्र थे। उसने शृगालीके बच्चेको अपना तीसरा पुत्र मान लिया और उसका पालन-पोषण करने लगी। वे तीनों बच्चे एक साथ खेलते थे और सिंहनीका दूध पीते थे। जब वे थोड़े बड़े हुए, तब शिकारके लिये इधर-उधर घूमने लगे। एक दिन उस जंगलमें एक हाथी आया। उसको देखकर शृगालीका बच्चा डरकर घरकी तरफ भागा तो यह देखकर सिंहनीके दोनों बच्चे भी हतोत्साहित होकर घर चले आये और अपनी माँसे बड़े भाई (शृगालीके बच्चे) की बात सुनायी कि किस तरह वह हाथीको देखकर भाग आया। शृगालीका बच्चा उनकी उपहासपूर्ण बात सुनकर गुस्सेमें भर गया और बोला कि क्या मैं इन दोनोंसे किसी बातमें कम हूँ, जो ये मेरा उपहास कर रहे हैं? उसका गुस्सा देखकर सिंहनी हँसी और बोली—

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते॥

(पञ्चतन्त्र, लब्ध० ४४)

'हे पुत्र! तू शूरवीर है, शिकार करनेकी विद्या भी जान गया है और सुन्दर भी बहुत है; परंतु जिस कुलमें तू पैदा हुआ है, उसमें हाथीको मारनेकी रीति नहीं है।'

इसी तरह परमात्माको प्राप्त करनेकी रीति मनुष्ययोनिमें ही है, अन्य योनियोंमें नहीं। गायका शरीर मनुष्यशरीरसे भी अधिक पवित्र है, यहाँतक कि उसके गोबर-गोमूत्र भी पवित्र हैं, पर गायोंमें परमात्मप्राप्तिकी रीति, योग्यता नहीं है। यह रीति, योग्यता मनुष्योंमें ही है। परमात्मप्राप्तिके लिये कोई भी मनुष्य अनधिकारी नहीं है। लखपति-करोड़पति सब नहीं बन सकते, राजा-महाराजा, मिनिस्टर सब नहीं बन सकते, पर परमात्माकी प्राप्ति सब कर सकते हैं। भाई हो चाहे बहन हो, ब्राह्मण हो चाहे शूद्र हो, साधु हो चाहे गृहस्थ हो, बड़ा हो चाहे छोटा हो, नीरोग हो चाहे रोगी हो, विद्वान् हो चाहे अपढ़ हो, कैसा ही क्यों न हो, उसके कुलमें परमात्माको प्राप्त करनेकी रीति है अर्थात् वे सब-के-सब परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। बेटा कोई बड़ा होता है, कोई छोटा होता है, कोई पढ़ा-लिखा होता है, कोई अपढ़ होता है, कोई समझदार होता है, कोई बेसमझ होता है, कोई धनी होता है, कोई निर्धन होता है, कोई योग्य होता है, कोई अयोग्य होता है, पर माँको अपना कहनेका अधिकार सबको समान होता है। इसी तरह भगवान्को अपना कहनेका अधिकार सबको समान है। सभी भगवान्से कह सकते हैं—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

इसलिये हम तो योग्य नहीं हैं, हम भक्त नहीं हैं, हम ज्ञानी नहीं हैं, हम योगी नहीं हैं, हम अधिकारी नहीं हैं—इन बातोंको लेकर हिम्मत नहीं हारनी चाहिये, प्रत्युत भगवान्से ऐसा कहना चाहिये कि भले ही हम कुछ न हों, पर हम आपके हैं और आप हमारे हैं—इसमें दो मत नहीं हैं। इस प्रकार नि:संदेह होकर दृढ़तासे भगवान्के भजनमें लग जाना चाहिये।

अभी फौजमें कोई भरती होना चाहे तो उसकी भलीभाँति जाँच की जाती है, उसकी योग्यता, पढ़ाई, अवस्था, कद, स्वास्थ्य आदि देखा जाता है। परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌की फौजमें बन्दर, भालू आदि भी भरती हो गये! भगवान्‌की फौजमें कोई बन्धन नहीं है कि इतना बड़ा होना चाहिये, ऐसी योग्यता होनी चाहिये, इतना कद होना चाहिये आदि-आदि। भगवान्‌के दरबारमें ध्रुव, प्रह्लादजी आदि छोटे-छोटे बालक भी भरती हो गये, जटायु आदि पक्षी भी भरती हो गये, पत्थर बनी हुई अहल्या भी भरती हो गयी, नेत्रहीन सूरदास भी भरती हो गये! सूरदासजीको एक अँगुली भी नहीं दीखती थी, पर वे सूर्यके समान हो गये—'*सूर सूर तुलसी शशी*' भगवान्‌का दरबार सबके लिये सदा खुला है!

भगवत्प्राप्तिकी ऊँची-से-ऊँची और सीधी-सरल बात है—'**सर्वं ब्रह्मात्मकम्**', '**वासुदेवः सर्वम्**'। इस विषयमें यह बात पहले कही जा चुकी है कि हमारी समझमें आये या न आये, दिखायी दे या न दे, कोई परवाह नहीं, केवल निःसंदेह होकर दृढ़तासे यह स्वीकार कर लें कि सब कुछ भगवान् ही हैं। गीता, रामायण, भागवत आदि ग्रन्थ, संत-महात्मा सभी यही बात कहते हैं; क्योंकि यह वास्तविक बात है। सब कुछ परमात्मा-ही-परमात्मा हैं—ऐसा मानते हुए उपराम हो जायँ—'**परिपश्यन्नुपरमेत्**' (श्रीमद्भा० ११। २९। १८)। '**उपरमेत्**' पदका अर्थ है कि 'सब कुछ परमात्मा हैं'—इस वृत्तिसे भी उपराम हो जायँ, इस वृत्तिको भी छोड़ दें। वृत्ति छूटनेपर एक परमात्मा ही रह जाते हैं। फिर न कोई साधक रहता है और न कोई साधन रहता है, प्रत्युत एकमात्र साध्य-तत्त्व (परमात्मा) शेष रह जाता है। तात्पर्य है कि साधक साधन करते-करते साधनरूप हो जाता है, और साधनरूप होकर साध्यमें लीन हो जाता है।

जैसे घड़ा मिट्टीसे बनता है और अन्तमें मिट्टीमें ही मिल जाता है, ऐसे ही सब संसार परमात्मासे ही उत्पन्न होता है और परमात्मामें ही लीन हो जाता है—'**अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा**' (गीता ७। ६)। अतः सब कुछ परमात्मा ही हुए—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

'हे धनंजय! मेरेसे बढ़कर इस जगत्‌का दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी कारण तथा कार्य नहीं है। जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् मेरेमें ही ओतप्रोत है।'

योगवासिष्ठमें मयूरीके अंडेका उदाहरण आया है कि जैसे उस एक अंडेमेंसे अनेक तरहके रंगोंवाला पक्षी निकल आता है, ऐसे ही एक ही परमात्मा अनेक रूपोंसे प्रकट हो जाते हैं। जैसे—मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदि सब मिट्टीसे बने हैं। भाई-बहनोंके तरह-तरहके रंग-बिरंगे वस्त्र भी मिट्टीसे बने हैं। इसलिये इन सबको आग लगा दें तो अन्तमें एक मिट्टी शेष रह जायगी। ऐसे ही एक परमात्मा अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं। परंतु इसको भगवान्‌की कृपासे ही जान सकते हैं—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

(मानस, अयोध्या० १२७। २)

वह भगवान्‌की कृपा हमारेपर है, तभी ऐसी बात हमें मिली है! अगर कृपा नहीं होती तो ऐसी बात मिल नहीं सकती थी। अपने बलसे, धनसे, विद्यासे, योग्यतासे, उद्योगसे ऐसी बात पढ़ने-सुननेको नहीं मिल सकती। भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे ही यह बात पढ़ने-सुननेको मिलती है।

भगवान् कहते हैं—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आपलोग विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें, स्वीकार कर लें,' तात्पर्य है कि जो भी चिन्तन करते हो, मेरा ही चिन्तन करते हो। जो भी सुनते हो, मेरेको ही सुनते हो। जो भी देखते हो, मेरेको ही देखते हो। जो भी चखते हो, मेरेको ही चखते हो। जो भी स्पर्श करते हो, मेरा ही स्पर्श करते हो। जो भी सूँघते हो, मेरेको ही सूँघते हो। तात्पर्य है कि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिका विषय मैं ही हूँ। मेरे सिवाय कुछ भी नहीं है। इससे बढ़कर कोई बात नहीं है। अन्तमें यहीं पहुँचना है। इसलिये इसको अभी वर्तमानमें ही स्वीकार कर लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ और पूर्णब्रह्म श्रीरामभद्र

(श्रीनिमाइचरणजी मिश्र)

दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठान स्वप्रकाश परमात्मा परब्रह्म-स्वरूप हैं। वे ही वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्यादि सभीके परमाराध्य एवं सर्वोपरि सनातन धर्मके प्राणकेन्द्र हैं।

पुरुषोत्तम-क्षेत्र अथवा नीलाचल-क्षेत्र सृष्टि, स्थिति तथा संहारका मूलायतन है, आधार-क्षेत्र है। इस क्षेत्रका आकार शङ्खके समान है, इसलिये यह शङ्ख-क्षेत्र भी कहलाता है। सृष्टिके प्रारम्भमें सर्वप्रथम स्वयं नारायण साकार-रूप धारण करनेकी इच्छासे श्रीजगन्नाथजीके रूपमें यहीं आविर्भूत हुए।

इस क्षेत्रमें महान् वैष्णव भक्त महाराज इन्द्रद्युम्नकी भक्तिसे संतुष्ट होकर नीलमेघके समान श्यामसुन्दर शङ्ख-चक्रधारी भगवान् काष्ठमय शरीर धारण करके सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेके लिये नीलाचलकी गुफामें विराजमान रहते हैं। करुणासागर भगवान् जनार्दन काष्ठनिर्मित बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्रकी प्रतिमाओंके साथ स्वयं भी दारुमय विग्रह धारण करके जगत्का कल्याण करते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य पापोंके सुदृढ़ बन्धनसे भी मुक्त हो जाता है। भगवान्के पादपद्म समस्त चराचर जगत्के लिये वन्दनीय हैं। वे सबके आश्रय हैं। वे चेष्टारहित काष्ठशरीर धारण करके भी दिव्य लीलाविलास करनेवाले हैं।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें श्रीजगन्नाथजीको श्रीरामावतार-रूपमें स्वीकार किया गया है—

प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥

(वा० रा० १। १८। १०)

कौसल्यादेवीने सर्वलोकवन्दित श्रीजगन्नाथजीको दिव्य लक्षणोंसे युक्त श्रीराम-रूपमें जन्म दिया। वहीं पुनः वर्णन आया है कि, जब अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रने लीला-संवरण कर परमधाम-गमनका निश्चय किया तब विभीषणादि भक्तगणोंने भगवान्से कहा—'हे प्रभो! आपकी अनुपस्थितिमें हम किसकी आराधना करेंगे?' तब कृपावतार पूर्णब्रह्म प्रभु श्रीरामने उन्हें अन्तिम उपदेश देकर कहा—

किं चान्यद् वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महाबल।
आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥
आराधनीयमनिशं देवैरपि सवासवैः।

(वा० रा० ७। १०८। ३०-३१)

'हे महाबली राक्षसराज विभीषण! मैं आप सबको अधिक क्या कहूँ? हमारे इक्ष्वाकु-कुलके कुलदेवता भगवान् श्रीजगन्नाथ हैं। इन्द्र आदि सकल देवता भी सर्वदा उनकी आराधना करते रहते हैं। आप भी सदा-सर्वदा श्रीजगन्नाथजीकी आराधना करते रहें।'

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें विभीषणजीद्वारा की गयी श्रीजगन्नाथ-आराधनाकी परम्परा आज भी प्रचलित है। रथयात्राके दिन रथारोहणके समय विभीषणको दर्शन देनेके लिये स्वयं श्रीपति प्रभु दक्षिणाभिमुख होकर रथारोहण करते हैं।

वामदेवसंहितामें कहा गया है कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामभद्र जब अपनी लीला समाप्त करके सरयूनदीके किनारेपर परम शान्त होकर स्थित थे, उस समय उपस्थित होकर प्रभुभक्त हनुमान्जीने प्रभुके साथ जानेके लिये प्रार्थना की और उनकी प्रार्थना सुनकर राघवेन्द्र श्रीरामजी बोले—

तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह चिरंजीवी भव प्रिय।
यावच्च मेदिनी तिष्ठेज्जीववान् भव वानर॥
पश्चात् त्वमेव ब्रह्मापि भविष्यसि न संशयः।
मत्स्थानं चोत्कले देशे पुरुषोत्तमं विश्रुतम्॥
तत्क्षेत्रमध्ये त्वं तिष्ठ कुमुदं नाम मत्प्रियम्।
तव समीपं गच्छामि मन्मूर्तिदर्शनं कुरु॥
दर्शं दर्शं प्रति ब्रह्मन् तत्स्थानं मत्स्वरूपकम्।
नारायणस्वरूपं मे पश्यसि प्लवगोत्तम॥

(वा० सं० ३६—३९)

भाव यह है कि 'हे प्रिय वानर! तुम चिरंजीवी होकर मेदिनीके रहनेतक जीवित रहो। अन्तमें तुम भी ब्रह्मा होओगे, इसमें संदेह नहीं है। उत्कल देशका पुरुषोत्तम-क्षेत्र मेरा स्वधाम है, वहाँ तुम मुझे प्रिय लगनेवाले कुमुद नामसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठित रहो। मैं वहाँ तुम्हारे पास ही जाऊँगा। वहाँ तुम मेरा श्रीजगन्नाथजीके रूपमें दर्शन करना। हे प्लवगोत्तम (वानरश्रेष्ठ)! पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें तुम समस्त ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करके मेरे नारायणस्वरूपको जान सकोगे।'

उसी दिनसे प्रभुभक्त हनुमान् श्रीक्षेत्र आ गये और श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें लगे रहे। आज भी पुरुषोत्तम श्रीक्षेत्रमें श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके संनिकट सिंहद्वार—स्वर्गद्वारके रास्तेमें बायीं ओर श्रीकुमुद महावीरजीका प्रसिद्ध मन्दिर विद्यमान है।

एकाम्रपुराण तथा स्वर्णाद्रिमहोदय आदि ग्रन्थोंमें वर्णन है कि अत्याचारी रावण आदि राक्षसोंका संहार कर जब श्रीरामभद्र अयोध्यामें सिंहासनपर अभिषिक्त हुए तो कुलगुरु वसिष्ठके उपदेशसे ब्रह्महत्याके निवारणके लिये उन्होंने पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जाकर एकाम्रकाननमें श्रीलिङ्गराज भगवान्की आराधना की और श्रीरामेश्वर महादेवकी स्थापना की। प्रभु श्रीरामकी शिवाराधनासे प्रसन्न होकर श्रीलिङ्गराज महादेव प्रतिसंवत्सर चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन महिषमर्दिनी-शक्ति और दोलगोविन्द-विष्णुके साथ श्रीरामजन्मोत्सवकी झाँकीका दर्शन करनेके लिये आया करते हैं। यह भुवनेश्वर-लिङ्गराज महादेवकी प्रसिद्ध रथयात्रा है।

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें श्रीरामजन्मोत्सवका महासमारोह बड़े ही उत्साहसे सम्पन्न होता है। चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन माता कौसल्याके प्रीत्यर्थ श्रीजगन्नाथजीका विशेष पूजन किया जाता है। नवमीके दिन मध्याह्न-धूपके बाद जय-विजय-दरवाजा बंद किया जाता है। भूमिशोधन करनेके बाद पूजक—सेवक राघव-मण्डलका निर्माण करते हैं। दक्षिण गृहमें श्रीरामजीको भोग निवेदन किया जाता है। उसके बाद प्रभु श्रीरामजीको रत्नवेदी-(श्रीजगन्नाथजीके सिंहासन) में विराजमान कराया जाता है। तब श्रीजगन्नाथजीसे 'श्रीराम-जन्मोत्सव' प्रारम्भ करनेके लिये अनुमतिकी प्रार्थना की जाती है—

आज्ञापय महाबाहो रामजन्मोत्सवाय वै।
रामप्रतिकृतिं तावद्रावणादिविनाशिनीम्॥

(नीलाद्रिमहोदय ३५। ६)

इस प्रकार चैत्र शुक्ल नवमीके दिन श्रीराम-जन्मोत्सव, दशमीके दिन यज्ञरक्षा, एकादशीके दिन सीता-विवाह, द्वादशीके दिन वनवास, चतुर्दशीके दिन मायामृग, पूर्णिमाके दिन लंकापोड़ि, वैशाख कृष्ण प्रतिपदाको सेतुबन्ध-निर्माण, द्वितीयाको रावण-वध तथा पुष्यसंयुक्त नक्षत्रमें श्रीरामजीका अभिषेक-महोत्सव किया जाता है। इसके अलावा पौष-पूर्णिमाके दिन श्रीजगन्नाथजीका श्रीरामके समान ही पुष्याभिषेक किया जाता है। श्रीरघुनाथ-वेषमें श्रीजगन्नाथजी श्रीरामचन्द्र और श्रीबलभद्रजी श्रीलक्ष्मण तथा श्रीसुभद्राजी सीता एवं श्रीसुदर्शनजी श्रीहनुमान्-तत्त्वसे उपासित होते हैं। (नीलाद्रि-अर्चन-चन्द्रिका—रामनवमी-कल्प)

श्रीचैतन्यदेवके अन्तरङ्ग पार्षद ज्ञानमार्गके परम संत श्रीबलरामदासजीने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके जगमोहनमें बैठकर श्रीजगन्नाथजीकी आज्ञाके अनुसार 'जगमोहन-रामायण' लिखी है। इसमें उन्होंने श्रीजगन्नाथजीका श्रीरामभद्रके रूपमें विशेषरूपसे वर्णन किया है—

श्रीराम जाणिले मुं ये अटे जगन्नाथ।
सीता सुभद्रा ये बेनि अटन्ति संयात॥
लक्ष्मण ये बलराम एक संग होन्ति।
एसनेक मते तहुं देव चलियान्ति॥

(जगमोहन-रामायण)

एक बार संत तुलसीदासजी तीर्थाटन करते हुए इस पवित्र श्रीक्षेत्रपुरीमें पधारे। वहाँ श्रीमन्दिरमें अपने आराध्य श्रीरामरूपका दर्शन न कर श्रीजगन्नाथजीके अप्राकृत दारुब्रह्मस्वरूपका दर्शन करके निराश-मनसे जब लौटने लगे तब वापसीमें एक वानर उनका उत्तरीय वस्त्र लेकर चला गया। मर्कटकी ऐसी चपलता देखकर संत श्रीतुलसी विरक्त-से हो उठे। उसी समय श्रीजगन्नाथजीके एक सेवकने वहाँ पहुँचकर वानरसे कहा—'हनुमान्! संत तुलसी प्रभु श्रीरामजीके अत्यन्त प्रिय हैं। उनके उत्तरीय उन्हें लौटा दो।' इतना कहते ही वानरने उत्तरीय लौटा दिया। इसपर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे—श्रीमन्दिरके सेवक क्या उन्हें जानते हैं, यदि जानते हैं तो कैसे? ऐसा विचारकर वे पुनः सेवकसे भेंट करनेके लिये श्रीमन्दिरके भीतर आये, परंतु सेवकके साथ साक्षात् नहीं हुआ। इससे उन्हें दुःख हुआ, तब उन्होंने तुलसीचौरा नामक एक ग्राममें विश्राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। अपने रामरूपके प्रति तुलसीदासजीकी अनन्य भक्तिभावना देखकर, परम प्रसन्न हो परम कारुणिक परब्रह्म श्रीराघवेन्द्र श्रीराम स्वप्नमें अवतीर्ण होकर बोले—'हे संत! श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें आपने जिस निर्गुण ब्रह्मकी स्थापना की है, वे ही आपके अभिलषित योगिजन-दुर्लभ नीलाद्रिकन्दरानन्द पुरुषोत्तम श्रीजगन्नाथ हैं। श्रीमन्दिरमें उत्तरीय ले जानेवाले मर्कट हनुमान् थे और विभीषणने सेवकके रूपमें उन्हें आपका परिचय प्रदान किया था।' संत तुलसी अपने प्राणधन प्रिय प्रभुके दर्शनमें आत्मविह्वल हो गये। उस दिन एकादशी तिथि और बृहस्पतिवार था। संत तुलसी श्रीमन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शनमें पूर्णकाम और सत्यसंकल्प हो गये।

आज भी संत तुलसीदास-सम्प्रदायकी बड़लता मठके संत-महात्मा श्रीजगन्नाथजीके पहुड़के समय (शयन कराते समय) श्रीरामस्वरूपका ध्यान करके वन्दना करते हैं।

भाँति भाँति प्रभु बेद पचारी। पहुड़े हे प्रभु अवध बिहारी॥

इत्यादि, पुनश्च, श्रीमन्दिरसे बाहर आनेके समय गाते हैं—

चल सखि सोए अवध किसोर।
जनकनन्दिनी चरण पलंके सेवा करे निरन्तर॥

इसके अलावा, सानलता मठ, लाउणि मठ, पापुड़िआ मठ, बलगण्डिलता मठ, रेवासा मठ और सुन्दरदासमठके संत-महात्मा भी श्रीजगन्नाथजीको अपने इष्टदेव श्रीरामजीके रूपमें ग्रहण करते हैं और इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

अनुग्रहाय लोकानां नानारूपधरं प्रभुम्।
वन्देऽहं जानकीकान्तं स्फुटिताम्बुजलोचनम्॥
पित्राज्ञया वनं प्राप्य कृत्वा सागरबन्धनम्।
निहतो रावणो येन तस्मै रामाय ते नमः॥
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि जगन्नाथ नमोऽस्तु ते॥
वेदान्ते प्रतिपाद्यं यत् पण्डितैर्ज्ञानमण्डितैः।
नीलाचलेऽस्मिन् विमले प्रत्यक्षं तद् भजामहे॥

ऐसे करुणावरुणालय जगत्के नाथ प्रभु श्रीराम सबकी भलाई करें।

हे रामदूत! हे पवनपुत्र!

(श्रीअनूपकुमारजी गुप्त 'अनूप')

हे रामदूत! हे पवनपुत्र! हे संकटमोचन हे हनुमान!
तुम दुष्टोंके हो कालरूप, तुम महाबली तुम ओजवान॥
जनकसुताके कष्ट हरे सब, रावणका मद चूर किया।
प्रेम-भावसे तुम्हें पुकारा, तुमने संकट दूर किया॥
मेरे अंतरमें प्रतिदिन ही, गूँजे तेरा अमर गान॥ हे० ॥
असुरोंसे निपट अकेले ही, कालनेमि-संहार किया।
तुम रामकाजमें रहे अग्र, अरु क्षणमें वारिधि पार किया॥
रामकथाका वर्णन करके, भरे सीयमें नवल प्राण॥ हे० ॥
तुमसे इतनी है विनय नाथ! कर दो मेरे सब कष्ट दूर।
मेरे मदको विगलित कर दो, कर दो मेरा दंभ चूर॥
ऐसे भाव भरो अंतरमें, तेरा ही नित धरूँ ध्यान॥ हे० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे

(कवि अब्दुल गफ्फार एडवोकेट)

हम भारतीयोंकी सकल विश्वमें शान है गौ मातासे।
आर्य भूमिकी सच पूछो पहचान है गौ मातासे॥
इसका निर्मल दुग्ध-पान कर काया रहे निरोगी।
मानव-जीवनमें सचमुच है गाय बहुत उपयोगी॥
आयुर्वेदिक औषधियोंमें गोमूत्र काममें आता।
पञ्चगव्यका अंश स्वस्थ चित बली शरीर बनाता॥
गायने मानव-जीवनको नव रूप प्रदान किया है।
इसीलिये ऋषियोंने इसको माँका नाम दिया है॥
परमपूज्या गौ माताको हम नहीं भटकने देंगे।
शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे॥ १॥

वे, जिनकी नजरोंमें श्रेष्ठ हमारी गौ माता है।
वे, जिनको प्राणोंसे बढ़कर प्यारी गौ माता है॥
वे, जो चाहते हों जगमें हो ऊँचा नाम हमारा।
गो-धनका भारतमें फिरसे भरा रहे भंडारा॥
वे, जो गौ माताको ईश्वरका उपहार समझते हैं।
वे, जो सत्य-अहिंसाको जीवनका सार समझते हैं॥
वे, जो प्रेम-शान्तिमें निज विश्वास व्यक्त करते हों।
वे, जो जीवनके चित्रमें प्रणय-रंग भरते हों॥
वे, जो शुद्ध सात्त्विक जीवनको आदर्श समझते।
वे, जो परोपकारको अपना अन्तिम लक्ष्य समझते॥
उन सभी देशभक्तोंको बढ़कर आगे आना होगा।
प्राण गवाँकर ही गौओंको हमें बचाना होगा॥
आर्य संस्कृतिका गौरव हम नहीं सिमटने देंगे।
शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे॥ २॥

कभी मनुजको साथ लिये वैतरणी पार उतरती।
कामधेनु बन कभी हृदयकी पूर्ण कामना करती॥
मेहनत-कश किसानके मनमें खुशियाँ यह भर देती।
श्रमके साथी बैलोंको यही जन्म है देती॥
जहाँ कहीं ये रम्भाएँ उस घरके भाग सँवरते।
इसके दूध, दही, घीमें सब पौष्टिक तत्त्व हैं रहते॥
नृप दिलीप गो-धन-विश्वासी गो-प्रिय प्रेमरखा थे।
लीलाधर श्रीकृष्ण गायके सबसे बड़े सखा थे॥
'गोमये वसते लक्ष्मीः' सूक्ति यही बात है कहती।
गोवर्धनमें तो सचमुच है स्वयं लक्ष्मी रहती॥
गो-संवर्धन महायज्ञ है आओ पूर्ण करायें।
इसकी उचित सुरक्षाका हम अब संकल्प उठायें॥
संत विनोबाका सपना हम नहीं उचकने देंगे।
शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे॥ ३॥

किसी जातिका नहीं, धर्मका नहीं यह हर घरका है।
गोहत्याका प्रश्न समूची मानवता भरका है॥
गो-हत्या करनेवाला सभ्यता उचाट रहा है।
गाय काटनेवाला अपनी माँको काट रहा है॥
'माँ' के हत्यारोंको खुलकर दण्ड दिलाना होगा।
इसकी रक्षाका घर-घरमें अलख जगाना होगा॥
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख सभी अब आगे बढ़कर आओ।
भाल भारतीसे कलंकका ये टीका हटवाओ॥
जनता रहे जागृत और सत्ता दायित्व निभाये।
गो-हत्या-प्रतिबन्धका कानून अविलम्ब बनाये॥
वरना गौतम और गांधीकी शान खो जायेगी।
सकल विश्वमें भारतकी पहचान खो जायेगी॥
वसुधाके वैभवका दर्शन नहीं चटकने देंगे।
शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे॥ ४॥

जिस-जिसने भी इन गायोंकी महत्ता स्वीकारी है।
उस-उसके ही आँगनमें खुशियोंकी फुलवारी है॥
वह देखो डेन्मार्क जहाँपर दूधकी नदियाँ बहती हैं।
गोपालनमें व्यस्त वहाँकी सारी जनता रहती है॥
जिस आँगनमें गाय नहीं अपशकुन माना जाता है।
गोदान तो भारत-भूमिपर महादान कहलाता है॥
यहाँ लोग अब भी गायोंको मान दिया करते हैं।
कन्यादानके साथ गायका दान किया करते हैं॥
भारतवासी भक्तिभावमें इनके भर जाते हैं।
पूँछ पकड़कर गायोंकी भवसागर तर जाते हैं॥
यही सोचकर शहनशाहियत किंचित् नहीं डरी थी।
मुगल-कालमें अकबरने गो-हत्या बंद करी थी॥
पुरखोंकी यह परम्परा हम नहीं पलटने देंगे।
शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे॥ ५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौ माताके अनन्त लाभ

(प्रो० श्रीकृष्णलालजी भल्ला)

गौके दिव्य गुणोंका वर्णन हमारे सद्‌ग्रन्थोंमें भूरिशः मिलता है। गौको माताके समान माना गया है; क्योंकि माँके दूध और गायके दूधमें कई प्रकारकी समानताएँ हैं। माँ और गायके दूधके गुण निर्भर करते हैं उनको दिये गये आहार तथा व्यवहारपर।

सूफी साधु अब्दुल शाह जिन दिनों दूध पीते बच्चे ही थे कि उनकी जन्मदायिनीका असमय निधन हो गया। उनके पिताके सामने समस्या थी कि बच्चेका पालन-पोषण कौन करे? कैसे हो? तभी उनके एक मित्रने उन्हें नेक सलाह दी कि 'मियाँ! इस कदर परेशान क्यों हो रहे हो? बच्चेके दूधके लिये एक गाय खरीद लाओ।' ऐसा ही किया गया। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने सभीको गायकी सेवा करनेका उपदेश दिया। भारतके कल्याण तथा आर्थिक विकासके लिये गायका पालन-पोषण तथा गोवंशका संवर्धन बहुत आवश्यक है। गाय केवल हिन्दुओंकी ही माता नहीं, मनुष्य-मात्रकी माता है। भगवान् कृष्ण और गुरुनानकने गो-सेवाको अपनाया।

राष्ट्रके विकासमें गोवंशका विशेष योगदान है। भारतमें गाय केवल दुधार पशु नहीं है बल्कि यह सारी कामनाएँ पूरी करनेवाली कामधेनु है, इससे लाखों परिवारोंका पालन-पोषण होता है। डेयरी इंडियाकी एक रिपोर्टके अनुसार देशमें ४९ हजार ग्रामीण दुग्ध-उत्पादन-सहकारी संगठनोंके लगभग ५ लाखसे ज्यादा ग्वाला-परिवार प्रतिदिन ८० लाख टन दूध बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। अनुमान है कि देशमें ४ करोड़ ६ लाख ७० हजार हल तथा १ करोड़ ३० लाख बैलगाड़ियाँ हैं और उनसे जुड़े तीन करोड़ लोगोंका जीवन-यापन होता है। बैलोंद्वारा जो भार-वाहनका कार्य होता है, वह भी २,५०० सौ करोड़ कि०मी० के बराबर है।

खेदकी बात है कि आजादी प्राप्त करनेके ४७ वर्ष बाद भी भारतमें पूर्णतया गोवधपर पाबंदी नहीं लग सकी। गोपालकी धरतीपर आज जो गौओंकी दशा है वह सबको विदित है। इसके विपरीत विदेशों—जैसे डेनमार्कमें गौओंके पालन-पोषणपर बहुत ध्यान दिया जाता है। अतः हमें अपने घरमें गौ रखनी चाहिये। अगर यह सम्भव न हो तो पास ही यदि कोई गौशाला हो तो उसकी तन, मन और धनसे सेवा करनी चाहिये। प्रायः बाजारों और गली-कूचोंमें गौओंको आवारा फिरते देखा गया है। यदि हम घरमें उनकी सेवा नहीं कर सकते तो उन्हें किसी गोशालामें भेज देना चाहिये।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठनने माँके दूधको उत्तम माना है। कृत्रिम रूपसे तैयार किया गया दूध बच्चोंको देना ठीक नहीं। यदि किसी कारणवश बच्चेको माताका दूध न मिल सके तो उसके लिये गायका दूध सबसे अधिक गुणकारी है। समस्या यह है कि दिन-प्रतिदिन गौओंकी संख्या कम हो रही है, फलस्वरूप गायका दूध बहुत कम मिलता है।

हमारे देशमें १० लाख अंधे हैं जो विश्वके अंधोंकी संख्याकी एक तिहाई है। यदि गायके चारेमें अधिक हरा चारा दिया जाय अथवा विटामिन ए-युक्त चारा दिया जाय तो इस चारेसे प्राप्त दूध रोगियोंके लिये बहुत लाभदायक होगा। 'पंजाब कृषि-विश्वविद्यालय' द्वारा किये गये अनुसंधानके अनुसार गायका दूध भैंसके दूधसे अधिक सुरक्षित है।

अनेक प्रकारके रोगोंके लिये गायका गोबर एक सिद्ध उपचार है। प्राचीन यूनानमें किसानोंके उपचारके लिये गोबरका प्रयोग किया जाता था। स्पेनके कुछ हिस्सोंमें प्रसूति-ज्वरकी चिकित्सा गायके गोबरसे की जाती है। गोबर-गैसके प्लांट्स गाँवमें लगाये जा रहे हैं। इस गैसको कई कामोंके लिये इस्तेमाल किया जाता है। विशेष बात यह है कि इस गैससे प्रदूषणकी समस्या पैदा नहीं होती।

सभी देवता, ऋषि-मुनि और तीर्थोंका गौमें निवास है। यज्ञमें गौके घीका प्रयोग उत्तम माना गया है। इस यज्ञसे प्रदूषण दूर होता है। कई प्रकारके हानिकारक कीटाणुका अन्त होता है। गायका मानव-जातिपर बहुत उपकार है, परंतु हमारे देशमें गायकी सेवाकी ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। सरकार तथा जनताद्वारा गौओंकी दशा सुधारनेमें ही देशका कल्याण है। जिस भी दृष्टिसे देखा जाय गौके समान हितकारी और कोई वस्तु नहीं, अतः गोसेवा और रक्षाको सनातनधर्ममें प्रमुख स्थान दिया गया है। महात्मा गाँधी, विनोबाजी और अनेक महापुरुषोंने गोसेवापर बल दिया है, क्योंकि गौ माताके गुण और लाभ अनन्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनित्य जीवनसे निराशा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

अनित्य जीवनकी निराशाके समान न तो कोई विवेक है, न कोई त्याग है, न कोई प्रायश्चित्त है और न कोई तप है, कारण कि अनित्य जीवनसे निराश होते ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंसे स्वत: सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, जिसके होते ही जीवनहीमें मृत्युका अनुभव और अमरत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस प्रकार मृत्युका दण्ड पानेवाले व्यक्तिको किसी अन्य अपराधका फल नहीं भोगना पड़ता, उसी प्रकार अनित्य जीवनसे निराश होनेवाले साधकको किसी भी कर्मका फल नहीं भोगना पड़ता, कारण कि कर्मके संस्कार जिस भूमिमें विद्यमान रहते हैं, वह भूमि ही सदाके लिये मिट जाती है। जिस प्रकार भूमिरहित बीज उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार अहं-भावरूपी भूमिके बिना कर्म-संस्कार फलित नहीं होते।

अत: यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि अनित्य जीवनसे निराश होना ही महान् साधन है, जो सभी निर्बलताओंको खाकर अनन्त नित्य-चिन्मय जीवनसे अभिन्न करनेमें समर्थ है।

सभी साधनोंका समावेश अनित्य जीवनकी निराशामें निहित है, क्योंकि किसी भी साधनका जो फल हो सकता है, वह तो होता ही है, पर अनित्य जीवनकी निराशासे जो फल होता है, वह किसी अन्य साधनसे नहीं हो सकता।

जैसे, तपसे शक्ति और पुण्यसे उत्कृष्ट भोगोंकी प्राप्ति हो सकती है, पर न तो अमरत्व मिल सकता है, न परम प्रेम प्राप्त हो सकता है और न चिर-शान्ति तथा स्थायी प्रसन्नता ही मिल सकती है, जो अनित्य जीवनसे निराश होनेपर स्वत: प्राप्त होती है।

अब यदि कोई यह कहे कि अनित्य जीवनसे निराश होनेपर हमारा भौतिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जायगा तो कहना होगा कि ऐसी बात नहीं है। अनित्य जीवनसे निराश होनेपर नित्य जीवनकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, पर अनित्य जीवनमें भी सौन्दर्य आ जाता है, कारण कि नित्य जीवनका प्रकाश अनित्य जीवनको स्वत: सुन्दर बना देता है, अर्थात् उसमें दिव्य गुणोंका प्रादुर्भाव होने लगता है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अनित्य जीवनसे निराश होनेके लिये हमें क्या करना चाहिये? इसका समाधान यही हो सकता है कि जब हम निज-विवेकके द्वारा क्षणभंगुर शरीरसे निराश हो जाते हैं तब समस्त अनित्य जीवनसे निराश होनेकी सामर्थ्य स्वत: आ जाती है, कारण कि शरीरका अविश्वास शरीरसे अतीतके जीवनपर विश्वास करानेमें समर्थ है।

अनित्य जीवनकी निराशा स्वार्थभावको खाकर विश्वप्रेम, देहाभिमानको खाकर अपनेमें ही संतुष्ट होनेकी सामर्थ्य तथा अहं और ममको मिटाकर प्रभु-प्रेम प्रदान करती है। इस दृष्टिसे अनित्य जीवनकी निराशामें ही जीवनकी पूर्णता निहित है।

अनित्य जीवनकी निराशाका अर्थ अनित्य जीवनसे घृणा करना नहीं है, अपितु त्यागे हुए मलकी भाँति उससे विमुख होना है। जिस प्रकार त्यागा हुआ मल खाद बनकर खाद्य-पदार्थोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ है, उसी प्रकार अनित्य जीवनकी निराशा समस्त विश्वकी सेवा बनकर उसे हरा-भरा बनानेमें समर्थ है और वह साधकको अमर भी कर देती है।

अनित्य जीवनकी निराशा वर्तमानसे सम्बन्ध रखती है, उसके लिये भविष्यकी आशा करना भूल है। निज-विवेकका आदर करनेपर अनित्य जीवनसे निराश होनेकी सामर्थ्य स्वत: आ जाती है। अत: हमें अनित्य जीवनसे निराश होकर वर्तमानमें ही जीवनकी पूर्णता प्राप्त कर लेनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०)

गोकुल एक गाँवका नाम है, परंतु श्रीमद्भागवत तथा सूरसागर आदि ग्रन्थोंमें इस शब्दका प्रयोग व्रजके ऐसे समाजके अर्थोंमें हुआ है, जिसके जीवनका आधार गो-पालन है। गोकुल उस समुदायका नाम है जो गायपर निर्भर था और गाय ही जिसका धन था। गायोंकी संख्याके आधारपर वहाँ आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती थी। आज भी वहाँ लोकगीत गाये जाते हैं—*'नौ लख धेनु नन्दबाबाकें नित नयौ माखन होय।'*

गोकुल-संस्कृतिकी एक धारा

इतिहासकारोंने विश्वइतिहासको चार समाजोंमें विभक्त करके देखा-परखा है—वन्यसमाज, पशुपालक-समाज, कृषि-समाज तथा औद्योगिक समाज। पशुपालक विशेष-रूपसे गोपालक-समाज दुनियाके प्रत्येक देशमें कभी-न-कभी वहाँकी मुख्य जीवनधाराके रूपमें विद्यमान रहा है और इसका प्रमाण उन देशोंकी लोकवार्तामें स्पष्ट-रूपसे देखा जा सकता है। वहाँके लोकगीत, लोककथा, लोकविश्वास और रीति-रिवाजोंमें गाय सभी प्रकारसे अनुस्यूत दिखलायी पड़ती है[१]। परंतु भारतवर्षमें गोकुल-संस्कृति इतनी सशक्त, व्यापक और प्रभावशाली रही है कि आजकी विषम परिस्थितिमें भी अनेक गोभक्त गोमाताकी सेवा तथा उसकी रक्षामें अपना सर्वस्व समर्पण किये हुए हैं। वास्तवमें गोकुल एक संस्कृतिका पर्याय है।

गोकुलका धर्म—गोरक्षा

गोदान, गोचारण, गोरक्षा, गोसेवा और गोपालनके साथ दिलीप, रघु, नृग, पृथु और विक्रमादित्य-जैसे सम्राटों तथा आपस्तम्ब एवं च्यवन-जैसे ऋषियोंके नाम जुड़े हुए हैं। कृष्ण तो गोकुलका लाडला है ही। गोकुल-संस्कृतिमें ऐसी अनेक लोककथाएँ हैं, जिनके नायकोंने गायोंकी रक्षाके लिये युद्ध किया था और गायोंकी रक्षाके लिये प्राण समर्पित कर दिये थे। अष्टछापके कवि कुम्भनदासके पुत्र कृष्णदास जब गायको बचानेके लिये दौड़ पड़े तो गाय तो लपककर खिरकमें चली गयी, परंतु कृष्णदास सिंहकी पकड़में आ गये।

गोवर्धन—इन्द्रसे बड़ा देवता

गोकुल-संस्कृतिमें गाय मुख्य देवता है। वह कामधेनु है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कोटि-कोटि देवताओंका निवास है। गोकुल-संस्कृतिमें गाय पृथ्वीका रूप है और इस संस्कृतिका विश्वास है कि 'जब-जब धरतीपर भार बढ़ेगा, तब-तब पृथ्वी गौका रूप धारण करके प्रभुके पास पुकार करेगी।' गोकुल-संस्कृतिमें चूल्हेपरकी पहली रोटी 'गो-ग्रास' है। गोकुल-संस्कृतिके देवता गायसे सम्बन्धित हैं। गोपाल, गोपीश्वर, साक्षी गोपाल, गोपालसुन्दरीके साथ ही गोवर्धन इसलिये पूज्य है कि वह गायोंकी वृद्धि करनेवाला है और इसीलिये वह इन्द्रसे बड़ा है।

गोविन्द-अभिषेक

स्वयं कामधेनु अपने दूधकी धारासे गोविन्दका अभिषेक करती है और यह गोविन्दाभिषेक गोकुल-संस्कृतिका इतना अभिन्न अङ्ग बन गया है कि मूर्तियोंके प्राकट्यकी कथाओंमें 'गायद्वारा दूधकी धार चढ़ा आना' एक प्रमुख

१-रूसके रीति-रिवाजोंमें गायका महत्त्वपूर्ण स्थान है। मैलविल जे० हर्सकोवित्सने बताया है कि पूर्वी अफ्रीकाके ढोर-संकुलमें एक ऐसा ही प्रबल तत्त्व है। गायोंकी संख्या आदमीकी हैसियतको बताती है। जैसे गोकुलमें नन्दबाबाकी प्रतिष्ठाके साथ उल्लेख आता है कि—'नौ लख धेनु नन्द बाबा कें।' पूर्वी अफ्रीकामें रहनेवाले लोगोंकी कविताके रूपक गायोंके संकेतोंसे परिपूर्ण है। इवांस प्रिचर्डद्वारा संकलित गीतका एक अंश—

स्वर्गकी श्वेत गाय! तुम चरी हो समृद्ध चरागाहोंमें,
और जो तुम छोटी थी बन गयी महान् हो।
स्वर्गकी श्वेत गाय! ग्रामोंको अपना आशीर्वाद दो।
जिन्हें तुमने ऊँचेसे देखा है।
हमारी गायोंके स्तन भारी हों और
जिससे हमारी स्त्रियाँ आनन्दित हो सकें।

(सांस्कृतिक मानवशास्त्र पृ० ४०४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाक्रमके रूपमें प्रसिद्ध है। श्रीनाथजीकी प्राकट्य-वार्तामें सद्दू पांडेकी गाय—धूमर गायोंके समूहसे न्यारी होकर गिरिराजके ऊपर चढ़कर श्रीनाथजीके मुखारविन्दपर दूध स्रवा आती थी।

गोकुल-संस्कृतिके उत्सव एवं त्योहार

गोकुल-संस्कृतिमें बगलाचौथ, ओघद्वादशी-जैसे व्रत किये जाते हैं, जिनमें सवत्सा गौकी पूजा होती है तथा गाय-सम्बन्धी कथा-वार्ता कही जाती है। 'गोपाष्टमी' गोकुल-संस्कृतिका प्रमुख उत्सव है।

गोकुल-संस्कृतिकी गाथा—व्रज-धरतीपर

व्रजकी धरतीपर कुण्ड-सरोवर-कूप, वनोंमें गाँवोंकी लिपिमें गोकुल-संस्कृतिकी जो गाथा लिखी हुई है, उसके दर्शन हम गोविन्दकुण्ड, सुरभी-कुण्ड, छछियारीदेवी, छाछकुण्ड, गोपकी अथाई, हरजीग्वालका पोखर, गोपीकूप, दोहनीकुण्ड, गोघाट, गोचरभूमि, बहुला गायका मन्दिर, ग्वालकुण्ड, क्षीरसागर, पयसरोवर, बच्छवन और बच्छगाममें कर सकते हैं।

हरे-हरे गोबर अंगन लिपाओ सुघड़ पटमालिनियाँ

यह कथा गोकुल-संस्कृतिकी ही है, जिसमें स्वयं लक्ष्मी गायसे अपने श्रीअङ्गमें स्थान देनेका अनुरोध करती है और गाय उन्हें गोबरमें निवास करनेका आदेश देती है। यही कारण है कि हरे-हरे गोबरसे लीपकर ही आँगनमें गजमोतियोंके चौक पूरे जाते हैं। गोबरके बिना कोई अनुष्ठान हो ही नहीं सकता। छठीसे लेकर सतियों, गोवर्धन, स्याहू, साँझी, नाग, गौर, घरगुली तथा देवी तकको स्थापना गोबरसे ही की जाती है।

पञ्चगव्य और पञ्चामृत

गोकुल-संस्कृतिमें जहाँ गोरोचनका पवित्र तिलक आदृत है, वहीं मस्तकपर गोरज भी सुशोभित रहता है। पञ्चगव्य और पञ्चामृत गोकुल-संस्कृतिकी विशिष्ट देन है।

क्षीरसागर और समुद्रमन्थन

पुराणोंमें पृथ्वीदोहन, क्षीरसागर और समुद्रमन्थन—ये तीन महत्त्वपूर्ण अभिप्राय हैं। इनका सम्बन्ध गोकुल-संस्कृतिसे है। गोदोहन तथा दधिमन्थन इनका आधार है। दूधके समुद्रका अभिप्राय गोकुल-संस्कृतिके अतिरिक्त और कहाँ होगा? गोकुलमें ही दूधके पनारोंके बहने, दधिकाँदौ, गोरसकी कीच होने और दूधके पोखरोंकी अवस्थिति है—

'दूधन ते पोखर भरी घीअन जम गयी पार'

पारिवारिक सम्बन्ध

गोकुल-संस्कृतिमें गायसे पारिवारिक सम्बन्ध है। वह माँ है। उसका और उसके दूधका मोल नहीं किया जाता। व्रजके परिवारोंमें जब कोई त्योहार खोटा हो जाता है, तब वह या तो बहू-बेटीके यहाँ पुत्र उत्पन्न होनेपर उठता है या फिर गायके बछड़ा उत्पन्न होनेपर। विश्वास दिलानेके लिये गायके पैड़ भरे जाते हैं। बेटे और बेटीको बछड़ा और बछिया-शब्दसे सम्बोधित किया जाता है।

गोकुलके लोकविश्वास

गोकुल-संस्कृतिका विश्वास है कि गायकी पूँछका झब्बा जब हिलता है तो सारे रोग दूर हो जाते हैं। बालकको नजर लग जाती है तो लोकाङ्गना गायकी पूँछसे झारा देती हैं। मूल नक्षत्रमें उत्पन्न बालकको गायके पुत्रके रूपमें स्वीकार करनेका शान्ति-अनुष्ठान होता है। गायका दर्शन स्वप्नमें भी मङ्गलका हेतु है।

बाबा नन्द तौ ठाड़े खिरकमें

देवस्वरूप पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धोंमें गोग्रास दिया जाता है। जितने प्रकारके दान हैं, उन सबमें गोदान इतना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक माना गया है कि जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त विभिन्न संस्कारोंमें, विभिन्न अवसरोंपर गोदान करना अनिवार्य है। *'बाबा नन्द तो ठाड़े खिरकमें करि गउअनकौ दान।'*

विवाहमें कुशा लेकर उनमें गाँठ लगाकर कन्यादाता वरके आमने-सामने परस्पर फैले हाथोंमें पकड़ा देते हैं। इस मान्यतामें गाँठ लगे कुश श्यामा गौ और उसके बछड़ेके प्रतीक हैं। गोकुलके मनमें यह भाव घर किये बैठा है कि जीवनके बाद भी गाय स्वर्गका हेतु तथा पुनर्जीवनमें मङ्गलका निमित्त है। वैतरणी पार करनेका एक ही उपाय है—गायकी पूँछ पकड़ करके ही वैतरणीके पार जाया जा सकता है।

गोकुल-संस्कृतिकी मानसिकता

गोलोककी अवधारणा गोकुल-संस्कृतिका हो विकास है। गाय भौतिक रूपमें ही जीवनकी रिक्तताको नहीं भर देती बल्कि वह जीवनकी दृष्टि भी देती है। गायकी ऋजुता ही गोकुल-संस्कृतिकी जीवन-दृष्टि है। सुरही या बहुला गायका गीत गोकुल-संस्कृतिका राष्ट्रगीत है तथा व्रजके साथ ही वह अन्य जनपदोंमें प्रचलित है। एक कथा कही जाती है कि एक बार कजरीवनसे चलकर सुरही गाय नन्दनवनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरने गयी और साँझ हो गयी, तब लौटने लगी। वहाँ ऊँचे-से स्थानपर एक सिंह बैठा हुआ था, बोला—री गाय, तैंने मेरेद्वारा रक्षित इस वनमें प्रवेश क्यों किया? अब मैं तुझे नहीं जाने दूँगा। गायने कहा—'खिरकमें मेरे बछड़े रँभा रहे होंगे, मैं एक बार उनसे मिल आऊँ, मैं वचन देती हूँ, लौटकर आ जाऊँगी।' जब बछड़ोंसे सुरहीने सारी बातें बतायीं तो वे बोले—*'बचनन कौ बींधौ दुद्धाना पीयें हो माय।'* इसके बाद आगे-आगे बछड़ा तथा पीछे सुरही गाय सिंहके पास आये तो बछड़ा बोला—

आऔ रे मेरे सिंह मामा पहले भखो मोय,
ता पीछें या ऐ बिनासिए हो माय।

गायकी इतनी महिमाके बाद गायका जीवन लोकगीतकी इस पंक्तिमें साकार हो गया है। बिदाके समय बेटी अपने बाबुलसे कहती है—

हम तौ रे बाबुल तोरे खूँटाकी गइयाँ,
जित हाँकौ हँकि जाँय।

भाषापर गोकुल-संस्कृतिका प्रभाव

गोकुल-संस्कृतिमें समयकी संज्ञा भी गायकी दैनिक-चर्याके आधारपर होती है। गोधूलिका समय इतना शुभ और शकुनयुक्त है कि विवाहका लगन प्रायः गोधूलिके समयका होता है। गोकुल-संस्कृतिके प्रभावसे ही भाषामें दुहैया, दोहनी, लैंहड़े, चँवर, रँभाना, गोखुर, गोमुख-जैसे शब्द प्रचलित हैं और इस प्रकारके मुहांवरों और कहावतोंका भी यहाँ प्रचलन है—**गऊकौ जायौ, गऊ होना। चौमासे कौ गोबर। भली भयी मेरी मटकी फूटी दधि बेचन सों छूटी। गोरस बेचत हरि मिलैं एक पंथ द्वै काज। गोबर क्यों कियौ गऊके जाए। दुधार गायकी लात सही जाये। चलनीमें दूध दुहै करमन कौ दोस दे।**

रंग इत्यादि लक्षणोंके आधारपर गायोंके विभिन्न नाम गोकुलमें प्रचलित हैं—कारी, कजरी, करौंदी, कबरी, कपिला, गोरी, धौरी, धूमरि, स्यामा तथा राती इत्यादि।

गोकुलकी सौन्दर्य-चेतना

दूध दूहने और दही बिलोनेकी मधुर ध्वनिके साथ जब गोकुलका सबेरा होता है तो बड़ी-बूढ़ी गाती हैं—

गैया जागे बछरा जागे जागे रें दूधनके पिबइया,
खूँटन सौं बछरा छुटे गैयन रहे हैं चुखाय,
प्रभुके बचन सुनि कूकरा।

गोकुलकी साँझका एक चित्र प्रस्तुत है—

साँझुलिया होइ रम्यानी गैया बच्छा जो मिलै!

बाखरमें दूध दुहनेके समय गोकुलके इन रमणीय दृश्योंको देखकर कौन मुग्ध न हो जायगा—

आमें सामें बैठे दोऊ दोहत करत ठठोर।
दूध धार धरणा गिरत लग भये चंद चकोर।

गोकुलमें विवाह हो और भला गायोंके गीत न हों? क्योंकि गाय तो गोकुलकी सौन्दर्य-चेतना है—

जौ तू री सुरही अत बड़ी धुइऐगी जसरत दरबार
व्याहुलरौ कहिऐ।
ए दुहि दीजौ कौसल्या के हात व्याहुलरौ कहिऐ।
कै तैनें प्यासी गउअ बिड़ारीं?

गोहत्या सबसे बड़ा अपराध माना गया है। इतना ही नहीं गायोंको बिड़ारना भी पाप बताया गया है। जन्मके गीतोंमें स्त्रियाँ गीत गाती हैं। प्रसवकी पीड़ा अधिक क्यों होती है—

कै तैनें प्यासी गउअ बिड़ारीं,
कै मारे मनिज के मान।
छींके पै दधि धरौ

गोकुलके व्यञ्जनोंमें दधि, दूध, मक्खन और मलाईसे अधिक सुन्दर और क्या होगा! प्रातःकाल ही मैया कहती है—

छींके पै दधि धरौ ऊखल चढ़ि उतार लेउ।

सुरई (सुरभी गौ) का घृत तो देवताओंको भी प्रिय है—

सुरै गऊ के घिरत अरे, भवनमें दिवला जोरि धरे।
चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन

गोकुल-संस्कृतिमें जीवनकी सार्थकता गायोंकी सेवा ही मानी गयी है। गोभक्त कवियोंकी तो यहाँतक अभिलाषा है कि इस देहकी माटी हो और उसपर दूब उगे तथा गाय उस दूबको चुगें—

जा नर देही पै दूब जमैगी
सो रुगि चुगि जाँइगी हरिकी गइयाँ।

छीतस्वामी अहीरकी जातमें पुनर्जन्मकी इच्छा करते हैं और रसखान गोकुलके ग्वारिया बनना चाहते हैं—

चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामभक्तिरूपी चिन्तामणि

(प्रो० श्रीउमेशकुमारजी श्रीवास्तव, एम्० कॉम०, साहित्य-विशारद)

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
(रा० च० मा० ७। १२०। २—११)

चौपाइयोंका अर्थ स्पष्ट है तथापि सुविधाके लिये हिन्दीमें भाव दिया जाता है—'श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। हे गरुड़जी! यह जिसके हृदयके अंदर बसती है, वह दिन-रात (अपने-आप ही) परम प्रकाशरूप रहता है। उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिये। [इस प्रकार मणिका एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है] फिर मोहरूपी दरिद्रता समीप नहीं आती [क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है], और [तीसरे] लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपको बुझा नहीं सकती [क्योंकि मणि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरेकी सहायतासे नहीं प्रकाश करती]। [उसके प्रकाशसे] अविद्याका प्रबल अन्धकार मिट जाता है। मदादि पतंगोंका सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदयमें भक्ति बसती है, काम-क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते। उसके लिये विष अमृतके समान और शत्रु मित्र हो जाता है। उस मणिके बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस-रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते। श्रीराम-भक्तिरूपी मणि जिसके हृदयमें बसती है, उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत्में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि हैं जो उस भक्तिरूपी मणिके लिये भलीभाँति यत्न करते हैं। यद्यपि वह मणि जगत्में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना श्रीरामजीकी कृपाके उसे कोई पा नहीं सकता।'

श्रीरामचरितमानस एक भक्ति-पथ-प्रदर्शक परम सिद्ध सद्ग्रन्थ है, जो राम-भक्ति-प्राप्तिका अचूक उपाय बतलाता है। रामभक्ति-प्राप्तिके उपाय सरल तो हैं, पर मूढमति किंवा अभागे मनुष्य उन्हें अनुभवकी तुलापर न तौलकर व्यभिचारिणी बुद्धिके सहारे तर्क-वितर्क-कुतर्कके आधारपर ठुकरा देते हैं। वे नहीं जानते कि साधकको संत-समाजरूपी वट-वृक्षकी शीतल एवं सुखदायी छाया-तले बैठनेका अभ्यास करना चाहिये। साधु-संगमें ही रामभक्ति-रूपी गङ्गा बहती है एवं ब्रह्म-विचारका प्रचार होता है। इसलिये संत-समाजमें बैठना परम कल्याणकारी है।

इतना ही नहीं वेद-पुराण तो पुनीत पर्वत हैं, जिनमें श्रीरामकथाकी सुन्दर-सुन्दर खानें हैं। संत पुरुष ही इन खानोंके रहस्यके ज्ञाता एवं मर्मज्ञ हैं। सुन्दर बुद्धि ही खोदनेवाली बुद्धि है। ऐसे संत-कृपा-प्राप्त प्राणीके ज्ञान और वैराग्यरूपी दो नेत्र होते हैं। जब वे चैतन्य होकर मणि खोजते हैं, तब—

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी।
(रा० च० मा० ७। १२०। १५)

संत-जन श्रीहरिकी कीर्ति एवं प्रभावरूपी सुगन्ध जन-जनतक पहुँचाकर उनको धन्य कर देते हैं। जिन्हें जीवनको विजयी एवं सफल करना हो, मानव-जीवनकी प्राप्तिका लक्ष्य सिद्ध करना हो, उन्हें चाहिये कि वे मन लगाकर सत्संग करें *'सतसंग करहु मन लाइ।'* क्योंकि—

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥
बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥
(रा० च० मा० ७। १२० (क, ख))

ब्रह्मरूपी समुद्रमें ज्ञान मन्दराचल और संत देवता हैं, जो उस समुद्रको मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मधुरता बसी रहती है। साधकको चाहिये कि वैराग्यरूपी ढालसे अपनी रक्षा करते हुए एवं ज्ञानरूपी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलवारसे मद, लोभ और मोहरूपी शत्रुओंको मारकर जो विजयी बनाती है उस श्रीहरि (श्रीराम) की भक्तिका सहारा ले। इस भक्तिकी प्राप्तिका उपाय है अभिमान-शून्य होकर संत-स्वभावका होना तथा संतोषी होना, परदोष-चिन्तनका त्याग करना, निरभिमान होना, हरिभजन करना एवं नित्य-निरन्तर रामकृपा-प्राप्तिके लिये उद्यम करना। रामकृपाके बिना प्रभु श्रीरामकी प्रभुताका ज्ञान नहीं हो सकता।

रामकृपा-प्राप्तिकी साधना

प्रभु श्रीराममें प्रभुता जाने बिना उनपर विश्वास नहीं होता [जैसे दुन्दुभिकी अस्थि और तालके वृक्ष गिरानेपर ही सुग्रीवको श्रीरामजीके बलपर विश्वास हुआ था]। विश्वासके बिना प्रीति नहीं होती और प्रीतिके बिना भक्ति वैसे ही सुदृढ़ नहीं होती जैसे जलकी चिकनाई नहीं ठहरती।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

(रा० च० मा० ७। ८९। ७-८)

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(८। १४)

अर्थात् 'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य-चित्त होकर, सदैव निरन्तर मेरा स्मरण करता है उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

ऐसी भक्तिरूपी चिन्तामणिकी प्राप्ति संत-कृपा-कटाक्षका सुफल ही है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं हि रामो न पश्यति।
निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हते॥

अर्थात् जिसने कभी श्रीरामको नहीं देखा और जिसे कभी 'राम' ने भी नहीं देखा, वह इस लोक (मृत्युलोक)-में सबसे अधिक निन्द्य मनुष्य है। उसकी आत्मा भी बारंबार उसे धिक्कारती है।

इस प्रकार रामभक्ति ही जीवनका परम प्राप्तव्य है—

जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता॥

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते॥

(श्रीमद्भा० १०। २। ३७)

आपके मङ्गलमय रूप तथा नामोंका श्रवण-कीर्तन एवं चिन्तन करता हुआ जो पुरुष सम्पूर्ण क्रियाओंको करता हुआ भी आपके चरणकमलोंका ध्यान करता रहता है वह फिर संसारमें नहीं आता।

वस्तुतः यही तो रामभक्तिरूपी चिन्तामणि-प्राप्तिका सुपरिणाम है।

जीवनमें जब मनुष्य मायाजनित भ्रमोंसे विकल हो जाता है तब संत-महापुरुषोंद्वारा सच्ची शान्ति प्राप्ति करनेके लिये वह अपना जीवन संत-स्वभाववाला बनाना चाहता है। यथा—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत-निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भगति लहौंगो॥

(विनय-पत्रिका १७२)

जब संतरूपी मेघ हरि-नामकी पुष्टिकर वर्षा करते हैं अथवा संतरूपी पवन हरिनामकी सुगन्धसे साधकको निहाल कर देते हैं तब वह रामभक्तिरूपी चिन्तामणिकी प्राप्तिके आनन्दमें डूबकर धन्य हो जाता है। उसका इस लोकमें आना सफल हो जाता है। वह पूर्णकाम हो माया, ममता, मोह इत्यादिके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, इसलिये—

अस बिचारि मति धीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥

(रा० च० मा० ७। ९०)

जो करुणामय प्रभु हैं, तीनों लोकोंमें सुन्दर हैं एवं सुखदाता हैं, उनका भजन करना ही रामभक्तिरूपी सुन्दर चिन्तामणि प्राप्त करना है। वे लोग चतुर हैं जो इस चिन्तामणिकी प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी संस्कृति—पतनकी ओर

(रोमिका बत्रा)

आजके परिप्रेक्ष्यमें सबसे बड़ी चिन्ताका विषय है—हमारी संस्कृतिका पतन। बड़े दुःखकी बात है कि भारतवर्ष जो अपनी सांस्कृतिक धरोहरके लिये विश्वभरके लिये एक उदाहरण रहा है, वही आज अपनी सनातन सभ्यता और संस्कृतिको छोड़कर पश्चिमकी ओर आकृष्ट हो रहा है और वहाँकी संस्कृतिका अनुकरण कर रहा है। भारतकी आध्यात्मिकताने समूचे विश्वको अपनी ओर आकर्षित किया है। इसे ऋषियोंकी भूमि माना जाता रहा है। भारतवर्षने विश्वको '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' अर्थात् 'सम्पूर्ण विश्व ही एक परिवारके समान है' तथा '**मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।**' अर्थात् 'माताको देवता माननेवाला बनो, पिताको देवता माननेवाला बनो, आचार्यको देवता माननेवाला बनो' आदि अनेक सुन्दर उपदेशोंका उपहार प्रदान किया। इस तरहसे हमारा देश सदासे आध्यात्मिक ज्ञानका केन्द्र रहा है, परंतु विडम्बना है कि आज स्वयं भारतको भी आध्यात्मिक ज्ञानकी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। बड़े खेदकी बात है कि अपनी प्राचीन, अनमोल और अतुलनीय सांस्कृतिक धरोहरकी रक्षा करनेमें हम असफल-से हो रहे हैं। आइये इसके कुछ कारणोंका विश्लेषण करें—

१-दूरदर्शनका दुष्प्रभाव—हर वैज्ञानिक वस्तुसे कुछ लाभ और कुछ हानि जुड़ी रहती है। जहाँतक दूरदर्शनका प्रश्न है, यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि इससे लाभ कम और नुकसान अधिक हो रहा है। यूँ तो दूरदर्शनको ज्ञान एवं जानकारीका एक शक्तिशाली माध्यम माना जाता है। समूचे विश्वमें क्या हो रहा है, यह हम घर बैठे ही दूरदर्शनके माध्यमसे ज्ञात कर सकते हैं, परंतु प्रश्न यह है कि क्या वास्तवमें इसका प्रयोग यहींतक सीमित है? इस बातको नकारा नहीं जा सकता कि आज दूरदर्शनपर प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमोंमें मनोरंजन और जानकारीका संतुलन बिगड़ चुका है। दूरदर्शनके अधिकतर कार्यक्रम सिनेमा-केन्द्रित हैं और आजके युगमें सिनेमाकी अश्लीलताकी क्या सीमा है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। हमारे बच्चे जिनका स्वभाव बड़ा ही कोमल होता है, जिनकी बुद्धि बड़ी चञ्चल होती है और बाल्यावस्था होनेके कारण हर देखी हुई चीजको शीघ्रतासे ग्रहण करनेकी क्षमता बड़ोंकी अपेक्षा उनमें अधिक होती है। ऐसी स्थितिमें यदि हम बच्चोंको मना करें तो वे मानते नहीं, क्योंकि उनके सभी संगी-साथी देखते हैं और इकट्ठे मिलनेपर इन्हीं देखे हुए विषयोंपर चर्चा करते हैं। तो वे पीछे क्यों रहें? मनोविज्ञानमें एक ऐसा सिद्धान्त आता है कि सुनी हुई चीजको देखनेकी इच्छा मनमें अवश्य जाग्रत् होती है और देखी हुई चीजको करनेके लिये भी मन लालायित होता है। फिर दूरदर्शन तो इनमें दृश्य-श्रव्य माध्यम है। बच्चे दूरदर्शनपर अभिनेता और अभिनेत्रियोंको जैसा करते हुए देखते या सुनते हैं, उसका वैसा ही अनुकरण करनेमें गर्वका अनुभव करते हैं। धूम्रपान, मार-धाड़ और नशेकी प्रवृत्तियोंके बढ़नेके पीछे भी दूरदर्शनका बहुत बड़ा प्रभाव दीखता है।

२-शिक्षा-प्रणाली—किसी भी देशकी शिक्षा-प्रणाली वहाँकी संस्कृतिका दर्पण होती है, क्योंकि शिक्षा ही ऐसा वातावरण बनाती है, जिसमें किसी भी देशके नागरिकोंके चरित्रका विकास होता है और यह वातावरण शिक्षाके स्वरूपपर निर्भर करता है। आजकी हमारी शिक्षा-प्रणालीके अन्तर्गत पाठ्यक्रममें नैतिक शिक्षापर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है, वह चरित्र-केन्द्रित न होकर व्यवसाय-केन्द्रित बनी हुई है। यही कारण है कि विज्ञान, कम्प्यूटर और गणित आदि कठिन विषयोंमें उत्तीर्ण होनेके बाद भी विद्यार्थी जब जीवनक्षेत्रमें पदार्पण करते हैं तो स्वयंको असफल अनुभव करते हैं। ऐसे विद्यार्थी संस्कृतिके विकासमें क्या योगदान दे सकते हैं? आज हमारी सरकार इस कमीको महसूस कर रही है और इसलिये नैतिक शिक्षाको विद्यालयस्तरतक पाठ्यक्रमका एक आवश्यक अंग बनानेपर विचार कर रही है। यद्यपि हमारे सनातन धर्मके अनुसार जीवन अति सरल, सहज एवं सादगीपूर्ण है, परंतु नैतिक एवं धर्म-शिक्षाके अभावके कारण शास्त्रोंसे आजका विद्यार्थी प्रायः अवगत नहीं है। न तो स्कूलमें और न ही घरोंमें वे शास्त्रोंद्वारा बताये गये मानव-धर्मसे परिचित हो पाते हैं। वातावरण ही कुछ ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषित होता जा रहा है कि प्राय: सभी लोग उसी प्रवाहमें बहते जा रहे हैं। सभी अपने मनकी करनेमें लगे हैं। शास्त्रविहित मानव-धर्मको पुराना एवं रूढिवादी कहकर दुत्कार दिया जाता है। यह अध:पतनका ही मार्ग है। जितनी जल्दी हो प्रयत्नपूर्वक इससे ऊपर उठनेका प्रयत्न करना चाहिये।

३-समाज—संस्कृति कहाँ पनपती है? समाजमें। और आज धन तथा पदकी होड़में मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि उसे समाजके विषयमें सोचनेका समय ही नहीं है। वह स्वार्थसिद्धिमें स्वयंमें केन्द्रित होता जा रहा है और समाज एवं समाज-कल्याणके कार्योंसे कटता चला जा रहा है। आज वह भूल चुका है कि वह समाजका एक अभिन्न अंग है और समाजके प्रति उसकी जिम्मेदारी है। उसकी गतिविधियोंका समाजपर प्रभाव पड़ता है और समाजकी गतिविधियाँ उसे प्रभावित करती हैं। यह दो-तरफा सम्बन्ध है। ऐसे स्वार्थ-प्रधान समाजमें संस्कृतिके पनपनेका अवसर कहाँ?

४-जीवन-मूल्योंमें पतन—संस्कृतिके पतनका एक और मुख्य कारण है—जीवन-मूल्योंका पतन। जीवन-मूल्य क्या हैं? मोटे तौरपर जीवन-मूल्योंको यूँ परिभाषित किया जा सकता है—एक ऐसा जीवन जिसमें सिद्धान्त, मर्यादा, संयम और शास्त्रीय विधानको प्रधानता दी जाय। सरल शब्दोंमें माता-पिताकी सेवा करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, सत्य बोलना, अपनी बातपर अटल रहना, ईमानदारी—ये सब जीवन-मूल्य ही तो हैं। क्या आज ये आम तौरपर देखे जा सकते हैं? बिलकुल नहीं। झूठ बोलना तो जैसे हमारी आदत ही बन गयी है। धन कमानेमें आज कौन पीछे है? चाहे उसके लिये जो भी करना पड़े। परोपकार करनेमें आज सभी हिचकिचाते हैं। श्रीरामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजीने कहा है—परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। *'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई'*। महर्षि दधीचिने परोपकारकी भावनासे प्रेरित होकर ही तो अपनी अस्थियोंको वज्र बनानेके लिये इन्द्रको देकर अपने प्राणोंकी आहुति दे दी, ताकि देवता युद्धमें दैत्योंपर विजय पा सकें और इस तरहसे असत्यपर सत्यकी विजय हो सके। राजा हरिश्चन्द्र अपनी सत्यवादितासे मानवमात्रके लिये एक उदाहरण हैं। परंतु आज यह हाल है कि यदि कोई सत्यपर अटल रहनेवाला व्यक्ति दीख जाय तो लोग उसकी 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' कहकर खिल्ली उड़ाते हैं। आश्चर्यकी बात है कि हमारी अपनी संस्कृतिमें इतने उदाहरण होते हुए भी हम उनसे वञ्चित हैं और कुछ भी सीखते नहीं।

५-पद और धनकी होड़—पद और धनकी अत्यन्त लालसा तथा उसकी प्राप्तिकी होड़ आजकी शिक्षा-प्रणालीकी एक और देन है। इसने मनुष्यके मनुष्यत्वको नकारात्मक स्वरूप दिया है। आज लोग कुर्सीके दास हो गये हैं और इसे पानेके लिये गलत तरीके अपनानेमें भी नहीं झिझकते। पद, अधिकार, झूठी मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा और जनबल तथा धनबल हासिल करनेकी लालसाने मनुष्यमें ईर्ष्या, जलन, हिंसा और स्वार्थकी भावनाओंको बढ़ावा दिया है। राजनीतिके क्षेत्रमें तो यह बात घर ही कर गयी है। राजनीतिज्ञ जनताके सेवक न होकर कुर्सी और धनके सेवक-से हो गये हैं। अपने यहाँ जहाँ श्रीलोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, महामना मालवीयजी-जैसे राजनैतिक नेता हुए हैं, जो भारतके जन-जनकी आँखोंसे आँसू पोंछनेके सपनेको साकार करनेके लिये नि:स्वार्थ और अथक परिश्रम करते रहे हैं, वहीं आज स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है। ऐसी स्थितिमें संस्कृतिकी तरफ ध्यान देनेका समय ही किसके पास है? आजके दूषित वातावरणमें हमारी संस्कृतिके लिये साँस लेना भी कठिन हो गया है। यह सब देखकर बहुत निराशा होती है। परंतु हमारी सनातन संस्कृतिका मूल उत्स आज भी जीवित है। यद्यपि धर्म एवं संस्कृतिको जीवित रखनेवाले लोगोंकी संख्या नि:संदेह काफी कम हो गयी है, फिर भी आइये हम सब इस थोड़ी बची हुई सांस्कृतिक पूँजीको अपने अथक परिश्रम और लगनसे विस्तृत करें और जन-जनमें इसे बाँटनेका प्रण लें तथा विशुद्ध सदाचारमय जीवन जीनेका संकल्प ग्रहण करें। इस सत्संकल्पमें भगवान् हमारी अवश्य मदद करेंगे। हम सभी मिलकर ईश्वरसे प्रार्थना करें कि 'वे हमारी, हमारे समाजकी, हमारे बच्चोंकी और हमारे धर्म एवं संस्कृतिकी तथा मानवजातिकी रक्षा करें। संसारके सभी प्राणी सुखसे रहें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय आर्ष जीवनका ऊर्जा-स्त्रोत—गाय और पञ्चगव्य

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०, डी० एस्-सी०)

धर्मप्राण भारतके लोकजीवनमें गौ उसी प्रकार अनुस्यूत है, जिस प्रकार शरीरमें प्राण। जन्मसे मृत्युपर्यन्त कोई ऐसा कार्य नहीं, जब गौकी आवश्यकताका अनुभव न किया जाता हो। शिशुके पोषणार्थ दुग्धके लिये, विवाहके अवसरपर, लोक-परलोकके सुधारके लिये, स्वास्थ्य-लाभके लिये, बुद्धिकी शुद्धताके लिये तथा मरणकालमें वैतरणी-संतरणार्थ एवं विभिन्न अनुष्ठानोंमें पञ्चामृत अथवा पञ्चगव्यके लिये गौकी आवश्यकताकी विशेष अनुभूति की जाती है। गौकी लोकोत्तर विशेषताओंको परिलक्षित कर वैदिक वाङ्मयमें उसका मुक्तकण्ठसे गुणगान किया गया है। ऋग्वेदमें स्पष्ट-रूपसे कहा गया है कि 'गौद्वारा होनेवाले लाभोंकी गणना सम्भव ही नहीं है—**'गोस्तु मात्रा न विद्यते।'** अथर्ववेद गौकी महत्ताका निदर्शन इस प्रकार कराता है—'गौका दूध पीनेसे व्यक्ति बलिष्ठ ही नहीं बनता; बल्कि उसका मोटापा दूर होकर शरीर सुडौल बनता है—**'यूयं गावो मेदयधा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्'** (अथर्व० ४। २१। ६)। बृहत्पाराशरस्मृति (३। ३३) में गौको सर्वदेवमयी प्रतिपादित किया गया है—**'सर्वे देवाः स्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः'**। महाभारतमें गौको समस्त प्राणियोंकी माँ प्रतिपादित किया गया है—**'मातरः सर्वभूतानाम्।'** गौकी माताके रूपमें प्रतिष्ठा उसके महनीय गुणोंके कारण ही है। करुणामयी गौ वस्तुतः प्राणिमात्रकी जननी है और जननी भी ऐसी जिसकी दृष्टिमें भेद-भाव है ही नहीं।

गौसे मिलनेवाले पदार्थ मानवका कितना और किस प्रकार हित-साधन करते हैं, इसे आयुर्वेदके अध्ययनद्वारा जाना जा सकता है। भावप्रकाश-निघण्टुमें गोदुग्धकी महिमा इस प्रकार प्रतिपादित हुई है—

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः।
दोषधातुमलस्त्रोतः किंचित् क्लेदकरं गुरु॥
शीतलं स्तन्यकृत् स्निग्धं वातपित्तास्त्रनाशनम्।
जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत् सेविनां सदा॥

(दुग्धवर्ग ७-८)

अर्थात् गोदुग्ध रस और पाकमें मधुर, शीतल, दूधको बढ़ानेवाला, वात-पित्त तथा रक्त-विकारको नष्ट करनेवाला, दोष, धातुमल तथा नाड़ियोंको कुछ आर्द्र करनेवाला, भारी तथा सतत सेवन करनेवालेके समस्त रोगों और बुढ़ापेको मिटानेवाला है।

यद्यपि आजका भ्रान्त मानव गोदुग्धकी अपेक्षा महिषी-दुग्धको वरीयता देने लगा है तथापि **'सद्यः बलकरं पयः'** की अन्वर्थकता गोदुग्धमें ही है।

दुग्धकी ही भाँति गौका दही भी विशेष गुणवाला होता है। इसके सम्बन्धमें कहा गया है—

गव्यं दधि विशेषेण स्वाद्वम्लं च रुचिप्रदम्।
पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृत् पवनापहम्।
उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम्॥

(भावप्रकाश, दधि० १०)

गौका दही विशेषतः मीठा, खट्टा, रुचिकर, पवित्र, जठराग्निको बढ़ानेवाला, हृदयको प्रिय, पुष्टिकारक तथा वातनाशक होता है। अन्य सभी दुधारू पशुओंके दहीकी तुलनामें गायका दही विशेष गुणवाला है।

दहीके समान ही गायका मक्खन भी मानवके लिये हितकारी तो है ही साथ ही वह वृष्य, वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, बलकारी, अग्निदीपक, ग्राही, वात-पित्त-रक्त-विकारको मिटानेवाला तथा क्षय (टी० बी०), बवासीर, अर्दितवात (लकवा) तथा खाँसी आदि रोगोंको नष्ट करनेवाला है। इसका सेवन बाल-वृद्ध सभीके लिये हितकर है। विशेषतः शिशुओंके लिये यह अमृततुल्य होता है।

नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत्॥
संग्राहि वातपित्तासृक् क्षयार्शोऽर्दितकासहृत्।
तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः॥

(भावप्रकाश. नवनीत-वर्ग १-२)

मक्खनके समान ही गौका घी भी मानवका हित-साधक है। वेदोंमें कहा गया है—**'आयुरेवेदं घृतम्** (घी ही आयु है), **चक्षुर्दं घृतम्** (नेत्र-ज्योति बढ़ानेवाली परमौषध घी ही है)। भावप्रकाश-निघण्टुमें गोघृतके सम्बन्धमें कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत्।
स्वादुपाककरं शीतं वातपित्तकफापहम्॥
मेधालावण्यकान्त्योजस्तेजोवृद्धिकरं परम्।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु॥
बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम्।
सुगन्धं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम्॥

(घृतवर्ग ४—६)

अर्थात् गौका घृत नेत्रोंके लिये हितकारी, वृष्य (वीर्यवर्धक), अग्निदीपक, पाकमें मधुर, शीतल, त्रिदोष—वात, पित्त, कफ-नाशक, बुद्धि, लावण्य, कान्ति, ओज तथा तेजको बढ़ानेवाला, अलक्ष्मी, पाप एवं राक्षसादिको नष्ट करनेवाला, अवस्थाको स्थिर करनेवाला, भारी, बलवर्धक, पवित्र, आयुवर्धक, मङ्गलरूप, रसायन, सुगन्धयुक्त, रुचिवर्धक, सुन्दर तथा अन्य सभी घृतोंमें श्रेष्ठ है।

घीके सदृश ही गोमूत्र भी अनेक विशेषताओंसे युक्त है, जैसा कि भावप्रकाश-निघण्टुसे विदित होता है—

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम्।
लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत् कफवातहृत्॥
शूलगुल्मोदरानाहकण्ड्वक्षिमुखरोगजित्।
किलासगदवातामवस्तिरुक् कुष्ठनाशनम्।
कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत्॥
कण्डूकिलासगदशूलमुखाक्षिरोगान्
गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान्।
कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान्
गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति॥
सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम्।
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम्॥
शूलगुल्मरुजानाहकामलापाण्डुरोगहृत्।
कषायं तिक्ततीक्ष्णं च पूरणात् कर्णशूलहृत्॥

(मूत्रवर्ग १—६)

अर्थात् गौका मूत्र चरपरा, कड़वा, तीक्ष्ण, गर्म, खारा, कसैला, हल्का, अग्निदीपक, मेधाके लिये हितकारी, पित्तकारक, कफ, वात, शूल, गुल्म, उदर-रोग, आध्मान (अफारा), खुजली, नेत्र-रोग, मुखरोग, किलास (कुष्ठभेद), कोढ़, वात-रोग, वस्ति-रोग, श्वास, कास, सूजन, कामला, पाण्डु, अतिसार, क्रिमि, मूत्ररोध आदि रोगोंको नष्ट करनेवाला है। गोमूत्र अन्य सभी मूत्रोंसे श्रेष्ठ है। उपर्युक्त रोगोंके अतिरिक्त यह कर्णशूल तथा ग्रह-बाधाको भी दूर करनेमें सक्षम है।

गोमूत्रके ही समान गोमय भी विशेष महिमान्वित प्रतिपादित किया गया है। गोमय कृमिनाशक, आणव-विध्वंसक प्रभावको समाप्त करनेवाला, लक्ष्मीदायक, प्रबल उर्वरक है। आज जबकि विश्व आणविक अस्त्रोंकी होड़में संलग्न है, गोमयकी कितनी उपयोगिता और आवश्यकता है, सहज जाना जा सकता है।

गोदुग्ध, दधि, घृत, मूत्र, गोमय आदिकी इन्हीं विशेषताओंको हृदयंगमकर पञ्चगव्य-पानका विधान हमारे यहाँ किया गया है और उसके सम्बन्धमें बताया गया है कि पञ्चगव्यका पान करनेसे अस्थिमें भी यदि भक्ष्याभक्ष्य-जन्य पापरूप कीटाणु प्रविष्ट हो गये हों तो वे पञ्चगव्यके प्राशनसे इस प्रकार निर्मूल हो जाते हैं जैसे प्रचण्ड अग्निसे सूखा ईंधन—

यद्यदस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥

गायके गोबरसे लीपे गये मकानोंपर विद्युत् गिरनेकी सम्भावना बहुत कम है तथा परमाणु-बमोंके विस्फोटसे प्रभावित धूलिकण भी गोमयके सम्पर्कसे प्रभावहीन हो जाते हैं।

पञ्चगव्यके पाँचों पदार्थ किस परिमाणमें लिये जायँ इसके लिये बताया गया है—

गोमूत्रभागस्तस्यार्धं शकृत् क्षीरस्य तत् त्रयम्।
द्वयं दध्नो घृतस्यैक एकश्च कुशवारिणः॥

अर्थात् पञ्चगव्यमें एक-एक भाग घी, गोमूत्र और कुशोदक, दो भाग दही, तीन भाग दूध तथा आधा भाग गोबरका होना चाहिये।

बौधायन स्मृतिमें इन पाँचों द्रव्योंके सम्मिश्रणका विधान इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है—

गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोति वै दधि॥
शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्य त्वेति कुशोदकम्।

(बौ० स्मृ० ५।४)

अर्थात् 'गायत्री'-मन्त्रद्वारा गोमूत्रको, 'गन्धद्वारां०'मन्त्रसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदुग्धको, 'दधिक्राव्णो०' मन्त्रद्वारा गोदधिको, 'शुक्रमसि०' तथा 'ज्योतिरसि०'—इन दो मन्त्रोंद्वारा गोघृतको तथा 'देवस्य त्वा०' मन्त्रद्वारा कुशोदकको अभिमन्त्रित करके पञ्चगव्यमें मिलाना चाहिये। इस प्रकार सविधि निर्मित पञ्चगव्यके प्राशनसे आयु, बल, तेज आदिकी वृद्धि होती है और अनेकानेक रोगोंका नाश होता है।

भारतमें जबतक गो-पूजा होती रही, तबतक यहं देश ओज, तेज, बुद्धि, सम्पन्नता, वाग्मिता आदिमें अग्रणी रहा और भगवान् मनुके इस कथनको अन्वर्थक बनाता हुआ विश्वगुरु-पदपर अधिष्ठित रहा—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

परंतु जैसे ही इस पूज्य-पूजामें व्यतिक्रम आया भारत दीन-हीन, श्रीहीन ही नहीं स्वाभिमान और गौरवसे भी हीन होता चला गया और उसपर महाकवि भर्तृहरिका यह कथन पूर्णतः घटित होने लगा—

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

क्योंकि भारतीय आर्षमेधा तीनों कालोंके रहस्यसे परिचित थी, अतः गौको सर्वदेवमयी प्रतिपादित कर उसने गौको इस प्रकार धर्म और कर्मके साथ संयुक्त किया कि देवपूजन, यजन, पितृकर्म—सभीमें उसकी अनिवार्यता हो गयी। मानव गोपूजनद्वारा जीवनीय द्रव्य तो पाने ही लगा, देव-पितृकृपाका प्रसाद भी उसके लिये सुलभ हो गया। गोवत्स-वृषभको धर्मरूपमें मान्यता देकर आर्षमेधाने ऐहिक और पारलौकिक धार्मिक अनुष्ठानोंकी सम्पन्नता गौके कृपा-प्रसादपर आधृत कर मानवको उसकी सेवाके प्रति जागरूक बनाया। भारतीय आर्षमेधाने देशके कृषिकर्म-सम्पादनके लिये वृषभको ही अधिमान दिया, जिससे खेत जोतते हुए उसके गोबर और मूत्रकी खाद अनायास खेतको मिलती रहे तथा उनके द्वारा अनावश्यक हानिकर कीट-समुदाय भी विनष्ट होते रहें। आज ट्रैक्टर आदिद्वारा खेतोंकी जुताई होती है अवश्य, पर उसके तेलसे (जहाँ-जहाँ वह गिरता है) अनुर्वरता भी बढ़ती जा रही है और कुछ वर्षोंमें भूमि बंजर होकर रह जाती है। वस्तुतः गोपूजन, गोसेवा और गोरक्षण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन है।

गो-सेवा भारतीय परम्परा, संस्कृतिका अनिवार्य अङ्ग है। प्रत्येक सद्‌गृहस्थ गोग्रास देकर ही अपने मुखमें अन्न देता है। गौकी महिमाको उजागर करनेवाले कई पर्व भारतमें मनाये जाते हैं, जिनमें बहुलाचतुर्थी (भाद्रपदकृष्णा चतुर्थीको संध्या-समय सवत्सा गौका पूजन कर बहुला गायकी कथा सुनी जाती है), गो-त्रिरात्रिव्रत (भाद्रपद शुक्ल १३ से १५ पर्यन्त निष्पन्न होनेवाला व्रत, जिसमें प्रतिदिन फलाहार कर सवत्सा गौका पूजन किया जाता है तथा राजा दिलीपकी नन्दिनीकी सेवासे संतानप्राप्तिकी कथा सुनी जाती है), गोवत्स-द्वादशी (कार्तिक कृष्णा द्वादशीको दिनभर व्रत कर सायंकाल सवत्सा गौका पूजन किया जाता है), गोपाष्टमी (कार्तिक शुक्ल अष्टमीको गौओंको स्नान कराकर, अलंकृत करके उनका गोप और गोवत्ससहित पूजन किया जाता है) आदि। ये सभी पर्व गौके साथ सम्पृक्त होकर जहाँ भारतीय जन-जीवनमें गौकी महत्ताका परिचय कराते हैं, वहाँ यह भी बताते हैं कि गो-सेवाद्वारा व्यक्ति धन, पुत्र आदि ही नहीं मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है।

समष्टि-रूपमें कहा जा सकता है कि अनादि-कालसे भारतीय आर्ष जीवनका ऊर्जास्त्रोत गो-सेवा एवं गोपूजन ही रहा है और उसीके बल-बूतेपर आजतक विषम परिस्थितियोंमें भी हिन्दुत्वकी ज्योति धराधाममें अक्षुण्ण-रूपमें प्रज्वलित रही है।

घरमें दिया जलानेसे वह झरोखेमें भी प्रकाशित होता है, वैसे ही भगवान् मनमें प्रकट होते ही अन्य इन्द्रियोंमें भी भजनानन्द उत्पन्न कर देते हैं।—एकनाथजी

जो किसी भी बहानेसे—हँसीमें, दुःखमें अथवा वैसे ही भगवान्‌के नामोंका उच्चारण कर लेता है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।—श्रीचैतन्यदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ७०१ से आगे]

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

दृश्य—९

मनुष्य-योनि केवल हरि-भजनके लिये

[गिरिधर गोपालका मन्दिर। नीचे एक ओर युवराज भोजराज बैठे हैं तथा दूसरी ओर बगलमें मीराजी।]

भोजराज—*(मीरासे स्नेहपूर्वक)* अब मेरा क्या कर्तव्य है राजकुमारी?

मीरा—*(नम्रभावमें भोजराजसे)* ऐसा प्रश्न मुझसे क्यों युवराज?

भोजराज—इसलिये कि जब तुमने अपना कर्तव्य निश्चित कर ही लिया तो मेरा भी कर्तव्य निश्चित हो ही जाना चाहिये।

मीरा—आप बुद्धिमान् हैं, चतुर हैं, मेरे मनोभावसे आप परिचित हैं तथा मेरे सारे क्रियाकलाप अब आपके आगे प्रत्यक्ष ही हैं। अतएव आप ही अपना कर्तव्य निश्चित करनेमें समर्थ हैं। मेरा उत्तर तो आपको मिल ही चुका है।

भोजराज—*(मन्त्रणा-मुद्रामें)* सबको अपना लक्ष्य तो निश्चित करना ही पड़ता है, परंतु विचारोंका आदान-प्रदान करनेके पश्चात् निर्णय लेना सुलभ हो जाता है।

मीरा—युवराज! वेद, पुराण आदि—सबमें यह दरसाया गया है कि मनुष्ययोनि हरि-भजनके लिये प्राप्त हुई है। पशुयोनि और यहाँतक कि देवयोनि भी विषय-भोगके लिये हैं। मैं तो आपसे इतना ही कहूँगी कि आप भजनमें मन लगाइये और अपना जीवन सफल बनाइये।

भोजराज—राजकुमारी, तुम्हारी इच्छाएँ तो शान्त हो गयीं, परंतु मेरी·····।

मीरा—*(बात काटती हुई)* शान्त करनेसे शान्त होंगी। अभ्याससे मनुष्य क्या नहीं कर सकता?

भोजराज—अभ्यास तो बाहरका हठमात्र है। यदि मनकी चाह मरी नहीं है तो·····।

मीरा—तो प्यारे प्रभुकी चाह जगाइये। उनके नाम-गुण गाइये। आतुर-स्वरसे प्रार्थना कीजिये, सुनवाई होगी। जब उनकी कृपा होगी, तब यह चाह मरेगी और वह चाह जगेगी। अनुराग आयेगा तो वैराग्य अनायास ही आ जायगा।

भोजराज—राजकुमारी, मैं तो तुम नहीं। तुम जहाँ हो, मैं वहाँसे बहुत दूर—बहुत नीचे हूँ। मैं अपनी मनोव्यथा तुम्हें कैसे बताऊँ, कैसे समझाऊँ!

मीरा—समझती हूँ युवराज, आप दूर हैं तो मेरा गिरिधर आपको समीप कर लेगा। उनकी शरण लेनेसे जीवन सफल हो जायगा।

भोजराज—*(मुसकराते हुए)* आधा सफल तो हो ही गया।

मीरा—कैसे?

भोजराज—तुमको पाकर। तुम न मिलती तो आँखें कौन खोलता! रास्ता कौन बताता! तुम भार्या-रूपमें गुरु ही·····।

मीरा—*(बात काटते हुए)* गिरिधर गोपाल! ऐसे शब्द इस शरीरके लिये कहकर मुझे लज्जित मत कीजिये युवराज। आपने देह-सम्बन्ध त्यागकर मुझे कितना निर्भय-निश्चिन्त बना दिया है, कितना उपकार किया है, यह मेरा हृदय ही जानता है।

भोजराज—उपकार नहीं कर्तव्य निभाया राजकुमारी। हाथ पकड़नेका कुछ धर्म निभाया। पतिको केवल अपना सुख-ही-सुख नहीं देखना चाहिये।

मीरा—मैं आश्वस्त हुई युवराज।

भोजराज—राजकुमारी, मेरी इच्छा है कि तुम्हारे भजन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्संगके लिये एक विशाल मन्दिर बनवा दिया जाय। राजमहलके भीतर भजन करनेमें कुछ-न-कुछ विघ्न होता ही है।

मीरा—आपके इस उदार सेवाकार्यके लिये मैं क्या कहूँ? मेरे पास कोई शब्द नहीं है।

भोजराज—सेवा नहीं, पूज्य पिताजीकी आज्ञा है। उनकी आज्ञा है कि बहूको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये।

मीरा—आहा! पिताजीको मेरा बार-बार प्रणाम *(हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)* उनकी छत्रछायामें मुझे कष्ट-क्लेश किस बातका!

भोजराज—फिर भी कभी कुछ असुविधा हो तो अवश्य ही आदेश कर देना। तुमको किसी प्रकारकी असुविधासे पिताजीको दुःख होगा।

मीरा—अब मेरी भी एक छोटी-सी प्रार्थना है।

भोजराज—अवश्य कहो।

मीरा—बात संकोचकी है। मैं आपकी कोई सेवा नहीं कर सकी। आप दूसरा विवाह कर लें तो मुझे संतोष होगा।

भोजराज—*(गम्भीर मुद्रामें)* सोचूँगा। *(जाने लगता है।)*

मीरा—मेरे गिरिधरका एक भजन सुनकर तो जाइये।

भोजराज—अच्छा सुनाओ।

[मीरा प्रसन्न-मुद्रामें भजन गाती है]

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु आपनो न कोई॥
छाँड़ि दई कुळकि कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि लोकलाज खोई॥
चुनरीके किये टूक ओढ़ लीन्हीं लोई।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई॥
अँसुवन जळ सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आणद फल होई॥
दूधकी मथनियाँ बड़े प्रेमसे बिलोई।
माखन जब काढ़ि ळियो छाछ पिये कोई॥
भगति देखि राजी हुई जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर तारो अब मोही॥

[भोजराज गिरिधर गोपालकी ओर देखकर भक्तिमें मस्त हुआ झूमता है।]

दृश्य—१०

यातनाओंकी चर्चा

[दो व्यक्ति आपसमें बात करते हुए]

एक व्यक्ति—भाई, मीराबाईको गिरिधर गोपालका सहारा न होता तो उनका जीना दुष्कर था। सुनते हैं कि छोटी अवस्थामें ही इनके माता-पिता चल बसे। फिर पितामह और अब पति भी चल बसे।

दूसरा व्यक्ति—हाँ भाई, इतना सब सहन करनेकी शक्ति गिरिधरकी कृपाके बिना नहीं हो सकती। देखो न, राणाके सौतेले भाई विक्रमाजीत चित्तौड़के महाराणाकी गद्दी सँभालते ही मीराबाईको भाँति-भाँतिकी यातनाएँ देने लगे हैं।

पहला व्यक्ति—अरे भाई, सुना जाता है कि विक्रमाजीतने तो गिरिधरके विशाल मन्दिरको तुड़वानेतककी धमकी दी है।

दूसरा व्यक्ति—देखो भाई, यदि भगवान् भक्तोंको परीक्षारूपी अग्निमें तपाकर उनकी परख न किया करें तो पता ही कैसे चले कि यह सच्चा भक्त है। आसुरी प्रकृतिके लोग महात्माओंके धैर्य, विश्वास, प्रेम तथा महानताके परीक्षक हैं।

(क्रमशः)

जो मनुष्य परलोकको साधना न कर केवल संसारकी साधनामें ही लगा रहता है वह इस लोक और परलोकमें दुःख और नुकसान ही प्राप्त करता है।—महात्मा अबु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

किसीको दुःख पहुँचाकर सुखी मत होओ!

तुम्हारा पत्र मिला, समाचार ज्ञात हुए। इस समय प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे सारा जगत् युद्धमय हो रहा है। जहाँ शस्त्रास्त्रोंसे प्रत्यक्ष लड़ाई नहीं हो रही है, वहाँ भी आज मानवका मन, उसकी चेष्टाएँ और उसके प्रयत्न—सभी युद्धसे संश्लिष्ट हैं। तमाम वातावरण कलहपूर्ण है। ऐसी अवस्थामें यदि तुम्हारे यहाँ कलह हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर तुमको चाहिये कि तुम सदा सावधान रहो और अपने-आपको बचाये रखो। कठिन होनेपर भी बचे रहना असम्भव नहीं है। दृढ़ निश्चय और सावधानीकी आवश्यकता है।

किसीको दुःख पहुँचाकर अथवा किसीको दुःखी देखकर सुखका अनुभव करना बहुत बड़ी भूल है। मैं तो ऐसा ही मानता हूँ कि दण्डसे अपराध घटते नहीं। अपराधोंका नाश होता है हृदय-परिवर्तनसे और हृदयपरिवर्तन होता है प्रेमसे। भगवान्के नियमोंमें जो दण्ड है, वह नामसे 'दण्ड' होनेपर भी असलमें है 'प्रेम' ही; क्योंकि उसमें एकमात्र दण्डनीयके हितकी आकांक्षा है। 'भगवान्के दण्ड' का किसी अंशमें अनुमान लगाना हो तो अपनी संतानको स्नेहमयी माताके द्वारा दिये जानेवाले दण्डसे लगाना चाहिये। माताका हृदय स्नेहसे सना होता है। वह कभी बच्चोंको डाँटती-मारती है तो इसी नीयतसे कि उनका हित हो और मारनेपर जब बच्चा रोने लगता है, तब माँका हृदय भी पिघल जाता है। वह भी रोने लगती है; क्योंकि उससे बच्चेका दुःख देखा नहीं जाता। इसी प्रकार भगवान्के दण्डविधानमें भी उनका प्रेम और उनकी सहज दया भरी रहती है। यों भी कहा जा सकता है कि भगवान्के यहाँ 'दण्ड' है ही नहीं। वहाँ तो प्रेम-ही-प्रेम है, सौहार्द-ही-सौहार्द है। इसीसे भगवान्ने अपनेको प्राणीमात्रका (पापी-पुण्यात्मा, नीच-ऊँच—सभीका) 'सुहृद्' बतलाया है—'सुहृदं सर्वभूतानाम्'। अतएव दण्ड ही हो, हितकी नीयतसे होना चाहिये। हम आजकल जिसे 'दण्ड' कहते हैं, वह तो यथार्थमें द्वेषका परिणाम है। हम वस्तुतः अपराधीका सुधार नहीं करते, हम तो उसे दण्ड पाते देखकर—दुःखमें पड़े देखकर प्रसन्न होते हैं। हमें जो दूसरेके दुःखमें, उसके अहितमें प्रसन्नता होती है—यह प्रत्यक्ष विद्वेष है। द्वेष चाहता है—दुःख, कष्ट, अमङ्गल और विनाश। प्रेम चाहता है—सुख, समृद्धि, मङ्गल और जीवन! इसीसे द्वेषी मनुष्यको किसीके दुःख, अहित और विनाशमें सुख होता है और इसके विपरीत प्रेमीको किसीके सुख, उत्कर्ष, हित और जीवनमें सुख होता है। तुम प्रेमी बनो, द्वेषी नहीं। फिर किसीके द्वारा भी तुम्हारा अहित नहीं होगा और तुम्हें दुःख नहीं पहुँचेगा। क्योंकि मनुष्यको वही वस्तु अनन्तगुण होकर वापस मिलती है, जो वह देता है। एक ही बीजके असंख्य फल होते हैं।

भक्त अद्वेष्टा, मित्र और दयालु होता है

फिर जो पुरुष भगवान्की भक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसके लिये तो भगवान्की वाणीका बहुत भारी महत्त्व होना चाहिये। भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीतामें भक्तके लक्षणोंका वर्णन करते हुए सबसे पहले कहा है—

'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।'

भक्त समस्त प्राणियोंके प्रति 'अद्वेष्टा' होता है, सबका 'मित्र' होता है और जहाँ दुःख देखता है, वहाँ तो उसकी करुणाकी सरितामें बाढ़ ही आ जाती है। जहाँ व्यवहारमें 'विरोध' का अभिनय करना पड़े, वहाँ भी द्वेष तो होना ही नहीं चाहिये। द्वेषका पता लगता है परिणामसे। तुमने जिसका विरोध किया, उसका अहित होनेपर—उसपर संकट पड़नेपर यदि तुम्हें प्रसन्नता या उपेक्षा भी होती है तो समझना चाहिये कि तुम भगवत्प्रीत्यर्थ या कर्तव्यकी दृष्टिसे केवल अभिनय (एक्टिंग) नहीं कर रहे थे, तुम्हारे मनमें द्वेष था। द्वेष न होता तो तुम्हें उसके अहितमें प्रसन्नता तो होती ही नहीं, उपेक्षा भी नहीं होती। क्योंकि भक्तके नाते तुम तो उसका हित ही करना चाहते थे। किसीके अहितकी तो तुम्हारे मनमें कल्पना भी नहीं होनी चाहिये, इसीसे भगवान्ने प्राणीमात्रके साथ मैत्रीभावसे बर्तनेकी आज्ञा दी है। मित्र भी मित्रके शत्रुको शत्रु मान लेता है, इसलिये 'दयालुता' की भी आवश्यकता है। दया मित्र-शत्रुका भेद नहीं करती। वह तो ऐसी वृत्ति है जो किसीका भी दुःख नहीं सहन कर सकती। अतएव भक्तके लिये सर्वथा 'अद्वेष्टा', 'मित्र' और 'दयापरायण' होना अनिवार्य है। तुम इसी आदर्शको सामने रखकर आचरण करनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेष्टा करो, फिर कलहका तुमपर कोई प्रभाव नहीं होगा।

धन-लिप्साका परिणाम संहार

तुम्हारा यह लिखना सर्वथा सत्य है कि 'आजकल धनकी लिप्सा बहुत बढ़ गयी है और इससे मनुष्य भगवान् तथा धर्मको भूल रहे हैं।' भौतिक सभ्यतामें, जिसका लक्ष्य केवल ऐहिक सुख है, ऐसा हुआ ही करता है। गीतोक्त आसुर मानवका यही तो स्वरूप है। इसी मनोवृत्तिने लोककल्याणेच्छु विज्ञानको आज लोकसंहारमें लगा दिया है। अवश्य ही इसका अन्तिम परिणाम बुरा नहीं होगा, यह निश्चय है। यह तो समष्टि-शरीरका ऑपरेशन है, जो उसे निर्विकार—विशुद्ध करनेके लिये हो रहा है, परंतु जबतक पूरी विशुद्धि नहीं होगी, तबतक महामारी, महायुद्ध, दैवी उपद्रव, दुःख, कष्ट, संहार, नरककी यातना, आसुरी योनियोंकी पीड़ा आदिके रूपमें ऑपरेशनका काम तो चलता ही रहेगा। अवश्य ही जो व्यक्ति चक्कीकी कीलीसे चिपटे रहनेवाले अनाजके दानेकी तरह भगवान्का आश्रय पकड़ लेगा, वह इस ऑपरेशनसे बच जायगा।

धनकी दौड़में धर्मपर अविश्वास

भगवान्को प्राप्त करनेके अनेक साधन हैं—एक ही लक्ष्यतक पहुँचनेके अनेकों मार्ग हैं और अधिकारी-भेदसे उनका विभिन्न होना अनिवार्य है, परंतु सबका लक्ष्य एक 'सत्य'की प्राप्ति है। इसलिये उनमें बाहरी विरोध दीखनेपर भी असलमें कोई विरोध नहीं है। केवल साधनोंकी भिन्नता है—मार्गका भेद है। इसलिये कभी-कभी उनमें जो भ्रमवश द्वेष-सा दिखायी देता है, वह तो सत्संगादिके द्वारा भ्रमका नाश होते ही नष्ट हो जाता है, परंतु आजकलके लोगोंमें तो किसी भी धर्मपर—साधन-मार्गपर आस्था नहीं है, उनका तो लक्ष्य ही स्थिर नहीं है। उनके हृदयोंमें तो अनवरत केवल भोगोंकी—अर्थाकांक्षाकी आग धधक रही है। वे लगातार एक-दूसरेसे आगे बढ़नेमें लगे हैं और इसी दौड़में वे अपने असली लक्ष्यको भूलकर जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं। इस दौड़का ही परिणाम है भगवान्की सत्तामें अविश्वास, भगवान्की अनावश्यकताका बोध, शास्त्र और धर्मकी अवहेलना, शास्त्र और शास्त्र माननेवालोंका उपहास, सच्चे साधु-संतोंकी अवज्ञा, मनमाना आचरण, धर्मध्वजीपन!

कपट-दम्भ भी बढ़ रहे हैं

तुम्हारा यह लिखना भी ठीक है कि 'पहलेकी अपेक्षा इस समय धर्मकी चर्चा, गीताका प्रचार, हरिनाम-कीर्तन आदि बहुत बढ़ गये हैं।' यों तो गीता और हरिकीर्तनका प्रचार किसी भी नीयतसे हो, अन्तमें उसका परिणाम अच्छा ही होगा। और कलियुगमें केवल 'हरि' नाम ही जीवोंके कल्याणका एकमात्र साधन रहेगा। इसलिये युगधर्मके अनुसार भी ऐसा होना ठीक ही है। परंतु जरा गहरी नजरसे देखोगे तो पता लगेगा कि धर्म-चर्चा आदिके साथ-ही-साथ कपट, दम्भ, छल, धोखेबाजी, बेईमानी, नीच कामना और धन-मानकी दुर्जर दुराकांक्षा आदिका प्रवाह भी बहुत अधिक बढ़ गया है। कहनी और करनीमें, वाणी और हृदयमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है। स्वाँग बढ़े हैं, असलियत घटी है। सरल श्रद्धा तो मर-सी गयी है। इसीसे वास्तविक फल भी कम ही दिखायी पड़ता है। आज कहीं तो आस्तिकताके नामपर नास्तिकताका प्रचार हो रहा है और कहीं मरुभूमिकी मरीचिकाके सदृश प्रेमभक्तिके मिथ्या हाव-भाव दिखाकर सरलहृदय नर-नारियोंकी श्रद्धा-भक्तिका दुरुपयोग किया जा रहा है। सचमुच इस समय बड़ा ही दुर्दिन है।

सभीको भगवान्की आवश्यकता है

एक बात निश्चय समझ रखो कि कोई किसी भी क्षेत्रमें हो—ज्ञानी हो, भक्त हो, कर्मयोगी हो, योगी हो, वैरागी हो, धनी हो, दरिद्र हो अथवा पापी-दुराचारी हो—सबके अभीष्ट तो एकमात्र नित्य परमानन्दघन भगवान् ही हैं। इसीलिये उन रसिकशेखर प्रभुकी जबतक प्राप्ति नहीं होती, तबतक जीवको कहीं तृप्तिका बोध नहीं होता। जगत्की ऊँची-से-ऊँची स्थितिमें भी वह किसी अपूर्णताका, किसी कमीका अनुभव करता है। अनित्य और अपूर्णसे उसकी तृप्ति होती ही नहीं। इसीलिये वह सदा उससे आगे बढ़नेकी कोशिश करता रहता है। यह नित्य और पूर्ण सुख, नित्य और पूर्ण प्रेम, नित्य और पूर्ण स्वातन्त्र्य, नित्य और पूर्ण ऐश्वर्य एवं नित्य और पूर्ण जीवनकी अच्युत चाह इसी बातको सिद्ध करती है कि वह नित्य-निरंजन, पूर्ण सुखमय, प्रेममय, स्वतन्त्रतामय, ऐश्वर्यमय, अमृतमय सच्चिदानन्दघन भगवान्को ही चाहता है—चाहे वह उनका नाम-रूप वाणीसे न बता सके और अपूर्ण वाणीसे पूर्णका पूर्ण व्याख्यान हो भी नहीं सकता। इस प्रकार पूर्ण भगवान्की चाह होनेपर भी मनुष्य मोहवश भगवान्को भूलकर अनित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन, जन, तन, जमीन, मकान, पद, अधिकार, ऐश्वर्य, राज्य, वैभव, कीर्ति, यश आदिकी कामना करने लगता है और अनवरत उसकी पूर्तिके लिये प्रयत्न करता है। कामना नहीं पूर्ण होती तब दुखी होता है और कहीं पूर्ण होती है तो कामनाका क्षेत्र और बढ़ जाता है; इससे उसका अतृप्तिजन्य दुःख और भी बढ़ जाता है। संसारकी कोई भी वस्तु कामनाकी आगको बुझा नहीं सकती। कामनाके विशाल अग्निकुण्डमें ज्यों-ज्यों काम्य वस्तुकी आहुतियाँ पड़ती हैं, त्यों-ही-त्यों वह अधिक-से-अधिक भड़कती है। इस प्रकार कामनाकी आगमें जलता हुआ और लगातार निराशाके थपेड़े खाता हुआ भी प्राणी बीच-बीचमें काम्य वस्तुकी प्राप्ति होनेपर एक रसका आस्वादन करता है और मान लेता है कि इसी रसकी पूर्णतासे वह नित्य सुखी हो जायगा। इसीलिये बार-बार विषय-रसकी इच्छा करता है और उसीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहता है। यह जो अनित्य और अपूर्णकी इच्छा है, यही बन्धन है। यह बन्धन तब कटना शुरू होता है, जब अनित्य और अपूर्णकी इच्छाओंसे विरति और नित्य तथा पूर्णकी एकान्त इच्छा जाग्रत् होने लगती है। नित्य और पूर्णकी प्राप्तिके बाद फिर स्वाभाविक ही कोई इच्छा शेष नहीं रहती, न नयी ही पैदा होती है, क्योंकि पूर्णसे पूर्णताको प्राप्त पुरुषमें कभी 'अभावका भाव' और 'भावका अभाव' होता ही नहीं। वह स्वयं ही स्वरूपगत नित्य और पूर्ण हो जाता है।

यह जो नित्य और पूर्णकी अनन्य इच्छा है, यही जीव-जीवनकी अनन्य परमावश्यकता है, यही उसका परम अर्थ है, जिसके लिये वह अज्ञातरूपमें भी सदा तड़पा करता है। इस परमार्थकी सिद्धि ही परम सिद्धि है। हृदयमें जब यह आवश्यकता जाग्रत् हो जाती है, तब उसे इसको छोड़कर, जैसे डूबते हुए प्राणीको ऊपर उतरानेकी बातके सिवा कोई बात नहीं सुहाती और जैसे प्याससे मरते हुएको जलके सिवा और कोई चीज नहीं सुहाती, वैसे ही कोई भी चीज नहीं सुहाती। उसको उस समय सुख-दुःख, मित्र-शत्रु, धन-दरिद्रता, कीर्ति-अकीर्ति किसीकी भी चाह और परवा नहीं रहती। वह तो एकमात्र अपने प्राणधन—जिसके लिये उसका चित्त एकान्त व्याकुल हो उठा है, प्रेममय प्रभुके लिये तड़पता है और पछाड़ खाता है। ऐसी अवस्थामें वे नित्य-प्राप्त, नित्य-सङ्गी, नित्य-सुहृद् प्रभु उसके सामने, जैसे वह चाहता है वैसे ही, उसीके इच्छानुसार भाव-भेषमें प्रकट हो जाते हैं और उसे अपने दिव्य बाहुपाशमें बाँधकर, हृदयसे लगाकर, उसके मस्तकपर हाथ फेरकर, सिर सूँघकर, प्रेमाश्रुओंसे उसके मस्तकका अभिसिंचन कर, उसके प्रेमाश्रुवारिसे अपने चरणपद्मोंको पखरवाकर कृतार्थ कर देते हैं।

भगवान्‌का सौहार्द

भगवान् तो रोज ही आते हैं। दिन-रातमें न मालूम कितनी बार आते हैं। हमें उनकी आवश्यकता नहीं, इसीलिये हम उन्हें कह देते हैं—'फिर कभी आना, अभी फुरसत नहीं है।' भगवान् जब कभी हमारे मनमें स्मृतिके रूपमें पधारते हैं, तब हम उस स्मृतिको पकड़ क्यों नहीं रखते? इसीलिये कि हमारे सामने उस समय कोई दूसरा जरूरी काम होता है। हम उनकी अवहेलना करते हैं। वे तिरस्कृत होकर चले जाते हैं, परंतु फिर आते हैं—फिर-फिरकर आते हैं, फिर भी हम उनका आदर नहीं करते। तब भी वे तो हमें नहीं छोड़ते—नहीं छोड़ना चाहते। हमारे भूल जानेपर भी वे हमें नहीं भूल सकते। हमारे तिरस्कार करनेपर भी वे हमारा आदर ही करते हैं। हमारे छोड़नेपर भी वे हमें नहीं छोड़ते, हमारे दुत्कार कर निकाल देनेपर भी वे बार-बार आकर अपनी मधुर झाँकी दिखाना चाहते हैं। छिप-छिपकर झाँकते हैं नववधूकी तरह; व्याकुल होकर दौड़ते हैं स्नेहमयी जननीकी तरह। इसीलिये तो वे भगवान् हैं। 'भोग' हमारे बुलानेपर भी नहीं आते और हमारे न चाहनेपर भी, लाख खुशामद करनेपर भी धक्का और धोखा देकर चले जाते हैं, और 'भगवान्' बिना बुलाये ही आते हैं और न चाहनेपर भी, अपमान करनेपर भी, धक्का और धोखा देनेपर भी नहीं जाते। यह सहज कृपा-शक्ति ही—जो उनमें कभी अकृपा करनेकी ताक़त पैदा नहीं होने देती—उनकी भगवत्ता है। इतनेपर भी हम उनकी आवश्यकता महसूस नहीं करते—यह हमारा कितना अभाग्य है।

परंतु वे तो तब भी नहीं छोड़ते। जब किसी भी उपायसे हम उनकी ओर नहीं ताकते, तब कृपापरवश होकर वे दुःखके—भयानक दुःखके रूपमें हमारे सामने प्रकट होते हैं और हमारे अंदर अपनी आवश्यकता जगाकर हमें अपना लेते हैं। इसीलिये तो भक्तगण भगवान्‌से दुःखका वरदान माँगा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

बन्धन क्रियासे नहीं होता, प्रत्युत कामनासे होता है।

* * *

जैसे वैद्य जो दवा दे, उसीमें हमारा हित है, ऐसे ही भगवान् जो विधान करें, उसीमें हमारा परम हित है।

* * *

जबतक अपनेपर जड़का असर पड़े, तबतक अपनी स्थिति जड़में समझनी चाहिये, चिन्मय-तत्त्वमें नहीं।

* * *

मनुष्य प्रारब्धके अनुसार पाप-पुण्य नहीं करता; क्योंकि कर्मका फल कर्म नहीं होता, प्रत्युत भोग होता है।

* * *

जो साधन सुगम दीखे, उसे करना शुरू कर दें तो जो कठिन दीखता है, वह सुगम हो जायगा और जो समझमें नहीं आता, वह समझमें आने लग जायगा।

* * *

करणकी सहायता भले ही हो, पर करणकी अपेक्षा न हो—यह करणनिरपेक्ष साधन है।

* * *

अपना जीवन अपने लिये नहीं है, प्रत्युत दूसरोंके हितके लिये है।

* * *

जो बचपन और जवानीमें भजन नहीं करते, वे प्रायः बुढ़ापेमें भजन नहीं कर सकते।

* * *

संसार, जीव और परमात्मा—इन तीनोंको न जानना अन्धकार है। जो इस अन्धकारको मिटा दे, वह गुरु है।

* * *

जो भगवान्‌की तरफ चलनेमें बाधा पहुँचाता है, वह भगवान्‌का वैरी होता है। उसे भगवान् क्षमा नहीं करते।

* * *

स्वार्थ और अभिमानका त्याग किये बिना मनुष्य श्रेष्ठ नहीं बन सकता।

* * *

भगवन्नामका जप और कीर्तन—दोनों कलियुगसे रक्षा करके उद्धार करनेवाले हैं।

* * *

संसारकी सत्ता बाधक नहीं है, प्रत्युत उसकी महत्ताका असर बाधक है। महत्ताका असर होनेसे गुलामी आ जाती है।

* * *

भगवान्, संत-महात्मा, धर्म और शास्त्र—ये कभी किसीके विमुख नहीं होते। केवल जीव ही इनसे विमुख होता है।

* * *

भगवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी आदिको नहीं मिलते, प्रत्युत 'भक्त' को मिलते हैं।

* * *

तपस्यासे प्रेम नहीं मिलता, प्रत्युत शक्ति मिलती है। प्रेम भगवान्‌में अपनापन होनेसे मिलता है।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक अंग्रेज महानुभावकी मानवता

संवत् १९८२ की बात है। मैं मुगलसराय स्टेशनसे कलकत्ता जानेके लिये डाकगाड़ीके मध्यम श्रेणीके डिब्बेमें बैठा। उसी डिब्बेमें एक अंग्रेज सज्जन भी सवार हुए। वे मेरे पास बैठ गये। मैं उस समय झाड़-झाड़कर पगड़ी बाँध रहा था। अंग्रेज सज्जनने कहा—'यह तो बहुत अच्छी लगती है।' मैंने हँसकर कहा—'अच्छी लगती है तो आप क्यों नहीं बाँधते?'

इतना सुनते ही उन्होंने पेटी खोलकर एक फोटो निकाला। फोटो उन्हींका था। इसमें उन्होंने साफा बाँध रखा था। एक दूसरा फोटो और निकाला। उसमें इनके अपने फोटोके साथ मद्रासके गवर्नरका फोटो भी था। गवर्नर महोदयके द्वारा लिखा हुआ था—'ये सज्जन बड़े 'दानी' और 'आत्मबली' पुरुष हैं।' मैंने उनसे इसका रहस्य पूछा। तब उन्होंने अपना कोट उतारा और पतलूनके बटन खोलकर दाहिनी जाँघका वह स्थान दिखाया, जो बहुत मांसल होता है। मैंने देखा वह समूचा स्थान कटा हुआ था और उसमें गड्ढे पड़े थे।

फिर बटन बंद करके उन्होंने बतलाया कि 'एक बार मेरा स्वास्थ्य खराब था, इसलिये मैं अस्पताल गया था। वहाँ सिविलसर्जनके पास बैठा था कि इतनेमें एक भिखारी एक आठ सालकी लड़कीको लेकर आया। उसकी छाती सड़ गयी थी और वह बहुत ही दुखी थी। सिविलसर्जन महोदयने देखकर बताया कि—'इसके अच्छे होनेका एक ही उपाय है और वह यह कि कोई स्वस्थ मनुष्य अपना ताजा मांस काटकर दे और इसका सड़ा अंश निकालकर वह मांस वहाँ जोड़ दिया जाय। पर ऐसा कौन करेगा?' मैंने कहा—'सिविलसर्जन महोदय! मेरे शरीरका मांस काटकर जोड़ दिया जाय।' सिविलसर्जनने कहा—'आप नशेमें हैं क्या? इसमें कष्ट तो भयानक होगा ही, मृत्युतककी नौबत आ सकती है।' मैंने कहा—'मैं कभी नशा करता ही नहीं।' तब सिविलसर्जन महोदयने मुझे दूसरे दिन आनेको कहा। मैं दूसरे दिन पहुँचा और मांस काटकर उसके लगानेके लिये सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेकर मैंने उनको लिख दिया। तदनन्तर डॉक्टरने ५५ टुकड़े मांस काटकर लड़कीके सड़े मांसको निकालकर उस जगह जोड़ दिये। मैं बेहोश हो गया था। दो दिनके बाद मुझे होश आया। लड़की बिलकुल अच्छी हो गयी।'

मैंने उन अंग्रेज सज्जनसे पूछा कि आप क्या काम करते हैं?—उन्होंने बताया कि 'मैं हिंदुस्तान आनेवाले ईरानी लोगोंकी देख-रेख रखता हूँ। मुझे इतना वेतन मिलता है।' वेतन बड़ा था। मुझे उन्होंने बताया कि 'वे अपने लिये बहुत थोड़े पैसे खर्च करके शेष सब अस्पतालोंमें दे देते हैं। इसीसे गवर्नर महोदयने उनको 'दानी' बतलाया है और शरीरका मांस काटकर दिया था, इससे 'आत्मबली' कहा है।'

उनकी बातें सुनकर मुझे उनकी मानवताके प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। प्राचीन कालमें जो काम दधीचिने किया था, वही इन्होंने किया। तदनन्तर एक खानसामाँ खानेकी प्लेट लाया तो उन्होंने केवल चाय-बिस्कुट लेकर और चीजें लौटा दीं—कहा कि 'ये निरामिषाहारी सज्जन मेरे पास बैठे हैं—इन्हें कष्ट होगा।' धन्य!

—हरीबकस नवलगढ़िया

(२)

प्रभुकी दिव्य ज्योतिका साक्षात्कार

यह घटना सन् १९९० की है, जब मैं बालाघाट (म० प्र०) में सिंचाई-विभागमें कार्यरत था। बादमें वहाँसे मेरा स्थानान्तरण हो गया। मैं सन् १९८५ से ही उदरपीड़ासे ग्रस्त रहने लगा था। सभी जगह औषधि करानेके बाद जब कहीं लाभ नहीं मिला तो अशरणशरण प्रभुकी ओर झुका एवं प्रभुकी सुबह-शाम पूजा-उपासना करने लगा। मन्त्र आदिका ज्ञान तो था नहीं, इसलिये प्रेमसहित बिना मन्त्रों एवं बिना विधि-विधानके ही सहज भक्तिभावसे पूजा करता था। फल यह हुआ कि मुझमें कष्ट सहन करनेकी सामर्थ्य आ गयी एवं प्रभु-सेवामें अधिक आनन्द भी आने लगा। इस तरह पेटकी पीडा कुछ कम हुई, साथ ही प्रभुमें थोड़ा प्रेम भी हो गया। लेकिन कष्ट एकदम गया नहीं। मैं भगवान्से यही प्रार्थना करने लगा कि 'हे प्रभो! हे दीनानाथ! हे कृपासिन्धो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम-से-कम मुझे इतनी शक्ति अवश्य देना कि मैं जबतक आपकी सेवा करता रहूँ उतने समय कष्ट न हो, बाकी समय भले ही हो तो कोई बात नहीं।' इस तरहका मेरा भाव बन गया। कुछ दिन ऐसा ही क्रम चलता रहा। मेरे ऑफिसके लोगोंकी भी मुझमें हमदर्दी हो गयी थी, इसलिये भी मुझे ज्यादा कार्य नहीं करना पड़ता था, प्रभु-प्रेरणासे मेरा प्राय: पूरा दिन संध्या, जप, उपासना, कीर्तन इत्यादिमें बीतने लगा। इस तरह कष्ट सहन करते-करते ४ वर्ष गुजर गये।

सन् १९९० में एक दिन मुझे शामके समय पेटमें विशेष पीडा हो रही थी। मेरे पूजनका भी समय हो रहा था। मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामजी हैं। जिनकी एक बड़ी चित्रमयी मूर्ति भी मेरे पास है, जो दीवालपर जमीनसे दो फुट ऊँची टँगी रहती है। मैं इस मूर्तिके सामने बैठकर भावमग्न होकर उनके स्वरूपका ध्यान करता रहता था, किंतु तकलीफ ज्यादा होनेके कारण मेरे लिये देरतक बैठ पाना सम्भव नहीं था, अत: मैंने खड़े रहकर ही स्तुति करनेका विचार किया और मेरे मनमें पुन: वही भाव जाग्रत् हुआ कि 'प्रभो! कम-से-कम भक्तिके लिये मुझे शक्ति दो।' इस प्रकार चिन्तन करता हुआ उस मूर्तिसे ४ फुटकी दूरीपर दीवालके सहारे खड़ा होकर मैं बड़े ही आर्त-स्वरमें लय एवं भावके साथ विनयपत्रिकाका यह पद गाने लगा—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे॥

वाणीसे गान हो रहा था एवं मनमें उसी भावका चिन्तन हो रहा था कि 'हे प्रभो! कम-से-कम भक्तिके लिये शक्ति प्रदान करो।' थोड़ी ही देरमें अन्तश्चेतनामें यह भाव इतनी तीव्र गतिसे जग गया कि मैं वाणीसे पद गाना भूलकर उस भावके आवेशमें अचेत-सा हो प्रभुकी मूर्तिके सामने गिर पड़ा। मेरा सिर प्रभुकी मूर्तिके चरणोंमें जा टकराया। क्षण भरके लिये प्रकाशकी एक उज्ज्वल ज्योति-सी छिटकी और मैं पूरा उसीमें नहा गया। जब थोड़ा-सा चेत हुआ तो मैंने अपने शरीरमें बड़ी स्फूर्तिका अनुभव किया। दर्द भी प्राय: शान्त-सा हो चुका था। मैंने अपनेको सँभाला और फिर सब कुछ सामान्य हो गया था। आश्चर्य एवं विस्मित नेत्रोंसे मैं प्रभुकी ओर देखने लगा। मुझे ऐसा लगा कि मेरे रामजीकी प्रतिमा मधुर स्नेहमयी मुसकान बिखेर रही है। इस घटनाके बादसे मेरी भावना और भी दृढ़ हो गयी।

साधक बन्धुओंसे मेरा यही निवेदन है कि इस प्रेम-पथमें शुद्ध भावकी प्रमुखता है। विधि-विधानकी आवश्यकता तो है, किंतु वह भी भावना-दार्ढ्यके लिये ही। यदि भाव शुद्ध हो, प्रेम निर्मल हो तो विधिकी न्यूनता, विधिकी अज्ञानता, साधनोंकी कमी कोई महत्त्व नहीं रखती। भगवान् तो भावके भूखे हैं। भक्तके प्रेमके भूखे हैं। अत: उनकी शरण होकर प्रेमाश्रुओंसे उन्हें रिझानेका प्रयत्न करना चाहिये।

—श्रीकृष्णकुमार स्वामी

(३)

सामूहिक प्रार्थनाका प्रभाव

'प्रार्थनामें अमोघ शक्ति है'—यह बात तो हम सदासे सुनते आये हैं; किंतु इसका प्रत्यक्ष अनुभव हमने दो वर्ष-पूर्व अनुभव किया। घटनाका सम्बन्ध मेरे सबसे छोटे भतीजे निखिलसे है। सभी बच्चोंमें छोटा होनेके कारण यह परिवारभरका दुलारा है। दैवयोगसे इस बालकको तीन वर्षकी आयुसे ही चश्मा लगाना पड़ा। किंतु जब यह छ: वर्षका हुआ, तब अकस्मात् स्कूल, घर सभी जगह यह अनुभव किया जाने लगा कि इसे स्पष्ट देखनेमें दिक्कत महसूस हो रही है। अत: इसके लिये कोई उपाय करना चाहिये। मेरे भाई जो दिल्लीमें ही निवास करते हैं, बच्चेको लेकर वहाँके सुप्रसिद्ध नेत्र-विशेषज्ञके पास गये। उन्होंने अपनी सारी जाँच करनेके उपरान्त यह बताया कि 'इसकी नेत्र-ज्योति कम होती जा रही है' ऐसा सुनकर बड़ी चिन्ता हुई। जब उपाय पूछा गया तो उन्होंने कुछ निराशा-सी प्रकट की और सुझाव दिया कि 'इसे ब्रेल स्कूल (अन्ध-छात्रोंको पढ़ानेकी तकनीकवाला विद्यालय) में भरती करा दीजिये ताकि यह वहाँके वातावरणसे भली प्रकारसे सामंजस्य करना सीख ले।'

यह समाचार सुनकर पूरा परिवार स्तब्ध रह गया। कुछ देरके लिये तो लगा कि हमपर भयंकर गाज गिर गयी हो। सभीको लगा कि हम सभी नेत्रवान् रहकर क्या करेंगे, जबकि घरका सबसे छोटा सदस्य ही नेत्रहीन हो जायगा। किंतु नियति इतनी क्रूर नहीं। तभी तो इस भयंकर विपदाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय ईश्वरने हम सबको प्रेरणा की और पूरे परिवारने एक साथ संकल्प लिया कि हम सभी लोग मिलकर भगवान्‌से प्रार्थना करेंगे, प्रभु चाहेंगे तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है। ऐसा निश्चय कर हमारे परिवारके सभी सदस्योंने निखिलके दृष्टिवान् बने रहनेके लिये अपनी-अपनी ओरसे भगवान्‌की प्रार्थना प्रारम्भ कर दी। किसीने हनुमानचालीसा, गीता, दुर्गासप्तशतीके नियमित पाठका, तो किसीने '**नमः शिवाय**', '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' आदि मन्त्रोंके जापका तो किसीने व्रत आदिका आश्रय लिया। हम लोग निखिलको भी प्रार्थनामें बैठा लेते। कुछ दिन ऐसे ही बीते। हम लोगोंकी इस सामूहिक प्रार्थनाने अपना प्रभाव दिखाया। अकारण-करुणावरुणालय प्रभुने हमारी प्रार्थना सुन ली। हमलोगोंकी सामूहिक प्रार्थना एवं थोड़ेसे उपचारसे ही ऐसा लाभ हुआ कि आज निखिल कक्षा चारका छात्र है और उसकी गणना कक्षाके परम मेधावी बच्चोंमें होती है। भगवत्कृपासे न तो उसकी नेत्र-ज्योति ही क्षीण हुई और न ही उसे ब्रेल स्कूल जानेकी आवश्यकता पड़ी। यह स्पष्ट रूपसे प्रभु-प्रार्थनाका ही प्रभाव था।

—सुधासिंह

(४)

माँकी ममताका चमत्कार

घटना २ अप्रैल १९९४ की है, जब हम शैक्षणिक पर्यटन-हेतु बंबई गये हुए थे। हमारे साथ अन्य लोगोंके अतिरिक्त हमारा दौहित्र चिंटू भी था, जिसकी आयु लगभग ६ वर्ष थी। बंबईमें विभिन्न स्थलोंका अवलोकन करते हुए अपराह्णमें लगभग एक बजे हमलोग 'हैंगिंग गार्डन' पहुँचे जो 'कमला नेहरू पार्क' के पास ही था। वहाँ पहुँचकर चिंटूने पानी पीनेकी इच्छा व्यक्त की। हमलोग पानी पिलानेके उद्देश्यसे इसे अपनी पुत्री तथा दामादके सुपुर्द कर बसमें आकर बैठ गये। पानी पीकर वह वहीं पासमें लगे झूलेपर झूलने लगा। वापसीमें मेरी पुत्री और दामादको इसे साथमें लेनेका ध्यान ही नहीं रहा और वे लोग भी बसपर आ गये और वह वहीं छूट गया।

वहाँसे चलनेके पूर्व सारी सवारियोंकी गणना कर ली गयी; लेकिन दुर्भाग्यसे बच्चेका किसीको ध्यान ही नहीं रहा। हमलोग वहाँसे 'जुहू बीच' की ओर चल पड़े। जब लगभग डेढ़ घंटेकी यात्रा कर चुके, तब सहसा मेरे दामादको बच्चेका ध्यान आया। उनके मुँहसे एकाएक निकला कि अरे चिंटू कहाँ गया! कहीं दिखायी नहीं देता। बसमें उसकी तलाश की गयी, जब किसीके पास नहीं मिला तो हमें स्मरण आया कि वह तो 'कमला नेहरू पार्क' में ही छूट गया। अब तो बसमें कोहराम मच गया। रोते-पीटते हम लोगोंका बुरा हाल था। उसकी माँको काटो तो खून नहीं, वह अचेत हो गयी, उसे सँभालते हुए हम लोग इसी आशंकासे भयाक्रान्त थे कि बंबई-जैसे अथाह जनसमूहमें छूटा हुआ इतना छोटा और प्यारा-सा बच्चा कहाँ खो जायगा, कुछ पता नहीं। बस रोक दी गयी। अपनी यात्रा स्थगित कर हम चिंटूकी तलाशमें निराशा एवं आशंकाओंके भँवरमें डूबते-उतराते हुए वापस 'कमला नेहरू पार्क' की ओर चल पड़े।

इधर बड़ी ही चमत्कारिक घटना घटी। जिसका हमें बादमें पता चला। चिंटू कुछ देरतक वहाँ झूलेपर झूलता रहा, फिर जैसे ही उसे आभास हुआ कि वह तो वहाँ अकेला ही छूट गया है और सभी लोग चले गये हैं तो वह जोर-जोरसे माँ-माँ पुकारता हुआ रोने लगा। किंतु उसी समय दैवयोगसे तीन कन्याएँ जिनकी आयु लगभग १०-१५ वर्ष रही होगी, जिनके कंधोंपर झोले टँगे हुए थे, जिनमें बिस्कुट तथा टाफियाँ थीं, उसके समीप आयीं, उन्होंने उससे रोनेका कारण पूछा। चिंटूने रोते-रोते बतलाया कि वह मम्मी-पापा तथा अन्य लोगोंके साथ 'बलरामपुर' से टूरपर यहाँ आया है। किंतु उसे यहाँ अकेला छोड़कर वे सब पता नहीं कहाँ चले गये हैं। पहले तो उन कन्याओंको भी सुनकर आश्चर्य हुआ कि पता नहीं इसके माँ-बाप कैसे हैं जो वे इस प्यारे बच्चेको छोड़कर चले गये; किंतु फिर उन्हें लगा कि हो सकता है कि वे लोग जल्दबाजीमें इसे लेना भूल गये हों। जो भी हो इस बेचारेकी मदद करनी चाहिये, यह सोचकर उन्होंने उसे ढाढस दिया कि वे उसे उसके मम्मी-पापाके पास अवश्य पहुँचा देंगी। लगभग डेढ़ घंटेतक वे चिंटूको अपने स्नेह-भरे व्यवहारसे अभिभूत करती हुई—उसका मन बहलाती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी पार्कमें घूमती रहीं। उनका यह सोचना था कि जिसका भी बच्चा होगा, खोजते हुए वह जरूर यहाँ आयेगा। किंतु जब समय अधिक हो गया तो उन्होंने सोचा कि पुलिसको खबर करना ठीक रहेगा। फिर पुलिस-बूथपर उसे बैठाकर और यह कहकर कि वे उसके मम्मी-पापाको लेने जा रही हैं, वे चली गयीं।

पुलिस-बूथपर चार बजेतक हमारी प्रतीक्षा की गयी। फिर बच्चेको मलावार हिल पुलिस स्टेशन पहुँचा दिया गया। जब हमलोग उसे ढूँढ़ते हुए कमला नेहरू पार्क पहुँचे तो हमें पता चला कि चिंटू सही-सलामत है और उसे पुलिस स्टेशन पहुँचा दिया गया है। हमें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि बंबई-जैसे महानगरमें खोया हुआ हमारा बच्चा सकुशल मिल जायगा। हम लोगोंकी जान-में-जान आयी। चिंटूकी माँकी आँखोंसे खुशीके आँसू छलक पड़े। फिर क्या था, हम लोग शीघ्र ही पुलिस स्टेशन जा पहुँचे। थोड़ी-सी औपचारिकताके बाद बच्चेको हमारे सुपुर्द कर दिया गया। हम लोगोंकी खुशीका ठिकाना नहीं था। बच्चा तो माँ-बापकी गोदसे जा लगा और फिर एक बार सुख-दुःखका एक विचित्र ही अवसर उपस्थित हो गया। हमारे पर्यटक-दलके प्रत्येक सदस्यकी भाव-विह्वल आँखोंसे आँसुओंकी अविरल धारा बह रही थी। जब हम लोगोंको सारी घटना ज्ञात हुई तो सभी श्रद्धावनत हो माँके प्रति उसकी असीम अनुकम्पाके लिये आभार व्यक्त कर रहे थे, जिसने साक्षात् कन्या-रूप धारण कर हमें महान् संकट एवं विपदासे उबारा। यदि कन्याओंका रूप धारण कर माँने बच्चेको अपने संरक्षणमें न लिया होता तो निश्चय ही उसका जीवन संकटमें पड़ गया होता। माँने कन्याओंके रूपमें उसे सुरक्षा-कवच ही प्रदान नहीं किया, बल्कि उसमें असीम साहस तथा धैर्यका भी संचार किया। उसकी चेतनाको ऐसा जीवंत किया कि इतने छोटे-से बच्चेने न केवल अपना बलरामपुरका पता बल्कि बंबई जहाँ हम ठहरे थे, वहाँका भी सही विवरण प्रस्तुत कर पुलिसजनोंको भी आश्चर्यचकित कर दिया।

आज भी इस घटनाका स्मरण कर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं एवं माँके चरणोंमें श्रद्धावनत हो हमारा सिर झुक जाता है। हम माँकी असीम अनुकम्पाका गुणगान करते नहीं अघाते। यह माँकी महिमाका चमत्कार नहीं तो और क्या था!

—डॉ० सुरेशचन्द्र शर्मा

(५)

श्रीगुरु महाराजकी गो-सेवा

कुछ समय पूर्वकी बात है—पुण्यतोया नर्मदाजीके पावन तटपर शुक्ल तीर्थमें जो आजकल सोकलपुर कहलाता है एक दरिद्र तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। वे गौएँ चराकर अपना समय व्यतीत करते थे। ग्रामवासी उनके इस गो-सेवाके स्वभावसे बहुत प्रभावित थे। वे प्रेमसे गौएँ चराते और शामको ले आते। ग्रामवासी उस ब्राह्मणको कुछ देना चाहते थे, पर वे कुछ भी नहीं लेते। गौएँ जब बैठ जातीं तब ब्राह्मण भी बैठ जाते और जब गौएँ खड़ी होतीं तो वह भी खड़े हो जाते। वे सभी गौओंको पहचानते थे। उन्होंने उनके अलग-अलग नाम रख लिये थे। जब जिस गायको वे बुलाते वह उनके पास आ जाती थी। वे गौओंसे बहुत प्रेम करते थे और गौएँ भी इस वीतराग ब्राह्मणसे बहुत प्रेम करती थीं।

एक दिन ब्राह्मणने एक नयी सुन्दर गायको अपनी गायोंमें चरते हुए देखा। उसे देखकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। वे दिनभर उसी गायको देखते रहे। शामको जब सभी गायें अपने-अपने घर जा रही थीं, उस समय अचानक वह गाय नर्मदाजीमें कूद पड़ी। ब्राह्मणको गायके नर्मदाजीमें डूब जानेका बड़ा दुःख हुआ, चिन्तामग्न वे रात्रिभर जागते ही रहे, पर दूसरे दिन उन्होंने देखा कि वह गाय फिर आ गयी है। ब्राह्मणके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने गायका पीछा किया, वे गायके साथ-साथ जहाँ वह जाती वहाँ जाने लगे। जब वह गाय नर्मदाजीमें कूदने लगी, तब ब्राह्मणने उस गायकी पूँछ पकड़ ली। गायके साथ वे एक ऐसे स्थानपर पहुँचे जहाँ एक देवी सिंहासनपर बैठी हुई थीं और बहुत-सी सखियाँ उस देवीकी सेवा कर रही थीं। ब्राह्मण गौकी पूँछ छोड़कर उस देवीके चरणोंमें गिर पड़े, वे साक्षात् नर्मदादेवी थीं। नर्मदादेवीने ब्राह्मणको वरदान देते हुए उन्हें वाक्-सिद्धि प्रदान की। प्रसन्न होकर वे उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायकी पूँछ पकड़कर जलसे बाहर निकल आये।

गो-सेवा और नर्मदाजीके आशीर्वादके कारण वे ही ब्राह्मण 'गुरु महाराज'के नामसे प्रसिद्ध हुए। वरदान-प्राप्तिके बाद भी वे गो-सेवा कर अपना समय व्यतीत करते रहे। आस-पास उनकी वाक्-सिद्धिकी चर्चाएँ होने लगीं। हजारों आदमी उनके दर्शनोंको आते और अपनी अभिलाषाएँ पूरी करते। उनके निवास-स्थानके पास ही दिछावन ग्राममें मुरलीधर नामके एक पटवारी रहते थे। वे अपनी पत्नीका देहावसान हो जानेके कारण अपने बच्चोंको घरपर छोड़कर सत्संगके लिये गुरु महाराजके पास आते थे। पर बच्चोंकी चिन्ताके कारण वे जल्दी चले जाते थे।

एक दिन गुरु महाराजने उन्हें अपने बच्चोंको साथ लानेका आदेश दिया और तब वे सात वर्षकी बच्ची तथा पाँच वर्षके बच्चेको लेकर गुरु महाराजकी सेवामें उपस्थित हुए। पर उन्हें आश्चर्य हुआ कि गुरु महाराज सात वर्षीय बालिका देखकर आनन्द-विभोर हो गये। बच्चीका नाम गोपी था। बच्चेको शिवप्रसाद कहते थे। गुरु महाराजने मुरलीधरसे कहा कि 'तुम्हारी बच्ची एक जीवन्मुक्तकी माँ बनेगी। यह गो-सेवाके बलपर कृष्णके साक्षात् दर्शन प्राप्तकर गोलोकवास करेगी।' पटवारीजीको गुरु महाराजके शब्दोंपर पूर्ण भरोसा था। समय आनेपर उस बालिकाका विवाह भगवद्भक्त बारीबाईकी विधवा पुत्री गिरजाबाईके इकलौते पुत्रसे हो गया। साधु-वचनके अनुसार गोपी-बाईकी दिनचर्यामें प्रातःकाल उठकर गौको प्रणाम करना, उसे भोजन देना और उसकी परिक्रमा करना सम्मिलित था। नौकरोंके होते हुए भी वह गौका गोबर स्वयं उठाती। उसके पति हनुमान्जीके अनन्य भक्त थे। उन्होंने हनुमान्जीका मन्दिर बजरंगबलीकी आज्ञासे बनवाया था, जो अठ्ठायसा ग्राममें स्थित है। अन्तिम समयमें उन्होंने अपने पुत्रको प्रत्यक्षरूपमें हनुमान्जीके कर-कमलोंमें सौंपकर यह लौकिक जीवन-यात्रा समाप्त की। गोपीबाई भी गुरु महाराजकी वाणीको सत्य करते हुए कृष्ण नाम लेते हुए गो-लोक पधारी।

गुरु महाराजकी गोसेवाके प्रभावसे अलौकिक सिद्धि प्राप्त करनेकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। आज भी चैत्र सुदी दशमीको उनकी समाधिपर लाखों श्रद्धालु एकत्रित होते हैं। गुरु महाराजकी जय-जयकारसे आज भी उनकी समाधि गूँजती रहती है। यह स्थान मध्यप्रदेशमें नरसिंहपुर जिलेमें स्थित है।

—कु० अनुभूति श्रीवास्तव

(६)

वह ग्वाला कौन था?

व्रज-क्षेत्रमें मनायी जानेवाली होलीका आनन्द लेनेके लिये मैं अपने कुछ मित्रोंके साथ वृन्दावन, मथुरा, बरसाना तथा नन्दगाँव गया था। हमलोगोंने प्रथम तो गोवर्धन महाराजकी सातकोसी परिक्रमा लगायी, तत्पश्चात् हम मानसी गङ्गामें स्नान करने गये। मेरे मित्र तैरना जानते थे, अतः वे नदीमें कूदकर स्नान करने लगे, परंतु मैं तैरना नहीं जानता था, अतः किनारेपर ही बैठकर नहाने लगा। इतनेमें ही दो छोटी बच्चियाँ जिनकी उम्र लगभग १०-१२ सालकी रही होगी, वहाँ आकर मानसी गङ्गामें तैरकर स्नान करने लगीं। मैंने अपने मनमें सोचा कि 'मैं इतना बड़ा हूँ और ये लड़कियाँ इतनी छोटी हैं, क्या मैं इनके-जैसा तैर भी नहीं सकता।' यह सोचकर मैं उनकी देखा-देखी थोड़ा-सा अंदर पानीमें उतरा ही था कि एकदम मेरा पैर 'हाथी-डुबाऊ' पानीमें चला गया और मैं असहाय-अवस्थामें लगभग एक मिनटतक ऊपर-नीचे गोते खाता रहा। मेरे सभी मित्र दूर थे, अतः इस बातको कोई जान नहीं पाया। मेरा शरीर कभी ऊपर आता और कभी नीचे जाता। केवल मेरा थोड़ा-सा हाथ ही पानीसे ऊपर आता था। मेरा दम घुटने लगा। मैं वैसे ही छटपटाता रहा। कोई आधार, कोई सहारा भी मुझे नहीं मिल पा रहा था। मुझे लगा कि अब आज बचना मुश्किल है। घबराहटके मारे मैं न चिल्ला पा रहा था न मुझमें कोई बल ही रह गया था। इस व्याकुलताकी स्थितिमें भी मुझे यह अनुभव होने लगा कि सर्वजगत्के प्राणाधार कन्हैयाको छोड़कर और कोई मुझे बचा नहीं सकता। मैं तो हताश ही था। प्राण तब गये अब गयेकी स्थिति हो चुकी थी, पर उसी क्षण एक व्यक्ति तपाकसे पानीमें कूदा और मेरा हाथ पकड़कर मुझे मानसी गङ्गासे बाहर खींच ले आया। थोड़ा होश आनेपर मैंने देखा कि पगड़ी बाँधे हुए एक सुन्दर बालक ग्वालेके वेषमें मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरपर हाथ रखकर मुझे सहला रहा है। वह लगभग १०-१२ सालका रहा होगा। मेरी आँखें पुनः बंद हो गयीं। मैं यह सोचने लगा कि मेरे प्राणोंकी रक्षा तो आज कन्हैयाने ही की है। नहीं तो यह अद्भुत बालक कौन है, जिसने मुझ डूबते हुएको बचाया। अबतक मैं कुछ स्वस्थ भी हो गया था। मैंने उससे बात करनेके लिये अपने नेत्र खोले, पर वह तो दिखायी ही नहीं दिया, जैसे मानो वह उसी क्षण अन्तर्धान हो गया। मैंने चिल्लाना शुरू किया, थोड़ी ही देरमें वहाँ अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी, मेरे साथी भी आ पहुँचे। किंतु मेरी आँखें तो उसी बालकको खोज रही थीं। मुझे यह निश्चित-सा हो रहा था कि ग्वालेके वेषमें आकर कन्हैया नटवरने ही मेरे प्राण बचाये हैं। मेरी आँखें छलक उठीं और मेरा मन श्रद्धासे अवनत हो गया।

—प्यारेलाल शर्मा

मनन करने योग्य

मानवताके स्वर्णकण

सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र-संत एकनाथ महान् ज्ञानी तथा भगवद्भक्त थे। वे सगुण-निर्गुण उभयविध साक्षात्कारसे सम्पन्न थे। गुरु-आज्ञाका पालन करनेके लिये उन्होंने गृहस्थाश्रमको स्वीकार किया और उसे हर तरहसे आदर्श बनाया। उनकी स्थितप्रज्ञता एवं भागवतोत्तम स्थितिकी निदर्शक अनेक कथाएँ महाराष्ट्रके घर-घरमें प्रचलित हैं। इनमेंसे कुछ कथाएँ हम नीचे उपस्थित करते हैं।

(१) गरमीके दिन थे। वैशाख मास था, मध्याह्नका समय था, भगवान् भास्कर अपनी प्रचण्ड किरणोंसे अवनीतलको प्रतप्त कर रहे थे, ऐसे समय संत एकनाथ स्नान-संध्यादिकी सामग्री लिये हुए नंगे पैरों नदीकी ओर चले जा रहे थे। मुखसे स्तोत्रादिका पाठ तथा भगवन्नाम-संकीर्तन चल रहा था, सहसा मार्गमें आपको एक बड़ा ही करुण दृश्य दिखायी दिया। एक अन्त्यज स्त्री पानी भरने जा रही थी, पैर जल रहे थे, इसलिये वह द्रुतगतिसे घरसे निकलकर नदीकी ओर चल दी। चुपकेसे उसका बच्चा भी उसके पीछे हो लिया। इस बातका उस स्त्रीको पता न चला। बच्चा कुछ दूर तो माँ-माँ कहकर दौड़ता गया। किंतु उस प्रचण्ड गरमीमें भला वह किस प्रकार अपनी माताको पकड़ पाता? तप्त-बालुकामय मार्ग अपनी दाहकतामें अग्निकी स्पर्धा कर रहा था। बच्चा थोड़ी दूर चलकर गिर पड़ा और लगा तड़फड़ाने। उसके मुँहसे लार बह रही थी और नाकसे मैल, वह न तो आगे जा सकता था, न पीछे। महात्मा एकनाथका संत-हृदय इस दृश्यको देखकर द्रवित हो उठा। बिना किसी संकोचके उन्होंने उस घिनौने अन्त्यज

बालकको अपनी गोदमें उठा लिया। उसकी नाक तथा मुँह अपने अँगोछेसे साफ किये और अपने उत्तरीयसे ढँककर उसे अन्त्यजोंकी बस्तीमें ले गये। बालकका पिता यह दृश्य देखकर घरमेंसे दौड़ता हुआ बाहर आया। पीछेसे बालककी माता भी पानी लेकर आ पहुँची और संत एकनाथके रूपमें मूर्तिमती मानवताके दर्शन करके कृतार्थ हुई। संत एकनाथने बच्चोंके विषयमें अधिक सावधानी रखनेकी प्रेमपूर्ण सूचना दी और भगवन्नामका स्मरण करते हुए गङ्गास्नानार्थ चल दिये।

(२) एक समय संत एकनाथ तीर्थयात्रा कर रहे थे। साथमें त्रिवेणीसे गङ्गाजलकी काँवर भरकर रामेश्वर भगवान्को चढ़ानेके हेतु लिये हुए थे। मार्ग आक्रमण करते-करते रामेश्वरके प्रायः समीप आ पहुँचे थे। काँवरके सहित संत एकनाथ मुँहसे भगवन्नामका घोष करते हुए आगे-आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले जा रहे थे। साथी लोग कुछ पिछड़-से गये थे। इतनेमें संत एकनाथने देखा कि एक गधा प्याससे व्याकुल होकर तप्त-बालुकामें बुरी तरह तड़फ रहा है। भूतमात्रमें भगवान्‌के दर्शन करनेवाले महात्मा एकनाथका कोमल हृदय इस दृश्यसे द्रवित हो गया और निःसंकोच-भावसे उन्होंने काँवरके गङ्गाजलद्वारा उसकी तृप्ति की। पेटमें पानी पहुँचते

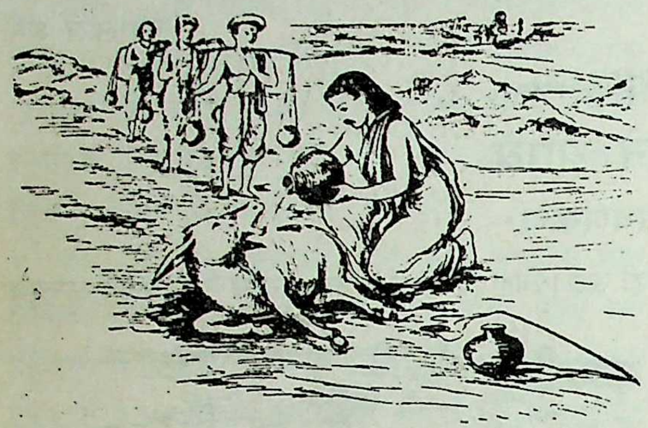

ही गधेको नवजीवन प्राप्त हो गया और वह उठकर टीभोंकी हर्षध्वनि करता हुआ चल दिया। पीछेसे आ रहे एकनाथजीके साथियोंने यह सब दृश्य दूरसे ही देख लिया और वे जल गये। समीप आकर एकनाथजीसे कहा—'यात्रा व्यर्थ गयी। कारण, गधेका उच्छिष्ट गङ्गाजल रामेश्वर भगवान्‌को चढ़ानेके योग्य न रहा।' महात्मा एकनाथने धीर-गम्भीर भावसे कहा—'जिस कारण तुमलोग यात्राको निष्फल समझ रहे हो, उसी कारण वह अधिक सफल हुई है। चराचरमें, अणु-अणुमें व्याप्त भगवान् रामेश्वरने जरा जल्दीमें आकर रास्तेमें ही हमारी सेवा स्वीकार कर ली।' इन रहस्यभरे शब्दोंको सुनकर सब बड़े संतुष्ट तथा प्रसन्न हुए।

(३) श्रीसंत एकनाथकी साधुता, परोपकार तथा शान्ति इत्यादिमें प्रकट होनेवाली दैवी सम्पत्तिकी ख्याति सर्वत्र फैल रही थी, इस बातसे कुछ स्वार्थी तथा ईर्ष्यालु लोग जलने लगे। एक बार एक गरीब ब्राह्मण अपनी कन्याके विवाहके लिये धनकी याचना करते हुए वहाँ आ पहुँचा और पहले इन्हीं लोगोंके सम्पर्कमें आया। इन्होंने उससे कहा कि हम तुम्हें दो सौ रुपये इनाम देंगे, बशर्ते तुम एकनाथकी शान्ति भङ्ग करके उन्हें क्रोधापन्न कर सको। ब्राह्मणने इसे आसान बात समझकर इस चुनौतीको स्वीकार किया। महात्मा एकनाथके मकानमें पहुँचकर वह ब्राह्मण उसी अवस्थामें, कपड़े-जूते पहने अपने सामानके साथ सीधा एकनाथके पूजामन्दिरमें चला गया और उसी वेशमें जाकर एकनाथकी जंघापर उसने अपना आसन जमा दिया। कोई भी व्यक्ति एक अपरिचितके इस प्रकारके व्यवहारसे क्रोधित हो उठता, किंतु एकनाथ कोई साधारण व्यक्ति थोड़े ही थे! उन्होंने उस ब्राह्मणको प्रेमपूर्वक आलिंगन दिया और कहा—'आपका मेरे प्रति प्रेमभाव लोकविलक्षण है! सच्चा प्रेम किसी प्रकारकी मर्यादाको नहीं मानता! यही तो सच्चे प्रेमका लक्षण है।' इन शब्दोंके साथ महात्मा एकनाथने उस ब्राह्मणके रहने तथा स्नानादिकी समुचित व्यवस्था की। उनके लिये वह अतिथिदेव था। ब्राह्मण इस शान्तिपूर्ण व्यवहारसे खिन्न हुआ, किंतु निराश न हुआ। उसने संत एकनाथको क्रोधाविष्ट करनेकी ठान ली और योग्य अवसरकी बाट जोहने लगा। उसने मनमें निश्चय कर लिया कि साधारण-सी बातोंद्वारा वह संत एकनाथकी शान्ति भङ्ग नहीं कर सकता। इसलिये उसने एक अन्तिम रामबाण उपायकी योजना कर ली। भोजनका समय हुआ। ब्राह्मणदेवता आसनपर जा विराजे। एकनाथजीकी साध्वी एवं सुयोग्य पत्नी परोसगारी करने लगीं। जैसे ही वह ब्राह्मणदेवताकी थालीमें चीजें परोसनेके लिये झुकीं, वैसे ही ब्राह्मणदेवता उचककर उनकी पीठपर जा विराजे। पास ही बैठे हुए संत एकनाथने अपनी पत्नीसे कहा—'सावधान! कहीं ब्राह्मण गिरकर चोट न खा ले।' पत्नीने कहा—'मुझे मेरे पुत्र हरिपण्डितको पीठपर बैठालकर काम करनेका पूरा-पूरा अभ्यास है। आप निश्चिन्त रहें। मैं अपने इस बालकको भी गिरने नहीं दूँगी।' ये शब्द सुनकर ब्राह्मणदेवता लज्जित हुए तथा संत एकनाथके पैरोंपर गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। साथ ही अपने असभ्य व्यवहारका सच्चा कारण भी बतलाया और इनामके रुपये खोनेके कारण दुःख भी प्रकट किया। एकनाथने यह सब सुनकर कहा—'आपने मुझसे यह सब पहले क्यों नहीं कहा? मेरे क्रोधसे यदि आपको लाभ होता, मैं अवश्य क्रोध प्रकट करता।' उस ब्राह्मणकी कन्याके विवाहार्थ एकनाथजीने पर्याप्तरूपमें आर्थिक सहायता भी दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत समयसे अप्राप्य, अब पुनर्मुद्रित

जैमिनीयाश्वमेधपर्व—प्रस्तुत ग्रन्थके विषयमें प्रचलित है कि महर्षि व्यासदेवके सदृश महर्षि जैमिनिने भी एक विशालकाय 'महाभारत' की रचना की थी, जो जैमिनीय महाभारतके नामसे प्रसिद्ध है। आज उसका एकमात्र 'आश्वमेधिकपर्व' ही हमारे बीच सुलभ है। यह महर्षि व्यासदेवकृत-आश्वमेधिकपर्वसे बड़ा है। इसके १२ अध्यायोंमें पद्मपुराण-पातालखण्डोक्त 'श्रीरामाश्वमेध' का दिग्दर्शन भी विशेषरूपसे सम्मिलित है। इसमें लगभग ४,००० श्लोक तथा अनेक सदुपदेशमयी सूक्तियाँ भी स्थान-स्थानपर भरी हैं। भीमसेनके अन्तःप्रेम तथा बाह्यक्रोध, भक्त सुधन्वा, मयूरध्वज, ताम्रध्वज, चन्द्रहास एवं अर्जुनकी यात्रा आदि कथाएँ बड़ी रोचक, भक्ति-प्रेमपूर्ण, सरस तथा अत्यन्त आकर्षक हैं। सजिल्द, मूल्य रु० ५०.००, डाकखर्च रु० १६.०० (रजिस्ट्रीसे) अतिरिक्त।

विवेकचूडामणि—(सरल हिन्दी-अनुवादसहित) श्रीमच्छंकराचार्यविरचित इस पुस्तकमें मुमुक्षु पुरुषोंके लिये बड़ी उपयोगी और सर्वसाधारणजनोंके लिये ज्ञानप्रद, साधनोपयोगी श्रेष्ठ सामग्री है। ग्रन्थके अन्तमें 'भगवान् शंकराचार्य और विवेकचूडामणि'—एक विशेष लेख है, जो श्रीशंकराचार्यजीके जीवन-परिचय, सिद्धान्तादिके सहित ग्रन्थके विषयमें भी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी मार्ग-दर्शन प्रस्तुत करता है। पृष्ठ-संख्या १५४, रंगीन चित्रावरण, मूल्य रु० ८.००, डाकखर्च रु० २.०० अतिरिक्त।

गोसेवाके चमत्कार—बहुत दिनों पहले समाप्त हुई, अब जनहितमें पुनर्मुद्रित इस पुस्तकमें गो-महिमा और गो-सेवासे सम्बन्धित (पूर्वमें 'कल्याण' में प्रकाशित) सच्ची और प्रेरणादायी अनेक घटनाओंका संकलन है। गोसेवा-विषयक दिव्य चमत्कारोंका परिचय करानेवाली इसकी सामग्री कल्याणकारी एवं प्रेरणाप्रद होनेसे अवश्य पठनीय है। सुन्दर आकर्षक चित्रावरण, मूल्य रु० ५.००, डाकव्यय रु० ३.०० अतिरिक्त।

नये प्रकाशन

हिन्दी

श्रीमद्भगवद्गीता—पॉकेट साइज़ (सजिल्द) इसमें गीताके मूल पाठ-सहित सरल हिन्दी-भावार्थ है। गीताजीकी महिमा एवं गीताके प्रधान विषयपर ज्ञानप्रद अतिरिक्त जानकारीके साथ इसमें 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति'—एक मार्मिक तथा अवश्य पठनीय विशेष लेख भी है। सुन्दर आकर्षक चित्रावरण और बहुत अच्छी मजबूत जिल्द। मूल्य रु० ६.००, डाकव्यय रु० ३.०० अतिरिक्त।

बालपोथी-शिशुपाठ—सचित्र, रंगीन आकर्षक गेटअप, छोटे बालकोंको अक्षर-ज्ञानके साथ आदर्श विचार, सदाचार तथा सुसंस्कार सिखानेवाली सरल पाठ्य-सामग्री। लेमीनेशनयुक्त आकर्षक रंगीन आवरण-पृष्ठ। मूल्य रु० २.५०, डाकखर्च रु० २.०० अतिरिक्त।

तेलगू

भगवान् श्रीकृष्ण—(प्रथम बार तेलगूमें अनुवादित) हिन्दीमें इसी नामसे प्रकाशित पुस्तकका यह सरल तेलगू-अनुवाद तेलगू भाषा-भाषियों एवं बहुभाषा-ज्ञान रखनेवाले महानुभावों—विशेषतः बालकोंके लिये यह ज्ञानप्रद, उपयोगी सामग्री है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी आदिसे अन्ततककी लीलाओंका सरल, मनोहारी तथा शिक्षाप्रद चित्रण है। बहुरंगा आकर्षक चित्रावरण, मूल्य रु० ४.००, डाकव्यय रु० २.०० अतिरिक्त।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजीकृत संख्या — जी०आर ० — १३

प्र०ति० २०-७-९५

॥ श्रीहरि: ॥

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपयोगी विशेषाङ्क

शिवाङ्क— 'कल्याण'-वर्ष ८, सन् १९३४ ई० में प्रकाशित इस विशेषाङ्कका पुनर्मुद्रण किया गया है। यह ग्रन्थ शिव-तत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक ज्ञानप्रद मार्गदर्शन कराता है। इसमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैवतीर्थोंके प्रामाणिक वर्णनसहित शिव-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विचार एवं खोजपूर्ण पठनीय लेख हैं। सजिल्द, मूल्य रु० ८०.००, डाकव्यय रु० १७.०० (रजिस्ट्रीसे) अलग।

तीर्थाङ्क— 'कल्याण'-वर्ष ३१, सन् १९५७ ई० में प्रकाशित इस विशेषाङ्कका पुनर्मुद्रण श्रद्धालुओं तथा जिज्ञासुओंकी विशेष माँगको दृष्टिगत रखते हुए किया गया है। इसमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्गदर्शन—अध्ययनका विषय है। इसमें विधिसहित देव-पूजन, तीर्थोंमें पालन करने योग्य तथा त्यागने योग्य बातोंका भी उल्लेख है। भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका अनुसंधानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो सभी तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये वर्तमान समयमें आवागमनके साधनोंमें परिवर्तन हो जानेके बाद भी उपादेय एवं संग्रहणीय है। सजिल्द, मूल्य रु० ८५.००, डाकव्यय १७.०० (रजिस्ट्रीसे) अलग।

संक्षिप्त नारद-विष्णु-पुराणाङ्क— 'कल्याण'-वर्ष २८, सन् १९५४ ई० में प्रकाशित यह विशेषाङ्क 'नारदपुराण' एवं 'विष्णुपुराण' का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर है। इसमें 'नारदपुराण' के पुराणोचित महत्त्वपूर्ण प्रसंगोंके साथ, वेदके छहों अङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द) का बड़ा विशद, महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। इसके अतिरिक्त भगवान्‌की सकाम उपासनापर भी इसमें विस्तृत विवेचन है।

'विष्णुपुराण' के महत्त्वपूर्ण विषयोंमें—भगवान् विष्णुकी महिमा, जगत्‌की उत्पत्ति, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार, ध्रुव-आख्यान, प्रह्लाद-चरित, भगवान् श्रीकृष्णके विविध मनोरम लीला-चरित्रोंसहित चातुर्वर्ण्य-धर्म-वर्णन, गृहस्थोंके सदाचार, श्राद्ध-विधि, जातकर्म, उपनयन आदि संस्कारोंका ज्ञानवर्धक और रोचक वर्णन विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार दो अति महत्त्वपूर्ण पुराणोंकी उपलब्धता इस एकमें ही सुलभ है। सजिल्द, मूल्य रु० ८०.००, डाकव्यय रु० १७.०० (रजिस्ट्रीसे) अलग।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

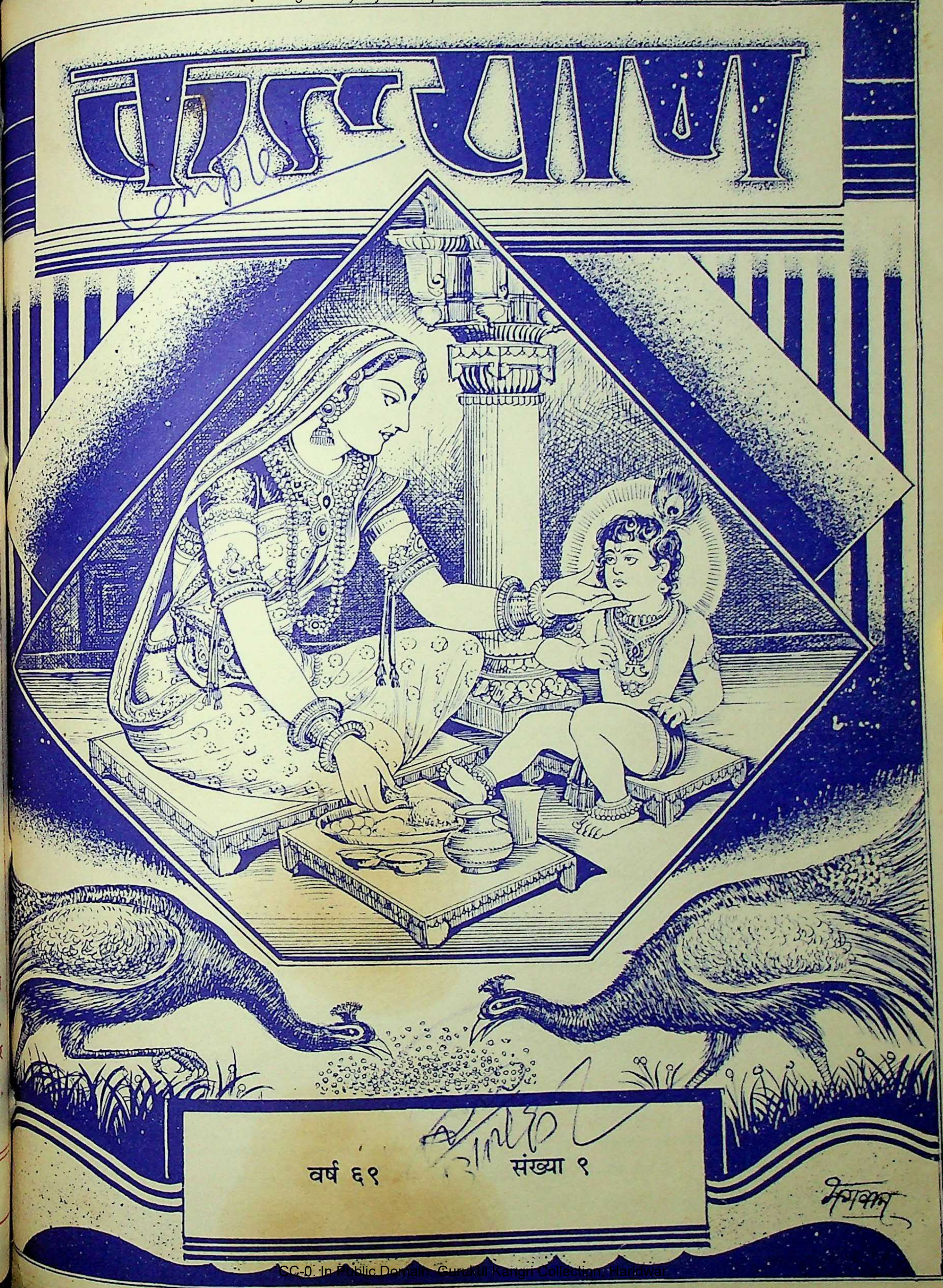

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, सितम्बर १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-त्रिशक्ति-तत्त्वकी अभिव्यक्ति	७५९
२-कल्याण (शिव)	७६०
३-कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्	७६१
४-गोसेवाकी प्रेरणा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७६२
५-गौ माताके रोम-रोममें देव वास करते हैं [कविता] (प्रो० श्रीवागीशजी 'दिनकर')	७६६
६-सारा विश्व ब्रह्मरूप है (गोलोकवासी परमभागवत पं० श्रीरामचन्द्रडोंगरेजी महाराज)	७६७
७-श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म भगवान् हैं (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७६९
८-भक्तिके अन्तराय (डॉ० श्रीशम्भुशरणजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	७७२
९-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७७५
१०-समस्त प्राणियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो?	७८०
११-प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद (श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)	७८२
१२-हरिर्हरति पापानि (पं० श्रीहरिचरणशरणदासजी)	७८४
१३-परदोष-दर्शन (डॉ० श्रीबद्रीप्रसादजी गुप्ता)	७८५
१४-पतित-पावन श्रीराम ('मानसरत्न' संत श्रीसीतारामदासजी)	७८७
१५-लाइये, मेरा इनाम! (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)	७८८
१६-गोदुग्धमें स्वर्ण-ही-स्वर्ण (श्रीनरपतसिंहजी)	७९१
१७-यहूदी और ईसाइयोंमें गौका आदर	७९१
१८-अमेरिका और गो-जाति	७९२
१९-साधनोपयोगी पत्र	७९४
२०-व्यावहारिक प्रश्नोंके उत्तर [प्रे० श्रीदशरथकुमार लाठ]	७९६
२१-*भक्त-गाथा*—भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी)	७९७
२२-अमृत-बिन्दु	७९८
२३-पढ़ो, समझो और करो	७९९
२४-मनन करने योग्य	८०३
२५-अपने बच्चोंको बचाइये—अभक्ष्य-भक्षणसे (राधेश्याम खेमका)	८०५

चित्र-सूची

१-यशोदाका बालकृष्णको भोजन कराना	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-त्रिशक्ति-तत्त्व	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिशक्ति-तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

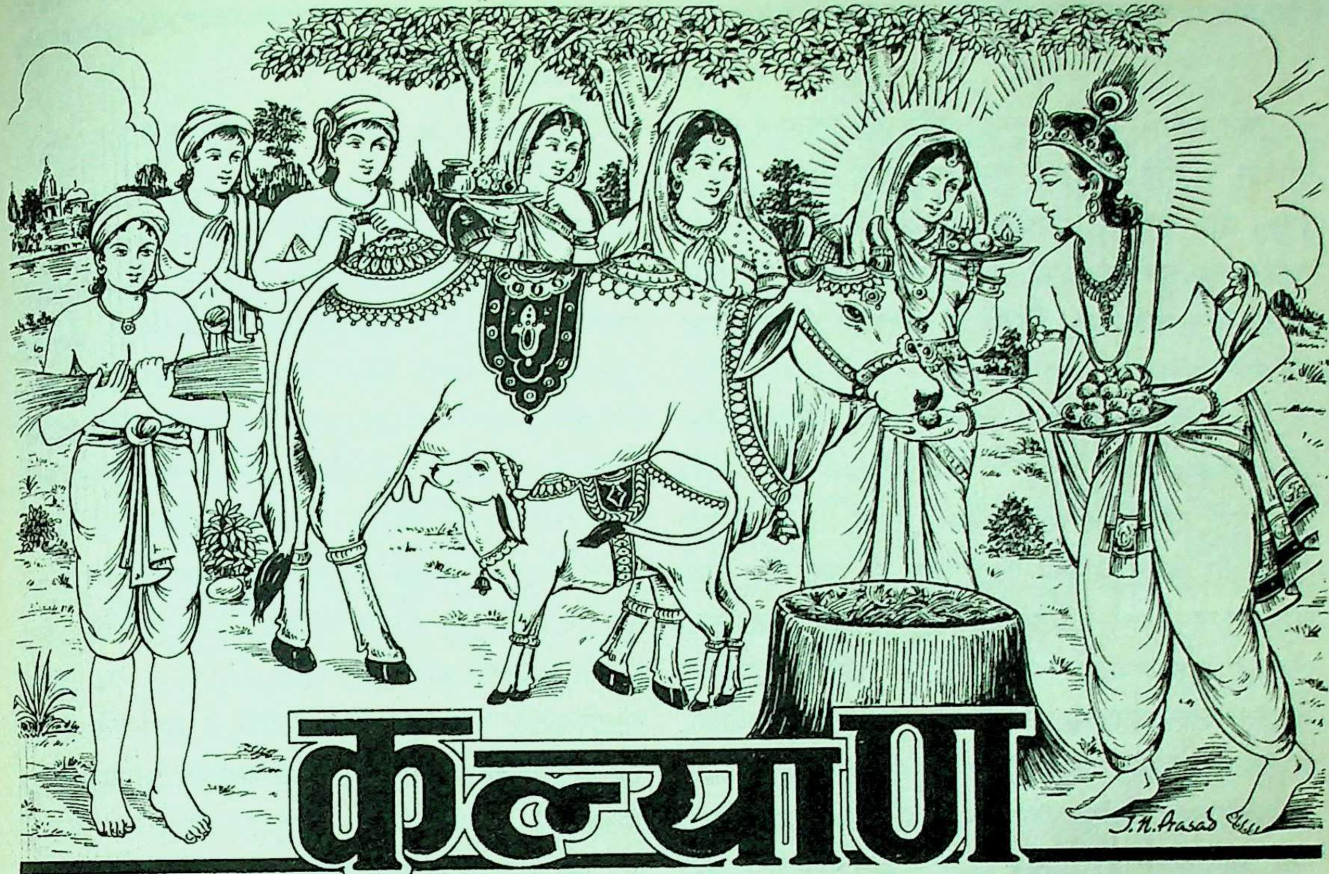

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ } गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, सितम्बर १९९५ ई० { संख्या ९ पूर्ण संख्या ८२६

त्रिशक्ति-तत्त्वकी अभिव्यक्ति

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती॥

(आचार्य शंकरकृत सौन्दर्यलहरी—३)

देवि! आप एक होती हुई भी तीन रूपोंमें विभक्त होकर त्रिशक्ति-तत्त्वके रूपमें अभिव्यक्त एवं प्रतिष्ठित हैं। अविद्या—अन्तस्तलके अज्ञानान्धकारको दूर करनेके लिये आप मानो सूर्यद्वीपोंकी नगरी-स्वरूपा विज्ञानप्रकाशिका ब्राह्मी (सरस्वती) देवी हैं और जड प्राणियोंमें चैतन्यशक्ति-स्तबक (पुष्पगुच्छों)-के मकरन्दस्रोतका संचार करनेवाली रौद्रीशक्ति—महाकाली भी आप ही हैं। इसी प्रकार जन्म-मरणरूप संसारसमुद्रमें निमग्न दारिद्र्यग्रस्त प्राणियोंको उबारनेवाली भगवान् वराहकी दाढ़-सी चिन्तामणियोंकी माला-स्वरूपा वैष्णवी देवी—महालक्ष्मी भी आप ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम्हारे जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान् न होंगे, जबतक तुम भगवान्‌के सम्मुख होकर उनको प्राप्त करनेके साधनोंको न स्वीकार कर लोगे और जबतक तुम उन साधनोंको क्रियारूपमें परिणत न कर दोगे, तबतक तुम कभी भी, किसी भी स्थितिमें शान्ति-सुख-संतोषके दर्शन नहीं कर सकोगे।

याद रखो—अपूर्ण, अनित्य और परिवर्तनशील जगत्प्रपञ्चके प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें कभी शान्ति-सुख हैं ही नहीं, उनमें निरन्तर अपूर्णताका दुःख, नष्ट हो जानेका दुःख और बदल जानेका दुःख लगा ही रहता है। सच्चा सुख एकमात्र नित्य-निरतिशय, परिपूर्णतम, अविनाशी, सदा अखण्ड एकरस श्रीभगवान्‌में ही है। अतएव उन्हींको जीवनका लक्ष्य बनाकर, उन्हींकी प्राप्तिके साधनोंको स्वीकार कर तदनुसार जीवन बनाओ।

याद रखो—कोई भी मनुष्य किसी स्थानपर पहुँचना चाहे तो उसके लिये तीन बातें परमावश्यक हैं—जहाँ पहुँचना है, उसको याद रखे; जिस रास्तेसे वहाँ पहुँचा जा सकता है, उसी रास्तेको अपनाये और उसी रास्तेपर चलता रहे। लक्ष्य-स्थान याद न रहा, तब तो कुछ भी नहीं होगा। वह जायगा ही कहाँ। लक्ष्य याद भी रहा, पर यदि विपरीत—उलटे मार्गको स्वीकार कर लिया, तब भी वहाँ नहीं पहुँच सकता, और यदि ठीक रास्तेपर होनेपर भी चले नहीं—रुका ही रहे, तब भी पहुँचना सम्भव नहीं। अतएव लक्ष्यको भूलो मत, निरन्तर याद रखो; लक्ष्यसिद्धिके साधनको स्वीकार करो और उस साधनको अपनी शक्तिके अनुसार सावधानीसे करते रहो।

याद रखो—भगवान्‌की ओर मुख करके उनके मार्गपर चलना आरम्भ कर दोगे तो जितना ही आगे बढ़ोगे उतनी ही चलनेकी शक्ति बढ़ेगी, उतने ही अच्छे-अच्छे सदा सहायता तथा सेवा करनेवाले प्रिय साथी मिलेंगे, उत्तरोत्तर उत्तम सुखमय मार्ग मिलेगा, प्रकाश मिलेगा, स्वस्थता मिलेगी, दैवी-सम्पत्तिपर अधिकार होता जायगा और सहज ही सच्चे शान्ति-सुख बढ़ते रहेंगे; क्योंकि वह मार्ग ही ऐसा है, जिसपर दैवी सम्पदासम्पन्न पुरुष ही जाते हैं और वहाँ उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक दैवी सम्पत्तिका ही आदान-प्रदान चलता है।

याद रखो—भगवान्‌से विमुख होकर भोग-जगत्‌की ओर मुख करके उसके मार्गपर चलोगे तो जितना ही आगे बढ़ोगे, उतनी ही सात्त्विकी शक्तिका ह्रास होगा, उतने ही नीच नराधम, सदा सताने तथा लूटनेवाले चोर, ठग, लुटेरे, बदमाशोंका संग मिलेगा, उत्तरोत्तर दुःखमय मार्ग मिलेगा, कंकड़-पत्थर-काँटे-गड़हे मिलेंगे, अन्धकार मिलेगा, मानसिक और शारीरिक रोग मिलेंगे, आसुरी सम्पत्तिके सारे दुर्गुण, दुर्विचार, दुष्कर्म आकर तुमपर अपना एकाधिकार कर लेंगे और सहज ही तुम असीम अशान्ति, अपार दुःखोंके स्वरूप ही बन जाओगे, क्योंकि वह रास्ता ही ऐसा है जहाँ आसुरी सम्पत्तिका ही उत्तरोत्तर अधिक विस्तार है, वहाँ वैसे ही लोग रहते हैं और उनमें परस्पर आसुरी सम्पदाका ही आदान-प्रदान चलता है।

याद रखो—दैवी-सम्पत्ति मोक्षके लिये है और आसुरी बन्धनके लिये। दैवी-सम्पदावालोंके साथ सदा शान्ति, सत्कर्म तथा सुख रहते हैं। वे यहाँ सुख-शान्तिपूर्वक पुण्य कर्म करते हुए भगवान्‌को प्राप्त होते हैं और आसुरी सम्पदावालोंके साथ सदा अशान्ति, पाप और दुःख रहते हैं। वे जीवनभर चिन्ताग्रस्त अशान्त जीवन बिताते हुए कुकर्ममें निरत रहते हैं और अन्तमें नरकोंको प्राप्त होते हैं। दैवी-सम्पदा भगवत्प्राप्तिका मार्ग है और आसुरी सम्पदा नरकप्राप्तिका।

याद रखो—असुरोंको अपार वैभव, जागतिक प्रचुर सम्पत्ति, विस्तृत अधिकार, परम उच्चपद और लौकिक यश-कीर्ति आदि पदार्थ मिल सकते हैं, पर इनसे उन्हें सच्ची शान्ति, सच्चा सुख कदापि नहीं मिल सकता, वे जीवनभर जलते ही रहते हैं और दुष्कर्मपरायण रहकर अन्तमें भीषण यन्त्रणा—ज्वालामय नरकोंमें पड़ते हैं। अतएव सच्चे सुखस्वरूप भगवान्‌को ही जीवनका एकमात्र साध्य बनाओ और उन्हींकी प्राप्तिके लिये सावधानी तथा एकनिष्ठाके साथ तदनुकूल साधनोंमें सदा तत्पर रहो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारोंके मूल अवतारी, चतुर्व्यूहमें सर्वप्रथम भगवान् वासुदेव, समस्त भगवत्स्वरूपोंके अंशी, ब्रह्मकी प्रतिष्ठा, सर्वेश्वरेश्वर, सर्वलोकमहेश्वर, निर्गुण—स्वरूपभूतगुणमय, निराकार—भौतिक आकाररहित, परमेश्वर, अचिन्त्यानन्त-सद्गुण-समुद्र, सर्वगुणमय, सर्वमय, सर्वातीत, सर्वात्मा सर्वजीवप्राण, अखिलप्रेमामृतसिन्धु, षोडशकलापूर्ण, षडैश्वर्यसम्पन्न, हानोपादानरहित नित्य सत्य दिव्य चिन्मय भगवद्देहरूप, दिव्य सच्चिदानन्द प्रेमघनमूर्ति पूर्ण पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् हैं—ऐसा विभिन्न शास्त्रोंमें, वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, तन्त्र तथा ऋषि-मुनि-रचित एवं अनुभवी महात्माओंके द्वारा प्रणीत ग्रन्थोंमें बार-बार कहा गया है। इसके अतिरिक्त उनमें ऐसे सभी भावों तथा गुणोंका विकास है, जो कहीं भी एक स्थानपर नहीं मिलते। समस्त विभूतियाँ, समग्र जगत् उनके एक ही अंशमें स्थित है—'**विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।**' उनमें पूर्ण मानवता एवं पूर्ण भगवत्ताका युगपत् प्रकाश है तथा वे 'अभ्युदय' और 'नि:श्रेयस'के साकार विग्रह हैं।

वे परम योगी, योगसिद्ध, योगेश्वर महापुरुष हैं। इसके अनेक प्रमाण हैं। वे वर्णाश्रमधर्मानुसार आचरण करनेवाले थे तथा नित्य नियमितरूपसे विहित-कर्मानुष्ठान करते थे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आत्मध्यान, स्नान, संध्योपासन, सूर्योपस्थान, देवर्षि-पितृ-तर्पण तथा गुरुजनोंको प्रणाम करते थे। वे महादानी थे। प्रतिदिन वस्त्रालंकारोंसे विभूषित हजारों दुग्धवती गौओंका दान करते थे। माता-पिताकी सेवा करते थे। गुरुसेवक थे। ब्रह्मण्य थे—भक्ति-श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। महान् ऋषियों, मुनियोंके द्वारा सुपूजित थे। सर्वज्वरहारी थे—इन्द्रका शक्ति-गर्व-ज्वर, ब्रह्माका ज्ञान-गर्व-ज्वर, राजाओंका बल-गर्व-ज्वर उन्होंने अनायास हरण कर लिया था। वे लोकनायक थे। स्वयं आप्तकाम, पूर्णकाम होनेपर भी लोकसंग्रहके लिये आदर्श शुभकार्य किया करते थे। वे सदा निष्काम थे।

श्रीकृष्ण बड़े अलौकिक अद्भुतकर्मा हैं। उन्होंने अपने जीवनमें बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किये। सबसे पहले कंसके कारागारमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी अमित तेजस्वी, सर्वालंकारविभूषित अद्भुत चतुर्भुज-रूपमें प्रकट हुए, फिर पूतनावध, कुबेरपुत्रोंका उद्धार, ब्रह्माजीका मोहभंग, दावानल-पान, गोवर्धनके रूपमें पूजा-ग्रहण तथा गोवर्धन-धारण, इन्द्रगर्वहरण, वरुणलोकमें पूजा स्वीकार करना, गोपोंको ब्रह्म तथा परमधामका दर्शन कराना, रासलीला—दो-दो गोपियोंके बीचमें एक-एक स्वरूप प्रकट कर देना, सुदर्शनका उद्धार, शंखचूडका उद्धार, मथुराके मार्गमें अक्रूरको भगवद्दर्शन कराना, कुब्जाको सीधी करना, कंसके दरबारमें अनेक रूप दिखाना, मृत गुरुपुत्रको लाना, नृगका उद्धार, ऋषियोंका स्तवन स्वीकार करना, मृत देवकी-पुत्रोंको लाना, द्वारकामें एक ही साथ द्विविध रूप धारण करना, द्रौपदीका चीर बढ़ाना, एक पत्ता खाकर सशिष्य दुर्वासाका पेट भर देना, व्रजमें माताको, कौरवसभामें दुर्योधनादिको, रणक्षेत्रमें अर्जुनको तथा द्वारका लौटते समय उत्तंकको विविध विचित्र विराट्रूप दिखलाना, अर्जुनको दिखाये गये विराट्रूपमें भविष्यके चित्र—भीष्म, द्रोणादिके उत्तमाङ्गोंको अपने कालरूपकी विकराल दाढ़ोंमें चूर-चूर दिखला देना, जयद्रथवधके समय सूर्यको अकालमें ही छिपा देना, उत्तराके गर्भमें मरे हुए परीक्षित्को जिला देना, नारदको प्रत्येक महलमें दर्शन देना तथा त्रिभुवनमोहन दिव्य विग्रहका इस शरीरसे ही परमधाम पधारना—आदि सभी अद्भुत, अलौकिक कर्म हैं।

जड तथा चेतन उन्हींकी प्रकृति हैं, क्षर-अक्षर उन्हीं पुरुषोत्तमके आश्रित हैं। महाभारतके आदिपर्व (अध्याय ६३, श्लोक ९९से १०४) में श्रीकृष्णके प्राकट्यका वर्णन करते हुए कहा गया है—

'विश्ववन्दित महायशस्वी भगवान् जगत्के जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये वसुदेवजीके द्वारा श्रीदेवकीजीसे प्रकट हुए। वे भगवान् आदि-अन्तसे रहित, द्युतिमान्, सम्पूर्ण जगत्के कर्ता और प्रभु हैं। वे ही अव्यक्त, अक्षरब्रह्म और त्रिगुणात्मक प्रधान हैं। वे आत्मा, अव्यय, प्रकृति (उपादान), प्रभव (उत्पत्ति-कारण), प्रभु (अधिष्ठाता), पुरुष, विश्वकर्मा, सत्त्वगुणसे प्राप्त होने योग्य, प्रणवाक्षर, अनन्त, अचल, देव, हंस, नारायण, प्रभु, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, पर, अविनाशी, कैवल्य, निर्गुण, विश्वरूप, अनादि, जन्मरहित और अविकार हैं। वे सर्वव्यापी, परमपुरुष परमात्मा, सबके कर्ता और सम्पूर्ण भूतोंके पितामह हैं। उन्होंने ही धर्मके संवर्धनके लिये अन्धक और वृष्णियोंके कुलमें बलराम और श्रीकृष्णरूपमें अवतार लिया था। वे दोनों भाई सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, महापराक्रमी और समस्त शास्त्रोंके ज्ञानमें प्रवीण थे। इससे भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, यह सिद्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसेवाकी प्रेरणा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आजकल इस देशमें गोधनका प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है, जिससे गोदुग्ध एवं कई लाभोंके अभावमें हाहाकार मचा हुआ है। शास्त्रत: और लोकत: विचार करके देखें तो यह मालूम होगा कि धनोंमें गोधन एक प्रधान संरक्षणीय धन है। अत: हम सबको अपनी शक्तिके अनुसार अपने गोधनकी सेवा करनी चाहिये। हम सब यदि गौओंकी सेवा न करें तो यह हम सबकी कृतघ्नता है। क्योंकि हम सब गौओंसे जितना लाभ उठाते हैं, उसके बदलेमें उसकी सेवा न करें तो कृतघ्नता ही कही जायगी।

वास्तवमें गौओंकी सेवाके विषयमें कहनेका मैं अधिकारी भी नहीं हूँ। क्योंकि जैसे आपलोग दूध पीते हैं वैसे ही मैं भी दूध पीता हूँ। गोसेवा आप भी नहीं करते और मुझसे भी नहीं बनती। इस कारण भी मैं अधिकारी नहीं हूँ। अच्छे पुरुष, जिन्होंने गौओंकी सेवा की है, उनके द्वारा तथा शास्त्रके द्वारा अपनेको जो शिक्षा मिल रही है, उसको आधार बनाकर हम लोगोंको गौओंकी सेवा करनी चाहिये।

पूर्वके जमानेमें नन्दके यहाँ लाखों गौएँ थीं। विराटके पास करीब एक लाख गायें थीं। दु:खकी बात है कि इस समय गौएँ बहुत काफी मात्रामें मारी जा रही हैं। यह कानून है कि १४ वर्षसे कम आयुकी गौएँ न मारी जायँ, किंतु यह कानून केवल सरकारी कागजोंमें ही है। यह कानून काममें लानेके लिये नहीं बनाया गया है, केवल लोगोंको दिखानेके वास्ते बनाया गया है ताकि लोगोंमें उत्तेजना न हो। छोटे-छोटे बछड़े-बछिया भी मारे जाते हैं। क्योंकि उनका चमड़ा मुलायम होता है, बढ़िया होता है। अपने-आप मर जानेवाली गौका चमड़ा कठोर होता है, उनके जूते खराब तथा सस्ते होते हैं, और जीवित गौका या बछड़े-बछियाका चमड़ा उतारा जाय तो वह ज्यादा मुलायम होता है। मुलायम चमड़ेसे बनी हुई टोपी, घड़ी, बैग और जूता आदि महँगे बिकते हैं।

कुछ सज्जन कलकत्ते कसाईखानेमें गये थे। गौओंकी हत्या किस प्रकार होती है इसके विषयमें उन्होंने बताया कि गौओंके ऊपर गरम खूब खौलता हुआ पानी छिड़का जाता है, जिससे उनका चमड़ा मुलायम हो जाता है। खौलते पानीको छिड़ककर लाठियोंसे उनको मारा जाता है, जिससे चमड़ा फूल जाय और खूब मुलायम हो जाय। इसके बाद उसके जीते ही उसका चमड़ा उतारा जाता है, चमड़ा उतारते हुए वह काँपती, डकारती-छटपटाती, तड़प-तड़पकर मर जाती है। किसी-किसी कसाईखानेमें तो गायको मार-मारकर उसका चमड़ा उतारा जाता है ऐसी भी बात सुनी जाती है और किसीमें ऐसा सुना जाता है कि पहले चमड़ा उतार लिया जाता है फिर वह मर जाती है या उसका क़त्ल कर दिया जाता है। उनका कहना है कि चमड़ा पहले इसलिये उतार लिया जाता है, जिससे ज्यादा मुलायम रहे। यह भी बताते हैं कि उस चमड़ेके जो जूते बनते हैं वे एक नंबरके होते हैं।

इस पापके भागी छ: होते हैं—(१) गायको कसाईके हाथ बिक्री करनेवाले, (२) गायके वधके लिये सलाह-आज्ञा देनेवाले, (३) गायको मारनेवाले, (४) मांस खरीदने या पकानेवाले, (५) गोमांस भक्षण करनेवाले और (६) चमड़ा या अन्य अवयवसे बनी वस्तुओंका उपभोग करनेवाले। ये सभी समानरूपसे पापके भागी होते हैं।

मांसके विषयमें मनुजीने बतलाया है कि हिंसा करनेवाले, उसमें सम्मति देनेवाले, बिक्री करनेवाले, पकानेवाले और खानेवाले—ये सभी समान-भावसे पापके भागी होते हैं। इस बातको सुनकर आप सबको इसके विरोधमें आजसे ही प्रतिज्ञा क़र लेनी चाहिये कि जिन होटलोंमें गौका मांस पकाया जाता है, हम कभी उन होटलोंमें नहीं जायँगे। कुछ लोग कहते हैं कि हम होटलोंमें तो जाते हैं पर मांस नहीं खाते। मांस भले ही न खाओ पर उसका रस दालमें, भातमें परसनेवाली चम्मच आदिके द्वारा पड़ जाता होगा, सारे सामानोंमें चम्मच पड़ती ही होगी, हाथ वही, संसर्ग वही। उसके परमाणु तो आ ही जाते हैं। इसलिये होटलोंमें न जानेकी शपथ लेनी चाहिये। होटलोंमें न जानेसे मर तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँगे नहीं, होटलमें गये बिना भी संसारमें बहुत लोग जी रहे हैं, कोई मर नहीं रहे हैं। यह एक मामूली बात है। इसलिये हमलोगोंको यह तो प्रतिज्ञा ही कर लेनी है कि किसी भी होटलमें जाकर हम भोजन नहीं करेंगे। यह भी मामूली बात है, उत्तम बात तो यह है कि बाजारकी कोई चीज न खायी जाय, चाहे खोमचेका हो या मिठाई हो अथवा पान हो या चाय; क्योंकि बाजारकी सभी चीजें अपवित्र होती हैं। उसमें घी अपवित्र, चीनी अपवित्र, जल अपवित्र —सभी अपवित्र। इतना त्याग न हो सके तो कम-से-कम होटलमें खानेका त्याग तो कर ही देना चाहिये।

होटलोंमें खानसामे सभी धर्म-जातिके होते हैं, उसमें कोई जातिका भेद नहीं रहता। वहाँ कोई शुद्धि नहीं रहती, कोई अंडे, मांस, मदिरा रखते हैं। इनका नाम लेनेसे मनुष्यको पाप लगता है। मैं जो उनके नामका उच्चारण करता हूँ वह उनके निषेधके लिये करता हूँ, इसलिये शायद पाप नहीं लगे। इस विषयमें तो सौगन्ध कर ही लेनी चाहिये कि किसी भी होटलमें नहीं जाना है। दूसरी उत्तम बात यह है कि चमड़ेका सामान काममें लाना ही नहीं है, क्योंकि मालूम नहीं होता कि यह चमड़ा अपनेसे मरी गायका है या मारी गयी गायका। मरी हुई गायका चमड़ा उतारा गया है या चमड़ा उतारकर फिर वह मारी गयी है। चमड़ा चाहे पहले उतारे या बादमें, दोनोंमें पाप है। चमड़ा उतारकर मारे तो और ज्यादा पाप है। इसलिये चमड़ा काममें नहीं लाना चाहिये। यदि चमड़ा काममें लाते हैं और उसके विषयमें कहा जाता है कि यह 'खादी प्रतिष्ठानका चमड़ा है, मरी हुई गऊका है, अपनी मौतसे मरी हुई गायका चमड़ा है, मारी हुई गऊका नहीं, तो हमारा इतना विरोध नहीं है, उसको काममें लाया जा सकता है, जब आपको पूरी जानकारी हो जाय कि वह चमड़ा अपनेसे मरी हुई ही गायका है, इसकी हिंसा नहीं की गयी है, तब भी यह प्रतिज्ञा जरूर करनी चाहिये कि जो गायें चमड़ेके लिये, मांसके लिये मारी जाती है, उन गायोंके चमड़ेका जूता वगैरह काममें नहीं लाऊँगा। गायोंके चमड़ोंके जूतोंका और होटलमें जानेका त्याग कर देना चाहिये। किसी भी होटलमें जाकर खाना या होटलकी चीज मँगाकर या रेलमें होटल-की चीज मँगाकर खाना आपके जँचे तो एकदम सदाके लिये त्याग देना चाहिये, क्योंकि कितने वर्ष जीओगे, आखिरमें तो मरोगे ही। ऐसे कलंकित होकर संसारसे क्यों जायँ। ऐसा करना अपने कुलमें, जातिमें, देशमें कलंक लगाना है। आप यदि इसे ठीक समझें तो 'परमात्माकी जय' बोलकर इसकी स्वीकृति दें और इसकी प्रतिज्ञा स्वीकार करें।

दूसरी बात यह है कि जिसे आप अपनी यथाशक्ति कर सकते हैं—हम गायका दूध पीते हैं, इसलिये हमें हर एक प्रकारसे गायकी सेवा करनी चाहिये। जहाँ कहीं गोरक्षा-आन्दोलन हो उसमें भाग लेना चाहिये, गायोंकी हिंसा बंद हो जानी चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि यदि गायें कटना बिलकुल बंद हो जायँगी तो बूढ़ी गायोंको घास और चारा कहाँसे मिलेगा। चारा पैदा करनेवाला भगवान् संसारमें मौजूद है, भगवान् कहीं मरा नहीं है। उसके भरोसेपर आप गौओंका पालन करें।

इस विचारसे तो यह भी सवाल पैदा हो सकता है कि जो बूढ़े-बूढ़े आदमी हो गये हैं, उनको मार डालना चाहिये, क्योंकि वे निकम्मे हो गये हैं। वे काम तो कुछ करते नहीं, अन्न खा जाते हैं, जवान आदमीके हिस्सेका अन्न खा जायँगे तो जवान आदमी खाने बिना मरेंगे, बूढ़े आदमीको खिलानेसे कोई जवान मरा है आजतक ? सब बेवकूफीकी बात है, बेसमझीकी बात है। इतने जंगल हमारे हिन्दुस्तानमें पड़े हैं, लाखों गायें जंगलोंमें रहकर अपना जीवन-निर्वाह कर सकती हैं, घास खाकर जी सकती हैं, इसलिये उन गायोंको हम जंगलोंमें छोड़ दें तो अपनी पूरी आयु पाकर वे मरेंगी और चरेंगी जंगलमें। और दूसरी बात यह है कि उन गायोंको हम खेतोंमें रखकर चरायें तो आप हिसाब लगाकर देखें गऊसे जो गोबर होता है, उससे तथा जो गाय मूत्र करती है उससे खेतीकी उपजमें वृद्धि होती है। गोमूत्रसे खेती अधिक पैदा होती है। एक मन खाद दी जाती है तो उससे कई मन अनाज पैदा होता है। चारा, घास और अन्न सब पैदा होता है। गाय जो कुछ खाती है उसके अनुसार स्वयं खाद पैदा कर देती है, तीसरी बात यह है कि भगवान् स्वाभाविक ही वर्षा करते हैं। संसारमें जितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्राणी हैं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सबके लिये भगवान् सोच-समझकर हिसाब लगा करके वर्षा और अन्न पैदा करते हैं। और आवश्यकता होती है तो उससे अधिक भी पैदा करते हैं फिर अपनेको क्या चिन्ता है! आज यदि वर्षा न हो तो क्या जलसे खेती करके हम जी सकते हैं। यह सोचना चाहिये कि संसारमें जो कुछ काम हो रहा है सब भगवान्‌की नजरमें हो रहा है, ऐसा सोचकर भगवान्‌पर इतना तो भरोसा करना ही चाहिये कि जो पैदा करता है वही जिलाता है और समयपर उसे समाप्त करता है। हम बीचमें पड़कर उसकी क्यों पंचायत करें। इसलिये हर एक प्रकारसे हमें गऊकी रक्षा करनी चाहिये। इसमें हमलोगोंको केवल निमित्त बनना है, करनेवाले तो सब भगवान् हैं, मेरा किया होता क्या है? भगवान् अर्जुनसे गीतामें कहते हैं कि 'हे सव्यसाची अर्जुन! तू निमित्तमात्र हो जा, क्योंकि बहुतसे योद्धा तो मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं, तू नहीं भी मारेगा तो भी सब मरेंगे, मैं तुम्हें केवल निमित्त बनाता हूँ।'

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।'
'ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे।'

भगवान् हमलोगोंको केवल निमित्त बनाते हैं। निमित्त तो बन जाना चाहिये। करनेवाले तो सब भगवान् हैं। इतना निमित्त बन जाना चाहिये कि गौओंके लिये कोई भी सवाल उठे तो एक स्वरसे सबके साथ शामिल हो जाना चाहिये। हिन्दुस्तानमें गौओंका वध नहीं होना चाहिये। महात्मा गांधीने जब स्वराज्य नहीं मिला था, उस समय यह घोषणा की थी। यह बात पहले उठ चुकी थी कि हिन्दुस्तानमें गायें कटनी बंद होनी चाहिये। उन्होंने कहा कि ''हिन्दुस्तानमें गोहत्या बंद होनी चाहिये' का सवाल उठाना ठीक है, मेरी भी यही इच्छा है, मैं स्वराज्यके लिये चेष्टा करता हूँ तो मेरा प्रधान सवाल गायोंके लिये ही है। स्वराज्य अपने हाथमें आ जाय, उसके बाद मेरी यह इच्छा है कि मैं गोहत्याको बंद कर दूँगा।'' सम्भव है आज वे यदि जीवित होते तो शायद अपनी कही हुई बात याद करके गोहत्या बंद करते। वे तो हैं नहीं, अब किसको कहें। हिन्दुस्तानमें स्वराज्य पानेका उनका आदेश और उद्देश्य दोनों था, तो स्वराज्य तो मिल गया, उसकी सिद्धि करनेके लिये हमलोगोंको चेष्टा करनी चाहिये, हमारे देशमें गायोंका कटना एकदम बंद हो जाय इसके लिये बहुतसे उपाय हैं। पहले तो गायोंकी वृद्धिका उपाय करना चाहिये और गोहत्या बंद होनी चाहिये।

भगवान् रामके वनवासकालमें राक्षस मनुष्योंको मार कर उनका मांस खा जाते, मनुष्योंकी हड्डियोंको देखकर भगवान् रामकी आँखोंमें आँसू आ गये और उन्होंने भुजा उठाकर यह प्रतिज्ञा की कि पृथ्वीको राक्षसोंसे हीन कर दूँगा और सब आश्रमोंमें जा-जाकर उन्होंने मुनियोंको सुख दिया था।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

उस समय ऋषि-मुनियोंको राक्षस लोग खा जाया करते थे और आजकलके मनुष्य ही राक्षस हैं, वे गायोंको खाकर चारों ओर हड्डियोंकी ढेरी लगा रहे हैं। संसारमें जब ज्यादा अत्याचार होता है तब भगवान् अवतार लेते हैं अथवा भगवान्‌के बहुतसे जो भक्त होते हैं उनमें वे प्रेरणा करते हैं। इस प्रकार वे वह काम कर लेते हैं तो भगवान्‌को आना नहीं पड़ता। इसलिये हमलोग ही भगवान्‌का भक्त बनकर अगर इस कामको करना चाहें तो भगवान्‌की मदद पाकर हमलोग भी कर सकते हैं, जैसे अर्जुनने भगवान्‌की मदद पाकर युद्धमें असाधारण वीरोंको भी मार डाला। इसी प्रकार काम तो करनेवाले भगवान् हैं, हमलोग तो केवल निमित्तमात्र ही बनते हैं। अत: कम-से-कम निमित्तमात्र तो बनना ही चाहिये। एक तो हर एक भाइयोंको अपनी जैसी-जितनी शक्ति हो उसके अनुसार गोचर-भूमि छोड़नी चाहिये। जिसकी यह शक्ति न हो तो घरमें एक-दो गाय रखनी चाहिये। यदि इतनी भी शक्ति न हो तो यही प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम गऊका ही दूध पीयेंगे, भैंसका नहीं पीयेंगे। इससे भी गायोंको मदद मिलेगी और जैसे भी हो किसी प्रकारसे भी गायोंकी सर्वथा सर्वदा मदद करनी चाहिये। गोचरभूमि छोड़ना भी बड़ी भारी सेवा है। गायोंको घरमें रखकर उनकी सेवा करना तो एक नंबर है ही, हर एक प्रकारसे हमको गायोंकी सेवा करनी है। जैसे गऊशाला है, इसमें अपनी शक्तिके अनुसार सभी भाई लोग मदद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते ही हैं, उसमें और विशेष मदद करनी चाहिये। आजकल ब्राह्मणोंको जो गऊदान किया जाता है वह दान देना तो बहुत उत्तम है ही, किंतु यदि कोई ब्राह्मण गऊ लेकर उसका पालन नहीं कर सके और बिक्री कर दे या किसी भी प्रकारसे वह कसाईके हाथमें चली जाय तो वह ब्राह्मण भी नरकमें जायगा और गोदान करनेवाला भी। इसलिये ब्राह्मण उसे अपने घरमें रखकर उसका पालन करें। गऊ-दानकी महिमा शास्त्रोंमें लिखी भरी पड़ी है। ऐसी परिस्थितिमें आजकलके समयमें यदि किसीको गऊ देना हो तो गऊशालामें भेज दे। गौशालामें गऊके दूधका अधिक दाम देना भी गऊकी सेवा है। आजकल बहुत-सी गऊशालाएँ चंदेसे ही चल रही हैं। एक महात्मा बहुत उच्चकोटिके थे, उनका नाम था मंगलनाथ। उनके नामसे ऋषीकेशमें एक गऊशाला है। हम सभी उसके मेम्बर हैं, जिससे किसी भी प्रकार गऊशाला कायम रहे। उसमें तीन-चार हजार रुपया यहाँसे सहायता मिल जाती है, वह वर्षोंसे इसी प्रकार चल रही है। उससे गउओंकी सेवा हो रही है और अपनेको दूध मिल रहा है। नहीं तो इकट्ठा इतना दूध कहाँ मिलता। कलकत्तेमें जो भाई लोग रहते हैं, उनको कलकत्तेमें पिंजरापोल गऊशालाकी सेवा करनी चाहिये। सभी जगह पिंजरापोल गऊशाला है ही, उसकी सेवा करना भी गऊकी सेवा है। हर एक प्रकारसे दूधकी वृद्धि करनी चाहिये। जो ठाली (ठाठ) गऊ है, वृद्ध गऊ है उसकी भी सेवा करनी चाहिये। इस विषयमें कितने भाई तो कहते हैं कि गऊशालामें जो ठाली गऊ है यानी बुड्ढी गऊ है, निकम्मी गौ है उसकी सेवा करनी चाहिये, उनकी वृद्धि करनी चाहिये, दूधवाली गऊ बेच देनी चाहिये। दूसरोंको दे देनी चाहिये, उसकी वृद्धि रोक देनी चाहिये। कितने कहते हैं कि अपने सभी लोगोंको दोनों प्रकारकी गउओंकी सेवा करनी चाहिये। कितने कहते हैं कि नया डेयरी-फार्म खोलना चाहिये, दूधवाली गउओंकी सेवा करनी चाहिये, ठाली गऊ अगर मरे तो मर जाय। इस तरहकी आवाज आती है।

इन बातोंमें मुझे तो यह बात अच्छी मालूम देती है कि सभी गउओंकी सेवा करनी चाहिये, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ी हो। जवानकी सेवा दूधके लिये करनी चाहिये और बुड्ढीकी सेवा धर्मके लिये करनी चाहिये। अपने घरमें जितने मनुष्य होते हैं कोई बूढ़े और कोई जवान होते हैं, सबकी सेवा करना अपना कर्तव्य है। बूढ़ोंकी सेवा इसलिये कि उन्होंने हमारी सेवा की है, वे हमारी सेवा करते-करते बूढ़े हो गये। आजकल लोग कहते हैं कि 'बूढ़े जल्दी-से-जल्दी मर जायँ' यह हमारी भावना, हमारी बुरी नीयत है। हमको तो यह भाव रखना चाहिये कि 'हमारे बूढ़े माता-पिता सौ वर्षोंतक जीयें।' हमारी भावनासे वे सौ वर्षतक जीयें तो वे जीयेंगे नहीं। हम कह दें कि कल ही मर जायँ, तो मरेंगे नहीं। अपनी इच्छासे न तो कोई जीयेगा और न कोई मरेगा। उनके मरनेकी इच्छा करके हमने अपराध कर लिया। तो स्वयं अपराध क्यों करें, हमें तो बढ़िया-से-बढ़िया इच्छा रखनी चाहिये। सब गौओंकी सेवा होनी चाहिये, जीवमात्रकी सेवा होनी चाहिये।

राजा दिलीपने गऊकी सेवा करके रघुको प्राप्त किया। जिनके नामसे संसारमें रघुवंश प्रसिद्ध है। जिनके वंशमें भगवान्‌ने अवतार लिया।

राजा दिलीप गऊकी सेवा कैसे करते थे—गऊ बैठती है तो बैठते थे, उठती तो उठते थे, साथमें चलते थे, गऊको घास खिलाकर खुद अन्न खाते थे, गऊको जल पिलाकर जल पीते थे, गऊ उनके लिये ईश्वरके तुल्य हो गयी थी। जैसे कोई ईश्वरकी सेवा करे ऐसे गऊकी सेवा कर रहे थे। आखिरमें एक दिन ऐसा हुआ कि वनमें गऊके ऊपर सिंह आकर झपटा, गऊ चिल्लायी, राजा दौड़कर गये, देखा तो सिंह गऊके ऊपर आक्रमण कर रहा है। राजाने उस सिंहको मारनेके लिये धनुष-बाण उठाया, किंतु राजाका धनुष-बाण कुछ भी काम नहीं दिया, राजाने सोचा बाण नहीं चला क्या बात है? फिर सिंहने कहा कि 'मैं शिवजीका गण हूँ, मुझे कोई नहीं मार सकता।' राजाने कहा कि 'महाराज! आप इस गऊको न मारकर मुझे मारें। आपको तो मांस ही चाहिये न? मुझे आप खा लें गऊको छोड़ दें।' उसने कहा—'राजन्! तुम राजा होकर गऊके बदले अपनेको क्यों दे रहे हो? वसिष्ठको ऐसी-ऐसी कई गऊ आप दे सकते हैं। सोचें आप राजा हैं, आपके शरीरका कितना मूल्य है और इस गऊका कितना मूल्य है?' दिलीपने कहा कि 'आपका कहना ठीक है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु गौकी रक्षा करना मेरा धर्म है उसे बचाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अपने प्राणोंको देकर भी गऊको बचाना चाहिये।' सिंह बोला—'ठीक है, तुम यदि इस प्रकार धर्मका पालन करते हो तो तुम सावधान हो जाओ। गऊको छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर आता हूँ।' यह कहकर जब सिंह झपटनेकी तैयारी करने लगा, तब राजा भगवान्‌के ध्यानमें मस्त हो गये। पर सिंह झपटता नहीं है। राजाने आँख खोलकर देखा कि सामने सिंह नहीं है, केवल गाय खड़ी है। गायने कहा—'राजा दिलीप! मैं ही सिंह बनकर तुम्हारी परीक्षा ले रही थी, मैं तुम्हारे ऊपर खुश हो गयी, तेरी इच्छा पूर्ण हो जायगी, तुम्हारे बहुत बलवान् लड़का पैदा होगा जो संसारमें विख्यात होगा।'

इस दृष्टान्तपर आप सब ध्यान दें—राजा दिलीपने गऊके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी। ऐसी बहुत-सी कथा पुराणोंमें, शास्त्रोंमें आती है। यह सोच-समझकर सभीको गोसेवा एवं गोरक्षाका व्रत लेना चाहिये।

गौ माताके रोम-रोममें देव वास करते हैं

(प्रो० श्रीवागीशजी 'दिनकर')

धर्मधरा यह जब पापोंसे बोझिल हो जाती है,
ऋषियोंकी संस्कृति जब संतापोंमें खो जाती है।
वेदोंकी कल्याणी वाणी जब अपमानित होती,
जब सतियाँ, साध्वी, ललनाएँ निज दुर्गतिपर रोतीं॥ १॥

शील, सत्य, संयम, शुचिताका लोप निरन्तर होता,
जब अधर्म जागा करता, धर्म धरापर सोता।
तब नभ आन्दोलित होता, सागरमें सिहरन होती,
तब धरणी गौ-रूप धारकर विष्णु-लोक जा रोती॥ २॥

विश्वम्भर भगवान् विष्णु तब धरणीपर आते हैं,
गो-सेवाका पावन व्रत तब गोविन्द अपनाते हैं।
गङ्गाको पानी कहनेवाला ज्यों पापी होता,
त्यों ही गौको पशु कहनेसे पाप भयंकर होता॥ ३॥

गौ माताके रोम-रोममें देव वास करते हैं,
गोसेवासे हो प्रसन्न प्रभु त्रिविध ताप हरते हैं।
रुद्रोंकी माता वसुओंकी दुहिता गौ कहलाती है,
आदित्योंकी भगिनी बनकर मधुर सुधा बरसाती है॥ ४॥

हिन्दूकी पहचान विश्वमें गौसे जानी जाती,
सच मानो गङ्गा पवित्र गोमुखसे मानी जाती।
गायत्री गीता-सी पावनतम मेरी गौ माता,
गौ मातापर अवलम्बित है मेरा जगसे नाता॥ ५॥

गौ-हत्याका कलुष न जबतक 'भू'से मिट जायेगा,
तबतक हिन्दू इस जीवनमें चैन न ले पायेगा।
करें कृपा गोवर्धनधारी, श्रीमाधव बनवारी,
हो अवध्य, निर्भय विचरे, मेरी गौ माता प्यारी॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा विश्व ब्रह्मरूप है

(गोलोकवासी परमभागवत पं० श्रीरामचन्द्रडोंगरेजी महाराज)

जगत्को जबतक ब्रह्मरूप नहीं मानेंगे, तबतक राग-द्वेष नहीं मिटेंगे। कुछ लोग जगत्को ब्रह्ममय मानते हैं तो कुछ लोग प्रत्येक पदार्थमें ब्रह्मस्वरूपका अनुभव करते हैं। राग-द्वेषके नाशके लिये विराट् पुरुषका ध्यान करो। सारा विश्व उसी विराट् पुरुषका स्वरूप है, ऐसी भावना मनमें दृढ़ हो जाय, तो जगत्की किसी भी वस्तुके प्रति हीनभाव या कुभाव नहीं रहेगा।

हरि ही जगत् है। ब्रह्मदृष्टिसे जगत् सत्य है। ब्राह्मण भगवान्के मुखसे निकला है, क्षत्रिय भुजासे निकला है, वैश्य जंघासे निकला है, शूद्र चरणसे निकला है; अत: किसीका भी अपमान भगवान्का ही अपमान है। इसलिये किसीका अपमान और तिरस्कार न करो। जगत्में जड और चेतनका जबतक भेद रखोगे, तबतक ध्यानमें एकाग्रता नहीं आयेगी।

बिना वैराग्यके ध्यान नहीं हो सकता, ध्यानमें एकाग्रता नहीं हो सकती।

संसारका स्मरण ही दु:ख है और संसारका विस्मरण ही सुख है।

ज्ञानमार्गमें तीव्र वैराग्य होना चाहिये। भक्ति-प्रेममार्गमें समर्पणकी प्रधानता है। भक्ति करनी हो तो वह वैराग्यके बिना तो चल सकती है, किंतु सबके साथ प्रेम तो करना ही पड़ेगा। वैराग्यसे यह काम अधिक कठिन है। सबके साथ प्रेम करो अथवा अकेले ईश्वरसे प्रेम करो। जगत्के प्रत्येक पदार्थके साथ प्रेम करना भक्तिमार्ग है।

ज्ञानमार्ग त्यागप्रधान है। भक्तिमार्गमें समर्पणका प्राधान्य है। ज्ञानी सबका निषेध करता हुआ परिनिषेधमें जो शेष रहता है, उसीमें मनको दृढ़ करता है। साधारण मनुष्यके लिये ज्ञानमार्ग सुलभ नहीं है। मनुष्य सर्वस्वका त्याग तो कर नहीं सकता।

शरीरसे आत्मा भिन्न है, ऐसा सब समझते तो हैं, किंतु उसका अनुभव करना आसान नहीं है। भक्त मानता है कि गायमें बसे हुए श्रीकृष्णकी सेवा घासमें बसे हुए श्रीकृष्णसे करूँगा।

भक्तिमार्गमें सद्भाव आवश्यक है। सभीके प्रति सद्भाव रखना कठिन कार्य है। श्रीकृष्ण भगवान् तो स्वयंको लात मारनेवालेको भी सद्भावकी दृष्टिसे ही देखते हैं।

मनकी मलिनता धोनेके लिये विराट् पुरुषका ध्यान करना है। विराट् पुरुषके ध्यान करनेका अर्थ है 'इस जगत्में जो कुछ दीख रहा हो, उसमें परमात्माका वास है'—ऐसा समझकर व्यवहार करना। सारा जगत् उसी विराट् पुरुषका स्वरूप है। विराट् पुरुषके ध्यानके लिये तीव्र वैराग्य जरूरी है।

'सारा विश्व ब्रह्मरूप है, ऐसा मानकर ज्ञानी पुरुष ललाटमें ब्रह्मके दर्शन करता है। वैष्णवजन हृदयमें चतुर्भुज द्वारिकानाथके दर्शन करते हैं'।

प्रभुके एक अङ्गका चिन्तन करना ध्यान है और प्रभुके सर्वाङ्गका चिन्तन करना धारणा है।

दास्यभक्तिद्वारा हृदय जल्दी दीन बनेगा। पहले भगवान्के चरणारविन्दका ध्यान करो, फिर मुखारविन्दका और अन्तमें सर्वाङ्गका ध्यान करो।

साधक सावधान होकर ध्यान करेगा, तो उसकी समझमें यह बात आ जायगी कि मायाकी शक्ति भ्रान्ति ही है।

ईश्वरका चिन्तन न हो सके, तो भी कोई बात नहीं, किंतु संसारका चिन्तन तो कभी भी नहीं करना चाहिये। ईश्वरका ध्यान चाहे न हो सके, किंतु संसारका ध्यान छोड़नेकी आदत डालनी चाहिये।

ध्यानके बिना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिस तरह रुपये-पैसोंका ध्यान करते हो, उसी तरह परमात्माका ध्यान करो।

आरम्भावस्थामें आँखोंके सामने अन्धकार-सा छा जायगा। किंतु धैर्यसे योगधारणा करके मनको वशमें करो। बुद्धि-द्वारा प्रभुके सर्वाङ्गोंकी धारणा करो। ज्यों-ज्यों बुद्धि स्थिर होती जायगी, त्यों-त्यों मन भी स्थिर होने लगेगा। धारणाके स्थिर होनेपर ध्यानमें प्रभुका मङ्गलमय स्वरूप दीखता है और भक्तियोगकी प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानमें मन यदि स्थिर न हो सके तो उस मनको मृत्युसे भयभीत करो, तभी वह स्थिर होगा। मनको किसी भी तरह समझाओ और स्थिर करो।

क्षणभंगुर जीवनकी कलिका, कल प्रातःको जाने खिली न खिली;
मलयाचलकी शीतल अरु मंद, सुगंध समीर चली न चली।
कलिकाल कुठार लिये फिरता तन कोमल चोट झिली न झिली;
रट ले हरिनाम अरी रसना, फिर अन्त समयमें हिली न हिली॥

ज्ञानदेवने मनको गुरु बनाया है। मनका सच्चा गुरु आत्मा है।

एकनाथ महाराजके पास एक वैष्णव आया। उसने महाराजसे पूछा कि 'आपका मन ईश्वरमें, सदा-सर्वदा श्रीकृष्णमें कैसे स्थिर रहता है? मेरा मन तो आधा घंटा भी प्रभुमें स्थिर नहीं रह सकता। मनको स्थिर करनेका कोई उपाय बतायें।'

एकनाथने सोचा कि उपदेश क्रियात्मक होना चाहिये। उन्होंने कहा कि ''जाने दे इस बातको अभी। मुझे लगता है कि 'तेरी मृत्यु समीप आ रही है।' मृत्युके पहले वैर और वासनाका त्याग करना चाहिये। वैर और वासना मृत्युको बिगाड़ती है। सात दिनोंके बाद फिर मेरे पास आना।''

मृत्युका नाम सुनते ही उस वैष्णवके तो मानो होश ही उड़ गये। वह घर लौटा। धन-सम्पत्ति आदि सब कुछ पुत्रके हाथोंमें सौंप दिया। उसने सबसे क्षमा-याचना की और वह ईश्वरका ध्यान करने लगा। सात दिनोंके बाद वह एकनाथ महाराजके पास आया।

महाराजने पूछा कि 'इन सात दिनोंमें तूने क्या-क्या किया? तूने कुछ पाप तो नहीं किया?' वैष्णवने उत्तर दिया कि 'मैं मृत्युसे ऐसा डर गया कि सब कुछ छोड़कर प्रभुके ध्यानमें लग गया।'

एकनाथने कहा कि 'मेरी एकाग्रताका यही रहस्य है मैं मृत्युको रोज याद करता हूँ। मैं मृत्युका डर मनमें रखकर सतत ईश्वरभजन करता हूँ, अतः सभी विषयोंसे मेरा मन हट जाता है और वह सदा-सर्वदा श्रीकृष्णमें एकाग्र रहता है।'

परमात्मामें मन तन्मय न हो सके तो कोई बात नहीं है, किंतु संसारके साथ कभी तन्मय न बनो।

परमात्माके ध्यानसे जीव ईश्वरमें मिल जाता है। ध्यान करनेवाला ध्येयमें मिल जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एक होते हैं। यही मुक्ति है, यही अद्वैत है।

दृष्टि, द्रष्टा और दर्शन एक होने चाहिये। साधन, साधक, और साध्य एक बनने चाहिये।

ध्याता, ध्यान और ध्येय तथा दर्शन, द्रष्टा और दृश्य एक बने तो समझो कि ध्यानमें और दर्शनमें एकरसता उत्पन्न हो गयी है। एकरसता होनेसे वह अन्य सब कुछ भूल जाता है और उसे ईश्वरके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं दीखता।

लोग परमात्माको धन देते हैं, किंतु वे तो मन माँगते हैं। व्यवहार तो करो किंतु ईश्वरमें, कृष्णमें मन रखकर करो। पनिहारिनें पानीसे भरे घड़े सिरपर रखकर बातचीत करती हुई चलती हैं, फिर भी उनका ध्यान सिरपर रखे हुए घड़ोंमें रहता है कि कहीं वे गिर न पड़ें। इसी तरह संसारके व्यवहार करते समय भी हमेशा ईश्वरका स्मरण भी करते रहो। जगत्के पदार्थोंमें आसक्ति न रखो।

विषयानन्दी व्यक्ति ब्रह्मानन्दको समझ नहीं सकता। ब्रह्मानन्दका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उपनिषद्में दृष्टान्त दिया गया है कि 'शक्कर (मिश्री)' से बनी हुई गुड़ियाने सागरकी गहराईको जाननेका प्रयत्न किया; किंतु वह सागरमें जो गयी सो गयी ही, उसीमें वह विलीन हो गयी। जो ईश्वरमें लीन हो गया हो, उस जीवको कोई ईश्वरसे भिन्न नहीं कर सकता। ज्यों-ज्यों ध्यान किया जाता है, त्यों-त्यों जीवका परमात्मामें लय होता जाता है और फिर जीवका जीवत्व रहता ही नहीं है।

जिसका यश महान् पुण्यप्रद है, उस मुरारि श्रीकृष्णके चरण-कमल संसार-सागरमें नौकारूप हैं। जो लोग उस चरण-कमल-नौकाके आश्रित हैं, उनके लिये संसार-सागर गौके खुर-टिके हुए गढ़ेके समान है। वे उसी नौकाके सहारे परमपदको पहुँच सकते हैं। फिर उन्हें विपत्तिके धाम इस संसारमें नहीं आना पड़ता। (भागवत १०। १४। ५८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म भगवान् हैं

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

गीताके अनुसार यह सिद्ध है कि 'ईश्वर अपनी इच्छासे अपनी प्रकृतिमें अधिष्ठित होकर जब चाहें तभी लीलासे अवतार धारण कर सकते हैं।' संसारमें भगवान्के अनेक अवतार हो चुके हैं, अनेक रूपोंमें प्रकट होकर मेरे उन लीलामय नाथने अनेक लीलाएँ की हैं—'**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि।**' कला और अंशावतारोंमें कई क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुके होते हैं, कुछ भगवान् शिवके होते हैं, कुछ सच्चिदानन्दमयी योगशक्ति देवीके होते हैं, किसीमें कम अंश रहते हैं, किसीमें अधिक, अर्थात् किसी लीलामें भगवान्की शक्ति-सत्ता न्यून प्रकट होती है, किसीमें अधिक। इसीलिये सूतजी महाराजने मुनियोंसे कहा है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा० १।३।२८)

मीन-कूर्मादि अवतार सब भगवान्के अंश हैं, कोई कला है, कोई आवेश है, परंतु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं।

वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्ण सब प्रकारसे पूर्ण हैं। उनमें सभी पूर्व और आगामी अवतारोंका पूर्ण समावेश है। भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त बल, अनन्त यश, अनन्त श्री, अनन्त ज्ञान और अनन्त वैराग्यकी जीवंत मूर्ति हैं। प्रारम्भसे लेकर लीलावसानपर्यन्त उनके सम्पूर्ण कार्य ही अलौकिक चमत्कारपूर्ण हैं। उनमें सभी शक्तियाँ प्रकट हैं। बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीने भगवान् श्रीकृष्णको अवतार माना है और लाला लाजपतराय आदि विद्वानोंने महान् योगेश्वर। परंतु इन महानुभावोंने भगवान् श्रीकृष्णको जगत्के सामने भगवान्की जगह पूर्ण मानवके रूपमें रखना चाहा है। मानव कितना भी पूर्ण क्यों न हो, वह है मानव ही, दूसरी ओर भगवान् भगवान् ही हैं, वे अचिन्त्य और अतर्क्य-शक्ति हैं। महामना बंकिम बाबूने अपने भगवान् श्रीकृष्णको सर्वगुणान्वित, सर्वपापसंस्पर्शशून्य, आदर्शचरित्र पूर्ण मानवके रूपमें विश्वके सामने उपस्थित करनेके अभिप्रायसे उनके अलौकिक ऐश्वर, मानवातीत, मानव-कल्पनातीत, शास्त्रातीत और नित्य-मधुर चरित्रोंको उपन्यास बतलाकर उड़ा देनेका प्रयास किया है, उन्होंने भगवान्के ऐश्वरभावके कुछ अंशको—जो उनके मनमें निर्दोष जँचा है— मानकर, शेष रस और ऐश्वरभावको प्रायः छोड़ दिया है। इसका कारण यही है कि वे भगवान् श्रीकृष्णको पूर्ण मानव आदर्शके नाते भगवान्का अवतार मानते थे, न कि भगवान्की स्वरूप-सत्तासे अलौकिक शक्तिके नाते। यह बात खेदके साथ स्वीकार करनी पड़ती है कि विद्या-बुद्धिके अत्यधिक अभिमानने भगवान्को तर्ककी कसौटीपर कसनेमें प्रवृत्त कराकर आज मनुष्य-हृदयको श्रद्धाशून्य, शुष्क, रसहीन बनाना आरम्भ कर दिया है। इसीलिये आज हम अपनेको भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंका माननेवाला कहते हैं, परंतु भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् माननेमें और उनके शब्दोंका सीधा अर्थ करनेमें हमारी बुद्धि सकुचाती है और ऐसा करनेमें हमें आज अपनी तर्कशीलता और बुद्धिमत्तापर आघात लगता हुआ-सा प्रतीत होता है। भगवान्का सारा जीवन ही दिव्य लीलामय है, परंतु उनकी लीलाओंको समझना आजके हम-सरीखे अश्रद्धालु मनुष्योंके लिये बहुत कठिन है, इसीसे उनकी चमत्कारपूर्ण लीलाओंपर मनुष्यको शंका होती है और इसीलिये आजकलके लोग उनके दिव्यरूपावतारसे पूतनावध, शकटासुर-अघासुरवध, अग्निपान, गोवर्धनधारण, दधि-नवनीतभक्षण, कालिय-दमन, चीरहरण, रासलीला, यशोदाको मुखमें विराट्रूप दिखलाने, सालभरतक बछड़े और बालकरूप बने रहने, पाञ्चालीका चीर बढ़ाने, अर्जुनको विराट्-स्वरूप दिखलाने और कौरवोंकी राजसभामें विलक्षण चमत्कार दिखलाने आदि लीलाओंपर संदेह करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि जिन परमात्माकी मायाने जगत्को मनुष्यकी बुद्धिसे अतीत नाना प्रकारके अद्भुत वैचित्र्यसे भर रखा है, उन मायापति भगवान्के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, बल्कि इन ईश्वरीय लीलाओंमें ही उनका ईश्वरत्व है, परंतु यह लीला मनुष्यबुद्धिसे अतर्क्य है। इन लीलाओंका रहस्य समझ लेना साधारण बात नहीं है। जो भगवान्के दिव्य जन्म और कर्मके रहस्यको तत्त्वतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लेता है, वह तो उनके चरणोंमें सदाके लिये स्थान ही पा जाता है। भगवान्‌ने कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४। ९)

'मेरे दिव्य जन्म और दिव्य कर्मको जो तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीर छोड़कर पुनः जन्म नहीं लेता; वह तो मुझको ही प्राप्त होता है।' जिसने भगवान्‌के दिव्य अवतार और दिव्य लीला-कर्मोंका रहस्य जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया। वह तो फिर भगवान्‌की लीलामें उनके हाथका एक यन्त्र बन जाता है। लोकमान्य लिखते हैं कि 'भगवत्प्राप्ति होनेके लिये (इसके सिवा) दूसरा कोई साधन अपेक्षित नहीं है, भगवत्‌की यही सच्ची उपासना है।' परंतु तत्त्व जानना श्रद्धापूर्वक भगवद्भक्ति करनेसे ही सम्भव होता है। जिन महात्माओंने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको यथार्थरूपसे जान लिया था, उन्हींमेंसे श्रीसूतजी महाराज थे, जो हजारों ऋषियोंके सामने यह घोषणा करते हैं कि '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' और भगवान् वेदव्यासजी तथा ज्ञानिप्रवर शुकदेवजी महाराज इसी चरणको अपनी रचनामें ग्रथित कर और गान कर इस सिद्धान्तका सानन्द समर्थन करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णको नारायण ऋषिका अवतार कहा गया है। नर-नारायण ऋषियोंने धर्मके हृदय और दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे उत्पन्न होकर महान् तप किया था। कामदेव अपनी सारी सेनासमेत बड़ी चेष्टा करके भी इनके व्रतका भंग नहीं कर सका (भागवत २। ७। ६)। ये दोनों भगवान् श्रीविष्णुके अवतार थे। देवीभागवतमें इन दोनोंको हरिका अंश (हरेरंशौ) कहा गया है (दे०भा० ४। ५। १५) और भागवतमें कहा गया है कि भगवान्‌ने चौथी बार धर्मकी कलासे नर-नारायण ऋषिके रूपमें आविर्भूत होकर घोर तप किया था। भागवत और देवीभागवतमें इनकी कथाका विस्तार है। महाभारत और भागवतमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको कई जगह नर-नारायणका अवतार बतलाया गया है (वनपर्व ४। १२, भीष्मपर्व ६६। ११, उद्योगपर्व ९६। ४६ आदि, श्रीमद्भागवत ११। ७। १८, १०। ८९। ३२-३३ आदि।)

दूसरे प्रमाण इस बातके भी मिलते हैं कि वे क्षीरसागरनिवासी भगवान् विष्णुके अवतार हैं। कारागारमें जब भगवान् प्रकट होते हैं, तब शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीविष्णुरूपसे ही पहले प्रकट होते हैं तथा भागवतमें गोपियोंके प्रसंगमें तथा अन्य स्थलोंमें उन्हें 'लक्ष्मी-सेवितचरण' कहा गया है, जिससे श्रीविष्णुका बोध होता है। भीष्मपर्वमें ब्रह्माजीके वाक्य हैं—

हे देवतागणो! सारे जगत्‌का प्रभु मैं इनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ, अतएव—

वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः॥
तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित् सुरसत्तमाः।
नावज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः॥

(महा०भीष्म० ६६। १३-१४)

'सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर इन वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ देवताओ! साधारण मनुष्य समझकर इनकी कभी अवज्ञा न करना। कारण, ये शङ्ख-चक्र-गदाधारी महावीर्य (विष्णु) भगवान् हैं।' जय-विजयकी कथासे भी उनका विष्णु-अवतार होना सिद्ध है। इस विषयके और भी अनेक प्रमाण हैं।

तीसरे इस बातके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम सच्चिदानन्दघन थे। भगवान्‌ने गीता और अनुगीतामें स्वयं स्पष्ट शब्दोंमें अनेक बार ऐसा कहा है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते॥

(गीता १०। ८)

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

सर्वलोकमहेश्वरम्॥

(गीता ५। २९)

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०। ४२)

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

(गीता १४। २७)

गीतामें ऐसे श्लोक बहुत हैं, उदाहरणार्थ थोड़े-से लिखे हैं। इनके सिवा महाभारतमें पितामह भीष्म, संजय, भगवान् व्यास एवं नारदके तथा श्रीमद्भागवतमें नारद, ब्रह्मा, इन्द्र, श्रीगोपीजन, ऋषिगण आदिके ऐसे अनेक वाक्य हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण पूर्ण परात्पर सनातन ब्रह्म हैं। अग्रपूजाके समय भीष्मजी कहते हैं—

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः॥

(महा०सभा० ३८। २३-२४)

'श्रीकृष्ण ही लोकोंके अविनाशी उत्पत्तिस्थान हैं, इस चराचर विश्वकी उत्पत्ति इन्हींके लिये हुई है। ये ही अव्यक्त प्रकृति और सनातन कर्ता हैं, ये ही अच्युत सर्वभूतोंसे श्रेष्ठतम और पूज्यतम हैं।' जो ईश्वरोंके ईश्वर होते हैं, वे ही महेश्वर या परब्रह्म कहलाते हैं—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्।

(श्वेताश्वतर उ० ६। ७)

मनुष्यरूप असुरोंके अत्याचारों और पापोंके भारसे घबराकर पृथ्वीदेवी गौका रूप धारण कर ब्रह्माजीके साथ जगन्नाथ भगवान् विष्णुके समीप क्षीरसागरमें जाती हैं। (भगवान् विष्णु व्यष्टि पृथ्वीके अधीश्वर हैं, पालनकर्ता हैं। इसीसे पृथ्वी उन्हींके पास गयी।) तब भगवान् कहते हैं—'मुझे पृथ्वीके दुःखोंका पता है, ईश्वरोंके ईश्वर कालशक्तिको साथ लेकर पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये पृथ्वीपर विचरण करेंगे। देवगण उनके आविर्भावसे पहले ही वहाँ जाकर यदुवंशमें जन्म ग्रहण करें।'

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥

'साक्षात् परम पुरुष भगवान् वसुदेवके घरमें अवतीर्ण होंगे, अतः देवाङ्गनागण उनकी सेवाके लिये वहाँ जाकर जन्म ग्रहण करें।' फिर कहा कि 'वासुदेवके कलास्वरूप सहस्रमुख अनन्तदेव श्रीहरिके प्रियसाधनके लिये पहले जाकर अवतीर्ण होंगे और भगवती विश्वमोहिनी माया भी प्रभुकी आज्ञासे उनके कार्यके लिये अवतार धारण करेंगी।' इससे भी यह सिद्ध होता है, भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म थे। अब यह शंका होती है कि यदि वे पूर्ण ब्रह्मके अवतार थे तो नर-नारायण और श्रीविष्णुके अवतार कैसे हुए और भगवान् विष्णुके अवतार तथा नर-नारायण ऋषिके अवतार थे तो पूर्ण ब्रह्मके अवतार कैसे? इसका उत्तर यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण वास्तवमें पूर्ण ब्रह्म ही हैं। वे साक्षात् स्वयं भगवान् हैं, उनमें सारे भूत, भविष्य, वर्तमानके अवतारोंका समावेश है। वे कभी विष्णुरूपसे लीला करते हैं, कभी नर-नारायणरूपसे और कभी पूर्ण ब्रह्म—सनातन ब्रह्मरूपसे। सारांश यह कि वे सब कुछ हैं—वे पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, वे सनातन ब्रह्म हैं, वे गोलोकविहारी महेश्वर हैं, वे क्षीरसागरशायी परमात्मा हैं, वे वैकुण्ठ-निवासी विष्णु हैं, वे सर्वव्यापी आत्मा हैं, वे बदरिकाश्रमसेवी नर-नारायण ऋषि हैं, वे प्रकृतिमें गर्भ स्थापन करनेवाले विश्वात्मा हैं और वे विश्वातीत भगवान् हैं। भूत, भविष्यत् तथा वर्तमानमें जो कुछ है वे वह सब कुछ हैं और जो उनमें नहीं है, वह कभी कुछ भी कहीं नहीं था, न है और न होगा। बस, जो कुछ है, सब वे ही हैं, इसके सिवा वे क्या हैं, यह एकमात्र वे ही जानते हैं। हमारा कर्तव्य तो उनकी चरणधूलिकी भक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करनामात्र है, इसके सिवा और किसी बातमें न तो हमारा अधिकार है और न इस परम साधनका परित्याग करके अन्य प्रपंचमें पड़नेसे लाभ ही।

साधकोंका कर्तव्य

जो लोग विद्वान् हैं, तर्कशील हैं, वे अपने इच्छानुसार भगवान् श्रीकृष्णके जीवनकी समालोचना करें—उन्हें महापुरुष मानें, योगेश्वर मानें, परमपुरुष मानें, पूर्ण मानव मानें, अपूर्ण मानें, राजनीतिक नेता मानें, कुटिल नीतिज्ञ मानें, संगीत-विद्या-विशारद मानें या कविकल्पित पात्र मानें, जो कुछ मनमें आये, वह मानें। साधकोंकी दृष्टिमें तो—साँवरे मनमोहनके चरण-कमल ही दीनजनोंके लिये अंधेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकड़ी हैं, कंगालके धन हैं, प्यासेके पानी हैं, भूखेकी रोटी हैं, निराश्रयके आश्रय हैं, निर्बलके बल हैं, प्राणोंके प्राण हैं, जीवोंके जीवन हैं, देवोंके देव हैं, ईश्वरोंके ईश्वर हैं और ब्रह्मोंके ब्रह्म हैं, सर्वस्व वे ही हैं—बस,

मोहन बसि गयौ मेरे मन में।
लोकलाज, कुलकानि छूटि गयी, वाकी नेह लगन में॥
जित देखूँ तित ही वह दीखै, घर, बाहर, आंगन में।
अंग-अंग प्रति रोम-रोम में, छाय रह्यौ तन-मन में॥
कुंडल झलक कपोलन सोहै, बाजूबंद भुजन में।
कंकन कलित, ललित बनमाला, नूपुर-धुनि चरनन में॥
चपल नैन, भ्रकुटी बर बाँकी, ठाढ़ौ सघन लतन में।
नारायन बिन मोल बिकी हूँ, याकी नैक हसन में॥

अतएव साधकोंको बड़ी सावधानीसे अपने साधन-पथकी रक्षा करनी चाहिये। मार्गमें अनेक बाधाएँ हैं। विद्या, बुद्धि, तप, दान, यज्ञ आदिके अभिमानकी बड़ी-बड़ी घाटियाँ हैं, भोगोंकी अनेक मनहरण वाटिकाएँ हैं, पद-पदपर प्रलोभनकी सामग्रियाँ बिखरी हैं, कुतर्कका जाल तो सब ओर बिछा हुआ है, दम्भ-पाखंण्डरूपी मार्गके ठग चारों ओर फैल रहे हैं, मान-बड़ाईके दुर्गम पर्वतोंको लाँघनेमें बड़ी वीरतासे काम लेना पड़ता है, परंतु श्रद्धाका पाथेय, भक्तिका कवच और प्रेमका अङ्गरक्षक सरदार साथ होनेपर कोई भय नहीं है। उनको जानने, पहचानने, देखने और पानेके लिये इन्हींकी आवश्यकता है। कोरे सदाचारके साधनोंसे और बुद्धिवादसे काम नहीं चलता। भगवान्‌के ये वचन स्मरण रखने चाहिये—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

'हे अर्जुन! शत्रुसूदन! जिस प्रकार तुमने मुझे देखा है, उस प्रकार वेदाध्ययन,तप, दान और यज्ञसे मैं नहीं देखा जा सकता। केवल अनन्य भक्तिसे ही मेरा देखा जाना, तत्त्वसे समझा जाना और मुझमें प्रवेश होना सम्भव है।'

भक्तिके अन्तराय

(डॉ० श्रीशम्भुशरणजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भगवद्‌भक्तिकी प्राप्तिके लिये भक्तिके अन्तरायोंसे बचकर रहना चाहिये। वस्तुतः भक्तिके क्षेत्रमें 'करणीय' के साथ-साथ कुछ 'अकरणीय' भी है। देवर्षि नारदने कुछ ऐसे ही अन्तरायोंकी चर्चा की है। लोक-हानिकी चिन्ता[1], लौकिक और वैदिक व्यवहारोंके परित्यागका मात्र अभिनय[2], स्त्री, धन, नास्तिक और शत्रुके चरित्रका श्रवण[3] तथा अभिमान और दम्भ[4]—कुछ ऐसे अन्तराय हैं, जिनके रहते भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अभिमान और कुटिलता भक्तिके बड़े बाधक हैं। भक्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको कभी यह नहीं मानना चाहिये कि मैं कामिनी-काञ्चनका त्यागी हूँ, परम आस्तिक हूँ, अजातशत्रु हूँ; क्योंकि तनिक भी अभिमान आ जानेपर वह पतनका हेतु बन जाता है। सम्पत्ति, स्वास्थ्य, विद्या, बुद्धि, कुल, वर्ण, आश्रम, आचार, रूप, पद, पुरुषत्व आदि किसी भी विषयका अभिमान नहीं करना चाहिये। यहाँतक कि निरभिमानताके अभिमानको भी छोड़ देना चाहिये। 'मैं अभिमानी नहीं हूँ'—यह भी अभिमान ही है। इसे 'निरभिमानताका अभिमान' कहते हैं। ढोंग करनेको 'दम्भ' कहते हैं। जो गुण अपनेमें न हों, उनको किसी धन-मानके लोभवश या मात्र दुष्ट स्वभाववश अपनेमें

१-लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात्॥ (ना० भ० सूत्र ६१)
२-न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किंतु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव॥ (ना० भ० सूत्र ६२)
३-स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम्॥ (ना० भ० सूत्र ६३)
४-अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्।। (ना० भ० सूत्र ६४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शित करना और तदर्थ कपट-वेष धारण करना दम्भ है। 'मैं बड़ा भक्त हूँ'—यह जतानेके लिये कपटपूर्ण वेष-भूषा धारण करना दम्भ है। कपटरूपी खटाई भक्तिरूपी क्षीरको फाड़ देती है[5]। अभिमान और दम्भके साथ सूत्रकारने 'आदि' पदका योग (**अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्**) समस्त आसुरी सम्पदाओंकी ओर लक्ष्य करनेके अभिप्रायसे किया है। ये आसुरी सम्पदाएँ नितान्त परित्याज्य हैं, जिनका वर्णन गीता (१६। ४)में इस प्रकार हुआ है—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥

अर्थात् 'हे पार्थ! पाखण्ड, घमंड, अभिमान, क्रोध, कठोर स्वभाव एवं कटु भाषण और अज्ञान—ये सभी आसुरी सम्पदाको प्राप्त व्यक्तिके लक्षण हैं।' काम-क्रोध भक्तिके प्रबल अन्तराय हैं। काम ईश्वरके प्रति करना चाहिये। भगवान्‌के साथ तन्मय होनेका यह सबसे अच्छा उपाय है। क्रोधादिका प्रयोग अन्य आसुरी सम्पदाओंका विनाश करनेके लिये करना चाहिये। भक्तिके बड़े अन्तरायोंमें दुःसंग निर्विवादरूपसे स्वीकृत है। वस्तुतः सत्संगकी विधिमें ही दुःसंगका निषेध गम्य है, परंतु सत्संगपर बल देने और दुःसंगकी अनिष्टकारकतापर विशेषरूपसे ध्यान आकृष्ट करनेके लिये स्वतन्त्र-रूपमें इसका कथन किया गया है। श्रीमद्भागवत-महापुराण (३। ३१। ३२-३४) में कुसंगको भक्तिका अन्तराय मानकर इसे सर्वथा त्याज्य कहा गया है—

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत्॥
सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम्॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च॥

अर्थात् 'सन्मार्गमें चलते हुए यदि इसका किन्हीं जिह्वा और उपस्थेन्द्रियके भोगमें लगे हुए विषयी पुरुषोंसे समागम हो जाता है और वह उनमें आस्था करके उन्हींका अनुगमन करने लगता है तो पहलेके समान ही फिर नारकी योनियोंमें पड़ता है। जिनके संगसे इसके सत्य, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया,वाणीका संयम, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियोंका संयम तथा ऐश्वर्य आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं, उन अत्यन्त शोचनीय, स्त्रियोंके क्रीडामृग, अशान्त, मूढ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका संग कभी नहीं करना चाहिये।' श्रीरामचरितमानस (५। ४५। ४) में गोस्वामी तुलसीदासजीने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीसे दुःसंगकी निन्दा इस प्रकार करवायी है—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

परंतु भक्तिके अन्तरायोंके संदर्भमें यह दुःसंग व्यापक अर्थमें प्रयुक्त है। इन्द्रियोंका कोई विषय, जो हमारे मनमें असद्विचार तथा विषयोंकी लालसा उत्पन्न करे और भगवत्प्राप्तिके मार्गसे हमारे चित्तको विचलित कर दे, वह दुःसंग है। सत्संगकी प्रवृत्ति भगवत्कथा, भगवच्चर्चा, भगवन्नाम, भगवत्प्रीति, सदाचार, शास्त्रानुरक्ति, विवेक, वैराग्य, सदभ्यास, सरलता, नम्रता, क्षमा, तितिक्षा, शौच, दया, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निरभिमानता, शान्ति और सेवा आदिसे होती है। स्पष्ट है कि सत्संगकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाले इन गुणोंके विरोधी धर्म यथा—विषयवार्ता, जगच्चर्चा, लोकनिन्दा, भोगप्रीति, दुराचार, उच्छृंखलता, अविवेक, विषय-लोलुपता, दुष्टाभ्यास, मान, दम्भ, घमंड, क्रोध, असहिष्णुता, अपवित्रता, निर्दयता, हिंसा, असत्य, इन्द्रिय-लम्पटता और अभिमान—ये सभी भक्तिके अन्तराय हैं और कुसंगकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहित करते हैं। यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि सत्संग एवं दुःसंगकी इन प्रवृत्तियोंमें परस्पर भक्ष्य-भक्षकभाव-सम्बन्ध है। नारदभक्तिसूत्रके तैंतालीसवें एवं चौवालीसवें सूत्रमें दुःसंगको काम-क्रोधादिका

५-जल पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि। बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥
(रा० च० मा० बालकाण्ड, सोरठा ५७ (ख))

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल एवं सर्वनाशका कारण कहा गया है।[६] गीतामें भी ऐसा ही कहा गया है।[७] काम तो कभी तृप्त ही नहीं होता।[८] कुसंगजन्य विषयासक्तिकी कारणमाला-रूप गतिका उल्लेख गीतामें इस प्रकार किया गया है—विषय-चिन्तन, विषयासक्ति, कामना, क्रोध, सम्मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश तथा सर्वनाश। काम-क्रोधादिको कभी छोटा नहीं मानना चाहिये। नारदभक्तिसूत्रके पैंतालीसवें सूत्रका आशय यह है कि यदि काम-क्रोध तरंगकी भाँति लघु हों तो भी दु:संगसे महासागर बनकर अपने आश्रयको आक्रान्त कर लेते हैं[९]। भक्तिके अन्तरायोंमें वाद-विवाद बड़ा ही भयंकर है, इस वाद-विवादका कोई अन्त नहीं है; क्योंकि वाद-विवादमें बाहुल्यका अवकाश है और वह अनियत है।[१०] वाद-विवादमें लगनेका अर्थ ही है सर्वात्मसमर्पण-भावका अभाव, क्योंकि वादीको तो वह समय भगवच्चिन्तन और भगवच्चर्चामें लगाना था। तर्कसे परमतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती। यह सत्य है कि '**वादे वादे जायते तत्त्वबोधः**', किंतु यह वहाँके लिये कहा गया है, जहाँ जिज्ञासापूर्वक शिष्य गुरुसे तर्क करता है और उसके प्रत्येक तर्कको महत्तर तर्कसे खण्डित कर गुरु अपने शिष्यको तत्त्वका सम्यक् बोध कराते हैं। परंतु गुरु-शिष्य-सम्बन्धके अभावमें विरोधी-मत-खण्डनार्थ ही जहाँ तर्क किया जाय, वह तर्क वैर-वर्धक होता है। '**वादे वादे जायते तत्त्वबोधः**'के साथ ही '**वादे वादे वर्धते वैरवह्निः**' भी कहा गया है। इसीलिये ब्रह्मसूत्रमें तर्ककी अप्रतिष्ठा कही गयी है।[११] यदि कोई विवादी ताल ठोंके भी तो '**मौनं सर्वार्थसाधनम्**'—समझकर चुप ही रह जाना चाहिये। ऐसी बात सुने ही नहीं, जिससे अपने विश्वासमें बाधा आ जाय। ऐसी बात स्वयं भी न करे, जिससे किसीका जी दुखे। इसीलिये देवर्षि नारदने वाद-विवादमें न फँसनेका आदेश दिया है।[१२] श्रीमद्भगवद्गीतामें भी जिस आसुरी सम्पत्तिकी विशद चर्चा है,[१३] वह भक्तिका बड़ा अन्तराय है, अतः सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रसंगमें काम, क्रोध और लोभको 'नरकका द्वार' कहा गया है।[१४] नाना पुराणनिगमागमसार श्रीरामचरितमानसमें, भगवच्चरणमें श्रद्धाके अभाव, सत्संगाभाव, रामरतिके अभाव, नींद, विषयवासना और अभिमानको भक्तिके अन्तरायोंके रूपमें बताया गया है—

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

× × ×

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नीद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥

(१। ३८। ७—९, ३९। १—४)

किंतु भक्तिके इन सभी अन्तरायोंकी एक ही रामबाण औषध है और वह है श्रीरामकृपा।[१५]

जो मनुष्य दूसरोंकी आजीविकाका नाश करते हैं, दूसरोंके घर उजाड़ते हैं, दूसरेकी स्त्रीका उसके पतिसे बिछोह कराते हैं, मित्रोंमें भेद उत्पन्न कराते हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं।—महाभारत

पुत्र, स्त्री, मित्र, भाई और सम्बन्धियोंके मिलनको मुसाफिरोंके मिलनेके समान समझना चाहिये। जैसे नींद छूटनेके साथ ही स्वप्नका भी नाश हो जाता है, वैसे ही इस देहके नाश होनेके साथ ही सब सम्बन्धी भी छूट जाते हैं।

—श्रीमद्भागवत

६-दु:सङ्गः सर्वथैव त्याज्यः। कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात्। ७-श्रीमद्भगवद्गीता (२। ६२-६३), ८-श्रीमद्भगवद्गीता (३। ३७), ९-तरङ्गायिता अपीमे सङ्गात् समुद्रायन्ति। १०-बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च॥ (ना० भ० सूत्र ७५), ११-तर्काप्रतिष्ठानात् (ब्रह्मसूत्र १। १। ११), १२-वादो नावलम्ब्यः (ना० भ० सूत्र ७४), १३-गीता (१६। ७—२०), १४-गीता (१६। २१)।

१५-सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥ सोइ सादर सर मज्जनु करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥ (रा० च० मा० १। ३९। ५-६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

गीताकी विलक्षण बात

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्की कही हुई गीता बहुत ही विचित्र है! गीतापर ज्यों-ज्यों विचार करें, त्यों-ही-त्यों इसकी विलक्षणता मिलती ही चली जाती है। अगर मनुष्यको सम्पूर्ण संसारका आधिपत्य मिल जाय, इन्द्रका राज्य मिल जाय, कुबेरका धन मिल जाय, ब्रह्माजीका पद मिल जाय, तो भी उसका दुःख नहीं मिट सकता। परंतु वह गीतामें कही हुई बात मान ले तो उसका दुःख टिक नहीं सकेगा; सदाके लिये मिट जायगा। उसका संताप, जलन, उद्वेग, हलचल, चिन्ता, शोक, भय आदि सभी आफतें मिट जायँगी और वह सदाके लिये कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य और प्राप्तप्राप्तव्य हो जायगा अर्थात् उसके लिये कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहेगा; क्योंकि यह वास्तविकता है। गीताकी ऐसी विलक्षण महिमा है कि जिसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। कारण कि वर्णन करनेमें वाणी सीमित है, चिन्तन करनेमें मन सीमित है, निश्चय करनेमें बुद्धि सीमित है। परंतु भगवान्की वाणी असीम है। प्रकृतिजन्य सम्पूर्ण पदार्थ सीमित हैं। प्रकृतिसे अतीत तत्त्वका वर्णन प्रकृतिका कार्य भी नहीं कर सकता, फिर मनुष्य क्या वर्णन करेगा! मनुष्य प्रकृतिको भी पूरा नहीं जान सकता, फिर प्रकृतिसे अतीत तत्त्वको कैसे जानेगा?

गीता स्पष्टरूपसे कहती है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (७। १९) 'सब कुछ वासुदेव ही है'। इस बातको केवल स्वीकार कर लें। ऐसा देखनेमें, समझनेमें, अनुभवमें नहीं आये, तो भी गीतामें आये भगवान्के वचनको श्रद्धा-विश्वासपूर्वक दृढ़तासे स्वीकार कर लें। फिर भगवत्कृपासे यह बात स्वतः समझमें आ जायगी; क्योंकि तत्त्वसे वास्तवमें यही है। जैसी बात वास्तवमें है, वैसी बात मान लेनेसे वह धीरे-धीरे भीतर बैठ जाती है और फिर भगवत्कृपासे साफ दीखने लग जाती है। सब कुछ भगवान् ही हैं—यह ऊँची-से-ऊँची बात है और बड़ी सुगमतासे प्राप्त की जा सकती है। अब इसकी प्राप्तिका साधन बताया जाता है।

(१)

भगवान् कहते हैं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(गीता २। १६)

'असत्की सत्ता विद्यमान नहीं है और सत्का अभाव विद्यमान नहीं है।'

—इन सोलह अक्षरोंमें सम्पूर्ण वेद, पुराण, शास्त्रका तात्पर्य भरा हुआ है! असत् और सत्—इन दोको ही प्रकृति और पुरुष, क्षर और अक्षर, शरीर और शरीरी, अनित्य और नित्य, नाशवान् और अविनाशी आदि नामोंसे कहा गया है। देखनेमें, सुननेमें, समझनेमें, चिन्तन करनेमें, निश्चय करनेमें जो कुछ भी आता है, वह सब 'असत्' है। जिसके द्वारा देखते, सुनते, चिन्तन करते हैं, वह भी 'असत्' है और दीखनेवाला भी असत् है। असत्की सत्ता विद्यमान नहीं है और सत्का अभाव विद्यमान नहीं है—इसका तात्पर्य है कि एक सत्-तत्त्व (परमात्मा) के सिवाय कुछ भी नहीं है।

यह सबके प्रत्यक्ष अनुभवकी बात है कि अपने रागके कारण दीखनेवाले शरीर और संसार एक क्षण भी स्थिर नहीं रहते, प्रत्युत हरदम मिट रहे हैं। जैसे, पहले हम बालक थे। हमने बालकपनको कभी छोड़ा नहीं, फिर भी वह छूट गया। ऐसे ही जवानी भी छूट रही है, वृद्धावस्था भी छूट रही है और शरीर भी छूट रहा है। सब-का-सब संसार, तीनों लोक, चौदह भुवन, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निरन्तर अभावमें जा रहे हैं—**'नासतो विद्यते भावः'**। परंतु परमात्मा और उसके अंश जीवात्माका कभी अभाव नहीं होता—**'नाभावो विद्यते सतः'**। हमने अपने जीवनमें कई कथाएँ सुनी हैं, व्याख्यान सुने हैं, शास्त्र पढ़े हैं, पर ऐसा कहीं सुनने, पढ़नेमें नहीं आया कि परमात्मा बदल गये, पहलेवाले नहीं रहे! परमात्मा तो 'है' और संसार 'नहीं' है—इन दोनोंके एक ही अन्त (तत्त्व) का तत्त्वदर्शी, अनुभवी महापुरुषोंने अनुभव किया है अर्थात् इन दोनोंका निष्कर्ष एक परमात्मतत्त्व ही है—**'उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः'** (गीता २। १६)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य है कि सत् (अपरिवर्तनशील) और असत् (परिवर्तनशील)—दोनों अलग-अलग हैं। सत् असत् नहीं हो सकता और असत् सत् नहीं हो सकता; परंतु तत्त्वसे दोनों एक ही हैं। गीतामें आया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(५। १८)

तात्पर्य है कि ब्राह्मण और चाण्डाल, गाय और कुत्ता, हाथी और चींटी—दोनों अलग-अलग होनेपर भी ज्ञानी उनमें एक समरूप परमात्माको देखता है। इसी तरह सत् और असत् अलग-अलग होनेपर भी भक्त उनमें एक भगवान्‌को ही देखता है—**'त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्'** (गीता ११।३७)। जैसे दिन और रात—दोनों सापेक्ष हैं, दिनकी अपेक्षा रात है और रातकी अपेक्षा दिन है, पर सूर्यमें न दिन है, न रात है अर्थात् वह निरपेक्ष है। ऐसे ही सत् और असत् दोनों सापेक्ष हैं, पर परमात्मतत्त्व निरपेक्ष है। इसलिये तत्त्वदर्शी महापुरुष सत् और असत्—दोनोंके एक ही तत्त्व सत्-तत्त्व अर्थात् (परमात्मतत्त्व) का अनुभव करते हैं।

जो 'है', वह तो है ही और जो 'नहीं' है, वह है ही नहीं—

है सो सुन्दर है सदा, नहिं सो सुन्दर नाहिं।
नहिं सो परगट देखिये, है सो दीखे नाहिं॥

जो मिट रहा है, वह संसार है और जो रह रहा है, वह परमात्मा है। जैसे गङ्गाजीका प्रवाह निरन्तर बहता हुआ समुद्रमें जा रहा है। रात्रिमें हम छिपकर परीक्षा करें तो भी उसका प्रवाह ज्यों-का-त्यों बह रहा है। गङ्गाजीको कोई देखे या न देखे, कोई जाने या न जाने, कोई माने या न माने, कोई परवाह नहीं। उसका प्रवाह तो निरन्तर अपने-आप, स्वाभाविक बह रहा है। ऐसे ही यह सब-का-सब संसार निरन्तर बह रहा है। इस बहते हुए संसारमें वह परमात्मा ही 'है'-रूपसे दीख रहा है। 'संसार है'—इसमें 'संसार' तो मिट रहा है और 'है' रह रहा है।

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

(मानस, बाल० ११७।४)

यह जो संसार दीख रहा है, इसकी खुदकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, प्रत्युत यह परमात्माकी ही एक आभा है, झलक है, प्रकाश है। अतः संसारपर दृष्टि न रखकर परमात्माकी तरफ ही दृष्टि रखना है, 'नहीं' को न देखकर 'है' को ही देखना है। इसीको गीताने **'वासुदेवः सर्वम्'** कहा है। तात्पर्य है कि वह सत् ही असत्-रूपसे दीख रहा है—**'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९। १९)। परमात्मतत्त्व ही संसाररूपसे दीख रहा है। जैसे चनेका आटा (बेसन) गेहूँ, बाजरी आदिके आटेसे भी फीका होता है, उसमें मिठास नहीं होती। उस आटेकी बूँदी बनाते हैं। फिर उस बूँदीको चीनीकी चाशनीमें डाल देते हैं। इससे वह मीठी बूँदी बन जाती है। वह बूँदी खानेमें बड़ी मीठी लगती है। उस बूँदीके आठ-दस दाने मुखमें लेकर कुछ देर चूसते रहें तो वह बिलकुल फीकी हो जाती है। कारण कि वह तो फीकी ही थी। उसमें जो मिठास थी, वह उसकी न होकर चीनीकी थी। इसी तरह संसार भी फीका है अर्थात् संसारका जो 'है'-पना है, वह संसारका न होकर परमात्माका ही है। केवल रागके कारण ही इसका 'है'-पना दीखता है। परंतु यह दृष्टान्त एकदेशीय है। कारण कि बूँदीको चूसनेसे उसकी मिठास तो निकल जाती है, पर फीका बेसन शेष रह जाता है। परंतु परमात्माका अनुभव होनेपर संसारका संसाररूपसे अत्यन्त अभाव हो जाता है, कुछ भी नहीं बचता, प्रत्युत परमात्मा ही बचते हैं—**'शिष्यते शेषसंज्ञः'***।

(२)

संसारमें दो चीजें हैं—पदार्थ और क्रिया। मात्र पदार्थ और क्रियाएँ भगवान्‌की हैं और भगवान्‌का ही स्वरूप हैं। इसलिये भगवान् कहते हैं कि जितने भी पदार्थ हैं और जितनी भी क्रियाएँ हैं, उन सबको अपना न मानकर मेरे अर्पण कर दो—

* गीतामें आया है—'यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥' (४। ३७)। यहाँ भी ऐसा समझना चाहिये कि अग्निसे लकड़ियाँ जलनेपर राख शेष रह जाती है, पर ज्ञानरूपी अग्निसे कर्म जलनेपर कर्म और कर्मफल (पदार्थमात्र) कुछ भी शेष नहीं रहता, प्रत्युत परमात्मतत्त्व ही शेष रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

'जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य प्राप्त पदार्थ) को भक्तिपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस मेरेमें तल्लीन हुए अन्तःकरणवाले भक्तके द्वारा भक्तिपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ अर्थात् अपनेमें मिला लेता हूँ।'

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

धन, जमीन, मकान, कपड़े, गहने, अपना शरीर, माँ-बाप, स्त्री, बच्चे, भाई-बहन आदि जो कुछ है, सब-के-सब भगवान्‌के अर्पण कर दें। अर्पण करनेका अर्थ है—उनमें मेरापन छोड़ दें। अर्पण करनेसे वस्तुएँ तो तोलाभर भी घटेंगी नहीं, पर अर्पक (अर्पण करनेवाला) निहाल हो जायगा। कारण कि अर्पित वस्तु भगवान्‌की और भगवत्स्वरूप ही थी। उसको अपना मानना अर्पककी गलती थी। अतः अर्पित करनेसे अर्पककी गलती मिट गयी, बेसमझी मिट गयी, आफत मिट गयी! अर्पण करनेसे भगवान्‌की पुष्टि हो जायगी, उनका खजाना बढ़ जायगा, यह बात भी नहीं है। भगवान्‌ने आत्मने पद '**कुरुष्व**' पदका प्रयोग किया है—'**तत्कुरुष्व मदर्पणम्**'। तात्पर्य है कि हम अर्पण करके भगवान्‌का घाटा नहीं मिटाते हैं, प्रत्युत अपना ही घाटा, अपनी ही आफत मिटाते हैं अर्थात् अर्पण करनेका हमें ही फल मिलेगा, हमारा ही कल्याण होगा। अगर ठीक अर्पण किया जाय तो अर्पक, अर्पण और अर्प्य—तीनों एक अर्थात् भगवत्स्वरूप हो जायँगे। कारण कि अर्पक (अर्पण करनेवाला), अर्पणरूपी क्रिया और अर्प्य (अर्पित की जानेवाली वस्तु)—तीनों तत्त्वसे एक परमात्मा ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

ठाकुरजीको भोग लगाकर फिर प्रसाद देते हैं तो करोड़पति-अरबपति सेठ भी प्रसाद लेनेके लिये हाथ फैलाते हैं और एक कणका भी मिल जाय तो खुश हो जाते हैं। क्या वे मिठाईके भूखे हैं? अगर हम कहें कि ये मिठाई माँगते हैं, इनको दस रुपयेकी मिठाई लाकर दे दो, तो वे नाराज हो जायँगे। कारण कि वे मिठाईके नहीं, प्रसादके भूखे हैं। ठाकुरजीके अर्पण करनेसे वह वस्तु प्रसाद हो गयी, महान् पवित्र अर्थात् भगवत्स्वरूप हो गयी! इसी तरह हम सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर दें तो वह सब-का-सब प्रसाद हो जायगा। हम भोजन करें तो ठाकुरजीका प्रसाद, कपड़ा पहनें तो ठाकुरजीका प्रसाद, माताएँ-बहनें गहने पहनें तो ठाकुरजीका प्रसाद—सब कुछ ठाकुरजीका प्रसाद अर्थात् भगवत्स्वरूप हो जायगा!

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥

(मानस, अयोध्या० १२९। १)

भगवान्‌के अर्पण करनेका तात्पर्य है—मेरापन छोड़ना। मेरापन करनेसे वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं और मेरापन छोड़नेसे महान् पवित्र अर्थात् भगवत्स्वरूप हो जाती हैं। आस्तिक गृहस्थोंके घरमें ठाकुरजीका मन्दिर होता है और माताएँ-बहनें घरवालोंसे पूछती हैं कि आज ठाकुरजीके लिये क्या बनेगा? यह हमारी हिन्दू संस्कृतिकी सभ्यता है। रसोई भी अपने लिये नहीं बनती, प्रत्युत ठाकुरजीके लिये बनती है। गीता कहती है—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(३। १३)

'जो केवल अपने लिये ही पकाते हैं, वे पापीलोग पापका ही भक्षण करते हैं।'

अगर यह कहें कि आज ठंडी ज्यादा है, इसलिये ठाकुरजीको गरमागरम हलवेका भोग लगाओ, और अपने मुँहमें पानी आता हो तो यह ठाकुरजीके भोग नहीं लगेगा; क्योंकि यह जूठन हो गया। परंतु ठाकुरजीके लिये बनी हुई रसोईमें नमककी परीक्षा करनेके लिये थोड़ी चीज लेकर (रसोईके बाहर जाकर) चख भी लें तो वह रसोई जूठी नहीं होगी। इस प्रकार मनमें खानेकी हो तो न चखनेपर भी वह जूठन हो जाता है और मनमें खानेकी न हो तो नमककी परीक्षाके लिये चखनेपर भी वह जूठन नहीं होता, क्योंकि भावकी प्रधानता है। इसलिये अपने मनमें खानेकी न हो और ठाकुरजीको भोग लगाया जाय। फिर उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुरजीका प्रसाद समझकर आनन्दपूर्वक पाया जाय। अन्नकूटका प्रसाद होता है, उसमें रसगुल्ला भी होता है और करेलेका साग भी होता है। एक मीठा है, एक कड़वा है, पर दोनों ही प्रसाद हैं। प्रसादमें स्वाद-दृष्टि नहीं रखी जाती, प्रत्युत स्वादमें प्रसाद-दृष्टि रखी जाती है; क्योंकि प्रसाद इन्द्रियोंका विषय नहीं है, प्रत्युत भगवद्भावका विषय है। इसी तरह सम्पूर्ण पदार्थों और क्रियाओंको भगवान्‌के अर्पण कर दें तो वह सब ठाकुरजीका प्रसाद अर्थात् भगवत्स्वरूप हो जायगा। कारण कि सब वस्तुएँ (क्रिया और पदार्थ) भगवान्‌की हैं तो वस्तुओंमें और भगवान्‌में कोई फर्क नहीं हुआ। जैसे धन धनवान्‌का है तो धनमें और धनवान्‌में कोई फर्क नहीं है; क्योंकि धनके बिना धनवान् नहीं है और धनवान्‌के बिना धन नहीं है (धन मिट्टीकी तरह है)। क्रिया और पदार्थ प्रकृतिका कार्य (संसार) है और प्रकृति भगवान्‌की शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान्‌में एकता होती है। शक्तिके बिना शक्तिमान् नहीं है और शक्तिमान्‌के बिना शक्ति नहीं है*। अतः भगवान्‌की होनेसे सब वस्तुएँ भगवत्स्वरूप ही हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'**।

ऐसा मान लें कि हम भगवान्‌के ही हैं, भगवान्‌के घरमें रहते हैं, भगवान्‌के ही घरका काम करते हैं, भगवान्‌का ही दिया हुआ प्रसाद पाते हैं और भगवान्‌के दिये हुए प्रसादसे भगवान्‌के ही जनोंकी सेवा करते हैं। इस बातको सब-के-सब मान सकते हैं। भाई हो या बहन हो, छोटा हो या बड़ा हो, समझदार हो या बेसमझ हो, पढ़ा-लिखा हो या अपढ़ हो, बीमार हो या स्वस्थ हो, किसी वर्णका हो, किसी आश्रमका हो, किसी वेशका हो, किसी देशका हो, किसी सम्प्रदायका हो, सब-के-सब इस बातको मान सकते हैं अर्थात् सम्पूर्ण क्रियाओं और पदार्थोंको तथा अपने-आपको भगवान्‌के समर्पित कर सकते हैं। इस प्रकार समर्पण करनेसे क्या होगा? इसको भगवान् बताते हैं—

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २८)

'इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे जिनसे कर्मबन्धन होता है, ऐसे शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे तू मुक्त हो जायगा। ऐसे अपनेसहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे मुक्त हुआ तू मेरेको प्राप्त हो जायगा अर्थात् मेरा ही स्वरूप हो जायगा।'

जैसे अग्निमें ठीकरी, पत्थर तथा काले-से-काला कोयला भी डाल दें तो वह अग्निस्वरूप होकर चमकने लग जायगा, ऐसे ही भगवान्‌के अर्पण करनेसे सब क्रियाएँ तथा पदार्थ भगवत्स्वरूप होकर चमकने लग जायँगे।

एक अच्छे गृहस्थ सेठ थे। वे भगवान्‌के बड़े भक्त थे। उनका दर्शन करनेके लिये एक साधु उनके घर आये। साधु उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। साधुने उनका परिचय पूछा तो सेठने बताया कि मैं भी ठाकुरजीका हूँ और यह घर भी ठाकुरजीका है। सेठ साधुको अपना सब घर दिखाने लगे। साधुने पूछा—यह मोटर किसकी है? सेठ बोला—ठाकुरजीकी! ये चीजें किसकी हैं? ठाकुरजीकी! ये किसके बच्चे खेल रहे हैं? ठाकुरजीके! यह स्त्री किसकी है? ठाकुरजीकी! ये लोग कौन हैं? ठाकुरजीके! पूरा मकान देखते-देखते ऊपर गये तो वहाँ मन्दिर था। यह मन्दिर किसका है? ठाकुरजीका! यह सामान किसका है? ठाकुरजीका! ये सोने-चाँदीके बर्तन किसके हैं? ठाकुरजीके! ये वस्त्र किसके हैं? ठाकुरजीके! ये गहने किसके हैं? ठाकुरजीके! साधुने ठाकुरजीकी तरफ संकेत करके पूछा—ये किसके हैं? सेठ बोला—ये तो मेरे हैं†! तात्पर्य है कि सब चीजें ठाकुरजीकी और ठाकुरजीका स्वरूप हैं, और ठाकुरजी हमारे हैं तो ठाकुरजीकी चीजें हमारी ही हुईं, पर ठाकुरजीके द्वारा हमारी होनेसे वे महान् शुद्ध हो गयीं, और स्वतन्त्र हमारी होनेसे महान् अशुद्ध हो गयीं!

रतनगढ़के संत बखतनाथजी महाराजकी बात सुनी है। वे बड़े ऊँचे महात्मा थे। असमसे एक आदमी उनके लिये एक बढ़िया एरण्डी लाया और उनके पास रखकर बोला कि महाराज! सरदीके समय इसको आप काममें लें। कुछ देरके बाद एक पण्डितजी आये। उन्होंने वह एरण्डी

* यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि शक्तिमान्‌के बिना शक्ति तो नहीं रहती, पर शक्तिके बिना शक्तिमान् रह सकता है; परंतु उसकी 'शक्तिमान्' संज्ञा नहीं रहती; क्योंकि वह स्वतः स्वतन्त्र तत्त्व है। शक्ति स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है।

† तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिण्ड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यह दादू का ग्यान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हाथमें लेकर देखी और उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि महाराज! यह कपड़ा तो बड़ा अच्छा है! देखकर उसको रख दिया। जब पण्डितजी जाने लगे, तब महात्माने कहा कि इस एरण्डीको आप ले जाओ। पण्डितजी बोले कि महाराज! यह तो आपके लिये आयी है। वह आदमी बड़े प्रेमसे आपके लिये लाया है; अतः आप रखें। महात्मा बोले कि नहीं पण्डितजी! इसको आप ले जायँ। पण्डितजी बोले कि मैं कैसे ले जाऊँ? यह तो आपकी ही है। महात्मा बोले कि यह हमारे कामकी नहीं है। आप बुरा मत मानना, आपको यह पसंद आ गयी तो अब यह आपकी हो गयी! पण्डितजीको लेनेमें बड़ा संकोच हुआ, पर महात्माने वह एरण्डी उनको जबर्दस्ती दे ही दी। कारण यह था कि पण्डितजीका उस एरण्डीमें मन चलनेसे वह उच्छिष्ट, अशुद्ध हो गयी, महात्माके कामकी नहीं रही। इसी तरह जिस वस्तुमें हमारा मन चल जाता है, हमारा राग हो जाता है, वह वस्तु अशुद्ध हो जाती है।

अपनी मानते ही वस्तु अशुद्ध हो जाती है और भगवान्‌की मानते ही वह शुद्ध और भगवत्स्वरूप हो जाती है। इसी तरह अपने-आपको भगवान्‌से अलग मानते ही हम अशुद्ध हो जाते हैं और भगवान्‌का मानते ही शुद्ध और भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। वास्तवमें सब वस्तुएँ भगवान्‌की और भगवत्स्वरूप ही हैं। उनको हमने भगवान्‌से अलग और अपना मान लिया, यह हमारी भूल है। इस भूलको मिटाना है। इस भूलको मिटा दें तो शुभ-अशुभ कर्मोंका बन्धन मिट जायगा और '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव हो जायगा।

प्रश्न—हमारे किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप जो वस्तु हमें मिलती है, वह हमारी ही तो हुई! फिर उसको हम अपना क्यों न मानें?

उत्तर—जिससे हमने कर्म किये, वह क्रियाशक्ति भी हमारी नहीं है और उसके फलस्वरूप मिलनेवाली वस्तु भी हमारी नहीं है। कारण कि क्रियाशक्ति और वस्तु—दोनों ही भगवान्‌से मिली हुई हैं और बिछुड़नेवाली हैं। शरीर कमजोर हो जाय, लकवा मार जाय तो हम क्या कर सकते हैं? कर्मफल भी अपना नहीं है; अतः उसका भोग बाँधनेवाला है—'**फले सक्तो निबध्यते**' (गीता ५। १२)। कर्म, कर्म-सामग्री, करनेकी योग्यता, बल आदि कुछ भी अपना नहीं है। इतना ही नहीं, कर्म करनेका विवेक भी अपना नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌से मिला हुआ है।

जो वस्तु सदा हमारे साथ नहीं रह सकती और जिसके साथ हम सदा नहीं रह सकते, जिसपर हमारा आधिपत्य नहीं चलता, जो मिली है तथा बिछुड़नेवाली है, वह वस्तु अपनी कैसे हो सकती है? कदापि नहीं हो सकती। जो वस्तु अपनी है ही नहीं, उसकी कामना कैसे होगी? उसके त्यागका अभिमान भी कैसे आयेगा? उसको अपना मान लिया—यह बेईमानी थी। उसका त्याग कर दिया तो केवल अपनी बेईमानीका ही त्याग किया। इसमें अभिमान किस बातका? बेईमानीके त्यागका नाम ही मुक्ति है।

जो वस्तु हमारी नहीं है, प्रत्युत दूसरेकी है और जो निरन्तर हमारा त्याग कर रही है, उसका भी त्याग अगर कठिन है तो फिर सुगम क्या है? उसको अपना मानकर अपने पास रखनेमें ही कठिनता पड़ती है, उसका त्याग करनेमें क्या कठिनता है? अगर ऐसा मानें कि त्याग करना कठिन है, तो उसको अपने पास रखना असम्भव है। असम्भवकी अपेक्षा तो कठिन भी सुगम ही है! एक जवान लड़केने मुझे बताया कि 'हमारे मकानमें रहनेवाली एक युवा लड़की बार-बार कुचेष्टा करती थी, पर मैं कभी विचलित नहीं हुआ!' मैंने कहा कि 'तुम बड़े जितेन्द्रिय हो' तो वह बोला कि 'मैं बड़ा जितेन्द्रिय हूँ'—यह बात नहीं है, प्रत्युत केवल इस बातसे मैं विचलित नहीं हुआ कि उस लड़कीपर मेरा हक नहीं लगता!' अतः जिस वस्तुपर हमारा हक नहीं लगता, जो हमारी नहीं है, उसको हम अपना कैसे स्वीकार करें? उसको अपना और अपने लिये स्वीकार करना बेईमानी है। सब दुःख, संताप, नरक, जन्म-मरण आदि इस बेईमानीके ही फल हैं। इस बेईमानीके कारण ही संसार दुःखदायी होता है, जो कि वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही है। अगर इस बेईमानीका त्याग कर दें अर्थात् एक भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीको भी अपना न मानें तो '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त प्राणियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो?

पुराण-साहित्यका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्रात्मक श्लोक है, जो हमें 'जगत्के प्राणियोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये' इसके लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्देश देता है। उस सूत्रको धर्मका सर्वस्व बतलाया गया है और वास्तवमें वह है भी वैसा ही। अतः प्रत्येक व्यक्ति उस श्लोकको अपने जीवनका आदर्श मानते हुए सदा व्यवहारमें उसे स्थान दे, इससे उसका और दूसरोंका भी कल्याण होगा। वह श्लोक या सूत्र इस प्रकार है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(विष्णुधर्मोत्तर० ३। २५३। ४४)

अर्थात् धर्मका सर्वस्व क्या है, ध्यानसे सुनो और केवल सुनकर ही न रह जाओ, उसे जीवनमें धारण करो—अपनाओ, वह धर्म-सर्वस्व अर्थात् सारभूत वाक्य है—'अपनी आत्माको जो व्यवहार अच्छे नहीं लगते हों, उन्हें दूसरोंके प्रति भी न करे।'

तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो सब जीव एक समान हैं। सब जीना चाहते हैं, कोई भी मरना या दुःख भोगना नहीं चाहता। सबमें समानरूपसे ही आत्मानुभूति होनी चाहिये, यहं समत्वभाव ही अहिंसाका मूल तत्त्व है। इसलिये जब तुम अपने लिये मरण और दुःख नहीं चाहते, तब दूसरोंके लिये भी इन्हें न चाहो। सब आत्माओंको अपने ही समान—अपने ही बन्धु समझकर सबसे मैत्रीभाव रखो, किसीसे वैर-विरोध न करो। किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट न दो। यही सम-भाव और मैत्री-भाव है, यही अहिंसाका मूल है। जीवन-संघर्षमें बहुत बार अन्य प्राणियोंके साथ टकराव हो जाता है, आवेशमें मनुष्य न करने योग्य काम कर बैठता है, पर वह अन्तर्निरीक्षण या आत्मालोचन करते हुए अकृत्यों, अकार्योंसे अपनेको पीछे हटा ले, पापोंका परिशोध करते रहनेकी यह बहुत सुन्दर प्रक्रिया है।

स्वरूपतः सब जीवात्मा समान होते हुए भी अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्मोंके कारण विभिन्न प्रकारके हो गये हैं। अतः सबके साथ एक-सा व्यवहार कैसे किया जाय, यह एक समस्या है। इसका समाधान करते हुए भारतीय मनीषियोंने चार प्रकारकी सुन्दर भावनाओंका विवेचन हमारे सामने रखा है, जिससे हम विभिन्न आत्माओंसे कैसा व्यवहार रखते हुए अपनेको सँभाले रहें, इसकी महत्त्वपूर्ण सूचना मिल जाती है। महापुरुषोंने गम्भीर चिन्तन करते हुए जगत्के सब प्राणियोंको चार भागोंमें विभक्त कर दिया है—(१) अपने समान योग्यता, रुचि तथा स्थितिवाले, (२) अपनेसे अधिक उन्नत स्थितिवाले, (३) अपनेसे नीचा अर्थात् कमजोर स्थितिवाले और (४) इन तीनों स्थितियोंसे भिन्न अधिक नीची स्थितिवाले।

इन चार विभागोंमें समस्त प्राणियोंका विभाजन करते हुए महापुरुषोंने, किन व्यक्तियोंके साथ कैसा व्यवहार करे, इसपर प्रकाश डाला है और चार प्रकारकी भावनाओंकी व्याख्या की है—(१) मैत्री-भावना, (२) प्रमोद-भावना, (३) करुणा-भावना तथा (४) मध्यस्थ-भावना। मैत्रीका व्यवहार उन प्राणियोंके साथ ही किया जा सकता है, जो अपने समान योग्यता या रुचिवाले हों। जीवन-व्यवहारमें हम सदा यही अनुभव करते हैं कि मित्रता उन्हींके साथ होती एवं निभती है, जो समान स्थितिके हों। बालक बालकोंके साथ और युवक युवकोंके साथ ही मित्रता करते हैं; क्योंकि बहुत-सी बातोंमें उनमें समानता पायी जाती है। उनकी उम्र बराबरकी होनेसे रुचि और योग्यतामें भी बहुत अधिक समानता मिलती है। अतः वे एक-दूसरेसे सहज ही घुल-मिल जाते हैं। जिनकी प्रकृति अपने समान नहीं होती, उनसे प्रथमतः तो मैत्री होती ही नहीं, और यदि वे उसे कर भी लेते हैं तो वह निभती नहीं है। इसलिये मैत्रीका सूत्र है—'**समेषु मैत्री**'—जगत्में जितने भी प्राणी अपने समान स्थितिवाले हैं, उनके साथ मैत्रीका व्यवहार किया जाय। मित्र जिस तरह एक-दूसरेको प्रेम और सहयोग देते हैं, उसी तरह अपने समान योग्यता, रुचि और स्थितिवाले प्राणियोंसे हम प्रेम और सहयोगका व्यवहार करें, एक-दूसरेको ऊँचा उठानेमें हम सदा तत्पर रहें, एक-दूसरेके दुःख-सुखके साथी बनें। मैत्री भावनाका यही मङ्गल संदेश है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्राणी या व्यक्ति अपनेसे ऊँची स्थितिके हों, अधिक गुणी हों, उनके लिये हम प्रमोद-भावना विकसित करें। हमारे मनमें उन्हें देखकर प्रसन्नता हो, ईर्ष्या नहीं हो। उन्हें नीचे गिरानेकी भावना न होकर अपनेको उनके समान ऊँचे उठानेकी भावना हो। गुणी व्यक्तियोंको देखकर हमारा मन-मयूर नाच उठे, रोम-रोममें प्रफुल्लता हो। हम प्रसन्नतापूर्वक उन्हें नमन करें, उनके गुणोंकी प्रशंसा करें, अपनेको कृतकृत्य मानें कि आज ऐसे गुणी व्यक्तिका दर्शन और समागम हुआ। मैं भी इनके आश्रयसे अपनेमें गुणोंका विकास करूँ, अपनेको इनके समान बनानेका प्रयत्न करूँ। 'मेरी भावना' में बहुत ही सुन्दर पद्य मिलता है, जिसका उच्चारण सात्त्विक भावनाको बहुत बड़ा बल देता है, यथा—

गुणी जनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे॥

जो प्राणी अपनेसे नीचे स्तरके हैं, उनके प्रति हमारी करुणा-भावना हो। अज्ञान और कर्मजन्य परिस्थितिवश वे जीव अपने स्वरूप और कर्तव्योंको भूलकर कुत्सित पाप-कार्य कर रहे हैं, वे हमारी दयाके पात्र हैं, घृणाके नहीं। हम उन जीवोंको सन्मार्ग दिखाने और ऊँचा उठानेका भरसक प्रयत्न करें। उनकी अधम स्थिति और दुःखोंको देखकर हमारा मन द्रवित हो जाय, करुणासे भर जाय और हम अपनेसे जितना भी सम्भव हो उनको ऊँचा उठानेका पूर्ण प्रयत्न करें। अभावग्रस्त व्यक्तियोंके अभावकी पूर्ति करें, उन्हें अपने समान सुखी और गुणी बनानेमें कमी न रखें। उनकी सेवा करके और सहयोग देकर अपने करुणा-भावको हम क्रियात्मक रूप दें।

जिनकी आदतें बहुत बुरी पड़ गयी हैं, जिनका स्वभाव बहुत क्रूर है, जो अधिकाधिक पापोंमें लिप्त रहते हैं, जन-परिभाषामें उन्हें 'दुष्ट' और 'पापिष्ठ' कहा जाता है। ऐसे प्राणियोंसे हमारा मध्यस्थ-भाव रहे। जो समझानेपर भी समझते नहीं, सदुपदेशोंको मानते नहीं, अपने अनुचित कार्योंको छोड़ते नहीं, उनके प्रति हम मध्यस्थ—उदासीन रहें, उनपर आक्रोश न करें, घृणा न करें। हमारे हृदयमें तो उनके प्रति प्रेम ही प्रवाहित होता रहे, हिंसा, क्रोध, वैर-विरोधकी भावना न उठे। हमारा प्रयत्न रहे कि वे सुधर जायँ, अच्छे बन जायँ। यदि वे ऐसा नहीं बनते हैं तो भी हम तो उनके प्रति उदासीन-भाव ही रखें। अपने प्रयत्नमें सफल न होनेपर भी हम उनके प्रति दुर्भाव न लायें। जगत् एवं कर्मोंकी विचित्रताका ही चिन्तन करते रहें कि इन जीवोंके कुसंस्कार इतने दृढ़ीभूत हो गये हैं कि अपनेमें परिवर्तन लाना, इन बेचारोंके वशकी बात नहीं रही। इसमें इनका दोष नहीं, इसमें इनके कर्मों तथा बुरे संस्कारोंका ही दोष है। हम इनके प्रति बुरे भाव लाकर अपनेको तो बुरा न बनावें, अपनेको सँभाले रहें।

'मेरी भावना' में बहुत ही सुन्दर कहा गया है—

मैत्री-भाव जगत्में मेरा, सब जीवोंसे मिला रहे।
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहे॥
दुर्जन, क्रूर, कुमार्गरतोंपर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे॥

इस तरहकी चार भावनाओंको बौद्धधर्ममें 'ब्रह्मविहार'-की संज्ञा देते हुए बहुत ही महत्त्व दिया गया है। जैनाचार्योंने भी प्राचीन मान्य अन्य बारह भावनाओंके साथ इन चार भावनाओंको भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। साधक और धर्म-आराधक प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन इन भावनाओंको मनमें लाये और इनपर गम्भीर चिन्तन करे तो हम दूसरोंके निमित्तसे जो अशुभ कर्मोंका बाँध बाँधते रहते हैं और अपने-आपको गिराते हैं, उससे अनायास और अवश्य ही बच जायँगे। इतना ही नहीं प्रमोद-भावनाको सही रूपमें अपनायें तो हम अपने सद्गुणोंका बहुत अधिक विकास कर लेंगे, क्योंकि गुणी बननेका सबसे सरल उपाय यही है कि हम गुणवान् व्यक्तिका आश्रय लें, उन महापुरुषोंके चरणोंमें समर्पित हो जायँ और उनके सत्संगका लाभ उठायें। उनके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए हम अपनेमें उन गुणोंको प्रकट करनेके लिये प्रबल भावना और पुरुषार्थ जाग्रत् करें, गुणानुरागी बनें, दूसरोंके अवगुणोंकी ओर ध्यान न दें। जिस-किसीमें जो भी अच्छा और ऊँचा गुण है, उसीको अपनाकर हमें गुणवान् बनना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—भक्तके क्या लक्षण हैं?

उत्तर—(१) क्रोधरूपी शैतानसे दूर रहना।

(२) किसी भी स्त्रीके साथ एकान्तमें बात न करना।

(३) सर्वदा एकान्तवासमें प्रेम होना।

(४) कम बोलना।

(५) सबेरे तीन बजेसे पाँच बजेतक भगवद्भजन करना। भक्तोंका मुख्य साधन भजन ही है।

बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

प्रश्न—भगवत्प्रेमी किसे कहते हैं?

उत्तर—जो षडैश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम करता है, उसे प्रेमी कहते हैं।

प्रश्न—प्रेमी क्या चाहता है?

उत्तर—इहलोक, परलोक और अणिमादि सिद्धियाँ—इन तीनोंको त्याग कर जो केवल श्रीभगवान्‌में आसक्त है, उसीका नाम भगवत्प्रेमी है। वह कुछ भी नहीं चाहता।

प्रश्न—प्रेमका लक्षण क्या है?

उत्तर—प्रेमका लक्षण इस श्लोकमें बताया गया है—

सर्वथा ध्वंसरहितः सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः तत्प्रेम परिकीर्तितम्*॥

प्रश्न—भगवान्‌को देखकर श्रीजी मूर्च्छित क्यों हो जाती हैं?

उत्तर—दर्शनसे मिलन होता है। फिर भी यदि होश बना रहा तो मिलन ही क्या हुआ? भगवान् और श्रीजी तत्त्वतः एक ही हैं। वे केवल लीलाके लिये दो बने हुए हैं। बिना दो हुए प्रेम नहीं होता। बस, प्रेमसुखके विस्तारके लिये ही उन्होंने द्वैत स्वीकार किया है। जिस समय प्रेमका अत्यन्त उत्कर्ष होता है, उस समय द्वैतजनित पार्थक्य भी असह्य हो जाता है और उसके लिये गुंजाइश न रहनेके कारण होश नहीं रहता। यह ठीक है कि श्रीजी चिन्मयी हैं, इसलिये उनका मूर्च्छित होना नहीं बनता, तथापि लीलामें तो यह सब भी हो ही सकता है।

प्रश्न—क्या माधुर्यमें शृंगारकी प्रधानता रहती है?

उत्तर—माधुर्यमें तो ऐश्वर्य भी बाधक है, फिर शृंगारकी तो बात ही क्या? आजकल बहुत लोग तो लौकिक शृंगारको ही माधुर्य समझते हैं। परंतु माधुर्य तो इससे बहुत आगेकी चीज है। इसे उसका साधन तो अवश्य कह सकते हैं, परंतु वास्तवमें माधुर्य तो वह है जिसमें जीवत्व और ईश्वरत्व दोनोंहीकी भावना नहीं है तथा जिसमें स्त्रीत्व और पुंस्त्वका भी अभाव है। इस स्थितिमें अपने प्रियतममें न जडबुद्धि रहती है और न सच्चिदानन्दबुद्धि, बस केवल प्रियतमबुद्धि रहती है।

प्रश्न—क्या ऐसे भक्तको भी अज्ञान रहता है?

उत्तर—यह स्थिति तो ज्ञानसे भी आगे है। तत्त्वज्ञान रहते हुए भी ऐसे प्रेमीकी दृष्टि भावपर ही रहती है। वह प्रेमानन्दके उत्कर्षके लिये द्वैत स्वीकार करता है। किंतु इस द्वैतसे उसके बोधमें कोई हानि नहीं होती। विवेकियोंकी तरह उसकी दृष्टिमें जड-चेतन या आत्मा-अनात्माका भेद नहीं रहता, सब कुछ केवल चिन्मय हो जाता है। उसका प्रेमास्पद कैसा है, क्या है—यह वह कुछ नहीं कह सकता।

प्रश्न—सच्चे प्रेमीकी क्या दृष्टि रहती है?

उत्तर—जिसकी कोई दृष्टि नहीं होती, वही सच्चा प्रेमी है। यदि उससे पूछा जाय कि तुम क्यों प्रेम करते हो और वह उसका कोई उत्तर न दे सके तभी उसका सच्चा प्रेम समझना चाहिये। जो लोग किसी निमित्तको लेकर प्रेम करते हैं, उनका प्रेमास्पद तो वह निमित्त ही होता है। आजकल लोगोंसे पूछो कि तुम महात्माको भिक्षा क्यों देते हो, तो वे कहेंगे, 'इससे पुण्य होता है।' ऐसे लोगोंको महात्माका भक्त नहीं कहा जा सकता। वे तो धर्मके भक्त हैं। शुद्ध धर्मके भी नहीं, उसके फलस्वरूप स्वर्ग या धनादि ही उनके प्रेमके प्रधान विषय होते हैं। सच्चा प्रेमी तो वही है जो अपने प्रेमका कोई कारण नहीं बता सकता।

* नाशका कारण उपस्थित होनेपर भी जो दो व्यक्तियों (प्रेमी और प्रेमास्पद)-का भावमय बन्धन नाशरहित रहता है वह प्रेम कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—प्रेम कैसे नष्ट हो जाता है?

उत्तर—(१) बहिर्मुख पुरुषोंकी संगति करनेसे।

(२) बहिर्मुख पुरुषोंकी बनायी हुई पुस्तकोंको पढ़नेसे।

(३) बहुत शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे।

(४) संसारी पुरुषोंके साथ राग करनेसे।

(५) बहुत शिष्य करनेसे।

प्रश्न—क्या कोई ऐसा मार्ग भी है जिससे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी सम्प्रदायोंके लोग भगवान्‌को प्राप्त कर लें?

उत्तर—हमारे शास्त्रोंमें तो ऐसा ही मार्ग बताया गया है, जिससे सभी इस अपार संसार-सागरसे पार जा सकते हैं। उसके दो भेद हैं—प्रेम और विचार या ज्ञान। भगवान् प्रेममय हैं, उनसे प्रेम तो सभी कर सकते हैं। प्रेममें कोई भेद नहीं है। प्रेमीजन मज़हबके चक्करमें नहीं पड़ते।

प्रश्न—क्या केवल नामोच्चारणमात्रसे पाप नष्ट हो जाते हैं?

उत्तर—हाँ हो जाते हैं! यही तो भगवान्‌के नामकी महिमा है। परंतु नाममें आसक्ति अवश्य होनी चाहिये। यह आसक्ति नामका उच्चारण करते-करते स्वयं ही हो जाती है। संसारकी आसक्तिको भगवान्‌की आसक्तिमें लीन कर दो। आसक्तिके बिना काम नहीं चलेगा। जब सच्ची आसक्ति हो जायगी, तब सदा-सर्वदा अपने-आप ही चिन्तन होता रहेगा!

प्रश्न—साधारण पतिव्रता भी पतिका वियोग होनेपर अपने शरीरको नष्ट कर देती है, फिर जो प्रेममार्गमें सबसे मुख्य मानी जाती हैं उन गोपियोंने श्रीकृष्णका वियोग होनेपर अपने शरीर क्यों नहीं छोड़ दिये?

उत्तर—जहाँ प्रेम अनित्य होता है, वहाँ उसका वियोग होनेपर शरीर-त्याग किया जाता है। गोपिकाओंका प्रेम तो नित्य था, उसका न तो नाश हो सकता था और न वस्तुतः कभी वियोग ही होता था, फिर वे शरीर क्यों छोड़तीं? इसके सिवा वे तो अपना सर्वस्व श्रीकृष्णको अर्पण कर चुकी थीं, उनके शरीर तो श्रीकृष्णकी वस्तु थे, उन्हें वे कैसे नष्ट कर सकती थीं। तीसरे उनकी प्रसन्नता तो अपने प्रियतमकी प्रसन्नतामें ही थी। वे शरीर छोड़ देतीं तो प्यारेको दुःख होता। अतः प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने दुःसह विरहानलका दाह सहते हुए शरीर-त्याग नहीं किया।

प्रश्न—प्रेमीको ध्यान कबतक करना चाहिये?

उत्तर—जबतक शरीर रहे। कारण कि प्रेममें विषयासक्ति तो रहती ही नहीं, फिर और करेगा क्या? गाढ़ अनुरागमें ध्येयसे अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। विषय तो मिट्टीकी लड़कीके समान रह जाते हैं। मिट्टीकी लड़कीसे भला कौन विवाह करेगा, कागजके घोड़ेपर कौन चढ़ना चाहेगा? इसी प्रकार प्रेमीको विषय तुच्छ दिखायी देते हैं। उस समय प्रेमीके लिये कोई नियम भी नहीं रहता। अतः ध्यानका भी कोई नियम नहीं किया जा सकता। ध्यानका नियम तो उसीके लिये है जो सब काम नियमसे करता है, प्रेमीका तो स्वभावसे ही निरन्तर ध्यान चलता है।

प्रश्न—भक्ति और प्रेममें क्या अन्तर है?

उत्तर—भगवदाकार-वृत्ति करते हुए जबतक भगवान् और भक्तका भेद बना रहता है, तबतक उसे भक्ति कहते हैं और जब भगवदाकार-वृत्ति इतनी गाढ़ हो जाय कि भक्त और भगवान्‌का भेद प्रतीत न हो, तो उसे प्रेम कहा जाता है।

प्रश्न—भक्ति और मुक्तिमें क्या अन्तर है?

उत्तर—जगत्‌को याद न करके भगवान्‌को याद करे—यही भक्ति है और जब जगत् एवं भगवान् दोनोंको याद न करे तो यही मुक्ति है।

प्रश्न—उपासकको यदि आनन्दका अनुभव न हो, तो उसका क्या कारण समझना चाहिये?

उत्तर—इसका कारण चिन्तनकी कमी है। जबतक चिन्तनमें आसक्ति नहीं होगी, तबतक आनन्द नहीं होगा। इसलिये इष्टाकार-वृत्ति करो, ध्यान करो, सत्संग करो, गुणानुवाद करो, श्रवण करो, साधु-दर्शन करो, एकान्त देशमें रहो, गुरु-सेवा करो। इन सबसे ही इष्टदेवमें आसक्ति होगी, विषयमें दुःखका अनुभव होगा तथा इष्टमें सुखकी अनुभूति होगी। संशयात्माकी एकमें आसक्ति नहीं होती, अतः वह नष्ट हो जाता है। अधिक पुस्तक या अधिक शास्त्र-विचार करनेसे भी चिन्तनमें आसक्ति नहीं होती।

[क्रमशः]

(श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिर्हरति पापानि

(पं० श्रीहरिचरणशरणदासजी)

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
(नारद०, पूर्व० ११। १००)

जैसे अनजानमें या अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि जलाती ही है, वैसे ही दुष्टचित्त मनुष्योंके द्वारा स्मरण किये जानेपर भी भगवान् श्रीहरि पापोंको हर ही लेते हैं। कहा गया है—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनम्प्रति॥

'जिसने एक बार भी 'हरि'—ये दो अक्षर उच्चारण कर लिये, ऐसा समझना चाहिये कि उसने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये परिकर बाँध लिया—फेंट कस ली।'

—इस वचनसे यह सिद्ध होता है कि भगवन्नाम मोक्षका परम साधन है। मोक्षके साथ-ही-साथ यह धर्म, अर्थ और कामका भी साधन है, क्योंकि ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें त्रिवर्ग-सिद्धिका कारण भगवन्नाम ही बतलाया गया है—

न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नरमेधैः सदक्षिणैः।
यजितं तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखक्लेशपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
(वामनपुराण)

जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'—ये दो अक्षर रहते हैं, उसे गङ्गा, गया, सेतुबन्ध, काशी और पुष्करकी कोई आवश्यकता नहीं, अर्थात् उनकी यात्रा, स्नान आदिका फल भगवन्नामसे ही मिल जाता है। जिसने 'हरि'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदका अध्ययन कर लिया। जिसने 'हरि'—ये दो अक्षर उच्चारण कर लिये उसने दक्षिणाके सहित अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा यजन कर लिया। 'हरि'—ये दो अक्षर मृत्युके पश्चात् परलोक-प्रयाण करनेवाले प्राणियोंके लिये पाथेय (मार्गके लिये भोजन-सामग्री) है, संसाररूप रोगके लिये सिद्ध औषधि है तथा जीवन-दुःख और क्लेशोंके लिये परित्राण है। भगवान्‌के अनन्त नाम हैं और सभी नामोंमें एक ही शक्ति अनुस्यूत है।

भगवन्नामोच्चारणमें न देश-कालका नियम है और न शौच-अशौच आदिके निर्णय करनेकी आवश्यकता है, केवल राम-राम—ऐसा संकीर्तन करनेमात्रसे जीव मुक्त हो जाता है।

न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव रामरामेति मुच्यते॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'प्राणी चाहे अपवित्र हो या पवित्र—सभी अवस्थाओंमें यदि कमलनयन भगवान्‌का स्मरण करता है तो वह बाहर और भीतर सब जगहसे पवित्र हो जाता है।'

भगवान् शंकर श्रीपार्वतीसे कहते हैं—

ईशोऽहं सर्वजगतां नाम्नां विष्णोर्हि जापकः।
सत्यं सत्यं वदाम्येव हरेर्नान्या गतिर्नृणाम्॥

सम्पूर्ण जगत्‌का स्वामी होनेपर भी मैं विष्णु भगवान्‌के नामका ही जप करता हूँ। मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ। भगवान्‌को छोड़कर जीवोंके लिये अन्य कोई भी गति नहीं है।

सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें अर्चा-पूजासे जो फल मिलता है, वह फल कलियुगमें केवल भगवन्नामोच्चारण मात्रसे मिल जाता है। यद्यपि कलियुग दोषोंका निधि है, फिर भी इसमें एक महान् गुण यह है कि श्रीकृष्णसंकीर्तनमात्रसे ही जीव बन्धनमुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्प्रेमी जीवको पापोंके नाशपर अधिक दृष्टि नहीं रखनी चाहिये, उसे तो भक्तिभावकी दृढ़ताके लिये भगवान्‌के चरणोंमें अधिकाधिक प्रेम बढ़ाते जाना चाहिये, इस दृष्टिसे अहर्निश नित्य-निरन्तर भगवान्‌के मधुर-मधुर नामोंको जपते जाना चाहिये। जितनी अधिक निष्कामता होगी, उतनी-ही-उतनी नामकी पूर्णता प्रकट होती जायगी—अनुभवमें आती जायगी।

भगवान्‌का एक नाम भी परम कल्याणकारी है। शास्त्रोंमें भगवन्नाममहिमाको अर्थवाद समझना पाप बताया गया है—

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम्॥

परदोष-दर्शन

(डॉ॰ श्रीबद्रीप्रसादजी गुप्ता)

साधकोंके लिये परदोष-दर्शन और परदोष-चिन्तन बहुत बड़ा विघ्न है। भजनमें परनिन्दा तथा परदोष-दर्शन जितने बाधक हैं उतना कोई नहीं है। अपनेमें दोष होनेसे दूसरोंमें वे दोष दिखायी देते हैं। साधकको दूसरोंमें कमी दिखायी दे तो समझना चाहिये कि वह साधक नहीं है। साधकको चाहिये कि वह न किसीको बुरा समझे, न किसीकी बुराई करे। दूसरोंमें बुराई देखनेसे अपनेमें बुराई आती है। मूलमें बुरा कोई है ही नहीं। साधकको तो अपने दोष-दर्शनसे ही अवकाश नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न होय॥

दूसरोंकी निन्दासे महान् दुःख-रूप फल प्राप्त होता है, यदि कोई व्यक्ति दुःखी है तो जरूर वह दूसरोंकी निन्दा करता रहा होगा। अतः दुःख प्राप्त न हो इसलिये परनिन्दाका सर्वथा त्याग करना चाहिये। जिसके सम्बन्धमें जैसा हम विचार करते हैं, हम उसे वह चीज देते हैं। क्रोध या द्वेषका विचार है तो उस व्यक्तिमें वह विचार आयेगा। अतः दूसरोंके प्रति अशुभ विचार, कल्पना, असत् विचार न करें। इससे वायुमण्डलमें अशुभका दान हो जाता है।

भगवान् श्रीरामने शबरीको नवधा भक्तिका उपदेश दिया और उसमें **'सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥'** स्वप्नमें भी परदोष-दर्शनके अभावको भक्तिका एक रूप बतलाया। इससे स्पष्ट होता है कि परदोष-दर्शन तो साधकको कभी करना ही नहीं चाहिये।

रामचरितमानसमें निषादराजने आलोचना की कि कैकेयीके कारण भगवान्‌को इतना कष्ट हुआ। लक्ष्मणने तुरंत प्रतिक्रिया करते हुए कहा—**'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥'** कोई किसीको सुख-दुःख देनेवाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं। ऐसा विचार कर किसीपर न तो क्रोध करना चाहिये और न किसीको दोष देना चाहिये।

भागवतके एकादश स्कन्धमें भागवत-धर्मका निरूपण किया गया है। उसमें कहा गया है कि परनिन्दा तो कभी भी नहीं करनी चाहिये।

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने अपनी पुस्तक 'आत्मोद्धारके सरल उपाय'में दोष-दर्शनसे महान् हानि बतलायी है। दूसरोंकी निन्दा करना, सुनना, दूसरोंके दोष देखना और मनमें उन दोषोंका चिन्तन करना महान् हानिकारक है। इसमें मुख्यरूपसे पाँच दोष आते हैं—

(१) दूसरोंके दोषोंको यदि कोई सुने, देखे, मनन करे तो दूषित मनसे ये कान, वाणी, नेत्र और मन सभी दूषित हो जाते हैं। उन दोषोंके संस्कार चित्तपर अङ्कित हो जाते हैं जो भविष्यमें उससे वैसे ही पाप कराते हैं।

(२) दूसरोंकी निन्दा करने-सुननेसे उनकी आत्माको दुःख होता है। उसका पाप लगता है।

(३) दूसरेका दोष देखनेसे उसके प्रति घृणा-बुद्धि हो जाती है। यह भी पाप है जो अन्तःकरणको विशेष दूषित करनेवाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) दूसरेके दोष देखनेसे अपनेमें अच्छेपनका अभिमान बढ़ता है—यह भी महान् पतनकारक है और—

(५) पापीके पापकी चर्चा करनेसे उस पापीके पापका अंश उस चर्चा करनेवाले व्यक्तिको भोगना पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति दूसरोंके दोष देखता है तो उसे दोष देखनेकी आदत पड़ जाती है। दृष्टि भी दोष देखनेवाली हो जाती है। बिना हुए भी दोष दिखायी पड़ने लगते हैं, क्योंकि दोषका चश्मा चढ़ जाता है। दोष देखनेका स्वभाव हो जाता है। गुणमें भी दोष दिखायी दे यह 'असूया' दोष कहलाता है।

बार-बार दूसरोंके दोष देखनेसे अपने अंदरके जो पुराने दोष हैं वे तरुण, बलवान् और पुष्ट हो जाते हैं और नये-नये दोषोंको बुलाकर अपनी शक्ति बढ़ाते हैं।

जब दोष देखनेकी आदत पड़ जायगी और बिना हुए भी दोष दिखायी देंगे तब द्वेष और वैर होगें। क्रोध और हिंसा भी हो सकती है। झगड़ा तथा कलह हो सकता है और जीवनमें अशान्ति हो सकती है। ऐसा होनेसे पारमार्थिक साधन छूट जायगा जो कि बड़ी भारी हानि है। हृदयमें जलन होगी और महान् पतन हो जायगा। अत: दूसरोंके दोष देखनेके बजाय अपने ही दोष देखने चाहिये।

यदि किसीमें दोष हों भी तो क्या अपनेमें कोई दोष नहीं है ऐसा समझकर उसकी निन्दा या आलोचना करके नया पाप क्यों कमाया जाय। किसीके दोषोंका बखान करनेसे उसके दोष और भी दृढ़ होते हैं।

संसारमें दोषी लोग ही दूसरेके दोषोंको ढूँढ़ा करते हैं, क्योंकि उन्हें अपने दोषोंको ढँकनेके लिये दूसरोंके दोषोंकी आड़की आवश्यकता होती है।

यह नियम है कि जिसमें राग होता है, उसके दोष भी गुणके रूपमें दिखायी देते हैं। जिसके प्रति द्वेष होता है, उसके गुण भी दोष दीखते हैं। मनुष्यको दूसरेकी बुराईका कारण अपनेमें खोजना चाहिये। सचाई और गहराईसे देखनेपर तुरंत ऐसा कोई दोष अपनेमें दीखेगा जो दूसरोंमें बुराई उत्पन्न करनेमें हेतु है।

मनुष्य किसीके भी दोष न देखे, इसीसे अच्छा बन जायगा। दोष-दर्शनसे पुण्य नष्ट होते हैं।

नाम-जपमें दस नाम-अपराध बताये गये हैं। उन अपराधोंमें मूलत: दोष-दर्शनकी प्रवृत्ति स्पष्ट मालूम पड़ती है। दोष-दर्शनके कारण नाम-अपराध होता है और इस कारणसे नामजपका पूरा लाभ नहीं मिल पाता।

दोष-दर्शनकी आदत जड़से ही समाप्त हो जाय इसके कई उपाय हैं—

(१) सबमें भगवान् हैं और सब कुछ भगवान् ही है, ऐसा भगवद्भाव बनानेसे किसीका दोष-दर्शन, निन्दा, निरादर, तिरस्कार नहीं हो सकेगा। सभी प्राणियोंमें प्रेमभाव हो जायगा और भगवान्‌में भी प्रेम होगा।

(२) अपनेमें कोई दोष दीखे तो भगवान्‌के होकर आर्तभावसे भगवान्‌को पुकारना चाहिये। अपने दोषको महत्त्व न देकर शरणागतिको महत्त्व देना चाहिये। ऐसा करनेसे दोष स्वत: दूर हो जाते हैं।

(३) नामजप भी अच्छा उपाय है। नामजपसे वैराग्य हो जाता है। वैराग्य होनेसे अपने ही दोषोंकी ओर दृष्टि जायगी और बन्धनसे मुक्ति हो जायगी।

(४) साधकको केवल अपने कर्तव्यका पालन करना है। दूसरे अपने कर्तव्यका पालन करते हैं या नहीं उधर दृष्टि ही नहीं डालनी है। अत: साधकको चाहिये कि वह अपने लक्ष्यकी ओर दृष्टि रखे। दूसरे क्या करते हैं, उसपर ध्यान ही न दे। तब दूसरोंके दोष दीखेंगे ही नहीं।

श्रीनारायण स्वामीने ठीक ही कहा है—

तेरे भावें जो करौ, भलो बुरो संसार।
नारायन तूँ बैठकें, अपनो भवन बुहार॥

वे सत्यके उपासक महात्मा मुनि धन्य हैं, जिन्हें न किसीसे राग है और न किसीसे द्वेष है, जो सभी प्राणियोंमें समानभाव रखकर सबको समदृष्टिसे देखते हैं।—वाल्मीकिरामायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतित-पावन श्रीराम

('मानसरत्न' संत श्रीसीतारामदासजी)

चारों वेदोंका कथन है कि श्रीरामजी पतितोंको पवित्र करनेवाले, दीनोंके हितकारी और अशरणको शरण देनेवाले हैं—

पतित-पुनीत, दीनहित, असरन सरन कहत श्रुति चारो।

(विनयप० ९४। २)

परम कृपालु, भगत-चिंतामनि, बिरद पुनीत, पतित जन तारन॥

(विनयप० २०६। २)

श्रीरामजीके अतिरिक्त किस स्वामीकी ऐसी रीति है जो अपने विरदके लिये पवित्र जीवोंको छोड़कर पामरोंपर प्रेम करता हो? —

बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति॥

(विनयप० २१४। १)

उन्हें पापियोंका उद्धार करनेमें देर ही क्या लगती है। 'हे कृपानिधान! मेरी रक्षा कीजिये' प्रेमसे इतना कहते ही ऐसा कौन पापी है, जिसको श्रीरामचन्द्रजीने सच्चा साधु नहीं बना दिया?—

'पाहि कृपानिधि' प्रेमसों कहे को न राम कियो साधु॥

(विनयप० १९३। ३)

दीन-उद्धरन रघुवर्य करुणाभवन, शमन-संताप, पापौघहारी।

(विनयप० ५९। १)

श्रीरामजीके चरण-स्पर्श होते ही पत्थरकी शिला अहल्या शापके संतापसे दूर हो गयी, प्रभुने उसे सद्गति दे दी, पर इस बातका तो उनके मनमें कुछ भी हर्ष नहीं हुआ, उलटे इस बातका पश्चात्ताप अवश्य हुआ कि ऋषि-पत्नीको मेरे चरण क्यों लग गये—

सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुएको पछिताउ॥

(विनयप० १००। ४)

उन्होंने पापी निषादराज गुहको अपनाकर विश्वका भूषण बना दिया—

केवट भेंट्यो भरत ज्यों, ऐसो को कहु पतित-पुनीत॥

(विनयप० १९१। ६)

संसारमें असह्य दुःखों और पापोंको मेटनेवाला श्रीरामजीको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने अधमाधम पक्षी गीधराज जटायुकी अपने हाथसे अपने पिताके समान अन्त्येष्टि-क्रिया कर उसे मुक्ति प्रदान की—

बिहँग जोनि आमिष अहारपर, गीध कौन व्रतधारी।
जनक-समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी॥

(विनयप० १६६। ५)

श्रीरामजीका ऐसा स्वभाव है कि वे मनमें विशुद्ध प्रेम समझकर नीच-से-नीचके साथ भी स्नेह करते हैं। उन्होंने कृपापूर्वक दर्शन देकर उसका उद्धार किया—

छलिनकी छोंड़ी, सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति।
कीन्ही लीन आपुमें सुनारी भोंड़े भीलकी॥

(कवितावली, उत्तर० १८)

श्रीरामजी पतितोंको परमगति देनेवाले हैं। उन्होंने वानर और भालुओं तकको अपना पवित्र मित्र बनाया और उनकी ऐसी रक्षा की, जैसे कोई अपने बालक पुत्रकी भी नहीं करेगा—

बालि-सो बीरु बिदारि सुकंठु थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे।

(कवितावली, उत्तर० १)

परम कृपालु, प्रनत-प्रतिपालक, पतित-पवन।

(विनयप० २१२। १)

श्रीरामजीकी शरणमें कैसा भी पापी जाय, वे बड़े आदरके साथ उसे आगे आकर अपनी गोदमें ले लेते हैं। राक्षस एवं शत्रु विभीषणको शरणमें आया जानकर प्रभुने उसे भरतकी भाँति ऐसे प्रेमसे हृदयसे लगा लिया कि उस प्रेम-विह्वलतामें वे अपने शरीरकी सुध-बुध भी भूल गये—

भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आएँ,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बामको॥

(कवितावली, उत्तर० १४)

खोटे और दुष्ट लोग भी पतित-पावन श्रीरामजीके पवित्र नामकी ओट लेते ही निर्दोष हो जाते हैं। वानर कौनसे सुंदर और शील-स्वभावके थे?—जिनका नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनेसे भी हानि हुआ करती है, उन्हें भी प्रभुने अपना मित्र बना लिया और अपने घरपर लाकर उनका सब प्रकारसे आदर-सत्कार किया—

कौन सुभग सुसील बानर, जिनहिं सुमिरत हानि।
किये ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि॥

(विनयप० २१५। ६)

दीनता, दरिद्रता, संताप, दोष, दारुण दुःख और असहनीय भय तथा पापोंका नाश करनेवाले पतित-पावन श्रीरामजीको भजकर किसने परमगति नहीं पायी? जो अत्यन्त पापरूप ही हैं, वे भी केवल एक बार उनका पावन नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं। अतः अकारण-करुण, करुणा-वरुणालय श्रीराम प्रभुका भजन करना जीवनका परम कर्तव्य है—

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥

(रा० च० मा० ७। १३०। ७-८)

लाइये, मेरा इनाम !

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

'रूपनिधि !'

'जी सरकार, क्या आज्ञा है इस बहुरूपियेके लिये......'

राजा रत्नेश्वरकी सभामें अनेक रत्न थे। उनमें रूपनिधि नामक एक लोकप्रिय बहुरूपिया भी था। आज रत्नेश्वर रूपनिधिसे बातें कर रहे थे। बोले—'रूपनिधि ! तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है। तुम उच्चकोटिके बहुरूपिये हो। नाना प्रकारके रूप धारण कर सफल अभिनय करते रहते हो। पर तुम हमें छकाओ तो जानें। देखें तुम्हारी कलाकी चरम सीमा।'

'सरकार, मैं किस मुँह अपनी तारीफ करूँ। मुझे 'अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनना' नहीं आता।'

'रूपनिधि ! तुम कोई ऐसा अभिनव और विचित्र रूप बनाओ कि सब चकित रह जायँ। कोई तनिक भी न जान पाये कि तुम उन्हें मूर्ख बना रहे हो। बहुरूपियेका कमाल तब है, जब वह अपने बेमिसाल अभिनयसे एक बार तो सबको धोखा दे डाले। तुम राज्याश्रित बहुरूपिये हो। हम तुम्हारी अभिनय-कलाकी परख करना चाहते हैं। सच्चे सोनेको जब घिसो, तभी खरा निकलता है।'

रूपनिधि यह सब सुनता रहा।

फिर बोला—'सरकार, क्या इनाम मिलेगा मुझे ?'

राजा खुश हुआ। कहने लगा—'हमें बेहद खुशी है कि तुम अपनी परख करानेमें कतई पीछे नहीं हटे हो। जिस व्यक्तिमें वास्तविक योग्यता होती है, वह कभी भी कठिन परीक्षासे पीछे नहीं हटता। मैं देख रहा हूँ तुम्हारे मुँहपर उत्साहकी वह आभा है, जो एक सच्चे कलाकारके चेहरेपर होती है...अपनी अभिनय-कलाके प्रदर्शनपर तुम्हें राज्यकी ओरसे नकद पाँच सौ रुपयेका इनाम मिलेगा।'

'पाँच सौ रुपये!' आनन्दसे रूपनिधिका चेहरा चमचमा उठा। 'जैसी आज्ञा....मैं जाता हूँ।'

यह कहकर रूपनिधि दरबारसे उठकर चला गया। थोड़े दिन बाद नगरके बाहर वटवृक्षके नीचे एक सिद्ध पुरुषने आकर अपना आसन जमाया है। नंगा, केवल एक कौपीनमात्र धारण किये हुए, सारे शरीरपर भभूत लगी हुई, जटाजूट धारण किये। शिवके नामकी ध्वनि प्रायः उसके मुँहसे निकलती रहती। लोग कहते थे कि वह शौचादिके लिये उठता था, अन्यथा सदा धूनीपर ही भगवच्चिन्तन किया करता। वह हर समय तपस्या करता। लोग उसके इर्द-गिर्द बैठे रहते। सट्टेका नंबर पूछनेवालोंका जमघट लगा रहता।

चारों ओर उसकी विरक्ति, धर्मके प्रति अटूट श्रद्धा एवं भक्तिकी खबर फैल गयी। टूटी-फूटी झोपड़ीमें ऐसे सिद्ध पुरुषका होना उस क्षेत्रके लिये गौरवकी बात थी। छोटे-बड़े चमत्कारोंकी चर्चा भी सुनी जाती। प्रायः लोग कहते कि उन्हें कोई देवी-देवता सिद्ध था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् त्यागी महात्माजीके दर्शनोंके लिये दूर-दूरसे लोग आते। सारे शहरमें उनकी कीर्ति फैल गयी। उत्सुक नर-नारी, भोले भावुक ग्रामीण, गरीब मजदूरोंने उसे तीर्थ-स्थान-सा बना लिया था।

राजाके मनमें भी सिद्ध महात्माके दर्शनकी अदम्य लालसा जगी। जिस व्यक्तिके दर्शन-लाभ करनेके लिये सारी जनता उमड़ पड़ रही थी, जिसके दर्शनमात्रसे आदमी धन्य हो जाता है, उसको कौन न देखना चाहेगा ?

एक थालमें हीरे-मोती और असंख्य स्वर्ण-मुद्राएँ, दूसरेमें मूल्यवान् वस्त्र, तीसरेमें फल-फूल तथा स्वादिष्ट मिष्टान्न लेकर राजा दर्शन करनेके लिये महात्माजीकी सेवामें उपस्थित हुआ।

एक चेलेने महाराजके आनेकी सूचना दी।

'राजा रत्नेश्वर आपके दर्शनोंके लिये पधारे हैं। क्या आज्ञा है ?'

महात्माजीने नेत्र खोले।

सामने राजा हाथ जोड़े खड़ा था। नेत्र श्रद्धासे झुके हुए, भक्ति-रसमें पगा हुआ, विनयावनत।

'कौन हो तुम ?' महात्माजीने अर्धनिमीलित नेत्रोंसे कहा।

'मैं रत्नेश्वर हूँ महाराज! इस प्रदेशका शासक ! आपका दास ! आशीर्वादका इच्छुक ! आपके दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गया हूँ।'

राजाने देखा, कालकी तरह महात्माजीकी भृकुटि चढ़ गयी। वे क्रोधमें तन गये। हीरे-मोती और स्वर्ण-मुद्राओंवाले थालोंकी ओर संकेत कर कड़क-भरे स्वरमें बोले—

'यह माया क्यों लाये हो ? संसार मिथ्या है। यहाँ कोई वस्तु स्थायी नहीं है। यह जीवन स्वप्नमात्र है.... ये हीरे-मोती......यह स्वर्णमुद्रा.... ये मूल्यवान् शाल-दुशाले, ये फल-फूल-मिष्टान्न हम-जैसे विरक्तोंके किस कामके हैं भला ? यह माया है, ठगनी है.... अरे रत्नेश्वर, इसके विषैले फंदेसे छूटो। वास्तविक भक्त वह है, जो सांसारिक पाशविक वृत्तियों तथा विषय-वासनाओंको काबूमें रखता है....अपने ऊपर सुसंयत और सुशासक मनसे राज्य करता है... फिर भला तुम मुझे इस क्षुद्र मायामें क्यों फँसा रहे हो।'

—यह कहते-कहते महात्माजी उत्तेजनामें आ गये। उनकी त्योरियाँ चढ़ गयीं। क्षणभरमें चारों ओर आतंक-सा फैल गया। उनका वह रौद्र-स्वरूप आज लोगोंने पहली बार ही देखा था। उस क्रोधका प्रभाव आस-पासके सारे वातावरणपर छा गया, मौतके संनाटेकी तरह!

उनका क्रोध केवल भ्रूभंगिमा मात्रतक ही सीमित नहीं रहा। आवेशमें आकर महात्माजीने हीरे-मोती बिखेर दिये, शाल-दुशाले तितर-बितर कर दिये और फल-फूल छोड़ नाराज हो उठकर अंदर जाने लगे। 'हम मायासे दूर विरक्त संन्यासी हैं। बड़ा आया है मायाका प्रलोभन दिखाने!' वे कहते गये।

कितनी उच्चकोटिका त्याग था! सभी प्रभावित थे।

'महाराज, रुकिये ! ठहरिये। मुझे कुछ तो संदेश देते जाइये ! बड़ी लालसासे यहाँ आया हूँ।' कातर-भावसे राजा रत्नेश्वर प्रार्थना करने लगे। महात्मा बोले—'रत्नेश्वर, कुछ व्यक्ति धन-संग्रह, भोग-विलास, शान-शौकतको ही जीवनकी सफलता मानते हैं। कुछ मान-प्रतिष्ठा, ऊँची स्थितिको ही सफलताकी अन्तिम सीढ़ी मानते हैं, किंतु यदि तुम गम्भीर चिन्तन करके देखो, तो अन्तमें तुम पाओगे कि परमानन्दकी प्राप्ति ही जीवनकी वास्तविक सफलता है...... तुमने चाहे कितना ही धन-संग्रह क्यों न किया हो, किंतु तुम्हें क्या मालूम कि वह कब जाता रहे ?.... रत्नेश्वर, तुम्हें यह याद रखना चाहिये कि स्थायी वस्तु हमारी आध्यात्मिक सफलता ही है......वही वाञ्छनीय है। किंतु शोक ! महाशोक !! कंकड़ोंके बदले हम हीरोंको फेंक देते हैं। क्षणिक सांसारिक सुखके लिये अपनी आत्माके अटल आनन्दसे वञ्चित रह जाते हैं..... आत्माके आनन्द.....उस चिरन्तन सुखकी ओर हम देखते तक नहीं...संसारके अधिकांश दुःखोंका कारण यही है। इन्द्रिय, वासना तथा मोहके वश तुमने यह परमात्म-तत्त्व विलीन कर दिया है, जो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। तुम्हारी आत्मामें बड़ी शक्ति निहित है....सब कुछ तुम्हारे अन्तःकरणमें मौजूद है। वहीं सर्वोत्कृष्ट सफलता, स्थायी सफलता है....याद रखो, जब यह अनन्त शक्ति तुझको आलिंगन करेगी, तो तुम्हारी सारी प्रतिकूलताएँ नष्ट हो जायँगी। रत्नेश्वर, तुम ईश्वरीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशके ज्योतिर्मय पिंड हो...उसे जानो और तुम फिर अपनेको सारे संसारमें फैला पाओगे...चारों ओर तुम्हारा ही मंजुल प्रकाश होगा...ले जाओ अपने इन कंकड़-पत्थरोंको। हमें ये नहीं चाहिये।'

राजाके ऊपर इन वचनोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके मनमें महात्माजीके त्यागका बड़ा स्थायी प्रभाव पड़ा। राजा श्रद्धासे अभिभूत हो तपस्वीके चरण-स्पर्श करने दौड़ा।

'मैं धन्य हो गया आप-जैसी दैवी विभूतिके दर्शनोंसे।' राजा महात्माके चरण छू रहे थे।

तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी। ऐसी अजीब घटना जिसकी किसीको स्वप्नमें भी आशा न थी।

लोगोंने देखा उलटे महात्माजीने राजाके पैर पकड़ लिये।

अरे ! यह क्या ! महाराजने अपनी नकली दाढ़ी-मूँछ और जटाएँ उतार फेंकी। भभूत पोंछ डाली, उनकी भाव-भंगिमा बदल गयी। स्वरमें शिष्टता आ गयी। वे कुछ-के-कुछ बन गये।

लोग आँखें फाड़-फाड़कर महात्माजीको देखने लगे। यह क्या करिश्मा है ? यह क्या अभिनय है ? वे तो बिलकुल नये वेशमें दिखायी देने लगे। वृद्धका रूप गायब, जवान दिखायी देने लगे। उनका स्वर भी जाना-पहिचाना-सा प्रतीत हुआ।

'महाराज ! मैं आपका 'रूपनिधि' बहुरूपिया हूँ। लाइये मेरा इनाम पाँच सौ रुपये ! मैंने आपको धोखा दे दिया है। आप मेरी विद्यासे परास्त हो गये। मैंने जो वायदा किया था, वह पूरा किया है।'

राजा महान् आश्चर्यमें पड़ गया।

बोला—'अरे रूपनिधि ! यह तुम हो ! तुमने तो वाकई कमाल ही कर दिया। मैं तो धोखा खा गया।'

'तो लाइये महाराज, मेरा इनाम !'

'अरे लाखोंके हीरे-मोती तो तुमने मिट्टीमें फेंक दिये। स्वर्ण-मुद्राएँ यत्र-तत्र बिखेर दीं, मूल्यवान् शाल-दुशाले लौटा दिये......और अब.......पाँच सौ रुपये मात्रकी माँग कर रहे हो....अजीब आदमी हो!'

राजा बहुरूपियेकी मूर्खतापर आश्चर्य कर रहा था।

वह बोला—'महाराज ! उस समय मैं एक त्यागी विरक्त संन्यासीका अभिनय कर रहा था। संन्यासी हमारी संस्कृतिमें सर्वोच्च व्यक्ति है। मायासे दूर....आध्यात्मिक शक्तियोंका पुंज.....उत्कृष्ट साधक.....ईश्वरके संनिकट.......त्याग, सत्य, न्याय, सेवा, उदारता एवं परमार्थका प्रतीक.....यदि मैं उस समय.....उस उच्च स्थितिमें कुछ भी ग्रहण कर लेता, तो उस पवित्र धर्म-रूपसे च्युत हो जाता। सिद्ध पुरुषका मेरा अभिनय असफल रहता, पर अब ?.....अब मैं आपका नट हूँ, आप जो कुछ देंगे, वह सिर-माथे ग्रहण करूँगा....उसे स्वीकार करना मेरा कर्तव्य है। पर संन्यासी-जैसा अभिनय करते-करते मेरी मानसिक प्रवृत्ति वैराग्यकी ओर हो गयी है। मुझे आत्मज्ञान हो गया है। अब धन मेरे किस कामका है ?'

यह सुनकर राजाने कहा—

'रूपनिधि ! तुम धन्य हो। तुम्हारी कर्तव्यशीलता अनुपम है। अभिनयमें भी तुम्हारा रूप उत्तम है। तुमने नकली जीवनमें भी अपने स्वामीके प्रति कर्तव्यका पूरा-पूरा ध्यान रखा है, जबकि लोग असली सामाजिक जीवनमें देखते-भालते कर्तव्यको भुला देते हैं। भारतीय संस्कृतिका जो यथार्थ रूप तुमने प्रस्तुत किया है, उसका मुझपर स्थायी प्रभाव पड़ा है। मुझे इस विलासी जीवनसे वैराग्य हो गया है। तुमने जो उपदेश दिया है, उससे प्रभावित हो मैं यह माया-मोहसे युक्त जीवन छोड़ता हूँ। मैं भी वैराग्यका पथिक बनता हूँ।'

राजाके जीवनका एक नया अध्याय खुला।

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः॥ (श्रीमद्भा० ६। १। १९)

जो मनुष्य केवल एक बार श्रीकृष्णके गुणोंमें प्रेम करनेवाले अपने चित्तको श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें लगा देते हैं, वे पापोंसे छूट जाते हैं, फिर उन्हें यमराज और पाश हाथमें लिये हुए यमदूतोंके दर्शन स्वप्नमें भी नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदुग्धमें स्वर्ण-ही-स्वर्ण

(श्रीनरपतसिंहजी)

हमारे देशके ऋषियों-मनीषियोंने गोपालन, गोपूजन, गोदान, गोसंवर्धन आदि गोसेवाके कार्योंकी महत्त्वपूर्ण प्रशंसा बहुविधिसे जाँच-पड़ताल कर की थी। दूध देनेवाले और भी पशु हैं, पर गायका दूध अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों ?

स्वर्ण-अंश

गायकी रीढ़की हड्डीके अंदर सूर्यकेतु नामक नाड़ी होती है। सूर्यकी किरणें जब गायके शरीरको छूती हैं, तब सूर्यकेतु नाड़ी सूर्यकी किरणोंसे स्वर्ण बनाती है। इसी कारण गायके दूध और मक्खनमें पीलापन होता है, इसमें विषनाशक तत्त्व होते हैं। नागके काटनेपर गोघृतका पान कराना चाहिये, इससे विष उतर जाता है। गोमूत्रमें स्वर्णांश होनेसे इसका ओषधिरूपमें प्रयोग किया जाता है। गायका गोबर घरमें लीपनेसे बीमारी फैलानेवाले जीवाणु नहीं बैठते।

शुद्ध ओषधियों एवं गोघृतके यज्ञका एक परमाणु एक सहस्र विषैले परमाणुओंको नष्ट करता है, स्वर्ण-तत्त्व आस-पासके वातावरणको काफी समयतक शुद्ध,मनमोहक बनाये रखता है। आज हमारे समाज और सरकारकी अज्ञानतावश देशमें प्रतिदिन गोधनकी हत्या की जा रही है।

इन अनेकविध उपयोगिताओंके कारण गाय पूज्य है। ऐसे गौ पशुकी रक्षा और पालन परिवार तथा समाजके सभी क्षेत्रमें उपयोगी है। जिस देश एवं राजधर्ममें गोधन है, वास्तवमें जीवन वहीं निवास करता है। हमारे देशकी आपसी एकताको जोड़नेकी कड़ीका नाम भी गाय है। अहिंसाकी प्रतिमूर्ति देवमयी गौकी सेवा अपना मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये। जीवनभर गोदुग्ध पीनेवाले व्यक्तियोंको कैंसर-जैसे भयानक रोगोंसे बचाये रखनेमें गोदुग्ध ही समर्थ है। उसका कारण है शुद्ध सोना, जो गोदुग्ध-पान करनेवालेके शरीरमें जाता है और शरीरके नस-नसमें प्रवेश कर उसे पूर्णरूपसे शुद्ध, पवित्र एवं निर्मल बना देता है और बुद्धि परम विशुद्ध हो जाती है।

यहूदी और ईसाइयोंमें गौका आदर

यहूदी

यहूदी पहले सुमेरियामें और पीछे जेरूसलममें रहते थे। जार्डनके उत्तरकी तरफ अच्छे बैल होते थे। सबसे अच्छे बैल बाशानके होते थे। यहूदी लोग इनका बड़ा आदर करते थे। गौएँ और बैल गाड़ियों और हलोंमें जोते जाते थे। इनके द्वारा अनाज दँवाया जाता था। काम करते समय इनके मुँहमें जाली बाँधना मना था। ('दँवाई करते समय बैलके मुँहमें जाली मत लगाओ' यहूदियोंके धर्मशास्त्रकी यह आज्ञा थी।) यहूदियोंके आहारमें मुख्यतः दूध और दूधके ही बने पदार्थ थे। माम्राके देवदूतोंको इब्राहीमने मक्खन दिया। फिलस्तीनको फ़तह करनेके पहले ये लोग गोपाल-वृत्तिवाले थे और दूधसे ही निर्वाह करते थे। ये अपने जानवर गाँवकी परती जमीन या जंगलोंमें चराते थे और वर्षके अधिकांश दिनोंमें वन्य-जीवन ही बिताते थे। जहाँ कहीं गौका दूध और मधुकी विपुलता होती, उसीको ये स्वर्ग मानते थे।

यहूदियोंमें पशु-यज्ञका चलन था। इसके विरुद्ध कई सुधारक उठे। यशया, अमास, होशेय आदि प्रवक्ताओंने अहिंसाका प्रचार किया।

'जो बैलकी हत्या करता है, वह मनुष्यकी हत्या करता है'। (यशया ६५। ३-४)

'मैं यज्ञका नहीं बल्कि दयाका भूखा हूँ।'

(होशेय ६—६)

'सब पदार्थ शुद्ध हैं। पर जो पदार्थ खानेसे मनुष्य लड़खड़ाने लगता है, वह पदार्थ खाना उसके लिये पाप है। मांस न खाना, शराब न पीना और जिससे तुम्हारे भाईको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठोकर लगती है, वह न करना अच्छा है।'

(रोमकरोंको चिट्ठी १४—१९—२१)

यहूदी भक्तोंकी यह धारणा है कि याकूबने एक बछड़ेको मारकर उसकी माँको कष्ट दिया था, इसीसे उसका बेटा यूसुफ उससे बिछुड़ गया।

ईसाई

बौद्धोंके समान ही ईसाईलोग भी पशुयागका निषेध करते हैं। ईसा कहा करते थे कि 'मैं यज्ञ बंद करनेके लिये अवतरित हुआ हूँ?' यहूदियोंके 'पासओवर' त्योहारपर ईसा जेरूसलम गये। वहाँ उन्होंने मन्दिरोंमें गाय-बैल, भेंड़, कबूतर आदिको देखा। उन्होंने रस्सी बटकर एक कोड़ा बनाया और सबको वहाँसे भगा दिया। (योहान २। १३-१५)

बाइबिलमें वृषभको देवता माना गया है। फिलस्तीनकी खुदाईमें गौके आकारवाली मिट्टीकी मूर्तियाँ मिली हैं। यहूदियोंका दुग्ध-प्रेम ऊपर उल्लिखित हो चुका है। वे स्वर्गको स्वर्ग न कहकर दुग्ध-भूमि कहा करते थे। 'ओल्ड टेस्टामेंट'में गौ और गौके दूधके सम्बन्धमें कम-से-कम पचास उल्लेख हैं। यहूदी बहुत ही निपुण गोपालक थे। उस समयके प्राचीन ग्रन्थमें एक कथा है—'कनान प्रदेशमें एक बार बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। इसलिये वहाँका रहनेवाला याकूब नामका एक गृहस्थ वहाँसे मिस्र देशको चला गया। उसका बड़ा बेटा उससे पहले ही वहाँसे भागकर मिस्र देशके राजाका आश्रय लिये बैठा था। 'उसे आगे राजगद्दी मिलनेवाली है'—यह खबर पाकर वह राजा फारबके पास गया। राजाने पूछा 'आप क्या काम करते हैं?' याकूबने उत्तर दिया—'हमलोग पशु-पालन और पशु-संवर्धन करते हैं।' राजाने तुरंत उसे अपने राज्यमें पशु-पालन-शिक्षक नियुक्त किया।' यहूदियोंकी इस विद्यामें बड़ी ख्याति थी।

एक किंवदन्ती है कि माम्राकी कन्दरामें रहनेवाले देवदूतोंको इब्राहीमने एक बार मक्खन-भोज दिया था। गोलियथ नामक राक्षसको मारनेके लिये जो सेना गयी थी, उसका सेनापति दाऊद था। सेनाके लिये जो रसद जुटायी गयी थी, उसमें दहीके दस बड़े-बड़े हंडे थे। दाऊदका सारा जीवन पशु-संवर्धनमें बीता था। वह बहुत बलवान्, ऊँचा, हट्टा-कट्टा, धीर, उदार और मेधावी पुरुष था। कारण, वह गोपालोंका सेनापति था।

(गोपति-सम्प्रदाय पृ० ९—११)

हिब्रू वर्णमालाके प्रथम वर्ण 'अलिफ' का अर्थ बैल है।

(गो० ज्ञा० को० म० ख०)

अमेरिका और गो-जाति

रेड-इंडियन (रक्तवर्ण हिंदू) लोगोंके समयमें अमेरिकामें ये गौएँ नहीं थीं, जो आज वहाँ दीख पड़ती हैं। 'प्रेरी' नामक तृणावृत प्रदेशमें बायजन जातिके प्राणियोंकी आबादी बहुत थी, पर रेड-इंडियन उनका उपयोग दुग्ध आदिके लिये नहीं करते थे। सन् १४९३ में कोलम्बस अपनी दूसरी यात्राके समय अपने साथ यूरोपसे कुछ गौएँ सानडोमिंगो टापूमें ले गया। एशियामें इन गौओंका जो मूल उत्पत्ति-स्थान रहा, वहाँसे स्थानान्तरण करते-करते गौओंकी यह जाति एक लंबी यात्राके बाद अमेरिका पहुँची। सानडोमिंगोसे इस जातिकी गौएँ सन् १५२५ में मेक्सिको और मेक्सिकोसे सन् १५३८ में फ्लोरिडामें दाखिल हुईं।

इसके बाद सन् १६२० में पहले-पहल अंग्रेज अमेरिका पहुँचे। इस बीच पुर्तगीज न्यू फाउण्डलैंडमें, फ्रेंच अकेडियामें और अंग्रेज वर्जीनियामें अपने साथ गौओंको ले गये। इस प्रकार अमेरिकाके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें ये गौएँ सीधे यूरोपसे ही आयीं। चारों ओर घने जंगल थे, एक स्थानसे दूसरे स्थानके लिये रास्ते ही नहीं थे।

गोपति-सम्प्रदाय

अमेरिका आनेवाले ये यात्री अपनी पहली यात्रामें गौओंको साथ नहीं लाये थे। इससे उन्होंने बड़ा दुःख उठाया। मातृहृदयसे बिछुड़े हुए बालक दूधके बिना मरने लगे। थोड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही दिनों बाद, हालैंडसे एक जहाज आया, उसपर लदकर कुछ गौएँ और भेड़-बकरियाँ नये प्रदेशमें आयीं। ब्राडफोर्डके गवर्नरने अपनी डायरीमें लिखा है कि 'इस जहाजके आनेपर यहाँ हर छः मनुष्योंके पीछे एक गौ और दो भेड़ें हो गयीं।' पहली यात्रामें गौओंके बिना इन्हें जो कष्ट हुआ, उससे आगे आनेवाले यात्रियोंने सबक सीखा। दक्षिण और उत्तर अमेरिकाकी मध्य-रेखाको लाँघते हुए, अलेधनी और मिसीसिपी नदियोंको पार करते हुए, ये लोग चार पहियोंकी एक बैलगाड़ी अपने साथ रखते थे और इस गाड़ीके पीछे-पीछे दुधार गौएँ चला करती थीं। इस यात्रामें यात्रियोंके बल-बुद्धिकी पूरी परीक्षा होती थी और इससे उन्हें अपनी संततिको बलवान् और सुदृढ़ बनानेकी आवश्यकताका तीव्र अनुभव होता था। गौके दूधके सिवा और कोई पौष्टिक पदार्थ वहाँ मिलना असम्भव था। इससे दूधका विशेष महत्त्व था। अमेरिकाके ये मूलप्रवासी इस प्रकार 'गोपति'-पदवीके अधिकारी हुए। इन्होंने अमेरिकामें गौएँ पालनेकी पद्धति चलायी। प्रत्येक अमेरिकनने स्वानुभवसे यह जान लिया कि दूध ही ऐसा पदार्थ है, जो सहज सुलभ और चाहे जब सेवन करने योग्य है। दूसरा कोई आहार ऐसा नहीं, जो इस तरह यात्राकालमें सदा तैयार रहे। इसलिये ये लोग उपजाऊ और समृद्ध तृणावृत भूमिसे यथेष्ट लाभ उठाते थे। आरम्भमें यह सारा देश अरण्यमय और मनुष्योंके लिये अज्ञात-सा था, पर आज वहाँ जहाँ-तहाँ गोपति-ही-गोपति दीख पड़ते हैं। अमेरिकामें जितनी अच्छी गौएँ हैं, उतनी पृथ्वीके अन्य किसी भी देशमें नहीं हैं।

अमेरिकाका गोपति-सम्प्रदाय पहले अतलान्तक उपनिवेशसे आरम्भ हुआ। इसी समय डच औपनिवेशिक हडसनके उस पार घर बनाकर रहने लगे। वहाँसे यह सम्प्रदाय अम्सटर्डम और न्यूयार्कके अँगरेज औपनिवेशिकोंमें पहुँचा। हडसनके पश्चिम तटपर इस समय हर्कीमर, ओनिश और आरेंज कौंटी नामकी रियासतें हैं। वहाँसे आगे बराबर गौओंके राज्य-जैसे ही सब स्थान दीख पड़ते हैं। इन स्थानोंके अधिवासी इन गो-राज्योंके अधिपति हैं। सब सुखी, सम्पन्न और सुधारप्रिय हैं। उनका सारा वैभव उन्हें गोरक्षासे ही प्राप्त हुआ है। हर्कीमर रियासत उत्तम चक्का दहीके लिये प्रसिद्ध है। दहीके व्यापारसे वहाँके गोपति करोड़पति हो गये हैं। आदिम औपनिवेशिकोंसे उनका यही व्यापार चला आता है। आरेंज कौंटीका मक्खन जगत्प्रसिद्ध है। वहाँके लोग मक्खनको सोना समझते हैं। वहाँका मक्खन होता भी है सोने-जैसा पीला। वहाँके बैंकोंके नोट भी पहले पीले रंगके होते थे। मक्खनके व्यापारसे ही यहाँ सोना बरसा और लोग इतने सुखी तथा सम्पन्न हुए। पहलेसे ही हडसनका पश्चिम तटवर्ती प्रदेश दूधके व्यापारमें सबसे श्रेष्ठ रहा है।

जिस प्रकार यूरोपके भिन्न-भिन्न देशोंसे आनेवाले ये ग्वाले अपनी-अपनी परम्परा और विशेषता लेकर अमेरिकामें आये, उसी प्रकार उनकी गौएँ भी अपनी-अपनी विशेषता लेकर वहाँसे आयीं और उस विशेषताको उन्होंने बनाये रखा।

हडसन नदीके तटपर पहले-पहल डच लोग आकर बसे। वहाँ उन्होंने दहीका व्यवसाय आरम्भ किया। वे हालैंड और क्वीन्सलैंडकी गौएँ अपने साथ वहाँसे ले गये। ये होलस्टीन जातिकी गौएँ कहलाती हैं। स्वीजरलैंडके ऊँचे पर्वतोंपरसे जो गौएँ यहाँ लायी गयीं, वे स्विस जातिकी गौएँ कहलाती हैं। इन गौओंके पैर बहुत मजबूत होते हैं। कारण, ग्रीष्म ऋतुमें इनकी पूर्वजाओंको अच्छे चारेके लिये पर्वतोंपर चढ़ना पड़ता था। जाड़ेके दिनोंमें स्विस लोग अपनी गौओंको किसी कन्दरामें रखते थे, क्योंकि स्वीजरलैंडके सब पर्वत शीतकालमें हिमाच्छादित रहते हैं।

स्काटलैंडसे जो गौएँ लायी गयीं, वे आयर-शायर जातिकी गौएँ कहलाती हैं।

इंग्लैंड और फ्रांसके बीच समुद्रमें जर्सी और गर्नसी नामके जो दो टापू हैं, वहाँसे लायी गयी गौएँ अमेरिकामें उन्हीं टापुओंके नामोंसे प्रसिद्ध हैं। ये गौएँ अमेरिकामें सर्वत्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

सादर राम राम। तुमने पूछा कि कभी संसारमें और कभी इधर-उधर मन चला जानेसे नाम-जपमें भूल हो जाती है, इस भूलका सुधार कैसे हो? सो ठीक है। जहाँ कहीं भी मन जाय, वहाँसे उसे बार-बार हटाकर भगवान्‌के जप-ध्यानमें ही लगाना चाहिये। 'दुनियामें नाम-जपके बराबर दूसरा कोई भी साधन नहीं है'—इस प्रकार समझना चाहिये। जहाँ आसक्ति होती है, वहीं मन जाया करता है। तुम्हारी संसारमें, सांसारिक पदार्थोंमें आसक्ति है, तभी मन संसारकी ओर जाता है। इसलिये संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर और अनित्य समझकर उसके प्रति वैराग्य करना चाहिये और भगवान्‌में आसक्ति—प्रेम करना चाहिये। तब फिर मन अपने-आप ही संसारकी तरफ न जाकर भगवान्‌की तरफ ही जायगा। इसलिये नाम-जपके लिये ऊपर लिखे अनुसार साधन करना चाहिये।

'भजन खूब बनता रहे, भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो जाय'—इसका उपाय पूछा सो बहुत ठीक है। श्रद्धा-प्रेम होनेसे अनन्य भजन बन सकता है। भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय पूछा सो ठीक है। जो वस्तु अच्छी समझी जाती है, साधारणतया उसीमें प्रेम हुआ करता है। भगवान्‌के समान वास्तवमें कोई है ही नहीं—यह बात तत्त्वसे समझ लेनेपर भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो सकता है। भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला, धामकी बातें ही लोगोंसे सुने, पुस्तकोंमें पढ़े और सत्संगमें लोगोंको सुनाये। इस प्रकार अभ्यास करनेसे प्रेम बढ़ सकता है। भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो, इसके लिये भगवान्‌से करुणा-भावपूर्वक स्तुति-प्रार्थना करे। गीता तथा रामायणका अर्थ और भावसहित पाठ करे। भाव नहीं समझमें आये तो बार-बार अर्थ ही पढ़े। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे भगवान्‌में प्रेम बढ़ सकता है।

तुमने लिखा कि भगवान्‌के भजनके लिये एकान्तमें तो समय मिलता नहीं, गृहकार्य करते समय ही गृहकार्यकी स्मृति न रहकर भगवान्‌का चिन्तन किस प्रकार हो, सो ठीक है। इसका उपाय यह है कि गोपियोंकी तरह प्रत्येक कार्य करते समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये। हाथोंसे काम करे और मनसे भगवान्‌का ही चिन्तन करे। भागवतके दशम स्कन्धके ४४ वें अध्यायके १५ वें श्लोकमें बतलाया है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

'जो गौओंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालनेमें झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरमें जल छिड़कते समय, झाड़ू देने आदि कार्योंको करते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्‌गद वाणीसे श्रीकृष्णका गान किया करती हैं—इस प्रकार सदा श्रीकृष्णमें ही चित्त लगाये रखनेवाली वे व्रजवासिनी गोपियाँ धन्य हैं।'

इस प्रकार गोपियोंकी भाँति घरका प्रत्येक कार्य करते हुए परम प्रेमास्पद, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सम्पूर्ण गुणोंके समुद्र भगवान्‌में मनको तन्मय करके सदा उनका चिन्तन करना चाहिये।

(२)

सप्रेम राम राम! आपका पत्र मिला। समाचार लिखे सो जाने। आपने लिखा कि 'सम्भव है मेरा जीवन भ्रममय, दम्भाचरणयुक्त, नास्तिकतापूर्ण है' सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये। जो नास्तिक होता है, वह अपनेको नास्तिक नहीं समझता। आपने लिखा कि शूद्र, पतित होनेके नाते भगवान् मुझसे कितनी दूर हैं, सो अवगत किया। आपको इस प्रकार नहीं समझना चाहिये, क्योंकि गीतामें तो भगवान्‌ने यहाँतक कह दिया है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
(९। ३२)

'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये उनके शरण हो रहना चाहिये। फिर उनसे थोड़ी भी दूरी नहीं है। गीता अ० ९ श्लोक २९ में कहा गया है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मुझे अप्रिय है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।' जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुए भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्तःकरणमें प्रत्यक्ष-रूपसे प्रकट होते हैं।

फिर अपनेको दूर समझकर उनसे वञ्चित तो रहना ही नहीं चाहिये।

आपने लिखा कि 'मुझ-जैसा पतित एकादशी, द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा आदिके व्रतका अधिकारी हो सकता है क्या? यदि हो सकता है तो विधि लिखिये।' सो ठीक है। उपवास तो कोई भी कर सकता है। विधि इस प्रकार समझनी चाहिये—'एकादशीका व्रत करनेके लिये दशमीके दिन सायंकाल भोजन नहीं करना चाहिये। फिर एकादशीको बिलकुल भोजन न करके द्वादशीको थोड़ा भोजन करना चाहिये।' यह तो सर्वोत्तम है। ऐसा न हो सके तो एकादशीके दिन फलाहार कर सकते हैं। वह भी दिनमें केवल एक बार। उस दिन अन्न तो खाना ही नहीं चाहिये तथा यम और नियमोंका भी पालन करना चाहिये।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(योगदर्शन २। ३०)

'अहिंसा (किसीकी हिंसा न करना), सत्य (यथार्थ भाषण), अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (सब प्रकारके मैथुनोंका त्याग) और अपरिग्रह (सब प्रकारके परिग्रहोंका अभाव)—ये पाँच 'यम' हैं।

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(योगदर्शन २। ३२)

'शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय (सत्-शास्त्रोंका अध्ययन) और ईश्वर-प्रणिधान (ईश्वरकी शरण)—ये पाँच 'नियम' हैं।'

इस प्रकार इन पाँचों यमों और पाँचों नियमोंका भी पालन करना चाहिये।

आपने पूछा—'मैं नीची जातिका होनेके कारण पापरहित किस प्रकार हो सकता हूँ? तथा मेरा शीघ्र-से-शीघ्र उद्धार हो सके—ऐसा उपाय बताइये।' सो बहुत ठीक है। चाहे कितनी भी नीची जातिका, नीचे वर्णका, दुराचारी—कैसा भी क्यों न हो, केवल भगवान्‌के शरण होकर भजन करनेसे वह शीघ्र ही मुक्तिको प्राप्त हो जाता है। गीता अ० ९ श्लोक ३० और ३१ में स्पष्ट लिखा है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

जब इस प्रकार भगवान् खुले शब्दोंमें कहते हैं, तब उनके शरण हो जानेमें देर करनी ही क्यों चाहिये?

आपने लिखा—'मेरा जीवन तो अति विचित्र विषय-वासनासे युक्त है, मन कभी संयमसे नहीं रह सकता' सो ज्ञात किया। जीवनको विषयोंके विषसे हटाना चाहिये। 'संसार नाशवान्, क्षणभङ्गुर, दुःखरूप और आदि-अन्तवाला है'—यों समझकर विषयोंसे वैराग्य करना चाहिये। इससे विषय-वासना दूर होकर चित्त स्थिर हो सकता है।

आपने लिखा कि 'मैं किस प्रकार अपने लक्ष्यपर पहुँच सकूँगा, मैं सब प्रकारसे शुभ कर्म करनेमें बिलकुल ही असमर्थ हूँ।' सो जाना। इस प्रकार आपको निराश नहीं होना चाहिये। केवल भगवान्‌की शरणसे आप अपने लक्ष्यपर पहुँच सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक प्रश्नोंके उत्तर*

श्रीमन्,

सादर हरिस्मरण।

आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

१-दन्तमंजन ही करना चाहिये। ब्रुश और टूथपेस्टसे दाँत साफ नहीं करने चाहिये। ये दोनों अपवित्र होते हैं। दाँतोंको दतुअनसे साफ कर लेना चाहिये, आवश्यकता समझें तो मंजनको भी काममें ले सकते हैं।

२-सुबह ग्रास कौवे और कुत्तेको—दोनोंको ही देना चाहिये।

३-श्राद्धमें पवित्र और वेदविज्ञ ब्राह्मणको ही भोजन करानेका विधान है।

४-रामायणके पाठ-समाप्तिके निमित्त नौ कन्याओंको या ब्राह्मणोंको भोजन करानेका कोई विधान तो है नहीं, फिर भी भोजन करानेमें कोई आपत्ति नहीं है।

५-एकादशीको उपवास-व्रत करके दूसरे दिन सुपात्र ब्राह्मणको सीधा देना अच्छा है, इसके देनेकी प्रथा इसलिये है कि एक दिनका अन्न जो उपवासके कारण बचा, वह किसी सत्पात्रकी सेवामें लगा दिया जाय। विधवा ब्राह्मणीको देनेमें कोई दोष नहीं है।

६-पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणसे कथा सुनकर उसे भोजन कराना अच्छा है। सीधा दिया जाय तो भी कोई दोष नहीं है।

७-पीपलके छोटे-छोटे गाछोंको बड़ी सावधानीके साथ मिट्टी-सहित उठाकर दूसरी जगह जहाँ जरूरत समझी जाय, वहाँ लगा देना चाहिये ताकि लोगोंको उसकी छायाका सुख मिल सके।

८-आँवलेके गुण बहुत हैं, उनकी स्मृति दिलानेके लिये यह दिन रखा गया है। आँवलेके पौधेमें जल देना, उसका पूजन करना बहुत अच्छा है, किंतु उसकी डाली तुड़वाकर मँगवाना ठीक नहीं है।

९-तोता पालना लाभप्रद हो सकता है, यदि उससे भगवान्का नाम बुलाया जाय और उसे नाम-जपकी आदत डाली जाय।

१०-गीता-जयन्तीका उत्सव मनाना अच्छा है। लाभप्रद है। गीतावक्ता भगवान् और श्रोता अर्जुनकी स्मृति दिलानेवाला है। न माननेसे इस लाभसे वञ्चित रहनेके सिवाय और कोई नुकसान मेरी समझसे नहीं है।

११-दहीमें कीड़े होते हैं, यह आजकलके लोगोंकी मान्यता है। सनातनधर्म इसे नहीं मानता। दहीमें एक प्रकारके परमाणु रहते हैं, जिनकी मृत्यु नहीं होती।

१२-रेशमके कपड़े बुननेमें कोई कीड़े नहीं मरते। सूत निकालनेके लिये लोग कीड़ोंको मार डालते हैं, नहीं तो वे कीड़े समयपर उसे काटकर अपने-आप बाहर निकल जाते हैं। पीछेसे उसको कातकर कपड़ा बुना जा सकता है। उस कपड़ेमें हिंसा नहीं होती। इसलिये वह शुद्ध है एवं रेशमी कपड़ेमें चिकनाई रहनेके कारण मैले परमाणु नहीं चिपकते। इस कारण भी वह शुद्ध माना गया है।

१३-पीतलके बर्तनपर कलई करनेमें नौसादर लगता है वह अशुद्ध होता है, इसलिये बहुत लोग व्यवहारमें नहीं लाते। कोई खास दोषकी बात नहीं है।

१४-रातका भोजन कीर्तनके पहले भी किया जा सकता है, परंतु संध्याकी आरतीके बाद ही करना चाहिये। भगवान्को शयन करानेकी आरती भोजनके बाद ही करनी चाहिये।

१५-स्त्रीको चाहिये कि पतिको भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करे, पहले नहीं। यदि पति बीमार हों तो उनकी आज्ञासे कर सकती है। पतिको बिना खिलाये यदि पत्नी स्वेच्छासे भोजन पहले कर ले तो पति-सेवाका उसके मनमें महत्त्व नहीं रहता एवं पतिका एक प्रकारसे तिरस्कार ही है। (प्रेषक—श्रीदशरथकुमार लाठ)

---

* एक सज्जनने श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे कुछ व्यावहारिक प्रश्न पूछे थे और उन्हें जो उत्तर प्राप्त हुआ था, उसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ७४७ से आगे]

दृश्य—११
मीराका साधु-सत्कार—एक कंटक

ऊदाबाई—विक्रम भैया! भाभी आज भी कितने साधुओंके बीच खुल्लमखुल्ला हँसकर बातें कर रही थी। तत्पश्चात् उसने गाना भी गाया और नाची भी।

विक्रम—हाँ, आजकल तो प्रायः रोज ही ऐसी घटनाएँ हो रही हैं। हमारा सम्मान तो मिट्टीमें मिला दिया।

ऊदाबाई—मैं तो समझती थी कि पिताजी और बड़े भैयाका सहारा उठ जानेसे भाभी सँभल जायगी और पूजा इत्यादि केवल महलके अंदर करेगी। वह तो अब बाबा लोगोंके संग नाचती भी है। बंद करा दो यह सब नाटक।

विक्रम—आज भाभीको आये बारह साल हो गये। पिताजी और बड़े भैयाने इसकी गतिविधियोंपर अंकुश नहीं रखा। इन साधुओंका समाजपर इतना प्रबल प्रभाव है कि इनपर प्रतिबन्ध लगा तो ये लोग हमारे विरुद्ध हो जायँगे।

ऊदाबाई—तो भाभीको इन साधुओंके संग गाने और नाचनेकी खुली छूटपर कोई रोक नहीं लगाओगे?

विक्रम—धीरज रखो, जीजी। मैं सब ठीक कर लूँगा।

ऊदाबाई—कबतक?

विक्रम—तो सुनो, जीजी। (*इधर-उधर देखकर धीरेसे*) उसके गिरिधरको चुराकर पातालमें पहुँचा दो न।

ऊदाबाई—(*प्रसन्न होकर*) ठीक है, यह कंटक सदैवके लिये समाप्त हो जायगा। यह काम मैं ही करूँगी।

विक्रम—शीघ्र करो तो मुँहमाँगा इनाम लो।

दृश्य—१२
गोपालकी चोरी

ऊदाबाई—भाभीजी, पाय लागूँ।

मीरा—आओ ऊदाजी ! बैठो। सब कुशल है न? कब आयी?

ऊदाबाई—आयी तो कल साँझको थी। तुम्हारे पास आ ही रही थी, राणाने रोक लिया। अब आयी हूँ और राणाका संदेश भी लायी हूँ।

मीरा—(*हँसती हुई*) संदेश है या शिकायत?

ऊदाबाई—शिकायतकी बात नहीं। सारा राज्य इस बातसे चिन्तित है कि अनाप-शनाप लोग आकर आपके कीर्तनमें नाचते हैं………।

मीरा—समझ गयी बाई। गिरिधरकी अनुमतिके बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तुम्हारे और विक्रमके विचार भी तो मेरे लीला-पुरुषोत्तम गोपालकी लीला ही है।

ऊदाबाई—तुम इसको गोपालकी लीला कहती हो। मर्यादाओंको खूँटीपर रख महलकी राजरानी होते हुए खुले मुख, नंगे सिर और नंगे बाबाओंके बीच तुम नाचती-मटकती हो और बीचमें लाती हो भगवान्‌को। (*इसी समय एक दासी गिरिधरमन्दिरके परदेके पीछेसे जहाँ गिरिधरका भोग धरा है, आती है और गिरिधरको उठाकर पीछेके दरवाजेसे निकल जाती है।*)

मीरा—(*गम्भीर-मुद्रामें*) अच्छा, सुन लिया तुम्हारा संदेश। अब तुम जाओ।

ऊदाबाई—नहीं जाऊँगी, सुनाकर जाऊँगी। अब राज्य भोजका नहीं, विक्रमका है। समझ गयी बाई!

[*मीरा गम्भीर-मुद्रामें भोग-लगे गिरिधरके पर्देके सामने खड़ी है और आँख बंद करके गिरिधरसे कहती है—*]

मीरा—यह कैसी लीला है प्रभु ? तुम्हारी सारी लीलाएँ हितकर तो होती हैं, परंतु यह लीला समझमें नहीं आयी। (*कुछ मनमें विचारकर*) समय आनेपर समझमें भी आ जायगी।

[*मीरा (आँख खोलकर) ताली बजाकर परदा खोलती है। गिरिधरको अपने स्थानपर न देखकर हताश हो*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकारती है—]

मीरा—गिरिधर, मेरे गिरिधर! *(रुदन करते हुए)*—

होजी हरि कित गये नेह लगाये॥ टेक॥

नेह लगाये मेरो मन हर लीनो, रस-भरी टेर सुनाय।

मेरे मनमें ऐसी आवै, मरूँ जहर विष खाय॥

छाड़ि गये बिसवास-घात करि, नेह केरी नाव चढ़ाय।

मीराके प्रभु कबरे मिलोगे, रहे मधुपुरी जाय॥

[दासी गिरिधरको लेकर ऊदाबाई और विक्रमके पास पहुँचती है।]

दासी—ओह, मेरी छातीपर हथौड़े चल रहे हैं। यह फट जायगी। मरी, मरी, रोऊँगी, चिल्लाऊँगी। गिरि..धर..गिरि..धर।

विक्रम—दासी, होश सँभालो। नहीं तो गर्दन उड़ा दूँगा। *(तलवारपर हाथ रखता है, गिरिधरको ले लेता है।)*

ऊदाबाई—भैया, मेरी छातीपर भी पत्थरसे कोई मार रहा है। *(अचेत हो जाती है, इधर मीरा भी गिरिधर-गिरिधर रटते हुए बेहोश हो जाती है। गिरिधरको यथास्थान रख दिया जाता है।)*

[कुछ लोग दौड़कर आते हैं। एक सेविका चरणामृत उठाकर मीराके मुखमें डालती है। मीरा सचेत होती है और घबराकर गिरिधरकी ओर देखती है।]

मीरा—*(रोते हुए)* आप कहाँ गये थे मुझे छोड़कर! यह आँख-मिचौनी कैसी? यह कैसा खेल? यह भी कोई लीला है? आप करें लीला और किसीकी जान जाय। *(रुदनमें महान् पीडाकी चीख)*

दृश्य—१३

मीरामें परिवर्तन लानेके उपाय

[राणा विक्रमाजीतका कक्ष। एक गुप्तचरी दो युवतियोंको लेकर प्रवेश करती है।]

गुप्तचरी—महाराजाधिराज, महाप्रतापी, महातेजस्वी राणा विक्रमाजीतकी जय हो। आप इन दो युवतियोंको मीराके पास रखनेका आदेश दें, जो उसको समझाकर परिवारकी मर्यादाओंके अनुकूल आचरण करनेकी ओर प्रेरित करें।

विक्रम—हाँ, इनको नियुक्त करनेका विचार है!

गुप्तचरी—जी महाराज! ये पढ़ी-लिखी हैं और अच्छे आचरणका स्वयं भी पालन करती हैं और दूसरोंको भी ऐसी ही शिक्षा देनेमें समर्थ हैं।

विक्रम—*(युवतियोंसे)* मैं चाहता हूँ, मीरा नाचना-गाना बंद कर दे और कुलकी मर्यादाओंके अनुसार किसी अन्य पुरुषसे न मिले। न जाने महात्माओंके भेषमें हर प्रकारके आचरणहीन लोग भी साथमें नाचते-गाते हैं। मीराको यह सब बंद कर देना चाहिये।

एक युवती—हम इसका पूरा प्रयत्न करेंगी और सफल भी होंगी। महाराज, आपका आशीर्वाद चाहिये।

विक्रम—*(गुप्तचरीसे)* इनकी नियुक्ति कर दो।

[युवतियाँ मीराके कक्षमें। युवतियोंने भगवे कपड़े पहने हैं और जोगनका भेष बनाया है। आरती हो रही है। मीरा आरतीमें मगन है। प्रारम्भमें तो युवतियाँ कुटिल दृष्टिसे मीराको देखती हैं परंतु थोड़े ही समय-पश्चात् ताली बजाकर आरतीमें सम्मिलित होती हैं। मीराकी दृष्टि उनपर पड़ती है और वे नाचना आरम्भ कर देती हैं। युवतियोंको सुध-बुध नहीं रहती।]

(क्रमशः)

अमृत-बिन्दु

जबतक संसारमें आसक्ति है, तबतक भगवान्‌में असली प्रेम नहीं है।

जैसे गायके शरीरमें रहनेवाला घी काम नहीं आता, ऐसे ही सीखा हुआ ज्ञान काम नहीं आता।

आप कैसे ही हों, अभी इसी क्षण मान लें कि 'मैं भगवान्‌का हूँ।'

जो अपने सुखके लिये वस्तुओंकी इच्छा करता है, उसको वस्तुओंके अभावका दुःख भोगना ही पड़ेगा।

हमारे हृदयमें 'परमात्माके सिवाय दूसरेकी महत्ता है'—यही परमात्मप्राप्तिमें बाधक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

संकटमें प्रभु-कृपा ही एकमात्र अवलम्बन

दिनाङ्क २७-८-९४ को मेरे साथ एक हृदयविदारक घटना घटी। कलकत्तेमें मैं अपने पतिके साथ अपनी दुहिती (दौहित्री) पल्लवीको देखकर हॉस्पिटलसे वापस लौट रही थी। ए०सी० मार्केटमें मुझे कुछ काम था। मेरे पतिदेवने गाड़ीसे मुझे वहाँ उतारा। मैं अपना कार्य पूराकर घर जानेके लिये एक टैक्सीपर बैठी। बीचमें ही याद आया कि बैंकमें लॉकरका कुछ काम है, उसे आज कर लूँ या किसी दूसरे दिन करूँ। इसी ऊहापोहमें मार्गमें ही बैंक दिखायी दिया और मैंने टैक्सी वहाँ छोड़ दी और मैं बैंकमें चली गयी। मुझे लॉकर-रूममें जाना था, मैंने हस्ताक्षर आदिकी औपचारिकता पूरी कर लॉकर-रूममें प्रवेश किया। शनिवारका दिन होनेके कारण बैंकके सब लोग जानेकी जल्दी कर रहे थे। अपने लॉकरको खोलकर उसमें रखे सामानको चेक करने लगी। बहुत जोरसे भूख लगी थी, बदनमें दर्द भी बहुत था। मनमें विचार किया जल्दीसे ताला बंद करके घर चलूँ तो कुछ खाऊँ। सामान वापस रखने लगी। उसी क्षण अचानक बिजली बंद हो गयी। वहाँ घोर अंधकार छा गया। मैं घबरायी एवं चिल्लाती हुई गेटकी तरफ भागी। मैंने जोरसे चिल्लाकर कहा—'ओ भाई! मुझे बंद मत कर देना, मैं यहाँ अंदर हूँ', पर वे तो गेट बंद कर चुके थे। मैं अंधकारमें घबरा गयी और अपने-आपको कोसने लगी कि तू आज यहाँ क्यों आयी। घबराहटमें पसीनेसे तर हो गयी। डरसे थर-थर काँपने लगी। वहाँ पड़ा एक डंडा मेरे हाथ आ गया, जिसे मैंने लोहेकी ट्रॉलीपर पीट-पीटकर चिल्लाना शुरू किया कि 'भाई मेरेको बंद करके मत चले जाना, गेट खोलो', पर कोई फर्क नहीं पड़ा। बहुत घबरा गयी। रोयी-चिल्लायी पर कोई सुननेवाला नहीं था। बाहरसे बैंकके स्टॉफके लोगोंकी आवाज आ रही थी, मैं जबतक उनकी आवाज सुनती रही, तबतक चिल्लाती रही। थोड़ी देर बाद बाहरकी आवाज आनी भी बंद हो गयी। अब तो मैं और घबरा गयी। बेहोशीकी-सी हालतमें आ गयी, वहीं गिर पड़ी, फिर उठी, टटोल-टटोलकर इधर-से-उधर भागती रही। मनमें सोचा, अब तो मुझे यहीं रहना पड़ेगा। आज शनिवार है, कल रविवार है। गर्मीमें पसीनेसे तो भींग ही गयी थी, शरीरमें दर्द और भूख पहलेसे ही थी। घोर अंधकारमें एकाकी अन्यमनस्क हो असहायरूपमें खड़ी थी। उसी क्षण मुझे ऐसा लगा कि मेरेमें कोई ईश्वरीय शक्ति प्रवेश कर रही है, मैंने स्वयंको सँभाला। पाँच दिनों पूर्व श्रावण मासमें मेरे गुरुदेव कलकत्ता पधारे थे। उनके सत्संग-प्रवचन कई दिनोंतक मैंने सुने थे। मुझे सत्संगकी वे बातें स्मरण होने लगीं। परमात्म-प्रभुके सिवा मेरे साथ वहाँ कोई नहीं था। अतः उस काल-कोठरीमें मैं स्वयंको ध्यानावस्थित कर प्रभुके ध्यानमें निमग्न हो गयी। कुछ समयके लिये मैं अपनी पीडा भूल-सी गयी और ध्यानावस्थामें प्रभुके दर्शन करने लगी, यह अवस्था ऐसी थी, जो शायद पहले कभी मुझे प्राप्त नहीं हुई। कुछ क्षणोंके लिये मेरा अँधेरा मिट गया, पर बादमें पुनः जब मैं अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आयी तो महान् कष्टका अनुभव होने लगा। प्यास और भूख तो भूल चुकी थी। जिस-किसी प्रकार शनिवारकी रात बीती। रविवार भी बीतने लगा। गेटके फाटकके चीरसे बाहरका अंधकार और प्रकाश दिखायी पड़ता था, जिससे दिन और रातका अनुमान होता था। बार-बार मैं प्रभुको स्मरण करती थी। कभी पाठ करने लगती थी, कभी ध्यानमें बैठ जाती थी और कभी-कभी मन विचलित भी होने लगता था। जिस किसी प्रकार इसी तरह रविवारकी रात्रि गुजारी। सोमवारका प्रातःकाल होनेपर बैंक खुलनेके लिये दस बजेका इंतजार करने लगी। घड़ी तो थी नहीं, पर अंदाजसे समय बीतता चला गया। अचानक मुझे स्मरण आया कि आज जन्माष्टमी है, अतः आज बैंकमें छुट्टी होगी। मैं एक बार कराह उठी। मुझे लगा कि शायद जीवन-लीला मेरी यहाँ ही समाप्त होनेवाली है। चित्तमें विभिन्न कल्पनाएँ भी उठती थीं। जीवन और मृत्युका संघर्ष चल रहा था, पर भगवान् कब किसपर किस रूपमें कृपा करते हैं, यह कोई जानता नहीं। मेरे ७२ घंटे उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल-कोठरीमें ही बीते। मंगलवारको प्रातः मैं सावधान होकर बैठ गयी। कुछ देर मैं ध्यानमग्न होकर प्रभुको याद करने लगी। मैं प्रार्थना करने लगी कि प्रभो! आपने गजको संकटसे उबारा, द्रौपदीकी लाज बचायी, मुझ इस अकिंचनके लिये भी नाथ! आप दया नहीं करेंगे? इस तरह विभिन्न भावोंमें डूबती हुई मुझे हनुमान्‌जी महाराजका ध्यान आया। मंगलवारको मैं घरपर भी हनुमानचालीसाका पाठ किया करती थी। मैंने हनुमानचालीसाका पाठ प्रारम्भ किया—*'संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥' 'छूटहि बंदि महा सुख होई।' 'जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा।'*—इन पंक्तियोंके पाठमें मेरे आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी। मैं सोचती थी कि क्या प्रभु, मेरे लिये इस कृपाका अवसर नहीं आया है? इस प्रकार पाठ करते-करते अरुणोदयकालका समय आ गया। शायद प्रातःकालके छः बजे होंगे। बैंकके बाहरके दरवाजेकी साँकल खुलनेकी आवाज आयी। झाड़ू देनेवाले जमादारका प्रवेश हुआ। मैं तो पाठमें मग्न थी, पर उसकी आवाज सुनकर मेरी आशाकी किरणें जाग उठीं। मैंने उसको जोरसे आवाज दी। आवाज सुनकर वह सहम गया, वह डरकर बोला—'आप कौन हैं?' मैंने कहा—'भैया, तुम डरो नहीं, मुझे तो बैंकवालोंने शनिवारको बंद कर दिया। मैं तीन दिनसे इसमें बंद हूँ।' उसने दूरसे ही सारी बातें सुनकर मेरे निकट आनेकी हिम्मत की। मैंने सब कुछ उसे बताया और कहा—'मुझसे टेलीफोन-नंबर लेकर मेरे घरवालोंको फोनसे सूचित कर दो।' उसने कहा कि ठहरिये, मैं कलम-कागज ले आता हूँ। कितनी ही देर बाद वह कागज-कलम लेकर लौटा। इस बीच मैं पुनः ध्यानमग्न हो गयी और अपने प्रभुको धन्यवाद देने लगी। उनकी करुणामयी कृपाका चिन्तन कर मुझे अश्रुपात हो रहा था। भगवान्‌ने आज मेरी कड़ी परीक्षा ली और संकटकी इस घड़ीमें असीम शक्ति भी प्रदान की। बैंकके उस जमादारद्वारा फोन करनेपर थोड़ी ही देरमें मेरा बेटा सुनील, देवर, जमाई, मेरे पतिदेव तथा अन्य सगे-सम्बन्धी सभी जुट गये। दरवाजेकी चाबी तो थी नहीं। चाबीके लिये भाग-दौड़ मची। थोड़ी ही देरमें पुलिस भी आ गयी और बैंकवाले भी आये। इस बीच मैं पुनः ध्यानावस्थित हो चुकी थी। अर्धचेतनावस्थामें ही थी कि दरवाजा खुला। परिवारके लोगोंने मुझे उठाना चाहा। मैं कराह उठी। थोड़ी ही देरमें सँभली और किसी तरह बाहर आयी। परिवारके सभी लोग अत्यधिक चिन्तित थे, मेरी दशा देखकर। तीन दिनोंमें उन लोगोंने मुझे कहाँ नहीं खोजा, सब अपनी-अपनी दास्तान सुनाने लगे। तत्काल डॉक्टर बुलाया गया जिसने मेरे शरीरका परीक्षण किया, बाहर आनेपर मैं स्वयंको अत्यधिक शक्तिहीन अनुभव कर रही थी, बोलनेका भी मन नहीं करता था, जबतक भीतर थी तबतक ऐसा एहसास होता था कि भीतर किसी दैवीशक्तिका संबल था, जिसने तीन दिन और तीन रात्रि अँधेरी कोठरीमें सकुशल व्यतीत कराया।

संकटमें भगवत्स्मृति किस रूपमें होती है और प्रभुसंरक्षण किस रूपमें प्राप्त होता है, इसका स्पष्ट अनुभव इस घटनाने मुझे कराया। जिसका स्मरण होनेपर आज भी रोमांच होने लगता है। —पुष्पादेवी

(२)

विश्वासका फल

घटना १९९२ की है। इसी साल मैं सरकारी नौकरीसे सेवानिवृत्त हुआ। घर आनेके लगभग छः माह बाद न जाने क्यों मेरे सारे शरीर तथा दाहिने पैरमें बड़ा ही कष्टप्रद दर्द रहने लगा, जिससे दिन-रात बेचैनी रहने लगी। मेरे पारिवारिक जनोंके लिये भी यह चिन्ता एवं परेशानीका कारण बन गया। मेरे सगे-सम्बन्धी एवं परिवारके सदस्योंने मुझे चिकित्सककी सलाह लेकर दवा प्रारम्भ करनेका सुझाव दिया। परंतु मैंने किसीकी एक भी बात न सुनी, उनसे हाँ-हाँ, ठीक है, ठीक है—ऐसा कहता रहा, पर मेरा भगवान्‌पर भरोसा था, मैं चुपचाप ईश्वरकी ओर ध्यान लगाये बैठा रहता। दर्द तो ऐसा था कि करीब तीन-चार रात-दिन एक भी क्षण सोनेका मौका न मिला। प्रत्येक अङ्गकी वेदना इस प्रकार कष्टकर थी कि करवट बदलना भी मेरे लिये दुष्कर प्रतीत होता था। पैरोंके सूजनने तो मेरे लिये चलना, यहाँतक कि उठना-बैठना भी अत्यन्त कठिन कर दिया था।

मित्रों और सम्बन्धियोंने राय दी कि यदि एलोपैथी दवा नहीं लेनी है तो न लें, कोई घरेलू उपचार तो करना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। उन्होंने तरह-तरहके पदार्थका सेवन करनेको कहा—किसीने लहसुन खानेकी सलाह दी तो किसीने कुछ। किंतु मैं बचपनसे ही लहसुन-प्याज इत्यादिसे परहेज रखता था और ऐसे विचारको मनमें आने भी न देता था। मेरा मन तो था नहीं, पर लोगोंके बहुत जोर देनेपर मैंने यह भी करके देखा, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। फिर मैंने सब बंद कर दिया। मेरी अन्तरात्माकी आवाज मुझसे कुछ और ही कह रही थी। अब मैंने लौकिक चिकित्साको छोड़कर पारलौकिक चिकित्साका सहारा लेनेका मनमें निश्चय किया और वह चिकित्सा थी—'भगवन्नाम-जप'। मैंने जीवनके प्रारम्भसे ही मङ्गलमय शिव एवं दुर्गतिनाशिनी दुर्गाकी पूजा तथा अर्चना करना अपना कर्तव्य समझा था। और प्राय: मैं यह सब करता भी रहा। मैंने अपनी धर्मपत्नीको अपने मनकी बात बतलायी और फिर मेरा नाम-जप बड़ी ही श्रद्धासे चल पड़ा, पूजा-आराधना भी होने लगी। मेरे मनमें यह विश्वास था कि भगवान् मेरी अवश्य सुनेंगे। जब सबकी सुनते हैं तो मेरी क्यों नहीं सुनेंगे? इसी विश्वास एवं आस्थाका संबल लेकर मैं दुर्गा देवीका नाम-जप करने लगा। कुछ ही समय बीता होगा कि मुझे ऐसा लगने लगा कि दर्द कुछ कम हो रहा है, फिर तो मैं और दुगुने उत्साहसे आत्मसमर्पण करते हुए आराधना करने लगा। माँ दुर्गा एवं बाबा भोलेनाथकी ऐसी कृपा हुई कि शनै:-शनै: मेरा सारा दर्द जाता रहा और पाँवकी सूजन भी कम हो गयी तथा कुछ ही दिनोंमें मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। यह देखकर मैं तो एक महान् आश्चर्य-समुद्रमें निमग्न था ही और भी जितने मेरे मित्र सगे-सम्बन्धी पारिवारिक जन तथा चिकित्सक लोग थे सभी इस दैवी चिकित्साके चमत्कारसे अभिभूत थे। भगवान्‌की असीम अनुकम्पा एवं महान् करुणाका ख्याल कर मैं मुग्ध था। मुझे लगा कि यदि हम सभीमें दृढ़ भगवद्भावना एवं शरणागतिका पूर्ण भाव आ जाय तो निश्चितरूपसे इस संसारमें व्यक्ति एवं समष्टि सभीका पूर्ण हित हो जायगा और यह मानव जगज्जननीकी स्नेहभरी गोदमें बैठनेका आनन्द प्राप्त कर सकेगा। आओ, इसके लिये हम उन्हींसे प्रार्थना करें—

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

—ज्योतिषचन्द्र

(३)

गोमूत्र-सेवनसे चमत्कारी लाभ

मेरी अवस्था लगभग ७९ वर्षकी है। मैं बहुत दिनोंसे श्वास तथा उच्च रक्तचापसे पीडित था। अंग्रेजी दवाएँ बराबर चल रही थीं। 'गोसेवा-अङ्क'में गोमूत्रसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा पढ़कर मैंने मन बनाया कि क्यों न इसका प्रयोग किया जाय। मुझे जुकाम भी बहुत जल्दी-जल्दी होता था। इसलिये मैंने फूली हुई फिटकरी $\frac{१}{४}$ चम्मच, $\frac{१}{४}$ प्याला गोमूत्रमें पीना शुरू किया। पहले ही दिनसे फायदा हुआ। मुझे यह प्रयोग करते लगभग एक माह हो गया। डॉक्टरोंसे चेक कराया तो पता चला कि फेफड़े बिलकुल ठीक हो गये हैं। रक्तचाप भी प्राय: सामान्य हो गया। पहले मैं सौ-दो-सौ कदम भी नहीं चल सकता था, किंतु अब लगभग २ कि० मी० रोज टहलता हूँ। यदि किसी प्रकार यह प्रयोग मुझे पहले ज्ञात हो गया होता तो मेरी स्त्रीका देहान्त यकृत् बढ़नेके कारण जो ५ माह पूर्व हुआ, सम्भव है वह न होता। मुझे अनेकानेक अंग्रेजी दवाइयोंसे कुछ लाभ नहीं हुआ, बल्कि गोमूत्रका थोड़े समय सेवन करनेसे चमत्कारी लाभ हुआ।

—रामस्वरूप वर्मा

(४)

माताकी सीख

बात लगभग ४५ वर्ष पूर्वकी है, वृन्दावनमें श्रीबिहारीमन्दिरके गोस्वामी मदनमोहनजीने एक दुग्धवती गौ मुझे दानमें दी। उसीकी सेवा एवं सम्पर्कसे मुझमें गोप्रेम जाग्रत् हुआ। कुछ समय बाद जब मेरी माताजी अत्यधिक बीमार थीं, मरणासन्नकी स्थिति हो गयी थी तो मैंने माताजीसे प्रार्थना की—'माँ! आप तो मुझे छोड़कर जा रही हैं अब हम किसकी सेवा करेंगे' तो उन्होंने कहा—'बेटा! गौ माताकी सेवा करना, वह जन्मभर दूध पिलायेगी, कभी बीमार नहीं पड़ोगे।' माँ तो चली गयी, किंतु मैंने उनकी शिक्षा गाँठ बाँध ली।

वृन्दावनके समीप राजपुर नामका एक गाँव है, मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यवश वहाँ जा रहा था तो मार्गमें मैंने देखा कि लोहेके एक काँटेदार बाड़ेमें कई गायें घिरी हुई हैं। उसमें एक गायके सींगोंमें बँधी हुई रस्सी ढीली हो गयी है, जिससे उसकी आँखपर चोट लग रही है। उसे ठीक करनेके लिये मैं आगे बढ़ा, परंतु बाड़के समीप जाकर रुक गया। गाय मुझसे लगभग १० कदम दूर थी, लेकिन लगा कि वह मेरी भावना समझ गयी, वह आगे बढ़कर बाड़के समीप आ करके खड़ी हो गयी। मैंने उसके आँखपरसे रस्सी हटाकर ठीक कर दी और अपने कार्यसे चला गया। लगभग १५ दिनके बाद मैंने देखा कि वही गाय वृन्दावनके मवेशीखानेमें बंद है। यह देखकर मैं उसके मालिकके पास गया और मैंने कहा—'तुम्हारी गाय वृन्दावनके मवेशीखानेमें बंद है, उसे छुड़ा लो। उसने कहा—मेरी सामर्थ्य उसे छुड़ानेकी नहीं है। आप मेरे नामसे छुड़ाकर अपने पास रख लीजिये। मैंने उसकी बात मान ली और गायको छुड़ाकर अपने रंग-बिहारी-मन्दिरमें रख लिया।

मैं उस समय गृहस्थाश्रममें था, प्राथमिक पाठशालामें अध्यापक था। वेतन बहुत कम मिलता था, परंतु गायकी सेवा खूब तत्परताके साथ करता था। वह इतनी सीधी थी कि बाहर निकल जाय तो कोई भी पुकारकर उसे दुह लेता था। मैं गायकी सारी सेवा स्वयं करता था। दुहनेके समय वह मुझे चाटती रहती। उसकी सेवा करनेमें मुझे बड़ा ही आनन्द होता था और परम संतोष भी होता। मेरी कार्य करनेकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमता भी बढ़ गयी थी। मेरा शरीर भी हृष्ट-पुष्ट बलवान् बन गया। आज मैं ८५ वर्षका हो गया हूँ, परंतु मेरे शरीरमें कोई रोग नहीं है। गोमाताकी कृपासे सब कुछ स्वर्ग-जैसा बन गया।

जब विचार करता हूँ तो मुझे माताकी वह सीख याद आ जाती है, जिसे उन्होंने अपने अन्तिम समयमें मुझे दिया था और कहा था—'बेटा! गौ माताकी सेवा करते रहना, वह कामधेनु है। जो चाहो दे देती है—इसकी सेवासे लोक तथा परलोक दोनों बन जायगा।' क्या ही अच्छा होता यदि आजकी भी सभी माताएँ अपनी संतानको गोसेवाका पाठ पढ़ातीं!

—दण्डी स्वामी हरेकृष्णानन्द सरस्वती

(५)

शरणागतिका प्रत्यक्ष फल

बात २७-५-९३ की है। मेरे गलेकी दायीं ओर एक गाँठ होने लगी। यही गाँठ दस रोजमें बढ़कर मोटे बेरके बराबर हो गयी तथा धीरे-धीरे बढ़कर इस गाँठने मुझे इस हालतपर लाकर खड़ा कर दिया कि रोटी खाना तथा पानी पीना भी दूभर हो गया। जब दिनोंदिन खराबी ज्यादा बढ़ने लगी तो अन्ततः हॉस्पिटलमें जाकर डॉक्टरोंसे परामर्श किया, इसपर डॉक्टरोंने एक्सरे करवाकर मुझे एक माहकी दवा दे दी और कहा कि आप एक माह दवाका सेवन कर फिर यहाँ आयें। बादमें आपके सीनेका एक्सरे करवाकर आपके गलेकी गाँठका ऑपरेशन किया जायगा। डॉक्टरने टी०बी० की भी सम्भावना व्यक्त की।

मेरी उम्र ५० सालकी थी। तबतक मैंने कभी भी इतनी दवाका प्रयोग नहीं किया था और अब उन दवाओंको दिनमें ५ या ६ बार लेना मुझे तो मौतसे भी बदतर लगा। पर मरता क्या न करता, न चाहते हुए भी मैं १५ दिनतक लगातार दवा लेता रहा, फिर भी न मुझे कुछ फायदा हुआ न गाँठ ही कम हुई। १५ रोज बाद मैं जयपुर गया यह सोचकर कि डॉक्टरसे विनती करके यह कहूँगा कि मुझसे अब दवा नहीं ली जाती, मेरा ऑपरेशन कर दीजिये। लेकिन जयपुर जानेके बाद मेरा मन एकदम बदल गया और मनमें यह बात आयी कि क्यों न पहले श्रीजीके डिग्गी चला जाय, फिर बादमें डॉक्टरके पास जाया जाय। फिर क्या था डिग्गी जाकर श्रीजीके दर्शन करना निश्चित हो गया और डिग्गी श्रीजीके दर्शनके लिये मैं बसमें बैठ गया। रास्तेभर यही विचार आते रहे—'हे भगवन्! न मेरे पास इतने पैसे हैं कि मैं सफल इलाज करा सकूँ और न ऑपरेशनके लिये ही रुपये हैं। मैं तो अब आपकी शरणमें हूँ, प्रभो! इस महान् कष्टसे आप मुझे उबार लें।' इन्हीं विचारोंमें डूबा हुआ मैं डिग्गीपुरी कब पहुँच गया, पता नहीं चला। मैं बस-स्टैंडपर उतरकर सीधे श्रीजीके स्थानपर पहुँचा और प्रतिमाके सामने खड़ा होकर आर्त पुकार करने लगा, अश्रुधारा स्वतः ही आँखोंसे बहने लगी। कितनी देर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अवस्थामें रहा, इसका मुझे कुछ भान ही न रहा, न यह भान रहा कि कितने लोग मुझे देख रहे होंगे। उसी अवस्थामें मुझे यह आवाज सुनायी दी—'लो यह रज, यह श्रीकल्याणके चरणोंकी पावन रज है, इस रजको लगाते रहना, सब ठीक हो जायगा।' मेरा ध्यान टूटा, देखा कि मेरे फैले हाथमें पवित्र चरण-रज है। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। मैंने आस-पास देखा, किंतु सबको भगवद्ध्यानमें मग्न देखा, मेरी तरफ किसीका भी ध्यान नहीं था। मैंने इसे श्रीजीकी ही अनुपम कृपा समझी। श्रद्धासे मेरा मस्तक और भी अधिक नत हो गया। पहले तो विश्वास नहीं हुआ, फिर लगा कि भगवान्‌के लिये क्या असम्भव है, सब कुछ सम्भव-ही-सम्भव। मैंने उस रजको अमृत समझकर मस्तकपर चढ़ाया और मैं उसे लेकर घर आ गया। आपको शायद विश्वास न हो, किंतु चार दिन रजके लगानेपर ही मेरी वह गाँठ धीरे-धीरे कम होकर खतम हो गयी और उसके बाद आजतक मैंने कोई दवा नहीं ली तथा अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। संयोगवश एक दिन मैं हॉस्पिटल चला गया और उन्हीं डॉक्टर साहबने जिन्होंने मुझे दवा-सेवनकी सलाह दी थी, मुझे पहचानकर अपने पास बुलाया और कहा—आपने कहाँपर ऑपरेशन करवाया। तब मैंने कहा—'डॉक्टर साहब! मैंने कोई ऑपरेशन नहीं करवाया तथा आपने जो दवा दी थी, उसे मैंने १५ रोज ही लिया, बादमें मैं उन परमपिता श्रीडिग्गीवाले श्रीकल्याणजीकी शरणमें चला गया और उनसे मैंने अपने दुःखके बारेमें निवेदन किया, उनकी असीम कृपासे आज मैं आपके सामने बिलकुल स्वस्थ हूँ।' डॉक्टरने मुझे अपने पास बुलाया, पास बिठाकर गलेपर हाथ फेरकर कहा-थूक निगलो, चैक करनेके बाद कहा—इतनी बड़ी गाँठ बिना ऑपरेशनके कैसे ठीक हो गयी, बड़े आश्चर्यकी बात है। मैंने कहा—सच मानिये डॉक्टर साहब, मैंने न दवा ली और न ऑपरेशन करवाया। दवा देनेवाला और ऑपरेशन करनेवाला वही है, जिसके सामने मैं देरतक रोता रहा।

सचमुच यदि व्यक्ति पूर्ण विश्वास करके भगवान्‌को पुकारे, छल-दिखावा न हो तो भगवान् उसकी अवश्य सुनते हैं। क्या उन्होंने गजकी टेर नहीं सुनी, द्रौपदीकी लाज नहीं बचायी, गीध, अजामिल, ध्रुव, प्रह्लादका उद्धार नहीं किया? अतः विश्वास कीजिये और पूर्णरूपसे उन्हींके शरणागत हो जाइये। —रामेश्वरप्रसाद

मनन करने योग्य

सच्ची शिक्षिताका स्वरूप

मैंने एम० ए० पास किया, उसके तीन वर्षके पहले ही मेरा विवाह देहातकी एक साधारण पढ़ी-लिखी लड़कीसे हो चुका था। मेरे चचेरे छोटे भाईकी शादी, जो बी० ए० प्रथम वर्षमें था, एक बी० ए० पास शहरी लड़कीसे हुई। यद्यपि मेरी पत्नी बड़ी सुशीला, आज्ञाकारिणी थी तथा घरका सब काम-काज बड़ी लगनसे करती थी एवं बड़े चावसे मेरी सेवा करना चाहती थी। वह कभी सामने नहीं बोलती। पर मेरे साथ घूमने जानेमें तथा सिनेमा आदि देखने जानेमें बहुत सकुचाती। न मेरे मित्र-मण्डलीमें होनेवाले भोज आदिमें जानेका उसका मन करता। यद्यपि मेरी बातको टालती नहीं, परंतु इससे उसका मन प्रसन्न नहीं रहता। मैं इसी कारण उसपर सदा झुंझलाया करता। उसके प्रति अनुचित शब्दोंका प्रयोग तथा अयुक्त बर्ताव भी कर बैठता। वह यह सब सहती। पर मैं उससे प्रायः नाराज ही रहा करता। कभी आदर और प्रेमसे उससे नहीं बोलता। इसका एक प्रधान कारण यह था कि यद्यपि मेरे छोटे भाईकी शिक्षिता पत्नी घरका काम करनेमें कभी उत्साह नहीं दिखाती। वह न पतिकी कोई सेवा-सत्कार ही करती, उससे खूब विवाद भी करती, तथापि वह थी बड़े फैशनसे रहनेवाली, बहुत चञ्चल स्वभावकी तथा चुलबुली प्रकृतिकी। वह मेरे भाईके मित्रोंका बड़े चावसे स्वागत करती, उन्हें भोजनादि कराती, उनसे विनोद भी करती और सिनेमा तथा पार्टियोंमें तो बड़े शौकसे स्वामीको उत्साहित करके ले जाती और स्वयं साथ रहती। मैं अपनी पत्नीसे भी ऐसे ही चुलबुलेपनकी चाह करता था और उसके पूरी न होनेपर निराश, उदास तथा क्षुब्ध होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी उदासी तथा क्षोभसे वह बेचारी भी उदास रहती, पर कभी उसने कोई शिकायत नहीं की। उसमें एक खूबी यह भी थी कि वह फैशनसे सदा दूर रहती, इससे उसकी आवश्यकता बहुत कम थी। वह कभी कुछ माँग करती ही नहीं। जैसा कपड़ा मिल गया, वैसा ही पहन लिया। यह उसमें बड़ा गुण था। पर मेरी आँखें द्वेषबुद्धि होनेके कारण इस गुणको भी उसका दोष एक गँवारपन ही देखती थीं।

गरमीके दिन थे। छुट्टियोंमें मेरा भाई अपनी पत्नीके साथ पहाड़पर गया था। पर मैं घरपर ही था। ऐसी असभ्य पत्नीको लेकर पहाड़पर जानेवाले सभ्य मित्रोंमें अपनी हँसी कराने भला कैसे जाता! इससे कुढ़कर घरपर ही रह गया था। एक दिन अकस्मात् छोटे भाईकी पत्नीका तार मिला कि 'आपके भाईको बुखार हो गया है। मेरा स्वास्थ्य भी ऐसा नहीं कि मैं काम कर सकूँ, अतएव सेवाके लिये आइये या किन्हींको भेजिये।' मैं बड़ी चिन्तामें पड़ा। तार दिया कि 'हमलोग शीघ्र आ रहे हैं, पर लिखो भाईका क्या हाल है और तुम्हें क्या बीमारी है।' उत्तरमें तीसरे दिन तार मिला कि 'उनका बुखार उतर गया, कमजोरी है। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। पर इस अवस्थामें मैं यहाँ नहीं रह सकती। मैं आज ही अपने नैहर जा रही हूँ। आप किसीको इनकी सेवा आदिके लिये भेज दीजिये।' तार पढ़कर मैं दंग रह गया। बहू क्यों नहीं रह सकती। जब भाईका बुखार उतर गया और उसका अपना भी स्वास्थ्य ठीक है, तब उसे वहाँ रहनेमें क्या अड़चन है?

सारी बातें सुनकर मेरी पत्नीने कहा—'हमलोगोंको जल्दी चलना चाहिये। समयपर ही सेवाकी आवश्यकता होती है।' हमलोग उसी दिन चल दिये और दूसरे दिन वहाँ पहुँच गये। बहू तबतक जा चुकी थी। पता लगा कि कमजोरीके कारण मेरा भाई बहूको साथ लेकर सिनेमा देखने नहीं जा सका, इसीसे वह नाराज होकर चली गयी। मेरी पत्नीने कहा—'अभी बच्ची है, माता-पिताके स्नेहसे पली है। उनकी याद आ गयी होगी। चली गयी तो क्या हुआ। हमलोग आ ही गये हैं।'

भाग्यकी बात—दूसरे ही दिन मुझे बुखार हो गया। घरपर कोई नहीं था। इसलिये भाईको मैंने आदमी साथ देकर तीसरे दिन घर भेज दिया। हम दोनों वहीं रह गये। मेरा ज्वर बढ़ता ही गया और वह १०४° तक पहुँच गया। शरीर जला जाता था। मेरी पत्नी बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थी, पर वह तुरंत जाकर एक डॉक्टरको बुला लायी। इलाज शुरू हुआ। मुझे बड़े जोरकी चेचक निकल आयी। पंद्रह दिन हो गये। मेरी कमजोरी बढ़ती ही गयी। पर इलाज ठीक चल रहा था। इस स्थितिमें मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरी आँखें खुल गयीं। मेरी उस देहाती पत्नीने अपनी नींद-भूखको बिलकुल ही भुला दिया। उसका देहातीपन भी विस्मृत हो गया। बड़ी ही दक्षताके साथ समयपर डॉक्टरको बुलाना, दवा लाना, ठीक समयपर मुझे दवा देना, रातों जगकर मेरी सेवा करना—इसीमें उसने अपनेको पूरा-पूरा लगा दिया। ऊपरी काम-काजके लिये एक आदमी रख लिया। मेरे टट्टी-पेशाबके साफ करनेसे लेकर दवा-पथ्य आदिका सारा काम वह इस लगनसे करने लगी कि मैं देखकर दंग रह गया। उसकी सेवा-शुश्रूषाने मुझे बाईस दिनोंमें स्वस्थ कर दिया। ज्वर उतर गया। चेचकके सारे दाने सूखकर गिर गये। मुझे अन्नका पथ्य दे दिया गया। पर वह अब भी मशीनकी भाँति यथायोग्य अपने सब कल-पुर्जोको पूरा-पूरा लगाकर मेरी सेवा करती ही रही। उसकी सेवा देखकर मेरा मस्तक श्रद्धासे उसके प्रति नत हो गया।

एक दिन उसके मुँहपर मैंने उसकी सेवाके लिये कुछ बड़ाईके शब्द कह दिये। वह तो सुनकर रोने लगी। सिसकती हुई बोली—'मेरे भगवान्! आप यह क्या कह रहे हैं। आपके मुँहसे मैं अपनी बड़ाई सुननेका यह पाप कैसे स्वीकार कर सकती हूँ। मेरे जीवनका कण-कण आपकी पदरजका सहज सेवक है। इसमें बड़ाईकी कौन-सी बात है। भगवान्ने कृपा करके मेरे सुहागकी रक्षा की। यह सब उनकी दयाका परिणाम है। मैं तो सदा ही नालायक हूँ। मेरा यह सौभाग्य है कि मेरे सुहागकी रक्षा करनेका कार्य स्वयं करके भी भगवान्ने मुझे अवसर दिया कि मेरे द्वारा होनेवाली अपने स्वार्थ-साधनकी भोंडी क्रियाको आपने स्वीकार कर लिया।'

मैं सुनकर गद्गद हो गया। मैं उस दिन यह समझ सका कि असली शिक्षा तो यही है, जिससे शिक्षित होकर इस प्रकार मनुष्य अपनेको सर्वथा सेवामें समर्पण करके भी अभिमान नहीं करता और इसे भगवान्की कृपा और अपना सौभाग्य समझता है। धन्य है भारतीय नारीकी यह शिक्षा! —नरेन्द्रकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने बच्चोंको बचाइये—अभक्ष्य-भक्षणसे

मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसीके अनुरूप उसकी बुद्धि और मन बनते हैं। इसीलिये प्रारम्भसे ही अपने देशमें खान-पानकी शुद्धतापर विशेष ध्यान रखा गया है। कहते हैं—'**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।**' आहार शुद्ध होगा तो अन्तःकरण भी शुद्ध होगा, 'जैसा अन्न वैसा मन'। चरित्रवान् और अच्छे संस्कारी बननेके लिये शुद्ध आहार आवश्यक है। यही कारण है कि बच्चोंको सुसंस्कृत और संस्कारी बनानेके लिये खान-पानपर विशेष ध्यान रखा जाता है। अबोध बालक यह नहीं जानता कि उसे क्या खाना चाहिये और क्या नहीं खाना चाहिये। यह कर्तव्य उसके माता-पिता और अभिभावकका है कि वे निरन्तर यह दृष्टि रखें कि उनके बच्चे किसी अशुद्ध वस्तुका सेवन तो नहीं करते हैं, जो उनके लिये अहितकर हो।

इधर अपने देशमें कुछ नयी प्रगति हुई है। विदेशी सामानोंको बाजारमें बेचनेकी खुली छूट दी गयी है, जिसके परिणामस्वरूप कुछ ऐसे सामान और खाद्य-पदार्थ बाजारमें बिकने शुरू हो गये, जिनसे हमारी संस्कृति, सभ्यता और शुद्धताके आधारके ही नष्ट होनेके आसार प्रारम्भ हो गये हैं। यह समाचार मिला है कि बाजारोंमें विदेशी चाकलेट और टॉफियाँ धड़ल्लेसे बिक रही हैं, जिनमें गायकी हड्डियोंका 'जिलेटिन' है। यह 'जिलेटिन' (हड्डियोंकी मज्जासे बननेवाला चिपचिपा द्रव्य) गायकी हड्डियोंसे बनता है। एक दैनिक समाचार-पत्रमें प्रकाशित समाचार हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं, जिससे स्वतः सब बातें स्पष्ट हो सकेंगी—

जिलेटिनवाली टॉफियाँ

आर्थिक उदारीकरण और गैट समझौतेके तहत सरकारने बहुराष्ट्रिय कंपनियोंके प्रवेशके साथ-साथ विदेशी सामानके लिये भारतको एक बाजारके रूपमें पेश तो कर दिया है, लेकिन जो विदेशी चीजें मार्केटमें आयी हैं, उनसे हमारी संस्कृति, परम्पराओं और लोगोंकी भावनाओंको भारी आघात पहुँच रहा है। अब चंडीगढ़के विभिन्न सेक्टरोंमें ऐसी विदेशी चाकलेट और टॉफियाँ धड़ल्लेसे बिक रही हैं, जिनमें गायकी हड्डियोंका 'जिलेटिन' है।

बड़ी-बड़ी कन्फेक्शनरीकी दूकानोंपर ब्राजील, थाईलैंड और सिंगापुर आदि और भी कई देशोंकी ऐसी टॉफियाँ काउंटरोंपर सजी हैं, जिनपर साफ लिखा है कि इसमें 'बीफबोन जिलेटिन' (गायकी हड्डियोंका जिलेटिन) भी है।

[मार्केटमें बिक रही टॉफियाँ तथा चाकलेट जिनमें गायकी हड्डियोंका 'जिलेटिन' होनेकी बात इनके रैपरपर भी अंकित है।]

ऐसी टॉफियाँ या चाकलेट कई नामोंसे बाजारमें बिक रही हैं, जिनमें ब्राजील और सिंगापुरकी 'फ्रूट टेला' तथा थाईलैंडकी 'च्यू-अप' प्रमुख हैं। इनके अलावा भी और कई ब्रांड हैं, जिनपर गायकी हड्डियोंके 'जिलेटिन' होनेकी बात लिखी हुई है। हालाँकि उन्हें फ्रूटवाली टॉफियाँ कहकर बेचा जा रहा है, लेकिन इनमें फलोंके तत्त्व नहीं हैं।

एक विक्रेतासे जब इसके बारेमें पूछा गया तो उसने कहा कि उसे तो इस बातका पता ही नहीं कि इन चाकलेटोंमें गायकी चर्बी या हड्डी आदि भी है। ऐसी ही बात एक छात्रने भी कही कि चाकलेट खाते समय कहाँ ध्यान रहता है कि इसपर लिखा हुआ पढ़ा जाय कि इसमें क्या-क्या है। जो कुछ लिखा होता भी है वह बहुत बारीक होता है। उसका कहना था कि हमारे देशमें तो कम-से-कम यह मानकर ही चला जाता है कि बच्चोंके खानेवाली चाकलेट-जैसी चीजोंमें तो गायकी हड्डियोंकी 'जिलेटिन' नहीं होगी।

एक अन्य विक्रेताका कहना था—दूकानदार क्या कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं, सरकारको ऐसी चीजें अपने देशमें आनेकी अनुमति ही नहीं देनी चाहिये। यह भी पता चला है कि इन दिनों यूरोपीय देशोंसे जो टॉफियाँ या चाकलेट आ रही हैं, उनमें गायकी चर्बी या 'जिलेटिन' होता है।

मुक्त व्यापारके बादसे देशी वस्तुओंपर प्रभाव तो पड़ा ही है। भारतमें बननेवाली बहुत-सी चीजोंका स्थान अब विदेशी चीजें लेने लगी हैं। अन्ताराष्ट्रिय मानदण्डका दम भरनेवाली एक शीतपेय कंपनीको भी पिछले दिनों बोतलोंमें कथितरूपसे खराब पेयकी वजहसे एक वकीलद्वारा नोटिस भेजे जानेका समाचार है।

भारत-जैसे देशमें जहाँ अधिकांश जगहोंपर मजदूरोंको निर्धारित न्यूनतम मजदूरीका भी भुगतान नहीं किया जाता, आर्थिक उदारीकरणके चलते अनिवार्य वस्तुओंकी कीमतोंमें बेतहाशा वृद्धि हुई है। इससे गरीब लोगोंका जीवन दूभर होता जा रहा है। दूसरी ओर महँगी विदेशी चाकलेट और टॉफियोंके बढ़ते क्रेजके कारण सम्पन्न परिवारोंके लोग यह नहीं जानते कि वे अपने बच्चोंको ये टॉफियाँ या चाकलेट उपहारमें देकर कौनसे संस्कार दे रहे हैं। 'दैनिक ट्रिब्यून'

अपने शास्त्रोंमें खाने-पीनेकी वस्तुको तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया गया है—सात्त्विक, राजसी और तामसी। इसमें तामसीकी अपेक्षा राजसी और राजसीकी अपेक्षा सात्त्विक आहारको श्रेष्ठ कहा गया है, परंतु कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो न सात्त्विक हैं, न राजसी हैं और न तामसी। ये 'अभक्ष्य' हैं। अर्थात् किसी भी स्थितिमें इनका सेवन नहीं किया जा सकता। यानी इन्हें छूना और देखना भी पाप है। ऐसे पदार्थोंसे लोग स्वाभाविकरूपसे बचते आये हैं। यहाँ-तक कि देशकी हिन्दू जनता खानेकी तो बात ही क्या, छूने और देखनेकी भी कल्पना नहीं करती। सच्ची बात तो यह है कि जो काम मुगलोंके शासनकालमें कभी नहीं हुआ, जो काम अंग्रेजोंके शासनमें नहीं हुआ, वह काम अब हो रहा है। कुछ लोग यह दलील देते हैं कि बाजारमें तो सभी चीजें रहती हैं, जिसे न लेनी हो न ले। पर यह दलील कितनी मूर्खतापूर्ण है। यदि ऐसा ही होता तो कोकीन, गाँजा, सुलफा, अफीम, ब्राउन-शुगर तथा नशेकी गोलियाँ आदिको खुले बाजारमें क्यों नहीं बिकने दिया जाता और क्यों उनपर प्रतिबन्ध लगाया जाता है?

आज स्थिति यह है कि देशकी संस्कृतिपर आघात-प्रतिघात हो रहे हैं, गोमांससे युक्त खाद्यपदार्थ, चाकलेट या टॉफियोंके रूपमें जाने-अनजाने किसी भी तरह देशके बच्चे ग्रहण करेंगे तो उनके संस्कार क्या होंगे! उनकी संस्कृति क्या होगी और इस देशका क्या होगा! भारतकी संस्कृतिको नष्ट करनेकी अंग्रेजोंने बहुत चेष्टा की, पर वे अपने प्रयासमें सफल नहीं हो सके, लेकिन आज जबकि भारत स्वतन्त्र है, हम किस कगारपर पहुँच रहे हैं यह बात विचार करनेकी है। इस बातपर सरकारको और जनताको विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। सरकारको चाहिये कि ऐसे खाद्यपदार्थोंकी बिक्रीपर अविलम्ब प्रतिबन्ध लगा दे, साथ ही अभिभावकोंको भी विशेष ध्यान रखना चाहिये कि वे अपने बच्चोंको उनसे बचायें, जिससे कि बच्चोंके पेटमें अशुद्ध वस्तु न जाय तथा वे सुसंस्कृत बने रहें और संस्कारहीन न हों।

—राधेश्याम खेमका

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३९)

संसारमें भगवान्के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क

'धर्मशास्त्राङ्क'

[ग्राहक महानुभावोंसे नम्र निवेदन]

१-मानव-जीवनमें धर्मका विशिष्ट स्थान है। हमारे धर्माचार्यों एवं शास्त्रकारोंने '**धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः**'—इत्यादि कहकर धर्माचरणसे विहीन मनुष्यको पशुके समान उद्देश्यहीन और (आध्यात्मिक दृष्टिसे) निरर्थक बतलाया है। किंतु शास्त्रानुमोदित स्वधर्माचरणको प्रशंसनीय और अनुकरणीय माना है। क्योंकि धर्मके आश्रयद्वारा ही सब प्रकारके प्रेय और श्रेयकी प्राप्तिसहित मनुष्य-जीवनके एकमात्र प्राप्तव्य और अन्तिम लक्ष्य—'आत्मकल्याण' या 'परमात्माकी प्राप्ति' तक सम्भव और सुलभ है। अतएव धर्मशास्त्रोंकी ऐसी महत्ता, अनिवार्यता एवं असाधारण महिमासे अभिभूत हो सर्वसाधारण जनोंको शास्त्रोंके महत्त्वसे परिचित करानेके मुख्य उद्देश्यसे एवं 'बहुजनहिताय'-सबके परम मङ्गलकी दृष्टिसे 'कल्याण' ने आगामी वर्ष-७० वें (जनवरी १९९६ ई०) के विशेषाङ्कके रूपमें '**धर्मशास्त्राङ्क**' निकालनेका निर्णय लिया है।

इस अङ्कमें धार्मिक आख्यान एवं सत्कथाओंके साथ-साथ धर्मशास्त्रकी महिमा तथा उसकी अपरिहार्यता, मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम तथा आपस्तम्ब आदि ऋषियोंद्वारा प्रणीत स्मृतियों और अन्य धर्मशास्त्रोंका परिचय तथा उनकी मुख्य-मुख्य बातें, धर्माचरण, सदाचरण आदिकी महिमा, अधर्माचरणसे अवश्यम्भावी पतन और मानव-धर्म तथा सर्वसामान्य-धर्म, चारों आश्रमोंका धर्म, चारों वर्णोंका धर्म, अतिथि-धर्म, अहिंसा-धर्म, नारी-धर्म, धर्मशास्त्रकारोंके उदात्त चरित्र, स्त्री-पुरुषोंके कर्तव्य और धर्मशास्त्रोंकी जीवनमें कितनी उपयोगिता है तथा इन शास्त्रोंमें कही हुई बातोंद्वारा अपना जीवन सुधारना और उसे भगवत्प्राप्तिके योग्य बना लेना आदि अनेकों महत्त्वके विषय देनेके प्रयास किये जा रहे हैं। निश्चय ही यह अङ्क सभी आयु-वर्गके लोगोंके लिये बहुत उपयोगी तथा सत्-प्रेरणा प्रदान करनेवाला होगा। इसमें अधिक-से-अधिक जीवनोपयोगी विषयोंके संकलनकी चेष्टा की जा रही है। वर्तमानमें ऐसी सामग्रीके पठन-पाठन-मनन और फिर उसे व्यवहारमें लानेकी महती आवश्यकता है। भावपूर्ण बहुरंगे चित्रों तथा सादे चित्रोंसे सज्जित यह विशेषाङ्क भी सदाकी तरह अपने विषयके प्रतिनिधि-ग्रन्थके रूपमें सबके लिये उपादेय और सर्वप्रिय होगा—ऐसी आशा है।

२-इस वर्ष कागजके दामोंमें अभूतपूर्व भीषण वृद्धिके कारण न चाहते हुए भी विवशतया हमें 'कल्याण' के वार्षिक शुल्कमें रु० १५.०० की वृद्धि करनी पड़ी है। आशा है सहृदय और विज्ञ पाठक परिस्थितिजन्य हमारी विवशताको समझते हुए इस मूल्य-वृद्धिको सहजतासे स्वीकार करेंगे। अतः नये वर्षमें 'कल्याण' का वार्षिक शुल्क रु० ८०.०० (सजिल्दका रु० ९०.००) है। विदेशके लिये (समुद्री डाकसे) वार्षिक शुल्क $ ११ (US डालर) तथा (हवाई डाकसे) $ २२ (US डालर) है।

३-कागज आदिकी भीषण मूल्य-वृद्धिकी वर्तमान दरको ध्यानमें रखते हुए १ अगस्त १९९५ से पंद्रहवर्षीय ग्राहक बनानेकी योजना निरस्त करनी पड़ी है। अब पंद्रहवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं। पुराने सावधि ग्राहकोंको पूर्व नियमोंके अनुसार अङ्क भेजनेका विचार है।

'दसवर्षीय ग्राहक' बनानेकी नयी योजना—अब १ अगस्त १९९५ से 'दसवर्षीय ग्राहक' बनानेकी नयी योजना प्रारम्भ की गयी है। इस योजनाके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति या संस्था दसवर्षीय ग्राहक बन सकते हैं, जिसका शुल्क रु० ५००.०० अजिल्दका तथा रु० ६००.०० सजिल्दका है।

४-इस अङ्कमें मनीआर्डर-फार्म संलग्न है। इसके पृष्ठ-भागके नीचे ग्राहक-संख्यासहित आपका पूरा पता छपा है, उसे कृपया ध्यानपूर्वक देख लें। यदि कोई परिवर्तन आवश्यक हो तो अपना सही पता दूसरी ओर नीचे छपे हुए मनीआर्डर-कूपनपर स्पष्ट लिखनेकी कृपा करें। यदि आपके पतेमें पिन कोड नम्बर नहीं दिया हुआ हो तो उसे अवश्य देनेकी कृपा करें।

५-वार्षिक ग्राहकोंकी शुल्क-राशि दिसम्बर १९९५ तककी है। नये वर्षके लिये आपका मनीआर्डर मिलने एवं उसके समायोजनमें लगभग डेढ़-दो माहका समय लग जाता है। इस वर्ष भी हमारा यह प्रयास है कि हम आपको जनवरीके शुरूमें ही विशेषाङ्क—'**धर्मशास्त्राङ्क**' भेजना प्रारम्भ कर दें, जिससे फरवरीके अन्ततक सभी पाठकोंको मिल सके। अतएव आपसे सादर अनुरोध है कि आगामी वर्षके लिये शुल्क-राशि आप यथाशीघ्र मनीआर्डरद्वारा भेज दें। जिन ग्राहकोंसे मनीआर्डर यथासमय प्राप्त नहीं होगा, उन्हें गत वर्षोंकी तरह विशेषाङ्क रु० ५.०० अतिरिक्त वी० पी० पी० पोस्टेज जोड़कर कुल रु० ८५.०० की वी०पी०पी० द्वारा भेजा जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६-जिन ग्राहकोंको किसी कारणवश आगामी वर्ष (सन् १९९६ ई०) में ग्राहक न रहना हो तो वे कृपया तदर्थ सूचना कार्यालयको तत्काल देनेका कष्ट करें, जिससे उनको विशेषाङ्क वी० पी० पी० द्वारा न भेजा जाय।

७-'कल्याण'-प्रचारके इच्छुक सज्जन, पुस्तक-विक्रेता एवं समाज-सेवी-संस्थाएँ विशेषाङ्ककी कम-से-कम ५० (पचास) प्रतियाँ एक साथ मँगाकर 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोग दे सकते हैं। इस निमित्त उन्हें रु० ६.०० (छः रुपये) प्रति ग्राहककी दरसे प्रोत्साहन-राशि दी जायगी। उन्हें अपने द्वारा बनाये गये ग्राहकोंको वर्षपर्यन्त अङ्क-वितरणकी व्यवस्था स्वयं करनी होगी।

८-जयपुरके ग्राहकोंसे—हमारे अधिकृत विक्रेता—गीताप्रेस-पुस्तक-प्रचार-केन्द्र (बुलियन बिल्डिंगके अंदर, हल्दियोंका रास्ता) जयपुर-३०२००३ (दूरभाष-५६३३७९) द्वारा की गयी 'कल्याण'-वितरणकी स्थानीय व्यवस्थाके अन्तर्गत जनवरी-१९९६ का विशेषाङ्क—'**धर्मशास्त्राङ्क**' वहाँ उपलब्ध होगा। मासिक अङ्क, रुपया जमा कराते समय ग्राहकोंद्वारा वहाँ दिये हुए निर्देशके अनुसार वे गोरखपुरसे सीधे (साधारण) डाकद्वारा अथवा स्थानीय जयपुर-केन्द्रसे प्राप्त कर सकते हैं। वहाँ वार्षिक शुल्क अग्रिम, शीघ्र जमा कराना चाहिये। जिससे ग्राहकोंको अङ्क-वितरण करनेमें सुविधा रहे। वार्षिक शुल्क अजिल्दका रु० ८०.०० तथा सजिल्दका रु० ९०.०० है। विशेष मनीआर्डर-फार्म संलग्न है।

'गोसेवा-अङ्क' अभी प्राप्य है

वर्तमान वर्षका विशेषाङ्क—'**गोसेवा-अङ्क**'की सीमित प्रतियाँ अभी उपलब्ध हैं। अत: इच्छुक सज्जन इसका पुराना मूल्य अजिल्दके लिये रु० ६५.०० एवं सजिल्दके लिये रु० ७२.०० मनीआर्डरद्वारा भेजकर ग्राहक बननेकी कृपा करें। वी०पी०पी० द्वारा अङ्क मँगवानेपर रु० ५.०० अतिरिक्त डाक-खर्च देय होगा।

व्यवस्थापक—'**कल्याण**', **पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

ग्राहक-उपहार-योजना

श्रद्धालु पाठकों, प्रेमी ग्राहकों और पुस्तक-विक्रेताओंसहित सभी सहृदय महानुभावोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित श्रीरामचरितमानसके विभिन्न संस्करणोंके साथमें अब एक उपयोगी पुस्तक (बिना मूल्य) उपहाररूपमें देनेकी नवीन योजना आरम्भ की गयी है। श्रीरामचरितमानस सचित्र, सटीक, मोटा टाइपके साथमें '**सब जग ईश्वररूप है**'—एक प्रेरणादायी पुस्तक एवं सटीक मझला आकारके साथमें—'**ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप**' —एक साधनोपयोगी पुस्तक और मूल मात्र मोटा टाइपके साथमें-'**प्रार्थना**' नामक एक सर्वजनोपयोगी पुस्तक दी जा रही है। मानसके अन्यान्य आकार-प्रकारके आगामी शेष संस्करणोंके साथमें भी इसी तरह कोई भी एक उपादेय पुस्तक उपहारमें देनेकी व्यवस्था की गयी है। ये उपहार-पुस्तकें श्रीरामचरितमानसके प्रत्येक बंडलके साथमें विक्रेताओंको भी भेजी जा रही हैं; अत: मानसके उपर्युक्त संस्करण खरीदते समय आप कृपया अपना 'उपहार' (भेंटस्वरूप एक निर्धारित पुस्तक) लेना न भूलें। (मानसके अगले संस्करणोंके साथ 'उपहार-पुस्तकों'में परिवर्तन करनेका विचार है।)

गीता-दैनन्दिनी—सन् १९९६ ई० [दो आकार और तीन प्रकारमें]

१-पुस्तकाकार (सचित्र) संस्करण—(आकार ८" × ५$\frac{1}{4}$") चिकने मैपलिथो कागजपर सुन्दर छपाई और प्लास्टिक कवरसे युक्त, आकर्षक मजबूत जिल्द, श्रीमद्भगवद्गीताका मूल पाठ एवं गीताभ्यासकी प्रेरणाप्रद बातें, महापुरुषोंके जीवनोपयोगी सुभाषित वचन (सूक्तियाँ), तिथि, वार, व्रत, उत्सव-पर्व, ग्रहण, त्योहार आदिके उल्लेखके साथ आमुखपर ध्यान-पूजा करने योग्य भगवान्‌का सुन्दर बहुरंगा चित्र। मूल्य रु० २५.००, डाकखर्च रु० १०.०० (रजिस्ट्रीसे)। (१०० प्रतियोंका कार्टून-पैकेज भी उपलब्ध है।)

२-पॉकेट साइज (आकार ५ $\frac{3}{4}$" × ३ $\frac{3}{4}$") प्रतिवर्षकी तरह श्रीमद्भगवद्गीताका मूल पाठ, तिथि-वार, ग्रह-नक्षत्र, ग्रहण आदिके उल्लेखसहित व्यवहारमें काम आनेवाले अनेक उपयोगी विवरण। दिनचर्या या महत्त्वपूर्ण स्मरणीय बातें लिखने-हेतु अब रूलदार अतिरिक्त पृष्ठ—'स्मरण-पत्र'के रूपमें। आरम्भमें सुन्दर बहुरंगा चित्र, कपड़ेकी मजबूत जिल्द, मूल्य रु० १०.००, डाकखर्च रु० ३.००।

३-पॉकेट-साइज-विशेष संस्करण—उपर्युक्त (पॉकेट साइज) का ही यह विशेष संस्करण है। आकर्षक प्लास्टिक-आवरण एवं आरम्भमें एक भावपूर्ण रंगीन चित्र भी। मूल्य रु० १२.००, डाकखर्च रु० ३.००।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कल्याण

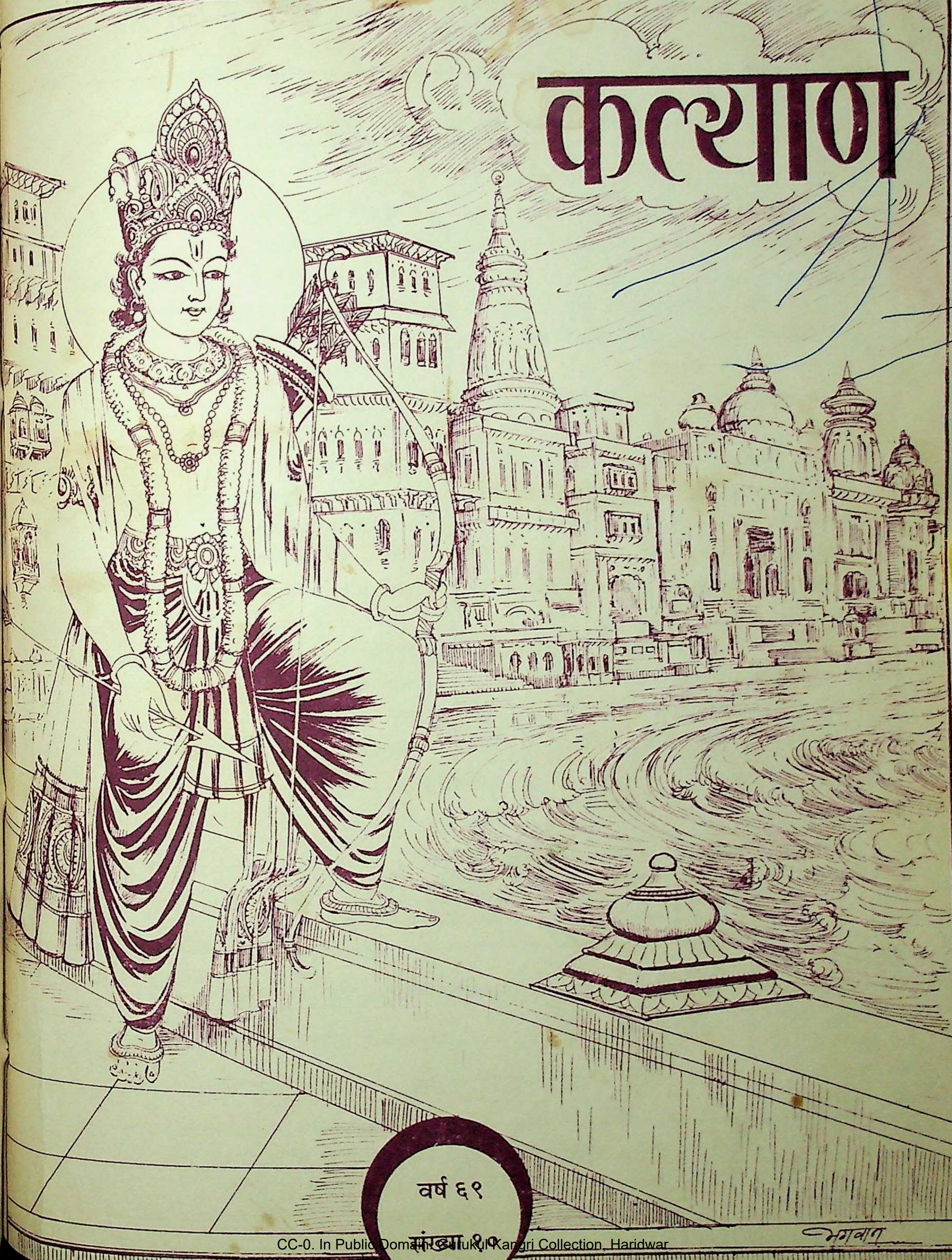

वर्ष ६९

संख्या १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, अक्टूबर १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-महामुनि मार्कण्डेयजीको भगवान् बालमुकुन्दके दर्शन	८०७
२-कल्याण (शिव)	८०८
३-प्रार्थना	८०९
४-नीति-निर्झर [कविता] (महावीरप्रसाद 'मधुप')	८१०
५-सामाजिक कुरीतियोंसे बचना चाहिये (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८११
६-गायकी करबद्ध प्रार्थना (प्रे०—डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी)	८१४
७-तुलसीका ईश्वर-विषयक चिन्तन (डॉ० श्रीरामाप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	८१५
८-ईश्वरकी ओर झुकें (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	८१७
९-भजनका स्वरूप और आनन्द (श्रीभँवरलालजी परिहार)	८२१
१०-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८२३
११-श्रीमद्भागवतमें श्रीराम-तत्त्व तथा राम-कथा (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	८२६
१२-परदोष-दर्शन—घाटेका सौदा (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	८२९
१३-प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद	८३१
१४-गो-सम्बन्धी व्रतोत्सव	८३४
१५-गायका दूध—सर्वश्रेष्ठ औषध (श्रीमती सुनीता मुखर्जी)	८३६
१६-गोपालक कृष्ण [कविता] (प्रमोद त्रिपाठी)	८३७
१७-भय और दुःख कबतक रहता है? (श्री जय जय बाबा)	८३८
१८-*भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी)	८४०
१९-हिंदुत्वकी एकमात्र पहचान—गोरक्षा और गोसेवा (श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश) [प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा]	८४२
२०-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८४३
२१-श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	८४४
२२-पढ़ो, समझो और करो	८४९
२३-मनन करने योग्य	८५१
२४-श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	८५३

चित्र-सूची

१-धनुर्धर भगवान् श्रीराम	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान्	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

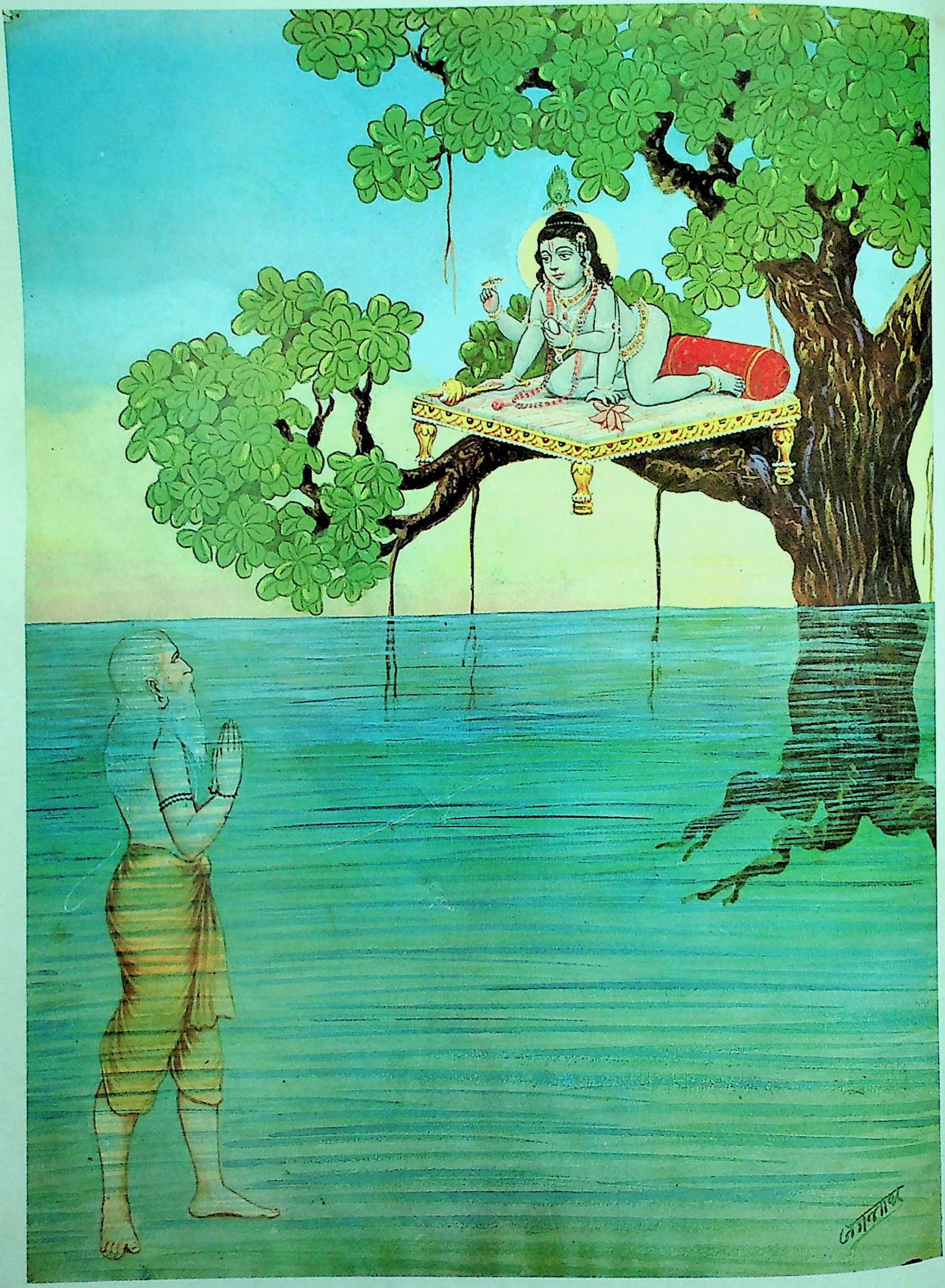

एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ } गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, अक्टूबर १९९५ ई० { संख्या १० पूर्ण संख्या ८२७

महामुनि मार्कण्डेयजीको भगवान् बालमुकुन्दके दर्शन

स कदाचिद् भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः। न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम्॥
प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम्। शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः॥
महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम्। कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम्॥
चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्। मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः॥

(श्रीमद्भा० ११। ९। २०—२२, २५)

[**श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी!**] मार्कण्डेय मुनि इसी प्रकार प्रलयके जलमें बहुत समयतक भटकते रहे। एक बार उन्होंने पृथ्वीके एक टीलेपर एक छोटा-सा बरगदका पेड़ देखा। उसमें हरे-हरे पत्ते और लाल-लाल फल शोभायमान हो रहे थे। बरगदके पेड़में ईशानकोणपर एक डाल थी, जिसके पर्णपुटपर एक बड़ा ही सुन्दर नन्हा-सा शिशु शयन कर रहा था। उसके शरीरसे ऐसी उज्ज्वल छटा छिटक रही थी, जिससे आस-पासका अँधेरा दूर हो रहा था। वह शिशु मरकतमणिके समान साँवला-साँवला था। मुखकमलपर सारा सौन्दर्य फूटा पड़ता था। गरदन शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाली थी। छाती चौड़ी थी। तोतेकी चोंचके समान सुन्दर नासिका और भौंहें बड़ी मनोहर थीं। नन्हें-नन्हें हाथोंमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर अँगुलियाँ थीं। वह शिशु अपने दोनों करकमलोंसे एक चरणकमलको मुखमें डालकर चूस रहा था। मार्कण्डेय मुनि यह दिव्य दृश्य देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—छोटेसे चूल्हेमें एक-आध सेर कोयला या लकड़ीसे काम चल जाता है, उसमें अधिकके लिये स्थान ही नहीं होता। बड़े रसोईघरके चूल्हेमें इतनेसे कोयले या लकड़ीसे काम नहीं चलता। वहाँ दस-बीस सेरकी जरूरत पड़ती है और जहाँ बड़ी भट्ठी हो, वहाँ तो मनों ईंधन चाहिये एवं वही अग्नि यदि घरमें लग जाय तो सारा घर ही ईंधन बन जाता है या उससे भी बड़े रूपमें जंगलमें लगनेपर तो सैकड़ों—हजारों पेड़ोंसे भी उसकी भूख नहीं मिटती। इसी प्रकार संसारके भोग-विषयोंमें जिसकी हैसियत जितनी छोटी होती है, उतनी ही उसकी आवश्यकताएँ कम होती हैं और उसका अभाव कम होता है। जिसकी जितनी बड़ी हैसियत होती है, उतनी ही उसकी जरूरतें ज्यादा होती हैं और उतना ही उसका अभाव भी अधिक होता है। जिसका अभाव जितना अधिक है, उतनी ही उसको प्रतिकूलता है और प्रतिकूलता ही दुःख है। 'जितनी बड़ी आग, उतनी बड़ी ईंधनकी भूख और जितनी बड़ी आग उतनी ही अधिक आँच, उतना ही अधिक ताप'—इस सूत्रको याद रखो।

याद रखो—जिसके पास सांसारिक भोग-पदार्थ जितने अधिक हैं, उतनी ही उसकी कामनाएँ अधिक हैं और जितनी ही कामनाएँ अधिक हैं, उतना ही दुःख अधिक है और उतना ही क्रोध, लोभ, सम्मोह, स्मृतिभ्रंश तथा बुद्धिनाशके क्रमसे सर्वनाशकी सम्भावना अधिक है।

याद रखो—जिसके जीवनमें जितनी आवश्यकताएँ अधिक होंगी, उतनी ही उनको प्राप्त करनेकी चाह अधिक होगी। जितनी चाह होगी, उतनी ही प्रवृत्ति अधिक होगी। जितनी प्रवृत्ति अधिक होगी, उतनी ही उपाधियाँ, उतनी ही परेशानियाँ, उतनी ही चिन्ताएँ, उतनी ही अशान्ति और उतने ही पापकर्म अधिक होंगे। यों जीवन अशान्तिमय, दुःखमय, चिन्तामय तथा पापमय बन जायगा। यहाँ मरते दमतक विषाद, भय, चिन्ता, अशान्ति रहेगी तथा मृत्युके बाद नरकोंकी एवं आसुरी यन्त्रणादायक योनियोंकी प्राप्ति होगी।

याद रखो—संसारमें पेट भरने, पहनने-ओढ़ने, बैठने-सोने आदिके लिये सामग्री अवश्य चाहिये, पर यह अमुक प्रकारकी और इतनी अधिक होनी चाहिये, यह आवश्यक नहीं है। अतएव जो सभी बातोंमें सादगी रखकर, अपनी स्थितिमें संतुष्ट रह, कम-से-कम आवश्यकताका जीवन बिताता है, जिसे भोगोंके अभावकी पीड़ा नहीं सताती और जिसका मन भोगोंकी ओर ललचायी दृष्टिसे नहीं देखता, वह धनकी दृष्टिसे गरीब भी, मानसिक शान्तिके कारण सदा परम शान्ति तथा आनन्दका अनुभव करता है। इसके विपरीत, एक करोड़पति या सम्राट् भी, जिसके पास प्रचुर भोग-सामग्री है, पर जो अभावके चिन्तानलसे जलता रहता है, जिसका मन सदा संतप्त, असंतुष्ट और अशान्त है, वह सदा दुःखी ही रहता है।

याद रखो—वास्तवमें सुख तो आत्मा या भगवान्में ही है। शेष तो सब दुःखमय ही है। कम अभाववाला भी दुःखी रहता है और अधिक अभाववाला भी। जो आत्मा या भगवान्को नित्य, सत्य, आनन्द-स्वरूप मानकर उनसे जुड़ा रहता है, वह बाहरसे गरीब हो या धनी, छोटी हैसियतवाला हो या बड़ी हैसियतवाला—सदा सुखी रहता है। इस दुःखमय असार संसारमें भगवान् तथा उनका नाम ही सार है, उसीमें सबको लगना-लगाना चाहिये। इस दृष्टिसे भगवान्में न लगनेवाले गरीब तथा अमीर सभी दुःखी हैं। परंतु जिनकी जरूरतें कम होती हैं, उनको सांसारिक चिन्ताओंमें दिनभर ग्रस्त नहीं रहना पड़ता। अतः वे सत्संग, आत्मचिन्तन, भगवच्चिन्तनका कुछ अवसर पा जाते हैं और उसके फलस्वरूप उनके लिये भगवान् और उनके नामसे जुड़ जाना सहज सम्भव होता है, जो मानव-जीवनका प्रधान कर्तव्य तथा ध्येय है। अतएव जहाँतक बने, अपनी आवश्यकताओंको कम-से-कम रखो, जिससे विषयकामनाकी अग्निसे दिन-रात मन नहीं जलेगा। कुछ समय भगवच्चिन्तनकी शीतल शान्त सम्पत्तिका सुख भी प्राप्त हो सकेगा और वही मानव-जीवनकी सफलताका साधन होगा।—'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

(प्राणोंके प्राणनाथ कन्हैयासे)

मेरे प्राणोंके प्राण कन्हैया! जैसे प्यासा पपीहा प्रतिक्षण अपने प्रेमास्पद पयोदको ही पुकारता है, चाहक चकोरके ललचाये लोचन-कोर चिरकालसे चारु चान्द्री सुधाके संचारक पूर्ण चन्द्रकी ओर ही लगे रहते हैं, उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारी रूप-माधुरीमें ही नित्य निमग्न रहे, मेरे प्राण प्रतिपल तुम्हें ही प्यारसे पुकारते रहें। जैसे कामीको कामिनी, चोरको यामिनी और मोरको दामिनी-मण्डित मेघमाला प्रिय लगती है, उसी तरह, प्यारे नन्दलाला! केवल तुम मुझे प्रिय लगो। मैं अपने सम्पूर्ण हृदयका प्यार तुमपर ही उड़ेलता रहूँ। जैसे चातकको घनश्याम, चक्रवाकको घाम तथा कोकिलको आम्रवन सुखदायी जान पड़ता है, उसी प्रकार हे मनमोहन! मेरे मनका तारा सदा तुमको ही अपना प्राणप्यारा एवं सुखद सहारा बनाये रखे। तुम्हारा स्मरण ही मेरी सम्पत्ति हो और विस्मरण ही विपत्ति। मेरे कान तुम्हारी मुरलीकी तानमें गूँजनेवाले श्रीराधाके असाधारण गुणगान सुनते रहें। ये नैन तुम्हें देखे बिना बेचैन रहें। मेरी नासिका तुम्हारे चरणारविन्दोंपर चढ़ी हुई तुलसी-मञ्जरीका सुवास सोल्लास लेती रहे। रसना नामका रस पीती रहे। त्वगिन्द्रियद्वारा तुम्हारा सुकोमल संस्पर्श पाकर मेरा रोम-रोम हर्षसे उल्लसित हो उठे। मेरी वाणीमें वीणापाणि-वाणी उतर आयें और तुम्हारी कल्याणी कीर्ति-कथा गाती हुई मेरी रसनाके रंगमञ्चपर वे सदैव लास्य-विलास करती रहें। अनाथ-नाथ! मेरे दोनों हाथ तुम्हारे पाद-पाथोरुहोंकी सेवाका सौभाग्य पाकर सदाके लिये सनाथ हो जायँ और उनके पावन परागसे परिपूरित तीर्थ-सलिलद्वारा अपने मस्तकका सानुराग अभिषेक करें। ये दोनों पाँव तुम्हारी पावन लीलास्थलियोंमें विहरण-विचरण करते रहें और मैं भावविभोर होकर भोरसे विभावरीतक *'श्रीराधे वृषभानु-नन्दिनी, मुरलीधर जय नन्द किशोर'* का शोर मचाता, गाता हुआ व्रजकी रजमें लोट लगाता रहूँ।

प्राणनाथ! तुम्हारे प्रेमी भक्तोंका सदा साथ मिले, साथ ही, मेरे मानसमें प्रेमका ऐसा अपार पारावार उमड़ उठे, जिसमें डूबकर मैं तुम्हारे सिवा सब कुछ भूल जाऊँ। तुम्हारे वाङ्मय कलेवर-श्रीमद्भागवतका कथन है—'वह हृदय नहीं है, फौलाद है, जो भगवान्‌के नाम लेनेपर भाव-विकारोंके वशीभूत न हो जाय, वे नेत्र नेत्र नहीं हैं, जिनसे आँसू न छलकने लगें तथा वे अङ्ग अङ्ग नहीं हैं, जिनमें रोमाञ्च न हो जाय।' अकारण-करुणासिन्धो! क्या तुम्हारी कृपासे कभी मेरी भी ऐसी स्थिति हो सकती है? ओह! मेरा हृदय तो इस समय लोहेसे भी अधिक कठोर हो गया जान पड़ता है। न नेत्रोंसे अश्रु उच्छलित होते हैं, न अङ्ग-अङ्ग पुलकित। दयामय! दया करके इस लोहेको पिघला दो। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, वृक्ष-लता आदिको तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंको मैं तुझ मुरलीमनोहर, पीत-कौशेय-समावृत नन्दनन्दनके रूपमें निहारकर अपनेको हार दूँ और चरणोंमें प्रणिपात करने लगूँ—ऐसी स्थिति मेरी हो जाय। तुम्हारे सिवा दूसरा कुछ मुझे दिखायी ही न दे। हे मेरे निरञ्जन! इन खञ्जन-सदृश चञ्चल नयनोंमें तुम अञ्जनसे छा जाओ। इनके ऊपर अपनी मनोऽभिराम श्यामताका ऐनक चढ़ा दो। फिर गोपियोंकी भाँति मेरे प्राणोंसे भी यही उद्गार फूट पड़े—*'जित देखौं तित स्याममयी है।'*

यह भाव-भावना अध्यारोप या अध्यास नहीं है। यही परमार्थ सत्य है, इस तथ्यको न पहचाननेके कारण ही दृष्टिमें भेद आता है और दृष्टिभेदसे ही दर्शनमें भेद होता है। गीतागायक जगद्गुरो! तुम मेरे इस दृष्टि-भेद और दर्शन-भेदको दूर कर दो, जिससे सदा, सर्वत्र और सबमें एकमात्र तुम्हारी ही मनोहर झाँकी दिखायी दे। **'वासुदेवः सर्वमिदम्'** यह यथार्थ दृष्टि या बोध मेरे लिये सहज हो जाय। फिर तो आत्माको आत्माराम, मीराँको गिरिधर गोपाल तथा गोपरामाको नन्दलाल मिल जायँ। हे मेरे नयनाभिराम ललितललाम मेघश्याम व्रजधाम-वल्लभ! क्यों मेरे हृदयके तिमिरावृत प्रदेशमें लुके-छिपे बैठे हो। दृष्टिके सामने आओ, प्राणोंमें समा जाओ और मधुर स्पन्दनको जगाओ। पलभरके लिये भी इन आँखोंसे ओझल न होओ। प्राकृत प्रपञ्चकी मरुभूमिपर रस-सिन्धुकी भ्रान्ति लिये लहराती हुई विषय-मरीचिकामें भटकते मृगरूपी मेरे संतृष्ण मनको, हे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे कृष्ण! तुम अपनी ओर खींच लो। आकर्षण तुम्हारा स्वभाव है। जिसको तुमने आकर्षित कर लिया, वह तुम्हें छोड़कर अन्यत्र कहीं जा ही नहीं सकता। इस जनको संसारके सपनेसे निकालो और अपनेसे लगा लो। तुम जिसे पकड़ते हो, उसे छोड़ते नहीं, उसकी ओरसे मुँह मोड़ते नहीं, मुझे भी पकड़ो और अपना बंदी बना लो। मैं इसीमें आनन्दित रहूँगा। मुझे योगकी युक्ति, भोगोंकी भुक्ति नहीं चाहिये, मुझे तो तुम अपना बन्धन ही दे दो। मुझे हेम-क्षेम नहीं, तुम्हारा प्रेम चाहिये। मैं 'तुम' नहीं, 'तुम्हारा' होकर रहना चाहता हूँ। 'तुम मेरे हो'—यह ममता मुझे सदा ही बाँधे रखे। 'मैं तुम्हारा हूँ' मेरा यह अहंकार कभी विलीन न हो। तुममें मद नहीं, मोह नहीं, इसीलिये तो तुम 'मदनमोहन' हो। मेरे मद-मोहको भी दूर भगा दो, मुझे सोतेसे जगा दो।

चितचोर! मेरा चित्त अनन्य-चिन्तनकी उस रसधारामें निमग्न रहे, जहाँ तुम अनायास ही पास सुलभ हो। दिव्य प्रेमधामकी वृन्दाटवीमें कालिन्दीके तटपर, विरजाकी उत्ताल तरंगोंसे अभिषिक्त वंशीवटके निकट निरन्तर चलनेवाली तुम्हारी रसमयी लीलाका विलास मेरे अन्तर्जगत्‌को नित्य नूतन उल्लास और प्रकाश देता रहे। प्रियके कुञ्ज कुटीरमें मुखर कीरकी तरह सतत सतृष्ण रहकर मैं बिना बाधा 'राधाकृष्ण-राधाकृष्ण' रटता रहूँ। मुझे वह दृष्टि दो, जो प्रीति-रसकी संसृष्टि करे। मेरे अवरुद्ध प्रेम-प्रवाहको उन्मुक्त कर दो। मैं सर्वत्र दिव्य व्रजका, चिन्मय वृन्दावनका तथा परमव्योम-गोलोक-धामका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकूँ। प्रेमी भक्त उद्धवजीकी भाँति मैं भी वृन्दावनकी प्रत्येक लता-पता, गुल्म-ओषधि आदिमेंसे कुछ भी बन जानेमें सौभाग्यका अनुभव करूँ, जिनके ऊपर कृष्णप्राणा गोपसुन्दरियोंके पद-पद्म-पराग पड़ते रहते हैं। वहाँकी हर वस्तु मेरे हृदयमें प्रेमोन्माद जगानेवाली हो जाय। मुझे प्रतिक्षण-प्रतिपल तुम दोनों—वृन्दावनविहारी श्रीनन्दकिशोर तथा बरसानुराजनन्दिनी श्रीराधाके चरण-नूपुरोंकी झनकार सुनायी दे। सखाओं और सखियोंसहित प्रिया-प्रियतमके दर्शन पाकर यह जन्म और जीवन कृतार्थ हो जाय। ऐसा ही प्रगाढ़ प्रेम प्रदान करो, मेरे प्राणवल्लभ!

नीति-निर्झर

(१)

पड़े भूमिपर सोना तो सुखसे सो जाते,
मिले कहीं पर्यङ्क उसीपर सेज बिछाते,
कभी शाक-भाजीसे अपनी क्षुधा मिटाते,
मिलें विविध व्यंजन तो उनका भोग लगाते,
फटे पुराने पट कभी शाल-दुशाले ओढ़ते।
किंतु नहीं कर्तव्यसे बुध जन मुख हैं मोड़ते॥

(२)

नमन सदा करते श्रद्धासे जो गुरुजनको,
निरत सदा रखते सेवामें हैं तन-मनको,
लालायित रहते समीप रह ज्ञानार्जनको,
सफल किया करते जगतीमें निज जीवनको,
कभी गँवाते हैं नहीं जो प्रमादमें एक छिन।
यश, विद्या, बल, आयु हैं, बढ़ते उनके रात-दिन॥

(३)

ऊँचे-ऊँचे विटप फलागमसे झुक जाते,
नीर-भरे नीरद भी नीचेको हैं आते,
तूल-सरिस ऊपर उड़कर नभमें न समाते,
होकर धन-सम्पन्न नहीं सज्जन इठलाते,
उरमें अधिक विनम्रता होती व्याप्त महान है।
पर-उपकारीकी यही संसृतिमें पहचान है॥

—महावीरप्रसाद 'मधुप'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक कुरीतियोंसे बचना चाहिये*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक महत्त्वपूर्ण बात बतलायी जाती है। इस समय अपना देश रसातलको चला जा रहा है यानी इसकी अधोगति हो रही है। हमारे समाजमें दहेजकी प्रथा बहुत ही खराब पड़ गयी है। ऐसी दशा हो रही है कि उन बातोंको याद करके आँखोंमें आँसू आने लगते हैं। मैं लगभग डेढ़ साल पूर्व कलकत्ते गया था। उस समय मैंने देखा कि एक परिवारमें पति-पत्नी एवं उनकी कन्या—ये तीनों विष खाकर मर गये; क्योंकि लड़की बड़ी हो गयी थी, किंतु विवाह नहीं हुआ। उसके माता-पिताने बहुत चेष्टा की, लेकिन उनके पास रुपये नहीं थे, इसलिये कोई तैयार नहीं हुआ। रुपये न रहनेके कारण लड़के और लड़केवाले बोलते कि हम इसके साथ विवाह नहीं करेंगे। इस कारण दु:खी होकर उन लोगोंने अपने जीवनकी समाप्ति कर दी। चार-पाँच दिनके बाद उनकी लाश मिली। कितने दु:खकी बात है। ऐसी घटना आजकल समाचारपत्रमें कभी-कभी आ ही जाती है कि अमुक लड़की अपने कपड़ोंमें मिट्टीका तेल डालकर जलकर मर गयी। माता-पिताको दु:खी देखकर लड़की रोती है और लड़कीकी शादी नहीं होती है तो माता-पिता रोते हैं। एक भाईने मुझसे कहा कि मैं क्या करूँ, अपनी कन्याके विवाहके लिये बहुत ही आतुर हूँ, कोई लड़का मिला नहीं, मैंने एक-दो जगह चेष्टा की, पर कोई विधि बैठी नहीं। इससे वह बेचारा लाचार हो गया और कहने लगा कि मैं लड़कीको यह उपदेश देता हूँ कि तू जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर। पर यह तो बहुत बुरा है, क्योंकि उस लड़कीसे मैंने बात की। मैंने कहा कि बेटी, क्या तुमने ब्रह्मचर्यव्रतके पालनका नियम लिया है? उसने कहा कि मेरे पिताने यह बात कही कि 'मेरे पास विवाह करनेके लिये रुपये नहीं हैं' इसलिये मैंने यह नियम लिया। मेरेमें न कोई त्याग है न वैराग्य है, मैं विवाह करनेके लिये राजी हूँ, किंतु विवाह होता नहीं है, इस कारण मैंने यह नियम लिया। कितने दु:खकी बात है। ऐसे बहुतसे लोग रोते हैं।

किसी गरीब भाईके चार-पाँच लड़कियाँ हों तो वह कैसे विवाह करेगा? अपने-आपको बिक्री कर दे तो भी विवाह नहीं हो सकता। ब्राह्मण किसीसे सहायता माँग भी सकते हैं, किंतु वैश्यों तथा क्षत्रियोंका विवाह न होनेके कारण तो वंश ही नष्ट होता जा रहा है। इससे बचनेके लिये कोई उपाय नहीं दीख रहा है। ऐसी परिस्थिति हो जाना कितने दु:खकी बात है। हर एक माता-बहिनों एवं भाइयोंको अपने मनमें यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि अपने लड़केका विवाह होगा तो हम दहेज नहीं लेंगे। कम-से-कम दहेजका त्याग करना चाहिये। इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक दहेज नहीं लेना चाहिये और दहेजकी प्रथाको एकदम हटा ही देना चाहिये। यदि गवर्नमेन्ट इस प्रथाको हटानेके लिये कानून बनाये तो कुछ तो लाभ होगा, किंतु पूरा लाभ नहीं होगा। जो फायदा त्यागसे होता है, वह कानूनसे नहीं होता। सभी माता-बहिनों एवं भाइयोंको अपने-अपने मनमें उत्साहके साथ यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि ब्याह-शादीमें दहेज नहीं लेंगे। मान लो किसी वैश्य भाईके लड़की है और पिता महीनेमें एक सौ रुपये कमाता है, एक सौ रुपये तो उनके खाने-पीनेके खर्चमें ही लग जाते हैं। कम-से-कम तीन-चार हजार रुपयेके बिना तो ब्याह-शादी होगा ही नहीं। वह बेचारा कैसे काम चलायेगा। गौना दिखानेकी प्रथा (दहेजका सामान दिखानेकी प्रथा) बड़ी खतरेकी चीज है। उसे देखकर लोगोंका खर्च करनेमें उत्साह बढ़ता है, जिससे खर्च बढ़ता जाता है, इसलिये यह प्रथा बिलकुल खराब है, यह प्रथा बंद होनी चाहिये। मुकलावे (गौने)में ब्याह-शादीमें बहुत कपड़ा दिया जाता है, लेकिन वह कपड़ा किसी काममें नहीं आता। मुकलावे (गौने) तथा ब्याह-शादीमें दिये गये बढ़िया-बढ़िया कपड़े सालमें एक-दो बार पहने जाते हैं, वह पड़े-पड़े ही खराब हो जाते हैं। धनकी धूल हो जाती

* यह प्रवचन करीब ४० वर्ष पहलेका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हर माता-बहिनों एवं भाइयोंको यह विचार करना चाहिये कि जो बढ़िया पोशाक दी जाती है जिसे हमलोग 'तील' कहते हैं, वह तील नहीं, बल्कि मारनेवाला तीर है। इसलिये बढ़िया पोशाक देना बंद होना चाहिये। वाग्दानसे विवाहतक ब्लाउज आदि बहुत-सी चीजें दी जाती हैं। गरीबके यहाँ भी कम-से-कम १५ ब्लाउज देनेकी माँग होती है। उसके ऊपर रुपया भी दो। यह कितने दुःखकी बात है, वह बेचारा कहाँसे ब्लाउज लायेगा, कहाँसे रुपया लायेगा, उसे खानेके लिये रोटी भी नहीं मिल रही है। उसे यदि विवाह-शादी करनी पड़े तो बड़े कष्टका सामना करना पड़ता है, यह बड़े दुःखकी बात है। लोग कहते हैं कि ब्राह्मणकी कन्याका विवाह करनेसे फायदा है, पर मैं तो समझता हूँ कि अभावग्रस्त व्यक्तिकी कन्याका विवाह कराना कन्याका दान करना है, कन्या चाहे किसी वर्णकी हो। किसीकी भी कन्या हो इसमें फायदा-ही-फायदा है। विवाह-शादीमें हर प्रकारसे मदद करनी चाहिये। जो वैश्य और क्षत्रिय दान नहीं लें तो उन्हें उधारके रूपमें दे देना चाहिये। उधार देते समय अपने मनमें यह समझ लेना चाहिये कि उधार कहनेका बहाना है, लेना कुछ भी नहीं है। यह और भी उत्तम बात है। ऐसा भाव रखकर हर एक भाईको कन्याके विवाहमें सहायता करनी चाहिये।

विधवाओंकी क्या दशा हो रही है यह देखनेसे अश्रुपात होने लगता है। विधवा स्त्रीके विवाहके समय दिया हुआ गहना आदि उससे छीन लिया जाता है, कहीं सास-ससुर छीन लेते हैं, कहीं पीहरमें उसके भाई-भौजाई छीन लेते हैं या समझाकर-फुसलाकर ले लेते हैं फिर वे हजम कर जाते हैं। सभी ऐसा नहीं करते, किसी-किसीके यहाँकी बात कहता हूँ। जिनके साथ ऐसी आपत्ति घट रही है, उनकी सेवाके लिये कहता हूँ। मात्र विधवाकी सेवा करनी चाहिये और उन विधवाओंमें जो दुखिया हैं—जिन विधवाओंका गहना आदि चला गया है, जिनका रुपया चला गया है ऐसोंकी सहायता-सेवा विशेषरूपसे करनी चाहिये। पुरुष कहलानेवाले हमलोग उसके कष्टकी तरफ ध्यान नहीं देते हैं। हमलोगोंके घरकी स्त्रियाँ पीहरमें भी, ससुरालमें भी उन विधवा माताओंको ताना मारती हैं, उनके लिये कहीं भी जगह नहीं है। ऐसी स्त्रियोंके रोनेसे, आँखोंमें आँसू आनेसे, उनकी दुराशिष्से हमलोगोंको बड़ा भारी अपराध लगता है, उनकी दुराशिष्से बड़ा अनिष्ट हो जाता है। सभी भाई-बहिनोंको यह खयाल रखना चाहिये कि विधवा माताको कभी कष्ट न दें। उसकी हर प्रकारसे सेवा करनी चाहिये। यह भी देखा जाता है कि जो मनुष्य मरनेके समय अपने जीवनकालमें अपनी स्त्रीके लिये जो कुछ लिख गया है कि 'यह रुपया मेरे मरनेके बाद मेरी स्त्रीको मिले', उसके घरवाले उसे फुसलाकर उसकी सही लेकर विधवा स्त्रीका भावी जीवन जिसपर निर्भर करता है वह रुपये रख लेते हैं और जवाब दे देते हैं। विचार करें—वह स्त्री-धन है। ईश्वरके घर जो कानून है, उससे तो हड़प करनेवाले लोगोंको घोर दण्ड मिलेगा। भगवान्के कानूनके अलावा यहाँ भी ऐसा कानून है कि स्त्री-धनको कोई आदमी हजम नहीं कर सकता। पर इस विषयमें मैं गवर्नमेन्टको भी यह दोष देता हूँ कि उसके कानून हैं, पर आँख नहीं। गवर्नमेन्टको आँखसे देखना चाहिये कि विधवाओंकी क्या दशा हो रही है। जो दुष्ट उनके धनको हजम कर रहे हैं, उनको पकड़कर उनका धन लेकर विधवाओंको दे देना चाहिये, यह गवर्नमेन्टका कर्तव्य है। गवर्नमेन्ट अपने कर्तव्यसे चूक रही है। विधवा स्त्री अपने पीहर या ससुरालके खिलाफ लिहाज रखनेके कारण मुकदमा नहीं करना चाहती। यदि करती है तो उसकी मदद कौन करे, रुपयोंकी मदद कौन करे, पैरवी कौन करे। मैं उस विधवा माताको यह नहीं कहता हूँ कि तुम मुकदमा कर दो, मैं तो उन भाइयोंसे ही यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम जरा खयाल करो, 'उनका जो धन है, हक है वह गऊका है' ऐसा समझकर गऊशालासे भी बढ़कर उनका हक समझकर उसका गहना-कपड़ा और उसके पतिके मरनेके समय जीवनकालके बुरे दिनके लिये काममें लानेके रुपये और उनके नामके रुपये—उसका जो खास धन है, पतिने उसके नाम जो कर दिया है या दे गया है या बीमा उसके नाम कर गया है वे रुपये, ये सब खास उस स्त्रीके हैं, वह रुपये तो उसको दे ही देने चाहिये। चाहे भले ही घरमें-मकानमें उसका नाम न रखो। वास्तवमें तो घर और मकान सबमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका हिस्सा है, उन्हें देना चाहिये, किंतु तुम्हारे दिलमें ग्लानि नहीं है तो कम-से-कम यह काम हर एक माता-बहिनों-भाइयोंको करना ही चाहिये। कटिबद्ध होकर उस विधवा माताकी सेवा करनी चाहिये। हर प्रकारसे उनकी सहायता करनी चाहिये। नालायक लोग यदि नहीं दें तो ऐसी स्थितिमें अपनी शक्तिके अनुसार रुपयोंसे उसकी सेवा करनी चाहिये—सहायता करनी चाहिये। साथ ही विधवा माताका भी यह कर्तव्य है कि जबतक अपने शरीरमें शक्ति है, बल है, शरीरसे परिश्रम करके अपना शरीर-निर्वाह कर लेना चाहिये, किंतु दूसरोंसे सहायता लेकर अपना शरीर-निर्वाह नहीं करना चाहिये। उनका यह कर्तव्य है। जैसे समझो कि कोई ब्राह्मणी रसोई बनाकर बीस रुपये महीना लेकर अपने जीवनका निर्वाह करती है। वैश्यकी स्त्री तथा क्षत्रियकी स्त्रीको भी मजूरी करके, सेवा करके, रसोई बनाकर, बरतन मलकर अपने शरीरका निर्वाह कर लेना चाहिये, इसमें कोई भी दोषकी बात नहीं है। वह अपने कड़े पसीनेका पैसा है, मजदूरीका पैसा है, मेहनतका पैसा है, मेहनत करनेमें कोई पाप नहीं है, पाप है बुरा काम करनेमें, चोरी-जारी करनेमें, व्यभिचार करनेमें। मेहनत करके अपने शरीरका निर्वाह करनेमें कोई पाप नहीं है। इस प्रकार विधवा माताओंकी ओर हमलोगोंको ध्यान देना चाहिये। दहेजकी प्रथाको हर एक प्रकारसे हटानेकी चेष्टा करनी चाहिये। मान लो किसी भी गरीब भाईके तीन या चार लड़कियाँ हैं। उनके विवाह-शादीमें सहयोग करना चाहिये। आपलोग दानके नामपर लाखों रुपया खर्च करते हैं, हजारों रुपया खर्च करते हैं। आप लोगोंका यह दान बरबाद होता है, किसी उच्च काममें लगे यह देखनेमें नहीं आता। अपने घरमें एक विधवा स्त्री बैठी है वह रोटियोंके लिये दुःख पाती है, और तू कुरुक्षेत्रमें दान करने जा रही है। अपने कुटुम्बमें, अपने कबीलेमें देख रही है कि क्वाँरी कन्या बैठी है, रुपयोंके बिना उसका विवाह नहीं हो पा रहा है, उसके विवाहमें जो तुम्हें लाभ हो सकता है वह लाभ तुम्हें यज्ञ-दानसे नहीं हो सकता। यज्ञ करनेसे वह लाभ नहीं हो सकता। सोमवती अमावास्याके दानमें तथा एकादशी आदिके उद्यापनोंमें धन लगानेसे वह फायदा नहीं होता। तीर्थोंमें जाकर पंडोंको रुपया देनेसे वह फायदा नहीं होता जो फायदा विधवा स्त्रीको या एक कन्याकी शादीमें रुपया लगानेसे हो सकता है।

हमारे शास्त्रोंने नियम बनाया है कि रजस्वला होनेसे पहले ही कन्याका विवाह कर देना चाहिये; क्योंकि रजोदर्शन हो जानेपर उसके माता-पिताको दण्ड होता है। यहाँतक लिखा है कि यमदूत नरकमें ले जाते हैं। अब लड़का नहीं मिले तो वे माँ-बाप क्या करें? ऐसी स्थितिमें मैं माँ-बापका दोष नहीं मानता हूँ, बल्कि लड़केवालोंका दोष मानता हूँ। लड़केवाले जो रुपया ऐंठ कर ले लेते हैं, उन्हें दण्ड होना चाहिये। आज संसारमें बहुत-सी लड़कियाँ जलकर भस्म हो जाती हैं, माता-पिताका दुःख देखकर विष खाकर मर जाती है, लड़कीका दुःख देखकर माता-पिता विष खाकर प्राण दे देते हैं, उन सबका पाप किसको लगेगा? जो दहेज लेनेवाले पुरुष हैं उनको लगेगा, दहेज लेनेवाले लड़कोंके माँ-बापको लगेगा; क्योंकि उनके कारण यह अन्याय हो रहा है, अतः दहेजकी प्रथा एकदम समाप्त करने लायक है।

आज हमारे देशकी क्या दशा हो रही है। एक लड़की बीमार पड़ती है तो उसका इलाज करानेकी हमलोग चेष्टा नहीं करते, यह सोचते हैं कि यह मर जाय तो अच्छी बात है। १५ वर्षकी लड़की है, किसी बहानेसे तो मार नहीं सकते। अपनी मौतसे मर जाय तो ५ हजार रुपया बच जाय। गरीब आदमी भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान्! तुम हमारी लज्जा रखो और इस लड़कीको मौत दे दो। आजसे कुछ समय पहले हमने यह बात सुनी कि अपने देशमें जो राजपूत लोग हैं उनका खर्च बढ़ गया, जागीरदार थे, पर उनकी सारी जागीरदारी दहेजमें चली जाया करती थी, नतीजा क्या हुआ कि उनके जो लड़की पैदा होती थी, उसे पैदा होते ही जीवित-अवस्थामें ही ले जाकर बालूमें गड्ढा खोदकर गाड़ दिया करते थे। ऐसी बात अभी भी कुछ राजपूतोंमें है, सभी राजपूतोंमें नहीं। कितने दुःखकी बात है कि जीती हुई लड़कीको उसके बाप-भाई ले जाकर बालूमें गाड़ देते हैं। एक कुत्तेके बच्चेको भी इस प्रकार जीते-जी गाड़ा नहीं जाता, किंतु वे अपनी बच्चीको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ देते हैं, यह कितनी घृणित बात है। इसी प्रकार आगे चलकर यदि लोग अपनी लड़कीको मारनेके लिये तैयार हो जायँ तो कोई बड़ी बात नहीं है। यह सोचना चाहिये कि यह कितनी भारी हत्या है। आपको मैं एक रहस्यकी बात बतलाता हूँ। मान् लो हमारे घरमें १४ वर्षकी लड़की हो गयी, १६ वर्षकी लड़की हो गयी, यदि कुसंगके कारण उसके गर्भ रह जाय तो आपके पास क्या उपाय है? यदि आप उस गर्भको गिरायें तो आपको भ्रूण-हत्याका पाप लगेगा, संतान जन्माकर मारें तो आपको बाल-हत्याका पाप लगेगा, लड़कीको अपने घरसे बाहर निकाल दें तो वह अपनी जातिसे हटकर विधर्मी या वेश्या हो जायगी, कुलमें कलंक लगेगा, आपके पितर नरकमें जायँगे। इन उपायोंके सिवाय क्या करेंगे या तो बाल-हत्या करें या उसे अपने घरसे बाहर निकाल दें। इसीलिये ऋषियोंने सोच-विचारकर यह कानून बनाया कि कन्या जबतक रजस्वला न हो, उसके पहले ही उसका विवाह कर दो। यह खयाल रखना चाहिये कि स्त्री जबतक रजस्वला नहीं होती, तबतक उसके गर्भ नहीं रह सकता। रजस्वला होनेके बाद ही गर्भ रहता है, इसीलिये ऋषियोंने यह कानून बनाया कि रजोदर्शनके पूर्व उसका विवाह कर दे और जबतक लड़की रजस्वला नहीं हो उसे ससुराल नहीं भेजना चाहिये या रजस्वला होनेके बाद तुरंत उसका विवाह कर देना चाहिये। उसे घरमें नहीं रखना चाहिये। रजस्वला होनेके बाद विवाहके लिये लगन भी नहीं देखना चाहिये, मुहूर्त भी नहीं देखना चाहिये। सुन्दर दिन देखकर, अच्छा दिन देखकर उसकी शादी कर देनी चाहिये। कोई कहता है एक महीनेके भीतर, कोई कहता है दो महीनेके भीतर, चार महीनेके भीतर, किंतु अधिक कालके लिये किसी भी ऋषि-मुनिकी उक्ति नहीं है। आप चाहें तो सारी स्मृतियाँ निकालकर देख लें, किसी भी स्मृतिमें आपको यह प्रमाण नहीं मिलेगा कि सालभर ठहरना चाहिये या दो साल ठहरना चाहिये। सोचें—देशमें कितनी दुर्दशा हो रही है, हर एक माताओं, बहिनों एवं भाइयोंको अपने मनमें यह दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि दहेजकी प्रथा उखाड़ देंगे, हम दहेज नहीं लेंगे। यह दहेजकी प्रथा हमारे लिये महान् घातक है।

मैंने आप लोगोंसे दहेज प्रथाके उन्मूलनके विषयमें और विधवा माताओंकी सहायता करें, इस विषयमें कहा। इन्हें सुधारनेकी लिये आप सब कटिबद्ध होकर तैयार हो जायँ और प्रतिज्ञापूर्वक सुधारनेकी चेष्टा करें।

गायकी करबद्ध प्रार्थना

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मार सकत कोइ।
हम संतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्त्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिन्दुहि मधुर न देहिं, कटुक तुरकहि न पियावहिं॥
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनौ, बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन॥

यदि शत्रु भी दाँतों-तले तिनका दबाकर शरणमें आ जाता है तो कोई उसे मार नहीं सकता। हम गायें तो सदा ही दाँत-तले 'तिनका' दबाये दीन वचन बोलती रहती हैं। नित्य ही हम पीयूषोपम पय प्रदान करती हैं। भूमिभार-धारण करनेवाले बछड़ोंको भी हमलोग ही जन्म देती हैं। हमारा दूध हिन्दू-मुसलमान सबके लिये एक समान होता है। हिन्दुओंके लिये मधुर और तुर्कोंके लिये कड़वे दूधकी कोई भेद-भावभरी व्यवस्था नहीं है। 'नरहरि' कवि अकबरको सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं—'हे राजन्! हाथ जोड़कर विनती करती हुई गाय आपसे प्रश्न कर रही है—मुझे किस अपराधके कारण मारा जा रहा है? मरनेपर भी मेरा चाम तो चरण-सेवामें ही लगता है।'

(प्रे०—डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीका ईश्वर-विषयक चिन्तन

(डॉ० श्रीरामाप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

तुलसीके ईश्वर-चिन्तनकी धुरी श्रीराम हैं, जो उनके इष्टदेव एवं प्राणाराध्य रहे हैं। तुलसीने उन्हींकी आराधना की और उन्हींकी भक्तवत्सलता, महिमा, प्रभुता और गुरुताका अपने ग्रन्थोंमें प्रतिपादन किया। रामचरितमानसके तो वे प्रमुख प्रतिपाद्य विषय ही हैं[1]।

मानसमें रामकी झाँकी तीन रूपोंमें प्रस्तुत की गयी है—प्रथम परात्पर ब्रह्मके रूपमें, द्वितीय विष्णुके रूपमें और तृतीय अवतारी-रूपमें। परात्पर ब्रह्मके रूपमें वे अव्यक्त एवं मूलतत्त्व हैं। उनका स्वरूप अगोचर, बुद्धिसे परे, अविगत, अनिर्वचनीय और अपार है[2]। वे मायातीत, अप्रमेय, उपाधिरहित, निरपेक्ष, विरज, अचल, अनीह, अज, अकल, अनामय, विकाररहित, व्यापक, शाश्वत, गुणरहित, निर्लेप, अलख, अव्यक्त, निराकार, अरूप और अनाम हैं।

निराकार ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका वर्णन करते हुए तुलसीदासजीने श्रीरामके विराट् और विश्वरूपकी जो झाँकी प्रस्तुत की है, उसमें सर्वात्मवादकी झलक मिलती है। गोसाईंजीने समस्त जगत्‌को प्रभुमय या ब्रह्ममय बताकर मित्रता एवं निर्वैरताका जो संदेश दिया है[3], वह सचमुच मानवताका मूल मन्त्र है।

निर्गुण-रूपमें जो अव्यक्त हैं, वे ही सगुण-रूपमें व्यक्त श्रीराम हैं। अमित गुणोंके कारण वे गुणोंकी राशि, करुणाके धाम और करुणामय हैं। उनकी करुणा निष्काम एवं अहैतुकी है। वे दीनदयालु, दीनबन्धु, गरीब-निवाज,अशरण-शरण, प्रणतपाल एवं भक्तवत्सल हैं। वे सर्वोपकारी मङ्गलमय एवं कल्याणकारी हैं। उनके गुणोंकी कल्याणकारिता दानवताको निर्वासित कर मानवताकी प्रतिष्ठा करनेवाली है।

सगुण-रूपमें रामकी प्रतिष्ठा दो प्रकारसे हुई है। प्रथम महाविष्णुके रूपमें और द्वितीय अवतारी-रूपमें। वैष्णवोंके विष्णु उपनिषदोंके परमब्रह्म ही हैं। किसीके अनुसार वे वैकुण्ठवासी और किसीके अनुसार वे पयोनिधिवासी हैं, परंतु उनकी व्यापकता सर्वत्र है। भक्त स्वेच्छानुसार कहीं भी उनका आवाहन कर सकता है और जहाँ श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमसे आवाहन होता है, वहीं भक्तके प्रेमके वशीभूत हो उनका प्राकट्य हो जाता है[4]।

यों तो परात्पर ब्रह्मके अन्य अवतारी रूपोंका वर्णन तुलसीने यत्र-तत्र किया है, किंतु राम ही उनके प्रमुख चरितनायक रहे हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुराम आदि रूपोंमें अवतार-धारणकी कथा उनकी कृतियोंमें वर्णित है। जब-जब भक्त, देव अथवा धर्मपर आपत्तिके मेघ आच्छन्न हुए हैं, तब-तब मानव अथवा मानवेतर प्राणीके रूपमें उनका अवतरण हुआ है। पृथ्वीके अपहरणकर्ता हिरण्याक्ष दानवके मर्दनार्थ उन्हें शूकर-रूप धारण करना पड़ा था। महाप्रलयके समय पृथ्वीके रक्षणार्थ मत्स्याकारमें वे प्रकट हुए थे। समुद्र-मन्थनके समय रसातलगामी मन्दराचलकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने कूर्मका रूप धारण किया था। लोकपीड़क एवं धर्महन्ता हिरण्यकशिपुको नष्ट करनेके लिये वे नृसिंह-रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने ही देवताओंके कार्यके लिये वामन-ब्रह्मचारीका रूप धारणकर राजा बलिको छला। अभिमानी क्षत्रियोंको नष्ट करने एवं ब्राह्मणोंको निरापद परिवेश प्रदान करनेके लिये उन्होंने परशुरामके रूपमें अवतार लिया। इसी प्रकार वसुधापर छायी हुई दानवताके उन्मूलनार्थ एवं लोकरंजनार्थ उन्हें श्रीकृष्णके रूपमें मनुजावतार धारण करना पड़ा। द्रौपदीके वसनवेशके रूपमें उनकी जो अभिव्यक्ति हुई, वह परमात्माकी परदुःखकातरता एवं

१-जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥ (रा० च० मा० ७। ६१। ६)
२-राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर। अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥ (रा० च० मा० २। १२६)
३-निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ (रा० च० मा० ७। ११२ख)
४-हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥ (रा० च० मा० १। १८५। ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुणाकी अमिट निशानी है।

परात्पर ब्रह्मके अवतार धारण करनेकी विविध कथाओंमेंसे तुलसीको उनके मानवरूपमें अवतरित होनेकी कथा सर्वोपरि रुचिकर प्रतीत हुई। मनुजावतारोंमें भी कृष्ण और रामको जितनी लोकप्रियता मिली, उतनी वामन, परशुराम, बुद्ध, कपिल, नर-नारायणको नहीं मिली। कृष्ण और रामने लोक-चेतनामें पैठकर आशा एवं विश्वासका विलक्षण संचार किया। मानवताको लावण्यकी अपेक्षा शक्ति और शीलकी अधिक आवश्यकता थी, जिसकी परिपूर्तिके लिये तुलसीने मर्यादाके अभिरक्षक श्रीरामका चयन किया और उनके रामने लोकरंजनके साथ-साथ लोकरक्षणका बीड़ा उठाया।

ब्रह्मके निर्गुण और सगुण-रूपमेंसे तुलसीदासने सगुणको श्रेयस्कर माना और सगुण-रूपोंमें भी दाशरथि रामको उन्होंने अधिक महत्त्व दिया। यों तो तुलसीदासजीने अपनी समन्वयवादी प्रतिभाके द्वारा निर्गुण-सगुणके अभेदका प्रतिपादन किया है[१], किंतु उनका विशेष आग्रह सगुण-रूपके प्रति है। रामकी महिमाका प्रतिपादन करते हुए उन्होंने लिखा है कि वे निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं। निर्गुण उस अप्रकट अग्निकी भाँति है जो काठके भीतर अलक्षित-रूपसे विद्यमान रहती है और सगुण उस प्रत्यक्ष अग्निकी भाँति है जो परिलक्षित होती है[२]। जल और हिम-उपलकी भाँति निर्गुण और सगुण ब्रह्ममें अभेदता है[३]। वे ज्ञान-गिरा-गोतीत होते हुए भी ज्ञानगम्य हैं। पद, कर्ण, हस्त, आनन, वाणी आदिके अभावमें भी वे इन इन्द्रियोंके कार्योंको सहजरूपसे सम्पादित करते हैं[४]। इस प्रकार तुलसीके राम तत्त्वतः निर्गुण और स्वरूपतः सगुण हैं। प्रेमी भक्तके आह्वानपर वे साकार-रूपमें अवतीर्ण हुआ करते हैं[५]। निर्गुणकी सगुण अभिव्यक्ति सरोज-पुष्प-शोभित सरोवरकी भाँति नयनाभिराम हैं[६]।

वस्तुतः सगुणोपासनाकी पद्धति मानवताकी एक उज्ज्वल वीथी है। राम एक ऐसे आराध्य हैं जो जननीकी भाँति निरन्तर अपने आराधकके कल्याणार्थ सजग रहते हैं[७]। उनकी ममतामयी दृष्टिको पाकर आराधक सच्चे दिलसे यह अनुभव करता है कि उनके राम सचमुच दीनबन्धु, गरीब-निवाज एवं प्रणतपाल हैं। उनके संरक्षणत्वकी छायामें अपनेको वह सुरक्षित समझता है तथा उनके कारुण्यके सलिल-कणोंको पाकर उसका क्लेशातुर हृदय शान्ति एवं असीम आनन्दका अनुभव करता है।

गौरूपधारी वसुन्धरा और देवोंके आर्तनादसे करुणार्द्र होकर वे नररूपमें अवतार लेनेकी जब घोषणा करते हैं, तब मनु-शतरूपाके भगवान् (दाशरथि राम) मानो लोकमङ्गलकी कड़ी बन जाते हैं। गोसाईंजीने अपने रामको केवल साधनाव्रती दम्पति (कौसल्या-दशरथ)-की पुत्रैषणाकी तुष्टिके लिये उनके अजिरतक ही सीमित नहीं रखा है; बल्कि उन्हें जन-जनके हृदयाकाश एवं मानसपटलपर सदाके लिये सुस्थिर कर दिया है। परात्पर ब्रह्म दाशरथि राम बनकर ही नहीं रहते, उनमें तो समष्टि चेतना समाहित हो जाती है। रामके इसी रूपमें मानवताकी जगमगाती ज्योति परिलक्षित होती है। पुरातन युगसे भारतीय मानव-जाति अपने भक्तिभावमय चिन्तनके अनुरूप श्रीरामके व्यक्तित्वमें कुछ-न-कुछ जोड़ते चली आयी है और प्रभु श्रीराम भी उनके विश्वासोंकी रक्षा करते हुए जनमानसकी धारणाओंको, भावनाओंको उनके भावके अनुरूप पुष्ट करते आये हैं। ऐसे ही भक्तोंके आराध्य भक्तवत्सल श्रीराम तुलसीके प्रतिपाद्य हैं।

१-अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । (रा० च० मा० १। २३। १)

२-एकु दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥ (रा० च० मा० १। २३। ४)

३-जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥ (रा० च० मा० १। ११६। ३)

४-बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥ (रा० च० मा० १। ११८। ५-६)

५-अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥ (रा० च० मा० १। ११६। २)

६-फूलें कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥ (रा० च० मा० ४। १७। २)

७-करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी॥ (रा० च० मा० ३। ४३। ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरकी ओर झुकें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'कल्याण' की पाठिका एक बहन लिखती है कि 'माताएँ मोह छोड़कर बालकोंको पढ़नेके लिये गुरुकुलोंमें भेजें, गहने तथा विदेशी वस्त्रों आदिसे घृणा करें और शौकीनी छोड़कर ईश्वरकी ओर झुकें,' इन विषयोंपर 'कल्याण' में कुछ अवश्य लिखना चाहिये। एक दूसरी सुशिक्षिता बहनने 'वर्तमान स्कूल-कॉलेजोंकी बुराइयाँ, बढ़ते हुए फैशन और कर्तव्यविमुखता, धर्महीनता, ईश्वरभक्तिका ह्रास, विलासिता तथा विदेशी सभ्यताकी तरफ शिक्षिता बहनोंकी बढ़ती हुई रुचिकी ओर ध्यान खींचते हुए इन बुराइयोंसे बचकर सब परमात्माकी ओर झुकें,' इस विषयपर कुछ लिखनेके लिये विशेषरूपसे आग्रह किया है।

यद्यपि 'कल्याण' में साधारणत: अध्यात्मविद्याके प्रचार, और विलासिता त्यागकर ईश्वरकी ओर झुकनेके विषयमें प्राय: लिखा ही जाता है। हमारा विचार ईश्वरभक्ति और वैराग्य, सदाचारके सिवा अन्य बहिरंग विषयोंपर कुछ लिखनेका भी नहीं था तथापि इन बहनोंके विशेष अनुरोधसे आज प्रसंगवश इन विषयोंपर कुछ लिखना पड़ा है। किसी बहन या भाईको कोई शब्द अप्रिय लगे तो वे क्षमा करें, हमारा विचार किसीके चित्तपर आघात पहुँचानेका नहीं है, अपना मत जो कुछ हृदयसे ठीक जँचा वही लिख दिया है। यह आग्रह भी नहीं है, कि कोई इसे मानें। यदि किसीको अपनी बुराइयाँ दीखें तो उन्हें सुधारनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। पहली बहनने तीन विषय बतलाये हैं इन तीनोंपर विवेचन करनेमें दूसरी बहनकी बातोंका उत्तर भी शायद आ जायगा।

(१) माताएँ मोह छोड़कर अपने बालकोंको ऋषिकुल, गुरुकुलोंमें भेजें।

(२) गहने और विदेशी वस्त्रों आदिका व्यवहार तथा शौकीनी छोड़ें।

(३) ईश्वरकी ओर झुकें।

—इन तीनोंमें तीसरी बात सबसे पहले आवश्यक है। मनुष्यजीवन ईश्वरको प्राप्त करनेके लिये ही है। समस्त सांसारिक कार्य इसी महान् उद्देश्यको सदा सामने रखकर करने चाहिये। इसीको भूल जानेके कारण आज हम लक्ष्य-भ्रष्ट होकर अनेक प्रकारके कष्ट भोग रहे हैं, इसीसे आज हमारा जीवन अशान्त और त्रिताप-तप्त है, इसीसे तरह-तरहके दु:ख-दावानलसे जगत् दग्ध हो रहा है, इसीसे हमारा कोई कार्य शुद्ध सात्त्विकताको लिये हुए प्राय: नहीं होता। यदि मनुष्य अपने इस महान् लक्ष्यपर स्थिर होकर समस्त कर्म भगवान्‌की **'कुरुष्व मदर्पणम्'** आज्ञाके अनुसार उनके अर्पण-बुद्धिसे करने लगे तो सारे दु:ख-कष्टोंका अनायास ही अन्त हो सकता है। अतएव ईश्वरकी ओर झुकना तो सबसे पहली और सबसे अधिक आवश्यक बात है। इसमें स्त्री-पुरुषका कोई भेद नहीं है। ईश्वर-प्राप्तिके सब समान अधिकारी हैं। सरलहृदया स्त्रियाँ तो तर्कजालग्रस्त पुरुषोंकी अपेक्षा सच्ची भक्ति होनेपर सम्भवत: परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र कर सकती हैं।

आवश्यकता लक्ष्य बदलनेकी है, कर्मोंका स्वरूप बदलनेकी नहीं। घरका प्रत्येक कार्य ईश्वरकी सेवा समझकर नि:स्वार्थ-बुद्धिसे करना ईश्वर-भक्ति ही है। जो स्त्री-पुरुष परमात्माका नित्य स्मरण रखते हुए सब कार्य उसीकी आज्ञानुसार उसीके लिये करते हैं, वे भी सच्चे भक्त हैं, ऐसे भक्तोंसे पाप-कर्म कभी नहीं हो सकते। शरीरसुखकी स्पृहा ही पाप करानेमें प्रधान कारण होती है, जब साधककी बुद्धि ईश्वरकी सेवाके महत्त्वको जान जाती है, तब उसमें शरीर-सुख-स्पृहा नहीं ठहर सकती। जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकारको कहीं जगह नहीं मिलती, इसी प्रकार ईश्वरप्रेमकी जागृति होनेपर विषयप्रेमका नाश हो जाता है। जब विषयप्रेम ही नहीं रहता तब विषयोंकी प्राप्तिके लिये पाप क्यों होने लगे? अतएव हमारी माँ-बहनोंको चाहिये कि वे अपने जीवनकी गति ईश्वरकी ओर कर दें। यह हो जानेपर सारा मोह आप-से-आप छूट जायगा, ईश्वरप्रेमसे सात्त्विक भावोंके विकासके साथ-ही-साथ बुद्धि इस बातका अचूक निर्णय करनेमें आप ही समर्थ हो जायगी कि कौन सा काम करना और कौन सा नहीं करना चाहिये।

आज जो माताएँ बालकोंको मोहवश या मिथ्या प्यार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुलारके कारण पाठशालाओंमें भेजनेसे हिचकती हैं, विद्यालाभकी अवधिसे पूर्व ही प्रमादवश बालकोंका विवाह कर वधूका मुख देखना चाहती हैं, कर्तव्यका ज्ञान होनेपर वे स्वयं हानि-लाभ समझकर उचित व्यवस्था करने लगेंगी। वही माता-पिता बालकके वास्तविक हितैषी हैं जो उसे सत्विद्या सिखाकर इस लोक और परलोकमें सुखी बनानेका प्रयत्न करते हैं। परंतु जो मोह या स्वार्थवश उन्हें पढ़ाना नहीं चाहते, या ऐसी विद्या पढ़ाते हैं जिससे वे किसी भी भले-बुरे उपायसे केवल धन कमाना ही सीख जायँ, वे वास्तवमें बालकोंके सच्चे हितैषी माँ-बाप नहीं हैं।

परलोकवाद और परमात्माको माननेवाले प्रत्येक व्यक्तिको यह मानना पड़ेगा कि अपने किये हुए अच्छे-बुरे कर्मोंके अनुसार परमात्माके विधानसे अच्छी-बुरी योनियाँ और सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। अच्छे-बुरे कर्मोंका होना सत्संग-कुसंग और सत्विद्या-कुविद्यापर विशेष निर्भर करता है, अतः जो माता-पिता बालकोंको कुसंगमें रखकर या उन्हें कुविद्या-दान करवाकर उनके भावी जीवनको—परलोकको बिगाड़ देते हैं, वे वास्तवमें उनके साथ भ्रमवश शत्रुताका ही कार्य करते हैं।

प्राचीन कालकी शिक्षापद्धति और शिक्षालयोंमें जो बात थी, सो आज नहीं है। चक्रवर्ती राजाका पुत्र और दरिद्र-कंगाल बालक दोनों ही अरण्यवासी, दयामय, ब्रह्मज्ञाननिष्ठ, विजितेन्द्रिय, सर्वविद्यानिधान, ईश्वरभक्त, संतोषी, समदर्शी आचार्यके यज्ञ-धूम-धूसरित नदीतीरस्थ प्राकृतिक शोभासम्पन्न पवित्र आश्रममें सहोदर भाइयोंकी भाँति एक साथ रहकर युवावस्था प्राप्त न होनेतक बड़ी सावधानीसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए संयम, विनय और निष्कपट-सेवाके बलसे शुद्ध विद्याध्ययन करते थे। आज न वैसे गुरु हैं, न गुरुकुल हैं और न वैसे शिष्य ही हैं।

इस समय जिस स्थूलवादप्रधान जड़ शिक्षाका प्रचार हो रहा है, वह तो भारतीय सभ्यता और संस्कृतिका नाश करनेवाली ही सिद्ध हो रही है। स्कूल-कॉलेज और उनके छात्रावासोंका दृश्य देखिये। विद्यासे विनयसम्पन्न होनेकी बात तो दूर रही, आज कॉलेजोंके छात्र प्रायः गर्वमें भरे हुए मिलते हैं, जहाँ विद्यार्थी-जीवनमें महान् संयमकी आवश्यकता है, वहाँ आज उच्छृङ्खलता, इन्द्रियपरायणता, विलासिता और फैशनका प्राधान्य हो रहा है। सजावट-बनावटकी भरमार है। छात्रावासोंमें यज्ञसामग्रियोंकी जगह आज चश्मा, नेकटाई, रिष्टवाच, दर्पण, कंघा, सेफ्टीरेज़र, साबुन, सेंट और तरह-तरहके जूते मिलते हैं। दिल्लगियाँ उड़ाना, भद्दी ज़बानें बोलना, परस्पर अनुचित प्रेमपत्र भुगताना, प्रोफेसरोंका मज़ाक उड़ाना, बड़ोंका असम्मान करना और हर किसीकी निरङ्कुश आलोचना करना उनके लिये मामूली बात है। चरित्रबलका तो बुरी तरह नाश हो रहा है, छात्र-जीवनमें ही तरह-तरहकी बीमारियाँ घेर लेती हैं। स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, आँखोंकी ज्योतिका घट जाना तो आजकलके शिक्षित नवयुवकोंकी आँखोंपर चश्मोंकी संख्या देखनेसे ही सिद्ध है। जो छात्र बहुत संयमी समझे जाते हैं, वे प्रायः नवीन सभ्यता, उन्नति या क्रान्तिके नामपर घरकी बातोंसे घृणा करने और पुरानी नामधारी वस्तुमात्रको अनावश्यक और अवनतिका कारण समझ बैठते हैं। धर्मको अनावश्यक समझना, धर्म-कर्मसे घृणा होना तो इस शिक्षा और शिक्षालयोंके वातावरणका सहज परिणाम है। दुःखकी बात है पर सत्य है कि आजकल हमारे स्कूल-कॉलेजोंमें छात्रोंके चरित्रबलका बुरी तरह नाश होने लगा है। छात्रोंपर असर पड़ता है अध्यापकोंके जीवनका, परंतु अधिकांश अध्यापक प्रायः उन्हीं कॉलेजोंसे निकले हुए परिमित अनुभवसम्पन्न जवान छात्र ही होते हैं, उनसे हम इन्द्रियजयी साधनसम्पन्न ऋषि-मुनियोंके चरित्रकी आशा भी नहीं कर सकते!

इसके सिवा आजकलकी शिक्षामें खर्चके मारे तो गृहस्थ तबाह हो जाता है। पुत्रको ग्रेजुएट बनानेमें गरीब पिताको कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, इस बातकी उस बेपरवा मनचले छैले पुत्रको खबर भी नहीं होती। पिता बड़ी उमंगसे बुढ़ापेमें सुख मिलनेकी आशासे ऋण करके पुत्रको पढ़ाता है, परंतु आजकलका पढ़ा-लिखा पुत्र अपने पिता-पितामहोंको अपने मन मूर्ख मानने लगता है। घरका काम करनेमें उसे लज्जा मालूम होती है। किसानका लड़का पढ़-लिखकर खेती करनेमें या दूकानदारका लड़का दूकानदारी करनेमें अपनी शानमें बट्टा लगना समझता है। घरका स्वाभाविक काम छूट जाता है, नौकरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती नहीं, दुर्गति जरूर होती है। आजकल भारतमें जिस बेकारीसे लोग हैरान हैं, उसका एक कारण यह शिक्षा भी है। मेहनत-मजदूरी या कारीगरीसे काम चलानेवालोंकी अपेक्षा सभ्य पढ़े-लिखे बाबुओंकी अधिक दुर्दशा है!

कॉलेजोंसे निकले हुए छात्रोंमेंसे कुछको छोड़कर अधिकांश प्राय: तीन श्रेणियोंमें बँटते हैं—वकील, डॉक्टर और क्लर्क। यह बात निर्विवाद है कि जितने वकील, डॉक्टर बढ़े हैं, उतने ही मुकद्दमे और बीमारोंकी संख्या बढ़ी है। क्लर्कोंकी वृद्धिसे चरित्रबल नष्ट हो रहा है। नौकरी चाहिये, उम्मीदवारोंकी भरमार है, सस्ते-से-सस्तेमें रहनेको तैयार हैं। इधर महँगी बढ़ी हुई है, कम नौकरीमें पेट भरता नहीं, मजबूरन चोरियाँ करनी पड़ती हैं **'बुभुक्षित: किन्न करोति पापम्'** यह इस शिक्षाका परिणाम है। खेद तो इसी बातका है कि इस प्रकारकी धर्म-संयमहीन शिक्षाका भयानक दुष्परिणाम देखते हुए भी हम लोग व्यामोहसे उसीके प्रचारमें अपना पूरा लाभ समझ रहे हैं। यही हमारी विपरीत बुद्धिके लक्षण हैं! मनीषियोंको चाहिये कि वे इस दूषित शिक्षाप्रणालीमें शीघ्र आवश्यक परिवर्तन करानेका प्रयत्न करें।

ऋषिकुल-गुरुकुलोंकी स्थापना प्राय: इसी उद्देश्यसे हुई थी कि वे संस्थाएँ इन दोषोंसे बची रहें, परंतु अभीतक उन सबकी स्थिति भी संतोषजनक नहीं है, क्योंकि वातावरण और अध्यापक सभी जगह प्राय: एक-से ही हैं। तथापि स्कूल-कॉलेजोंकी अपेक्षा इनमें कहीं-कहीं कुछ संयम और धर्मशिक्षाकी ओर भी ध्यान दिया जाता है। अन्तत: इन संस्थाओंमें एक सीमातक ब्रह्मचर्य-रक्षाकी स्कूल-कॉलेजोंकी अपेक्षा कुछ अधिक सम्भावना की जा सकती है। कम-से-कम इसी लाभकी दृष्टिसे माताओंको मोह छोड़कर अपने बालकोंको ऐसी चुनी हुई संस्थाओंमें अवश्य भेजना चाहिये, जहाँ कम-से-कम उनके ब्रह्मचर्यकी वास्तविक रक्षाके साथ ही धार्मिक शिक्षाका समुचित प्रबन्ध हो। माता वही है जो अपने बालकका परलोक सुधारना चाहती है। देवी मदालसाने लोरीमें ही पुत्रोंको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया था। बच्चोंका ऐहलौकिक और पारलौकिक सच्चा हित उनको ब्रह्मचारी, वीर, धीर, संयमी, सत्यवादी और अनन्य ईश्वरभक्त बनानेमें ही है। माताओंको इस ओर पूरा ध्यान देना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

गहनोंका अधिक व्यवहार भी बड़ा हानिकर है। गहनोंकी प्रथाके कारण ही भले घरके गरीब लड़कोंको प्राय: लड़कियाँ नहीं मिलतीं, ऋण करके भी गहने चढ़ाने पड़ते हैं। माताएँ गहनोंका मोह छोड़ दें तो उनका और समाजका दोनोंका भला है। गहनोंके कारण ही घरोंमें प्राय: लड़ाइयाँ हुआ करती हैं। गहना पहननेवाली बहनोंको यह समझ रखना चाहिये कि शोभा गहनों-कपड़ोंमें नहीं है, सच्ची शोभा शील, सदाचार और सादगीमें है, जिससे लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। इसी प्रकार विदेशी वस्त्रोंसे देशकी और धर्मकी बड़ी हानि हो रही है। आर्थिक हानि तो है ही, परंतु लाखों मन जानवरोंकी चर्बी इन कपड़ोंमें लगती है, यही हाल यहाँकी मिलोंके बने कपड़ेका है, इसलिये जहाँतक हो सके, बहनोंको चरखेसे कते हुए सूतके हाथसे बुने कपड़े ही पहनने चाहिये। इनमें चर्बी नहीं लगती, गरीब भाई-बहनोंका कताई-बुनाईसे पेट भरता है। उन्हें पेटके लिये पाप नहीं करना पड़ता, जीव-हिंसा नहीं होती, पवित्रता बनी रहती है, लज्जा नहीं जाती और धर्म बचता है।

अब दो शब्द शिक्षिता बहनोंसे, इस शर्तपर कि वे इस अप्रिय सत्यके लिये कृपा-कर नाराज न हों—आजकल पढ़ी-लिखी बहनोंमें फैशनकी बीमारी बहुत जोरसे बढ़ रही है, वे ज्यादा गहना पहनना तो पसंद नहीं करतीं, परंतु जो एक-दो अँगूठियाँ, चूड़ियाँ या कर्णफूल आदि रखना चाहती हैं, वे जरूर बहुमूल्य चमकदार रत्नोंके चाहती हैं। विदेशीकी जगह देशी वस्त्र या खादी पहनती हैं, परंतु फैशनकी भावना बढ़ती जाती है, पढ़ी-लिखी बहनें घरके काम-काजमें, रसोई बनाने आदिमें, पति या सास-ससुरकी सेवा करनेमें प्राय: उपेक्षा करती हैं। इन कामोंको वे हीन और नौकर-नौकरानियोंके करने लायक समझती हैं। और लेख लिखने, नाटक-उपन्यास, गल्प आदि पढ़नेमें विशेष रुचि रखती हैं। कई बहनोंको संतानके पालन-पोषणमें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट मालूम होने लगा है। यों देशी पोशाकके अंदर धीरे-धीरे विदेशी सभ्यताकी संक्रामक व्याधिका विस्तार हो रहा है। यह बात धीरे-धीरे बहनोंके लेखों, कविताओं, उद्‌गारों और उनके चरित्रोंसे सिद्ध होने लगी है। बहनोंको सावधान रहना चाहिये। यूरोपका दाम्पत्य-जीवन हमारा आदर्श कदापि नहीं है। वहाँकी ऊपरी चमक-दमक और स्त्रीस्वातन्त्र्यकी मधुर मोहनीमें कभी नहीं भूलना चाहिये। यूरोपकी स्त्रियाँ आजकल संतानोत्पादन और संतानके लालन-पालनतकको भाररूप समझकर मातृत्वका नाश करनेपर भी उतारू हो चली हैं। किसी वैराग्यसे नहीं, बेहद आरामतलबी और अनुचित विलासप्रियतासे! यूरोपका आदर्श हिन्दू ललनाओंके लिये बड़ा ही घातक है। सुधार, संस्कृति, शिक्षा, सभ्यता, उन्नति, प्रगति या क्रान्ति आदिके नामपर कहीं सर्वस्व-नाशकारी **'विषकुम्भं पयोमुखम्'** का प्रयोग न हो जाय! सावधान!

वास्तवमें नश्वर शरीरको सजाकर सुन्दर बननेकी लालसा तो हास्यास्पद ही है। इसमें कौन-सी वस्तु ऐसी है जो सुन्दर हो? घृणित वस्तुओंसे बने हुए इस ढाँचेको सजाना प्रमादके सिवा और कुछ भी नहीं है। शरीरके सजावटकी भावना इसी वासनाके कारण होती है कि 'दूसरोंमें मैं अच्छा दीखूँ।' इस भावनासे सुन्दर गहने-कपड़े पहनने न पहननेका उतना सम्बन्ध नहीं है, जितना मनका। सुन्दरता किसी वस्तुमें नहीं है, वह है अपने मनकी भावनामें, कोई बहन खूब गहनोंसे लदकर बाहर निकलनेमें अपनी शोभा समझती है तो कोई दूसरी तरहकी बाहरी टीप-टापमें समझती है अतएव बहनोंको मनसे विलासिता, फैशनका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

इसके सिवा जिस देशमें करोड़ों अपनेही-जैसे शरीरधारी भाई-बहनोंको पेटभर अनाज और लाज रखनेके लिये चार हाथ कपड़ा नहीं मिलता, उस देशके लोगोंको वास्तवमें गहने-कपड़ोंसे सज्जित होनेका धर्मतः अधिकार ही क्या है? शरीरको सुन्दर बनाने और दिखानेकी भावनाको हटाकर जगत्‌की परिमित और जहाँ-तहाँ बिखरी हुई अल्प सुन्दरताका मोह छोड़कर उस सुन्दरताकी खान सर्वव्यापी, सबके अधिष्ठान, अतुलित-सुन्दर परमात्माके प्रति मन लगाना चाहिये, जिसकी सुन्दरताका एक परमाणु पाकर जगत्‌के असंख्य नर-नारी सौन्दर्यके मदमें मतवाले हो रहे हैं—जिस प्रेमसिन्धुकी एक बूँदसे जगत्‌में, माता-पिताका संतानमें, गुरुका शिष्यमें, स्त्रीका स्वामीमें, स्वामीका स्त्रीमें, मित्रका मित्रमें, भ्रमरका गन्धमें, चकोरका चन्द्रमामें, चातकका मेघमें, कमलका सूर्यमें—इन नानारूपों और नामोंमें बँटकर भी जो प्रेम नित्य-नया बन रहा है, अनादिकालसे अबतक चला आ रहा है, तथापि यह प्रेम कभी पुराना नहीं होता!

हम सबको उस परमात्माकी ओर लगनेकी ही चेष्टा करनी चाहिये। एक दिन इस शरीरको अवश्य छोड़ना होगा, उस समय सब नाते छूट जायँगे। सबसे सम्बन्ध टूट जायगा। जगत्‌का सम्बन्ध अल्प और अनित्य है, वास्तवमें नाटकवत् है। यहाँ तो बड़ी सावधानीसे रहना चाहिये। जैसे नाटकका पात्र नाटककी किसी भी वस्तुको, यहाँतक कि पोशाकको भी अपनी न समझकर रंगमंचपर अपने स्वाँगके अनुसार सावधानीसे अभिनय करता है, जैसे चतुर और ईमानदार नौकर सचेत और धर्मपर डटा रहकर मालिकका काम करता है, उसी प्रकार परमात्माके नाट्यमंच इस जगत्‌में हमलोगोंको इस जगन्नाटकके उस एकमात्र स्वामी और सूत्रधार प्रभुकी आज्ञानुसार उसीके लिये, उसीकी शक्तिके सहारे, उसीके गुणोंका स्मरण करते हुए, अपना-अपना कर्तव्यकर्म बड़ी सावधानीसे निर्लेप रहकर करना चाहिये। जिसके जिम्मे जो काम हो वह वही करे, पर करे प्रभुके लिये और प्रभुका समझकर, किसी भी वस्तुपर अपनी सत्ता न समझे, यहाँतक कि अपनेपर भी अपनी सत्ता नहीं! भगवान्‌की इस आज्ञाको सदा स्मरण रखना चाहिये—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

तुम्हारे सब सांसारिक बन्धन और सम्बन्ध तुम्हें चिन्ता और दुर्भाग्यके वशमें डालते हैं, उनसे ऊपर उठो। सत्यमें विश्वास करो। ईश्वरसे अपनी एकताका अनुभव करो, बस तुम्हारा निस्तार है। तुम स्वयं मोक्षरूप हो।

—स्वामी रामतीर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजनका स्वरूप और आनन्द

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

भगवान्‌का भजन करना इस मनुष्य-शरीरका सर्वोपरि करणीय कार्य है। इससे श्रेष्ठ कार्य अन्य कुछ भी नहीं है। विषय-भोग तो पशु-पक्षी आदि योनियोंद्वारा ही भोगे जाने योग्य हैं। यह महान् दुर्लभ एवं अमूल्य मनुष्य-शरीर विषय-भोगोंके लिये कथमपि नहीं है। श्रीमद्भागवत (५ । ५ । १) में श्रीऋषभदेवजी कहते हैं—

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥

'पुत्रो ! इस मर्त्यलोकमें यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करनेके लिये ही नहीं है। ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं। इस शरीरसे दिव्य तप ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो; क्योंकि इसीसे अनन्त ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है।'

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज भी यही कहते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
(रा० च० मा० ७। ४४। १-२)

नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी । ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं । कर ते डारि परस मनि देहीं॥
(रा० च० मा० ७। १२१। ९—१२)

'भगवान्‌का भजन करना ही इस मनुष्य-शरीरका एकमात्र कर्तव्य है'—यह निश्चित हो जानेपर यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि भजनका वास्तविक स्वरूप क्या है ? भजन किसे कहते है ?

संस्कृतके '**भज सेवायाम्**'—इस धातुसे 'भजन' शब्दकी निष्पत्ति होती है। अतः भजनका वास्तविक अर्थ है भगवान्‌की सेवा करना। सेवा तभी पूर्ण होती है जब वह स्वयंके द्वारा तथा स्वयंके माने जानेवाले शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदिके द्वारा पूर्ण समर्पण-भावसे की जाय। इस प्रकार स्वयंको पूर्णरूपसे भगवान्‌की सेवामें समर्पित कर देना ही सच्चा भजन है। 'मैं एकमात्र भगवान्‌का हूँ तथा केवल एक भगवान् ही मेरे हैं'—ऐसा दृढ़तापूर्वक मानकर अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर देना ही स्वयंके द्वारा भगवान्‌की सच्ची सेवा है। ऐसा होनेके पश्चात् मन, बुद्धि, इन्द्रियों, शरीर आदिके द्वारा भी स्वतः ही भगवान्‌की सेवा होने लगती है।

मनका कार्य मनन करना है। अतः मनके द्वारा भगवान्‌के परम दिव्य सौन्दर्य—माधुर्यसार-सर्वस्व, योगीन्द्र-मुनीन्द्र-चित्ताकर्षक श्रीविग्रहका चिन्तन-मनन-ध्यान करना मनके द्वारा भगवान्‌की सेवा करना है।

बुद्धिका कार्य है निश्चय करना। अतः यह निश्चय करना कि 'मैं केवल भगवान्‌हीका हूँ तथा उन्हींको प्राप्त करना मेरा एकमात्र कर्तव्य है—बुद्धिके द्वारा भगवान्‌की सेवा करना है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि बुद्धिको भगवान्‌की सेवामें पहले लगाना पड़ता है। तत्पश्चात् मन भगवान्‌की सेवामें लगता है; क्योंकि बुद्धि मनसे अधिक बलवान् है (गीता ३। ४२)। जो साधक बुद्धिको न लगाकर पहले मनको भगवान्‌में लगानेकी चेष्टा करते हैं, उनको प्रायः क्लेश एवं असफलता ही हाथ लगती है। बुद्धिको भगवान्‌में लगानेके पश्चात् मन अपने-आप ही भगवान्‌में लग जाता है। एतदर्थ दूसरा प्रयास नहीं करना पड़ता। 'मन वशमें नहीं होता'—यह व्यापक धारणा इस तथ्यको यथार्थतः नहीं समझनेका ही परिणाम है।'

पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी, जीव-जंतु आदिसे भरा हुआ यह सम्पूर्ण जड-चेतन संसार भगवान्‌हीका स्वरूप है। 'स्वयं भगवान् ही इस संसारके रूपमें प्रकट हैं'—ऐसा मानकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी सेवा करना शरीर एवं इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करना है। यह भगवान्‌की बहुत ही मूल्यवान् सेवा है। 'यह सब कुछ भगवान् ही है'—ऐसा दृढ़तापूर्वक माननेवाला महात्मा पुरुष बहुत दुर्लभ है।—यह बात स्वयं भगवान्‌हीने कही है—'**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥**' (गीता ७ । १९) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज भी इस सेवाको अनन्यभक्तका प्रमुख लक्षण बताते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(रा० च० मा० ४ । ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवत (११ । २ । ४१)-में भी भक्तके अनन्य भगवद्भावको बताते हुए कहा गया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

अर्थात् 'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सब-के-सब भगवान्के शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं। ऐसा समझकर वह भक्त जो कोई भी उसके सामने आ जाता है—चाहे वह प्राणी हो या अप्राणी—उसे अनन्यभावसे भगवद्भावसे प्रणाम करता है।'

वाणीसे भगवान्के नामका जप करना भजनका सर्वोपरि रूप है—यह निःसंदिग्धरूपसे कहा जा सकता है। इस रूपमें भजनके अन्य सभी रूपोंका सहज ही समावेश किया जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि नाम-जपके निरन्तर अभ्याससे भजनके दूसरे सभी रूपोंका स्वतः ही प्राकट्य हो जाता है। शास्त्रोंमें नाम-महिमा विपुलमात्रामें भरी पड़ी है।

श्रीभगवान्का परम पवित्र नाम अमृतमय, अमृतस्वरूप ही है। इसकी रचना अमृतसे ही हुई है। इसके अणु-अणुमें अमृत ही सिंचित है—'**नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी।**'

अतः प्रत्येक क्षण इस अमृतमय भगवन्नामका पान करना चाहिये। इस अमृतमय भगवन्नाम-जपसे ही अमृत-स्वरूप भगवान्की प्राप्ति होती है। जो क्षण इस भगवन्नाम-रूपी अमृत-पानसे रहित चला गया, वही व्यर्थ है।

भगवन्नाम-जपमें तीन बातें होनी चाहिये—

(१) जप निरन्तर हो।

(२) जपमें रसका अनुभव हो।

(३) जप भगवान्के ध्यानसहित हो।

साधक जपके पीछे जीवनको लगा दे। उकताये नहीं, बस, लगा रहे। जहाँ निरन्तर जपका तार नहीं टूटेगा, समझो कि वहाँ साध्यकी प्राप्ति होते विलम्ब नहीं होगा।

जिन्हें भजनका चस्का लग जाता है, वे मुक्तिकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। वे तो यही चाहते हैं कि उनके लाखों जन्म हों तथा निरन्तर भजनका आनन्द लूटते रहें।

भजन करनेपर मुक्ति भक्तके पीछे-पीछे फिरती है, किंतु भक्त मुक्तिसे दूर ही रहना चाहता है—

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
(रा० च० मा० ७ । ११९ । ७)

भजनका आनन्द मुक्तिके आनन्द—ब्रह्मानन्दको भी अत्यन्त तुच्छ बना देता है। ज्ञानिशिरोमणि श्रीजनकजी एवं ब्रह्मविद्वरिष्ठ सनकादि-जैसे महात्मागण प्रेममूर्ति श्रीभगवान्के दर्शन करनेपर अपने ब्रह्मानन्दको भूलकर भगवत्प्रेम-प्रवाहमें बह जाते हैं। भगवान्के दर्शन करनेपर जनकजी अपने-आपको सँभाल नहीं सके। उन्होंने अपने ज्ञान-वैराग्यकी सहायतासे मनको रोकनेकी भरपूर चेष्टा की, किंतु परम दिव्य भगवत्सौन्दर्यके आगे होते ही ज्ञान-वैराग्यकी शुष्कता भगवत्प्रेम-माधुरीसे आवेष्टित हो गयी। स्वाभाविकरूपसे वैराग्यसम्पन्न जनकजी भगवत्सौन्दर्यमें आसक्त हो गये। निश्चय ही यह आनन्द ब्रह्मानन्दसे बड़ा है। नहीं तो जनकजी महान् ब्रह्मानन्दको भूलकर इस परमदिव्य भगवत्सौन्दर्यानन्दमें क्यों डूबते ?

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
(रा० च० मा० १ । २१५ । ८)

प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृप कुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सति भाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
(रा० च० मा० १। २१६। १—५)

अहा ! कितनी मधुरिमा है इस सौन्दर्य-सुधामें, जिसके आगे परम प्रापणीय ब्रह्मानन्द भी तुच्छ हो गया ! मति डोल गयी, सुदृढ़ वैराग्य भी अन्तर्हित हो गया। भगवान्के प्रबल आकर्षक मन्मथ-मन्मथ दिव्य सौन्दर्यके आगे ऐसी ही विलक्षण स्थिति आत्मनिष्ठ सनकादिकी हुई थी।

.... चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥
(श्रीमद्भा० ३ । १५ । ४३)

भगवद्दर्शनका यह परम दिव्य आनन्द प्राप्तकर हम धन्य-धन्य, कृतकृत्य बनें—ऐसी आकांक्षा हम सभीके मनमें उदित हो—प्रभुके चरणकमलोंमें यही प्रार्थना है—

कारुण्यकर्बुरकटाक्षनिरीक्षणेन
तारुण्यसंवलितशैशववैभवेन।
आपुष्णता भुवनमद्भुतविभ्रमेण
श्रीकृष्णचन्द्र शिशिरीकुरु लोचनं मे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

अपने प्रभुको कैसे पहचानें?

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

संतोंने कहा है—

सब जग ईश्वर रूप है, भलो बुरो नहिं कोय।
जैसी जाकी भावना, तैसो ही फल होय॥

यह सम्पूर्ण संसार साक्षात् परमात्माका स्वरूप है। इसमें भला-बुरा, अच्छा-मन्दा, गुण-दोष आदि दो चीजें हैं ही नहीं। रामायणमें आया है—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

(मानस, उत्तर० ४१)

तात्पर्य है कि गुण और दोष मायाकृत हैं, भगवान्‌में नहीं हैं। जो लोग मायासे मोहित हैं, उन्हींकी दृष्टिमें ये दोनों भगवान्‌में दीखते हैं। गुण-दोषवाला गुण असली नहीं है। असली गुण है—गुण और दोष दोनोंको ही न देखना—*'गुन यह उभय न देखिअहिं'*। इन दोनोंको देखना अविवेक है।

'गुन यह उभय न देखिअहिं' के दो अर्थ होते हैं—(१) गुण और दोषको न देखकर गुण-ही-गुण देखना, और (२) गुण और दोषको न देखकर परमात्माको ही देखना, जो कि गुण-दोषसे रहित और गुणातीत है। गुण और दोषको देखना अविवेक है, अज्ञान है, मूर्खता है, जड़ता है—*'देखिअ सो अबिबेक'*। कारण कि वास्तवमें संसार साक्षात् भगवान् ही है—*'सब जग ईश्वररूप है'*। यह ईश्वरका सर्वोपरि रूप है! ईश्वर भला और बुरा—दो नहीं हो सकता। ईश्वर एक ही होता है।

भगवान् गीतामें कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(४। ११)

'जो जिस भावसे मेरा भजन करते हैं, मैं भी उसी भावसे उनका भजन करता हूँ।'

अतः हम भले और बुरे—दो रूपोंको देखते हैं तो भगवान् भी भले और बुरे-दो रूपोंसे प्रकट हो जाते हैं, और हम भले-बुरेको न देखकर भगवान्‌को देखते हैं तो भगवान् भी अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो जाते हैं—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

(मानस, बाल० २४१। २)

एक संत थे। कोई उनसे कहता कि 'महाराज! आप तो बहुत बड़े महात्मा हैं' तो वे कहते—'रामजी!' कोई कहता कि आप बड़े ठग हैं' तो वे कहते—'रामजी!' कोई कहता कि 'आप तो बड़े अच्छे हैं।' तो वे कहते—'रामजी!' कोई कहता कि 'आप तो बहुत बुरे हैं' तो वे कहते—'रामजी!' तात्पर्य है कि सब कुछ रामजी ही हैं, फिर उसमें क्या अच्छा और क्या बुरा? *'जैसी जाकी भावना, तैसो ही फल होय'*। भावना ही करनी हो तो बढ़िया भावना करें, घटिया भावना क्यों करें? मनके लड्डू बनायें तो उसमें घी और चीनी कम क्यों डालें? इसमें कौन-सा खर्चा लगता है? इसलिये बढ़िया-से-बढ़िया भावना करनी चाहिये। वह बढ़िया-से-बढ़िया भावना है—**'वासुदेवः सर्वम्'** अर्थात् सब कुछ परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। यह कोरी भावना ही नहीं है, प्रत्युत वास्तविकता है। इसको स्वीकार करनेमें न तो कोई परिश्रम करना पड़ता है और न अपनेमें कोई विशेष योग्यता लानी पड़ती है, फिर इसको माननेमें क्या बाधा है? यह सरल-से-सरल और ऊँचा-से-ऊँचा साधन है।

प्रश्न—संसारमें कोई दुराचारी दीखे तो उसको भगवत्स्वरूप कैसे मानें?

उत्तर—ऐसा मानना चाहिये कि वे भी भगवान् ही हैं, पर अभी कलियुगकी लीला कर रहे हैं। अभी कलियुग है, इसलिये वे युगके अनुसार लीला करते हैं। भगवान्‌ने वराहरूप धारण किया तो वराहकी तरह ही आचरण किया। वराह भगवान्‌को देखकर हिरण्याक्ष उनको 'वनगोचर मृग' (जंगली जानवर) कहकर पुकारता है और भगवान् उसको 'ग्रामसिंह' (कुत्ता) कहकर पुकारते हैं (श्रीमद्भा० ३। १८। २,१०)। वे जैसा रूप धारण करते हैं, वैसी ही लीला करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—संसारको परमात्माका स्वरूप भी कहते हैं और दु:खोंका घर भी कहते हैं—'**दु:खालयमशाश्वतम्**' (गीता ८। १५)। अगर यह परमात्माका स्वरूप है तो दु:खोंका घर कैसे और दु:खोंका घर है तो परमात्माका स्वरूप कैसे?

उत्तर—ये दोनों बातें ठीक हैं। जो संसारसे कुछ नहीं चाहता, प्रत्युत दूसरोंकी सेवा करता है, उनको सुख देता है, उसके लिये संसार परमात्माका स्वरूप है और जो संसारसे सुख लेना चाहता है, उसके लिये संसार दु:खोंका घर है। सुख चाहनेवालेको दु:ख मिलेगा ही—यह अकाट्य नियम है।

भक्तियोगकी दृष्टिसे सब संसार भगवान्का स्वरूप है और ज्ञानयोगकी दृष्टिसे संसार असत्, जड़ तथा दु:खरूप है। ज्ञानयोगमें विवेक मुख्य रहता है और विवेकमें सत्-असत्, जड़-चेतन, नित्य-अनित्य, नाशवान्-अविनाशी दोनों रहते हैं। विवेकी पुरुष संसारको दु:खरूप मानकर उसका त्याग करता है—'**दु:खमेव सर्वं विवेकिन:**' (योगदर्शन २। १५)। इसलिये ज्ञानकी दृष्टिसे संसारका त्याग करना है और भक्तिकी दृष्टिसे सबको भगवत्स्वरूप मानकर प्रणाम करना है। भागवतमें आया है—

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। १६)

'अपने ही लोग यदि हँसी करें तो करने दे, उनकी परवाह न करे, 'मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है'—ऐसी देहदृष्टिको और लोकलज्जाको छोड़कर कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधेको भी पृथ्वीपर लम्बा गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करे।'

भक्त कुत्ते, चाण्डाल आदिको प्रणाम नहीं करता, प्रत्युत उन रूपोंमें आये भगवान्को प्रणाम करता है। जब भगवान् राम भरद्वाजजीसे मिलते हैं, तब भरद्वाजजी भगवान्को प्रणाम करते हैं और भगवान् भरद्वाजजीको प्रणाम करते हैं—

मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥

(मानस, अयोध्या० १०८। २)

भगवान् राम तो क्षत्रिय होनेसे ब्राह्मणको प्रणाम करते हैं और भरद्वाजजी भक्त होनेसे भगवान्को प्रणाम करते हैं। इस प्रकार एक-दूसरेको प्रणाम करनेसे उनको अलौकिक, विलक्षण आनन्द मिलता है! इसी तरह संसारमें अनेक रूपोंसे प्रकट हुए भगवान्को प्रणाम करके आनन्दित होना चाहिये। संसारमें जो कुछ भी है, वह सब भगवान्का ही शरीर है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, जीव-जन्तु, दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ, समुद्र—सब-के-सब भगवान्के ही शरीर हैं—ऐसा मानकर भक्त सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करता है।'

चाहे अद्वैतवाद मानें, चाहे विशिष्टाद्वैतवाद मानें, चाहे द्वैतवाद मानें, चाहे द्वैताद्वैतवाद मानें, चाहे शुद्धाद्वैतवाद मानें, चाहे अचिन्त्य भेदाभेदवाद मानें, सबमें परमात्मा एक ही हैं। परमात्माको चाहे द्विभुजी मानें, चाहे चतुर्भुजी मानें, चाहे सहस्रभुजी (विराट्रूप) मानें, चाहे साकार मानें, चाहे निराकार मानें, चाहे नराकार (राम,कृष्ण आदि) मानें, चाहे नीराकार (गङ्गाजी) मानें, चाहें निर्गुण मानें, चाहे सगुण मानें, परमात्मा तो एक ही हैं। वे एक ही परमात्मा अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं। सब-के-सब रूप एक ही समग्र परमात्माके अङ्ग हैं। किसी भी एक अङ्गको पकड़ लें तो समग्र परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। परमात्माके एक नामको ही पकड़ लें, तो उसीसे समग्र परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी!

परमात्मा पूर्ण हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ परमात्मा न हों—

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

'वे परमात्मा सब जगह हाथों और पैरोंवाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखोंवाले तथा सब जगह कानोंवाले हैं। वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलम और स्याहीमें किस जगह कौन-सी लिपि नहीं है? जानकार आदमी उस एक ही कलम और स्याहीसे अनेक लिपियाँ लिख देता है। सोनेकी डलीमें किस जगह कौन-सा गहना नहीं है? सुनार उस एक डलीमेंसे कड़ा, कण्ठी, हार, नथ आदि अनेक गहने निकाल लेता है। इसी तरह लोहेमें किस जगह कौन-सा अस्त्र-शस्त्र नहीं है? मिट्टी और पत्थरमें किस जगह कौन-सी मूर्ति नहीं है? ऐसे ही भगवान्‌में किस जगह क्या नहीं है? भगवान्‌से ही यह सब सृष्टि पैदा हुई है और अन्तमें उसीमें लीन हो जाती है। पहले भी वही है, पीछे भी वही है, फिर बीचमें दूसरी चीज कैसे आये, कहाँसे आये? इस बातको दृढ़तासे स्वीकार कर लें, तो फिर भगवान् दीखने लग जायँगे; क्योंकि वास्तवमें हैं ही वही!

जैसे, मिट्टीसे पैदा होनेवाली सब चीजें मिट्टी ही होती हैं। इसकी परीक्षा करनी हो तो लोहेकी एक परात लें। उसमें सूखी मिट्टी तौलकर डाल दें। फिर उसमें गेहूँ भी तौलकर बो दें और जल डालते रहें। कुछ दिनोंमें गेहूँके पौधे हो जायँगे। अब मिट्टीको तौलकर देखें तो मिट्टी कम निकलेगी। परंतु मिट्टीके साथ-साथ गेहूँके पौधोंको भी तौलें तो कुल वजन उतना ही निकलेगा, जितना पहले केवल मिट्टीका था। इससे यह सिद्ध हुआ कि जितनी मिट्टी कम हुई थी, उतनी पौधोंके रूपमें परिणत हो गयी थी। अतः गेहूँके पौधे मिट्टी ही हुए! गेहूँको खा लें अथवा पीस दें तो वे मिट्टी ही हो जायँगे। ऐसे ही हमारे शरीर भी मिट्टीके ही बने हुए हैं और अन्तमें मिट्टीमें ही मिल जायँगे। इसी तरह यह सब संसार परमात्मासे हीं बना हुआ है। अतः कोई-सा भी रूप दीखे, वह परमात्मा ही है—ऐसा दृढ़तापूर्वक मान लें तो असली ज्ञान हो जायगा। कितना सुगम और सरल साधन है।

एक बाबाजी कहीं जा रहे थे। रास्तेमें एक खेत आया। बाबाजी वहाँ लघुशंकाके लिये बैठ गये। पीछेसे खेतके कृषकने उनको देखा तो समझा कि हमारे खेतमेंसे मतीरा चुराकर ले जानेवाला यही है। उसने पीछेसे आकर बाबाजीके सिरपर लाठी मारी और बोला—'हमारे खेतसे मतीरा चुराता है?' बाबाजी बोले—'भाई! मैं तो लघुशंका कर रहा था!' कृषकने बाबाजीको देखा तो बहुत दुःखी हुआ और बोला—'महाराज! मेंरेसे बड़ा कसूर हो गया! मैं समझा था कि यह मतीरा चुरानेवाला है।' बाबाजी बोले—'तेरा कसूर है ही नहीं; क्योंकि तूने तो चोरको मारा है, मेंरेको थोड़े ही मारा है! क्या तूने साधु समझकर मारा है?' कृषक बोला—'नहीं महाराज, चोर समझकर मारा है। अब मैं क्या करूँ?' बाबाजी बोले—'जिसमें तेरी प्रसन्नता हो, वह कर।' बाबाजीके सिरमें लाठी लगनेसे रक्त निकल रहा था और पीड़ा हो रही थी। कृषक उनको गाड़ीपर बैठाकर अस्पताल ले गया और वहाँ भरती कर दिया। वहाँ उनकी मलहम-पट्टी करके उनको सुला दिया। थोड़ी देर बाद एक नौकर दूध लेकर आया और बाबाजीसे बोला—'महाराज! यह दूध लाया हूँ, पी लीजिये।' बाबाजी पहले हँसे, फिर बोले—'वाह! वाह! तू बड़ा विचित्र बहुरूपिया है, पहले लाठी मारता है, फिर दूध पिलाता है!' वह आदमी बोला—'महाराज! मैंने लाठी नहीं मारी है, लाठी मारनेवाला दूसरा था!' बाबाजी बोले—'नहीं, मैं तुझे पहचानता हूँ, लाठी मारनेवाला तू ही था। तेरे सिवाय दूसरा कौन आये, कहाँसे आये और कैसे आये? बता! यह केवल तेरी ही लीला है!' इस प्रकार बाबाजीकी दृष्टि तो '**वासुदेवः सर्वम्**' पर थी, पर वह आदमी डर रहा था कि बाबाजी कहीं मेंरेको फँसा न दें! तात्पर्य है कि सब रूपोंमें भगवान् ही हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(मानस, बाल० ८। १)

भगवान्‌के एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं—

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(मानस, बाल० २०१)

वास्तवमें उन ब्रह्माण्डोंके रूपमें भगवान् ही प्रकट हुए हैं! इस वास्तविक बातको स्वीकार करनेके लिये न कोई पोथी पढ़नी है, न कोई ध्यान करना है, न कोई चिन्तन करना है, न श्रवण-मनन-निदिध्यासन करना है, न आँख मीचनी है, न योगाभ्यास करना है, न प्राणायाम करना है, न जंगलमें जाना है, न गुफामें जाना है, न हिमालयमें जाना है! केवल अनेक रूपोंमें आये अपने प्यारे प्रभुको पहचान लेना है और मस्त रहना है अथवा प्रभुकी दी हुई शक्तिसे जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि सब कुछ उन्हींके लिये करना है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—'सब कुछ परमात्मा ही हैं' इसको ठीक तरहसे मान लिया तो क्या अब कुछ करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहा?

उत्तर—यदि 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'— इसका अनुभव हो गया है, तब तो ठीक है, नहीं तो केवल सीख लिया है। सीखी हुई बातसे लाभ नहीं होता, उल्टे पतन हो जाता है। सीखनेसे अभिमान हो जाता है, जिससे मनुष्य अपनेको ज्ञानी और दूसरोंको अज्ञानी समझता है। इससे दूसरोंके प्रति द्वेष, घृणा, क्रोध पैदा होता है, जबकि '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव होनेपर किसीके भी प्रति द्वेष, वैर, घृणा, क्रोध आदि नहीं होते*।

जैसे हमें 'मैं हूँ'—इस प्रकार अपने होनेपनका स्पष्ट अनुभव होता है, इसमें कभी किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं होता, ऐसे ही 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—इसका स्पष्ट अनुभव होना चाहिये। ऐसा अनुभव होनेपर संसारका राग, सुखासक्ति सर्वथा मिट जाती है और संसार संसाररूपसे रहता ही नहीं, प्रत्युत भगवत्स्वरूप ही हो जाता है। मैं-तू, यह-वह कुछ नहीं रहता, केवल भगवान्-ही-भगवान् रहते हैं। ऐसा अनुभव करनेके लिये भगवान्में अपनी स्थिति नहीं करनी है, प्रत्युत अपने-आपको भगवान्के समर्पित कर देना है। अगर उसमें अपनी स्थिति करेंगे तो अहम् (स्थिति करनेवाला) बना रहेगा। इसलिये '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव करनेमें शरणागति मुख्य है। शरणागतिमें साधक पहले भगवान्के आश्रित होता है, फिर उसीमें मिल जाता है। जैसे, पहले कन्याका विवाह होता है, फिर वह अपने गोत्रको छोड़कर पतिके गोत्रवाली हो जाती है। ऐसे ही पहले भक्त 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इस प्रकार भगवान्के आश्रित होता है, फिर उसके शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-अहम् सब भगवान्में लीन हो जाते हैं अर्थात् केवल भगवान्-ही-भगवान् रह जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें, पहले साधक 'मैं' और 'मेरा' को छोड़कर 'तू' और 'तेरा' को स्वीकार करता है, फिर केवल तू-ही-तू रह जाता है। यही '**वासुदेवः सर्वम्**' है।

श्रीमद्भागवतमें श्रीराम-तत्त्व तथा राम-कथा

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

श्रीमद्भागवत, साक्षात् ब्रह्मविद्याका ही कथात्मक समुपबृंहण है। श्रुतिप्रतिपादित परम सत्यका आद्यन्त अनुध्यान करते हुए[1] भगवान् व्यासजीने इसमें निर्गुण, सगुण, जीवरूप तथा जगदात्मक—इन चार रूपोंमें ब्रह्मतत्त्वका निरूपण किया है।[2] इस दृष्टिसे सगुण-साकारके साथ-साथ निर्गुण-निराकार पर-तत्त्वका भी इसमें पर्याप्त विवेचन हुआ है, फिर भी प्रधानता, श्रीहरिके पावन अवतारों तथा उनकी लीला-कथाओंकी ही है।[3] अवतारोंमें मुख्यरूपसे प्राणिमात्रकी प्रीतिके परमाश्रय लीला-पुरुषोत्तम व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी रसमयी लीलाओंका विशेष उपनिबन्धन प्राप्त होनेसे यह कृष्णकथाका ही आकर-ग्रन्थ माना है। एक दृष्टिसे यह समीचीन भी है, किंतु भगवान्के अन्य अवतारोंकी कथाएँ भी इस महापुराणमें कम आवर्जक तथा सरस नहीं हैं। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी पावन कथा तथा उनकी भगवत्स्वरूपताके प्रतिपादक अन्य संदर्भ, भागवतकारकी श्रीराम और राम-कथाके प्रति तात्त्विक दृष्टिका परिचय देते हैं। सर्वप्रथम भगवदवतारोंके परिगणन-प्रसंगमें प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायमें श्रीरामावतारकी चर्चा इस प्रकार प्राप्त होती है—

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम्॥

*उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ (मानस, उत्तर० ११२ (ख))

१-सत्यं परं धीमहि। (श्रीमद्भा० १। १। १ तथा १२। १३। १९)

२-निर्गुणं सगुणं जीवसंज्ञितं जगदात्मकम्। एचच्चतुर्विधं ब्रह्म श्रीमद्भागवते स्फुटम्॥ (श्रुतिकल्पलताका उपोद्घात)

३-तथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः॥ (श्रीमद्भा० १। १। १८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उन्हीं परम पुरुषने (त्रेतायुगमें भू-भारहरणरूप) देवताओंका कार्य करनेकी इच्छासे नरदेव (राजाके) रूपमें अवतार धारण किया तथा समुद्रबन्धन (रावणवध) आदि पराक्रम करके संसारका कष्ट दूर किया।

इसके अनन्तर पञ्चम स्कन्धके भूगोल-वर्णन-प्रसंगमें श्रीशुकदेवजीने किम्पुरुषवर्षमें श्रीआञ्जनेयद्वारा नित्यसेवित भगवान् श्रीसीतापतिकी उपासना निरूपित करते हुए उनके तत्त्वका सांकेतिक वर्णन किया है—

'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते।... गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति....।'

(श्रीमद्भा० ५ । १९ । १-२)

यहाँ श्रीहनुमान्जीद्वारा की जानेवाली नित्य रामोपासनाके मन्त्र और स्तुति भी प्राप्त होते हैं, जिनसे श्रीरामकी उपासना-विधि तो उद्घाटित होती ही है, उनके नित्यस्वरूप एवं गुण-समूहका वास्तविक रहस्य भी अधिकारियोंके समक्ष अनावृत हो जाता है। वे मन्त्रवर्ण और स्तुतिपद्य इस प्रकार हैं—

श्रीरामोपासनाका मन्त्र

'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।' (श्रीमद्भा० ५ । १९ । ३)

'हम ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं, आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मण-भक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।'

इस मन्त्रमें श्रीराघवेन्द्रकी समस्त चारित्र्यसम्पत्तिका सूत्रात्मक संग्रथन करके उनके महापुरुष एवं लोकशिक्षक-स्वरूपके प्रति प्रणति व्यक्त की गयी है। श्रीरामकी इस महापुरुषतापर भागवतकार इतने विमुग्ध हैं कि एकादश स्कन्धमें आपाततः प्रसंग न होनेपर भी वे गा उठते हैं—

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(११ । ५ । ३४)

अर्थात् 'देवदुर्लभ राज्यलक्ष्मीका परित्याग करके जो परमधर्मशील अपने पिताकी आज्ञासे वनमें चले गये, वहाँ अपनी प्रिया श्रीजनकनन्दिनीकी रुचिका पोषण करने-हेतु मायामृगके पीछे (सब कुछ जानते हुए भी) जिन्होंने अनुधावन किया, ऐसे हे महापुरुष श्रीराम ! मैं आपके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ।'

श्रीरामकी हनुमत्कृतस्तुति

हनुमान्जीके द्वारा प्रथित इस स्तुतिमें पाँच पद्य हैं। इनमेंसे प्रथममें श्रीरामको विद्वज्जनाराध्य प्रत्यगात्मा, ज्योतिरूप तथा ज्ञानमय ब्रह्म प्रतिपादित करते हुए आगेके पद्योंमें उनके इस अवतारको लोकशिक्षण-हेतु एक नर-नाट्यकी संज्ञा दी गयी है, अन्यथा उन पूर्णकाम आत्मारामको प्रियावियोगादिजन्य कष्ट क्या पीड़ित कर सकते हैं ? क्या उन्हें अपने साहाय्यके लिये वानर-भालुओंकी सेना जुटानेकी आवश्यकता थी?

वस्तुतः उनका यह मनुष्यावतार अपनेको सभी प्रकारकी कसौटीमें कसकर खरा दिखाते हुए मनुष्यमात्रके शिक्षण-हेतु रचा गया एक संविधानक मात्र था। स्तुतिका भाव इस प्रकार है—

भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जाने योग्य, नाम-रूपसे रहित और अहङ्कारशून्य हैं, मैं आपकी शरणमें हूँ। प्रभो ! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था। आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासुदेव हैं, त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं। आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज ! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है। देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये, क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे। (श्रीमद्भा० ५। १९। ४—८)

श्रीमद्भागवतमें रामकथाका स्वरूप

श्रीमद्भागवतमें नवम स्कन्धके दशम तथा एकादश—इन दो अध्यायोंमें श्रीरामोपाख्यान उपवर्णित हुआ है। दशम अध्यायमें साक्षात् ब्रह्ममय श्रीहरिका महाराज दशरथके घरमें राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्राकट्य, विश्वामित्र-मख-रक्षण, सीता-स्वयंवर, धनुर्भङ्ग, परशुरामानुशासन, पिताकी आज्ञासे वनगमन, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषणादि-वध, मायामृग-प्रसंग और जानकी-हरण, श्रीरामका विरह, कबन्ध-वध, वानर-मैत्री, वालि-वध, समुद्रशासन, सेतु-बन्धन, लंकादाह आदि प्रसंगोंके साथ सम्पूर्ण रक्षोमण्डलीके सहित लोकरावण—रावणके वधके अनन्तर वैदेहीकी अग्निपरीक्षा आदि सभी प्रसिद्ध कथाएँ संकेतित हैं—यहीं श्रीरामके राज्याभिषेक तथा उनके मधुर दाम्पत्यका भी सुललित चित्रण संक्षेपमें प्राप्त होता है।

एकादश अध्यायमें श्रीरामायणकी उत्तरकथा अर्थात् श्रीसीताविषयक लोकापवाद, सीताजीको स्वयं परम पवित्र जानते हुए भी श्रीरामद्वारा उनका परित्याग, सीताजीका महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें निवास, कुश-लव-जन्म, शत्रुघ्नद्वारा लवणासुरका वध और अन्तमें भगवती सीताका पाताल-प्रवेश आदि सभी वृत्तान्त संक्षेपमें वर्णित हुए हैं।

श्रीरामायणी कथाके इस वर्णन-क्रममें भागवतकारने मर्यादापुरुषोत्तमके पावन चरित्रको मुख्यतः लोकशिक्षण-हेतु विनियुक्त माना है।

भगवान् श्रीराम इस विश्वके सर्वोत्कृष्ट लोकरञ्जक राजा हुए हैं। उन्होंने मानुषभावका अनुवर्तन करके संसारके कष्ट दूर किये—उसे सुख दिया, उसके अनन्त शल्योंका उत्खात किया, किंतु यह संसार उनका भी नहीं हो पाया। श्रीमद्भागवतकी रामकथाका यही मूलस्वर है, जिसे 'ज्ञप्तिदर्शन' की संज्ञा दी जा सकती है। श्रीरामचरितका अनुशीलन साधकको संसारकी असारताका परिज्ञान कराकर भगवत्प्रतीति एवं प्रीतिकी रसमयी साधनाकी ओर उन्मुख कर देता है। भागवतकारके मतमें श्रीराम-कथाकी यही फलश्रुति है—

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥
(श्रीमद्भा० ९ । ११ । २३)

शुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! इस पावन श्रीरामचरितको कानोंसे श्रवणकर और (हृदयमें) धारण करके मनुष्य इस संसारसे निर्विण्ण और उपशमशील होकर कर्मजालसे मुक्त हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें इस रामायणी कथाका उदात्त भाव अत्यन्त रमणीय तथा नित्य स्मरणीय है—

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥
(श्रीमद्भा० ९ । १० । ४)

अर्थात् पिताके आदेशका अनुपालन करते हुए प्रियाके कोमलपाणिपल्लवोंसे संलालित, सुग्रीव-लक्ष्मणादि-सेवित अपने चरणकमलोंद्वारा जिन्होंने वनभूमिको पवित्र किया, (अविद्यारूपिणी) शूर्पणखाको नासा-कर्ण-हीन बनाकर, भगवतीके वियोगसे उत्पन्न मन्युसे जिन्होंने वंकिम भृकुटि करके समुद्रको भी आकुल बनाकर उसमें सेतु बाँध दिया, रावणादि दुष्टजनरूपी अरण्यराशिको दग्ध करनेवाले अग्निस्वरूप वे कोसलवंशावतंस श्रीराम हमारी रक्षा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परदोष-दर्शन—घाटेका सौदा

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥
(मानस ७ । ५८)

गरुड़जी चिन्तामें पड़ गये यह सोचकर। कहने लगे—

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥
(मानस ७ । ६८ (ख))

कारण क्या है ?

जिनका नाम लेकर लोग भवबन्धनसे छूट जाते हैं, वे ही श्रीराम नागपाशमें बाँध लिये गये। मोह सताता है तो उसका निरसन होना ही चाहिये।

वे पहुँचे शिवजीके पास।

उन्होंने गरुड़जीको भेज दिया काकभुशुण्डिके पास सोचा—

समुझइ खग खगही कै भाषा॥
(मानस ७ । ६१ । ५)

× × ×

काकभुशुण्डिजीने अपने बुद्धिबलसे—ज्ञानसे श्रीराम-कथा कहकर, समझाकर गरुड़जीके मोहका निरसन कर दिया।

प्रसन्न हो गये गरुड़जी। पर फिर भी कुछ शंकाएँ तो बनी ही रह गयीं। अद्भुत गोरखधंधा होता है शंकाओंका। अन्ततोगत्वा लौटते-लौटते उन्होंने तकाजा कर ही तो दिया—

सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥
(मानस ७ । १२० । १)

और काकभुशुण्डिजी तो बैठे ही थे शंका-समाधानके लिये। गरुड़जीका पहला प्रश्न था—

कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥
(मानस ७। १२०। ३)

भुशुण्डिजीने उत्तर दिया—

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥
(मानस ७। १२०। ११)

अर्थात्—

अहिंसासे बढ़कर कोई पुण्य नहीं।

परनिन्दासे बढ़कर कोई पाप नहीं।

× × ×

भुशुण्डिजी इतना ही कहकर चुप नहीं हो गये।

उन्होंने निन्दकोंका श्रेणी-विभाजन भी कर दिया कि कौन प्रथम श्रेणी, कौन द्वितीय श्रेणी और कौन तृतीय श्रेणीमें है तथा उन्हें चित्रगुप्तके दरबारमें कैसा और क्या दण्ड मिलता है ! उन्होंने बताया कि किसे किस योनिमें और किस नरकमें जाना पड़ता है—

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥
(मानस ७। १२०। १२—१४)

मतलब ?

निन्दा आपने की कि नरकका दरवाजा खुला।

हरिकी निन्दा हो या हरकी, गुरुकी निन्दा हो या गोविन्दकी, सुरकी निन्दा हो या भूसुरकी, वेद-शास्त्रकी निन्दा हो या संत-महात्माकी अथवा किसीकी भी निन्दा हो—नरक तो भोगना ही पड़ेगा और नाना प्रकारकी योनियोंमें चक्कर भी लगाना पड़ेगा। कोई मेढक बनेगा तो कोई कौआ, कोई उल्लू बनेगा तो कोई चमगादड़।

इसीसे कहा गया है—

पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

× × ×

धर्मभीरु लोगोंकी बात तो निराली है। आधुनिक मानव 'अप-टू-डेट', 'माडर्न' मानव तो स्वर्ग और नरककी बातोंको हवामें उड़ा देता है। कहता है—तुम भी कहाँका पँवारा ले आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जानै को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधामको।

अजी छोड़ो इन दकियानूसी पुराणपंथी बातोंको। बेवकूफोंको बरगलानेके लिये ये अच्छी हैं। हमें तो प्रत्यक्ष व्यवहारकी बात जँचती है। निन्दासे तो हमें तत्काल लाभ दीखता है।

क्या खूब नगद सौदा है, उस हाथ दे, इस हाथ ले।

निन्दासे तो हमें प्रत्यक्ष लाभ होता है—अच्छी नौकरी मिल जाती है। नौकरीमें तरक्की हो जाती है। हमारा बॉस—मालिक हमसे प्रसन्न रहता है। हमारी आमदनी बढ़ती है। हमारा ठाट-बाट और वैभव बढ़ता है। परिणामस्वरूप समाजमें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ती है। चुनावमें खड़े होनेपर हमें अच्छे वोट मिलते हैं। हमारा रुतबा बढ़ता है। हमारा पद और सम्मान बढ़ता है—फिर हम यह बढ़िया फसल काटनेसे क्यो चूकें ? जिस सौदेमें हमें फायदा-ही-फायदा है, उसे हम क्यों छोड़ दें ?

× × ×

आजके जमानेमें निन्दासे बहुतोंको लाभ दीखता है।

पर वस्तुतः वह लाभ है नहीं।

मेरा कहना है कि निन्दा तो सर्वथा घाटेका सौदा है।

आप पूछेंगे—'सो कैसे ?'

तो सुनिये—

बात है सन् १८४२ के शरत्कालकी—अमेरिकाकी।

'स्प्रिंगफील्ड जर्नल' नामके समाचारपत्रमें एक गुमनाम चिट्ठी छपी। बड़ी चटपटी चिट्ठी थी वह।

जेम्स शील्ड्स नामक व्यक्तिकी बड़ी खिल्ली उड़ायी गयी थी उस चिट्ठीमें।

सारे नगरमें उस चिट्ठीकी ही चर्चा थी। लोगोंकी मुख्य वार्ताका विषय बन गयी वह चिट्ठी।

आयरिश राजनीतिज्ञ शील्ड्स आगबबूला हो गया उस चिट्ठीको पढ़कर। लेखकका पता लगना कठिन तो था, फिर भी उसने पता लगा ही लिया।

वह जा पहुँचा अब्राहम लिंकनके पास और जाते ही गरजा—'तुमने छपायी है यह गुमनाम चिट्ठी ?'

लिंकन कुछ जवाब दें, इसके पहले ही शील्ड्स गुर्राया—'तुम्हारी यह मजाल ? तुम्हें मुझसे द्वन्द्वयुद्ध करना पड़ेगा। अब या तो तुम्हीं रहोगे या मैं ही।'

लिंकनने लाख कोशिश की द्वन्द्व टालनेकी, पर शील्ड्स अड़ गया और बोला—'द्वन्द्व-युद्ध तो तुम्हें करना ही होगा। मैं छोड़नेवाला नहीं। बोलो, लड़नेके लिये कौन-सा शस्त्र चुनते हो ?'

लिंकनको आखिर चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। अपनी लंबी बाँहोंकी बात सोचकर उसने अश्वारोही चौड़ी तलवार पसंद की।

× × ×

असिकलामें लिंकन प्रवीण न था, पर मरता क्या न करता ? उसने एक प्रवीण व्यक्तिके पास जाकर तलवार चलानेकी कला सीख ली।

निश्चित तिथिपर मिसीसिपी नदीके तटवर्ती बालुका-क्षेत्रमें दोनों नौजवान दो-दो हाथ करनेके लिये आ पहुँचे।

भला हो उनके सहायकोंका, जिन्होंने ऐन मौकेपर दोनोंको समझा-बुझाकर इस द्वन्द्वको टाल दिया, वरना कौन कह सकता है कि लिंकनका क्या होता ? सम्भव था कि अमेरिका ऐसे उदार, दयालु और तेजस्वी राष्ट्रपतिकी सेवाओंसे वञ्चित रह जाता।

हाँ, इस द्वन्द्वने लिंकनको एक अविस्मरणीय पाठ पढ़ा दिया—

'भूलकर भी किसीकी निन्दा न करो—न मुँहसे, न कलमसे, न प्रकट रूपसे, न प्रच्छन्न रूपसे।'

उसो दिनसे लिंकनने अपने जीवनकी पटरी बदल दी।

उसने अपने-आपपर संयमकी ऐसी कड़ी बाड़ लगायी कि जब वह राष्ट्रपति बना और गृहयुद्धमें जब एक-एक कर सभी सेनापति मैकक्लान, वर्नसाइड, मीड आदि—गलती-पर-गलती करते गये, तब भी वह शान्त बना रहा।

मीडपर तो १८६२ में वह झल्लाया भी और उसने गुस्सेसे भरा एक पत्र भी लिख डाला। पर यह पत्र मीडको कभी पढ़नेको नहीं मिला।

लिंकनकी मृत्युके बाद उसकी फाइलके कागजोंमें यह पत्र दबा हुआ मिला। पत्र अवश्य लिख डाला था लिंकनने पर उसे भेजा नहीं—यह सोचकर कि 'शायद मीडका कोई दोष न हो। युद्धके मैदानसे इतनी दूर रहकर मीडकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाईको मैं कैसे समझ सकता हूँ।'

× × ×

निन्दासे कुछ तात्कालिक लाभ भले ही दीखे, पर उसकी विष-बेलमें घृणा, द्वेष और वैर-विरोधके ही कँटीले फल लगते हैं।

निन्दाके कारण दाँतकटी रोटीवाले मित्र एक दूसरेके जानी दुश्मन बन जाते हैं। एक दूसरेके लिये हँसते-हँसते जान न्यौछावर करनेवाले दोस्त परस्पर मुँह नहीं देखना चाहते। एक दिन जो प्यारे-से-प्यारे थे, उन्हींको दूसरे दिन मिट्टीका तेल डालकर फूँक देनेमें रत्तीभर भी संकोच नहीं होता। जिन्हें देखे बिना पल-पल कटना दूभर था, बरसों उनसे दुआ-सलाम भी नहीं होता—ऐसी बुरी होती है निन्दा।

निन्दाके चलते आर्थिक क्षति तो अपार होती ही है, सामाजिक क्षति भी कम नहीं होती। मानसिक और आत्मिक क्षतिका तो पार ही नहीं रहता। मानव सहज ही पतनकी ओर फिसलने लगता है। यह दशा तो सामान्य मानवकी है, साधककी तो सारी साधना ही मिट्टीमें मिल जाती है।

× × ×

परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि,
तेहि पावक न दहौंगो।

—ऐसा कहनेवाले साधक और—

सहै कुसब्द, बादहू त्यागे, छाड़े गरब गुमाना।

ऐसे संतोंकी बात छोड़िये। वे तो कहते हैं—

निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।

पर सामान्य मानवपर, हम सबपर निन्दाकी वैसी ही प्रतिक्रिया होती है, जैसी शील्ड्सपर हुई। किसीको अपनी निन्दा करते देख-सुनकर हम तुरंत अपने मनका संतुलन खो बैठते हैं। हम उखड़ जाते हैं, तावमें आ जाते हैं, बौखला उठते हैं और इतने आवेशमें आ जाते हैं कि वश चले तो निन्दककी जीभ पकड़कर खींच लें।

हम किसीसे सुन भर लें कि अमुकने हमारी निन्दा की है, बस, तुरंत हम उसके विरुद्ध मोरचे-बंदी शुरू कर देते हैं। दुर्दान्त डाकू, बड़े-से-बड़े बदमाश और अपराधी भी पकड़े जानेपर अपनेको 'दूधका धोया' बताते हैं।

निन्दाका बदला केवल निन्दासे ही नहीं चुकाया जाता, अपितु उसके साथ मार-पीट तो मामूली तौरपर जुड़ ही जाती है, तीर-तलवार और बंदूक-पिस्तौल भी निकल जाती है। राग-द्वेषकी जड़ें दिन-दिन गहरी होती जाती हैं। वैरका विष-वृक्ष खूब फूलता-फलता रहता है—कभी-कभी पुश्त-दर-पुश्त!

इससे बढ़कर घाटेका सौदा और होगा ही क्या ?

प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद

[गताङ्क पृ०-सं० ७८३ से आगे]

प्रेममें माया, विचार और प्रारब्धके लिये कोई स्थान नहीं है। प्रेमी मुक्ति या लय होना भी नहीं चाहता, वह तो अपने उपास्यदेवको अपने सामने देखते रहना चाहता है। प्रेममें कभी पूर्णिमा नहीं होती, सर्वदा प्रतिपदा ही रहती है। प्रेम जितना बढ़ेगा, उसमें उतनी ही कमी दिखायी देगी। यदि प्रेमीमें कुछ भी विचार या विवेक है तो उसमें उतनी ही प्रेमकी कमी समझनी चाहिये। प्रेमका मार्ग ही निराला है। वहाँ मर्यादा कुछ भी नहीं है।

भगवान्में प्रेम होनेपर तो घर ही जंगल हो जाता है और बिना प्रेमके जंगल भी घर बन जाता है। इसी प्रकार भगवत्प्रेम न होनेपर एकान्त भी संसाररूप हो जाता है।

प्रेम सक्रिय और अक्रिय दो प्रकारका होता है। सक्रिय प्रेममें वासना रहती है और वासनाकी पूर्ति होनेपर वह निवृत्त हो जाता है। निष्क्रिय प्रेम स्वाभाविक होता है। यह साक्षात् भगवान्का स्वरूप ही है। जैसे रूपवती स्त्रीके प्रति प्रेम हो तो इसे सक्रिय प्रेम कहेंगे। यह स्थिर नहीं रहता, बादमें समाप्त हो जाता है; किंतु यदि सौन्दर्यमें ही प्रेम है तो उससे कभी भोग-वासनाका भाव नहीं आ सकता। सौन्दर्यका तो कभी नाश नहीं होता। अत: उसके प्रति जो प्रेम है, वह भगवद्रूप ही है। जैसे कोई सुन्दर पुष्प है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे यदि देखनेसे प्रसन्नता हो, तोड़नेकी इच्छा न हो, तो इसे निष्क्रिय प्रेम कहेंगे। और यदि उसे तोड़कर सूँघना चाहें तो यह सक्रिय प्रेम होगा।

यदि आनन्द लेना है तो भगवान्‌से प्रेम करो, पदार्थोंके बनने-बिगड़नेसे कोई लाभ-हानि नहीं है।

प्रेम ज्ञानको दबा देता है, श्रीनारायणस्वामी कहते हैं—

नारायण दो बात सों, और अधिक नहिं बात।
रसिकन को सतसंग नित, युगल ध्यान दिन-रात॥

सचमुच, इन दो बातोंसे बढ़कर और क्या बात हो सकती है?

भगवान्‌के बलका अनुभव प्रेमसे होता है।

गोपियोंसे भगवान् कृष्ण एक क्षणके लिये भी अलग नहीं होते थे। जब वर्तमान कालके भक्तोंसे भी भगवान् दूर नहीं होते तो गोपियोंसे कैसे दूर जा सकते थे। शास्त्रमें भी कहा है—

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।'

सच है, भगवान् तो भक्तके अधीन हैं। भक्त यदि न चाहें तो वे वृन्दावनसे बाहर कैसे जा सकते हैं? भगवान् सर्वव्यापक तो उन्हींके लिये हैं, जिनकी दृष्टिमें सर्व हैं। भगवान् तो भावग्राही हैं, वे भक्तानुग्रह-विग्रह हैं। उन्हें भक्तोंकी भावनाके अनुसार ही व्यवहार करना पड़ता है।

एक बार नैमिषारण्यमें ऋषियोंने मिलकर विचार किया कि ज्ञान बड़ा है या प्रेम तथा दान बड़ा है या श्रीकृष्ण-नाम, तब यह निर्णय हुआ—

ज्ञानमेव तुलितं च तुलायां
प्रेम नैव तुलितं च तुलायाम्।
दानमेव तुलितं च तुलायां
कृष्णनाम तुलितं न तुलायाम्॥

अर्थात् ज्ञान और दानको तो तराजूमें तोल लिया गया, किंतु प्रेम और कृष्णनाम तराजूमें नहीं तोले जा सके। अतः ज्ञान और दानकी अपेक्षा प्रेम और श्रीकृष्ण-नाम ही बढ़कर हैं।

प्रेमीको त्याग स्वयं होता है और विवेकीको त्याग करना पड़ता है। प्रेमीसे विषयोंका चिन्तन होता ही नहीं और विवेकी विषयोंमें दोष-दृष्टि करता रहता है।

श्रीनारायणस्वामीजी कहते हैं—

विधि निषेध श्रुति वेद की, मेंड़ देत सब मेट।
नारायन जाके हिये, लागत प्रेम-चपेट॥
नेम धर्म धीरज समुझ, सोच विचार अनेक।
नारायन प्रेमी निकट, इनमें रहे न एक॥

जिन भक्तोंने श्रीकृष्णचरणारविन्दोंको ही सत्य समझ लिया है, उनकी बुद्धिमें ये भाव उत्पन्न नहीं होते कि जगत् सत्य है या असत्य। वे जगत्‌की सत्यता-असत्यताके कारण श्रीकृष्णपादपद्मोंमें प्रीति नहीं करते—

श्रीकृष्णचरणाम्भोजं सत्यमेव विजानताम्।
जगत् सत्यमसत्यं वा नेतरेति मतिर्मम॥

प्रेम-प्राप्ति ही जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। श्रद्धा और भक्ति प्रेम-प्राप्तिके सर्वोत्तम उपाय हैं। अश्रद्धालु एवं अभक्त कभी प्रेमी नहीं हो सकते। श्रद्धा-भक्तिका उदय पवित्र अन्तःकरणमें ही होता है। श्रद्धाद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति होती है और ज्ञानद्वारा भक्तिकी। 'निष्ठा' शब्द भक्तिका पर्यायवाची है। निष्ठाके उदय होते ही प्रेम प्रकट होने लगता है।

भक्तको भगवान्‌के सिवा और किसी भी सम्बन्धमें कभी बातचीत नहीं करनी चाहिये। मनुष्य-जीवनमें जो असंतोष बना रहता है, वह उन्नतिका लक्षण है। भगवान्‌की जबतक प्राप्ति नहीं होती, तबतक असंतोष बना रहना स्वाभाविक है।

जहाँ कुतर्क है वहाँ प्रेम नहीं रह सकता।

प्रेमी वही है जिससे बिना प्यारेके एक क्षण भी न रहा जाय।

षडैश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णमें जो प्रेम करते हैं, उन्हें प्रेमी कहते हैं तथा जो इस लोक और परलोक एवं अणिमादि सिद्धियोंको त्यागकर भगवान्‌में आसक्त हैं, वे ही प्रेमी हैं।

प्रेमीके अंदर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि दोष रहते ही नहीं। वह तो प्रेममें मग्न रहता है। भक्तिका फल प्रेम है। प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है, वह मन-वाणीका विषय नहीं है। प्रेममें शास्त्रका प्रवेश नहीं है। नारायणस्वामीजी भी कहते हैं—

प्रेमी बिन या प्रेम की और न जाने सार।
नारायन बिन जौहरी, जैसे लाल बज़ार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमी भगवान्‌के ऐश्वर्यको भुला देता है अर्थात् भगवान् अपने ऐश्वर्यको प्रेमीके सामने भूल जाते हैं, जिस प्रकार ग्वालबालोंके साथ वे अपना ऐश्वर्य भूल गये थे। ग्वाल-बाल उनके खूब गुट्टू (मुक्के) लगाते थे और भगवान्‌ने उनसे यहाँ तक कह दिया कि मैं 'तुम्हारा ऋणी हूँ।' भला, भगवान् किसके ऋणी हैं? तथापि एकनाथजीके यहाँ उन्होंने बारह सालतक जल भरा। यह सब प्रेमके ही कारण हुआ।

प्रेमी अपने प्यारेके सुखमें सुखी होता है। अपने लिये वह कुछ नहीं चाहता।

सच्चे प्रेमीका बड़ा अद्भुत प्रभाव होता है। जिस समय श्रीगौरांग महाप्रभु जगन्नाथजीसे मथुरा आ रहे थे, रास्तेमें उनके श्रीकृष्ण-प्रेमभरे कीर्तनको सुनकर कुत्ते, शेर, हरिण और पक्षी आदि भी शान्त और प्रेमसे मस्त हो जाते थे।

कामी और प्रेमीकी एक ही दशा होती है। परंतु काम नरकको निशानी है और प्रेमी भगवत्स्वरूप हो जाता है। प्रेम अलौकिक होता है और काम लौकिक। प्रेमपन्थ अत्यन्त कठिन है। इसमें जान-माल—सर्वस्व लुटाना पड़ता है, सभी कुछ स्वाहा करना पड़ता है।

भगवद्विग्रहदर्शन, भगवच्चिन्तन, भगवद्गुणानुवाद, भगवद्भक्तोंके साथ सत्संग, भगवत्सेवा, भगवद्भक्तोंकी सेवा—ये प्रेमके साधन हैं।

हृदयमें श्रीभगवान्‌का ध्यान हो, शरीरमें रोमांच हो, जिह्वामें नामका जप हो और नेत्रोंमें अश्रुधारा बहती हो—इससे बढ़कर भक्तका और क्या सौभाग्य हो सकता है?

आजकल जो टेलीफोन है, उससे मनुष्य केवल बात कर सकता है, परंतु भक्तोंका टेलीफोन इससे विचित्र ही होता है। देखो, द्रौपदीने भगवान्‌को पुकारा और झटसे भगवान् आ गये। गजने पुकारा और वे फौरन नंगे पैर धाये। इसलिये इस टेलीफोनकी अपेक्षा वह बहुत विचित्र है।

तल्लीनता बिना भगवद्दर्शन नहीं हो सकता।

गोसाईंजी कहते हैं *'सीय राममय सब जग जानी'*, परंतु मैं तो कहता हूँ कि सब सियाराम-ही-सियाराम है।

भगवत्प्रेम होनेसे भक्तमें विद्या, बुद्धि और बल सभी कुछ आ जाते हैं। भगवत्प्रेमीको सामान्य पुरुष नहीं समझना चाहिये।

जो अपने प्यारेके सिवा दूसरेकी बातें करता है, वह अनुरागी कहाँ? जो जिह्वा प्यारेके सिवा किसी दूसरेकी बातें करती है उसे काट डाले, जो कान प्यारेके सिवा किसी दूसरेकी चर्चा सुनते हैं, उन्हें फोड़ डाले, जो पैर प्यारेके सिवा किसी दूसरेके पास जाते हैं, उन्हें काट डाले और जो नेत्र प्यारेके सिवा किसी दूसरेको देखते हैं, उन्हें निकाल डाले।

भगवान्‌को उलाहना तो भक्त ही दे सकता है और किसीका ऐसा अधिकार नहीं है। बालक अपने पिताकी मूछें भी पकड़ लेता है। और कोई ऐसी धृष्टता थोड़े ही कर सकता है। एक भक्त भगवान्‌से कहता है—

एक बात एकान्त में, सुन लो जगदाधार।
तारें मेरे कर्म तो, प्रभु का क्या उपकार?

भक्तके सिवा भगवान्‌से और कौन ऐसा कह सकता है! भगवान् भी शबरीसे कहते हैं—*'मानउँ एक भगति कर नाता।'*

जिसे ब्रह्मा, वसिष्ठ और वाल्मीकि ध्यानमें भी नहीं पा सके उसीपर ग्वालबालोंने सवारी गाँठी—यह प्रेमकी महिमा है।

प्रेमी चाहे मर जाय, कट जाय, वह माँगता कुछ नहीं। माँगनेवाले तो वस्तुके प्रेमी होते हैं। वे भगवान्‌के प्रेमी नहीं होते। यदि कोई वासना लेकर प्रेम-मार्गमें जाओगे तो भगवान्‌से प्रेम नहीं हो सकेगा। वासना होनेपर तो किसी तुच्छ विषयको लेकर ही संतुष्ट हो जाओगे।

'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इसी अभिमानमें मस्त रहना चाहिये।

शास्त्र और आचार्योंका सिद्धान्त है कि राग रागसे ही कटता है, जैसे वायु ही बादलको पैदा करती है और वायु ही उन्हें हटाती भी है! इसी प्रकार भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही सांसारिक भोगोंकी इच्छाको काटती है और फिर (भगवत्प्राप्ति होनेपर) स्वयं भी शान्त हो जाती है।

भगवान्‌की स्वयं प्रेम करनेकी इच्छा नहीं होती, किंतु जब भक्त प्रेम करने लगता है तो उन्हें भी करना पड़ता है। भक्त अपने प्रेमसे भगवान्‌को काबूमें कर लेता है।

[क्रमशः] (श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गो-सम्बन्धी व्रतोत्सव

गोपाष्टमी-महोत्सव

गौका माहात्म्य एवं महत्त्व बतानेकी आवश्यकता नहीं है, तथा यह भी बतानेकी आवश्यकता नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका अतिप्रिय 'गोविन्द' नाम गायोंकी रक्षा करनेके कारण ही पड़ा। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदासे लेकर सप्तमीतक गो-गोप-गोपियोंकी रक्षाके लिये श्रीकृष्ण गोवर्धनपर्वतको धारण किये रहे। आठवें दिन इन्द्रकी आँख खुली और वे अहंकार-रहित होकर भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये, कामधेनुने भगवान्‌का अभिषेक किया और उसी दिन भगवान्‌का 'गोविन्द' नाम पड़ा।

उसी समयसे कार्तिक शुक्ल अष्टमीको गोपाष्टमीका उत्सव मनाया जाने लगा, जो अबतक चला आता है। कार्तिक शुक्ल अष्टमीको प्रातःकालके समय गौओंको स्नान कराये। गन्ध-पुष्पादिसे उनका पूजन करे और अनेक प्रकारके वस्त्रालंकारसे अलंकृत करके उनके गोपालों (ग्वालों)-का पूजन करे, गायोंको गोग्रास देकर उनकी परिक्रमा करे और थोड़ी दूरतक उनके साथ जाय तो सब प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि होती है। इसी गोपाष्टमीको सायंकालके समय गायें चरकर जब वापस आयें, उस समय भी उनका आतिथ्य, अभिवादन और पञ्चोपचार-पूजन करके कुछ भोजन कराये और उनकी चरणरजको मस्तकपर धारण करके ललाटपर लगाये तो उससे सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

भारतवर्षके प्रायः सभी भागोंमें गोपाष्टमीका उत्सव बड़े ही उल्लाससे मनाया जाता है, विशेषकर गोशालाओं तथा पिंजरापोलोंके लिये यह बड़े महत्त्वका उत्सव है। गोशालाओंमें तो गोपाष्टमीके दिन एक मेला ही लग जाता है। खाने-पीनेकी दूकानें आ जाती हैं बड़ी भीड़ होती है। मेलेमें घूमनेके अतिरिक्त लोग गौओंके दर्शन करते हैं, उनको कुछ खिलाते हैं और गोशालाकी संस्थाको कुछ दान करते हैं। यह तो होना ही चाहिये, किंतु इतना ही काफी नहीं है, कुछ और भी करना होगा। जिन गो-गोपोंकी यह अष्टमी मनायी जाती है, उनकी क्या दुर्दशा है एवं उनका हित किस प्रकार हो सकता है, इसपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये और तदनुसार कार्य करना चाहिये। गोपाष्टमी केवल किसी एक गाँवका या गोशालाओंका ही उत्सव नहीं होना चाहिये, वरं गाँव-गाँव और घर-घर यह उत्सव बड़े समारोहसे मनाया जाना चाहिये। आवश्यकता इस बातकी है कि यह उत्सव अखिल भारतवर्षीय गो-दिवसका रूप धारण कर ले।

गोपाष्टमीके दिन क्या-क्या करें?

गोपाष्टमीके मनानेका सुन्दर ढंग और उस दिन किये जानेवाले कार्य नीचे लिखे अनुसार हों तो उत्तम है—

१-गायोंको नहला-धुलाकर स्वच्छ करना और उन्हें भाँति-भाँतिसे सजाना, २-गायोंके रहनेके स्थानकी भलीभाँति सफाई करना, ३-गाय और ग्वालोंकी विधिवत् पूजा करना और स्वादिष्ठ भोजनसे उन्हें संतुष्ट करना, ४-उस दिन अपने व्यवसाय-व्यापारको बंद रखकर गोशाला और पिंजरापोलोंमें जाकर वहाँके उत्सवों और कार्यक्रमोंमें भाग लेते हुए गोपालनके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करना, ५-गोशाला और पिंजरापोलोंमें यथासाध्य दान देना, ६-गाँव-गाँव और नगर-नगरमें सभाएँ हों, जिनमें गो-सम्बन्धी इन बातोंपर विचार हो—

(अ) देशमें सर्वत्र गो-हत्याका निवारण कैसे हो सकता है?

(आ) गायोंकी वर्तमान स्थितिमें, उनकी नस्लमें और दुग्धोत्पादनमें किन साधनोंसे सुधार हो सकता है?

(इ) गोबर और गोमूत्रका अधिक-से-अधिक खादके रूपमें उपयोग कैसे किया जा सकता है?

(ई) गोपालकोंको आवश्यक सुविधाएँ कैसे मिल सकती हैं?

७-उस दिन लोगोंको ठीक-ठीक समझाकर और उनके भावोंको जाग्रत् कर यह प्रतिज्ञा करनी-करानी चाहिये—

(क) हम उस आदमीके हाथ गौ कभी नहीं बेचेंगे, जिसपर यह संदेह हो कि वह घरमें गौका पालन न कर सीधे कसाईको या कसाईके हाथमें दे देनेवाले किसीको बेच देगा।

(ख) हम उन चमड़े, चर्बी तथा हड्डी आदिका अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये व्यवहार और व्यापार कदापि नहीं करेंगे, जिनके कारण गायोंकी हत्या होती है।

(ग) वनस्पति-तैल (नकली घी) का व्यवहार नहीं करेंगे।

८-जहाँ अच्छे साँड़ न हों, वहाँ अच्छे साँड़ोंकी व्यवस्थापर विचार करना, ९-जहाँ उत्तम साँड़ हों, वहाँ उनके भरपूर चारे-दाने और संरक्षणका प्रबन्ध करना, १०-स्थानीय गाय, बैल, बछिया और बछड़ोंकी संख्याका पता लगाकर लिखना, ११-सुविधा हो तो अच्छी-से-अच्छी गाय रखनेवालोंको पुरस्कार देना, १२-गायें स्वस्थ और सबल कैसे रहें तथा उन्हें संक्रामक रोगोंसे कैसे बचाया जा सकता है—यह समझना-समझाना, १३-अगली गोपाष्टमीतकके लियो गो-वंशकी उन्नतिका कार्यक्रम बनाना, १४-गतवर्ष गोवंशकी उन्नतिके लिये क्या किया गया—इसकी जाँच करना, १५-गोशालाओंको यथाशक्ति दान देना, १६-ऐसे अवसरोंपर सहृदय मुसलमान और ईसाई आदि सज्जनोंको भी बुलाया जाय और बड़े प्रेम तथा सम्मानका व्यवहार किया जाय, जिससे वे भी इसे सार्वजनिक मेला समझें और सभामें गौके आर्थिक महत्त्वको जानकर गोरक्षाके पक्षपाती बनें।

इस प्रकार उस दिनका सारा समय गो-चर्चामें ही लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे ही गोवंशकी सच्ची उन्नति हो सकेगी, जिसपर हमारी उन्नति सोलहों आने निर्भर है।

गोपद्म-व्रत

आषाढ़ शुक्ल एकादशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् गौके निवासस्थानको गोबरसे लीपकर उसमें तैंतीस पद्म (कमल) स्थापन करके उनका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और तैंतीस अपूप (पूए) भोग लगाकर उतने ही अर्घ्य, प्रदक्षिणा और प्रणाम अर्पण कर व्रत करे। इस प्रकार कार्तिक शुक्ल एकादशी-पर्यन्त प्रतिदिन करनेके पश्चात् द्वादशीको पहले वर्षमें पूए, दूसरेमें खीर और पूए, तीसरेमें मंडक, चौथेमें गुड़ और मंडक तथा पाँचवेंमें घृतपाचित (घीमें पकाये हुए) मंडकोंसे पारण करके उद्यापन करे तो जीवन-पर्यन्त सुख-सम्पत्तिसे युक्त रहता है और परलोकमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होते हैं। इस व्रतके आचरणसे इस लोकमें राज्य, सौभाग्य, सम्पत्ति तथा पुत्र-पौत्रादिक सुख भोगकर मनुष्य अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है।

—(भविष्योत्तरपुराण)

गोवत्सद्वादशी-व्रत

यह व्रत कार्तिक कृष्ण द्वादशीको किया जाता है। इसमें प्रदोषव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या न हो तो **'वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्यौ प्रथमेऽहनि'** के अनुसार पहले दिन व्रत करना चाहिये। उस दिन सायंकालके समय गायें चरकर जब वापस आयें तब तुल्यवर्गकी गौ और बछड़ेका गन्धादिसे पूजन करके—

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते।
सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

—से उसके (आगेके) चरणोंमें अर्घ्य दे और—

सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥

—से प्रार्थना करे। इस बातका स्मरण रखे कि उस दिनके भोजनके पदार्थोंमें गायका दूध, दही, घी, छाछ और खीर तथा तेलमें पके हुए भुजिया, पकौड़ी या अन्य कोई पदार्थ न हों। इस व्रतसे मनःकामनाएँ सफल होती हैं।

(मदनरत्नान्तर्गत भविष्योत्तरपुराण)

गोवर्धनपूजा-व्रत

दीपावलीके दूसरे दिन प्रभातके समय मकानके द्वारदेशमें गौके गोबरका गोवर्धन बनाये। शास्त्रमें उसको शिखरप्रयुक्त, वृक्ष-शाखादिसे संयुक्त और पुष्पादिसे सुशोभित बनानेका विधान है। किंतु अनेक स्थानोंमें उसे मनुष्यके आकारका बनाकर पुष्पादिसे भूषित करते हैं। चाहे जैसा हो, उसका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके—

गोवर्धनधराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥

—से प्रार्थना करे। इसके पीछे भूषणीय गौओंका आवाहन करके उनका यथाविधि पूजन करे और—

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥

—से प्रार्थना करके रात्रिमें गौसे गोवर्धनका उपमर्दन कराये। गोवर्धनपूजा-व्रतसे मनुष्य इस लोकमें समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। (हेमाद्रि)

गोत्रिरात्र-व्रत

यह व्रत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे दीपावलीके दिनतक किया जाता है। इसमें उदयव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो तो पहले दिन व्रत करे। इस व्रतके लिये गोशाला या गायोंके आने-जानेके मार्गमें आठ हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी वेदी बनाकर उसपर सर्वतोभद्र लिखे और उसके ऊपर छत्रके आकारका वृक्ष बनाकर उसमें विविध प्रकारके फल, पुष्प और पक्षी बनाये। वृक्षके नीचे मण्डलके मध्यभागमें गोवर्धन भगवान्‌की; उनके वामभागमें रुक्मिणी, मित्रवृन्दा, शैव्या और जाम्बवतीकी; दक्षिण भागमें सत्यभामा, लक्ष्मणा, सुदेवा और नाग्रजितीकी; उनके अग्रभागमें नन्दबाबा; पृष्ठभागमें बलभद्र और यशोदा तथा श्रीकृष्णके सामने सुरभी, सुनन्दा, सुभद्रा और कामधेनु गौ—इनकी सुवर्णमयी सोलह मूर्तियाँ स्थापित करे। और उन सबका नाममन्त्र (यथा '**गोवर्धनाय नमः**' आदि) से पूजन करके—

गवामाधार गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो।
गोपगोपीसमोपेत गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

—से भगवान्‌को और—

रुद्राणां चैव या माता वसूनां दुहिता च या।
आदित्यानां च भगिनी सा नः शान्तिं प्रयच्छतु॥

—से गौको अर्घ्य दे। और—

सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
प्रतिगृह्णातु मे ग्रासं सुरभी मे प्रसीदतु॥

—से गौको ग्रास दे। विविध भाँतिके फल, पुष्प, पक्वान्न और रसादिसे पूजन करके बाँसके पात्रोंमें सप्तधान्य और सात मिठाई भरकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको दे। इस प्रकार तीन दिन व्रत करे और चौथे दिन प्रातः स्नानादि करके गायत्री-मन्त्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर व्रतका विसर्जन करे तो इससे सुत, सुख और सम्पत्तिका लाभ होता है। (स्कन्दपुराण)। भविष्योत्तर-पुराणके अनुसार गोत्रिरात्र-व्रतका फल पुत्र-प्राप्ति, सुख-भोग और अन्तमें गोलोककी प्राप्ति बताया गया है।

गायका दूध—सर्वश्रेष्ठ औषध

(श्रीमती सुनीता मुखर्जी)

भावना और भावुकता, दयालुता और मनुष्यताकी बात यदि एक तरफ सरका दी जाय तब भी गायका दूध, घी इत्यादि सर्वगुणसम्पन्न हैं। विषैला प्रभाव नष्ट करनेमें गोघृतकी तुलनामें अन्य किसी पशुका घी उतना उपयोगी नहीं। दूध-घीसे सैकड़ों रोग-विकार दूर होते हैं, यहाँ कुछ रोगोंके नामके साथ उपचारकी संक्षिप्त विधि बतायी जा रही है। इस अमृतकी शक्तिको पहचानकर पाठक लंबी आयुतक स्वस्थ और युवा बने रह सकते हैं—

अजीर्ण—जब गरिष्ठ भोजन अनपचा रह जाता है, तब शरीरकी आग ठंडी पड़ जाती है, अम्लता बढ़ती जाती है, पेट पत्थर-जैसा ठोस होने लगता है, इसके प्रभावसे गुर्दे भी कमजोर पड़ने लगते हैं। इस स्थितिमें दूधमें सोंठ और गुड़ औटाइये ताकि पेटकी सड़ांध मल-मूत्रके रास्ते बाहर निकल जाय।

२५० ग्राम दूधमें १०० ग्राम पानी मिलाइये, २५ ग्राम शक्कर या गुड़ डालिये, १०-१२ ग्राम सोंठका चूर्ण मिलाकर काढ़ा बनाइये, जब पानी जल जाय तो हल्का गर्म रह जानेपर घूँट-घूँट पीना शुरू कर दीजिये। अनपचा भोजन सोंठकी गर्मीसे पचने लगेगा और मल-मूत्र गल-पिघलकर निकलने लगेगा, प्यास लगे तो पानी भी हलका गर्म ही पियें, पेट साफ होते ही जलन, खट्टी डकार, अफारा और बेचैनीके विकार भी शान्त हो जायँगे। अजीर्णसे छुटकारा पानेके बाद भी एक दिन दूध ही पीजिये ताकि आँतें और पेटकी दीवारेंतक निर्मल हो जायँ। कमजोरीसे न घबरायें, क्योंकि दूध प्राणोंका आधार है; यदि गर्भसे निकला बालक दूधपर जी सकता है तो हम दुर्बल नहीं होंगे, मूँगकी पतली दालसे चपाती खाकर आप तीसरे दिनसे हलके भोजनकी शुरुआत कर सकते हैं, दोपहरको दूधमें पका हुआ पतला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलिया एवं शामको दूधमें शहद मिलाकर पीजिये, रातको खिचड़ी खाइये चौथे दिनसे सामान्य भोजन शुरू कर दें।

अतिसार—आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें अतिसारपर काबू पानेके लिये दूधके फेन (झाग)को परमौषध बताया गया है। मलाई और रबड़ी खानेवालोंको मालूम होना चाहिये कि २५ ग्राम दुग्ध-फेन, १/२किलो मलाईके बराबर पौष्टिक है। झाग मुँहमें पहुँचते ही टॉनिक बन जाता है, जबकि रबड़ी-खोया पचानेमें कई घंटे लग जाते हैं, दूध दुहनेके बाद बर्तनमें जितना भी झाग हो, उसे एक बड़े कटोरेमें कलछीसे निकाल लें, इस झागको चम्मचसे स्वाद लेते हुए चूसना शुरू कर दें, वैसे तो झागमें चूसनेवाला ठोस तत्त्व होता ही नहीं, किंतु इस विधिसे पेटका संकुचन होता है, गोदुग्धके झागसे पेटकी आग भड़क उठेगी और भोजनके कच्चे रस पचने लगेंगे, दूधका झाग शरीरकी पेशियोंको भी फुला देता है और पाचन-क्रिया तीव्र हो जाती है, बदनको गठीला और पुष्ट करनेमें दुग्ध-फेन अत्युत्तम औषधि है।

आँखोंमें जलन—भावप्रकाश निघण्टुमें गायका दूध आँखोंके लिये उत्तम अंजन माना गया है, यदि आप भैंसका दूध पीते हैं तो गायका दूध पीना शुरू कर दें, यदि गायका दूध पीते हैं तो वह एकदम ताजा-ताजा हो। गाय ब्यायी नहीं होनी चाहिये, क्योंकि शुरूका दूध जलन पैदा करता है, दूधकी मलाई लेकर अँगुलीसे रातको सोते समय पलकोंपर लगा लें, सुबहतक जलन शान्त हो जायगी, नहानेके पहले गोदुग्धका मक्खन लगा दें, आधे घंटेमें जलन जाती रहेगी, यदि मलाईकी चिकनाहटको मन न मानता हो तो ४ चम्मच दूध, १ कटोरी पानीमें मिलाकर उससे खुली आँखोंमें छींटे मारें और स्वच्छ कपड़ेसे आँखें पोछकर सो जायँ। सुबहतक सारी जलन निकल चुकी होगी, जिन्हें चिकनाईसे प्यार हो तो उन्हें दूधकी मलाई पलकोंपर लेपकर गर्मीकी सूजन निकाल देनी चाहिये।

आगसे जलना—घाव कैसा भी हो, गायके घीसे उत्तम न कोई पेनिसिलिन आदि दवा है न मरहम, कुदरतने गोघृतको इतनी विषनाशक शक्तिसे भर रखा है कि इससे बढ़िया क्रीम, मरहम या एंटीसेप्टिक दवा हो ही नहीं सकती, गोघृतमें पट्टी तर करके जली हुई त्वचापर रखकर भगवान्को याद करें, जिसने आपको गोघृतके रूपमें अमृत-जैसी पौष्टिक दवा दे रखी है। दूधमें घी डालकर पियें, ताकि सप्ताहभरमें घावकी जगह नयी त्वचा उग जाय। गायका दूध शरीरको त्वचा भी देता है और मांसकी कमी भी शीघ्र पूरी करता है।

आधासीसी—आधे सिरका दर्द तभी होता है, जब उस हिस्सेमें रक्तके संचारमें रुकावट पड़ गयी हो, उस रुकावटका कारण भोजनके वे कच्चे रस होते हैं, जो कफ, लेस आदिके रूपमें जमा हो जाते हैं और जुकाम-नजला भी बन जाते हैं, अगर नासिकासे दूषित जल न निकले तो माथेके किसी भी हिस्सेमें जोरोंका दर्द उठने लगता है, माथा इतने भयंकर रूपमें फटने लगता है जैसे टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ जायगा। २५० ग्राम दूधमें २५० ग्राम पानी डालिये, २ पीपली, ५ लौंग और दालचीनीके ४ छोटे टुकड़े पीसकर दूधमें औटाइये।

जब केवल दूध ही बचे तो २ चम्मच शहद मिलाकर पियें और कंबल ओढ़कर सो जायँ। घूँट इस तरह पियें जैसे गर्म वस्तु चूस रहे हों, जितना अधिक पसीना आयेगा उतनी जल्दी आराम मिलेगा, दिनमें ३-४ बार ऐसा दूध पीनेसे माथेकी श्लेष्मा जल बनकर नथनोंसे बह जायगी या पसीने और मल-मूत्रके रास्ते निकल जायगी।

गोपालक कृष्ण

सोहत लकुटि कर, उर बनमाल संग, राग-रंगवारो नन्दरायके सदनमें।
छबि छहराये कुंज-कुंजमैं रह्यो री धाय, बाँसुरी बजाय मंजु राजै गोपगनमें॥
कहत 'प्रमोद' वाकी उपमा बखानै कौन? सुषमा न देखी ऐसी कोटिन मदनमें।
पाद-पद्म चूमत हैं जाके सुर-बृंद, सोई गैया लिये घूमत कन्हैया वृन्दावनमें॥

—प्रमोद त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय और दुःख कबतक रहता है ?

(श्री जय जय बाबा)

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥

(श्रीमद्भा० ३ । ९ । ६)

[ब्रह्माजी भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—प्रभो !] जबतक पुरुष आपके अभयपद चरणारविन्दोंका आश्रय नहीं लेता, तभीतक उसे धन, घर और बन्धुजनोंके कारण प्राप्त होनेवाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ सताते रहते हैं और तभीतक उसे 'मैं' और 'मेरे' पनका दुराग्रह रहता है जो दुःखका एकमात्र कारण है।

उपर्युक्त श्लोकमें कहे गये भय आदि दुःख हमको कबतक सताते रहेंगे ? जबतक कि हम भगवच्चरणारविन्दोंकी शरण ग्रहण नहीं करते।

इस बातको थोड़ा युक्तिपूर्वक समझनेका प्रयास करें। भय क्यों होता है और किससे होता है ? इसका उत्तर श्रुति इस प्रकार देती है—'**द्वितीयाद् वै भयं भवति**' निश्चय ही दूसरेसे भय होता है। अपनेसे भिन्न कोई दूसरा है इस बातका अभिनिवेश अर्थात् आग्रह करनेसे भय होता है। यही बात भागवतकार इस प्रकार कहते हैं—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥

(श्रीमद्भा० ११ । २ । ३७)

ईश्वरसे विमुख पुरुषको उनकी मायासे अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृतिसे ही 'मैं देवता हूँ,' 'मैं मनुष्य हूँ', इस प्रकारका भ्रम-विपर्यय हो जाता है। इस देह आदि अन्य वस्तुमें अभिनिवेश, तन्मयता होनेके कारण ही बुढ़ापा, मृत्यु, रोग आदि अनेकों भय होते हैं। इसलिये अपने गुरुको ही आराध्यदेव परम प्रियतम मानकर अनन्य भक्तिके द्वारा उस ईश्वरका भजन करना चाहिये।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में भी आया है कि—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(६ । २३)

जिसकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वरमें है, उसी प्रकार गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही इस उपनिषद्‌में बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

सच पूछें तो भगवान्‌के अतिरिक्त, आत्माके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। परंतु न होनेपर भी इसकी प्रतीति इसका चिन्तन करनेवालोंको उसके चिन्तनके कारण—उधर मन लगनेके कारण ही होती है जैसे स्वप्नके समय स्वप्नद्रष्टाकी कल्पनासे अथवा जाग्रत्-अवस्थामें नाना प्रकारके मनोरथोंसे एक विलक्षण ही सृष्टि दीखने लगती है। इसलिये विचारवान् पुरुषको चाहिये कि सांसारिक कर्मोंके सम्बन्धमें संकल्प-विकल्प करनेवाले मनको रोक दे—कैद कर ले। बस, ऐसा करते ही उसे अभय-पदकी, परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। (श्रीमद्भा० ११ । २ । ३८)

परमात्माको प्राप्त करनेकी पहली सीढ़ी उनकी सत्तामें, उनके अस्तित्वमें विश्वास करना है। जो व्यक्ति परमात्माके अस्तित्वमें ही विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न और पुरुषार्थ भी नहीं करेगा।

'परमात्मा है' ऐसा जो दृढ़ विश्वास रखकर उनका भजन करता है, उसे निश्चय ही उनकी प्राप्ति होती है। यही बात उपनिषद्‌में इस प्रकार है—

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति॥

(कठ० २ । ३ । १२-१३)

परमात्माको न तो वाणीसे, न मनसे और न नेत्रोंसे ही प्राप्त किया जा सकता है। 'वह अवश्य है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक उस परमात्माको पहले ग्रहण करना चाहिये अर्थात् पहले उसके अस्तित्वका दृढ़ निश्चय करना चाहिये। तदनन्तर तत्त्वभावसे उसे प्राप्त करना चाहिये। इन दोनों प्रकारोंसे 'वह अवश्य है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक परमात्माकी सत्ताको स्वीकार करनेवाले साधकके लिये परमात्माका तात्त्विक स्वरूप अपने-आप शुद्ध हृदयमें प्रत्यक्ष हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कोई 'ब्रह्म नहीं है' इस प्रकार समझता है तो वह स्वयं असत् ही हो जाता है और यदि कोई 'ब्रह्म है' इस प्रकार जानता है तो ज्ञानीजन उसे संत—सत्पुरुष समझते हैं।

असन्नेव स भवति । असद् ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद। सन्तमेनं ततो विदुः॥

(तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली, अनुवाक ६, मन्त्र १)

बुद्धिद्वारा परमात्माके अस्तित्वको सिद्ध नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह बुद्धिसे भी परे अर्थात् श्रेष्ठ है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—'**यो बुद्धेः परतस्तु सः**' (३ । ४२)। यही बात कठोपनिषद् (१ । ३ । १०)-में इस प्रकार कही गयी है—'**बुद्धेरात्मा महान् परः**' बुद्धिसे आत्मा उन सबका साक्षी होनेसे अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान् है। फिर भी कहते हैं—'**पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः।**' (कठ० १। ३। ११) परमेश्वरसे श्रेष्ठ और बलवान् कोई नहीं है। वही सबकी परम अवधि और वही परम गति है। ऐसे ही ईश्वरकी सिद्धि तर्कद्वारा भी नहीं हो सकती।

भगवत्प्राप्तिमें मुख्य कार्य श्रद्धा करती है। प्रकृतिका नियम है कि जो जिस देवतापर श्रद्धा रखकर उपासना करेगा, वह उसीमें तन्मय हो जायगा। भगवान् (गीता १७ । ३)-में कहते हैं—

'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।'

यह जीव श्रद्धामय है, क्योंकि जो जिस श्रद्धावाला है अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा है, वह स्वयं भी वही है।

श्रीरामकृष्णदेवने कहा है—बुद्धि पंगु है, श्रद्धा सर्वसमर्थ है, बुद्धि बहुत दूरतक नहीं चलती, वह थककर कहीं-न-कहीं रुक जाती है। श्रद्धा अघटित कार्य करवा सकती है। श्रद्धाके सहारे मनुष्य अपार महोदधि भी पार कर सकता है।

भगवान् स्वयं कहते हैं—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९ । ३)

जो इस आत्मज्ञानरूपी धर्मकी श्रद्धासे रहित हैं अर्थात् इसके स्वरूप और फलमें आस्तिक-भावसे रहित हैं, नास्तिक हैं, वे असुरोंके सिद्धान्तोंका अनुवर्तन करनेवाले देहमात्रको ही आत्मा समझनेवाले इन्द्रियलोलुप मनुष्य मुझ परमेश्वरको प्राप्त न होकर मृत्युरूप-संसारके मार्गमें भटकते रहते हैं।

भक्तकी तो भगवान्में स्वाभाविकी श्रद्धा होती है, उसको श्रद्धा रखनेको कहनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती, जैसे छोटे बालकको अपनी मातापर नैसर्गिक श्रद्धा होती हैं, उस बालकको इसके लिये समझानेकी भी जरूरत नहीं कि तुम अपनी मातापर श्रद्धा करो। यदि कोई उसे ऐसा कह भी दे तो वह उसको पागल समझेगा कि ऐसी अनावश्यक बात क्यों कर रहा है।

भक्तके लिये तो स्वयं भगवान् अकुतोभय हैं—निर्भय हैं और अपने भयातुर भक्तोंकी सब तरहसे रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। श्रीलक्ष्मीजी भगवान्की स्तुति करती हुई कहती हैं—

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम्।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम्॥

(श्रीमद्भा० ५। १८। २०)

सच्चा पति—रक्षा करनेवाला ईश्वर वही है जो स्वयं सर्वथा निर्भय हो और जो अपने भयातुर भक्तोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेमें समर्थ हो। प्रभो ! ऐसे पति एकमात्र आप ही हैं। यदि एकसे अधिक ईश्वर माने जायँ तो उन्हें एक-दूसरेसे भय होनेकी सम्भावना हो सकती है। अतः आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर किसी लाभको नहीं मानते।

यदि विचार करके हम अपने भीतर देखें तो हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति चाहे धनी हो या निर्धन सभी एक महान् भयकी आशंकामें जी रहे हैं। विश्वमें चारों तरफ आग लगी हुई है, सभी संत्रस्त हैं। कहीं चैन नहीं, सुख नहीं। इस महाभय, महादुःखके निवारणके लिये और समस्त विश्वके कल्याणके लिये हममेंसे प्रत्येकको आर्द्रहृदयसे विश्वजननीसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

भगवन्नाम-प्रार्थना एवं भगवन्नाम-जप सभी महाभयोंसे सर्वत्र संत्राण दिलानेवाला है और परम कल्याणका उत्तम साधन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ७९८ से आगे]

दृश्य—१४

विष अमृत बन गया

विक्रम—*(मन्त्रीसे)* मन्त्रीजी, हम चाहते हैं, मीराका अन्त भी हो जाय और हमारे राज्यमें कोई यह जान भी न पाये कि उसमें हमारा हाथ था।

मन्त्री—*(थोड़ा सोचकर)* महाराज, आज्ञा हो तो एक सुझाव दूँ, जिससे न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

विक्रम—हाँ मन्त्रीजी, ऐसी ही कोई युक्ति बताइये।

मन्त्री—आप किसी विश्वसनीय व्यक्तिके हाथ एक प्याले-जलमें विष मिलाकर भेज दीजिये। वह व्यक्ति मीराको 'चरणामृत' कहकर पिला दे। तत्पश्चात् राज्यमें यह फैला दीजिये कि 'मीरा अस्वस्थ हो गयी है।' एक घंटेके पश्चात् कह दीजिये कि 'उसकी हालत गम्भीर है।' तत्पश्चात् मरनेकी घोषणा करके जल्दीसे दाह-संस्कार करा दीजिये।

विक्रम—यह सुझाव तो अच्छा है। पर विषका प्याला कौन ले जाय?

मन्त्री—दयाराम।

[दासी कमरेके बाहर यह संवाद सुन रही थी। वह भागी-भागी मीराके पास गयी और उसने उनको विष पिलानेके षड्यन्त्रकी चेतावनी दे दी]

दासी—*(ठाकुरजीको प्रणाम करती हुई मीरासे)* रानीजी, राणाजीने थारेपर कोप करके रतन-कटोरेमें विष भेजनेको निश्चय कियो है। विष लानेवाला दयाराम उसको 'चरणामृत' कहकर थारेको पीनेको कहेगा। तुम उसको कदापि न पीना।

मीरा—*(गिरिधरकी ओर देखकर हँसती है)* लीलापुरुषोत्तम, आपकी लीला तो आप ही जानो। *(दासीसे)* इनका भेजा 'चरणामृत' सहर्ष स्वीकार करूँगी। मेरे लिये तो वह अमृतके समान नहीं, वास्तविक अमृत है। पर राणा ऐसा क्यों कर रहा है? मैंने कोई कुकर्म तो किया नहीं। संसारके स्वामीके गुणोंको तो हर व्यक्तिको स्वतः ही गाना चाहिये। अपने सच्चे स्वामीको रिझानेका आनन्द तो राणाको भी लेना चाहिये।

दासी—ऐसे विचार मनुष्यमात्रके हों तो संसारका कल्याण हो जाय। कोई जीव दुःखी न रहे।

[दयाराम और उसके साथ ऊदाबाई (मीराजीकी ननदका प्रवेश। दयारामके हाथमें प्याला है। उसका मुख सूखा-सूखा-सा है। हाथ काँप रहे हैं। डरते-डरते काँपते हाथसे विषका प्याला आगे बढ़ाते हुए मीरासे]

दयाराम—मैं आया हूँ...मैं आया हूँ...यह 'चरणामृत' है आपके लिये....महाराजने भेजा है।

मीरा—*(दयारामके हाथसे विषका प्याला लेते हुए और मुसकराते हुए कटोरा माथेसे लगाती है तथा सिर नवाती है)* प्रह्लादके लिये खंभा फाड़कर रक्षा करनेवाले मेरे गिरिधर! आपका 'चरणामृत' शिरोधार्य है। *(विषके कटोरेको माथेसे लगाकर मुँहकी ओर लाते समय विषके रंगपर दृष्टि पड़नेपर)* इस चरणामृतका रंग तो मेरे श्यामसुन्दर-जैसा ही है, इसको पीकर तो मैं उसीके रंगमें रँग जाऊँगी।

[यह कहकर मीरा विषको गटक जाती है।]

दासी—महारानीजी, यह आपने क्या किया?

दयाराम—मैं पापी हूँ! चंद मोहरोंके लोभके कारण मैंने पाप किया। मीरा बहन, मुझे क्षमा करना। *(दयारामने गिरिधरकी ओर देखा तो उनका नील वर्ण हो रहा था)* मीरा बहन, देखो-देखो, यह क्या हो गया! मैं पापी, मैं पापी। मैं अभागा अभी आत्महत्या करूँगा।

मीरा—*(फिर गिरिधरकी ओर देखकर प्रणाम करती है*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कहती है) भक्तवत्सल, करुणाके सागर प्रभो! यह आपने क्या किया? विषको स्वयं ग्रहण कर लिया। *(मीरा रोती है। ऊदाबाई भी रोती है, दयाराम अपना सिर धरतीपर पटकता है।)*

ऊदाबाई—*(मीरासे)* आज मुझे अत्यन्त संतोष है। विष आपका कुछ नहीं बिगाड़ सका। भाभी, मैं आपकी शरणमें हूँ। मेरे पापोंको क्षमा करना।

दृश्य—१५

विष-युक्त शूल-सेज

विक्रम—*(मन्त्रीसे)* मीराको समाप्त करनेके सब उपाय विफल हुए। राजपूतोंवाला उपाय करना ही पड़ेगा *(तलवारकी ओर देखता है। उठकर तलवार उठाता है)।*

मन्त्री—महाराज! मीराको तलवारसे मारनेपर सारे राज्यमें सदाके लिये रोष फैलेगा। विद्रोह भी हो सकता है। आप ऐसा कार्य कदापि न करें। हमारे हाथमें कितने और सरल उपाय हैं। एक निश्चय कारगर उपाय बताऊँ?

विक्रम—विलम्ब न करो, मन्त्री। जल्दी बताओ और करो भी।

मन्त्री—विषयुक्त एक शूल-सेज मीराको भेज दें, उसके ऊपर जब वह सोयेगी तो उसके तीक्ष्ण काँटे उसे स्वतः ही मार देंगे।

विक्रम—यह अच्छा सुझाव है। मन्त्रीजी, एक ऐसी ही सेज भिजवानेका प्रबन्ध करो।

मन्त्री—जो आज्ञा *(मन्त्रीका प्रस्थान)*

[एक सेज कर्मचारी उठाकर मीराके पास ले जा रहा है। उसके ऊपर तीक्ष्ण काँटे हैं। सेज कमरेमें बिछा रहा है। मीरा आती है, उसपर बैठती है तो चारों ओरसे फूल गिरने लगते हैं। कर्मचारी स्तब्ध रह जाता है।]

दृश्य—१६

पिटारीमें विषधर साँप

विक्रम—*(क्रोधसे एक कर्मचारीसे)* बुलाओ मन्त्रीको। मुझसे छल करनेका उसे दण्ड मिलेगा।

कर्मचारी—महाराज! मन्त्रीजी तो बाहर ही खड़े हैं। मैं अभी लिवा लाता हूँ। *(कर्मचारी दरवाजेमें खड़ा होकर मन्त्रीजीको बुलाता है)* मन्त्रीजी, महाराज आपको बुला रहे हैं। *(मन्त्रीका प्रवेश)*

मन्त्री—महाराजकी जय हो।

विक्रम—तुमने शूल-सेजका सुझाव दिया और बिछा दी फूलोंकी सेज....।

मन्त्री—नहीं महाराज! मीराबाईके पास कोई तन्त्र-विद्या है। क्षमा करें, अब मैंने एक पिटारीमें विषधर साँप बंद करनेकी योजना बनायी है। मीरा पिटारी खोलेगी तो ऐसा विषैला साँप उसको डँसकर पलक झपकते ही समाप्त कर देगा।

विक्रम—कोई कारगर उपाय करो, नहीं तो....।

मन्त्री—जो आज्ञा *(मन्त्री प्रस्थान करता है। बाहर पिटारी एक व्यक्तिको मन्त्री देता है। वह व्यक्ति ले जाकर मीराको देता है)।*

व्यक्ति—माँजी, यह उपहार राणाने गिरिधर गोपालके लिये भेजा है। आज कृष्ण-जन्माष्टमी है। इसीके उपलक्ष्यमें।

मीरा—मेरे गिरिधरके लिये उपहार! *(मीरा पिटारी खोलती है, उसमें शालग्रामकी मनोहर मूर्ति है और दिव्य गन्धसे युक्त सुन्दर हार चारों ओर लिपटे हैं। मीरा अपने हृदय-धनको उठाकर छातीसे चिपकाती है, आसनपर विराजमान करती है और प्रसादी-रूपमें हार पहिनकर गाते हुए नृत्य करती है। ऊदाबाई भी नाचती है और फूट-फूटकर रोती है)—*

मीरा मगन भई हरिके गुण गाय॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दिया जाय।
नहाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय॥
जहर का प्याला राणा भेज्या, इमृत दिया बनाय।
न्हाय धोय जब पीवन लागी, हो गई अमर अचाय॥
सूली सेज राणा ने भेजी, दीजो मीरा सुवाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय॥
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय॥

ऊदाबाई—*(जब पद समाप्त होता है, तब ऊदाबाई आश्वस्त होकर मीरासे कहती है)* भाभी, क्या मैं पापिनी गिरिधरलालजीकी कृपासे सदा वंचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहूँगी? मैं साधनहीन हूँ, प्रेमभक्तिहीन हूँ, परंतु भाभी, भक्तरूपी काष्ठके साथ तो मुझ-जैसे पत्थर-रूपी पापीको तरना ही चाहिये। तुम कृपा करो।

मीरा—ऊदा, उस दीनबन्धुके पास तो सब कुछ है। कृपाकी कोर करें तो बड़ी बात तो नहीं। तुम उनकी पूजाका सामान ठीक करो।

[ऊदाबाई उठती है और पूजाकी सभी सामग्री तैयार करती है। मीराबाईने अपने बिखरे बालोंको सम्हाला। सुहागकी साड़ी पहनकर एक हाथमें करताल ली और दूसरेमें तानपूरा। आतुर स्वरसे गिरिधर, मेरे गिरिधर गोपाल! पुकारा। मीराबाई रोती है और ऊदाबाई सिसकियाँ लेने लगी। मीराबाई अधीर होकर रोते-रोते गाती है—]

प्यारे दर्शन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय॥
जळ बिन कमल, चन्द बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी।
आकुळ व्याकुळ फिरूँ रैन दिन, विरह कलेजो खाय॥
दिवस न भूख नींद नहिं रैना, मुखसूँ कथत न आवे बैना।
कहा कहूँ कछु कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय॥
क्यूँ तरसावो अन्तरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरा दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पाय॥

[गाते-गाते मीरा बेसुध होकर गिर पड़ती है। गिरिधर गोपाल अधिक विलम्ब न कर अब प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं।]

गिरिधर गोपाल—*(मीरासे कहते हैं)* मीरा, मुझे आनेमें विलम्ब हुआ।

मीरा—नहीं मेरे गिरिधर गोपाल, मैंने विरहके क्षणोंमें एक विशेष प्रकारका सुख पाया। प्रभो, यहाँ पधारो।

[मीरा गिरिधरको बैठाकर उनसे बातें करने लगी। ऊदाबाई दर्शन कर प्रसन्न हो रही है।]

मीरा—*(ऊदाबाईसे)* बहन, आज तुम गिरिधर गोपालको अपने इच्छानुसार भोग लगाओ।

ऊदाबाई—अच्छा भाभी *(ऊदाबाईका प्रस्थान)*

मीरा—*(मुसकराते हुए गिरिधर गोपालसे)* प्रभो! आपने किसी चाहनेवालेकी आतुर पुकार सुनकर इतना विलम्ब तो कभी किया नहीं, आज मेरे लिये ही देरी क्यों की?

गिरिधर गोपाल—तुम्हारे गाये भजनका आनन्द ले रहा था। पहले आ जाता तो तुम भजन गाना बंद कर देती। (क्रमशः)

हिंदुत्वकी एकमात्र पहचान—गोरक्षा और गोसेवा

(श्रीदेवरांहा बाबाजीके उपदेश)

गौके साथ हिंदूका सम्बन्ध आत्मा और प्राणका है। केवल यज्ञोपवीत धारण करनेसे, शिखा रखनेसे तथा मठ-मन्दिरमें जानेसे कोई हिंदू नहीं कहलायेगा। हिंदुत्वकी एकमात्र पहचान है—गोरक्षा और गोसेवा। जबतक गौकी हत्याका कलंक जारी रहेगा, भारत सुखी कदापि नहीं हो सकता। गौ माता भारतकी आत्मा है। उसकी आह हर क्षण शासकोंको अशान्त रखेगी। आज हमारे देशमें विनाशके बादल आये दिन मँडरा रहे हैं। सर्वत्र अकाल-अवर्षण एवं अन्य दैवी विपदाओंसे जो त्राहि-त्राहि मची है, उसका मुख्य कारण है गौ माताका करुण-क्रन्दन। जबतक भारतीय गौकी रक्षाके लिये कृतसंकल्प नहीं होंगे, कदापि त्राण नहीं होगा। अनुपयोगी और वृद्ध गायोंकी रक्षा तथा सेवा उसी प्रकार होनी चाहिये, जिस प्रकार वृद्ध माता-पिताकी होती है। प्रमुख श्रुतियों, सभी वेदों और पुराणोंमें गायकी महिमाका वर्णन है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि गौसे सम्भव है। गायकी महिमाका बखान सामान्य बुद्धिसे परेकी बात है। हम कभी गौ माताके करुणामय उपकारका बदला नहीं चुका सकते।

अतः समस्त हिंदुओंको राष्ट्रव्यापी गो-रक्षा-अभियान सद्यः प्रारम्भ करके नगर-गाँव—सभी स्थानोंपर यथासम्भव गोशालाके निर्माण तथा उसके संचालनार्थ आर्थिक एवं कायिक सहयोगिता निभानी चाहिये। तभी हमारा उत्थान सम्भव है। [प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

सुख लेनेके लिये शरीर भी अपना नहीं है और सुख देने (सेवा करने) के लिये पूरा संसार अपना है।

× × ×

दूसरेके दुःखसे दुःखी होना सेवाका मूल है।

× × ×

धनसे वस्तु श्रेष्ठ है, वस्तुसे मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्यसे विवेक श्रेष्ठ है और विवेकसे भी परमात्मा श्रेष्ठ हैं।

× × ×

मृत्युकालकी सब सामग्री तैयार है। कफन भी तैयार है, नया नहीं बनाना पड़ेगा, उठानेवाले आदमी भी तैयार हैं, नये नहीं जन्मेंगे। जलानेकी जगह भी तैयार है, नयी नहीं लेनी पड़ेगी। जलानेके लिये लकड़ी भी तैयार है, नये वृक्ष नहीं पैदा करने पड़ेंगे। केवल श्वास बंद होनेकी देर है। श्वास बंद होते ही यह सब सामग्री जुट जायगी। फिर निश्चिन्त कैसे बैठे हो?

× × ×

साधन नित्य-कर्मकी तरह किसी निश्चित समयमें नहीं होता, प्रत्युत निरन्तर होता है।

× × ×

'मैं ज्ञानी हूँ' और 'मैं अज्ञानी हूँ'—ये दोनों ही मान्यताएँ अज्ञानियोंकी हैं।

× × ×

वस्तुओंके बिना भी हम रह सकते हैं। जिनके बिना हम रह सकते हैं, उनके हम गुलाम क्यों बनें?

× × ×

किसी भी सुखभोगके आरम्भकालको देखना पशुता है और उसके परिणामको देखना मनुष्यता है।

× × ×

मनुष्यका अन्तःकरण जितना दोषी (मलिन) होता है, उतना ही उसको दूसरोंमें दोष दीखता है। रेडियोकी तरह मलिन अन्तःकरण ही दोषको पकड़ता है।

× × ×

वीरता भलाई करनेमें नहीं है, प्रत्युत किसीकी भी बुराई न करनेमें है।

× × ×

संसारकी तरफ चलनेवालेका कोई भी साथी नहीं होता, पर भगवान्‌की तरफ चलनेवालेके सब साथी हो जाते हैं।

× × ×

सब कुछ परमात्मा ही हैं—'वासुदेवः सर्वम्', पर वे भोग्य नहीं हैं। जो उन्हें भोग्य बनाकर सुख लेना चाहता है, वह दुःख पाता रहता है।

× × ×

अप्राप्त वस्तुकी इच्छा और प्राप्त वस्तुकी ममता ही बन्धन है, परतन्त्रता है।

× × ×

भगवत्प्रेममें जो विलक्षण रस है, वह ज्ञानमें नहीं है। ज्ञानमें तो अखण्ड आनन्द है, पर प्रेममें अनन्त आनन्द है।

× × ×

किसीके अहितकी भावना करना अपने अहितको निमन्त्रण देना है।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५१ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५२ तक रही है।)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश-नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या २८,५२,१०,००० (अट्ठाईस करोड़ बावन लाख दस हजार)।

(ख) नाम-संख्या ४,५६,३३,६०,००० (चार अरब छप्पन करोड़ तैंतीस लाख साठ हजार)।

(ग) षोडश नाम-मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर अमेरिका, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजड़, अंता, अंताना, अंदरसौं, अंबरनाथ, अंबाजोगाई, अंबालाकैंट, अंबाला छावनी, अकबरपुर, अकबरपुर (कुम्भी), अकलतरा, अकलवानी, अकलेरा, अकोला, अकौद, अक्कलकुवा, अक्कलकोट, अक्षयगढ़, अगसौली, अचलपुर सिटी, अजबपुरा, अजमेर, अजमेरी, अजयपुर, अड़ड़ाहाटोला, अथाईखेड़ा, अधिकारी, अधीया, अधोया, अनूपगढ़, अनूपपुर, अपरलंगठा, अबाड़ा, अबोहर, अभुआपुरा, अमझोर, अमडापुर, अमरगढ़, अमरपुर, अमरा, अमरावती, अमलीपाली, अमानगंज, अमापुरा, अमिला, अमृतपुर, अमृतसर, अमेरिगोग, अरई, अरड़का, अरनियाँगौड़, अरनियाचौहान, अरनोदा, अररिया, अरोंली, अर्जुनधारा (नेपाल), अर्जुनपुर, अलकापुरी, अलगोल, अलवर, अलसीसर, अलीगढ़, अलीपुरा, अलीसरिया, अल्मोड़ा, अल्लागंज, अशोकनगर, असढिया, असदपुर, असरीखेड़ा, असवार, असीनचक, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहेरी, आंबले, आगर (गणेश्वर), आगरा, आगराकैंट, आगरीगोश्वार, आगलपुर, आगूचा, आजमपुर, आजमपुर कनेरी, आदमपुर, आदिलाबाद, आदर्शचबा, आमगुड़ी, आमला, आमलीझाड़, आमल्या, आरंग, आरा, आरानवादा, आवाँ, आवापल्ली, आवेर, आसीन, आसेर, आसैर, इंगोहटा, इंदौर, इंफाल, इकनौर, इकपना बसोना, इटारसी, इटावा, इतवाराबुरहानपुर, इब्राहिमाबाद, इमामनगर, इमिलिया, इलाहाबाद, ईंगरा, ईशाचक, ईश्वरपुरसाई, इस्लामपुर, उचंढा, उछटी, उजलपुर, उज्जैन, उत्तरापुर, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उधमपुर, उधौली, उन्नाव, उपरीकला, उपाध्याय टोला, उफरीकलां, उमटा, उमरा, उमरी, उम्मेदपुरा, उरई, उरगा, उल्दन, उँटालड़, ऊँटी, ऊना, ऊसरी, एटा ओझाके छपरा, ओड़ेकेरा, ओमनगरी, ओरछा, ओलादन, ओसरना, औढनपुर, औरंगाबाद (महा०), औरंगाबाद (बिहार), औरई, औराही मोतीनगर, औरैया, कंगटी, कंडा (धारठी), ककडई-सुलह, ककीर, कक्कू,, कचंदा, कटंगटोला, कटक, कटबंध, कटरिया, कटापालि, कटिया, कटिहार, कठार, कठुआ, कठूमर, कठौन, कड़ेल, कतरासगढ़, कथैया, कनकापुर, कनवास, कनेछण, कन्नौद, कपसिया, कपासन, कपिलेश्वर, कपूरथला, कपूरीसर, कमताना, कमालपुर, कमालपुरा, कमासिन, करंजकुर, करकेवल, करकेली, करतारपुरा, करनपुर, करनमेया, करनाल, करम्मर, करवाड़, करहल, करही, करही (वाँसगढ़), कराड, करेली, करौदापानी, करौदी, करींचलगली, कलकत्ता, कलवारी, कलूगा, कलौलीजार, कवडाल, कविलपुर, कसरावाँ, कसहापूर्व, कसुम्पटी, कस्तुरा माल, काँके, कांगड़ा, कांटाबाजी, काँधला, कांपा, काजी-परसौनी, कादरगंज, कादोपानी, कानपुर, कानपुरदुपेकेला, कानरपुरा, कानोड़, कामशेट, कामा, कायमगंज, कारौली, कालंद्री, कालपी, कालांवली, कालाआम, कालाडेरा, कालीबागचौक, कालूपहल, काशीपुर, किकिरदा, किनवट, किल्लेधारूर, किशनगढ़, किशोरी, कीरी बुरु, कुंजनपुर, कुंडबु, कुंडलपुर, कुंदननगरकॉलनी, कुआंगढ़ी, कुँभराज, कुँवरकोटरी, कुँवरपुर, कुकरमुंडा, कुटिलिया, कुटेनपाली, कुड़ाना, कुढाणा, कुदरवाधा, कुरगाँव, कुरमाली, कुरुक्षेत्र, कुरुटोला, कुरेड़ी, कुल्लू, कुसाईकालोनी, कुसुमकलाँ, कुसुम्भी, कुसैला, कूदन, कृष्णानगर, केंदहरा, केउटी, केकड़ी, केज, के० पहरा, केवलारी, केशोपुर, केशोपुरबमनगाँव, केसठ, कैथल, कैथी, कैपखेड़ा, कैराना, कैल, कैलाली, कौंच, कोंडागांव, कोआड़ीमदन, कोकरसा, कोचस, कोच्यूडापट्टी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटड़ी,. कोटा, कोटाडेम, कोठियाल सैम, कोठीजा, कोठीसनसई, कोडपगल, कोडरमा, कोथकलां कोदंडा, कोनाग, को० पटोरी, कोरोराघवपुर, कोल्हापुर, कोसरा, कोसीकला, कोहका, कोहमूखेड़ी, कोहपैंद, कौड़िया, क्यारदा, क्यॉड़क, खंगौड़ा, खंडवा, खंडार, खंडेवला, खंभात-लडवाडा, खगौल, खजुरार, खजूरी, खजूरीरूंडा, खटखरी, खटावदा, खटौराकलां, खड़गपुर, खडीहार, खडौवा, खड्डीकलाँ, खतिया, खन्नाकलाँ, खप्हािकलाँ, खरकड़ी कलाँ, खरखौदा, खरगापुर, खरगोन, खरौनी, खलारी, खलीलाबाद, खवासपुरा, खांडौली, खाखरवाड़ा, खातीपुरा, खानजहाँपुर, खानपुर, खानपुर मेवान, खामगाँव, खालवा, खिजरसराय, खिरनी, खिलचीपुर, खींवसर, खीचन, खुड़ी, खुड़ीमोट, खुरई, खुरहान मिलिक, खुरुसलेगा, खुर्जा, खूंता, खूटलिया, खूटा, खेई, खेड़कागुजर, खेड़कीव्राह्मणान, खेडलीगडासिया, खेड़ाडाबर, खेड़ीराम, खेतड़ीनगर, खेतिया, खेमादेई, खेरोट, खैरखेड, खैरवा, खैरवाबुलाकीपुर, खैरी, खोकराकलाँ, खोड़, खोणा, खोलान, खौड़, गंगधार, गंगापुर सिटी, गंगावख्शपुरवा, गच्छई, गड़रियनपूर्वी, गढ़दीवाल, गढ़पुरा, गढ़-बरुआरी, गढ़बसई, गढ़मोरॉं, गढ़वा, गढ़सान, गढ़ीगढ़सान, गणेशबाजार, गदरपुर, गनेड़ी, गम्हरियाटोला, गया, गरनावद, गरसाहड़, गरोठ, गल्वाटोडा, गहरा, गहासांड़, गांगमौथान, गाँगला, गांधीग्राम, गांवडी, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाजीपुरकलक्टरघाट, गाडखारा, गाड़ाटोल, गारलादेई, गितकेरा, गिरिजास्थान, गीदड़वाहा, गुंडगुर्की, गुड़गाँव, गुडलाचंदन, गुना, गुरदासपुर, गुरसराय, गुरसहायगंज, गुराड़ियाजोगा, गुराडी, गुरारखेड़ा, गुलबर्गा, गुलरियाबाजार, गुलरिया-बर्दिया (नेपाल), गुलवार कोठार, गुललई, गुलाबपुरा, गुलालई, गुलेलाटोला, गूंटूर, गैरतलाई, गैसड़ी बाजार, गोंडा, गोगराबस्ती, गोगावनवाड़ी, गोगावाँ, गोगोलाव, गोठड़ा, गोड़हिया नं० १, गोनौन, गोबरौरा, गोमेर, गोरई, गोरबीकालरी, गोलागोकरणनाथ, गोलाघाट, गोलाना, गोविंदगढ़, गोविंदपुर, गोविंदपुरा, गोसाईगंज, गोसाईपुर, गौतमपुरा, गौरीगंज, गौरीशंकर, ग्वालियर, घगराबस्ती, घगोंट, घड़शीकतैता, घाघरेट, घाटकोपर, घाटपिपरिया, घाटलोदिया, घाटशिला, घाटाखेडी, घाटाबालाजी, घाटाबिल्लौद, घुड़देवा, घोंघा, घोंघौर, घोटातल्ला, घोड़ेगांव, चंगईपुर, चंडीकापुर, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चंदखुरी,चंदननगर, चंदला, चंदवा, चंदेरी, चंद्रनगरकामत, चंद्रहटी, चंपखुरी, चक, चकजलाल, चक्रधरपुर, चतुर्भुजजी, चनारथलकलां, चमरौला, चमाला, चरपोखरी, चांदन, चांदपुराकलाँ, चांदमारी, चाँदराना, चाईबासा, चारपाली, चासनाला, चिंगावनम, चिंचोली, चिंहारा, चिकनियाँ चिकापार-सनाबेड़ा, चिकिनियाँ, चिटगोप्पा, चिडगुप्पा, चिड़ावा, चिमनाखारी, चिरावडा, चिरडीह, चिलकहर, चिलनवाँ, चिलौली, चीचगढ़ चीचली, चुटोबेदिया चुरु, चूड़ीमियान, चूला, चौतराका खेड़ा, चौबटिया, चौबयाना-तालबेहट, चौरई, चौरा, चौरासी, चौरू, चौली, चौवे, चौवेलापेच, छकना, छतौनी, छनछड़ा, छबेनपाली, छापर, छारेटा, छिछोर, छितगाँवमोजी, छेड़ाकणी, जंगलोट, जगतपुरवरिया टोल, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगदीशपुर बधनगरी, जगनेर, जगरौली, जठाई, जड़कपुरा, जतनी, जनपनचत्रम, जनपन चत्रमकूटरोड, जनुना, जनोटी-पालडी, जनौडी, जबलपुर, जमदहा, जमनगंज, जमनेर, जमलापुरध्यान, जमशेदपुर, जमेंनी, जमेली, जम्मू, जम्मूतवी, जयनगर, जयपुर, जरगा, जरहामहका, जरौली, जलगांव, जलपाईगुडी, जलालपुर, जवला, जवानपुरा, जसदण, जसीडीह, जहाँगीराबाद, जहानागंज, जांजगीर, जाखल, जाखोदा, जागीवाड़ा, जाजोता, जानडोल, जाबड़ा, जालंधर, जालंधर शहर, जालना, जालौन, जावरा, जियारामराघोपुर, जियेलगोरा, जुकल, जुमला, जुलाना, जूडे गुडेबल्लूर, जूनालखनपुर, जे०के० पुरम्, जैतारण, जैसनी, जैसलमेर, जैसीनगर, जोंरा, जोगिंदर नगर, जोगिया बस्ती, जोगियारा, जोगीडीह बस्ती, जोजवा, जोधपुर, जोध्याम्होलाई, जोबनीखापा, जोरगामा, जोरवा, जोरावरडीह, जोल, जौनपुर, ज्योतिनगर, झंझारपुर बाजार, झगरपुर, झड़गाँव, झाँसी, झाडा, झालरापाटन, झालावाड़, झावाँ, झासड़ी, झिंझाना, झिकटिया, झिटिया, झिलाय, झींकपानी, झुंझुनू, झुट्ठा, झूलाघाट, झेरली, टनकपुर, टपूकड़ा, टाउन चकिया, टीकमपुर, टेकियाजुली, टेघरा, टेहटा, टोडरवास, टोड़ा, टोड़ारायसिंह, टोला भैसकोट, टोला शिवनरायन, टोलियासर, ठाकुरपुर, ठोरा, डकाचा, डडवाखुर्द, डभरश्रीनगर, डभरा, डाकपत्थर, डालटनगंज, डालामारा, डाह, डिगौली (छजूपुर), डिघारी, डिप्टीगंज, डिमौली, डियाटन, डिलारी, डिवाई, डिहरी, डीहरी, डुंगरियाकलां, डुमरवार, डुमरा, डुमरातरियानी, डूँगरपुर, डेवरेढ़ा, डेहरी, डेहरी आनसोन, डोंगरिया, डोंबिवली, डोईवाला, डोल, ढेंगाडीह, ढेकनाल, ढोसर, ढोसरमोहल्ला, तड़ोला, तमेरपारा धमधा, तरकेड़ी, तराना, तरेंगा, तलोटी, तवड़ा, तसीमों, तांदीबनजार, ताजपुर, ताथेड़, तादलापुर, तारकू, तारले, तारानगर, तालगुप्पा, तालापारा, तालिकोटि, तालरी, तालेड़ा जमात, तासगाँव, तिकुनिया, तितिरा, तिमापुर, तिरोजपुर, तिरुपति, तिरुवण्णामलै, तिरुप्पालैवनम्, तिलहर, तिलावद गोविन्द,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीखमपुर, तुनी, तुसरा, तेंदूखेड़ा, तेंदूखेड़ा सागौनी, तेराजाकट, तेरुरबा, तेवाड़ी खोला, तेहरा, तोरनी, तोषगाँव, तोषीणा, त्रिपोलियाबाजार, त्रिवेनीगंज, थड़ोली, थर्वुचियाबारी, थर्वुचियाबारी मिरिक, थाना, थानाभवन, थामगाड़ा, दगौरी, दतौली, दबलाना, दमोह, दरबेकेरा, दरभंगा, दरी, दरकेसा, दशाल, दहीखेड़ा, दहेंडा, दाँता, दांताभवानगढ़, दाड़ी, दानापुर, दामोरी, दिग्घी, दिलकुशा, दिल्ली, दीपपुरा, दीमापुर, दुधरा, दुधैल, दुधौरा, दुबौली, दुरसड़ा, दुर्ग, दुलापाली, दुलावनी, दूधवा, दूधी, देबावास, देव, देवकुली, देवकुली दुबौली, देवखैरा, देवगढ़, देवगाँव, देवघर, देवढी, देवतालाब, देवनगिरी, देवपुरा, देवपुरी, देवरार-भटमई, देवराली पसहार, देवरी, देवरी उर्फ जगदीशपुर, देवरी, नाहरमऊ, देवरी बखत, देवरी-रानीपुर, देवल, देवली (खुर्द), देवली बाबूजी, देवास, देवेन्द्रनगर, देशभटली, देहरादून, दोघट, दोडवाड, दोनपाह, दोरई, दौलतगढ़, दौसा, धकजरी, धनकुट्टीपुरा, धनकोली, धनकोसा, धनगढ़ी (नेपाल), धनगावां, धनबाद, धनसार धनौजा, धबौली, धरगांव, धरणगांव, धरमपुर, धराकड़, धर्मपुरा, धवरी, धानी बाजार, धामपुर, धार, धारकोठ, धारवाड़, धुबेनपाली, धुलिया, धुले, धूलेट, धेपुरा, धोइंदा, धौलपुर, धौलादेवी, ध्रांगध्रा, ध्रुवगंज, नंगनल्लूर, नंदपुर, नंदपुर (निनौआ), नंदौर, नंदौरखुर्द, नई ऊपरी, नई दिल्ली, नगरह, नगरा, नगला जैल, नगलामुर्ली, नचाय, नजफगढ़, नजीबाबाद, नत्थुवावाला, नदवई, नबाशहर चोआबा, नयानगर, नरयावली, नरला, नरसिंहगढ़, नरही, नरायनपुर, नरी, नल्लजर्ला, नवकापुरा, नवगाँई, नवरंगपुर, नवरगांव, नवलपुर, नवादागिद्धौर, नवापारा-तानवट, नसीबपुर, नांदखेड, नांदिया, नांदेड, नांद्रा, नांद्राहवेली, नकोट, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाडोली, नाथद्वारा, नादोरा, नादौनबेला, नानोरा, नापासर, नापुर, नायला, नारनौल, नावर्दा, नावली-बृन्दावन, नावापारा, नाहरगढ़, नाहरपाड़ा, निघवा, निटूटी, निनोर, नियाड़ा, नियामतपुर, निरमंड, निहाल, नीदर, (मंडरायल), नीमच कैंट, नीमड़ी चाँदावता, नेनोद, नेवढ़ी, नेवरी, नैनवारा, नैनीताल, नैमिषारण्यतीर्थ, नोएडा, नोदड़ा, नोनैती, नोवी, नोहर, नौआगढ़ी, नौगाँव (बृद्धकेदार), नौघई, नौनेती, नौरंगाबाद, न्यालकल, न्योली, न्हावी, पंचकूला, पंडरीतराई, पंडरीपानी, पंतनगर, पखराना, पचपदरानगरा, पचरुखिया, पचार, पचौरी, पजटवाडा, पटखौली मलकौली, पटना, पटियाला, पठखौली, पठानकोट, पड़री (गोदन), पड़रीखुर्द, पड़िदारा, पढना, पतारी, पतिउरा, पतैली, पत्तेरापाली, पथरापट्टी, [illegible]

पनकी, पनगरा, पनवाड़, पनवाड़ी हाट, पनिहारी, परनाली, परभणी, परलीपार, परवानू, परसा, परसोदागूजर, परियर, परीक्षितगढ़, परेवरा, परौल, पलसी, पलसोडा, पलाड़ा, पलायथा, पलासडोह, पलियाकलाँ, पलेई, पशुपतिनगर, पसगवाँ, पहाड़पुर, पहारपुर, पहारपुर स्टेशन, पाँगना, पांचपदरिया, पांचोर, पांडातराई, पांडुकेश्वर, पांडुकेश्वर (बद्रीनाथ), पांडेयटोला, पाँडो, पाइपनकाखिरक (सिमरा), पाकेरी बारी, पाखाटोला, पाचरगंगा, पाटमऊ, पाटौदी, पाढर कवड़ा, पानापुर, पानीपत, पाबडा, पारली, पालमपुर, पालवी, पाली, पाली मारवाड़, पाहरपुर पांडेडीह, पिंप्री (डिक्कर), पिपरा बिट्ठल, पिपरिया, पिपरीगहरवार, पिपरीमरियानी, पिपलेट, पिपल्या-बुजुर्ग, पिरमा, पिलखुवा, पीपलज, पीपलवाड़ा, पीपली आचार्यान, पीरो चौक, पीलीभीत, पुंगाहेड़ी, पुंडा, पुणे, पुनहा, पुनास-बेदुलिया, पुनाहना, पुर, पुरान, पुराना-भोजपुर, पुरी, पुरेना, पुरुलिया, पूना, पूराबक्सराय, पूरेतुलसीराम तिवारी, पूर्णियाँ, पूसा, पेंडलवाडा, पेशोक टी० ई०, पैंची, पोरबंदर, पोलादपुर, पोहकरवास, प्रतापगढ़, प्रतापपुर, प्रीतमपुरी, प्रेमटोला, फतेहगंज पूर्वी, फतेहगढ़, फतेहपुर, फत्तेपुर, फरदफोड़, फरहदा, फरीदकोट, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागी, फाजिल्का, फिरोजाबाद, फुंधोलिंग, फुलहर, फुलहर-१, फुलेरा, फूलपुररामा, फोर्ट रामपुर, बंगलौर, बंजी बहाल, बंडामुडा, बंतोल, बंध बाहाल, बंधुछपरा, बंबई, बंबेली, बंसरा मऊ, बक्सर, बगरू, बगहा, बगही, बगही (योगापट्टी), बगाहर, बग्वाली पोखर, बघेजी, बजहा, बजीरपुर, बड़गांवखुर्द, बडगाँव गोडा, बड़नगर, बड़भोगीया, बड़लियास, बड़वानी, बड़सरी जागीर, बड़सोला, बड़हिया, बड़ाखड़ कलाँ, बड़ागांव, बड़ावहा, बड़ीमलावाँ, बड़ोसा, बड़ौदा, बदायूँ, बनटोल, बनत, बनवारी बसंत, बबाडी, बबेडी, बमनाला, बयाना, बरकतपुर, बरटोला, बरदाहा, बरनाला, बरमसर, बरमा, बरमाठाकुरबारी, बरवाडीह, बरहापुर, बरही, बरा, बराकर, बराजोकपुर, बरारी, बरेली, बरोरी, बरौला, बरौली, बरुआरी, बरुआघाट, बलरामपुर, बलरामपुर-तलगड़, बलवाड़ा, बलहारपुर, बलौदा बाजार, बल्लभगढ़, बल्लारपुर, बल्लूपुर, बल्हारपुर, बसंतपुर, बसिया-मानसा, बसौनी, बस्सी, बहड़, बहराइच, बहरोड़, बहादुरगढ़, बहादुरपुरगढ़, बहिरामपुर, बहेर, बाँकी, बाँकीमोगरा, बाँगरोद, बाँदरी, बाँदीकुई, बांसा कलाँ, बाकुड़, बागपिपरिया, बागबहरा, बागर, बागलुंगबजार, बाघेचा, बाड़ी, बाढ़, बाद, [illegible], बाबूबिशुनपुर, बामनियाँ कलाँ, बामोरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाला, बाराँ, बाराबंकी, बारालोटा, बाल सावंगी, बालसी, बालाघाट, बालाचड़ी, बालापुर, बालासोर, बालेसर, बालोड, बालोतरा, बालोद, बास, बासदेवा सिंधिया, बिकूवादाग, बिगाही, बिछौदना, बिजनौर, बिजुआ, बिठौली, बिरलाग्राम नागदा, बिरसा, बिशौनी, बिसरा, बिसाऊ, बिहार, बिहार (उन्नाव), बीकानेर, बी०कैथी, बी०खड़रवार, बीड, बीदासर, बीरमपुर, गढ़शंकर, बीलवा, बीलाग्राम, बीसापुरकलाँ, बुंदेली, बूँदी, बुधवारी बाजार, बुद्धिकामना, बुरदा, बुरहीरोमा, बुरमाजरा, बुलंदशहर, बेटसांगली, बेतिया, बेदिया, बेनोड़ा (शहीद), बेरलीखुर्द, बेराघाट, बेरी, बेलईघाटा, बेलकुर, बेलरगांव, बेल्दा, बैका-विष्णुपुर, बैतडीपाटन, बैतूल, बैना, बैरटोली, बोकठा, बोकारो, बोडा, बोताड, बोरावड़, बौड, बौलखेड़ा, ब्यावर, ब्रजराजनगर, ब्रह्मपुर, ब्रह्मपुरी, ब्रह्मावली, ब्राह्मणटोल गोठ सिमरी, भंडारिया, भंदेमऊ, भक्तमपुर, भक्तिनगर, भगलपुरा, भगवानपुर, भगवानपुरा, भग्यापुर, भजनगामा, भटटूकलाँ, भटगांव, भटली, भटवाड़ा, भटवाड़ा जालमसिंहका, भटवारी, भदलिया नोसर, भद्रकाली, भद्रावती, भभुआ, भमावद, भर, भरतपुर, भरथना, भरथाबेलभरिया, भरथुआ, भरूब, भलुहारोर, भलेरा, भवानीपुरा, भवानी मंडी, भसहीमझरिया, भाँकरी, भागनबीघा, भागलपुर, भाटापारा, भाटाबाड़ी, भादरा, भारौलीखुर्द, भिंड, भिखनी पीपराडीह, भिलाई, भिवानी, भीजपुर, भीकनगाँव, भीखनीडीहपीपराडीह, भीखमपुर, भीखमपुरा, भीमरायनगुडी, भीलवाड़ा, भुज, भुवनेश्वर, भुसावल, भूपालसागर, भेईकलां, भेड़रा, भेड़वन, भेड़वा, भेड़ेगाँव, भेडोली, भेला, भैंसवाही, भैंसादरहा, भैरवपुर, भोगपुर, भोजपुर उतरौला, भोजपुर (कोल्हुइया), भोनगिर, भोपाल, भोलग-कंगर, भोसर, भौंराटोली, भ्रमरपुर, मंगलापटना, मंगलौर, मंगलौर टाउन, मंगोनाकलाँ, मंझरिया, मंडला, मंडलेश्वर, मंडावरी, मंडी, मंडी अटेली, मंत्रीनगर, मंथनी, मंदर, मंदसौर, मंदोरी, मऊ, मकराना, मखदुमपुर, मखमेलपुर, मगरमू, मछलीशहर, मझेबला, मटेहनी, मड़ावदा, मंडुहर, मडोरी, मतवाना, मतवारी, मत्तौर, मथुरा, मदनगंज, मदनपुरा, मदुरै, मद्रास, मधुबन, मधुरापुर, मनफरा, मनासा, मनिगाँव, मनियाँमऊ, मनिला, मनोहर थाना, मबूतीशाला, मरदानपुर, मरारीटोला, मरौंदा, मरौदा मझवारा, मर्दनपुरवा, मलंगवा, मलकलीपुर डेवढ़ी, मलकापुर, मलारना डूँगर, मलारा, मलासी, मलिनियाँ दिरा, मल्दी, मवइया, मवैया (चैनपुर), मसवानपुर, मसूदा, महगाई, महथी, महनियावास, महरागाँव, महराना, महादेवघाटरामपुरा, महाबीरनगर ढेंगाडीह, महाबीर स्थानजोगेयाँ, महासमुंद, महिषी, महुआखेड़ा, महुआर, महुआवा, महूँमंडी, महू, महेशपुर, महेशवारा, महेशा, महेशाफरकपुर, महोली, मांडल, मांडलगढ़, माइजा, माकड़खेड़ा, माखाड़-मुंडवा, माचनूर, माचाडी, माछरौलीं, माड़ीपुर, माधवनगर, माधोपुर, माधोपुर गोविंद, मानपुरदेवड़ा, मानसा, मानहड़, मानिकचौक, मानिकतला, मानीपाल, मायना, मायागढ़ी इस्टेट, मारकंडा, मारकन, मारवाड़ जंक्शन, मालपुर, मालपुरा, मालराजुरा, मालाकोली, मालेर कोटला, मासलपुर, माहीरा, मिरनपुर कटरा, मीरजापुर, मीरानपुरा, मिर्झापुर, मुंगावली, मुंगेली, मुंडवाड़ा, मुंडीवाड़ा, मुक्तसर, मुगलसराय, मुगलानी चक, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुजाहिदपुर, मुढेना, मुर्त्तिया, मुत्तौर, मुनीरिका, मुरादनगर, मुरादाबाद, मुलकी, मुल्लापुर, मुशेदपुर, मुहम्मदाबाद-गोहना, मेड, मेड़तासिटी, मेथौरबिसमपुर, मेरठ, मेहन, मेहराणां, मेहाना, मैगलगंज, मैनपुरा, मैनपुरी, मैनागुडी, मैलन, मैलाना, मैहर, मैसूर, मोतलाकलाँ, मोतिहारी, मोतीनगर, मोढरा (माताजीका गाँव), मोदीनगर, मोहगाँव हवेली, मोहनपुरा, मोहम्मदपुर खाले, मौजपुर, मौडा, मौधिया, मौनामहिमा, मौरोज, मौहरीबरटोला, म्याऊँ, म्याजसार, यमुनानगर, यवतमाल, येताला, येवला, रंगत, रंगिया, रंधाड़ा, रंधीरगढ़, रक्सौल, रगौली, रघुनाथपुर, रघुनाथपुरा, रघुराजगढ़, रजऊपरसपुर, रजपुरा, रठेरा, रतनगढ़, रतलाम, रत्ननगर, रत्ननगर-२ (नेपाल), रबूपुरा, ररी, रहिनवागांव, रहिनियांपुर, रहीनापूर्वी, रसिकपुर, राँची, राँटी, रांहेरा, राऊरकेला, राजकुमारीनगर, राजगांगपुर, राजगीर, राजग्राम, राजनांदगांव, राजियावास, राजुरवाडी, राज्यावास, राणावास, राणीगाँव, रानिटोल, रानी, रानीघाट, रानीपुर, रामकोट, रामकोट (सई), रामगंजमंडी, रामगढ़, रामगढ़वा, रामगांव, रामचौरा, रामनगर, रामनगर अमौर, रामपुर, रामपुर-कोलियारी, रामपुरजलालपुर, रामपुरबखरा, रामपुर माधो, रामपुरवाबाजार, रामपुरा, रामपुरा क०, रामेश्वर, रायथल, रायपुर, रायपुर (राज०), रायपुर छोटा, रायपुर जागीर, रायपुर सानी, रायबरेली, रायसिंहनगर, रारा, राल, रावतपुर, रावतपुरगाँव, रावतभाटा, रावतसर, रासीकाडेरा, राहतगढ़, रियूर, रिसौली, रीरवादादर, रुड़की, रूपाखेड़ी, रूलही, रूवातला, रेंदडी, रेड़ावद, रेवंत, रेवई, रेवाडी, रेहटी, रोंसरा, रोपड़, रोहतक, रोहानाकलाँ, रोहुणा, रौनिया, लंका, लक्सर, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मीनारायणपुर, लक्ष्मीपुरककढ़िया, लक्ष्मीपुरसायत, लखनऊ, लखनपुर, लखीबाग, लखीमपुरखीरी, लखीसराय, लखोरिया, लखौरी, लचिदा, लछुमनपुर, लट्टा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लत्ता, लभेड़ापिछोर, ललितपुर, लवहर-फरना, लवाइच, लश्कर, लसानी, लाखनडिहरा, लाखेरी, लाडनूँ, लाडवा, लायफल, लारोन (पलेरा), लालगंज, लालगेरी-ब्रह्मनिपुरा, लालपालपुर, लालपुरा, लालसिं, लालसोट, लालाका बाँसी, लावन, लासूर स्टेशन, लिलवानी, लिलुआ (हाबड़ा), लुआबहल एच० एस०, लुधियाना, लुहारी, लूणकरणसर, लैलूँगा, लोईंग, लोईसिंगा, लोईसिंहा, लोटखेड़ी, लोधना, लोपड़ा, लोफंदी, लोरमी, लोहंडिया बाजार, लोहरदगा, लोहा, लोहार्दा, लौमुंडा, लौर, लौरिया, वखरी, वगही, वजीरपुर, वड़गांव, वडगांव (गोडा), वनखंडा, वनमालिपुर, वचेला तल्ला, वरटोला, वरदय्यपालेम, वरलंगा, वरवाडीह, वरावल, वरुड, वरोड़ी, वरोरा, वर्धा, वल्टीकरी, वसंतपुर, वसोहली, वहरांवडा, वाघेचा, वाजीदपुर, वाडा, वानियमवाडी, वानीपुर, वारंगल, वारहाछोटा, वाराणसी, वारू, वालधुनी, वालापुर, वासनी, वासुदेवकोना, वास्कोडिगामा-गोआ, विकाराबाद, विकुवादाग, विचपुरी, विजयनगर, विजयानगरम्, विजियानगरम्, विजुआखीरी, विझड़ी, विदिशा, विरलाग्राम, विरार, विरालनी, विरासनी, विरौंधी, विलशंडा, विशनखेड़ी, विशनपुरा, विशाखापटनम, विशाड़, विशुनपुर, विशुनपुरा, विश्वम्भरतिवारी, विश्वम्भरपुर, विष्णुपुर, विहारशरीफ, वीरपुर, वीरमपुर-गढ़शंकर, वीरवाँ, वेणीनाग, वेरावल, वैनी, वैर, वौहरेका वास, शकरा, शनिश्चरेबाजार, शहडोल, शहापुर, शामती, शाह, शाहगढ़, शाहजहाँपुर, शाहजादपुर, शाहदरा दिल्ली, शाहपुर, शाहपुर (पंडितटोला), शाहपुर कंडी टाऊनशिप, शाहपुर टहला, शाहबादमारकंडा, शाहाबाद, शाहोपुरबरमा, शिंग्रीबंगाली, शिंभूनगर शिकोहाबाद, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिबूनगर भामर, शिमला, शिवगंज, शिवगढ़, शिवपुरी, शिवराजपुर, शिवाड़, शीशूपुर, शुजालपुर, शुजालपुरमंडी, शुभलाई, शेखोपुर, शेगांव, शेरगढ़, शेरूणा, शेवडी, शेवतर, शोरापुर, शोरोकटरा, श्योपुरकलाँ, श्रीकरनपुर, श्रीरामपुर, श्रीरामपुर (ढुट्ठी), श्रीवैकुंठम्, श्रीशिरनियाँ, संकेश्वर, संगरिया, संजौली, संतोषगढ़, संतोषपुर, संतोषिटोल-धनगढ़ी, संदा, संभरलेक, संहौली, सकड्डीमठीयाँ, सकरार, सगरा, सगवर, सघोट, सजनपुरा, सड़रा, सतगढ़ मजेड़ा, सतजोरी, सतना, सथरा, सनई चौराहा, सनकिया, सपोटरा, सफीपुर, सबलगढ़, समर्था, समेसर, सयालदह, सरखंडया, सरखों, सरदारशहर, सरमेरा, सरवाड़, सरस्वतीनगरदौसा, सराय अगहत, सरासत, सरिया, सरैंधी, सरैया हाट, सर्रा, सलकाया, सलकिया, सलारी, सलावद, सलिहा माँठा, सलेमपुर, सवजपुरा, सवाईमाधोपुर, सस्तरा, सहरना, सहरी, सहार, सहारनपुर, सांगली, सांडिया, साँवली, साईवाड़मोड़, साकेत, सागर, सागरपुर, सागोद, सागोर, साढ़मल, साधपुर, सायल, सायला, सालमपुरा रोड, सालिमपुर, सालेवाडा, सालोन-बी, सावन-भादौं, सावनेर, सासाराम, साहवा, सिंगाही, सिंगोरी, सिंगोली, सिंघाना, सिंडोली, सिंहनिवास, सिगौली, सिडको, सितारगंज, सिद्धरामपुर, सिरसगांव कसबा, सिरसा, सिरसिया, सिरसी, सिरसुन, सिरहौल, सिरोचा, सिरोंज, सिवनी, सिहाल, सिहोरा, सिहोरी, सीकर, सीतलापुरी, सीतामऊ, सीतामढी, सीथल, सीधी, सीनखेड़ा, सीमलखेड़ी, सीमातल्ला, सीरेगाँव, सीवाँ, सीसवाली, सुकरास, सुखबाग, सुजानगढ़, सुनापई, सुनेल, सुपौल, सुमेरपुर, सुरजा, सुरनी, सुलतानपुर, सुलतानपुर-भैलान, सूरतगढ़, सूरी, सूरौठ, सेंट्रल पल्प मिल्स, सेंठा, सेंदमंगलम्, सेऊ, सेढ़ा, सेपोन, सेमरा, सेमरा मेडरौल, सेरुकहा, सेवर, सेवाग्राम, सेहरी, सेहलंग, सैंधवा, सैदनपुर, सोंठवा, सोईकलाँ, सोजत, सोनई, सोनरे, सोनियामार, सोनौरा बुजुर्ग, सोयंदेव, सोलन, सोलापुर, सोहरामऊ, सौरेनी बाजार, स्याङ्जा (नेपाल) स्वार, हंसडीहा, हंसवर, हणेगांव, हथबंद, हथेड़ा, हथौड़ा खेड़ा, हनुमंती, हनुमानगढ़ जंक्शन, हनुमाननगर, हनूतपुरा, हरणखेड, हरदा, हरदी, हरदुआ, हरनाथपुर, हरनी, हरनौत, हरपुररेवाड़ी, हरमनपुर, हरसूद, हरसौली, हरिद्वार, हरिपुर, हरिपुर-डीहटोला, हरियाढाणा, हरियासर, हरिशंकरपुर, हरिशंकरपुर असीनचक, हरीपुर नायक, हरीपुरा जालौन, हलद्वानी, हसदा (गोड़गिरी), हसनापुर, हसामपुर, हसुवा, हाँफा, हाउडीह, हातोद, हाथज, हाथरस, हारसी, हार्सिक टटा, हास्पेट, हिंगणघाट, हिंडौनसिटी, हिंदमोढर, हिमतसर, हिसार, हिसावाँ, हीरापुर, हुबली, हुमायूँपुर, हुसेछपरा, हूर, हेब्बाल, हेली मंडी, हैदरगंज बाजार, हैदराबाद, होशंगाबाद, होशियारपुर, होसिर, ५६ ए० पी० ओ०, ९९ ए० पी० ओ०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

श्रीरामरक्षास्तोत्र एवं श्रीरामार्चनका प्रत्यक्ष चमत्कार

श्रीरामरक्षास्तोत्रके नियमित पाठ एवं श्रीरामार्चनके प्रत्यक्ष प्रभाव तथा चमत्कारका अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त करके मैं मुग्ध हो गया हूँ। इस संदर्भमें ज्ञातव्य है कि विगत लगभग दस वर्षोंसे मैं अपनी यत्किंचित् श्रद्धाके साथ श्रीरामजीकी पावन झाँकीके समक्ष खड़े होकर नियमित रूपसे श्रीरामरक्षास्तोत्रका पाठ करता रहा हूँ, जिसके प्रभावसे मुझे अनायास असह्य विघ्न-बाधाओंका सामना करनेके लिये सामर्थ्य प्राप्त होती रही है और मेरे सभी काम बनते रहे हैं।

श्रीरामरक्षास्तोत्रकी अपार महिमाका स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण तो मुझे तब हुआ जब दि० २६-१२-९४ को मृत्यु-तुल्य कष्ट हर्नियाकी असह्य पीड़ासे व्यथित होकर मुझे ऑपरेशन करवाना पड़ा। ऑपरेशन सफलतापूर्वक हुआ। अपने स्वभाव एवं संकल्पके अनुसार मैंने अंग्रेजी दवाका प्रयोग नहीं किया। ऑपरेशनके बाद भी प्रभु श्रीरामजीके भरोसे मैंने डॉक्टरोंद्वारा निर्धारित अनेक टेबलेट्सका प्रयोग पूरे नर्सिंगहोममें दस दिनकी अवधिमें नहीं किया। फिर भी मुझे किसी भी प्रकारकी पीड़ा तथा व्यथाका अनुभव नहीं हुआ। हाँ, भयंकर बीमारीके इस अवसरपर भी रामरक्षास्तोत्रका मैं स्मरण करता रहा।

डॉक्टरोंने स्वयं ही इस चमत्कारके लिये अपना आश्चर्य व्यक्त किया कि जहाँ मरीज अनेक दवाइयोंके प्रयोगके बाद भी कई दिन पीड़ासे कराहता है, असह्य दर्दसे नींद भी नहीं आती, वहाँ बिना किसी दवाके, बिना किसी कष्टके अच्छी नींद कैसे आ जाती है; पर मुझे तो कोई आश्चर्य नहीं हुआ। प्रभुके अनुग्रहपर क्या आश्चर्य! मेरा शरीर भी स्वस्थ हो गया। ऑपरेशनके दूसरे दिनसे ही मैंने बिस्तरसे उठकर दैनन्दिन कार्य प्रारम्भ कर दिया तथा शीघ्र ही मैं स्वस्थ होकर घर वापस आ गया। यह सब मेरा या मेरे पुरुषार्थका फल नहीं, वरन् मुझे तो यह लगता है कि दयानिधान भगवान् श्रीरामजी ही मुझे हर समय बचाते रहे हैं। मुझसे स्तोत्रपाठ इत्यादि जो कुछ बन पड़ा है, वह भी उन्हींकी प्रेरणा एवं कृपाका फल है। —गोपालदास एडवोकेट

(२)

गोमूत्रका चमत्कार

मैं लगभग १५-१६ वर्षोंसे कब्जरोगसे बुरी तरह पीड़ित था, बल्कि यों कहिये कि बिना दवाके एक दिन भी शौच नहीं होता था। इसके लिये मैंने अनेक डॉक्टरोंसे चिकित्सा करायी, लेकिन कोई विशेष फायदा नहीं हुआ। भोजनसे जरूरी मेरी दवा थी, जिसमें प्रतिमाह लगभग हजारों रुपये लग जाते थे, फिर भी पेट साफ नहीं होता था, बिना दवाके मैं एक-दो दिन भी नहीं रह सकता था।

सन् १९९३ के जनवरी माहके आस-पास मुझे बुखार हुआ, लेकिन उस बुखारसे मैं पूरे एक वर्षतक परेशान रहा। पहले सिरदर्द होता, फिर उलटी होती और फिर बुखार हो आता। बनारसमें रेलवेके एक डॉक्टरकी दवाका एक वर्ष सेवन किया। दवाके सेवनतक तो ठीक रहा, किंतु दवा बंद करते ही १९९५ में फिर वही हाल होने लगा, तब मैं पुनः रेलवेके उसी डॉक्टरके पास गया एवं दवा लेकर 'गीताप्रेस' की दुकानमें गया। वहाँ अपनी पसंदकी कुछ पुस्तकें लीं, उसी समय मेरी दृष्टि 'कल्याण' के 'गोसेवा-अङ्क' पर पड़ी, मैंने उसे उठाकर देखा तो वह मुझे बहुत अच्छा और उपयोगी लगा, तब मैंने अपनेको भी 'कल्याण' का पाठक बना लिया और 'कल्याण' लेकर मैं वापस घर चला आया।

उसी 'गोसेवा'-अङ्कमें मैंने 'गोमूत्र' का माहात्म्य पढ़ा। उस महिमासे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। उसमें गोमूत्रसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा वर्णित थी। पढ़कर तदनुसार मैं भी गोमूत्रका सेवन सुबह मुँह धोकर खाली पेट करने लगा; किंतु बहुत ही आश्चर्य हुआ कि दो-तीन दिनमें ही मेरे सभी रोग—कब्ज, सिरदर्द, उलटी, बुखार खत्म हो गये एवं मैंने सभी अंग्रेजी दवाइयोंका सेवन बंद कर दिया। जबकि मैं एक दिन भी बिना दवाके नहीं रह सकता था। विगत १५ वर्षोंमें मैंने लगभग ८०-९० हजार रुपयेसे ज्यादा सिर्फ दवा आदिमें ही खर्च कर दिये थे। किंतु अब दो माहसे मेरा एक रुपया भी दवामें खर्च नहीं हुआ। मैं तो कभी-कभी जीना भी नहीं चाहता था। रोगोंकी परेशानीसे मैंने तो यह सोचा भी नहीं था कि मेरे जीते-जी रोग ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे, किंतु यह सब गोमाताके गोमूत्रका ही चमत्कार है जो अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।

—अरुणकुमार गुप्ता

(३)

माँ नर्मदाजीकी महान् कृपा

यह सत्य घटना माह नवम्बर १९९४ की है। मैं अपने खेतपर गन्नेकी पेराई करके गुड़ बनानेका कार्य कर रहा था। इस कार्यमें लगभग १५-२० मजदूर लगे थे। इस क्षेत्रमें मजदूरोंकी समस्या रहती है, इसलिये पहाड़ी क्षेत्रसे आदिवासी लोग कामकी तलाशमें प्रतिवर्ष यहाँ आ जाते हैं। ईश्वरकी कृपासे प्राय: सभी कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो गये थे, परंतु अन्तिम दिन एक ऐसी घटना घटी कि आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं एवं माँ नर्मदाजीके प्रति श्रद्धासे अपने-आप सिर झुक जाता है।

हुआ यूँ कि मेरे खेतपर जहाँ गुड़ तैयार किया जा रहा था, उसके पास ही एक छोटी-सी घास-फूँसकी झोंपड़ी बना ली गयी थी। उस दिन शामको सारे कामोंसे निवृत्त होकर मैं उसी झोंपड़ीमें बैठा हुआ था। २-३ मजदूर जो कि गाँवके ही थे, मेरे पास ही बैठे थे, सभी प्रसन्नचित्त थे कि अपना कार्य सकुशल सम्पन्न हो गया। इतनेमें एक आदिवासी बुजुर्ग भी वहाँ आकर बैठ गया, यहाँ-वहाँकी चर्चा होने लगी, उसी चर्चाके दौरान उस आदिवासीने मुझसे कहा—'भैयाजी! अब अपना काम तो समाप्त ही हो गया है और २-४ दिनमें हमलोग अपने गाँव भी चले जायँगे, आप कृपा करके हमें नर्मदाजी स्नान करा दीजिये।' मैंने कहा—'दाऊ, (सभी लोग उसे दाऊ कहकर ही पुकारते थे, क्योंकि वह बुजुर्ग लगभग ६२-६५ वर्षकी आयुका है।) अभी ३-४ दिनमें पूर्णमासीका पर्व आनेवाला है, उसी दिन हम सभी लोग ट्रैक्टरसे नर्मदाजी स्नान करने चलेंगे, तुम भी चलना, वहींपर स्नान करेंगे और शामतक वापिस भी आ जायँगे।'

हमारे गाँवसे नर्मदाजीका पावन तट ८-९ किलोमीटरकी दूरीपर है। नर्मदाजीका यह पावन तट 'ब्रह्माण घाट' कहलाता है। उस आदिवासी बुजुर्गसे मेरी बातें इस प्रकार हो रही थीं तो उसने फिर कहा—'भैयाजी! आप हमें नर्मदाजी स्नान कराने अवश्य ले चलना, मैं अभीतक नर्मदाजी स्नान करने नहीं गया हूँ।' इसपर मैंने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—'चिन्ता मत करो, तुम्हें नर्मदा-स्नानके लिये अवश्य ले चलूँगा।' वह मेरी बातसे संतुष्ट हो गया।

उसी समय अचानक मेरी नजर झोंपड़ीके अंदर घासमें पड़ी एक शीशीपर गयी। मैंने उसे उठाकर एक नौकरसे पूछा कि इसमें क्या है? उसने कहा—नर्मदाजीका जल होगा। देखनेमें भी वह सफेद जल-जैसा ही लगा। मैंने उस बुजुर्गकी नर्मदाजीके प्रति अत्यन्त श्रद्धाको देखकर कहा—'दाऊ! लो तुम्हारे लिये तो नर्मदाजी यहीं आ गयी हैं, लो यह जल, आचमन करो' ऐसा कहकर मैंने उसके दोनों हाथोंमें वह जल जिसे हम सब नर्मदा-जल समझ रहे थे, उड़ेल दिया। उसने भी 'जय माँ नर्मदा' कहकर २-३ घूँटमें वह जल पी लिया। ४-५ मिनटके बाद वह बोला—'भैयाजी! आपने यह कैसा जल दिया है, यह तो नमक-जैसा खारा-खारा लगता है, पेटमें भी जलन-जैसी हो रही है।' मैंने तुरंत शीशी खोली। उसमें अभी थोड़ा-सा और शेष था। ढक्कन खोलकर सूँघा तो मेरे होश गुम हो गये। चूँकि मैं विज्ञानका विद्यार्थी रहा हूँ, इसलिये मुझे यह समझते देर न लगी कि इस शीशीमें तो एसिड है। बचा हुआ एसिड मैंने जमीनपर उड़ेल दिया, तुरंत जमीनकी मिट्टी भी प्रभावित होने लगी। यह देखकर मैं बहुत घबराया। अब मैंने जल्दी-जल्दीमें उसे १-२ लीटर पानी पिलाया और उलटी करानी चाही, लेकिन उसे उलटी भी नहीं हुई, मुझे चिन्ता होने लगी कि अब इसका बचना मुश्किल है? क्योंकि तेजाबका प्रभाव विष-जैसा भयंकर होता है। लेकिन मुझे ईश्वरपर पूरा भरोसा है। उसी समय न जाने कैसे मेरे मुँहसे यह बात अपने-आप निकल पड़ी—'दाऊ! चिन्ता मत करना, अब यह तेजाब तुम्हारे लिये नर्मदा-जल ही बनकर रहेगा।' घटनाकी बात कानों-कान फैल गयी, भीड़ जमा हो गयी। सभी लोग बहुत चिन्तित थे कि न जाने क्या होगा। चिन्तामग्न मैं अपने घर आ गया। घर आकर मैंने अपनी पत्नीको सब हाल सुनाया, तो उसने भी मुझे धीरज बँधाया कि आप चिन्ता न करें, माँ नर्मदा अच्छा ही करेंगी। रातको चिन्तामें भोजन भी नहीं किया और नींद भी नहीं आयी। सुबह ४ बजे ही उठकर मैं ट्रैक्टरसे नर्मदा-स्नान एवं नर्मदाजीसे उस वृद्ध आदिवासीकी प्राणरक्षाकी प्रार्थना करने निकल पड़ा। सूर्योदयतक मैं नर्मदाजीके घाटपर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर स्नान किया, प्रसाद चढ़ाया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'हे माँ नर्मदे! उस वृद्ध आदिवासीकी प्राणरक्षा करो और मुझसे अनजानेमें हुई भूलके लिये क्षमा करो। मेरे ऊपर लगनेवाले कलंकसे मेरी रक्षा करो, माँ नर्मदे! मैं तुम्हारी शरण हूँ।'

—इस प्रकार प्रार्थना करके मैं शीघ्र ही वापिस अपने गाँव आ गया। पहले खेत पहुँचा,जहाँ वे आदिवासी रहते थे। वहाँ सबसे पहले मुझे वही वृद्ध दिखायी दिया। मुझे देखकर वह मुसकरा रहा था। मैं समझ गया कि यह मुसकराहट माँ नर्मदाने दी है। मैंने पूछा क्या हाल है दाऊ, वह बोला भैयाजी, मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ जैसे कुछ हुआ ही नहीं। मैंने उसका मुँह खुलवाकर भी देखा कि छाले तो आये होंगे, लेकिन उसे कुछ भी नहीं हुआ। मेरी आँखोंसे अनायास ही आँसू उमड़ पड़े। इसके आगे मैं कुछ बोल न सका। बस नर्मदा मैयाकी जय ही बोल सका। माँ नर्मदाकी कृपाको प्रत्यक्ष देख रहा था।

दरअसल जिस शीशीमें एसिड था, वैसी ही शीशीमें नर्मदा-जल भी रखा हुआ था, लेकिन जिस नौकरने एसिड रखा था, वह उस दिन छुट्टीपर था और गुड़के काममें रातको बिजली बंद होनेसे बैटरीसे काम चलाना पड़ता है, इसलिये बैटरीमें डालनेके लिये वह नौकर एसिड लाया था और उसने उसे झोंपड़ीमें रख दिया था। यह एक संयोग-मात्र था कि एसिडकी शीशीके स्थानपर नर्मदा-जलकी शीशीका भ्रम हो गया। पर वही भ्रम जानलेवा बन जाता, यदि साक्षात् नर्मदा मैयाने उस एसिडगें प्रविष्ट होकर उसका दुष्प्रभाव समाप्त कर उसे परम पावन न बना दिया होता।

माँ नर्मदामें तो पहलेसे ही मेरी श्रद्धा थी, लेकिन इस घटनाके बादसे तो श्रद्धा एवं भक्ति दृढ़से दृढ़तर हो गयी।

—कुँवर सुरेन्द्रपाल सिंह

मनन करने योग्य

(१)

टूटा प्रेम फिर उमड़ा

मुजफ्फरपुर जिलेके दक्षिण दिशामें त्यागी ब्राह्मणोंका एक सुन्दर गाँव है। बाबू रामप्रसाद तथा श्यामप्रसाद नामके दो भाई थे। बड़े रामप्रसादके एक लड़का तथा छोटे श्यामप्रसादके दो लड़के थे। परस्पर दोनों भाइयोंमें अत्यन्त स्नेह था, किंतु दोनों भाइयोंकी स्त्रियोंमें परस्पर द्वेष था। इसके फलस्वरूप महासंग्राम शुरू हो गया, मुकदमा चला और छोटे भाईको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी।

श्यामप्रसादने बहुत प्रयत्न तथा अर्थव्यय करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी चाही। दैवयोगसे छुट्टी मंजूर हो गयी। श्यामप्रसाद सीधे मुजफ्फरपुरसे घर आया। अपनी स्त्रीसे पूछा—'आज भैयाके यहाँ भोज है? कल नूनूका (भतीजेका) यज्ञोपवीत है?' इसपर स्त्रीने अन्यमनस्क होकर कहा—'सुननेमें आया था कि आपको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी है और आप जेलमें हैं?' इसपर श्यामप्रसादने कहा कि 'जेलमें तो था ही, किंतु नूनूका जनेऊ है, इसलिये मैंने बहुत प्रयत्न करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी पायी है।' सुनते ही स्त्रीने बड़े आवेशमें कहा—'निमन्त्रणतक तो नहीं है और खानेके लिये बेचैन हो, उस दुष्ट भाईके लड़केका जनेऊ देखनेके लिये रुपये खर्च करके आये हो।' इसपर श्यामप्रसादने कहा कि 'सुनो, 'हम जेलसे आयेंगे, दो-चार वर्षोंतक तेरे तथा मेरे मनमें दुःख बना रहेगा। फिर दोनोंमें मेल-जोल हो ही जायगा। कहोगी कि 'ऐसा नहीं हो सकता' तो मैं कहूँगा 'ऐसा होगा ही।' क्योंकि यही प्रकृतिका नियम है। संयोग-वियोग, प्रीति-वैर होते-जाते रहते हैं। फिर भी हम अनेकों यज्ञ तो देखेंगे, किंतु तुम जानती ही हो कि नूनूका यज्ञोपवीत तो फिर नहीं देख सकूँगा।'

इन दोनोंमें ये बातें हो रही थीं, ठीक इसी समय रामप्रसाद छोटे भाई श्यामप्रसादके आनेकी बात सुनकर लोगोंके कहनेपर श्यामप्रसादको भोजनके लिये बुलाने आये थे। पति-पत्नीमें बात हो रही थी, इसलिये रामप्रसाद भीतकी आड़में खड़े होकर सब सुनने लगे। भाईकी बात सुनकर वे रोने लगे और रोते-रोते अधीर होकर लपककर छोटे भाईको हृदयसे लगा लिया। जब ऊँचे स्वरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषरूपसे दोनों भाई रोने लगे, तब तो वहाँ बहुतसे नर-नारी इकट्ठे हो गये। दोनों भाइयोंको यों स्नेहसे मिलते देखकर भले मानवोंके मनमें राम और भरतका मिलाप-जैसा प्रतीत हुआ। फिर रामप्रसादने भाई श्यामप्रसादको प्रेमपूर्वक भोजन कराया और यज्ञोपवीत हो जानेपर स्वयं मुजफ्फरपुर जाकर अपने पाससे रुपये लगाकर छोटे भाईको छुड़ाकर भ्रातृप्रेमका आदर्श दिखाया। हृदय पलटते ही पूरे परिवारमें प्रेम हो गया। —पं० रामविलास मिश्र

(२)

सुख-दुःख एवं व्यर्थ भटकन

सुख और दुःख एक-दूसरेके प्रतिबिम्ब हैं।

सुखकी खोजमें जानेवाले व्यक्तिके घरपर दुःख बिना बुलाये आता है और दूसरोंको सुख पहुँचानेके लिये स्वयंको दुःखमें होम देनेवाले व्यक्तिको जीवनका सच्चा सुख अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

कुएँपर चलनेवाले रहँटकी तरह सुख-दुःखकी धूप-छाँव भी मानव-जीवनमें आती-जाती रहती है।

इसीलिये कहता हूँ, सांसारिक सुखके पीछे भटकनेके बजाय आन्तरिक सुख प्राप्त करनेका प्रयास करो, क्योंकि वही सच्ची शान्ति प्रदान कर सकता है, जबकि संसारका सुख तो अशान्तिकी आग प्रज्वलित करता है।

सच्चे सुखको प्राप्त करनेके लिये बाहर भटकना व्यर्थ है। वह तो अंदरसे ही प्राप्त होगा।

आन्तरिक आनन्द ही शाश्वत है। बाहरका आनन्द तो एक घड़ीके बाद ही दारुण दुःखमें परिणत हो जाता है।

सांसारिक विषय-वासनाओंमें आनन्द ढूँढ़नेवाले अन्तमें अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि उसके पीछे भोगकी भूख होती है और भोगकी बुभुक्षा ही सबसे बड़ा दुःख है।

x x x

इन्द्रियोंको चाहे जितना तृप्त किया जाय, वे आजतक न तो तृप्त हुई हैं, न हो रही हैं और न होनेवाली हैं।

जिह्वापर जितनी ममता रखी जायेगी, उतनी ही वह अधिक सतायेगी।

जीभको प्रसन्न रखनेकी कोशिशमें आँख भी बिगड़ेगी, मन भी बिगड़ेगा और चेतना भी बिगड़ेगी।

सभ्य व्यक्ति होटल या सिनेमामें आनन्द ढूँढ़ते हैं, किंतु वहाँ जीभ और आँखोंके बिगड़नेके अतिरिक्त और क्या लाभ होता है?

पैसे खर्च करके तीन घंटे तक अँधेरेमें भीड़के साथ बैठे रहनेमें कौन-सी बुद्धिमानी है?

सिनेमा मनोरंजनका साधन नहीं, अपितु मन बिगाड़नेवाला मनोभंजनका साधन है।

इसको देखनेसे मनको विश्राम नहीं मिलता और उलटे दुःखका अनुभव होता है। इसका कारण यह है कि शृंगारिक दृश्योंको देखकर बिगड़ा हुआ मन स्पर्शसुखके लिये पागल बन जाता है.......और जीवनका सम्पूर्ण विवेक खो बैठता है।

x x x

आनन्द प्राप्त करनेके लिये बाहरके साधनोंमें भटकनेवाला आनन्दके बदले दुःख ही प्राप्त करता है।

निर्मल आनन्द प्राप्त करनेके लिये तो अंदर झाँकना आवश्यक है।

इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हों तो आनन्द प्राप्त होगा और यदि वे बहिर्मुखी होंगी तो सुख-दुःखमें पड़ेंगी।

अर्थात् बाहरके साधनोंमें तो आनन्द है ही नहीं, इतना निश्चित है। बाहरके साधनोंमें यदि आनन्द होता तो अजीर्णके रोगीको स्वादिष्ट भोजनमें अरुचि क्यों होती?

अतः मन जब अन्तर्मुखी होता है तभी वह चैतन्य परमात्माका स्पर्श कर सकता है। और जब चेतन प्रभुका स्पर्श होता है, तभी अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है।

आत्माके स्वरूपमें स्थिर रहनेवालेको ही शाश्वत शान्ति और आनन्दका अनुभव होता है।

आनन्द आत्माका सहज धर्म है जबकि सुख-दुःख मनके स्वाभाविक धर्म हैं। इसीलिये आनन्द प्राप्त करनेके लिये आजसे ही बाहरके साधनोंके पीछे भटकना छोड़ दो।

—गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्व-शान्तिके लिये श्रीहरिके नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीयपुराण)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्‌के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्‌के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण, जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष तीस करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। प्रसन्नताकी बात है कि गत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष लोगोंने बड़े उत्साहसे भगवन्नामका जप किया तथा जप करनेवाले साधक महानुभावोंकी संख्यामें वृद्धि भी हुई। विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनके अनुसार अट्ठाईस करोड़ बावन लाखसे कुछ अधिक मन्त्र-नाम-जप हुए हैं, जिन्हें इसी अङ्कके पृष्ठ-संख्या ८४४ से ८४८ तकमें प्रकाशित किया गया है। पिछले वर्ष इस नाम-जपकी संख्या लगभग सत्ताईस करोड़ निन्यानबे लाख थी। अतः आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष तीस करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल वि०-सं० २०५३ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

१-जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क ७। ११। १९९५ई०) मंगलवार रखी गयी है। इसके बाद भी किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०५३ को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

२-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३-एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

४-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अङ्गुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

५-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समयपर आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

६-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

७-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिमन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

८-प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

९-जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर और प्रभावक बनते हैं।

१०-सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण'—सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका
सम्पादक—'कल्याण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरि: ॥

गीता-ग्रन्थका सार

अध्याय

१. सांसारिक मोहके कारण ही मनुष्य 'मैं क्या करूँ और क्या नहीं करूँ'—इस दुविधामें फँसकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। अत: मोह या सुखासक्तिके वशीभूत नहीं होना चाहिये।

२. शरीर नाशवान् है और उसे जाननेवाला शरीरी अविनाशी है—इस विवेकको महत्त्व देना और अपने कर्तव्यका पालन करना—इन दोनोंमेंसे किसी भी एक उपायको काममें लानेसे चिन्ता-शोक मिट जाते हैं।

३. निष्कामभावपूर्वक केवल दूसरोंके हितके लिये अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करनेमात्रसे कल्याण हो जाता है।

४. कर्मबन्धनसे छूटनेके दो उपाय हैं—कर्मोंके तत्त्वको जानकर नि:स्वार्थभावसे कर्म करना और तत्त्वज्ञानका अनुभव करना।

५. मनुष्यको अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंके आनेपर सुखी-दु:खी नहीं होना चाहिये; क्योंकि इनसे सुखी-दु:खी होनेवाला मनुष्य संसारसे ऊँचा उठकर परम आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता।

६. किसी भी साधनसे अन्त:करणमें समता आनी चाहिये। समता आये बिना मनुष्य सर्वथा निर्विकल्प नहीं हो सकता।

७. सब कुछ भगवान् ही हैं—ऐसा स्वीकार कर लेना सर्वश्रेष्ठ साधन है।

८. अन्तकालीन चिन्तनके अनुसार ही जीवकी गति होती है। अत: मनुष्यको हरदम भगवान्का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे अन्तकालमें भगवान्की स्मृति बनी रहे।

९. सभी मनुष्य भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश, वेश आदिके क्यों न हों!

१०. संसारमें जहाँ भी विलक्षणता, विशेषता, सुन्दरता, महत्ता, विद्वत्ता, बलवत्ता आदि दीखे, उसको भगवान्का ही मानकर भगवान्का ही चिन्तन करना चाहिये।

११. इस जगत्को भगवान्का ही स्वरूप मानकर प्रत्येक मनुष्य भगवान्के विराट्रूपके दर्शन कर सकता है।

१२. जो भक्त शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसहित अपने-आपको भगवान्के अर्पण कर देता है, वह भगवान्को प्रिय होता है।

१३. संसारमें एक परमात्मतत्त्व ही जानने योग्य है। उसको जाननेपर अमरताकी प्राप्ति हो जाती है।

१४. संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे अतीत होना जरूरी है। अनन्यभक्तिसे मनुष्य इन तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है।

१५. इस संसारका मूल आधार और अत्यन्त श्रेष्ठ परमपुरुष एक परमात्मा ही हैं—ऐसा मानकर अनन्यभावसे उनका भजन करना चाहिये।

१६. दुर्गुण-दुराचारोंसे ही मनुष्य चौरासी लाख योनियों एवं नरकोंमें जाता है और दु:ख पाता है। अत: जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेके लिये दुर्गुण-दुराचारोंका त्याग करना आवश्यक है।

१७. मनुष्य श्रद्धापूर्वक जो भी शुभ कार्य करे, उसको भगवान्का स्मरण करके, उनके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ करना चाहिये।

१८. सब ग्रन्थोंका सार वेद हैं, वेदोंका सार उपनिषद् हैं, उपनिषदोंका सार गीता है और गीताका सार भगवान्की शरणागति है। जो अनन्यभावसे भगवान्की शरण हो जाता है, उसे भगवान् सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देते हैं।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

नाम	कल्याण-वर्ष	मूल्य	नाम	कल्याण-वर्ष	मूल्य	नाम	कल्याण-वर्ष	मूल्य
शिवाङ्क	८	८०.००	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	२४	७५.००	भक्ति-अङ्क	३२	८०.००
शक्ति-अङ्क	९	७०.००	स्कन्दपुराणाङ्क	२५	१००.००	सं० योगवासिष्ठाङ्क	३५	६५.००
योगाङ्क	१०	६०.००	भक्त-चरिताङ्क	२६	८०.००	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	३७	६५.००
संत-अङ्क	१२	९०.००	बालक-अङ्क	२७	७०.००	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	४३	६५.००
साधनाङ्क	१५	७५.००	सं० नारद-विष्णुपुराणाङ्क	२८	८०.००	श्रीगणेश-अङ्क	४८	६०.००
सं० मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क	२१	६५.००	सत्कथा-अङ्क	३०	६५.००	श्रीहनुमान-अङ्क	४९	५०.००
नारी-अङ्क	२२	७०.००	तीर्थाङ्क	३१	८५.००	(प्रत्येकका रजिस्ट्रीसहित डाकखर्च रु० ८.०० अतिरिक्त)		

नाम	वर्ष	मूल्य	डाकखर्च	नाम	वर्ष	मूल्य	डाकखर्च
सं० पद्मपुराण	१९	८५.००	१५.००	सं० शिवपुराण	३६	७०.००	१५.००
सं० श्रीमद्देवीभागवत	३४	७०.००	१५.००	गर्गसंहिता	(४४-४५)	४५.००	१२.००

ग्रन्थाकारमें प्राप्य हैं

१. हिन्दू-संस्कृति-अङ्क—[वर्ष २४, सन् १९५० ई०] भारतीय संस्कृति, धर्म-दर्शन आचार-विचार, जीवन-मूल्यों और उच्चादर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन—भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अध्येताओं, शोध-छात्रों एवं जिज्ञासुओंके लिये प्रेरणा-स्रोत और ज्ञान-वर्धक है। पृष्ठ-संख्या ९२०, बहुरंगे चित्र १०, सादे चित्र २४०, मूल्य रु० ७५.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसहित) रु० ८.०० अतिरिक्त।

२. नारी-अङ्क—[वर्ष २२, सन् १९४८ ई०] भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चाके साथ इसमें नारीके उत्थान तथा विश्वकी महान् महिला-रत्नोंके चरित्र-चित्रण और जीवनादर्शोंकी रोचक, प्रेरणाप्रद सामग्री—इसकी उल्लेखनीय विशेषता है। पृष्ठ-संख्या ८०४, रंगीन चित्र ९, सादे चित्र ४४, रेखाचित्र ११६, सजिल्द, मूल्य रु० ७०.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसहित) रु० ८.०० अतिरिक्त।

३. योगाङ्क—[वर्ष १०, सन् १९३६ ई०] योगसे अनेक सिद्धियोंसहित परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति तक सुलभ है। इसमें योगके विभिन्न स्वरूपों और पक्षोंके वर्णनसहित योग-सिद्ध महापुरुषोंके जीवन-चरित्र एवं उनकी यौगिक क्रियाओंके महत्त्व और प्रभावोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ-संख्या ६१६, बहुरंगे चित्र ८, अनेक सादे तथा रेखाचित्र, सजिल्द, मूल्य रु० ६०.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसहित) रु० ८.०० अतिरिक्त।

४. सत्कथा-अङ्क—[वर्ष ३०, सन् १९५६ ई०] जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सदाचरण और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण, छोटी-छोटी सत्प्रेरणादायी कथाओंका यह बृहत् संग्रह है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ८, सजिल्द, मूल्य रु० ६५.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसहित) रु० ८.०० अतिरिक्त।

५. श्रीगणेश-अङ्क—[वर्ष ४८, सन् १९७४ ई०] श्रीगणेश सर्वस्वरूप, परात्पर पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं। '**आदौ पूज्यो विनायकः**'—इस उक्तिके अनुसार समस्त कार्योंके आरम्भमें (सिद्धि-प्राप्तिहेतु) श्रीगणेशके स्मरण, नमन, पूजन-स्तवन आदिका विधान है। इसीलिये किसी कार्यके शुभारम्भका पर्याय ही 'श्रीगणेश' बन गया है। महामहिम गणपतिकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषताओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत परिचय इस ('गणेशाङ्क') में उपलब्ध है। पृष्ठ-संख्या ४९५, भावपूर्ण बहुरंगे चित्र ८, इकरंगे चित्र ८, रेखा-चित्र ९, मूल्य रु० ६०.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसहित) रु० ८.०० अतिरिक्त।

६. भक्ति-अङ्क—[वर्ष-३२, सन् १९५८] इसमें भगवद्भक्ति, ईश्वरोपासना और भक्तिके विभिन्न प्रकारों एवं पद्धतियोंपर शास्त्रीय दृष्टिकोणसे व्यापक विचार किया गया है। अनेक भगवद्भक्तों और उपासकोंके शिक्षाप्रद तथा अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी इस अङ्कके अन्य उल्लेखनीय आकर्षक विषय हैं। कुल पृष्ठ-संख्या ७५२, भावपूर्ण बहुरंगे चित्र ८, मूल्य रु० ८०.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसहित) रु० ८.०० अतिरिक्त।

आगामी विशेषाङ्क 'धर्मशास्त्राङ्क'

ग्राहक महानुभावोंके सुविधार्थ सितम्बर १९९५ के अङ्कमें आगामी वर्षकी शुल्क-राशि भेजने-हेतु मनीआर्डर-फार्म प्रेषित किया गया था। अतः ग्राहक सज्जनोंको तदर्थ **शुल्क-राशि रु० ८०.०० (सजिल्दके लिये रु० ९०.००) यदि अभीतक न भेजी हो तो शीघ्रातिशीघ्र भेज देनी चाहिये।** समयसे शुल्क-राशि न आनेपर नियमानुसार वी० पी० पी० भेजी जाती है, जिसमें अतिरिक्त वी० पी० पी० पोस्टेजके रूपमें रु० ५.०० देय होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, नवम्बर १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-भगवान् श्रीसूर्यनारायण प्रसन्न हों	८५५
२-कल्याण (शिव)	८५६
३-भगवान्के विशुद्ध प्रेमका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८५७
४-ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)	८६३
५-शरणागति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	८६७
६-सतत उद्योग और मनोरथका त्याग	८७०
७-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८७४
८-प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद	८७९
९-'दत्तात्रेय-उपासना'में गौ माताकी महिमा (दंडी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)	८८२
१०-क्या भोजनके लिये पशु-वध जरूरी है? (श्रीपन्नालालजी मून्दड़ा अध्यक्ष, भारतीय जीवजन्तु-कल्याण-बोर्ड)	८८४
११-*भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी)	८८७
१२-साधनोपयोगी पत्र	८९१
१३-चन्दन [लघु कथा]	८९३
१४-अमृत-वाणी (संत श्रीआसारामजी महाराज)	८९४
१५-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८९५
१६-पापका परिणाम	८९६
१७-पढ़ो, समझो और करो	८९७
१८-मनन करने योग्य	९००
१९-श्रीगणपतिका दुग्धपान—एक शास्त्रीय दृष्टि	९०१
२०-श्रीगीता-जयन्ती	९०२

चित्र-सूची

१-भगवान् शंकर	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-श्रीसूर्यनारायणको प्रणाम	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

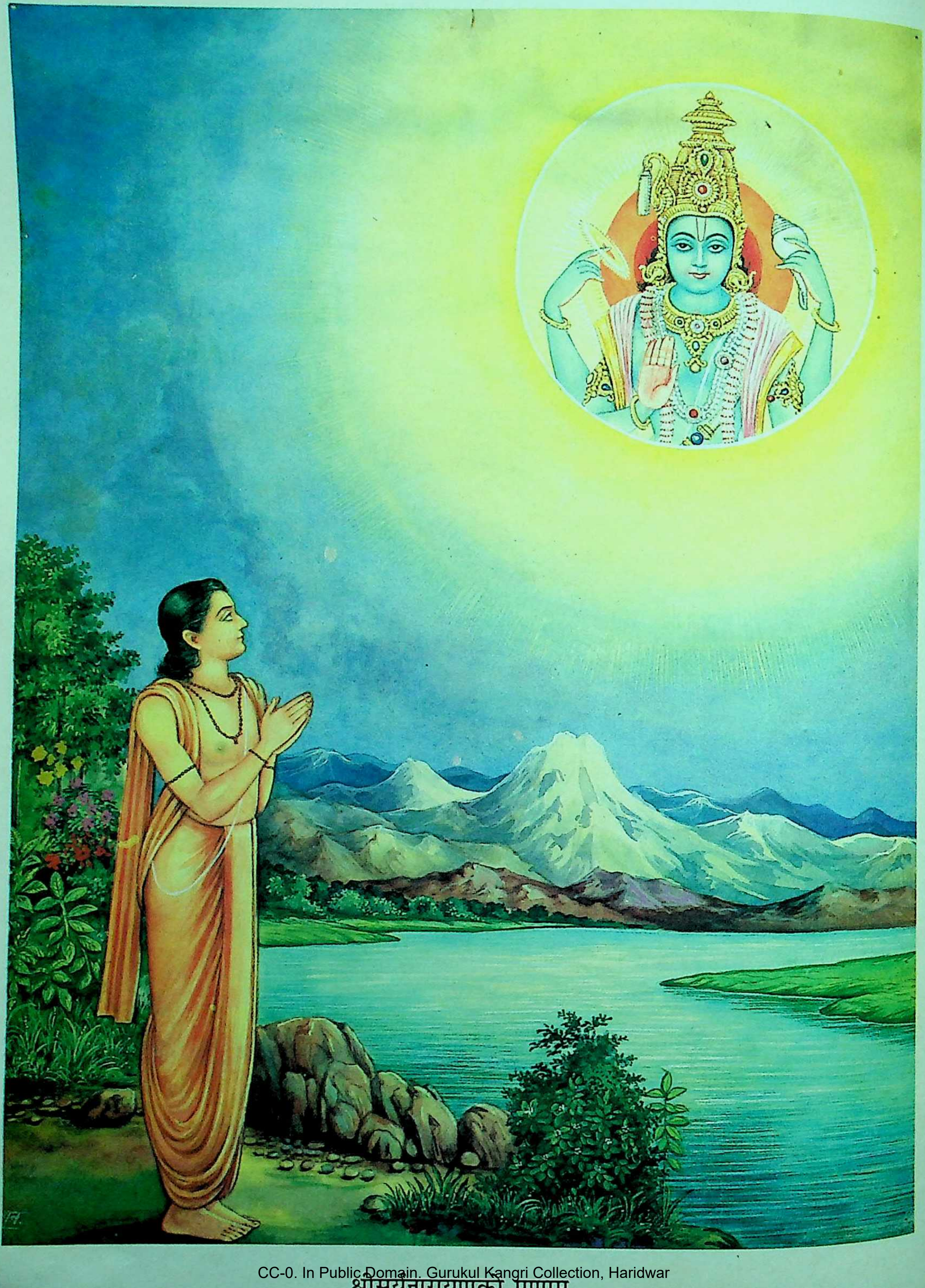

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीसूर्यनारायणको प्रणाम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ } गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, नवम्बर १९९५ ई० { संख्या ११ पूर्ण संख्या ८२८

भगवान् श्रीसूर्यनारायण प्रसन्न हों

यो ब्रह्मा यो महादेवो यो विष्णुर्यः प्रजापतिः।
वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम्।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः॥
त्रिधा यस्य स्वरूपं तु भानोर्भास्वान् प्रसीदतु।

(मार्कण्डेयपुराण १०९। ६९—७१)

'जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं; वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं; ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी—ये त्रिधा शक्तियाँ जिनका वपु है; 'भानु' जिनका स्वरूप है, वे तेजस्वी भुवनभास्कर सूर्यनारायण (सबपर सदा) प्रसन्न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—जबतक चित्त अशान्त है, तबतक किसी भी परिस्थितिमें वास्तविक सुख नहीं हो सकता और जबतक सांसारिक भोगोंके प्रति आकर्षण है, उनको प्राप्त करनेकी कामना है, तबतक चित्त शान्त हो नहीं सकता। गीतामें भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'जो सारी कामनाओंको छोड़ चुका है, जो निःस्पृह है, जिसकी किसी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें ममता नहीं है और जो अहंकारसे रहित है, वह शान्ति प्राप्त करता है। अथवा 'जो सर्वयज्ञ-तपभोक्ता, सर्वलोकमहेश्वर [मुझ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्] को प्राणीमात्रका सुहृद् जानता है, अर्थात् जो भगवान्के प्रत्येक विधानको मङ्गलमय अनुभव करके प्रत्येक परिस्थितिमें उनके सौहार्दको देखता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है। अतएव जबतक भोगकामना है, तबतक चाहे जितनी भौतिक सम्पत्ति, समृद्धि, पद, अधिकार मिल जाय, उसे शान्ति मिल ही नहीं सकती। आगमें ईंधन-घी पड़नेपर अग्निके अधिकाधिक धधकनेकी भाँति उसकी कामनाकी अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और उसी अनुपातमें जलन या अशान्ति भी बढ़ती है।

याद रखो—यदि वास्तवमें मनुष्य सुख चाहता है तो उसे जहाँ सुख—वास्तविक सुख है, उस स्थानपर पहुँचना होगा। वह स्थान है—नित्य एकरस सुखस्वरूप आत्मा, और आत्मातक पहुँचनेके लिये शान्तिकी आवश्यकता है। अतएव शान्तिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। यह भी याद रखना चाहिये कि आत्मा अपना स्वरूप है, भोग प्रकृतिकी चीज है, इसलिये भोग-कामनाका त्याग, तज्जनित शान्ति और आत्माके स्वरूपकी उपलब्धि सहज है। पर मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो गयी है, तमसे ढकी हुई बुद्धि पापको पुण्य, त्याज्यको ग्राह्य, अधर्मको धर्म बतलाती है और उससे मनुष्यका जीवन दुष्प्रवृत्तिमें लग जाता है। जहाँ तामसी दुर्बुद्धि और तामसी बुद्धिजनित कामोपभोगपरायणतायुक्त आसुरी दुष्प्रवृत्ति हो जाती है, वहाँ मनुष्यके द्वारा सभी विपरीत कर्म होते हैं और उन नीच कर्मोंके अनुसार नीच संस्कार, उनसे मानसमें नीच प्रेरणा और नीच प्रेरणासे पुनः नीच कर्म बनते जाते हैं—और जीवन सर्वथा पापमय बनकर पतनके गर्तमें गिर जाता है तथा विविध भाँतिकी अवाञ्छनीय विकृति और विपत्तियाँ जीवनका स्वरूप बन जाती हैं। इससे बचनेकी चेष्टा करनी है।

याद रखो—इससे बचनेके लिये बचना होगा कुसंगसे। कुसंग केवल किसी पतित मनुष्यका ही नहीं होता। स्थान, वातावरण, साहित्य, खान-पान, रहन-सहन, कपड़े-लत्ते, व्यवहार-वाणिज्य आदि सभी कुसंग हो सकते हैं। जिस स्थानमें निवास करनेसे तामसिक बुद्धि बढ़ती हो, जिस वातावरणसे भोगवासना तथा पापवासना बढ़ती हो, जिन पुस्तकों-पत्रोंके पढ़नेसे वृत्तियाँ दूषित होती हों, जिस खान-पानसे मनमें तमोगुण बढ़ता हो, जिस रहन-सहनसे भगवान्के प्रति अश्रद्धा तथा भोगवासना बढ़ती हो, जिन वस्त्रोंके पहननेसे भोगासक्ति उत्पन्न होती और बढ़ती हो, जो व्यवहार-वाणिज्य या आजीविकाका साधन चोरी, हिंसाकी प्रवृत्ति तथा दूसरोंका अहित करनेवाला हो एवं जो कुछ भी देखने-सुनने, बातचीत करनेके विषयभोगमें रुचि, आसक्ति और भगवान्में अरुचि पैदा करनेवाले हों, वे सभी कुसंग हैं और उनका जितना शीघ्र, जितने अंशमें त्याग किया जाय, कर देना आवश्यक है। उसके बदले सत्साहित्यका अध्ययन, सदाचारका पालन, शुद्ध खान-पान, शुद्ध वस्त्र, व्यवसाय-वाणिज्य करना चाहिये।

याद रखो—शान्ति-सुखके लिये शुद्ध कामना, शुद्ध क्रिया, शुद्ध विचार, शुद्ध इच्छा, शुद्ध दर्शन, शुद्ध श्रवण तथा शुद्ध कथन आवश्यक है। शुद्ध वही है, जिससे मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त हो, प्राणीमात्रपर दया हो, मन-तन-वचनसे किसीकी हिंसा न हो, चोरी-ठगी न हो, दूसरेके हकपर मन न चले, भगवान्में मन लगे, भगवच्चरणोंमें राग हो, भोगोंमें वैराग्य हो और सबमें भगवान् समझकर सबको सुख पहुँचाने, सबकी सेवा करने तथा सबका हित करनेकी प्रवृत्ति एवं उत्साह हो।—'**शिव**'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के विशुद्ध प्रेमका उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवत्प्रेमका वर्णन करना वाणीका विषय नहीं है। भगवत्प्रेमका वर्णन वाणीसे कौन कर सकता है। भगवान् भी चाहें तो वे भी नहीं कर सकते, क्योंकि वर्णन भगवान् भी तो वाणीसे ही करेंगे।

नामके विषयमें तुलसीदासजी कहते हैं कि—कहाँतक मैं भगवान्‌के नामकी बड़ाई करूँ, भगवान् स्वयं अपने नामका गुण-गान नहीं कर सकते—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(रा० च० मा० १। २६। ८)

जैसे भगवान् अपने नामकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते, वैसे ही भगवान्‌के प्रेमका—विषय-तत्त्वका—रहस्यका वाणीके द्वारा वर्णन होना कठिन है। यहाँ नामकी जगह 'प्रेम' शब्द रख दो। ***'कहौं कहाँ लगि प्रेम बड़ाई। रामु न सकहिं प्रेम गुन गाई॥'***

दूसरी बात यह है कि प्रेमके विषयमें यत्किंचित् भगवान्‌के प्रेमी भक्त ही कुछ कह सकते हैं। तीसरी बात यह है कि भगवान् श्रीरामका और भरतजीका जहाँ मिलाप हुआ, उस जगह तुलसीदासजीने यहाँतक कह दिया कि भरतजी और श्रीरामजीके मिलनका जो प्रेम है, प्रेमका जो विषय है, कविकी सामर्थ्य नहीं कि उसका वर्णन कर सके। जैसे गाँडरकी ताँतसे सुराग नहीं गायी जा सकती, उसी प्रकारसे भरतजीका रामचन्द्रजीके साथ जो प्रेमका विषय है, वह गाया नहीं जा सकता। फिर भी कुछ-न-कुछ चर्चा करनी है।

भगवान्‌के प्रेमके विषयकी बड़ी अच्छी बात है। संसारमें यदि प्रेम करना है तो भगवान्‌से ही प्रेम करना चाहिये; क्योंकि भगवान् ही प्रेमके सर्वस्व हैं, यानी प्रेमका तत्त्व-रहस्य जाननेवाले भगवान् ही हैं। सारी दुनियाका प्रेम इकट्ठा कर लें तो भगवत्प्रेमके एक अंशका भी अंश नहीं हो सकता। भगवान् प्रेमका जितना मूल्य चुकाते हैं, उतना कोई भी नहीं चुकाता। भगवान् प्रेमसे खरीदे जाते हैं। सारे संसारसे प्रेम हटाकर—प्रेम बटोरकर केवल भगवान्‌से ही प्रेम करना चाहिये। भगवान्‌को छोड़कर और किसीके साथ प्रेम करना समयको बर्बाद करना है। भगवान्‌से बढ़कर संसारमें कोई है ही नहीं। इसलिये भगवान्‌को छोड़कर दूसरी चीजसे प्रेम करना मूर्खता है।

भगवान्‌में प्रेम कैसे हो? यह एक प्रकारका भाव है, जिज्ञासा है। इस बातकी प्रतिक्षण हृदयमें लगन रहनी चाहिये। यह भाव जाग्रत् रहना चाहिये कि 'भगवान्‌में प्रेम कैसे हो?' भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। जैसे रुपयेका लोभी 'रुपया कैसे मिले', 'रुपया कैसे मिले'—इस प्रकार रटता है तथा रुपयोंके लिये कुछ-न-कुछ प्रयत्न करता रहता है। रुपये मिलें या न मिलें, पर भगवान् तो मिलते ही हैं। जो भगवान्‌से प्रेम करता है, भगवान् उससे प्रेम करते हैं। यह बात रुपयेमें लागू नहीं पड़ती; क्योंकि यदि कोई रुपयोंसे प्रेम करता है तो रुपया उससे प्रेम नहीं करता, कारण कि रुपया जड़ है। पुरुष रुपयेका दास है, अर्थ—रुपया किसीका दास नहीं है, इसलिये कि रुपयेके पास हृदय नहीं है। पर भगवान्‌के पास हृदय है और है बहुत कोमल। जो भगवान्‌से प्रेम करता है, उससे भगवान् प्रेम करते हैं। जो भगवान्‌को जिस प्रकारसे भजता है, भगवान् भी उसे उसी प्रकारसे भजते हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है--

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

इसके आगे कहते हैं—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

(७। १७)

सातवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें भगवान्‌ने चार प्रकारके भक्त बतलाये हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन चारों प्रकारके भक्तोंमें जो नित्य-युक्त ज्ञानी भक्त है, वह है केवल एक भक्तिवाला, वह सबसे श्रेष्ठ है। मैं ज्ञानीको अतिशय प्यारा हूँ और ज्ञानी मुझे अतिशय प्यारा है। फिर इसी संदर्भमें कहते हैं—जो भक्तिसे मुझे भजते हैं, वे मेरे हृदयमें हैं और उनके हृदयमें मैं हूँ—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(९। २९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् प्रेमका तत्त्व जिस प्रकार जानते हैं, वैसा कोई दूसरा जानता ही नहीं।

भगवान् रामको केवल प्रेम प्यारा है। इसका तत्त्व कोई जानना चाहे तो जान सकता है। रामचरितमानसमें आया है—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

सत्पुरुषोंका भगवान्‌में प्रेम है। इसलिये उनका संग करनेसे यानी सत्संग करनेसे भगवान्‌में प्रेम होता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(रा० च० मा० ७। ६१)

सत्संगके बिना हरिकथा नहीं मिलती और बिना हरिकथाके मोह यानी अज्ञानका नाश नहीं होता तथा अज्ञानके नाश हुए बिना हरिमें अनुराग यानी दृढ़ प्रेम नहीं होता। अज्ञानके नाशसे भगवान्‌में दृढ़ प्रेम होता है, अज्ञानका नाश मोहके नाशसे होता है और मोहका नाश हरिविषयक कथा-श्रवणसे होता है और हरि-कथाका श्रवण सत्संगसे मिलता है। भगवान्‌में दृढ़ प्रेम सत्संगसे ही होता है। भगवान्‌में प्रेम सत्संग करने तथा सत्पुरुषोंके संग करनेसे होता है और होता है भगवान्‌में विश्वास होनेपर, श्रद्धा होनेपर; क्योंकि *'बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती'* —बिना विश्वासके प्रेम नहीं होता। फिर प्रश्न होता है कि श्रद्धा कैसे हो? उत्तर है—श्रद्धा होती है अन्तःकरणकी शुद्धिसे—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

(१७। ३)

[भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—] हे भारत! सबकी श्रद्धा अन्तःकरणके अनुसार होती है। जिसका अन्तःकरण जैसा पवित्र होता है, वैसी ही श्रद्धा होती है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह पुरुष होता है। प्रश्न उठता है कि 'अन्तःकरण शुद्ध कैसे हो?' इसका उत्तर है 'अन्तःकरण शुद्ध होता है भगवान्‌के भजनसे, भगवान्‌के नामके जपसे, भगवान्‌का ध्यान करनेसे।' इससे श्रद्धा भी होती है और प्रेम भी होता है। यदि कहो कि 'ध्यान न लगे तो?' ऐसी स्थितिमें ध्यान न लगे तो कोई हर्जकी बात नहीं, केवल भगवान्‌के नामका जप ही करना चाहिये। रामचरितमानसमें कहा है—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

भगवान्‌का ध्यान न लगे तो भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये, उससे हृदयमें विशेष स्नेह यानी विशेष प्रेम अपने-आप ही हो जाता है। भगवान् बराबर कहते हैं—*'मानउँ एक भगति कर नाता'*—मेरा एक प्रेमका ही नाता है और जितने जो नाते हैं सब कमजोर हैं, प्रेमका नाता सबसे बलवान् है। इस वास्ते भगवान्‌के साथ प्रेमका नाता जोड़ना चाहिये। 'प्रेम कैसे हो?' उत्तर है—'भगवान्‌के साथ किसी भी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित करनेसे। जैसे—स्वामी और सेवकका परस्पर सम्बन्ध होता है। प्रभु हमारे स्वामी हैं और हम प्रभुके सेवक। अथवा पति-पत्नीका सम्बन्ध है। स्वामी हमारे पति हैं और मैं उनकी पत्नी। अथवा भगवान्‌के साथ निकटताका सम्बन्ध या भगवान् हमारे सखा हैं, ऐसा सम्बन्ध मानना।' स्त्रियाँ सम्बन्ध इस प्रकार जोड़ें कि 'भगवान् हमारे सखा हैं और मैं उनकी सखी।' किसी भी प्रकारका सम्बन्ध जोड़ें जैसे—पिता-पुत्रका, समझे कि प्रभु हमारे पिता हैं और हम उनके पुत्र अथवा जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध जोड़ें जैसे—जीवात्मा परमात्माका अंश है, समझे कि मैं जीवात्मा परमात्माका अंश हूँ। भगवान्‌ने कहा है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(१५। ७)

इस शरीरमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है। इससे सिद्ध होता है कि स्वाभाविक ही भगवान्‌के साथ हमारा जन्मसिद्ध सम्बन्ध है। हम प्रभुके अंश हैं और भगवान् अंशी। तुलसीदासजी कहते हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

यह जीवात्मा ईश्वरका अंश है, चेतन है, मलरहित है, निर्मल है और आनन्दकी राशि है। भगवान्‌के साथ हमारा नित्य सम्बन्ध है, हम उसे भूले हुए हैं, इसीलिये संसारमें भटकते फिरते हैं। यदि हमें यह अनुभव हो जाय कि ईश्वरके साथ हमारा नित्य-सम्बन्ध है तो ईश्वरको छोड़कर हम और किसीसे प्रेम कर ही नहीं सकते। ईश्वरके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सब प्रकारका सम्बन्ध जुड़ सकता है। जैसे—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'हे देवदेव! आप ही हमारे माता हैं, आप ही हमारे पिता हैं, आप ही हमारे बन्धु हैं, आप ही हमारे सखा तथा आप ही हमारे विद्या, आप ही हमारे धन और सर्वस्व हैं अर्थात् हमारे जो कुछ भी हैं सब आप ही हैं। हे भगवन्! आप ही हमारे स्वामी, पति, प्राण, जीवनके आधार यानी जो कुछ भी हैं, वह सब आप ही हैं।' इस प्रकार हम भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ें तो भगवान्‌में प्रेम बढ़ता ही जायगा।

'भगवान्‌से बढ़कर संसारमें और कोई है ही नहीं,' इस प्रकारका निश्चय करनेसे और 'प्रेमका तत्त्व केवल एक भगवान् ही जानते हैं' इसपर विश्वास होनेसे भगवान्‌में प्रेम बढ़ता है। भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा होनेपर भी भगवान्‌में प्रेम बढ़ता है। भगवान्‌के लिये विरहकी व्याकुलता बढ़ानी चाहिये, जैसे भरतजीमें बढ़ी, वैसे ही भगवान्‌में प्रेम बढ़े।

प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है, वाणीकी सामर्थ्य नहीं कि उसे बतला सके। यह नित्य वर्धमान है, नित्य बढ़ता रहता है। भगवान्‌के प्रेमीकी यह पहचान है कि भगवान्‌का प्रेमी भगवान्‌के बिना रह नहीं सकता, भगवान्‌के वियोगमें जी नहीं सकता, यह प्रेमीके प्रेमकी पराकाष्ठा है। जब भगवान्‌में अनन्य और विशुद्ध प्रेम हो जाता है, तब उसी समय भगवान् मिल जाते हैं। जब भगवत्प्रेमीका भगवान्‌में अतिशय प्रेम हो जाता है तो भगवान्‌से वह अलग नहीं रह सकता, अलग रहनेपर तो जलके बिना जैसे मछली तड़पती है, वैसे वह तड़फ-तड़फकर मर जाता है। भगवान् अपने प्रेमी भक्तको मरने नहीं देते; लेकिन मछलीकी-जैसी दशा हो जाती है। जैसे भगवान्‌के वियोगमें गोपियाँ व्याकुल हो गयीं, विरहमें व्याकुल होकर तड़पने लगीं। मरनेकी तैयारी हुई तो भगवान् प्रकट हो गये। इसी प्रकार भरतजी महाराज भगवान्‌के विरहमें व्याकुल हो गये और मरनेकी तैयारीमें जब हो गये तो उसी समय रामजीने पहले हनुमान्‌जीको भेजा और फिर स्वयं आ गये—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत॥
(रा० च० मा० ७ (क))

रामका जो विरह-सागर है, उसमें भरतका मन मग्न हो गया, ऐसी स्थितिमें ब्राह्मणका रूप धारण करके हनुमान्‌जी वहाँ आ पहुँचे। जैसे कोई डूबते हुएके लिये कोई नौका आ पहुँचती है। हनुमान्‌जी भरतजीके पास पहुँच करके उन्हें बताते हैं कि 'आप जिनका रात-दिन नाम जपते हैं, वे देवताओं और मुनियोंका उद्धार करनेवाले भगवान् श्रीराम राक्षसोंको मारकर युद्धमें विजय पा करके अपने भाई लक्ष्मण और सीताके साथ आ रहे हैं।' यह सुनकर भरतजीको इतना आनन्द हुआ—इतना आनन्द हुआ कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं, क्योंकि भरतके प्राण बच गये, कारण, भरतका राममें इतना प्रेम था कि भरतजी महाराज भगवान् रामके विरहमें जी नहीं सकते थे। भरतजीने कह भी दिया था—

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।

चौदह वर्षकी अवधि बीतनेपर मेरी देहमें यदि प्राण रह जायँ तो समझना चाहिये कि 'इस संसारमें मेरे समान कोई पापी नहीं है।' भाव यह है कि भगवान् अवश्य ही आयेंगे, पहुँचेंगे और दर्शन देंगे। ऐसा हो ही नहीं सकता कि भगवान् नहीं आयें। उनको दृढ़ विश्वास था कि भगवान् अवश्य आयेंगे। किंतु यदि किसी कारणसे नहीं आये तो मेरी देहमें प्राण नहीं रहेंगे। यदि वास्तवमें हमारा प्रेम भगवान् राममें सच्चा है तो उनके वियोगमें हम जी नहीं सकेंगे। यदि प्राण नहीं निकले तो यह समझना चाहिये कि मेरे समान कोई पापी नहीं, क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा है—चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होते-होते राम यदि नहीं आये तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। अग्निमें तो मनुष्य हठसे भी प्रवेश कर सकता है, पर यदि मुझे अग्निमें प्रवेश करके भी प्राण त्यागने पड़ें तो फिर समझना चाहिये कि मेरे समान कौन पापी है? तब मेरे हृदयमें प्रेम कहाँ? प्रेमका तो स्वरूप यह है कि भक्तके प्राण अपने प्रेमीके बिना—प्रेमास्पदके बिना रह नहीं सके। यदि मैं जीता रह जाऊँ तो मुझमें प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ रहा? प्रश्न होता है कि ऐसी स्थितिमें चौदह वर्षतक कैसे जीवित रहे? उत्तर है कि भरतमें केवल प्रेम ही नहीं था, श्रद्धा भी थी। वाल्मीकिरामायणमें बात आयी है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीको वसिष्ठजीके द्वारा समझा करके भेजा कि चौदह वर्षकी अवधितक तुम राज्य-कार्य करो, फिर मैं आऊँगा। वहाँ भरतजीने कहा कि चौदह वर्षकी अवधिके लिये कुछ आधार दे दो—अपनी चरणपादुका दे दो। इसपर भगवान्‌ने अपनी चरणपादुका दे दी। भरत उस चरणपादुकाको भगवान्‌का स्वरूप समझकर नंदिग्राममें आये और सिंहासनपर प्रतिष्ठितकर तथा उनसे पूछ-पूछकर राज-काज सँभालने लगे।

भगवान् श्रीरामजीने अपने १४ वर्षके वनवास-कालमें जब लंकापर विजय प्राप्त की, तब विभीषणने आकर कहा—'भगवन्! अब चौदह वर्षकी अवधि समाप्त हो गयी है, अब आप कुछ दिन शहरमें चलें। लंकाका कोष, खजाना, राजधानी—इन सबको देखें।' भगवान्‌ने कहा—'विभीषण! तुम्हारा जो कोष और खजाना है, वह सब मेरा ही है, मुझे भरतकी स्मृति हो आयी है, यदि चौदह वर्षकी अवधितक मैं नहीं पहुँचूँगा तो मेरा भाई भरत मुझे जीवित नहीं मिलेगा। इसलिये जल्दी-से-जल्दी मुझे अयोध्या पहुँचाओ।' यह है उच्चकोटिके प्रेमकी कसौटी।

प्रेमी प्रेमास्पदके बिना बहुत समयतक नहीं जी सकता। हम देखते हैं कि जैसे भरतका प्रेम है, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी प्रेम भगवान्‌में कम नहीं था। जब श्रीराम लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि 'तुम घरपर रहो, क्योंकि भरत और शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए हैं और हम वनमें चले जायँगे तो पिताजी शोकके कारण दुःखी हो जायँगे। माता-पिताकी सेवा करना अपना धर्म है, नीति है, इसे खयालमें रख करके तुम्हें घरमें ही रहना चाहियें।' इसपर लक्ष्मणजी कहते हैं कि 'प्रभो! धर्म और नीतिका उपदेश तो उसे देना चाहिये, जिसे संसारमें विभूति चाहिये, कीर्ति चाहिये। मैं तो आपका प्रेम-पालित हूँ, आप मुझे अलग न करें। यदि आप मुझे अलग कर देंगे तो इसमें मेरा क्या वश है, क्या उपाय है।' भगवान् घर रहनेके लिये आग्रह करते हैं, इसपर लक्ष्मण कहते हैं—

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥

हे नाथ! आपने 'तुम घरपर ही रहो'-यह जो बात कही, वह ठीक कही—उचित बात कही; क्योंकि मैं यहाँ रहनेके लायक ही हूँ। कारण कि यदि मेरा आपमें प्रेम होता तो आप रहनेके लिये कभी नहीं कहते। इसलिये आपने उचित बात कही। मैं प्रेमका पात्र नहीं हूँ। इस विषयमें मेरी कायरता ही मुझे प्रतीत होती है। कायरता क्या? कायरता यह कि मुझमें ऐसी शूरवीरता नहीं है कि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो आपके वियोगमें, विरहमें व्याकुल होकर मैं मर जाऊँगा। आपके प्रति मुझमें इतना प्रेम नहीं है कि आपके वियोगको मैं बर्दाश्त न कर सकूँ। आपके वियोगमें मैं प्राण खो बैठूँ, ऐसी मुझे उम्मीद नहीं है। यदि वास्तवमें मेरा आपमें इतना प्रेम होता कि आपके वियोगमें मेरे प्राण नहीं रहेंगे तो आप मुझे छोड़कर कभी नहीं जाते। इसलिये इस विषयमें मैं कायर हूँ, आपका कोई दोष नहीं है। मेरेमें कायरता है, मैं पात्र नहीं हूँ। भगवान्‌ने सोचा कि यह तो प्राण खो बैठेगा, इसलिये इसे साथमें ही ले चलो। रामने कहा—'भैया, तुम हमारे साथ चलो, लेकिन माता सुमित्राका हुक्म ले आओ।' माता सुमित्रा भगवान्‌में बहुत ही प्रेम रखती थीं। जब उन्होंने सोचा कि मेरा लड़का भगवान्‌की सेवाके लिये उनके साथमें जाता है तो हमारा अहोभाग्य है। मैं पुत्रवती हूँ ऐसा समझती हूँ; क्योंकि मेरा पुत्र भगवान्‌का भक्त है, मैं वास्तवमें पुत्रवती हूँ—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

पुत्रवती वही युवती है, जिसका पुत्र भगवान् रामका भक्त हो, अन्यथा उसका पुत्र जनना व्यर्थ ही है, इससे तो बाँझ ही भली—*'नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।'* कितना उच्च भाव है। इतना ही नहीं सुमित्रा अपने पुत्रसे कहती हैं—

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

'हे तात! तुम्हारे ही भाग्यसे राम वन जा रहे हैं। रामके वन जानेमें दूसरा और कोई कारण नहीं है।' कैकेई और कुबरी मंथरा—ये तो निमित्त मात्र हैं। सच्ची बात तो यह है कि यहाँ तो सेवा करनेवाले बहुत थे और वनमें तू अकेला ही है। जब सीता और राम वन जा रहे हैं तो बेटा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरा यहाँ क्या काम है? मेरे समान सीताको और दशरथके समान रामको समझना चाहिये। मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम सीता और रामकी सेवा करना। मेरा यही उपदेश है और यही मेरा आदेश है। कितना सुन्दर उपदेश दिया है।

सुमित्राका और लक्ष्मणका भगवान् राममें प्रेम था, सीताका तो प्रेम था ही। सीताको भगवान् राम उपदेश देते हैं कि 'हे सीता! तुम हठ मत करो, हठका नतीजा अच्छा नहीं होता। तुम अपने घरमें रहो, वनमें महान् क्लेश है। वनमें सरदी पड़ती है, गरमी पड़ती है, जोरोंसे हवा चलती है, भयंकर बारिस होती है, वृक्षोंके नीचे रहना पड़ता है, खानेके लिये मिलते हैं कंदमूल-फल, वे भी कभी मिलते हैं, कभी नहीं मिलते। स्त्रियोंको चुरानेवाले वहाँ राक्षस घूमते रहते हैं। भाँति-भाँतिके वनमें क्लेश हैं।' सीताने कहा—'प्रभो! आपने वनके जितने क्लेश बतलाये हैं, वे सब मिल करके आपके वियोगके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं हैं, आपके वियोगमें तो—

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥

'संसारके जितने भोग—विषयभोग हैं, वे सब रोगके समान हैं।' विषय-भोगोंके भोगनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है, इसलिये विषयभोग रोग ही हैं और ये जो गहने-आभूषण हैं, ये भाररूप हैं तथा संसार यम-यातनाके सदृश है। आप मुझे सुकुमारी कहते हैं। कहते हैं कि 'वनमें कुश-कंटक आदि हैं। अच्छा, यदि मैं राजकुमारी हूँ तो क्या आप राजकुमार नहीं हैं? आपको जब थकावट होगी तो मैं आपके चरणोंको दबा करके आपकी थकावटको दूर करूँगी। मैं आपकी दासी हूँ, रात्रिमें आपके चरणोंको पलोटूँगी और आपका मुखारविन्द देख-देखकर चकोर पक्षीकी भाँति मुग्ध होती रहूँगी। उस समय मुझे किसी प्रकारका क्लेश नहीं होगा।' इस प्रकार कहकर अन्तमें कहती हैं कि 'आप मुझे छोड़नेकी जो बात कहते हैं, यह सुनकर मैं बर्दाश्त करती हूँ, यह मेरे लिये शर्मकी बात है, दुःखकी बात है। क्योंकि —

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥

(रा० च० मा० २। ६७)

आप बार-बार मुझे यहाँ रहनेके लिये कह रहे हैं। पतिव्रता स्त्रीके लिये पतिके वियोगकी बात बहुत कठोर है, आपके वियोगके कठोर वचन सुनकर मेरा हृदय फटता नहीं है, मेरा हृदय वज्र बन गया है। आपके कहनेसे मुझे यह मालूम होता है कि आप मुझे छोड़कर जायँगे और मैं जीवित रहूँगी तथा आपके विषम वियोगकी यन्त्रणा—विषम वियोगका जो दुःख है, उसे मेरे पामर प्राण सहन करेंगे, मेरे प्राण निकलेंगे नहीं, मैं मरूँगी नहीं।' यह सुनकर भगवान्‌ने सोचा कि 'मेरे वियोगमें यह प्राणोंका त्याग कर देगी', इसलिये भगवान् सीताको साथमें ले गये।

अपने प्रेमास्पदका वियोग प्रेमीके लिये मरनेके तुल्य है। इस बातका रहस्य प्रेमी ही जान सकता है। प्रेमास्पदको देख-देखकर प्रेमी मुग्ध होता है। उनका दर्शन करके, स्पर्श करके, वार्तालाप करके, चिन्तन करके जीता है। भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेके लिये अपने इष्टदेवका जो स्वरूप है—चाहे भगवान् श्रीरामका हो, चाहे श्रीकृष्णका हो, चाहे भगवान् विष्णुका हो, चाहे भगवान् शिवका हो, उसका ध्यान करके ध्यानावस्थामें भगवान्‌से वार्तालाप करना, उनके चरणोंका स्पर्श करना, नेत्रोंसे उनका दर्शन करना, कानोंसे उनके प्रेम-भरे वचनोंका श्रवण करना, दर्शन-भाषण-स्पर्श करके मुग्ध होना चाहिये, क्योंकि भगवान्‌के दर्शन भाषण-स्पर्श-वार्तालाप—चाहे मानसिक ही क्यों न हों—रसमय हैं, अमृतमय हैं, प्रेममय हैं। भगवान्‌का जो स्पर्श हाथोंके लिये है, वह अमृतके समान है। भगवान्‌का वचन कानोंके लिये अमृतके समान तथा भगवान्‌में जो दिव्य गंध है, वह नासिकाके लिये अमृतके समान है, भगवान्‌के जो दर्शन हैं, वे नेत्रोंके लिये अमृतके समान हैं, तात्पर्य यह कि सभी अमृतमय हैं, आनन्दमय हैं। भगवान्‌का दर्शन, भाषण, स्पर्श तथा वार्तालाप बहुत ही मधुर हैं, भगवान्‌की जो मूर्ति है, वह मधुर है, इसीलिये उसे माधुरी मूर्ति कहते हैं। इनकी सारी चेष्टा मधुर है। भगवान्‌की लीला मधुर, भगवान्‌का स्वरूप मधुर, भगवान्‌की वाणी मधुर, भगवान्‌के गुण मधुर तथा भगवान्‌का नाम मधुर। जो इस प्रकारसे अनुभव करता है, वह भला भगवान्‌के बिना कैसे जी सकता है। वह क्षणभर भी भगवान्‌के बिना नहीं रह सकता। भगवान्‌के वियोगको भक्त बर्दाश्त नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता और भगवान् भी भक्तके वियोगको बर्दाश्त नहीं कर सकते। प्रेम बढ़ जानेसे भगवान् मिल जाते हैं। वह भगवान्के निकट सदा ही रहता है। मिलनेके बाद यदि भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं तो भगवान्का भक्त भगवान्को छोड़कर कहीं जा सकता ही नहीं। यद्यपि भगवान् उसे छोड़कर अन्तर्धान हो जायँगे, तब भी मनसे उससे दूर नहीं होते। प्रत्यक्ष न मिलनेके विरहकी व्याकुलतामें भक्तकी गोपियों-जैसी दशा हो जाती है। विरहकी व्याकुलतामें रुक्मिणीजीकी भी दशा बेदशा हो गयी थी। जब शिशुपाल ब्याहनेके लिये आया और भगवान् समयपर नहीं पहुँचे तो वह एकदम व्याकुल होकर विलाप करने लगी। फिर भगवान्ने सोचा कि प्राण खो बैठेगी, उसी समय रथ लेकर भगवान् रुक्मिणीके पास आ पहुँचे और रथमें बैठाकर ले आये।

भगवान्में जिनका अतिशय प्रेम हो जाता है—अनन्य प्रेम हो जाता है, विशुद्ध प्रेम हो जाता है, उनसे मिले बिना भगवान्से रहा नहीं जाता। उसी समय प्रकट हो जाते हैं। सारे संसारसे प्रेम हटाकर हमलोगोंको केवल भगवान्से प्रेम करना चाहिये। हमारा प्रेम विशुद्ध होना चाहिये—निष्काम होना चाहिये। जब भगवान्से मिलनेकी इच्छा होती है, भगवान्में प्रेम होता है, तब भगवान् उसी समय प्रकट हो जाते हैं। भक्तलोग कहते हैं कि 'भगवान्के मिलनेके समय भक्तको इतना आश्चर्य होता है—इतना आनन्द होता है कि वह उसे सँभाल नहीं सकता।' उसे यह आश्चर्य होता है कि 'कहाँ तो भगवान् और कहाँ मैं? क्या भगवान् वास्तवमें प्रकट हो गये' और यह आश्चर्य होता है कि 'मैं तुच्छ और भगवान् इतने उच्चकोटिके महापुरुष!' आनन्दकी सीमा नहीं रहती। उसे आश्चर्य होता है कि 'क्या वास्तवमें भगवान् ही मुझे मिल रहे हैं या मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हो गया है या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ?' महान् आश्चर्य होता है, इतना आनन्द होता है—इतना आनन्द होता है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। उसके नेत्रोंकी पलक एकदम नहीं गिरती, वह एकटक देखता ही रहता है, पलक गिरने-इतनी देर भी वह बर्दाश्त नहीं कर सकता, देख-देखकर मुग्ध होता जाता है। केवल उसे भगवान्का ही ध्यान रहता है। अपने-आपका भी ज्ञान नहीं रहता। उसकी दशा बेदशा हो जाती है। फिर जब वह अपनेको सँभालता है तो इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे किसी बातकी चिन्ता पैदा ही नहीं होती। क्योंकि उसके सारे संशयोंका नाश हो जाता है, सारे पापोंका नाश हो जाता है। वह मन्त्रमुग्धकी तरह भगवान्को देखता रहता है और भगवान् उसे देखते रहते हैं। 'भगवान् क्या हैं', इस तत्त्व-रहस्यको यदि हम समझ जायँ तो फिर भगवान्के बिना हम जी नहीं सकते, रह नहीं सकते, उनके वियोगको बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमलोग भगवान्का वियोग बर्दाश्त कर रहे हैं, तभी भगवान् हमें वियोग दे रहे हैं और जो बर्दाश्त नहीं कर सकता, उसे भगवान् वियोग कैसे देंगे? भगवान्का अधिकार ही नहीं है कि उसे वियोग दें, यह न्याय भी नहीं है। हमलोग भगवान्के प्रेमके तत्त्वको नहीं समझते, प्रेमके रहस्यको नहीं समझते, नहीं तो हम भगवान्के बिना कैसे जी सकते। जो भगवान्के लिये अपने-आपको समर्पण कर देता है, भगवान् उसके लिये अपने-आपको समर्पित कर देते हैं। जो इस तत्त्वको समझता है, वह तो भगवान्का ही होकर रहता है और यह समझता है कि 'इस संसारमें भगवान् ही हमारे हैं और भगवान्के समान और कोई है ही नहीं। भगवान्के समान हमारा कोई नहीं है, हमारा हितैषी कोई नहीं है, अपना कोई नहीं है।' शिवजी कहते हैं— 'हे उमा! रामके समान हित करनेवाला दुनियामें और कोई भी नहीं है। माता-पिता, गुरु-बन्धु संसारमें भगवान्के समान कोई है ही नहीं—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

'देवता, मनुष्य, तपस्वी, सबकी यह रीति है, सब कोई स्वार्थके लिये ही प्रीति करते हैं'—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

स्वार्थका त्याग करके तो केवल भगवान् ही प्रेम करते हैं या भगवद्भक्त। इन दोको छोड़कर दुनियामें तीसरा कोई बिना स्वार्थके प्रीति करनेवाला नहीं है। (कैसेट नं० १२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१-जिस देश, जाति और वंशके लोग चाहते हों कि हमारी संतानपरम्परामें ब्रह्मचारी उत्पन्न हों, उन्हें ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारीका विशेष आदर करना चाहिये और स्वयं शास्त्रोक्त आश्रमोचित ब्रह्मचर्यके नियमोंका यथाविधि पालन करना चाहिये। वंशपरम्परा और माता-पिताके भावका ब्रह्मचर्यपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अनैतिक रीतिसे उत्पन्न संतानसे ब्रह्मचर्यकी आशा रखना उपहासास्पद है। यदि माता-पिताका संयोग केवल उद्दाम भोगलालसाकी तृप्तिके लिये ही होता है तो भावी संतान वासना-पूर्तिपरायण हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है? भावी शिशुके शरीरगत सारे ही उपादान माता-पिताके मन और धातुओंसे ही संघटित होते हैं। यदि मूलमें ही दोष रहा तो कार्य निर्दोष कैसे हो सकता है? इसलिये माता-पिताको धर्मबुद्धिसे ऋतुकालमें शास्त्रोक्त-रीतिसे संतानोत्पादन करना चाहिये। माता-पिताके मनमें आदर्श ब्रह्मचारी संतान ही उत्पन्न करनेका संकल्प होना चाहिये। जबतक शिशु गर्भमें रहे, माता-पिताको वासनारहित जीवन व्यतीत करना चाहिये। माता-पिताके भाव-बीज ही संतानमें अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं।

२-जबतक शिशु माताका दूध पीता है, तबतक माताके शरीरसे और भावसे कामकी वृत्तिका स्पर्श न होना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि मनमें कामावेश होनेपर शरीरके प्रत्येक अवयव एवं परमाणुमें उसकी व्याप्ति हो जाती है। इससे बच्चोंके मनमें भोगसम्बन्धी संस्कार तो पड़ते ही हैं, स्नायुओंमें उत्तेजना भी होने लगती है। छोटे-छोटे बच्चोंके मस्तिष्क और शरीरके अवयव बहुत ही कोमल एवं स्निग्ध होते हैं। शैशवमें ही उनपर जैसी छाप पड़ जाती है, वही जीवनभर प्रकाशित होती रहती है। जो माता-पिता अपनी संतानको ब्रह्मचारी बनाना चाहते हैं, उनके लिये यह आवश्यक है कि जबतक वह दूध पीता रहे, तबतक अपनी वासनाको शान्त रखें।

३-माता-पिताको शिशुके सम्मुख ऐसी कोई चेष्टा कभी नहीं करनी चाहिये, जिसको देखकर उसके जीवनमें भी बुरी आदतें उतर आयें। खट्टा, चरपरा, चाट, मिठाई न तो स्वयं खाना चाहिये और न बच्चोंको ही खिलाना चाहिये। शरीरकी चरम धातु (वीर्य) रग-रगमें अनुस्यूत रहती है। बचपनमें भी उत्तेजक पदार्थोंके सेवनसे उसका पृथक्करण होने लगता है। इसीसे छोटे-छोटे बच्चोंको भी प्रमेह, धातुक्षय हो जाते हैं। बचपनसे ही आहारशुद्धि ब्रह्मचर्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। आहार-शुद्धिके सम्बन्धमें चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये—

(अ) आहार स्वभावसे ही उत्तेजक न हो। मांस, शराब, प्याज, लहसुन आदि जन्मसे ही उत्तेजक हैं।

(आ) भोज्य पदार्थमें कोई ऐसी वस्तु न मिली हो, जिससे वह वीर्यक्षरणका हेतु बन जाय—जैसे अमचूर, राई, गरम मसाले, लाल मिर्च इत्यादि। धूम्रपान ब्रह्मचर्यका शत्रु है।

(इ) भोजनकी वस्तु रजस्वला एवं प्रबल काम-वासनावाली स्त्रीके द्वारा छुई या बनायी हुई न हो। कुत्ते और गीध आदिकी दृष्टि भोजनपर नहीं पड़नी चाहिये। भोजनपर भावका बहुत प्रभाव पड़ता है। रोती हुई स्त्रीके हाथका भोजन करनेसे रोना पड़ता है।

(ई) भोज्य पदार्थपर अपना न्यायसंगत स्वत्व होना भी आवश्यक है। दूसरेका हक मनको बाहर खींचता है। गृहस्थको बिना परिश्रम अथवा बिना मूल्यका भोजन नहीं करना चाहिये। इससे विकारोंकी वृद्धि होकर गृहस्थोचित ब्रह्मचर्य भङ्ग हो जाता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीका भिक्षापर न्यायोचित स्वत्व है, परंतु यदि वे आश्रमोचित कर्मानुष्ठान न करें, केवल भिक्षाजीवी बन जायँ तो उनका पतन हो जाता है। ब्रह्मचारीके लिये श्रम अपेक्षित है, चाहे वह किसी भी आश्रममें क्यों न रहता हो। श्रमसे ही शुक्रका पाचन होता है।

४-जब बालक थोड़ा बड़ा हो जाय, तब उसे भोगमय वातावरणसे अलग रखना चाहिये। प्राचीन कालमें इसके लिये गुरुकुल अथवा ऋषिकुलकी प्रणाली थी। इससे अनेक लाभ हैं—

(१) अध्ययनकी निश्चिन्त सुविधा।

(२) आदर्श आचार्यसे आचरणसम्बन्धी व्यावहारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा।

(३) आचार्य एवं आश्रमकी सेवासे स्वार्थत्याग एवं सार्वजनिक हितका अभ्यास।

(४) एक विशेष परिवारमें ही मोह-ममताकी शिथिलता।

(५) भोगमय जीवनसे पृथक् रहकर अपने लिये प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गमेंसे कोई एक चुननेके लिये संतुलित बुद्धिद्वारा विचार।

(६) संग्रह-परिग्रहके आडम्बरके बिना भी सुखी रहनेकी आदत पड़ जानेसे अर्थासक्ति और भोगलिप्साकी निवृत्ति, जिससे भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार आदिसे स्वयं घृणा होना।

(७) शान्तचित्तसे आत्मस्वरूप एवं परमात्मस्वरूपका विवेचन होनेसे तत्त्वसाक्षात्कार होकर परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें स्वाभाविक स्थिति।

(८) विश्व, राष्ट्र, सम्प्रदाय, समाज, परिवार एवं व्यक्तिकी सेवाकी योग्यता प्राप्त होना।

५-माता-पिता एक पुत्रसे अधिक उत्पन्न न करें तो सर्वोत्तम है। यदि अधिक पुत्र उत्पन्न करना ही हो तो बालकको ब्रह्मचर्याश्रममें निश्चितरूपसे भेज दें, जिससे बालकके स्वाभाविक ब्रह्मचर्यके भावपर कोई ठेस न पहुँचे और वह आदर्श आचार्यकी शरणमें रहकर सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणोंको सीख सके और ज्ञानोपार्जन कर सके।

६-आचार्यका आदर्श होना परम आवश्यक है। वह भी ब्रह्मचारी हो तो सर्वोत्तम। यदि गृहस्थ हो तो अपनी स्त्रीको आश्रमसे सर्वथा पृथक् रखे। स्वयं संध्या-वन्दन, बलिवैश्वदेव आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करे। सत्य, अहिंसा आदि नियमोंका पालन करे। स्वाध्यायशील और परिश्रमी हो। उद्धत वेष-भूषा धारण न करे। शौकीनी न करे। सादगीसे रहे। ब्रह्मचारियोंको अपने पुत्रके समान समझे। अपने आचरणके द्वारा उनके हृदयपर स्वार्थत्याग, विश्वसेवा, श्रद्धा, अभय आदि दैवीसम्पत्तिके भाव अङ्कित करे। आचार्यके गुण ही ब्रह्मचारीमें उतरते हैं। आचार्यको आलस्य, प्रमाद, परनिन्दा आदि दोष भूलकर भी नहीं अपनाने चाहिये। काशीके एक विद्वान् आचार्य एक बार अपने पुत्रके सामने संध्या-वन्दनमें किंचित् प्रमाद कर बैठे थे, जिससे उनके पुत्रने संध्या-वन्दन करना ही छोड़ दिया।

७-ब्रह्मचारियोंके जीवनकी आधारशिला श्रद्धा और विश्वास ही है। बाल्यावस्थामें उनके विचार, ज्ञान और अनुभवकी मात्रा अत्यन्त स्वल्प होती है। इसलिये ब्रह्मचर्य-आश्रममें ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे ब्रह्मचारियोंके अन्तःकरणमें शास्त्रके प्रति महत्त्व-बुद्धि, धर्ममें निष्ठा और ईश्वरमें विश्वासकी वृद्धि हो। प्राथमिक शिक्षामें खण्डन-मण्डनके ग्रन्थोंको स्थान नहीं देना चाहिये। एक समाजके प्रति राग और दूसरेके प्रति द्वेष उत्पन्न करनेवाली शिक्षा अनर्थकी जननी है। इसीसे व्यापक वैमनस्य, संघर्ष, कलह एवं गृहयुद्धोंकी उत्पत्ति होती है। शिक्षा सर्वतोमुखी होनी चाहिये। उसमें साधारण उठने-बैठने, खाने-पीने, बोलने आदिकी शिष्ट रीति बतानेके साथ-ही-साथ घरेलू काम-धंधे, चिकित्सा, व्यापार आदिकी बातें भी होनी चाहिये। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शासन-प्रणाली, संविधान, देश-विदेशकी संस्कृति, अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्ध आदिका प्रशिक्षण भी आवश्यक है। पाठनकी रीति ऐसी होनी चाहिये, जिससे केवल किताबी ज्ञान न होकर रचनात्मक और अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त हो। कूपमण्डूकवत् संकीर्ण प्रवृत्तियों और भावनाओंका अन्त कर देना चाहिये। यदि अन्तःकरणमें ईश्वर और धर्मपर विश्वासकी स्थापना नहीं की गयी तो संसारकी कोई भी शिक्षा मनुष्यको ईमानदार, चरित्रवान् बनानेमें सफल नहीं हो सकती। कोई भी शासन, विधान, पुलिस, सेना एवं अस्त्र-शस्त्र मनुष्यके हृदयको नहीं गढ़ सकता। श्रद्धा, भावना, विचार और आचरणके द्वारा ही उसका निर्माण हो सकता है।

८-ब्रह्मचारियोंको अपने आचार्यके प्रति निश्छल, नम्र एवं अत्यन्त श्रद्धालु होना चाहिये। उनके सामने और परोक्षमें भी बड़ी सभ्यता, समझदारी, विनय और मर्यादासे बर्ताव करना चाहिये। आचार्यसे पीछे सोना और पहले उठना चाहिये। स्नान, संध्या-वन्दन, हवन, व्यायाम और स्वाध्यायसे शरीर एवं बुद्धिका पोषण होता है। उपासनाके बिना चित्तमें एकाग्रता और सूक्ष्मता नहीं आती। आसनके अभ्यासके साथ-साथ थोड़ा प्राणायाम भी लाभकारी है। इससे शास्त्रका तात्पर्य ग्रहण करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारीको कब्ज कभी नहीं होने देना चाहिये। कब्जसे ही आलस्य, प्रमाद और आगे चलकर स्वप्नदोषकी सृष्टि होती है। पेटकी खराबीसे मनमें विकार आने लगते हैं। इसके लिये भोजनपर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है। अत्याहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अनाहार दोनों ही कब्जके कारण बनते हैं। सात्त्विक भोजन भी मात्रासे अधिक लेनेपर विष हो जाता है। इसलिये भोजनमें मात्राका परिमित होना बहुत ही जरूरी है। आजके संसारमें भोजन न मिलनेसे उतने मनुष्य रुग्ण एवं काल-कवलित नहीं होते, जितने अधिक भोजनके कारण होते हैं। अपनी उन्नति, अन्तर्मुखता और संयमका लेखा-जोखा चाहिये। जीवनको आत्मबल, उत्साह और आशासे पूर्ण कर देना चाहिये। ब्रह्मचारीका संकल्प दृढ़ एवं अविचल हो।

९-ब्रह्मचर्याश्रमके संचालकोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि ब्रह्मचारी भीतर कुछ और बाहर कुछ और न होने पाये। ब्रह्मचारीके जो दोष-दुर्गुण निवृत्त करने हों, उनके प्रति पहले दोषबुद्धि उदय करानी चाहिये और जो काम कराना हो उसके प्रति महत्त्वबुद्धि, जिससे उनकी वर्धिष्णु विचार-शक्तिपर कोई आघात न लगे। विशेष दबाव डालकर जो नियम पालन कराये जाते हैं, उनका प्रभाव प्रतिक्रियात्मक पड़ता है। ब्रह्मचारीकी बुद्धि ज्यों-ज्यों विकसित होती जाय, त्यों-त्यों उनके आचारसम्बन्धी विज्ञानमें भी वृद्धि होनी चाहिये। अन्यथा ब्रह्मचर्याश्रमसे निकलते ही वे एकाएक समस्त नियमोंको तोड़ डालते हैं और जिस जीवन-निर्माणके लिये उनसे तपस्या करायी जाती है, वह नहीं हो पाता। एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है। ब्रह्मचारियोंके द्वारा जो उनकी विद्या-बुद्धिके सार्वजनिक प्रदर्शन कराये जाते हैं, वे सच्चे हों। उनमें दम्भकी मात्रा बिलकुल नहीं होनी चाहिये। ब्रह्मचारी छात्रको जिस विषयका ज्ञान नहीं है, यदि वह दूसरेसे उधार लेकर, रटकर, नकल करके या अन्य किसी अनुचित रीतिसे जनसमाजमें उसका प्रदर्शन करता है तो थोड़ी देरके लिये संचालकों, आचार्यों एवं ब्रह्मचारियोंको तात्कालिक वाहवाही और प्रशंसा प्राप्त हो जाती है। कुछ आर्थिक लाभ होना भी सम्भव है, परंतु इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव प्रतिकूल पड़ता है। झूठे अभिमान और दम्भसे बढ़कर कोई पतन नहीं है। अपनी कमजोरियोंको जानना, अज्ञानको पहचानना, सतत आत्मनिरीक्षण करना सबसे बड़ी शिक्षा है।

१०-अध्ययन-अध्यापनमें एक हदतक भाषा और व्याकरणका ज्ञान आवश्यक है, परंतु वही सब कुछ नहीं है। वस्तुके ठोस ज्ञानपर ही मुख्य दृष्टि रखनी चाहिये। केवल 'गौ' शब्द, उसके धेनु, सुरभि, वृषभ आदि पर्याय एवं उन शब्दोंके भिन्न-भिन्न प्रयोगोंकी रीति जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। कोष, व्याकरण, साहित्य, यमक-अनुप्रास आदिकी जानकारी ठीक होनेपर भी यदि गायसे परिचय नहीं है तो सब व्यर्थ है। इसी प्रकार जिस विषयका अध्ययन हो, उसका क्रियात्मक, रचनात्मक, प्रयोगात्मक, व्यावहारिक अनुभव भी होना चाहिये। किसीको झाड़ुओंके बहुतसे नाम और आकृतियाँ मालूम हों, परंतु झाड़ू लगाना न आता हो तो उस ज्ञानका क्या महत्त्व है? इसी प्रकार धर्म, ब्रह्म, प्रेम आदि पदार्थोंका भी साक्षात्कार होना चाहिये। केवल पदवाक्य और प्रमाण-ज्ञानसे ही अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेना चाहिये। सारे अध्ययन, अध्यापन, संयम, नियम, जप, तप, धारणा, ध्यान आदि साधन सत्य वस्तुके साक्षात्कारके लिये हैं। यदि इसी जीवनमें सत्यका साक्षात्कार नहीं हो गया तो बहुत बड़ी भूल—जीवनका विनाश समझना चाहिये।

११-ब्रह्मचर्य-रक्षाके लिये छान्दोग्योपनिषद्में छः बातोंपर विशेष बल दिया गया है—

(१) इष्ट अर्थात् अग्निहोत्र, शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपस्या, वेदोंका स्वाध्याय, वेदोक्त आचरणका अनुष्ठान, अतिथि-सेवा और बलिवैश्वदेव।

(२) यज्ञ अर्थात् देवाराधन, अपने हककी वस्तुओंको औरोंके प्रति वितरण, पञ्चभूतोंकी शुद्धि, समष्टिकी सेवा।

(३) मौन—मनमें वासनाओंका स्फुरण न होना, मनोराज्य न होना। आवश्यकतासे अधिक भाषण न करना।

(४) अरण्यायन—शान्त, एकान्त, पवित्र, निर्जन वनमें वास करना।

(५) सत्रायण—सत्संगमें निवास करना।

(६) अनाशकायन—भोजनके सम्बन्धमें एक निश्चित शैली रखना।

१२-शतपथ ब्राह्मणमें ब्रह्मचारीकी चार शक्तियोंका उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) अग्निके समान तेजस्विता।

(२) मृत्युके समान दोषों—दुर्गुणोंके मारणकी शक्तिका होना।

(३) आचार्यके समान दूसरोंको शिक्षा देनेकी शक्तिका विद्यमान होना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) संसारके किसी भी स्थान, वस्तु, व्यक्ति आदिकी अपेक्षा रखे बिना आत्माराम होकर रहना।

१३-गोपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों, धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों एवं मन्वादि धर्मसंहिताओंमें सर्वत्र ही ब्रह्मचारियोंके लिये नृत्य, वाद्य, संगीत, नाट्य आदिका निषेध प्राप्त होता है। ललित कलाएँ अन्तस्तलकी सुषुप्त वासनाओंको धीरे-धीरे कुरेदती हैं और उन्हें उकसाती तथा भड़काती हैं। भगवद्विषयक ललित कलाएँ उतनी बाधक नहीं हैं। फिर भी ब्रह्मचारियोंको शृंगार-सम्बन्धी अभिनय और भावभङ्गिमासे सर्वथा पृथक् रहना चाहिये। रासलीलाके श्रवण-श्रावणके द्वारा कामविजयकी प्रणाली भी शृंगाररसाकृष्ट व्यक्तियोंके लिये ही है। ब्रह्मचारियोंके लिये वह हानिकारक है। ऐसी अवस्थामें नाटक, सिनेमा आदि विकारवर्धक एवं उद्दीपक प्रसंगोंसे पृथक् रहनेमें ही ब्रह्मचारियोंका कल्याण है।

१४-समावर्तन-संस्कारके पूर्व अपने स्वभाव, रुचि, महत्त्वाकांक्षा, योग्यता, स्वहित, परहित आदिका गम्भीर विवेचन कर लेना चाहिये। पूरी सच्चाईसे इस बातका अनुशीलन कर लेना चाहिये कि हम सांसारिक भोग्य पदार्थोंकी प्राप्तिसे सुखी होते हैं, हमें सुन्दर वस्त्र-आभूषण, भोजन, मान-प्रतिष्ठा, बड़ाई और धन आदिकी प्राप्तिसे सुख होता है अथवा इनके त्यागसे। यदि किंचित् भी लौकिक वासना अन्तःकरणमें शेष हो तो त्यागमय आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा धारण न करके निःसंकोच गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और तदनुकूल ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। गृहस्थोचित ब्रह्मचर्यमें निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

(१) गृहस्थाश्रम भोग भोगनेके लिये नहीं है, अपितु भोगवासनाओंको नियन्त्रित करके उनका नाश करनेके लिये है। ब्रह्मचर्यमें जैसा शक्ति-संचय, ज्ञानका प्रकाश, तपस्याकी वृद्धि, लौकिक सुख एवं पारमार्थिक सुखकी प्राप्ति है, भोगमें उसका लक्षांश भी नहीं है। जैसे फोड़ा होनेपर उसकी मवाद निकलते समय एक प्रकारका सुख होता है, वैसे ही मनमें विकार या मन्थनकी पीड़ा होनेपर वीर्यपातसे एक प्रकारका हलकापन अथवा आभासमात्र सुखका अनुभव होता है। जैसे भाँगका नशा उतर जानेपर सुस्ती, कमजोरी और उदासी मालूम पड़ती है, वैसे ही कामावेश शान्त हो जानेपर स्त्री-पुरुषका पारस्परिक संग कोई सुख, स्वाद, विलास नहीं है। यह एक प्रकारका रोग, विवशता, पराधीनता और दुःखका मूल है। इसका न होना ही अच्छा है। संयमपर दृष्टि रखते हुए ही भोग करना चाहिये।

(२) एक पुरुषका एक स्त्रीसे और एक स्त्रीका एक ही पुरुषसे संयोग होना चाहिये। मनमें विकार आ जानेसे भी शील, संयम और व्रतका भङ्ग हो जाता है और इस प्रकार मनोवैज्ञानिक पतन हो जानेसे जीवन अनियमित, उच्छृंखल एवं अधोगामी हो जाता है।

(३) स्त्री-पुरुषके संयोगके सम्बन्धमें अवस्था, शक्ति, समय, स्थान आदिका भी ध्यान रखना चाहिये।

(४) व्यभिचारको प्रोत्साहन देनेवाली गर्भ-निरोधकी प्रणालियोंको कभी काममें नहीं लाना चाहिये। संयम अवश्य रखना चाहिये।

(५) पति-पत्नीको अलग-अलग शयन करना चाहिये।

(६) सम्भव हो तो एक पुत्र उत्पन्न होनेपर इस शक्तिक्षयकारिणी क्रियासे विरत हो जाना चाहिये और वैराग्य हो तो वानप्रस्थ अथवा संन्यास-आश्रममें प्रवेश करना चाहिये अथवा विश्वसेवाके कार्यमें लग जाना चाहिये। यह विश्व ही परमात्माका मूर्तरूप है।

(७) गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी यथाशक्ति स्वार्थत्याग करके विश्वसेवाके आदर्शको पूर्ण करना चाहिये।

१५-आजीवन त्यागमय ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करना अथवा ब्रह्मचर्याश्रमके बाद संन्यासाश्रममें प्रवेश करना आपत्तिकी बात नहीं है, किंतु इसके पूर्व अपने अधिकार (योग्यता और शक्ति)-का भलीभाँति विचार कर लेना आवश्यक है। केवल तात्कालिक आकांक्षा, रुचि और आवेशसे प्रेरित होकर ऐसा करना बुद्धिमानीकी बात नहीं है। लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये पूर्ण निश्चय और वज्रकठोर दृढ़ताकी आवश्यकता है। जिसमें इन्द्रियदमन, मनपर विजय, तपस्या एवं द्वन्द्व-तितिक्षा तथा कष्टसहनमें ही सुखका भाव है, वही त्यागमय जीवनका अधिकारी है। बिना वैराग्य एवं त्यागकी तीव्र भावना हुए आजीवन ब्रह्मचर्यका संकल्प निष्फल ही नहीं है, पतनका हेतु भी है। ईश्वर, आचार्य, शास्त्र एवं आत्मदेवकी कृपाका संबल लेकर ही इस मार्गपर अग्रसर होना चाहिये। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणागति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**' गीतामें कहे हुए भगवान् श्रीकृष्णके ये वचन उनके परिपूर्णतम, सबके आदि और स्वयं भगवान् होनेकी घोषणा करते हैं। सम्पूर्ण जगत् उनके एक अंशमात्रमें स्थित है। उनके सिवा किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, सारा चराचर जगत् सूत्रमें मणियोंकी भाँति उनमें ही गुँथा है। अत: उनमें आत्मगोपन नहीं है, पर भगवान् राम मर्यादापुरुषोत्तम बनकर आये तब छिपकर मर्यादामें रहे फिर भी कहीं-कहीं उनका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो ही गया। परंतु श्यामसुन्दरमें यह संकोच नहीं।

तत्त्वत: राम और श्याममें कोई अन्तर नहीं है। जो राम हैं, वही श्याम हैं और जो श्याम हैं, वही राम हैं। वैसे ही उनके और रूपोंमें भी कोई अन्तर नहीं है। भेद है केवल लीलाविलासका; परंतु जैसा अपने सम्बन्धमें खुल करके भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है, वैसा कहनेमें दूसरे सकुचाते हैं। भगवान् अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं, त्रिकालज्ञ हैं, उनसे कोई बात छिपी तो है नहीं। उन्होंने अर्जुनके सामने बहुत गोपनीय रहस्योंका उद्घाटन किया और अपने स्वरूपको प्रकट किया तथा कहा—'**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**'—इस भगवद्वाणीमें धर्मोंके त्यागकी बात नहीं, अपितु धर्मोंके आश्रयके त्यागकी बात है और मात्र एक आश्रय ग्रहण करनेकी—प्रेम करनेकी बात है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि—सब धर्मोको छोड़ दो, और सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर, सबका परित्याग कर '**मामेकं शरणं व्रज**' एकमात्र मेरी शरण हो जाओ, तथा '**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु**'—मन मुझे दे दो। मन दे दिया तो सब दे दिया। फिर यदि कहो कि मन तो दे दिया, लेकिन तन! 'तनसे मेरी सेवा करो'—यहाँ सेवाका अर्थ है भजन और भक्तिका अर्थ है सेवा। सर्वात्म-समर्पणपूर्वक अपने इष्टदेवके मनोऽनुकूल आचरणवाला जीवन बन जाय तो इसीका नाम भक्ति है। मेरे भक्त बनो। '**मद्याजी**' का मतलब है कि—'केवल मेरी पूजा करनेवाले बनो'।

तात्पर्य यह कि जिससे सब निकले तथा जो सबमें व्याप्त है '**येन सर्वमिदं ततम्**' उस व्यापक भगवान्की पूजा करो। भाव यह कि वह व्यापक भगवान् मैं ही हूँ और कोई नहीं है। इसलिये बिना संकोच स्पष्ट कह दिया कि 'मेरी पूजा करो।' मेरी पूजा करनेवाले बनो, हाथ जोड़ना हो, नमस्कार करना हो, दंडवत् करना हो तो मुझे ही करो।

देखो, भगवान् श्रीकृष्णने ऋषियोंके द्वारा पूजा भी स्वीकार की, स्वयं पूजा करते भी रहे। अर्थात् सारे '**इदम्**'को अपनेमें समेट लिया यह भी मैं, वह भी मैं। जिसको—जिस आत्माको '**अहम्**' कहते हैं, उसे '**स:**' भी कहते हैं अर्थात् वह भी मैं। जो '**इदम्**' (यह) दीखता है वह प्रपंच भी मैं। मेरे सिवा कुछ है ही नहीं। मैं ही खेलता हूँ और अपनेमें ही खेलता हूँ। मैं श्रीकृष्ण श्यामसुन्दर-नटवर-वपु-रूपमें नये-नये स्वाँगोंमें खेलता हूँ। यह है भगवान्की लीला। परमगोपन और सर्वविदित। यह सर्वगुह्यतम है—'**सर्वगुह्यतमम्।**'

भगवान्का रहस्य तो केवल भगवान् ही जानते हैं। अन्य जो भी जाननेका अभिमान करते हैं, वे सब अज्ञानी हैं। इस '**सर्वगुह्यतमम्**' का तात्पर्य यह है कि भगवान् चाहते हैं, कहते हैं कि मेरे साथ यदि किसीको प्रीति करनी हो, मुझसे यदि किसीको प्रेम करना हो तो जगत्के सारे कर्तव्य-अकर्तव्योंसे ऊपर उठना पड़ेगा। जगत्के सारे भयोंसे और सारी आशाओंसे मुक्त होना पड़ेगा। जगत्की सारी क्रियाओंसे, अक्रियाओंसे अलग होना होगा। अर्थात् क्रिया और अक्रिया—दोनोंमें उनका पूजन, त्याग और भोग दोनोंसे उनका पूजन, छोड़ने और करने दोनोंसे उनका पूजन, तात्पर्य, उसके सिवा जीवनमें अन्य कुछ भी न तो अपना है तथा न कोई प्राप्तव्य है और नहीं कुछ करने योग्य कार्य है। प्राप्त करने योग्य वस्तु, सेवन करने योग्य वस्तु है तो बस एकमात्र परम प्रेमास्पद भगवान् अर्थात् मैं।

भगवान्के प्रति ऐसा समर्पण जब हो जाता है, तब उस प्रेम-राज्यमें तरंगित रहता है केवल प्रेम-समुद्र। जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका तल है, वहाँ तो वह सर्वथा प्रशान्त है। वहाँपर न विक्षोभ है न तरंग है न लहरियाँ हैं। परंतु वह समुद्र—अत्यन्त प्रशान्त है और महासागर है—इतना विलक्षण है कि उसी सागरमें अनवरत नित्य नव-नव तरंग-मालाएँ नाचती रहती हैं। वह जैसे शान्त है, ठीक उसी प्रकार वह नाचनेवाला भी है। जैसे अनन्त है, उसी प्रकार अन्तकी लीला करनेवाला भी है, जिस प्रकार अगाध है, उसी प्रकार छलकनेवाला भी है। जिस प्रकार निःस्तब्ध है, उसी प्रकार महान् शब्द करनेवाला भी है। युगपत्-विरुद्ध-धर्माश्रयत्व जिसमें रहे—उसका नाम है भगवान्। इसका संकेत उपनिषदोंमें, वेदोंमें सर्वत्र है—'**अणोरणीयान् महतो महीयान्।**'

यह विषय बुद्धिग्राह्य नहीं है। बुद्धिमें ब्रह्म आता नहीं—आ सकता नहीं। यह '**बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्**' है, अर्थात् बुद्धिग्राह्य नहीं-अतीन्द्रिय है। बुद्धि-ग्राह्यका अर्थ केवल इतना है कि बुद्धि समझती है कि यह अतीन्द्रिय है। बुद्धि केवल उसकी अतीन्द्रियताका परिचय प्राप्त कर पाती है, उसके स्वरूपका नहीं। यदि प्रकृतिसे उत्पन्न बुद्धि उस ब्रह्मके स्वरूपका आकलन कर ले, उस बुद्धिमें वह रूप समा जाय, यद्यपि यह सर्वत्र सब जगह समाया हुआ है, पर बुद्धिमें ठीक-ठीक समा जाय, तब बुद्धिजन्य हो सकता है। परंतु श्रुतियाँ कहती हैं '**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**' जहाँसे यह वाणी, मन, बुद्धि तथा चित्त सब लौट आते हैं, उसके वास्तविक स्वरूपको समझकर वर्णन करते हैं—यह भी वह नहीं, यह भी वह नहीं, यह भी वह नहीं—तब फिर उसका आकलन कौन करे? उसे कौन बताये? वह किसकी वाणीमें आये? वहाँ तो ऐसा निर्देश प्राप्त होता है कि इस प्रकार जो तत्त्व है वह तत्त्व ही जहाँपर अपना बनकर अपने गुणोंको प्रकट करता है, अपने गुणोंका अवतरण कर लीलाविलासमें प्रवृत्त होता है, उस परमतत्त्वका नाम है श्रीकृष्ण। वैष्णवोंके दर्शनको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने बड़ा विचार किया है। विचारकी धारा अलग और विचारकी दृष्टि अलग रखकर उन्होंने आह्लादिनी, संधिनी और संवित्—इन तीन शक्तियोंका विवेचन किया है। विष्णुपुराणमें भी यह संदर्भ प्राप्त है। आह्लादिनी शक्ति भगवान्‌का नित्य आनन्दमय स्वरूप है। वह आनन्द ही, वह आह्लाद ही नित्य-निरन्तर श्रीविग्रहके रूपमें प्रकट है—हुआ नहीं, अपितु नित्य-प्रकट है, नित्य उद्वेलित है, नित्य उच्छलित है, नित्य लीलापरायण है। वह आनन्द शान्तानन्द ही नहीं उच्छलितानन्द भी है। नर्तनानन्द भी है, संगीतानन्द भी है, विरहानन्द भी है, मिलनानन्द भी है। इस प्रकार वह आनन्द-आह्लाद जहाँ प्रत्यक्ष प्रकट है, उस प्रकट आह्लादके श्रीविग्रहका नाम है राधा। ये जो लीला-धाम हैं—ये जो लीला-परिकर हैं—ये सब-के-सब संवित्-शक्ति हैं—भगवान्‌की स्वयंकी चिति-शक्तिद्वारा इन सबका प्रादुर्भाव होता है। जो सत्-शक्ति है, वही शक्ति लीलाके रूपमें प्रकट होती है। लीला-परिकर, लीला-स्थान, लीला और लीलाका प्रधान पात्र भी वही है। अब प्रश्न आता है—श्रीगोपाङ्गनाएँ क्या हैं? ये श्रीराधाकी कायव्यूह-रूपा हैं। राधा है श्रीकृष्णका अभिन्न स्वरूप आनन्दांश और राधाके शरीरसे—राधाके श्रीविग्रहसे जिनका प्राकट्य हुआ, वे सब-की-सब हैं गोपाङ्गनाएँ—राधाकी कायव्यूहस्वरूपा! नित्य-निरन्तर लीलाधाममें प्रकट जो महारास है—महालीलाविलास है, उसमें इन कायव्यूहरूपा श्रीगोपाङ्गनाओंका नित्य स्थान है। उनके साथ ही नये-नये साधनसिद्ध महात्मा लोग श्रीगोपाङ्गनाओंका स्वरूप प्राप्त करके, उस लीलामें सम्मिलित होते रहते हैं। जो इस मार्गके अन्वेषक हैं, अनुसंधानकर्ता हैं, साधक हैं अनुशीलन करनेवाले हैं, वे साधनसिद्धा गोपियोंके रूपमें नित्य-सिद्ध हो जाते हैं—नित्य-पार्षदत्वको प्राप्त हो जाते हैं। तथापि इन सबके मूलमें हैं राधा।

यह लीलाविलास है सच्चिदानन्दका लीलाविलास। इस लीलाविलासकी प्रधान नायिका हैं श्रीराधाजी! उन राधाजीमें जहाँ-जहाँपर जिस-जिस रसका जब-जब उन्मेष होना आवश्यक है, वह अविराम होता रहता है। प्रकटतः उसके आठ रूप माने गये हैं—पहला रूप है व्यापक, उसका नाम है 'प्रेम'। इस प्रेमका स्तर है श्रीकृष्ण-रूप-वृत्ति। 'प्रेम' केवल पारिभाषिक नाम है। इस वास्तविक प्रेमका स्वरूप है स्नेह। यह वह स्नेह नहीं जैसा अपनी प्रचलित भाषामें अपनेसे छोटोंके प्रति होता है, अपितु यह स्नेह उसी पवित्र प्रेमका एक परिष्कृत रूप है। स्नेहके बाद तीसरा रूप होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है मान। मानका नाम सुनकर डर जाते हैं लोग, परंतु यह वह मान नहीं, श्रीकृष्णके सुरत-संवर्धन-हेतु प्रकट नम्रता ही यह मान है। चौथा रूप होता है प्रणय। प्रणयके बाद पाँचवाँ रूप होता है राग। छठा अनुराग, सातवाँ स्तर रूप ग्रहण करता है भावका और आठवाँ स्वरूप होता है महाभाव। ये भाव और महाभाव—दोनों प्राय: एक ही हैं, परंतु भावका जहाँ पूर्ण विकास है—गोपीभावकी जहाँ राधाभावमें परिणति है—वह है महाभाव। उस महाभावमें फिर दो विलक्षण स्थितियाँ और प्रकट होती हैं, जिनके प्रेमशास्त्रके अनुसार नाम हैं—मादन और मोदन। राधाका मादनाख्य भाव और राधाका मोदनाख्य भाव। इसकी भी बड़ी उज्ज्वल पवित्रतम व्याख्या है—मादनाख्य भावमें अपनेमें महान् दैन्यका अनुभव होता है। इसका यत्किंचित् निर्देश प्राप्त होता है। एक लीलामें श्रीकृष्ण चले गये मथुरा। जानेके बाद श्रीराधा समझती हैं कि अब कुछ भी शेष रहा नहीं। श्रीकृष्ण तो अब मिलनेके नहीं। फिर भाव आता है कि अब तो केवल अँधेरा ही रह गया है। मुझे जीना नहीं है, जी सकती ही नहीं। पर एक अवलम्बन अवश्य मिल गया है श्रीकृष्णका कृष्णपना। काला रूप जो है वह उन्हींकी तो छाया है। अन्धकार-ही-अन्धकार चारों तरफ दीखता है, उस अँधियारेमें भी प्रतिभासित है श्रीकृष्णकी ही छाया। (पूर्व रागके समयकी एक बात है) एक बार श्रीराधा श्रीकृष्णतक नहीं पहुँच सकीं, कई तरहके विघ्न थे, बाधा थी—परंतु कालिमाकी छायामें जा करके श्रीराधाने श्रीकृष्णका अनुभव कर लिया। परंतु फिर दूसरी वृत्ति मनमें आयी, विचार करने लगीं कि छाया होते तो पड़ती। वे तो हैं नहीं और मेरे इस वियोगकी ज्वालासे सूर्य-चन्द्रमा भी जल गये, वे दोनों नहीं रहे। फिर छाया जिन सूर्य-चन्द्रमाके आधारसे पड़ती है वह स्थिति भी नहीं है, अब तो बच गया है अन्धकार, रह गयी है अँधियारी, निशा याद दिलानेवाली है। अत: यह कालापन ही मेरे जीवनका आधार रह गया है। अब तो इसीको लेकर मैं जीऊँगी। उसके बाद दैन्य जब और फूटता है, तब भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं। ध्यान देनेकी बात है, श्रीराधा एवं गोपाङ्गनाओंके लिये श्रीकृष्ण तो भगवान् हैं नहीं। वे परम प्रेष्ठ हैं, प्रियतम हैं, प्राणाधार हैं। प्रार्थना होती है प्रभुकी-श्रीमन्नारायणकी। वे जगदाधारसे प्रार्थना करती हैं—हे भगवान्! मेरी मन:कामना पूर्ण करें, प्रभो! जिस ओर मैं जाना चाहती हूँ, उससे विरुद्ध मेरा एक पैर भी न टिके। किस ओर जाना चाहती हैं, यह भी स्वयं ही बताती हैं। वे कहती हैं—'मेरे कलेवरका तापमान बढ़ता चला जा रहा है। शरीरका, मनका तापमान इतना बढ़ता जा रहा है कि वह पास आनेवालेको भी जला देगा। अत: श्रीकृष्ण जिस दूर देशमें हैं—हे भगवन्! मुझे उससे विरुद्ध देशमें ले चलो! श्रीकृष्णके समीपमें मैं न पहुँचूँ कभी! मुझे दूर ले चलो और दूर-से-दूर ले चलो। यदि कहीं मैं मार्ग भूल गयी, श्रीकृष्णकी ओर चल पड़ी और उनके समीप पहुँच गयी तो मेरे तापमानसे, मेरे शरीरकी गर्मीसे वायु उत्तप्त हो जायगी। पवन उत्तप्त हो जायगा और वह उत्तप्त पवन उस नील कलेवरको झुलसा देगा। अतएव हे नारायण! यह कदापि न घटे। मैं विपरीत चलूँ—दूर चलूँ। यही रुचिकर है।'

यहाँ मादनाख्य दैन्यका भाव है, इसीलिये वे कहती हैं कि मैं दूर जाना चाहती हूँ, जिससे मेरे उत्तप्त अङ्गोंका स्पर्श पाकर अति उत्तप्त वायु मेरे प्राणनाथके नीलकलेवरका स्पर्श न कर सके और वह सुखसे रहें। दूसरी भावना जब मनमें आती है, तब वे विचार करने लगती हैं—मैं जब चलती थी तो मेरे पीछे-पीछे भ्रमरोंका दल चलता था—गुनगुनाता हुआ, गुंजार करता हुआ। तब मुझे लगता था कि ये भौंरे क्यों उड़ रहे हैं। ये भौंरे मेरे पीछे क्यों चल रहे हैं। उत्सुकतावश पीछे एक दिन मुड़कर देखा—श्यामसुन्दर मेरे पीछे-पीछे चल रहे थे। श्यामसुन्दरका वह कलेवर दिव्यगंध-युक्त है, नित्य सौरभित है। दिव्य-कमलगंध-पूरित उस गंधको पानेके लिये ही ये भौंरे उड़ते चले जा रहे थे। इसीसे मैं यह समझती थी कि श्यामसुन्दर मेरे साथ हैं और मुझसे उनको सुख मिल रहा है। उसी सुखानुभूतिसे भौंरे गुनगुना रहे हैं, पर अब तो श्यामसुन्दर चले गये। वे ही तो मेरे जीवनके जीवन थे।

जीवन्तता हो तो शरीरको सुवासित करती है। दुर्गंधसे बचाये रखती है। जीवन गया, कुछ ही क्षणोंमें शरीर सड़ने लगता है—दुर्गंधयुक्त हो जाता है। श्रीराधाके मनमें भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है—मेरे शरीरके जो प्राण थे, वे तो छोड़कर चले गये, अब तो केवल ढाँचा रह गया है। वही चलता है। पर जब प्राण निकल गये तो शरीर अब दुर्गंधयुक्त हो गया, सड़-गल गया। हे भगवान्! हे नारायण! मुझपर कृपा करो कि मैं अपने श्यामसुन्दर जहाँ हैं, उससे इतनी दूर रहूँ, इतनी दूर रहूँ कि मेरे दुर्गंधयुक्त शरीरकी वायु भी उनका स्पर्श न कर सके। उन्हें दुःखी न बना सके। मुझे दूर रहना है। अतः मुझे दूर ले चलो।'

फिर एक नवीन उद्भावना आयी। मेरे श्यामसुन्दर मुझको छोड़कर चले गये। यह बड़ा ही सुन्दर हो गया। वही हो गया जो मैं चाहती थी। भगवान्‌ने मेरी इच्छा पूर्ण कर दी। मैं नितान्त अयोग्य, नितान्त अनधिकारिणी, सर्वथा दुर्गुणवती, सर्वथा कुरूपा, सर्वथा कुलक्षणवाली हूँ। श्यामसुन्दर मुझपर, सिर्फ मुझसे प्रेम करें और इसको अपना सुख मान लें। यह तो उनका सर्वथा भ्रम था। मैं भगवान्‌से प्रार्थना किया करती थी। भगवान्! मेरे प्रियतम श्यामसुन्दरका भ्रम आप मिटा दें—और किसी प्रकार ये मेरा परित्याग कर दें। मैं उनसे प्रार्थना करती, समय-समयपर अपने प्राणनाथसे निवेदन भी करती—नाथ! यह दुःख वरण करना आप छोड़ दीजिये। उन्हें समझाती कि 'मेरा यह साहचर्य तो आपके लिये दुःखरूप ही है, पर इसे मान रहे हैं आप अपना सुख; क्योंकि मुझमें आपकी आसक्ति-अनुरक्ति है। अतएव आप कृपा करके अपने इस भ्रमका निवारण करें, बहुत अधिक अधिकारिणी देवियाँ हैं, गुणवती, शीलवती, सब तरहसे मुझसे सुयोग्य। आप उन्हें स्वीकार कर लें।' जब-जब मैं यूँ कहती, तब-तब श्यामसुन्दरका मेरे प्रति अनुराग और बढ़ता चला जाता। तो मैं विचारमें पड़ गयी कि अब मैं क्या करूँ? कहती हूँ तो इनका अनुराग और बढ़ता है—आसक्ति और बढ़ती है और इस कारण इनका दुःख ही बढ़ता है, प्रकारान्तरसे और नहीं कहती हूँ तो इनके दुःखको मैं देख नहीं सकती। इनका दुःख कैसे मिटे? मेरे परित्यागसे मिट सकता है। मुझे ये त्याग दें तो इनका दुःख मिट जायगा। मैं तो इस त्यागके लिये तैयार हूँ ही।

नारायणने मेरी प्रार्थना सुन ली—देवने मेरी प्रार्थना सुन ली—इसलिये अक्रूर इन्हें मथुरा ले गये। जब ले गये तो वहाँ जाकर इनको योग्य अधिकारी कोई प्राप्त भी हो गया होगा। मेरी उन्हें विस्मृति भी हो गयी होगी। और मेरी विस्मृति उनके लिये सुखदायिनी होगी ही। आज मेरी साध पूरी हो गयी। यह है प्रिय-सुखसम्पादनके भावकी पराकाष्ठा।

(क्रमशः)

सतत उद्योग और मनोरथका त्याग

श्रेयकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको न तो निष्क्रिय रहना चाहिये और न कामना ही करनी चाहिये। ईश्वरने जो काम सौंपा हो, अथवा पूर्वकालमें चाहा हुआ जो कुछ अपनेको मिला हो, उसी कामको भलीभाँति करना चाहिये ऐसा न करके 'मुझे अमुक काम मिल जाय तो अच्छा', इस प्रकारकी इच्छा न करे। इच्छाका ही नाम मनोरथ है। उसका त्याग करना चाहिये। सेनामें सिपाहीकी योग्यताके अनुसार सेनानायक उसे काम सौंपता है। उस कामको एकचित्तसे न करके बड़ी पदवी अथवा दूसरे कामकी इच्छा रखनेवाला जैसे सच्चा सिपाही नहीं है, वैसे ही संसारमें भी जो परिस्थिति और जिस कामके लिये शरीर मिला हो, उस कामको न करनेवाला मनुष्य अपराधी माना जाता है। बहुत-से मुमुक्षु इसी दशामें रहते हैं और जीवनभर कर्तव्य-पालनके बदले मनोरथोंकी सेवा और प्राप्त कार्य एवं साधनकी अवहेलना करते रहते हैं। जो काम, जो संयोग, जो साधन प्राप्त हो और जिस परिस्थितिमें शरीर हो, उसीमें रहकर साधना करनी चाहिये। सत्य और अहिंसा—इन दोको जो नहीं छोड़ता और प्राप्त कार्य किये जाता है, वह यदि उस कामके लिये अयोग्य है तो वह काम अपने-आप छूट जायगा। सत्य और अहिंसा—ये दो ऐसे व्रत हैं, जो साधकको अपायमेंसे—गढ़ेमेंसे निकालकर ऊपर ले जाते हैं। मनुष्यको काम बदलनेकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूठ और हिंसाको छोड़नेके लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। प्राप्त कार्य, प्राप्त सगे-सम्बन्धी, प्राप्त धन, शक्ति या परिस्थिति सब अपने ही पुण्य या पापके फलस्वरूप मिले हैं। बबूल बोनेवालेको जैसे आम नहीं मिल सकता, वैसे ही पूर्वजन्ममें जैसे कर्म किये हुए होते हैं, उन्हींके अनुसार फलस्वरूप हमें सब कुछ मिलता है। उससे घबराना पाप है। जैसे एक पैसा देकर एक रुपयेका माल चाहनेवाला पाप करता है। 'परमात्मा ऐसा दयालु और न्यायी है कि उससे कभी भूल नहीं होती।' इस प्रकार श्रद्धा रखकर कर्मवशात् जो कुछ भी इस जन्ममें मिला हो या मिले, उसीमें आनन्द मानकर उद्यम करते रहना चाहिये। प्रारब्ध अर्थात् पूर्वमें किया हुआ कर्म। पूर्वमें किया हुआ कर्म और वह कर्म जो भोग प्रदान करे, उसका नाम 'प्रारब्ध' है। मन्द, मध्य और तीव्र—इस प्रकार प्रारब्ध तीन प्रकारका होता है। मन्दके लिये विशेष पुरुषार्थ करना पड़ता है और मध्यके लिये सामान्य। तीव्रके लिये अत्यन्त अल्प पुरुषार्थकी आवश्यकता होती है। जीता-जागता प्राणी कभी क्रियाहीन नहीं रह सकता। इसलिये जिज्ञासुको निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिये और वह भी प्राप्त परिस्थितिके अनुसार प्रसन्न-हृदयसे। मन्द और मध्यम बुरे प्रारब्धसे प्राप्त दुःख, भक्ति तथा परोपकार आदिसे चले जाते हैं। जिज्ञासुको पुरुषार्थमें लगे रहना चाहिये। वह प्रारब्ध या दैवकी बाट न देखे और न दैवको लेकर तर्क-वितर्क करे। निरन्तर पुरुषार्थ करता रहे। पेट भरने और कुटुम्बके पोषण करनेका नाम ही पुरुषार्थ नहीं है। जिसके पास जीवनभरके लिये खाने-पीने और कुटुम्बपोषणके लिये सामग्री हो, उसे भी उद्योगका त्याग नहीं करना चाहिये। शरीर जीवित रहकर खाता है, पीता है, हवा लेता है, अतएव वह इस जगत्का ऋणी है। शरीरसे कर्म करना ही चाहिये। शुभ करनेपर कल्याण होगा और अशुभ कर्मसे दुःखकी प्राप्ति होगी। प्राणीमात्रको परमात्मस्वरूप जानकर उनकी सेवाके लिये किया जानेवाला कर्म शुभ है और इससे विपरीत प्राणियोंको दुःख देनेवाला कर्म अशुभ है।

व्यापार करना, बच्चोंका पालन करना, कुटुम्बकी सेवा करना, खेती, नौकरी, मेहनत-मजदूरी और अन्य इस जगत्में होनेवाले जितने कर्म हैं, उनमें कोई भी कर्म ऊँचा-नीचा नहीं है। अपनी परिस्थितिके अनुसार सत्य और अहिंसाकी रक्षा करते हुए कर्म करते रहना चाहिये। घरमें छोटे बच्चोंको अच्छी शिक्षा देनेवाला और सरकारके सर्वोच्च पदसे जनताके हितका उपदेश करनेवाला—यदि दोनों निष्काम हों तो दोनों समान हैं। सकाम होनेपर भी दोनों समान हैं। सारी सेनाके नायक—सेनापति और उसमें लड़नेवाला एक सिपाही निष्कामभावसे स्वधर्मका पालन करते हैं तो दोनों समान हैं। कर्मके छोटे और बड़ेपनसे कर्ताका माप नहीं होता। कर्ताके अंदरकी भावनासे वह नापा जाता है। धर्मयुक्त कर्म सत्य और अहिंसाको साथ लेकर कोई भी करे और वह निष्काम हो अर्थात् इस जन्ममें या अन्य जन्ममें उस कर्मके बदले कुछ पानेकी या भोगकी इच्छा न हो तो उसका फल चित्तकी शान्ति, ज्ञान और मुक्ति ही है। राजा, पण्डित, कथावाचक, संन्यासी या परमहंसको मुक्ति मिले और साग बेचनेवाले काछीको न मिले, ऐसी बात नहीं है। मुक्तिके लिये भेष बदलने, काम छोड़ने और अमुक प्रकारके साधन-संयोगोंको प्राप्त करनेकी वासना अथवा मनोरथका त्याग कर देना चाहिये। जो मनुष्य प्राप्त साधन और परिस्थितिका सदुपयोग करता है, उसे अपने-आप विशेष अनुकूल साधन और परिस्थिति प्राप्त होती है। बुद्धिमान् सेनापति अपने-आप ही कर्मनिष्ठ स्वामिभक्त सिपाहीकी उसकी योग्यताके अनुसार उन्नति करता रहता है। इसी प्रकार परमात्मा भी साधकको उसके कर्मोंके अनुसार ऊपर उठाता रहता है। अतएव साधकको मनोरथ और कर्मफलकी चिन्तासे मुक्त रहकर आनन्दके साथ साधनमें लगे रहना चाहिये।

सूर्यनारायण, ग्रह, नक्षत्र, तारा, प्राणिमात्र रात-दिन कर्म करते रहते हैं। जो प्राप्त कर्मसे घबराता है और कर्ममें आलस्य करता है, उसके पीछे जन्म-मरण और कालका धोखा लगा ही रहता है। सूर्य उगते ही जगत्को पुकारकर कहता है—'कर्म करो।' उस समय जब कर्मके फलमें चित्त नहीं लगा रहता है, तो वह स्वस्थ होता है और स्वस्थचित्तसे नियमित और अच्छी-से-अच्छी पद्धतिसे कर्म होते हैं। भोगमात्र ही कर्मका फल है। कर्मफलकी लालसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तमेंसे निकल जानेपर कर्म करते हुए भी चित्त शान्तिका अनुभव करता है। कर्मफलकी लालसा, भोगकी लालसा एक मनोरथ है। आवेशपूर्वक जल्दी-जल्दी कर्म करना, कर्म न करना, बैठ रहना, आलस्य और दुष्कर्म करना—ये सभी कर्मफलकी लालसाको लेकर, भोगकी वासनाको लेकर ही होते हैं। जिसका चित्त मनोरथसे दूषित नहीं होता, उस चित्तसे कर्म बहुत अच्छी तरह होते हैं। जैसे नदीका बहता हुआ जल जहाँ-जहाँ नीचाई होती है, वहाँ-वहाँ उस-उस प्रदेशको लाँघता हुआ स्वाभाविक सागरमें जा मिलता है, उसी प्रकार कर्मका फल न चाहकर सतत कर्मरूपी गतिमें संलग्न पुरुष अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होता है। कर्म किये बिना तो जीता-जागता कोई प्राणी रह सकता ही नहीं। पर यदि वह मनोरथका, भोगवासनाका त्याग नहीं करता तो उसे अशान्ति, दुःख और क्लेश ही मिलते हैं। इसलिये प्राप्त उद्यमको करते रहना चाहिये, पर उसमें आसक्त नहीं होना चाहिये। शरीरसे परिश्रम करनेका नाम ही उद्यम नहीं है, बोलना और विचारना भी उद्यम है। दूसरा कोई कार्य न हो, तब चित्तको जपमें अथवा अपने स्वरूपके विचारमें लगाना चाहिये। चित्त किसी-न-किसी आलम्बनके बिना रह नहीं सकता। समाधि और सुषुप्तिमें ही चित्त निष्क्रिय होता है। अन्य समय तो उसे कुछ-न-कुछ चाहिये ही। जगत्‌के कार्योंका अन्त तो आनेका ही नहीं; क्योंकि वे चक्रमें, गोलेमें फिरते हैं। जैसे किसी गोल वस्तुके पीछे फिरनेवाला कितना भी चले, पर अन्त नहीं आता, जैसे निरन्तर भरे और खाली किये जानेवाला बर्तन कभी भरता ही नहीं। ग्रह बड़ी तेज चालसे भ्रमण करते हैं, पर अभी उनका भ्रमण करना नहीं मिटा। पेट भरते इतने वर्ष हो गये, पर वह भरता ही नहीं। चित्त अनेक भोग भोगता है, पर वह पकड़में आता ही नहीं। सौ कमाये और सौ ही खर्च कर दे तो पूँजी कहाँसे जमा हो? जगत्‌के तमाम उद्यम इसी प्रकारके हैं। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको जगत्‌के भोग भोगकर उससे अलग होनेकी वासना छोड़ देनी चाहिये। जगत्‌में बहुत बड़ा बननेकी, अमुक वस्तुको प्राप्त करके सुखी होनेकी वासना छोड़ देनी चाहिये। कर्म करके सुख प्राप्त करनेकी वासनासे कभी सुख मिलता ही नहीं। पेट भरकर फिर पेट खाली न हो, ऐसा नहीं होता। मनकी एक इच्छा पूरी होनेपर दूसरी इच्छा नहीं होगी, ऐसी बात नहीं है। मनोरथोंको पूर्ण करते-करते कभी अन्त नहीं आता। दस मनोरथ पूरे होंगे तो सौ नये जन्मेंगे। आखिर तो उनसे पिण्ड ही छुड़ाना पड़ेगा। अतएव अब सावधान होकर मनोरथ पूर्ण करनेका प्रयत्न न करके मनोरथोंको छोड़नेका ही प्रयत्न करना चाहिये। ज्यों ही कोई मनोरथ उत्पन्न हो, त्यों ही उसे दबाये। सच्चे मुमुक्षुका यही उद्यम है और यही सच्चा कर्म है। मायाके मनोरथ बड़े सूक्ष्म होते हैं। मन कहेगा—'परोपकार करो', 'दान करो', 'व्याख्यान दो, 'लेख लिखो' अथवा 'उपदेश करो।' इन सभीमें मनकी सूक्ष्म वासना या मनोरथ रहता है, बड़ा बननेकी वासना अंदर भरी होती है। बिना वासनाका कर्म स्वाभाविक होता है। वह छलाँग नहीं मारता। नदीका प्रवाह पद-पदपर सागरको प्राप्त करता है, वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता है। जहाँ मनुष्य छलाँग मारना चाहता है, वहाँ मनोरथ है। जहाँ अकुलाहट, तीव्रता या चित्तमें विकार है, वहाँ मनोरथ है। मनोरथके त्यागका सतत उद्योग किये बिना और भगवान्‌को भजे बिना मुमुक्षु कभी तर नहीं सकता।

वासना किसी वेशमें, किसी जगहमें या किसी कार्यमें नहीं छूटती। जहाँ मन है, वहीं वासना है। वेश, जगह अथवा काम छोड़नेपर वासना नहीं छूटती। वासना छोड़नेके लिये तो चित्तकी शुद्धि चाहिये। चित्तको निगृहीत करना चाहिये। भक्ति, जनसेवा तथा प्राणिसेवा करनी चाहिये। जैसे फल और छायावाले वृक्षको ढूँढ़ते हुए प्राणी आते हैं, वैसे ही जिसका स्वभाव दूसरेको सुख और शान्ति देनेवाला है, उसको ढूँढ़ते हुए प्राणी आते हैं। उसे आश्रय लेनेवाले और लाभ उठानेवाले प्राणी ढूँढ़ने नहीं पड़ते। जहाँ लाभ उठानेवालेको ढूँढ़ना पड़ता है, वहाँ ऐसा समझना चाहिये या तो ढूँढ़नेवालेके पेटमें कोई वासना है अथवा ढूँढ़नेवालेमें जिस गुणकी आवश्यकता है, वह उसमें नहीं है या जगत्‌को अभी उसकी आवश्यकता नहीं है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको तो लगे ही रहना चाहिये। जैसे नदीका प्रवाह आरम्भमें संकीर्ण और पीछे चौड़ा होता जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वैसे ही जिसके हृदयमें शान्ति, प्रेम और परहित-साधनकी उत्कण्ठा है, उसका कार्यक्रम पहले अल्प होता है और धीरे-धीरे बढ़ता है। कार्य करते समय जिसका लक्ष्य फलकी ओर होता है, वह थोड़ा-सा काम करके ही देखता है—'फल आया? कितना आया? अभी क्यों नहीं आया?' यों फलके अनुसंधानमें वह कर्मको भूल जाता है। पर जिसका लक्ष्य कर्ममें है, वह ऐसा नहीं करता और इससे उसको फल विशेष मिलता है। कार्यमें जितना लक्ष्य कम होता है, उतनी सिद्धि कम मिलती है। अतएव व्यवहार-दृष्टिसे देखनेपर भी तथा कार्यको सुगम एवं सफल बनानेकी इच्छा रखनेवालेको भी चाहिये कि वह अपने चित्तको कर्ममें ही लगाये रखे, उसके फलमें नहीं। मनुष्यको अपनी शक्ति, साधन, परिस्थिति और धर्म—इन चारके द्वारा अपना कर्तव्य स्थिर करके उसमें लगे रहना और मनोरथका त्याग करना चाहिये। जैसे एक-एक वस्तु सौ बार डालनेसे अपने-आप ही उसका जोड़ सौ हो जाता है, उसी प्रकार साधकको कर्म करते रहना चाहिये, फल अपने-आप आयेगा।

मनोरथ—फलकामनाके त्यागमें एक विशेष और सबल कारण और है। एक मनुष्य थोड़ेसे फल लेकर राजाके पास गया। उसके मनमें फलका मूल्य लेनेकी इच्छा थी। राजाके सामने फल रख दिये। राजाने उनको ले लिया। मान लीजिये—फलवाला उनका मूल्य पाँच रुपये आँकता है अपनी हैसियत और बाजारभावको देखकर। राजा उनका मूल्य अपनी स्थिति और उदारताके अनुसार देना चाहता है। इस स्थितिमें फलवाला राजापर छोड़ देता है तो उसे मूल्य अधिक मिलता है और माँग लेता है तो कम मिलता है। यद्यपि मनमें कामना रखकर न माँगना निष्कामभाव नहीं है, परंतु माँगनेकी अपेक्षा इसमें लाभ अधिक है। अतः मुमुक्षु साधकको चाहिये कि वह प्राप्त कर्म करता जाय, कर्मकी कीमत न आँके। किस कर्मका क्या मूल्य है, इस ओर देखे ही नहीं। इसका निर्णय मालिकपर छोड़ दे। दूसरी बात यह है कि लौकिक फलकी कीमत तो उसका मालिक फलवाला जान सकता है, परंतु माला, पूजा, तप, व्रत, नियम, उपासना आदि क्रियाओंका क्या फल है, इसका पूरा पता करनेवालेको नहीं हो सकता। यदि क्रिया करनेवाला अपने मनसे फल चाहेगा तो वह अल्प ही होगा। सबसे श्रेष्ठ फल है—मुक्ति। अल्प फल जन्म-मरण देनेवाले भोग हैं। साधकको यदि फलकी कामना ही करनी हो तो मुक्तिकी करनी चाहिये, नहीं तो कुछ भी कामना नहीं रखनी चाहिये। जन्म-मरण देनेवाले भोगोंकी तो जप-तपादिके बदलेमें कभी इच्छा करनी ही नहीं चाहिये। परमात्माके सदृश परमात्मा ही हैं—उन परमात्माके निमित्त कर्म करनेवाला पुरुष यदि कुछ भी नहीं माँगता तो उसे बहुत अधिक मिलता है—सर्वश्रेष्ठ फल मुक्ति ही मिलती है। हाँ, किसी साधकको आजीविकाकी चिन्ता हो तो उसके लिये भी यही सूत्र है कि वह उद्यम करता रहे और मनोरथको छोड़ दे। शुभ उद्योग करना चाहिये और वह भी झूठ, कपट, हिंसा और अधर्मको छोड़कर। ऐसा करनेसे आजीविका भी अच्छी मिलेगी।

किसी भी देवताका दर्शन करने साधक उसके धाममें नहीं जाता, देवता ही साधकके पास आते हैं और वर माँगनेके लिये कहते हैं। सेवक काम करता है तो उसका वेतन मालिक बुलाकर देता है। क्रिया कभी बाँझ नहीं होती। फिर जो कर्म जगन्नियन्ताके लिये किया जायगा, वह फलहीन कैसे होगा? अतएव कर्मफलकी लालसा छोड़कर कर्ममें लगे रहना चाहिये। सबसे श्रेष्ठ फल है—जन्म-मरण और उससे होनेवाले दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति। कर्मफल-त्यागका अर्थ है—सबसे श्रेष्ठ फलका स्वीकार। कर्मके दो ही फल हैं—भोग या मोक्ष। भोगका अर्थ है—श्रम, चिन्ता, दुःख, भय और क्लेशोंसे मिश्रित अल्प सुख, मोक्षका अर्थ है—केवल अखण्ड पूर्ण सुख। कर्मफलत्याग यानी मोक्षकी प्राप्ति। अतः उलटा-सीधा कुछ भी विचार न करके चिन्ता, भय, कामना, तर्क आदिको सर्वथा छोड़कर भगवत्प्राप्तिके साधनरूप शुभ कर्म भक्ति आदि परमार्थ-साधनोंमें निरन्तर लगे रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

भगवान्‌का अलौकिक समग्ररूप

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌का यह स्वभाव है कि जो जिस प्रकारसे उनका आश्रय लेता है, वे भी उसी प्रकारसे उसको आश्रय देते हैं और जो जिस भावसे उनका भजन करता है, वे भी उसी भावसे उनका भजन करते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

जब भगवान्‌की बात चलती है, तब भक्त उसीमें मस्त हो जाता है और दूसरी सब बातें भूल जाता है। इसी तरह गीताजीमें छठे अध्यायके अन्तमें भक्तकी बात चली—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

(गीता ६। ४६)

'तपस्वियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है, ज्ञानियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है और कर्मियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है—ऐसा मेरा मत है। अतः हे अर्जुन! तू योगी हो जा।'

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६। ४७)

'सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् भक्त मेरेमें तल्लीन हुए मनसे (प्रेमपूर्वक) मेरा भजन करता है, वह मेरे मतमें सर्वश्रेष्ठ योगी है।'

भक्तकी बात चलनेपर भगवान् उसीमें मस्त हो गये, दूसरी सब बातें भूल गये और अर्जुनके द्वारा प्रश्न किये बिना ही भक्तिकी बात कहनेके लिये अपनी तरफसे सातवाँ अध्याय शुरू कर दिया! भगवान्‌ने कहा कि मैं वह विज्ञानसहित ज्ञान कहूँगा, जिससे तू मेरे समग्ररूपको जान जायगा। मेरे समग्ररूपको जाननेके बाद फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहेगा; क्योंकि जब मेरे सिवाय किंचिन्मात्र भी कुछ है ही नहीं, फिर जानना क्या बाकी रहा?—'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय**' (गीता ७। ७), '**यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव**' (गीता ४। ३५)। भगवान्‌के इस समग्ररूपको शरणागत भक्त ही जान सकते हैं। इसलिये जो भक्त भगवान्‌की शरण लेकर लगनपूर्वक साधन करते हैं, वे विज्ञानसहित ज्ञानको अर्थात्, भगवान्‌के समग्ररूपको जान लेते हैं। भगवान् कहते हैं—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥

(गीता ७। २९-३०)

'जरा और मरणसे मोक्ष पानेके लिये जो मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको भी जान जाते हैं। जो मनुष्य अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके सहित मुझे जानते हैं, वे युक्तचेता मनुष्य अन्तकालमें भी मुझे ही जानते अर्थात् प्राप्त होते हैं।'

ब्रह्म (निर्गुण-निराकार), अध्यात्म (अनन्त जीव) तथा अखिल कर्म (उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकी सम्पूर्ण क्रियाएँ)—यह '**ज्ञान**' का विभाग है और अधिभूत (अपने शरीरसहित सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत्), अधिदैव (मन-इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवतासहित ब्रह्माजी आदि सभी देवता) तथा अधियज्ञ (अन्तर्यामी विष्णु और उनके सभी रूप)—यह '**विज्ञान**' का विभाग है। ज्ञानके विभागमें निर्गुणकी और विज्ञानके विभागमें सगुणकी मुख्यता है।

गीतामें भगवान्‌ने दो निष्ठाएँ बतायी हैं—कर्मयोग और ज्ञानयोग। ये दोनों ही निष्ठाएँ लौकिक हैं—'**लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा**' (गीता ३। ३)। परंतु भक्तियोग अलौकिक निष्ठा है। कारण कि कर्मयोगमें 'क्षर' (संसार) की प्रधानता है और ज्ञानयोगमें 'अक्षर' (जीवात्मा)की प्रधानता है। क्षर और अक्षर—दोनों ही लोकमें हैं—'**द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च**' (गीता १५। १६)। इसलिये कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनों लौकिक निष्ठाएँ हैं। परंतु भक्तियोगमें 'परमात्मा'की प्रधानता है, जो क्षर और अक्षर दोनोंसे विलक्षण है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।

(गीता १५। १७)

'उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो परमात्मा नामसे कहा गया है।'

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।

(गीता १५। १८)

'मैं क्षरसे अतीत हूँ और अक्षरसे भी उत्तम हूँ।'

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।

(श्वेताश्वतर० १। १०)

'प्रकृति तो क्षर (नाशवान्) है और इसको भोगनेवाला जीवात्मा अमृतस्वरूप अक्षर (अविनाशी) है। इन क्षर और अक्षर—दोनोंको एक ईश्वर अपने शासनमें रखता है।'

इसलिये भक्तियोग अलौकिक निष्ठा है। भगवान्के समग्ररूपमें ब्रह्म, अध्यात्म तथा कर्म—इनमें लौकिक निष्ठा (कर्मयोग और ज्ञानयोग)-की बात आयी है और अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ—इनमें अलौकिक निष्ठा (भक्तियोग)-की बात आयी है।

ज्ञान लौकिक है* और विज्ञान अलौकिक है। आत्मज्ञान लौकिक है और परमात्मज्ञान अलौकिक है। मुक्ति लौकिक है और प्रेम अलौकिक है। करणसापेक्ष साधन लौकिक है और करणनिरपेक्ष साधन अलौकिक है। लौकिक तथा अलौकिक—दोनों ही समग्र भगवान्के रूप हैं।

प्रश्न—ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म—ये तीनों लौकिक कैसे हैं?

उत्तर—भगवान्ने ब्रह्मको 'अक्षर' कहा है—'**अक्षरं ब्रह्म परमम्**' (गीता ८। ३) और जीवको भी 'अक्षर' कहा है—'**द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च**' (गीता १५। १६)। अतः ब्रह्म और जीवकी एकता होनेसे ब्रह्म भी लौकिक है। जीव और ब्रह्म—दोनों ही परा प्रकृति हैं। इसलिये जीव और ब्रह्मको एक माना गया है—'**जीवो ब्रह्मैव नापरः**'। क्षेत्रके साथ सम्बन्ध होनेसे जो 'जीव' कहलाता है, वही क्षेत्रके साथ सम्बन्ध न होनेसे 'ब्रह्म' कहलाता है—'**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत**' (गीता १३। २)। तात्पर्य है कि जो व्यष्टिरूपसे जीव है, वही समष्टिरूपसे ब्रह्म है। अतः जैसे जीव लोकमें है, ऐसे ही ब्रह्म भी लोकमें है अर्थात् ब्रह्म लौकिक निष्ठासे प्रापणीय तत्त्व है।

'अध्यात्म' अर्थात् जीवने जगत्को धारण किया हुआ है—'**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)। जीवकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इसलिये जगत्के संगसे जीव भी जगत् अर्थात् लौकिक हो जाता है। अतः गीतामें जीवके लिये 'जगत्' शब्द भी आया है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

(गीता ७। १३)

'इन तीनों गुणरूप भावोंसे मोहित यह सब जगत् इन गुणोंसे पर अविनाशी मेरेको नहीं जानता।'

लोकमें होनेके कारण जीव लौकिक है—'**द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च**' (गीता १५। १६), '**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**' (गीता १५। ७)।

कर्म दो प्रकारके होते हैं। ये दोनों ही कर्म लोकमें होनेसे लौकिक हैं—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

(गीता ३। ९)

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

(गीता ४। १२)

'**कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके**' (गीता १५। २)

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(गीता ३। ३)†

प्रश्न—अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ—ये तीनों अलौकिक कैसे हैं?

---

*न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। (गीता ४। ३८)
'इस मनुष्यलोकमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला दूसरा कोई साधन नहीं है।'

†गीतामें 'लोक' शब्द अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है। इसको जाननेके लिये 'गीताप्रेस'से प्रकाशित 'गीता-दर्पण' ग्रन्थमेंसे 'गीताका अनेकार्थ-शब्दकोश' देखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—अधिभूत अर्थात् सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत् भगवान्का शरीर होनेसे अलौकिक ही हुआ—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, जीव-जन्तु, दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ, समुद्र—सब-के-सब भगवान्के ही शरीर हैं—ऐसा मानकर भक्त सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करता है।'

भगवान्ने अर्जुनको अपना जो विराट्‌रूप दिखाया था, वह दिव्य (अलौकिक) था—'**नानाविधानि दिव्यानि**' (गीता ११। ५), '**अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्**' (गीता ११। १०), '**दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्**' (गीता ११। ११), '**ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्**' (गीता ११। १५)। वह दिव्य विराट्‌रूप भगवान्ने अपने शरीरमें ही दिखाया था—

भगवान्के वचन हैं—'**मम देहे गुडाकेश**' (११। ७)
संजयके वचन हैं—'**अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे**' (११। १३)
अर्जुनके वचन हैं—'**पश्यामि देवांस्तव देव देहे**' (११। १५)

अतः भगवान्का ही विराट्‌रूप होनेसे यह पाञ्चभौतिक जगत् भी अलौकिक ही है। भगवान्ने अपनी विभूतियोंको भी दिव्य कहा है—'**हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः**' (१०। १९), '**नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप**' (१०। ४०)। अर्जुनने भी कहा है—'**वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः**' (१०। १६)। परंतु जीवको अज्ञानवश अपनी बुद्धिसे राग-द्वेषके कारण यह जगत् लौकिक दीखता है। इसलिये जगत् न तो महात्माकी दृष्टिमें है और न भगवान्की दृष्टिमें है, प्रत्युत जीवकी दृष्टिमें है। महात्माकी दृष्टिमें सब कुछ भगवान् ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९), भगवान्की दृष्टिमें सत्-असत् सब कुछ वे ही हैं—'**सदसच्चाहमर्जुन**' (गीता ९। १९), पर जीवने राग-द्वेषके कारण जगत्को अपनी बुद्धिमें धारण कर रखा है—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)।

अधिदैव अर्थात् ब्रह्माजी आदि सभी देवता अलौकिक, दिव्य हैं।

अधियज्ञ अर्थात् अन्तर्यामी भगवान् सबके हृदयमें रहते हुए भी निर्लिप्त होनेके कारण अलौकिक हैं—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

(मुण्डक० ३। १। १; श्वेताश्वतर० ४। ६)

'एक साथ रहनेवाले तथा परस्पर सखाभाव रखनेवाले दो पक्षी—जीवात्मा और परमात्मा एक ही वृक्ष—शरीरका आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनोंमेंसे एक (जीवात्मा) तो उस वृक्षके सुख-दुःखरूप कर्मफलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, पर दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ केवल देखता रहता है।'

समग्ररूप बतानेका तात्पर्य है कि जड़-चेतन, सत्-असत् जो कुछ भी है, वह सब भगवान्का ही स्वरूप है—'**सदसच्चाहमर्जुन**' (गीता ९। १९)। इसलिये भगवान्ने समग्ररूप-वर्णनके आदि और अन्तमें '**माम्**' पद दिया है—'**मामाश्रित्य**' (गीता ७। २९) और '**मां ते विदुः**' (गीता ७। ३०)। सब कुछ भगवान् ही हैं—इस प्रकार जो मनुष्य भगवान्के समग्ररूपको जान लेते हैं, वे '**युक्तचेता**' हैं। ऐसे युक्तचेता भक्त अन्तकालमें मनके विचलित होनेपर भी योगभ्रष्ट नहीं होते, प्रत्युत भगवान्को ही प्राप्त होते हैं—'**प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः**'। कारण कि उनकी दृष्टिमें जब भगवान्के सिवाय किंचिन्मात्र भी दूसरी सत्ता है ही नहीं, तो फिर मनके विचलित होनेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। दूसरी सत्ताकी मान्यता न होनेके कारण उनका मन जहाँ जायगा, परमात्मामें ही जायगा, फिर उनका मन कैसे विचलित होगा और मनके विचलित हुए बिना वे योगभ्रष्ट कैसे होंगे? कारण कि योगसे मनके विचलित होनेपर ही मनुष्य योगभ्रष्ट होता है—'**योगाच्चलितमानसः**' (गीता ६। ३७)। इसलिये भगवान्ने कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे पार्थ! अनन्यचित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

एक मार्मिक बात है कि जबतक साधक एक भगवान्‌की सत्ताके सिवाय दूसरी सत्ता मानेगा, तबतक उसका मन सर्वथा निरुद्ध नहीं हो सकता। कारण कि जबतक दूसरी सत्ताकी मान्यता है, तबतक रागका सर्वथा नाश नहीं हो सकता और रागका सर्वथा नाश हुए बिना मन सर्वथा निर्विषय नहीं हो सकता। रागके रहते हुए मनका सीमित निरोध होता है, जिससे लौकिक सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, वास्तविक तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती। दूसरी सत्ताकी मान्यता रहते हुए जो मन निरुद्ध होता है, उसमें व्युत्थान होता है अर्थात् उसमें समाधि और व्युत्थान—ये दो अवस्थाएँ होती हैं। कारण कि दूसरी सत्ता माने बिना दो अवस्थाएँ सम्भव ही नहीं हैं। दूसरी सत्ताकी मान्यता न रहनेके कारण भक्तका प्रेम भी अनन्य होता है। अत: जैसे व्यवहारमें एकता करना महान् गलती है, ऐसे ही तत्त्व (चिन्मय सत्ता) में भेद करना भी महान् गलती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।

(मानस, बाल० ६)

तात्पर्य है कि जड़ और चेतन—दोनों ब्रह्माजीकी सृष्टिमें होनेसे लौकिक हैं। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥

(गीता १५। १६)

'इस लोकमें क्षर और अक्षर—ये दो प्रकारके पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर क्षर (नाशवान्) हैं और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर (अविनाशी) कहा गया है।'

इस दृष्टिसे क्षर और अक्षर, शरीर और शरीरी, देह और देही, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—ये सभी लौकिक हैं।

दैवी सम्पत्ति मुक्त करनेवाली और आसुरी सम्पत्ति बाँधनेवाली है—'**दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता**' (गीता १६। ५)। दैवी और आसुरी—दोनों ही सम्पत्तिवाले प्राणी लौकिक हैं—'**द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च**' (गीता १६। ६)। इसलिये मोक्ष और बन्धन भी लौकिक हैं।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

(आत्मोपनिषद् ३१, माण्डूक्यकारिका २। ३२, तत्त्वोपदेश ८१, विवेकचूडामणि ५७५)

'न प्रलय है और न उत्पत्ति है, न बद्ध है और न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त है—यही परमार्थता अर्थात् वास्तविक तत्त्व है।'

तात्पर्य है कि बन्धन और मोक्ष—दोनों ही सापेक्ष होनेसे लौकिक हैं। निरपेक्ष तत्त्वमें न बन्धन है और न मोक्ष है। अत: वास्तविक तत्त्व अलौकिक है। इसलिये प्रेमी भक्त कहता है—

अब तो बंध मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बन्धन है, मुक्ति चरणसे झरती है॥

चेतन और जड़, जीव और जगत् विचारके विषय हैं; अत: 'ज्ञान' लौकिक है। परंतु भगवान् विचारके विषय नहीं हैं, प्रत्युत श्रद्धा-विश्वासके विषय हैं*; अत: 'भक्ति' अलौकिक है। ज्ञानमार्गमें जबतक विवेक रहता है, तबतक लौकिकता रहती है। जब विवेक तत्त्वज्ञानमें परिणत हो जाता है, तब ज्ञानीमें भी अलौकिकता आ जाती है। कारण कि ज्ञान (तत्त्वज्ञान) अज्ञानका नाशक है। अज्ञानका नाश करके ज्ञान भी शान्त हो जाता है और ज्ञानीमें अलौकिकता आ जाती है। इसलिये जैसे भक्तिमार्गमें मीराबाईका शरीर चिन्मय होकर लीन हो गया था, ऐसे ही ज्ञानमार्गमें भी कबीर साहेबका शरीर चिन्मय होकर लीन हो गया था।

अवतारके समय लौकिक दृष्टिसे दीखनेपर भी भगवान् सदा अलौकिक ही रहते हैं। लोकमें अवतार लेनेपर भी उनकी अलौकिकता ज्यों-की-त्यों रहती है। भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४। ६)

*भगवान् श्रद्धा-विश्वासके विषय हैं, इसलिये आस्तिक और नास्तिक—दोनों तरहके दर्शन हैं। न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन लौकिक हैं। योगदर्शन और सांख्यदर्शन लौकिक तथा अलौकिक दोनों हैं। पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा केवल अलौकिक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् ही जगत्-रूपसे प्रकट हुए हैं, इसलिये यह जगत् भगवान्का आदि अवतार कहा जाता है—'**आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य**' (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। जैसे भगवान्ने राम, कृष्ण आदि रूपोंसे अवतार लिया है, ऐसे ही जगत्-रूपसे भी अवतार लिया है। इसको अवतार इसलिये कहते हैं कि इसमें भगवान् दृश्यरूपसे दीखनेमें आ जाते हैं।

अवतारके समय भगवान् अलौकिक होते हुए भी राग-द्वेषके कारण लौकिक दीखते हैं—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।

(गीता ७। २४)

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

(गीता ७। २५)

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

(गीता ९। ११)

वास्तवमें लौकिक-अलौकिकका विभाग राग-द्वेषके कारण ही है। राग-द्वेष न हो तो सब कुछ अलौकिक (चिन्मय) ही है—'**वासुदेवः सर्वम्**'। कारण कि लौकिककी स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है। राग-द्वेषके कारण ही लौकिककी सत्ता और महत्ता दीखती है। राग-द्वेषके कारण ही जीवने भगवत्स्वरूप संसारको भी लौकिक बना दिया और खुद भी लौकिक बन गया। इसलिये भगवान्ने राग-द्वेषको साधकका महान् शत्रु बताया है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

'इन्द्रिय इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें मनुष्यके राग और द्वेष व्यवस्थासे (अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर) स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके (पारमार्थिक मार्गमें विघ्न डालनेवाले) शत्रु हैं।'

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है। यह बहुत खानेवाला और महापापी है। इस विषयमें तू इसको ही वैरी जान।'

'क्षर' (नाशवान्)-की मुख्यता माननेसे जीव असुर बन जाता है, 'अक्षर' (अविनाशी)-की मुख्यता माननेसे जीव ज्ञानी बन जाता है और 'पुरुषोत्तम' (समग्र भगवान्)की मुख्यता माननेसे जीव प्रेमी बन जाता है। प्रेमी बननेसे भक्त और भगवान्के बीच प्रेमका आदान-प्रदान होता है। जैसे बच्चेकी चेष्टा माँको और माँकी चेष्टा बच्चेको प्रसन्न करनेवाली होती है, ऐसे ही भक्तकी चेष्टा भगवान्को और भगवान्की चेष्टा भक्तको प्रसन्न करनेवाली, आनन्द देनेवाली, प्रेमरसकी वृद्धि करनेवाली होती है। प्रेमी और प्रेमास्पदकी इस अभिन्नताको गोस्वामीजी महाराजने बड़े सुन्दर ढंगसे कहा है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।

(मानस, बाल० १८)

अर्थात् जो वाणी तथा उसके अर्थ और जल तथा उसकी लहरके समान कहनेमें ही अलग-अलग दीखते हैं, पर वास्तवमें एक ही हैं। यहाँ गोस्वामीजीने पहले स्त्रीवाचक 'गिरा' शब्द देकर फिर पुरुषवाचक 'अरथ' शब्द दिया है और उसके बाद पहले पुरुषवाचक 'जल' शब्द देकर फिर स्त्रीवाचक 'बीचि' शब्द दिया है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि स्त्रीवाचक 'सीता' और पुरुषवाचक 'राम'—दोनों अभिन्न हैं। अतः चाहे 'सीता' पहले कहो (सीताराम कहो), चाहे 'राम' पहले कहो (रामसीता कहो)—दोनोंमें कोई फर्क नहीं है*। प्रेममें कोई भेद नहीं रहता। प्रेममें भक्त और भगवान् दोनों समान हैं—

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्। (नारदभक्ति० ४१)

'भगवान्में और उनके भक्तमें भेदका अभाव है।'

*भरतजी प्रेम-विभोर होकर 'रामसिय-रामसिय' नामका उच्चारण करते हैं—
भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग। कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥ (मानस, अयोध्या० २०३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद

[गताङ्क पृ०-सं० ८३३ से आगे]

भक्तिका फल ज्ञान नहीं, बल्कि भक्ति ही है और फलरूपा भक्तिको ही 'प्रेम' कहते हैं।

इष्ट या आत्मामें आसक्ति न होकर संसारमें आसक्ति होना ही निरानन्दका कारण है। आनन्द तो आसक्तिसे ही होता है। भाव स्थायी है और आनन्द उसकी तरंग है। भाव होनेपर ही आनन्द होता है। आसक्तिका फल भाव है और भावका फल आनन्द है।

भक्त भगवान्‌को अपने सामने बुलाना नहीं चाहता। वह तो यही चाहता है कि निरन्तर भगवदाकार-वृत्ति रहे। निरन्तर भगवदाकार-वृत्ति रहनेके कारण वह शुभाशुभसे भी ऊपर उठ जाता है, क्योंकि शुभाशुभ तो संसारमें ही हैं, भगवान् तो शुभाशुभसे परे हैं।

भक्तके पास जबतक बुद्धि रहती है, तबतक वह कुछ नहीं है। सच्चा भक्त तो वह तभी होता है, जब वह मन-बुद्धि और अहंकार—सब कुछ भगवान्‌को अर्पण कर देता है। किंतु जो वास्तवमें तो भगवदर्पण नहीं हुए, केवल मुँहसे कहते हैं कि 'हमने तो अपना सब कुछ भगवान्‌को अर्पण कर दिया है, अब हमारा कोई कर्तव्य नहीं है', वे तो पतित हो जाते हैं। भाव तो हृदयसे होना चाहिये, केवल कहने-सुननेसे कुछ नहीं होता।

भक्तिके लिये योग साँप है और ज्ञान अजगर है। साँप भक्तिको डस लेता है और अजगर निगल जाता है।

आसक्तिमें आनन्द है और आसक्ति ही सौन्दर्य है। देखो, श्रीकृष्ण तो एक ही थे, किंतु उनका जो सौन्दर्य गोपियोंकी दृष्टिमें था, वह औरोंके लिये कहाँ था, कारण कि उनके प्रति जैसा प्रेम गोपियोंको हुआ, वैसा दूसरोंको नहीं हुआ। इससे मालूम हुआ कि प्रेम ही सौन्दर्य है। जिसका किसीमें प्रेम हो जाता है, उसे वह कुरूप या अवगुणी दिखायी नहीं देता। वैराग्यवान्‌को धन और ब्रह्मचारीको स्त्री अच्छी नहीं लगती, किंतु लोभीके लिये धन और कामीके लिये स्त्री तो प्राणोंसे भी बढ़कर हैं। अतः सौन्दर्य और आनन्द तो आसक्तिहीमें है। यदि ऐसा न होता तो जो चीज एकको प्रिय और सुन्दर जान पड़ती है, वह सभीको वैसी ही मालूम होनी चाहिये।

सौन्दर्य, विश्राम और प्रकाश—ये आन्तरिक भी होते हैं और बाह्य भी। किंतु जिन्हें आन्तरिक सौन्दर्य मिल जाता है, उनके लिये बाह्य पदार्थोंमें सुन्दरता नहीं रहती। इसी प्रकार आन्तरिक विश्राम मिलनेपर बाह्य विश्राम और आन्तरिक प्रकाश मिलनेपर बाह्य प्रकाश फीके पड़ जाते हैं।

भगवत्सम्बन्ध होनेपर धर्म-अधर्म अथवा पाप-पुण्य नीचे रह जाते हैं। जिसकी भजनमें आसक्ति है, उससे पाप हो ही नहीं सकता। यदि दैववश कोई अशास्त्रीय आचरण हो जाय तो भी आसक्ति न होनेके कारण उससे पाप नहीं लगता। सच्चा प्रेम एक ही जगह होता है—यह भी सबका अनुभव है।

प्रेमीकी पहचान क्या है, इसी विषयमें श्रीनारायणस्वामी कहते हैं—

'रूप छके झूमत रहें, तन को तनक न ध्यान।
'नारायन' दृग जल भरे, यहै प्रेमि पहचान॥
विरद-कमण्डल कर लिये, वैरागी दोउ नैन।
मागैं दरस-मधूकरी, छके रहैं दिन-रैन॥'

भेदाभेदवादका कथन है कि मूल ईश्वरतत्त्वमें तो अचिन्त्य अभेद है, किंतु लीलामें भेद हैं; क्योंकि बिना भेदके लीला हो नहीं सकती। मूलतः अभेद होनेपर भी मैं ही भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे नहीं हैं, जैसे तरंग ही समुद्रका होता है, समुद्र तरंगका नहीं होता। इस प्रकार यद्यपि मैं ही भगवान्‌का हूँ, तथापि जिस दिन भगवान् मेरे हैं—यह भाव पूर्ण हो जायगा, उसी दिन प्रेमकी पराकाष्ठा कही जायगी।

नियमसे प्रेम पैदा होता है और जब भजनमें आसक्ति हो जाती है तो लय-विक्षेप आदि विघ्न स्वतः ही निवृत्त हो जाते हैं।

कीर्तनादिके समय प्रेमीमें समय-समयपर ये अष्ट सात्त्विक भाव प्रकट होते हैं—(१) कम्प, (२) अश्रु, (३) पुलक, (४) स्तम्भ, (सुन्न हो जाना), (५) स्वेद (पसीना), (६) स्वरभङ्ग (जीभ लड़खड़ाने लगना), (७) वैवर्ण्य (शरीरका रंग बदल जाना) तथा (८) प्रलय (मूर्च्छित हो जाना)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार और प्रेमसे अभिमान दूर होता है। भक्त जैसे-जैसे निरभिमान होगा, वैसे-वैसे ही उसका प्रेम बढ़ता जायगा तथा जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, वैसे-वैसे ही देह-जाति और जगत्के अध्यासकी निवृत्ति होगी। रोगके कारण विस्मृति होना तो बुरा माना जाता है, किंतु ध्यान या प्रेमसे विस्मृति होना तो बहुत अच्छा है।

भगवान् और माया दो वस्तु हैं। साधनावस्थामें तो भक्त भगवान्से प्रेम करता है तथा 'भगवान्से भिन्न सब माया है'—ऐसा जानकर उसे भूलना चाहता है, किंतु सिद्धावस्थामें केवल भगवान् ही भगवान् रह जाते हैं, भगवान्से भिन्न कुछ भी नहीं रहता। इसीका नाम 'प्रेम' है और यही 'ज्ञान' है—

परा भक्ति और ज्ञान में, तनिकहु नाहिन भेद।
'नारायन' मुख्य प्रेम है, कहें संत अरु वेद॥

प्रेममें कोई पन्थ नहीं है। आकर्षण होनेपर चिन्तन करते रहना—यही प्रेमीका पन्थ है। इसमें कोई विधि-निषेध नहीं है। बस, प्रियतमका संयोग ही आनन्द है।

भगवान् रामने शबरीके जूठे बेर खाये—यह विधि-निषेधसे ऊपरकी बात है। जूठा खानेकी महिमा तो प्रेमी जानता है। यह प्रेम-मार्गकी बात है। इसे तो प्रेमी ही अनुभव कर सकते हैं। देखो, श्रीकृष्णने भी तो ग्वाल-बालोंका जूठा खाया था।

धर्म और ज्ञानके उपदेशसे प्रेम शिथिल पड़ जाता है, इसीलिये महारासके समय भगवान् गोपियोंको धर्मका उपदेश देने लगे थे। इसी प्रकार जब सूर्यग्रहणके समय गोपियाँ कुरुक्षेत्र गयीं और वहाँ श्रीकृष्णसे उनकी भेंट हुई, तब भी श्रीकृष्णने उन्हें ज्ञानका उपदेश दिया। इसपर गोपियाँ बोलीं—'गोपाल! तुम तो अब भी गँवार-के-गँवार ही रहे। हम तो समझती थीं कि द्वारकाके राजा होकर तुम्हें कुछ अक्ल आ गयी होगी। भला, अनधिकारीको उपदेश करना गँवारपन नहीं तो क्या है? तुम्हें याद होगा, महारासके समय भी तो तुमने हमें धर्मका उपदेश दिया था। उस समय क्या तुम्हें इतनी भी परख नहीं हुई कि हम ज्ञान या धर्मकी अधिकारिणी नहीं हैं। फिर हमें यह धर्म या ज्ञान क्यों सुनाते हो? यह तो प्रेमसे हटानेवाली बातें हैं।'

प्रेमीके लिये केवल दो काम है—(१) निरन्तर भगवदाकार-वृत्ति करना और (२) विषयोंमें वैराग्य रखना। विषयोंका आना तो प्रारब्धाधीन है, किंतु उन्हें भोगना अविचार या आसक्तिसे ही होता है।

प्रेमीको अपने चित्तकी गतिविधिपर दृष्टि रखनी चाहिये। जबतक वृत्ति भगवदाकार नहीं होगी, तबतक चित्तका निरीक्षण कठिन है। भगवदाकार-वृत्ति होनेपर तो दो-चार मिनटमें ही विषयचिन्तन समाप्त हो जायगा, क्योंकि चित्त तो एक ही है, वह भगवान्में लग जायगा तो किसी दूसरी जगह कैसे जा सकेगा। इसीसे गोपियोंने कहा था—*'ऊधो, मन न भये दस-बीस'* इस प्रकारका प्रयत्न साधकको तो करना ही चाहिये, सिद्धकी शोभा भी इसीमें है। साधक तो संयम करके दो-चार इन्द्रियोंके विषयोंसे ही राग हटा सकता है, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रागसे तो वही छूट सकता है, जिसका चित्त हर समय भगवदाकार रहता है।

प्रेमी अपने प्रेमास्पदके सिवा किसी औरको देखना नहीं चाहता। उसका चित्त किसी दूसरेकी ओर जाता भी नहीं है। जबतक ऐसी बात न हो, तबतक प्रेम नहीं समझना चाहिये।

भगवान्के स्वरूपमें तो प्रेम हो भी जाता है, किंतु नाममें प्रेम होना कठिन है। जिसने बहुत समयतक भगवत्सेवा की होती है, उसीका नाममें प्रेम होता है। भगवान्का नाम उनके स्वरूप और सेवा दोनोंसे सूक्ष्म है।

व्रजके श्रीनारायणस्वामीजी बड़े भारी प्रेमी महात्मा हुए हैं। उनके कुछ प्रेम-सम्बन्धी दोहे मुझे बहुत पसंद हैं—

प्रेम मगन गद्गद गिरा, कढ़ै न मुख तें बात।
'नारायन' महबूब बिनु, और न कछू सुहात॥१॥
मनमें लागी चटपटी, कब निरखूँ घनश्याम।
'नारायन' भूल्यौ सभी, खान-पान बिसराम॥२॥
'नारायन' हरि लगन में, पाँच बात न सुहात।
विषय-भोग, निद्रा, हँसी, जगत्प्रीति, बहु बात॥३॥
ब्रह्मादिकके भोग सब, विषसम लागत ताहि।
'नारायन' ब्रजचन्दकी, लगन लगी है जाहि॥४॥
प्रेम-पन्थ अति ही कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।
चढ़ि के मोम तुरंग पै चलिबौ पावक माहिं॥५॥
जब लगि जापै जीय, तब लगि पिय भेटत नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब ही पावै पीय, भेंट धरै जो जीयकी॥ ६ ॥
'नारायन' होवै भलै, जो कछु होवनहार।
हरि सों प्रीति लगाय कै, अब कहा सोच-विचार॥ ७ ॥
लगन-लगन सब कोइ कहै, लगन कहावै सोय।
'नारायन' जा लगन में, तन-मन दीजै खोय॥ ८ ॥
'नारायन' अति कठिन है, हरी मिलन की बाट।
यहि मारग जो पग धरै, प्रथम सीस दे काट॥ ९ ॥
हाथ उठाये कहत हूँ, कहा बजाऊँ ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोकका मोल॥ १०॥
कपट गाँठ मनमें नहीं, सब सों सरल सुभाव।
'नारायन' ता भगतकी, लगी किनारे नाव॥ ११॥
'नारायन' या मग कोउ, आवत है सो वीर।
पग-पगमें बरछी लगै, स्वास-स्वासमें तीर॥ १२॥
तेरे भावै कछु करो, भलो-बुलो संसार।
'नारायन' तू बैठि कै, अपनो भवन बुहार॥ १३॥
धन-यौवन यों जात है, जा विध उड़त कपूर।
'नारायन' गोपाल भज, क्यों चाटत जग-धूर॥ १४॥
ज्ञान-कथा सीखी घनी, प्रश्न करत अति गूढ़।
'नारायन' बिन धारणा, वृथा बकत है मूढ़॥ १५॥
जाके मनमें बसि रही, मोहनकी मुसिक्यान।
'नारायन' ताके हिये, और न लागत ज्ञान॥ १६॥

रामायण तो तुम लोग बहुत दिनोंसे पढ़ते हो, किंतु उसमें तुम्हारा प्रेम नहीं है। यदि प्रेम होता तो उसमें जहाँ विरहका प्रसंग आता है, उसे तुम कैसे पूरा पढ़ सकते। वहाँ तो आँखोंसे आँसुओंकी धार बहने लगेगी, फिर किस प्रकार प्रसंग पूरा होगा? वास्तवमें प्रेमीका तो नाम लेते ही मन रुक जाता है। योगीके लिये जैसे सुषुम्ना नाड़ीसे अमृत झरता है, वैसे ही प्रेमीकी आँखोंसे भी निरन्तर अमृतधारा बहती रहती है।

नियम ही प्रेमका साधन है, किंतु प्रेमकी सिद्धावस्थामें नियमका बाँध बाधक हो जाता है। गाढ़ अनुराग ही प्रेमकी सिद्धावस्था है।

संसारमें जो कुछ दीखता है, वह सम्पूर्ण दृश्य विराट् भगवान्‌का शरीर है। भगवान् इससे अलग हैं। इसी प्रकार मैं भी शरीरसे अलग हूँ। किंतु हम शरीरमें आसक्त हैं और भगवान् अपने शरीरमें आसक्त नहीं है। जब मैं भगवत्-प्रेममें अपने शरीरको भूल जाता हूँ अर्थात् शरीरसे अलग हो जाता हूँ तो केवल शुद्ध चेतनस्वरूप रह जाता हूँ। भगवान् भी शुद्ध चेतनस्वरूप ही हैं। इस प्रकार हम दोनोंकी जाति एक ही है। अतः उस समय मैं उनसे अभिन्न हो जाता हूँ। यही वास्तविक भगवत्प्रेम है।

पहले विषयासक्ति, माहात्म्यज्ञान अथवा ऐश्वर्यके कारण प्रीति होती है। विषयासक्तिमें भोगवृद्धि, माहात्म्यज्ञानमें धर्मबुद्धि और ऐश्वर्यमें गौरव रहता है। शुद्ध प्रेम इनसे आगे है। उसमें कोई निमित्त नहीं होता। उसीको 'माधुर्य' कहते हैं।

भक्तिमार्गमें प्रेम अन्तिम गति है। उससे पहले आठ भूमिकाएँ और होती हैं, जैसा कि कहा है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्तथा॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेमप्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥[१]

जहाँ परस्पर प्रेम होता है, वहाँ छः बातें होती हैं—(१) देना, (२) लेना, (३) गुप्त बातें कह देना, (४) गुप्त बातें पूछना, (५) भोजन करना और (६) भोजन कराना। कहा भी है—

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

वास्तविक प्रेममें तो एक ही रहता है, दो नहीं रह सकते। जबतक द्वैत है, तबतक असली प्रेम नहीं है। मैं-तू ही द्वैतभाव है। जब केवल प्रेमास्पद ही रह जाय, प्रेम करनेवालेका अभाव हो जाय, तभी असली प्रेम समझना चाहिये। (क्रमशः)

(श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)

१-पहले श्रद्धा होती है, फिर संतसमागम होता है, उसके पश्चात् भजन-सम्बन्धी कृत्य होते हैं। तदनन्तर अनर्थ—पापरूप प्रतिबन्धकी निवृत्ति और भजनमें निष्ठा होती है। भजनमें निष्ठा हो जानेपर रुचि और फिर आसक्ति होती है। आसक्ति हो जानेपर भाव होता है और उसके पश्चात् प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। साधकोंमें प्रेमका प्रादुर्भाव होनेमें यह क्रम रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दत्तात्रेय-उपासना'में गौ माताकी महिमा

(दंडी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

'श्रीदत्तोपासना' वस्तुतः प्रणवोपासना या ॐकारोपासना ही है। इस वैदिक उपासनामें गौ माताकी विशेष महिमा वर्णित है। इस उपासनाके उपास्यदेव हैं भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय'। भगवान् दत्तात्रेय और गोमाताका नित्य साहचर्य है। फलतः आदि गुरुदेवकी मूर्ति या चित्रके समीपमें 'गौ माता'की मूर्ति या चित्र अवश्य रहता है।

भगवान् 'शिव'की संनिधिमें 'नन्दि' होता है, किंतु भगवान् दत्तात्रेयके संनिकटमें गौ माता होती है, जिसे धर्मग्रन्थोंमें 'कामधुक्, कामदुघा, कामधेनु, कामदा' आदि कहा गया है। श्रीदत्तात्रेयकी त्रिमूर्ति प्रणव या ॐकारका रहस्य प्रशस्त करती है और 'गौ माता' (कामधेनु) वेदजननी गायत्रीका गूढ रहस्य अनावृत करती है।

भगवान् श्रीदत्तात्रेयकी 'त्रिमूर्ति' अकार, उकार और मकार-रूप 'ॐ' ही है। वह त्रिमूर्ति 'त्रित'में 'ऐक्य'का तत्त्वज्ञान अनावृत करती है। 'ॐ' (अक्षर ब्रह्म)-को 'सृष्टि'का आदिकारण माना है।

'श्रीदत्तात्रेय'की मूर्ति या चित्रके पासमें जो गौ माताकी संनिधि रहती है, वह 'वेदमाता' (गायत्री) है, जिसे 'कामधेनु' कहा गया है। 'छान्दोग्य-उपनिषद्'में कहा है कि 'वाक् ही गायत्री है, पृथिवी गायत्री है, क्योंकि इसमें समस्त भूत स्थित हैं........। यह गायत्री चार चरणोंवाली है।' समस्त वेदोंका सार और वेदोंकी जननी है, ॐ परब्रह्मस्वरूपा परमात्मा 'गायत्री' है। वह 'कामदा' एवं 'मोक्षदा' कही गयी है।

'गौ' शब्दके विविध अर्थ होते हैं, जैसे (१) गाय, (२) इन्द्रिय, (३) वाक् (वाणी), (४) पृथिवी, (५) आकाश इत्यादि।

वैदिक कालसे ही 'गाय' हिन्दुओंके लिये पवित्र, पूजनीया, प्राणदा कही गयी है। 'ऋग्वेद' (८। १०१। १५) में कहा गया है कि 'गाय अमृतकी नाभि है, देवयजनके निमित्त गाय 'मुख्य साधन' है, गाय रुद्रोंकी 'माता' वसुओंकी 'दुहिता' और आदित्योंकी 'बहिन' है। 'अथर्ववेद' (४। २१) में भी ऐसा ही कहा गया है—

'माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।'

'ऋग्वेदमें रूपकद्वारा गायको 'उषाकी किरण', 'मेघ' (जलपूर्ण बादल), 'अदिति' (देवोंकी माता) इत्यादि कहा है। 'ऋग्वेद' (८। १०१। १५) में भार्गव जमदग्निकी प्रार्थना है, जिसमें कहा गया है कि 'गाय अघ्न्या (अवध्या) है, निष्पाप है, प्रत्यक्ष अदिति है, अतः उसे मत मारो।' वेदोंमें गायको विश्वकी माता कहा गया है—**'गावो विश्वस्य मातरः'**।

'गौ' शब्द कई रूपमें वेदोंमें व्यवहृत हुआ है, जैसे (१) **'वाचं धेनुमुपासीत।'** (वाचारूपी धेनुकी उपासना करें।) यहाँपर गायको वाणीका प्रतीक कहा है। (२) **'इमे लोका गौः।'** (श० ब्रा० ६। ५। २। १७) (यह विश्व गोरूप है)। (३) **'यज्ञो वै गौः।'** (तै० ब्रा० ३। ९। ८। ३) (यज्ञ माने गौ) यहाँपर गायको 'यज्ञ' का प्रतीक कहा है। (४) **'अन्नं वै गौः।'** (तै० ब्रा० ३। ९। ८। ३) अर्थात् अन्न माने गौ। (५) 'गौ गायत्रीका प्रतीक है।' (बृहदारण्यक-उपनिषद्)

महाभारत (अनु०, पर्व० ८०। १५) में कहा है कि—

यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजंगमम्।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम्॥

'जिस धेनुने समस्त स्थावर-जंगम-विश्वको व्याप्त कर रखा है, उस भूत-भविष्यकी माता धेनुको मैं नतमस्तक होकर वन्दन करता हूँ।'

विष्णुधर्मोत्तर (२९१। १,३) में गौके विषयमें कहा है—

गावः पवित्रा मङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः।
विप्रेषु मन्त्रास्तिष्ठन्ति गोषु संतिष्ठते हविः।

'गौएँ पवित्र एवं मङ्गलरूप हैं। गौओंके आधारपर समस्त लोक स्थित हैं। ब्राह्मणमें 'मन्त्र' प्रतिष्ठित रहते हैं और गौओंमें 'हवि'।'

ग्रीवामस्तकसन्धौ तु तासां गङ्गा प्रतिष्ठिता।
सर्वदेवमया गावः सर्वतीर्थमयास्तथा॥

(विष्णुधर्मोत्तर २९१। २५)

गौओंके कण्ठ और मस्तकके मध्यमें 'गङ्गाजी' हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौओंके समस्त अङ्ग देवमय तथा सर्वतीर्थमय हैं।

गवां कण्डूयनान्मर्त्यः सर्वं पापं व्यपोहति।
तासां ग्रासप्रदानेन महत्पुण्यमवाप्नुयात्॥

(विष्णुधर्मोत्तर २९१। ६)

गौओंको खुजलानेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। उनको ग्रास (अन्न-चारा) देनेसे महापुण्य प्राप्त होता है।

तासामावसथं कृत्वा नगराधिपतिर्भवेत्।
विप्रमोच्य भयेभ्यश्च न भयं विद्यते क्वचित्॥

(विष्णुधर्मोत्तर २९१। ९, ११)

गौओंका निवासस्थान (गोशाला) निर्माण करवा देनेपर मनुष्य नगरका अधिपति होता है। गौएँ समस्त भयोंसे मुक्त करवाती हैं तथा नगराधिपको कहींपर भी भय नहीं होता।

महाभारत-अनुशासनपर्व (५१। २८, ३२) में कहा है—

गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः॥

अर्थात् गौएँ लक्ष्मीका मूल (जड़) हैं, उनमें पापका लेश भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको 'अन्न' और देवताओंको श्रेष्ठ 'हवि' (हविष्य) प्रदान करती हैं।

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥

गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक श्वास लेता है, उस स्थानकी शोभा बढ़ जाती है और वहाँका सारा पाप नष्ट हो जाता है।

पाली भाषाके एक ग्रन्थमें कहा है कि—

यथा माता पिता भाता, अञ्ञे वापि च ञातका।
गावो नो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओसधा॥

अर्थात् 'जैसे माता, पिता, भाई और अन्य परिवारके लोग हैं, वैसे ही गौएँ भी हमारी परम मित्र हैं, जिनके दूधसे (मूत्रसे) दवाएँ बनती हैं।'

भगवान् बुद्धदेव कहते हैं—

अन्नदा बलदा चेता, वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवशं ञत्वा, नास्सु गावो हनिसु ते॥

'गाय अन्न, बल, सौन्दर्य तथा सुख देनेवाली है। इन गुणोंको जानकर पूर्वज लोग गौओंका वध (ताडन, कष्ट पहुँचाना इत्यादि) नहीं करते थे।'

दत्तोपासना-ग्रन्थोंमें गोरक्षा एवं गोवंशवृद्धिके विषयमें स्पष्ट कहा गया है कि साधकके लिये गोमांस-भक्षण करना महापाप है। साधनाकालमें साधकको गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत ही खानेको कहा है। इष्टदेवकी मूर्ति या चित्रके समक्ष देवपूजाके समय गोघृतका ही दीपक जलानेका निर्देश है। ऐसा करनेसे देहशुद्धि, चित्तशुद्धि, गृह या मन्दिर-शुद्धि तथा वायुमण्डलकी शुद्धि होती है, फलतः साधकको अन्तर साधनामें सहायता प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीदत्तात्रेयके साथ गौ माताका अलौकिक सम्बन्ध है, जो इस प्रकार है—

(१) वेदोंके अनुसार दत्तात्रेय-त्रिमूर्ति, तीन वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद हैं और 'कामदुघा' (गौ माता) गायत्री है।

(२) उपनिषदोंके अनुसार दत्तात्रेय यज्ञपुरुष हैं और गौएँ यज्ञ-स्वरूप हैं। **'यज्ञो वै गौः।'**

(३) योगशास्त्रके अनुसार दत्तात्रेय 'ॐ' अक्षरब्रह्म हैं, जिनका योगीजन ध्यान करते हैं (**ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।**) और गौ योगसिद्धि है, जो कामदा-मोक्षदा है।

(४) दत्तात्रेय आदि शब्द है और गौ 'वाक्' (वाणी) है। **'वाचं धेनुम् उपासीत।'**

(५) दत्तात्रेय अमृतेश (रसेश) हैं, तथा गौ अमृतकी नाभि है। (**अमृतस्य नाभिः**)

(६) दत्तात्रेय हृषीकेश (हृषीक-ईश) है (**दत्तात्रेयं हृषीकेशं जटाजूटधरं प्रभुम्।**) और गौ 'इन्द्रिय' है।

(७) दत्तात्रेय (कृषीवल (किसान) हैं और गौ अन्न है (**अन्नं वै गौः।**)

(८) दत्तात्रेय ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर या त्रिमूर्ति हैं (**आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुः अन्ते देवः सदाशिवः**) और गौ 'पृथ्वी' है (**इमे लोका गौः**)।

जब-जब पृथ्वीपर अधर्मकी अभिवृद्धि होती है और धर्मका ह्रास होता है, तब-तब पृथ्वीरूपिणी गौ माता भगवान् 'त्रिदेव' के चरणोंमें नतमस्तक होकर प्रार्थना करती हैं कि **'सम्भवामि युगे युगे'** को कार्यान्वित कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिमूर्तिके विषयमें 'नारदपुराण'में कहा है—

जगदुत्पत्तिकर्त्रे च स्थितिसंहारहेतवे।
भूभारविनाशाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते॥

(९) दत्तात्रेय 'सत्यधर्मस्वरूप' हैं और गौ 'सत्-शीलस्वरूपा' हैं।

(१०) दत्तात्रेय 'ईश' हैं और गौ 'त्यागमूर्ति' हैं (**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः**)।

(११) दत्तात्रेय परमावधूत हैं और गौ त्यागरूपा है। 'सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति' नामक ग्रन्थमें परम अवधूतकी स्थितिके विषयमें लिखा है—

एकहस्ते धृतस्त्यागो भोगश्चैककरे स्वयम्।
अलिप्तस्त्यागभोगाभ्यां सोऽवधूतः श्रियेऽस्तु नः॥

तात्पर्य यह कि परमावधूत त्याग एवं भोगसे अतीत हैं।

(१२) दत्तात्रेयको 'दत्तात्रेयोपनिषद्'में 'ज्ञानसागर' कहा गया है और 'शाण्डिल्योपनिषद्'में ज्ञाननिधि कहा है। गौ ज्ञानका प्रतीक है।

(१३) दत्तात्रेय-तन्त्र-ग्रन्थोंमें लिखा है कि दत्तात्रेय साक्षात् हरि हैं और उनके समीपस्थ जो गौ है, वह साक्षात् मुक्ति है—

दत्तात्रेयो हरिः साक्षात् गौर्मुक्तिस्वरूपिणी।

—इन प्रमाणोंसे स्पष्ट होता है कि दत्तोपासनामें गौ माताका वैशिष्ट्य है। गौके प्रत्येक रोममें देवोंका निवास है, अतः गौको अवध्या कहा गया है। 'मनुस्मृति' (११।७९) में कहा है—

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान् परित्यजन्।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च॥

जो कोई ब्राह्मण और गौका प्रतिपालन करता है, उस कार्यमें प्रसंग आनेपर अपना प्राण त्याग कर देता है तो वह (वीर) ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है।

बौधायनस्मृति (२। २। ८०) में कहा है—

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां चापि संकरे।
गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया॥

गौ एवं ब्राह्मणकी रक्षा-हेतु तथा वर्णसंकर होनेसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिये ब्राह्मण और वैश्य भी शस्त्र धारण करें।

अतः सभीका यह परम कर्तव्य है कि सर्वदेवमयी गोमाताकी महिमाको समझते हुए उसकी नित्य सेवा करे और उसकी रक्षाके कार्यमें दृढ़-संकल्प हो जाय।

नित्य प्रातःकालमें उठते समय इस श्लोकका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उच्चारण करनेसे अपार शान्तिकी प्राप्ति होती है और गोमाताकी प्रसन्नता भी प्राप्त होती है। अतः हम सभी इस श्लोकका नित्य पाठ करें—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

क्या भोजनके लिये पशु-वध जरूरी है?

(श्रीपन्नालालजी मूंदड़ा अध्यक्ष, भारतीय जीवजन्तु-कल्याण-बोर्ड)

प्रकृतिने जहाँ मानव-आहारके लिये अनेक वनस्पति तथा स्वादिष्ट पदार्थ उत्पन्न किये वहीं उसकी सेवा और सहायताके लिये विभिन्न पशु-पक्षियोंकी भी सृष्टि की। वे पशु-पक्षी जो एक ओर प्राकृतिक संतुलन बनाये रखनेमें सहायक होते हैं तो दूसरी ओर मानवकी तनिक भी दया एवं प्रेम पाकर मनुष्योंसे भी अधिक स्वामिभक्त तथा वफादार बनकर उनकी जी-जानसे सेवा करते हैं। इसीलिये विश्वके हर कोनेसे वैज्ञानिक एवं डॉक्टर यह चेतावनी दे रहे हैं कि मांसाहार कैंसर आदि असाध्य रोगोंको जन्म देता है तथा शाकाहार अधिक पौष्टिकता एवं रोगोंसे लड़नेकी क्षमता प्रदान करता है। यह एक भ्रान्त धारणा है कि शाकाहारी भोजनसे उचित मात्रामें प्रोटीन अथवा शक्ति-वर्धक उचित आहार नहीं प्राप्त होता। आधुनिक शोधकर्ताओं तथा वैज्ञानिकोंकी खोजोंसे यह साफ पता चलता है कि शाकाहारी भोजनसे न केवल उच्च कोटिके प्रोटीन प्राप्त होते हैं, अपितु अन्य आवश्यक पोषक तत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विटामिन-खनिज-ऊर्जा आदि भी अधिक प्राप्त होते हैं, यह हम निम्नलिखित तालिकासे देख सकते हैं—

तालिका

नाम-पदार्थ	प्रोटीन	चिकनाई	खनिज-लवण	कार्बोहाइड्रेट्स	कैल्सियम	फॉसफोरस	लोहा	कैलोरी
			शाकाहारी खाद्य १०० (ग्राममें)					
मूँग	२४.००	१.३	३.०	५६.६	०.१४	०.२८	८.४	३३४
उड़द	२४.००	१.४	३.४	६०.३	०.२०	०.३७	९.८	३५०
अरहर	२२.३०	१.८	३.६	५७.२	०.१४	०.२६	८.८	३३३
मसूर	२५.१	०.७	२.१	५९.७	०.१३	०.२५	२.०	३४६
मटर	२२.९	१.४	२.१	६३.५	०.०३	०.३६	५.०	३५८
चना	२२.५	५.२	२.२	५८.९	०.०७	०.४९	३.८	३२७
लोबिया	२४.६	०.७	३.२	५५.७	०.०७	०.४९	३.८	३२७
सोयाबीन	४३.२	१९.५	४.६	२०.९	०.२४	०.६९	११.५	४३२
बादाम	२०.८	५८.९	२.९	१०.५	०.२३	०.४९	३.५	६५५
काजू	२१.२	४६.९	२.४	२२.३	०.०५	०.४५	५.४	५९६
नारियल	४.५	४१.६	१.०	१३.०	०.०१	०.२४	१.२	४४४
तिल	१८.३	४३.३	५.२	२५.२	१.४४	०.५७	१०.५	५६४
मूँगफली	३१.५	३१.८	२.३	१९.३	०.०५	०.३१	१.६	५४९
पिस्ता	१९.८	५३.५	२.८	१६.२	०.१४	०.४३	१३.७	६२६
अखरोट	१५.६	६४.५	१.८	११.०	०.१०	०.३८	४.८	६८७
जीरा	१८.७	१५.०	५.८	३६.६	१.०८	०.४९	३९.०	३५६
पीपल	६.४	२.३	४.८	६५.८	१.२३	०.१९	६२.१	३१०
मेथी	२६.२	५.८	३.०	४४.१	०.१६	०.३७	१४.१	३३३
पनीर	२४.१	२५.१	४.२	६.३	०.७९	०.५२	२.१	३४८
घी	—	९८.०	—	—	—	—	—	९००
दूध पाउडर	३८.३	०.१	६.८	५१.०	१.३७	१.००	१.०४	३५७
			मांसाहारी खाद्य-प्रत्येक १०० ग्राम					
अंडा	१३.३	१३.३	१.९	—	०.०६	०.२२	२.१	१७३
मछली	२२.६	०.६	०.८	—	०.०२	०.१९	०.९	९१
बकरेका मांस	१८.५	१३.३	१.३	—	०.१५	०.१५	२.५	१९४
सुअरका मांस	१८.७	४.४	१.०	—	०.०३	०.२	२.३	११४
गायका मांस	२२.६	२.६	१.०	—	०.०१	१.१९	०.८	११४

ऊपरकी तालिकासे यह विदित होता है कि १०० ग्राम दालोंमें जिनका मूल्य करीब एक रुपया है, उसमें ३५० कैलोरी होती है, जबकि १०० ग्राम अंडेमें १७३ कैलोरी, मछलीमें ९१ कैलोरी, मांसमें १९४ कैलोरी, गोमांसमें ११४ कैलोरी होती है, जिनका मूल्य करीब तीनसे नौ रुपये प्रति १०० ग्राम होता है। अतः यह स्पष्ट है कि मांसाहारी खाद्य पदार्थोंकी अपेक्षा दालों तथा अनाजसे बहुत कम खर्चमें प्रोटीन एवं ऊर्जा प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाधिक शक्तिशाली, परिश्रमी तथा अधिक सहनशीलतावाले पशु जो लगातार कई दिनतक काम कर सकते हैं, जैसे हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल आदि सब शाकाहारी ही है। इंगलैंडमें परीक्षण करके देखा गया है कि स्वाभाविक मांसाहारी शिकारी कुत्तोंको भी जब शाकाहारपर रखा गया तो उनकी सहनशक्ति एवं क्षमतामें वृद्धि हुई।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी विश्वके जानकारोंद्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि मांसाहार मुख्य रोगोंका कारण है और इसीलिये मांसाहारी व्यक्तियोंको रोगोंसे बचनेके लिये संतुलित आहारके लिये निरन्तर डॉक्टरी सलाह लेते रहनी पड़ती है। अमेरिकाके डॉक्टरोंका यह कहना है कि मांसाहारकी तुलनामें शाकाहारके अंदर रोगोंको रोकनेकी शक्ति अधिक है। यह तो सर्वविदित है कि हत्यासे पहले पशु-पक्षी-मछलियों आदिके स्वास्थ्यकी पूरी जाँच नहीं की जाती और उनके शरीरमें छिपी हुई बीमारियोंका पता नहीं लगाया जाता। अंडे, पशु-पक्षी, मछलियाँ प्राय: कैंसर-ट्यूमर आदि अनेक रोगोंसे ग्रस्त होते हैं और उनके सेवनसे वे रोग मनुष्यमें प्रवेश कर जाते हैं।

स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, बफैलोंमें किये गये शोधसे यह प्रकाशमें आया है कि अमेरिकामें ४७,००० से भी अधिक बच्चे हर वर्ष ऐसे जन्म लेते हैं, जिन्हें माता-पिताके मांसाहारी होनेके कारण कई बीमारियाँ जन्मसे ही लगी होती हैं और ये बच्चे बड़े होनेपर भी पूर्णत: स्वस्थ नहीं हो पाते।

मांसाहार जिन असाध्य रोगोंको जन्म देता है, उनमें हृदयरोग तथा उच्च रक्तचाप, गुर्देकी बीमारियाँ, कैंसर, आँतोंका सड़ना, त्वचाके रोग, विषावरोधी क्षय प्रमुख है। काम करनेमें मांसाहारी व्यक्ति शाकाहारी व्यक्तिकी तुलनामें जल्दी हाँफ जाता है। शाकाहार यूरोपीय देशोंमें बहुत ही तेजीसे फैल रहा है और इंगलैंड तथा जर्मनीमें तो विशेषरूपसे फैल रहा है। इसीलिये ज्यादातर पाश्चात्त्य देशोंमें मांसाहारी अपना भोजन संतुलित करनेके लिये अधिक मात्रामें दूधका उपयोग करते हैं। औसतन प्रति व्यक्ति लीटर दूधकी खपत इस प्रकार है—आस्ट्रेलिया २०५, अमेरिका-१७६, ब्रिटेन-१६७, पश्चिम जर्मनी १२१, फ्रांस-११०, इससे यही सिद्ध होता है कि अंडा, मांस या मछली पूर्ण आहार नहीं हैं अन्यथा अनाजों एवं साग-सब्जियोंके साथ-साथ इतनी मात्रामें दूधके उपयोगकी क्या जरूरत थी।

कुछ वर्षों-पूर्व प्राकृतिक चिकित्सकोंको इजराइलमें अधिकृत चिकित्सक नहीं माना जाता था और प्राकृतिक चिकित्साकी जड़ें तो शाकाहारमें ही हैं; परंतु जब प्राकृतिक चिकित्सकोंने न्यायालयमें यह सिद्ध कर दिया कि प्राकृतिक चिकित्साके द्वारा वे गम्भीर रोगोंको बिना दवाइयोंके ठीक कर सकते हैं, तब वहाँकी सरकारने संसद्में बिल पेश करके प्राकृतिक चिकित्सकोंकी व्यवस्थाको कानूनी बताया।

विख्यात जर्मन डॉ० गेरीसन इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि केवल नमकरहित शाकाहारी भोजन क्षय-रोग या कैंसरके रोगीको ठीक कर सकता है। उन्हें इसके आश्चर्यजनक परिणाम मिले हैं तथा उनका घर कई हजार रोगियोंके लिये धर्मका स्थान बन गया है। यदि हम जिन पशुओंका मांस, प्राय: खाया जाता है, के आहारकी तरफ ध्यान दें तो पायेंगे कि वे विकृत हुआ खाना खाते हैं; क्योंकि कीड़े-मकोड़ों एवं अन्य कीटाणुओंको मारनेके लिये करीब २०० रसायनोंका निर्माण हो चुका है और ये कीटाणुनाशक रसायन आजकल खेतों-खलिहानों-घरोंमें बहुतायतसे छिड़के जाते हैं, जो कि खानेके साथ पशुओंके शरीरमें जाते हैं, तो प्रदूषित जल तथा भोजन खानेवाले पशु क्या हमें स्वास्थ्यप्रद मांस प्रदान कर सकते हैं?

जार्ज बर्नाडशाकी एक कविताका भाव है—

'हम मांस खानेवाले वे चलती-फिरती कब्रें हैं, जिनमें वध किये हुए जानवरोंकी लाशें दफन की गयी हैं, जिन्हें हमारे स्वादके चावके लिये मारा गया है।'

अत: हमें चाहिये कि हम '**मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि**'के सिद्धान्तपर चलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

[गताङ्क पृ०-सं० ८४२ से आगे]

दृश्य—१७

अकबर भी नाचा

[अकबरका कक्ष। बीरबल आज्ञा लेकर अंदर आते हैं]

बीरबल—जहाँपनाह, अंदर आनेकी इजाजत है? आपने मुझे बुलाया?

अकबर—हाँ, बीरबल, आओ बैठो। आज सुबहसे ही एक अजीब-सा खयाल मनमें उठ रहा है। बीरबल, यह बताओ तुम्हारे नन्दनन्दनपर तो सारी दुनिया रीझ रही है। क्या नन्दनन्दन भी किसीपर रीझता है?

बीरबल—जी सरकार।

अकबर—*(विस्मयमें सीधा होकर)* किसपर?

बीरबल—इस समय नन्दनन्दन मीरापर रीझे हुए हैं।

अकबर—तब तो मीराके दीदार करा दो।

बीरबल—सरकार, ऐसे तो वहाँ न जा पायेंगे.....आप बुरा न मानें तो .....मीराके दर्शनके लिये उनके सत्संगमें जाना एकमात्र साधन है और यह तब सम्भव है जबकि......।

अकबर—बीरबल, खामोश क्यों हो गये? बताओ, मैं कोई भी तरीका इख्तियार करनेको तैयार हूँ।

बीरबल—हुजूर....हुजूर.....बात यह है कि मीरा जब गिरिधर गोपालकी पूजा करती है तो कोई भी वैष्णव उसमें सम्मिलित हो सकता है। आपको धोती पहन, चोटी लगा और तिलक धारण करके मेरे साथ जाना होगा।

अकबर—इतने बड़े पीरके दीदार करनेके लिये मैं यह सब करनेको तैयार हूँ।

[अकबर और बीरबल मीराके मन्दिरमें प्रवेश करके एक ओर खड़े हो जाते हैं। कुछ वैष्णव पाँवमें घुँघरू बाँध रहे हैं। जिनके पास घुँघरू नहीं, वे घुँघरू बाँध रहे वैष्णवोंको ललचाई दृष्टिसे निरख रहे हैं। अपार जन-समूह मीराके कीर्तन और तालके साथ नृत्य कर रहा है।]

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे॥

× × ×

मैं तो मेरे नारायणकी आपहि हो गइ दासी रे।

मीरा—*(परदेके सामने समीपसे)* गिरिधरकी दासी बननेके लिये सब नाचो। महाप्रभुने कृष्ण-प्राप्तिका उत्तम साधन यही बताया है। जो आज घुँघरू नहीं लाये, वे ऐसे ही नृत्य करें, परंतु अगली बार घुँघरू लायें। संकोच त्यागो, लाजको खूँटीपर टाँग दो, रिझा लो अपने प्रिया-प्रियतमको आज ही। कृष्ण-मिलनकी मधुर वेलाको निकट लाना है—

[सामूहिक गान लगातार होता है—]

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे॥

× × ×

मैं तो मेरे नारायणकी आपहि हो गइ दासी रे॥

[मीरा तन्मयतासे नृत्य कर रही है। उसके साथ सब नृत्य कर रहे हैं। अकबर उठकर हाथ ऊपर करता है और पाँव आगे-पीछे करके नृत्य करनेकी मुद्रामें हो जाता है। बीरबल भी उठकर नृत्य करता है, सामूहिक गान होता रहता है।]

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे॥
मैं तो मेरे नारायणकी, आपहि हो गइ दासी रे।
लोग कहै मीरा भई बावरी, न्यात कहै कुळनासी रे॥
बिषका प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी रे।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अबिनासी रे॥

*[भजन पूरा हुआ, परंतु **'मैं तो मेरे नारायणकी, आपहि हो गइ दासी रे'** की धुन चलती रहती है। मीरा गिरिधर गोपालको प्रणाम करके उन्हें टकटकी लगाकर निहार रही है।]*

बीरबल—*(अकबरसे)* हुजूर, माला भेट कर दीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अकबर तुरंत जेबसे पोटली निकालता है, उसमें हीरे-जड़ित हार मीराको देते हुए गिरिधरको पहनानेका संकेत करता है। मीरा केवल हारको ही देखती है और गिरिधरको पहना देती है। अकबर सलाम करके पीछे हटता है तो बीरबल घबराकर अकबरको पकड़कर कहता है—]

बीरबल—*(घबराकर)* तुरंत चलना होगा।

अकबर—क्यों, घबराये हुए क्यों हो?

बीरबल—आपका सलाम पोलपट्टी खोल देगा।

अकबर—ओह! *(अकबर और बीरबलका प्रस्थान)*।

दृश्य—१८

गोस्वामी तुलसीदासजीसे आज्ञा

[राणा विक्रमाजीत मन्त्रीके साथ।]

विक्रम—*(मन्त्रीसे)* मन्त्रीजी, मीराको सीधे मार्गपर लानेके हमारे सारे प्रयास विफल रहे। मेरा विचार है, कुछ ब्राह्मणोंको मीराके पास समझानेके लिये भेजा जाय। ब्राह्मण मीराको कहें कि 'भजन तो करो, परंतु सब प्रकारके संतों, महात्माओंके साथ नाचना-गाना मर्यादाके विरुद्ध है।'

मन्त्री—जो आज्ञा।

[राणा विक्रमाजीत महलमें चिन्तित-अवस्थामें टहलने लगता है। टहलते-टहलते कभी ऊपर, कभी नीचे देखता है, कभी हाथ मलता है और कभी ताली बजाता है। मन्त्री ब्राह्मणोंको लेकर आते हैं।]

मन्त्री—*(राणासे)* महाराजकी जय हो। ब्राह्मणोंको लाया हूँ। आज्ञा कीजिये।

विक्रम—पूज्य ब्राह्मणो! आप लोग तो जानते ही हैं कि राज्यमें आजकल विशेष चर्चाका विषय है मीराकी भक्ति और उसका संतों तथा महात्माओंके साथ खुल्लम-खुल्ला नाचना और गाना। आप लोग तो शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। ऐसा करना मर्यादाके प्रतिकूल है। मेरी प्रार्थना है कि आप लोग मीरा भाभीको शास्त्रोंके प्रमाण देकर समझायें कि उसका भजन-कीर्तन कुलकी मर्यादाओंके विरुद्ध न हो।

एक ब्राह्मण—हम ऐसा ही करेंगे *(ब्राह्मणोंका प्रस्थान)*

[ब्राह्मण मीराके पास। गोपालको प्रणाम करके बैठ जाते हैं]

एक ब्राह्मण—*(मीरासे)* हम सब ब्राह्मण आपसे सनातनधर्मकी पद्धतिके अनुसार भक्ति करनेके विषयपर चर्चा करने आये हैं।

दूसरा ब्राह्मण—सबसे प्रथम तो यह है कि स्त्रियोंके लिये भक्ति करनेके नियमोंमें संतों-महात्माओंका अकेलेमें मिलना मर्यादाके विरुद्ध है।

तीसरा ब्राह्मण—और फिर उनके साथ नृत्य आदि करना तो बिलकुल निषिद्ध है।

चौथा ब्राह्मण—सास, ससुर और बड़ोंकी आज्ञा....।

मीरा—*(बातको काटते हुए)* मैं आप सब ब्राह्मणोंको वन्दन करती हूँ। प्रथम तो मुझे आप लोगोंसे यह पूछना है कि देवर विक्रमाजीतका इसके बारेमें क्या विचार है?

एक ब्राह्मण—उन्होंने ही तो हमें आपको समझाने-बुझानेके लिये भेजा है।

मीरा—मैं समझ गयी। आप अगर आज्ञा दें तो जिस मार्गपर मैं चल रही हूँ, उस मार्गपर चलनेवाले महान् पुरुषों और महात्माओंकी सम्मति ले लें।

वही ब्राह्मण—जैसे, किसकी?

मीरा—*(थोड़ा सोचकर)* जैसे गोस्वामी तुलसीदास महाराजकी।

वही ब्राह्मण—यह तो उचित ही होगा।

मीरा—मैं आज ही किसी व्यक्तिको गोस्वामीजीके लिये पत्र देकर भेज दूँगी। उनके उत्तरके अनुसार ही कार्य करूँगी। यह मेरा आप सब पूज्य ब्राह्मणोंको आश्वासन है। *(ब्राह्मणोंका प्रस्थान। मीरा पत्र लिखती है)*

स्वस्तिश्री तुलसी, गुणभूषण, दूषण हरण गुसाँई।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
मेरे मात तात सम तुम हो, हरिभक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबो, अब सो लिखिये समुझाई॥

[मन्दिरमें अपार जन-समूह, भक्तगण, ब्राह्मण इत्यादि बैठे हैं। मीरा आती है, सब खड़े हो जाते हैं। मीरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिधर गोपालको प्रणाम करती है, टकटकी लगाकर देखती है।)

मीरा—*(मनमें)* गिरिधरकी ऐसी ही इच्छा है। यही यथेष्ट है। *(सब नीची दृष्टि करके बैठे हैं, मीरा ब्राह्मणोंसे कहती है।)* पूज्य ब्राह्मणजनो! आपको मेरा वन्दन है। आपके कहनेके अनुसार मैंने एक पत्र परम पूजनीय गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजको भेजा था। उनका उत्तर आपको पढ़कर सुनाती हूँ—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो॥

गोस्वामीजीके आदेशानुसार मैं इसी समय इस स्थानको त्यागकर श्रीवृन्दावन-धामके लिये प्रस्थान करनेवाली हूँ। *(मीरा एक सेविकाको तानपूरा देनेका संकेत करती है। गाते हुए सब चलने लगते हैं)।*

तेरो कोई नहिं रोकणहार मगन होइ मीरा चली॥
लाज सरम कुलकी मरजादा सिरसैं दूर करी।
मान-अपमान दोऊ धर पटके निकसी ग्यान गळी॥
ऊँची अटरिया लाल किवड़िया निरगुण-सेज बिछी।
पँचरंगी झालर सुभ सोहै फलन फूल कळी॥
बाजूबंद कड़ूला सोहै सिंदूर माँग भरी।
सुमिरण थाल हाथमें लीन्हों सोभा अधिक खरी॥
सेज सुखमणा मीरा सोहै सुभ है आज घरी।
तुम जाओ राणा घर अपणे मेरी थाँरी नाँहिं सरी॥

दृश्य—१९

वृन्दावनमें मीरा

[चलते-चलते मीरा वृन्दावन पहुँची और श्रीयमुनाजीके पावन जलको हथेलीमें लेकर सिरपर धारण किया, तत्पश्चात् प्रणाम किया। वह व्रज-रसमें लोट-पोट हो गयी। आगे चली तो वंशीवटके दर्शन किये। बेहोश होकर गिर पड़ी।]

मीरा—*(पुकारने लगी)* श्याम, श्याम। मेरे अपने श्याम।

[श्याम-प्रेम-पगी मीरा वहाँसे आगे भागी। श्रीबाँके-बिहारीजीकी श्रीबाँकी-झाँकीके दर्शन किये। हाथ जोड़ मस्तक झुका कर बोली—]

हमरो प्रणाम बांकेबिहारीको।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजै, कुण्डळ अलकाकारीको॥
अधर मधुर पर बंसी बजावै, रीझ रिझावै राधाप्यारीको।
यह छबि देख मगन भई मीरा, मोहन गिरवरधारीको॥

[तत्पश्चात् मीराने श्रीवृन्दावनधामके अनेक मन्दिरों, मदनमोहन, राधारमण और सेवा-कुंजके दर्शन किये। मीरा आगे चली तो उसे यमुनाजीके पाससे आती एक गोपी मिली। सिरपर दही-मटकी रखी हुई बोली—]

गोपी—लेओ री श्याम सलौना।

[उन्मत्त होती गोपी मीराके पाससे निकल गयी। मीरा मुसकरायी और बोली—]

मीरा—या ब्रजमें कछु देख्यो री टोना॥
ले मटकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नंदजीके छोना।
दधिको नाम बिसरि गयो प्यारी 'ले लेहु री कोउ स्याम सलोना'॥
बिंद्राबनकी कुंजगळिनमें आँख लगाय गयो मनमोहना।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, सुंदर स्याम सुघर रस लोना॥

[मीरा आगे चली तो हरी-हरी लताओंमें उलझ गयी। बोली—]

मीरा—अरी हरित लताओ! तुम चाहती हो कि मैं हरि-हरि बोलूँ। लो *(हाथ उठाकर)* 'हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल' *(इस तन्मयतामें मीरा 'हरि बोल, हरि बोल' करती जा रही थी कि उसे एक आश्रमके बाहर दो गण मिले। मीराने उनसे पूछा—)*

मीरा—महात्माओ, आपको प्रणाम! संतजनो, जीवगोस्वामीजी महाराजकी कुटिया कहाँ है? *(गोस्वामीजी कुटियाके अंदर बैठे यह वार्ता सुन रहे थे)*

एक गण—*(कटी-सी आवाजमें)* यही है।

मीरा—*(उल्लासके साथ)* यही है! यही है!! मैं महाराजजीके दर्शन करना चाहती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गण—किंतु हमारे गुरुजी किसी स्त्रीका मुख नहीं देखते।

मीरा—अच्छा! मैं तो अबतक यही समझती थी कि इस वृन्दावनमें पुरुष तो केवल एकमात्र व्रजनन्दन हैं, शेष सभी उनकी किंकरी हैं, किंतु अब पता चला कि उनके कोई पट्टीदार भी हैं।

[जीवगोस्वामी यह सुनते ही बाहर दौड़े आये।]

जीवगोस्वामी—*(हाथ जोड़कर)* मैं ही जीवगोस्वामी हूँ। आपका परिचय?

मीरा—*(प्रणाम करते हुए)* मैं हूँ मीरा। क्षमा कीजिये, मैंने आपको कष्ट दिया।

जीवगोस्वामी—अहो भाग्य! *(सुन्दर गोबरसे लिपे हुए स्थानपर मीराको बिठा देते हैं)* बेटी, आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं। यद्यपि मैं स्वयं तो प्यारे श्यामसुन्दरको सखा ही मानता हूँ और अपनेको सखी, इस स्वरूपका वास्तविक बोध आज तुमने करवा दिया। हमने तुम्हारी हरि-प्रेम-निष्ठाके चर्चे और अपार कष्टोंको सहनेके बलके बारेमें बहुत-कुछ सुन रखा था। तुम साहस कर वृन्दावन चली आयी, अच्छा किया। कैसा लगता है?

मीरा—*(रो रही है, आँसू पोंछती हुई)*

आली! म्हाँने लागे वृन्दावन नीको।

जीवगोस्वामी—*(मीरासे)* ऐसे नहीं *(एक शिष्यसे)* अरे, तानपूरा लाओ।

[मीरा प्रसन्न-मनसे तानपूरा उठाकर श्याम-प्रेममें झूमती हुई गाने लगी—]

मीरा—**आली! म्हाँने लागे बृंदावन नीको।**

घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोबिंदजीको॥
निरमल नीर बहत जमनामें भोजन दूध दहीको।
रतन सिंघासण आप बिराजै मुगट धर्‌यो तुलसीको॥
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरलीको।
मीराके प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको॥

[भजन समाप्त। जीवगोस्वामीजीका मीराके समक्ष वृन्दावनके माहात्म्यका वर्णन करना]

जीवगोस्वामी—श्रीवृन्दावन-धामकी महिमाका कौन बखान कर सकता है। वराहभगवान्ने पृथ्वीदेवीसे कहा—

वृन्दावने तु गोविन्दं ये भजन्ति वसुन्धरे।
नो ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम्॥

अर्थात् श्रीवृन्दावन-धाममें जो गोविन्द भगवान्का पूजन करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। वे भगवान्के धामको जाते हैं। और स्वयं श्रीराधा महारानीजी भगवान्से गोलोकधाममें कहती हैं—

यत्र वृन्दावनं नास्ति नास्ति गोवर्धनो गिरिः।
यत्र नास्ति च कालिन्दी तत्र नो रमते मनः॥

(गर्गसंहिता)

तात्पर्य यह कि जहाँ वृन्दावन नहीं, जहाँ गोवर्धन नहीं और जहाँ यमुनाजी भी नहीं, वहाँ (जाकर) मेरा मन नहीं लगेगा।

इत्येवं प्रार्थितः कृष्णः श्रीराधाप्रियवाञ्छया।
अत्रैवानीतवान् भूमौ इत्येतत्त्रितयं परम्॥

गर्गाचार्यजीने कहा है कि श्रीराधाजीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे यहाँ भूतलपर श्रीकृष्ण इन तीनोंको—वृन्दावन, गोवर्धन और यमुनाजीको ले आये।

[जीवगोस्वामी और मीरा कुटियामें प्रवेश करते हैं। कुटियामें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी मूर्तिको देख मीरा प्रणाम करती है और बैठ जाती है।]

जीवगोस्वामी—*(मीरासे)* महाप्रभु आपपर कृपा करें।

[मीरा तानपूरा बजाते हुए गाती है]

मीरा—**अब तौ हरि नाम लौ लागी।**

सब जगको यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी।
मूड़ मुड़ाइ डोरी कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधै जाके पाँव।
स्यामकिसोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव॥
पीतांबरको भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्णकी दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै॥

[भजन सुनते-सुनते श्रीजीवगोस्वामीजीकी समाधि लग जाती है।] (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

दुष्कर्मसे दुर्गति

मान्य बहिन! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके बहनोई 'कल्याण' के ग्राहक हैं, रामायण-भगवद्गीता पढ़ते हैं, घूसखोरीसे सदा दूर रहते हैं और अच्छे स्वभावके हैं, परंतु उनके चरित्रमें दोष है, दोष बतलानेपर वे उलटा डाँटते हैं तथा उसका औचित्य सिद्ध करते हैं। इससे आपकी बहिनको बहुत दुःख है और वह कभी-कभी शरीर-त्यागतककी बात सोचती है। इसके उत्तरमें निवेदन यह है कि आप अपनी बहिनको समझा दें कि वे आत्महत्याकी बात कभी न सोचें। आत्महत्या महापाप है। इससे दुःखोंका नाश नहीं होता, वरं दुःख और भी बढ़ जाते हैं। वे अपने पतिदेवकी बुद्धि सुधरनेके लिये भगवान्से कातर प्रार्थना करें। उनकी प्रार्थना जितनी ही विश्वासपूर्ण होगी, उतना ही उसका अच्छा फल देखनेमें आयेगा। मनुष्य जब कामादि विकारोंके वश हो जाता है, तब उसका ज्ञान ढक जाता है, बुद्धि विपरीत निर्णय देने लगती है। वह पापको पुण्य बताती है और पुण्यको पाप। यही हाल आपके बहनोईजीका है। वे यह जो कुछ कर रहे हैं सो निःसंदेह प्रत्यक्ष पाप है। इसका परिणाम उनके लिये बहुत ही दुःखदायी हो सकता है। यदि वे मेरी बात मानें तो मैं उनसे यही कहूँगा कि वे शीघ्र-से-शीघ्र इस दुष्कर्मको छोड़ दें और अपनी साध्वी पत्नीको घोर मानसिक पीड़ासे बचा लें। इसीमें उनका कल्याण है। गीता-रामायणका उनको यही संदेश है और मैं भी उनसे बलपूर्वक यही अनुरोध करता हूँ। वे इस प्रकारका कुकार्य करके गीता-रामायणको भी कलंक लगा रहे हैं, जो वास्तवमें गीता-रामायणको नहीं लगकर उन्हींको लगेगा और उनकी महान् दुर्गतिका कारण होगा। जो भोली बहिन इनके जालमें फँसी है, उसको भी सावधान होना चाहिये। इस प्रकारका आचरण महान् पाप तो है ही, यह नारी-जातिके लिये बड़ा कलंक है। एक बहिन घरमें बैठी रोती-कलपती रहे और दूसरी वहीं उसके पतिको दुराचारका आश्रय देनेवाली बने! पुरुष-जाति तो गिर ही गयी है, पर भारतकी नारियोंका भी इस प्रकार पतन हो रहा है। बड़े ही दुःखकी बात है।

(२)

घर छोड़ना हानिकारक है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने अपनी शारीरिक दुर्बलताका उल्लेख करते हुए घर छोड़नेके लिये सलाह पूछी, इसके उत्तरमें निवेदन है कि घर छोड़ना आपके लिये न तो उचित है, न लाभदायक ही। भगवान् बुद्ध तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी नकल हर आदमी नहीं कर सकता। उनमें जैसा महान् मनोबल था, वह हमलोगोंमें कहाँ है? मनुष्यको अपने अधिकारके अनुसार ही व्यवहार करना चाहिये, तभी वह सुखी रहता है, नहीं तो, आगे चलकर उसे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है। जो लोकोत्तर महापुरुष हुए हैं, उनके पवित्र उपदेश ही हमारे लिये परिस्थिति और अधिकारके अनुरूप आचरण करने योग्य हैं। उनके आचरणोंका अनुकरण तो यथार्थरूपमें किया ही नहीं जा सकता।

भगवान् बुद्ध और श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका बचपन कितना पवित्र तथा संयमपूर्ण था। उसके सामने आप अपने बालकपनको देखिये। बचपनकी बुराइयाँ पूर्वजन्मके दुर्बल मनकी ही सूचक हैं। आपकी इस समय जो मानसिक स्थिति है, यह भी जहाँतक मैं समझ पाया हूँ, यथार्थ वैराग्य नहीं है। यह प्रतिकूलतासे उत्पन्न भावना है, लज्जा और ग्लानिका परिणाम है। ऐसी अवस्थामें घर छोड़कर और कहीं चले जानेसे ही भजन बनने लगेगा, ऐसा नहीं सोचना चाहिये। फिर, आजकल तो भजनके अनुकूल स्थानका मिलना भी बहुत कठिन है।

आपके मनमें भगवान्के दर्शनकी चाह है, यह बड़ी उत्तम चाह है। भगवान्के दर्शन उनकी कृपासे हो सकते हैं। इस युगमें उनके दर्शनका श्रेष्ठ साधन है—उनकी अहैतुकी असीम कृपापर परम विश्वास करके उनके नामका नित्य स्मरण करना। इसको आप बाहरकी अपेक्षा घरपर अधिक सुगमतासे कर सकते हैं। सब समय भगवन्नामका अखण्ड स्मरण करते हुए ही घरके आवश्यक सारे काम करें। भगवान्ने गीतामें कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(८। ७)

'इसलिये हे अर्जुन! सब समय मेरा स्मरण करो और (समयपर) युद्ध करो। यों मन-बुद्धिको मुझमें अर्पण करनेपर तुम मुझको प्राप्त होओगे, इसमें संदेह नहीं है।'

इसके सिवा, अग्निकी साक्षी देकर जिस पत्नीका आपने पाणिग्रहण किया और जिसको साथ रखनेकी प्रतिज्ञा की, उसके सुख-दु:खका भी आपपर निश्चित उत्तरदायित्व है। आपके इस प्रकार गृह-त्यागसे यदि कोई बुराई आ गयी तो पत्नीके पाप-पुण्यका आपको भागीदार होना पड़ेगा। इस दृष्टिसे भी घर छोड़ना कदापि उचित नहीं है।

अतएव मेरी सलाह तो यह है कि आप घर छोड़नेका विचार त्याग दीजिये। चिकित्साका प्रयत्न करते रहिये। श्रद्धापूर्वक भगवन्नामका जप तथा भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे भी आपके रोगका नाश हो सकता है। विश्वास हो तो, राम-नाम सब रोगोंकी एक रामबाण दवा है—'**सर्वतापशमनैकभेषजम्**।' शेष भगवत्कृपा!

(३)

पवित्र प्रेमका जीवन त्याग है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने एक विधवा बहिनके प्रति अपने शुद्ध प्रेमका उल्लेख करते हुए बताया कि आपके आचरण पवित्र हैं और प्रेममें कोई अपवित्रता नहीं है, सो बड़ी अच्छी बात है। यदि ऐसा है तो बहुत श्रेष्ठ है, परंतु आपको अपना अन्तस्तल फिर गहरी नजरसे देखना चाहिये। प्रेमके नामपर कहीं मोह तो नहीं है। ऐसे अवसरोंपर प्राय: मोह ही प्रेमका चोगा पहनकर आया करता है और उसके परिणामस्वरूप मनुष्यका पतन हो जाता है।

याद रखना चाहिये—प्रेम शरीरसे नहीं होता और प्रेममें अपना तनिक-सा भी स्वार्थ नहीं रहता। प्रेमी चाहता है प्रेमास्पदका एकान्त कल्याण—उसको परमानन्दमें देखना। प्रेमास्पदको इस प्रकार सुख पहुँचानेमें यदि प्रेमीको भयानक यन्त्रणाका भोग करना पड़ता है तो वह उसे बड़े चावसे भोगता है। जो मनुष्य प्रेमके नामपर आत्मतृप्ति यानी अपने मन इन्द्रियोंका सुख चाहता है, वह प्रेमी नहीं है, कामी है, क्योंकि उसका लक्ष्य प्रेम नहीं है, उसका लक्ष्य है लौकिक सुखादि भोग।

आप अपनेको देखिये, यदि जरा भी मोह हो तो तुरंत उसको त्याग दीजिये। कई बार ऐसा होता है कि मनमें कोई स्पष्ट वासना नहीं दीखती, न काम ही प्रतीत होता है पर जिस प्रेममें शारीरिक आसक्ति होती है—उससे मिलने-देखनेको जी छटपटाता है, वहाँ छिपी कामना रहती ही है। ऐसे प्रेमका त्याग करनेमें ही दोनोंका कल्याण है। शारीरिक सुख या मानसिक आमोद-प्रमोदकी इच्छा निश्चय ही मोहकी प्रेरणासे होती है। वह देवी विधवा है, युवती है, उसका कल्याण है श्रीहरिके चिन्तनमें या परमात्मस्वरूप पतिके चिन्तनमें, तथा संयम, त्याग, तितिक्षासे युक्त पूर्णरूपेण सादा जीवन बिताते हुए भगवान्‌का भजन करनेमें। किसी भी अन्य पुरुषके प्रति (विशुद्ध दीखनेवाला) आकर्षण भी उसके लिये भयकी वस्तु है। शरीरको सुखकी प्राप्ति हो, आमोद-प्रमोदसे उसका मन मुदित रहे—इस प्रकारकी चाह तो उसके और आपके दोनोंके ही लिये पतनकी ओर ले जानेवाली है। वह जब अनन्यभावसे अपने पतिका ही चिन्तन करेगी, पतिके वियोगमें व्रतपरायण, वैराग्यकी मूर्तिमान् प्रतिमा और तपस्यामें रत होकर रहेगी, तभी यथार्थ प्रेमदेवता परितुष्ट होंगे। वह आपके आकर्षणमें रहे और आप इसको सहन ही नहीं करें, प्रत्युत प्रोत्साहन देते रहें, इससे तो यही सिद्ध होता है कि आपके मनमें यथार्थ प्रेमदेवताके स्थानपर चुपकेसे कोई काम-पिशाच आ बैठा है! सच्चा प्रेमी—किसी पतिपरायणा स्त्रीका उसके अपने पतिके अतिरिक्त अन्य पुरुषके प्रति होनेवाला आकर्षण सहन ही कैसे कर सकता है? यह तो उसका पतन है और उस पतनको आप प्रेमी बनकर भी देख रहे हैं और उसे विशुद्ध प्रेम मान रहे हैं! पवित्र प्रेमका जीवन है त्याग। आप जिससे प्रेम करते हैं, उसके लिये आपको त्याग करना होगा। आसक्तिको विशुद्ध प्रेममें कहाँ स्थान है। आपके द्वारा आसक्तिका व्यवहार न पाकर वह बहिन यदि निराश होकर भगवान्‌के भजनमें लग जाती है तो यह उसके लिये परम कल्याणकी बात है। आप उसके साथ पवित्र प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीजिये उसे परम शान्तिमय पवित्र भगवद्धाममें पहुँचानेके लिये—जगत्‌के पदार्थोंसे प्राप्त होनेवाले क्षुद्र क्षणिक दुःखमूल शारीरिक और मानसिक सुखके लिये नहीं। इसके लिये यदि आपको उससे सर्वथा अलग होना पड़े तो वह भी आपके सच्चे प्रेमका एक अङ्ग होगा। छिपी वासना बड़े सुन्दर-सुन्दर स्वाँग लाया करती है, उससे सदैव सावधान रहना चाहिये।

जगत्‌के लोग जो बदनामी करते हैं, उसमें भी कुछ सत्यता है, वे आपके मनको ही नहीं, बाहरी व्यवहारको भी पवित्र और परम आदर्श देखना चाहते हैं। आप जब उस बहिनसे शारीरिक आसक्तिके व्यवहारसे अलग हो जायँगे तो यह बदनामी अपने-आप दूर हो जायगी और तब आपका विशुद्ध प्रेम यथार्थ विशुद्ध हो जायगा,जो आपके और उसके दोनोंके लिये कल्याणकारी होगा।

चन्दन

[लघु कथा]

चन्दनका वृक्ष काँप गया। उसकी डालियोंमें लिपटे हुए काले भुजंग अपने प्राणोंके भयसे वृक्ष छोड़ झाड़ियोंकी ओर भागे। तीक्ष्ण धारवाली कुल्हाड़ीके प्रथम प्रहारका ही यह परिणाम था।

'आह!' धीरेसे चन्दनके मुखसे निकल गया, 'भगवान्‌के राज्यमें अनीति और अन्याय उत्तम नहीं।'

कुल्हाड़ी प्रहार-पर-प्रहार करती जा रही थी। करुणा और प्रेम नामकी कोई वस्तु नहीं थी उसमें। कोमल मलयजकी सरस कायामें वह धँसती, निकलती और पुनः सवेग आघात करती। धार्मिक मलयजके न्याययुक्त वचनकी ओर उसने ध्यानतक नहीं दिया।

'आह!' अबकी बार चन्दन चीख उठा। उसकी कायाका एक प्रिय अङ्ग कटकर उससे दूर पृथ्वीपर गिर पड़ा था। फिर भी उसने विनीतस्वरमें कहा—'मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है बहिन?'

'बहिन!' वाणीमें इतनी आत्मीयता और मधुरता होती है, कुल्हाड़ीने कभी कल्पना भी नहीं की थी। वह रुक गयी 'विषधर भुजंग तुम्हारी कायामें लिपटे रहते हैं', उसके मुँहसे निकल गया, पर उसकी आत्मा स्वीकार कर रही थी कि वह सत्य नहीं बोल रही है। अपने दोषोंको अविलम्ब स्वीकार कर लेना सामान्य बात नहीं।

'परंतु इन कराल व्यालोंके विषका मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता बहिन!' श्रीखण्डने उत्तरमें सनम्र कहा—'मेरे अंकमें लिपटकर उन्हें सुख मिलता है, शान्ति प्राप्त होती है, वे शीतलताका अनुभव करते हैं। मैं उनकी सेवाका निमित्त बन जाता हूँ, इस कारण मन-ही-मन मुदित भी होता हूँ।'

'इस गिरिपर तुम्हारी शोभा नहीं।' कुल्हाड़ीने सयुक्ति कहा, 'तुम्हें देवताओंके मस्तकपर रखनेका उपक्रम कर रही हूँ मैं। तुम जगत्‌में समादरित हो सकोगे। यहाँ तो देखो न, भीलनियाँ तुम्हें आगमें झोंककर अपनी रोटी बनाया करती हैं।'

'क्षमा करना बहिन!' गन्धसारने मस्तक झुकाये विनम्रतासे कहा—'देवताके सिरपर चढ़ने और जगत्‌के द्वारा सम्मानित होनेकी मुझमें किंचित् कामना नहीं। यह मेरा स्वदेश है और यहाँसे अपने बन्धुओंके साथ मैं पवनको शीतल और सुगन्धित बनाकर जगत्‌को सुख, स्वास्थ्य प्रदान करता रहता हूँ। विषधरतक मुझसे लाभ उठाते हैं और ये भोली भीलनियाँ तो मेरी जीर्ण-शीर्ण शुष्क काया अग्निदेवको समर्पित करती हैं, किंतु तुम्हारा कठोर प्रहार और मेरे जीवित कटते-गिरते ये अंक......।' श्रीखण्ड आगे नहीं बोल सका।

'समादरणीय बन्धु माङ्गल्य! परोपकार-रत आत्माका आदर्श अनुपम होता है। संतका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। कुल्हाड़ी अधिक दुराव नहीं कर सकी। बड़ी दीनतासे वह बोली, 'मैं पापिनी हूँ। मैं अपने दोषोंको शब्दोंके वाक्‌जालमें आच्छन्न करना चाहती थी, पर तुम्हारे संगसे मुझमें सत्य बोलनेका साहस उदित हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

.......मैं अधम हूँ। अभी कुछ ही घंटे पूर्व मेरा मुँह अग्निमें जलाकर हथौड़ेसे पीटा गया है, मुझे असह्य यातना मिली है, फिर भी मैं परपीड़नमें रत होनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पा रही हूँ।' कुल्हाड़ीने अनुभव किया—उसका मुँह श्रीखण्डके स्पर्शसे शीतल और सुगन्धित हो गया है।

'तुम विवश हो बहिन!' अपने दुःखोंकी चिन्ता किये बिना कुल्हाड़ीके परितोषार्थ गन्धसारने कहा—'जीवमात्र कर्मपाशमें आबद्ध है। तुम्हें जीवन ही ऐसा मिला है, जिससे अङ्गच्छेदनके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। यह कृष्णकाय पुरुष विवश करता है तुम्हें इस कार्यके लिये।' 'मेरी जीविकाका प्रश्न है।' पुरुषने दोनोंकी बातें सुन ली थीं। उसने तुरंत उत्तर दिया—'जीवन-निर्वाहके लिये मेरे पास अन्य कोई साधन नहीं।'

वाक्य पूरा होते-होते पुरुषने कुल्हाड़ी पूरी शक्तिसे चला दी। 'झन्न'! कुल्हाड़ी चन्दनकी डालमें नहीं लग सकी, दूर जा गिरी। तनिक-सा बच गया, नहीं तो पुरुषका पाँव कट गया होता।

'अब तुम परोपकार-रत संत महार्हकी काया मुझसे नहीं काट सकते।' कुल्हाड़ीने सरोष उत्तर दिया 'यह भगवान्‌का अपराध होगा।'

'आप चिन्ता न करें।' रौहिणपर जैसे रोषका कोई प्रभाव ही नहीं था। उसने प्रेमपूर्वक कहा—'जीवन-निर्वाहके लिये आप मेरी काया भले ही काट लें, पर मैं आपका कोई उपकार नहीं कर सकूँगा, किंतु दबी जबानसे इतना निवेदन कर सकता हूँ कि जीवित वृक्षोंपर आघात करनेसे वृक्षोंको पीड़ा होती है। जगत्‌का यह विषाक्त स्वरूप देखकर उन्हें मन-ही-मन घृणा होती है। आप चाहें तो उन्हें यह कष्ट दिये बिना भी अपनी जीविका चला सकते हैं। उनकी सद्भावना भी आपके साथ रहेगी।'

'यह किस प्रकार सम्भव है?' पुरुषके मुँहसे निकल गया। वह सोच रहा था।

'भगवान्‌ने आपको बुद्धि दी है' चन्दनने उत्तर दिया। 'प्राणियोंमें पुरुष सर्वश्रेष्ठ इसी कारण कहा जाता है कि वह विवेकशील होता है। आप जीविकाके लिये और बहुत कुछ कर सकते हैं, किंतु यदि चन्दन-विक्रय ही आपको सुगम प्रतीत होता हो तो प्रतिवर्षके आँधी-तूफान ही आपको दो-चार हरित वृक्ष प्रदान कर सकते हैं। एक-एक वृक्षसे आपका परिवार वर्षभर अपना सात्त्विक जीवन व्यतीत कर सकता है, किंतु सम्पत्ति जोड़नेकी कामना तो वृक्ष-जातिका अङ्गच्छेद ही नहीं और भी अनेक अवाञ्छित क्रिया करनेसे भी नहीं पूरी हो सकेगी।'

'तुम सचमुच संत हो चन्दन!' पुरुषने सहर्ष कहा। 'इसी कारण तुम भगवान्‌के मस्तकपर स्थान पाते हो। अब मैं कभी किसी भी हरित वृक्षपर हाथ नहीं उठाऊँगा।'

'हमारी शुभकामना सदा आपके साथ रहेगी' चन्दनने समोद कहा। उसकी डालियाँ हर्षातिरेकसे झूम उठीं।

पुरुषका मन शान्त था। वह सुखका अनुभव करते हुए घर लौट रहा था और कुल्हाड़ी उसके कन्धेपर मौन थी!

उपयोगी बातें

१-सदैव प्रसन्न रहना ईश्वरकी सर्वोपरि भक्ति है।

२-ईश्वरके सिवाय कहीं भी मन लगाया तो अन्तमें रोना पड़ेगा।

३-परमात्मासे मिलनेकी प्रबल इच्छा हृदयमें होनी चाहिये। पवित्र हृदयकी आवाज वहाँ तुरंत पहुँच जाती है।

४-जो समझ सत्यको जीवनमें उतारे वही समझ सच्ची समझ है और सब नासमझी है।

५-निर्भयता ही जीवन है, भय ही मृत्यु है।

६-जिस कर्मके करनेसे अपनी मुक्तिका अनुभव हो वह सब पुण्य है और जिस कर्मसे बन्धनका अनुभव हो तथा जिस कर्मके करनेमें आत्मग्लानि हो वह कर्म पाप है।

७-सदा शान्त रहो, निर्विकार रहो। समत्वमें स्थिर होनेकी चेष्टा करो।

८-संत, महात्मा और सद्‌गुरुदेवके सत्संगका एक अवसर भी न चूको।

९-संत-कृपा अणु-शक्तिसे भी महान् शक्तिमान् है।

(संत श्रीआसारामजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

जिसके भीतर कोई भी इच्छा नहीं होती, उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति प्रकृति स्वतः करती है।

× × ×

वस्तु-व्यक्तिसे सुख लेना महान् जड़ता है।

× × ×

त्याग करनेसे अपनी उन्नति होती है तथा वस्तु शुद्ध हो जाती है; और भोग करनेसे अपना पतन होता है तथा वस्तुका नाश हो जाता है।

× × ×

जिसके भीतर इच्छा है, उसको किसी-न-किसीके पराधीन होना ही पड़ेगा।

× × ×

भगवान् जीवको अपना दास (गुलाम) नहीं बनाना चाहते, प्रत्युत सखा (अपने समान) बनाना चाहते हैं।

× × ×

शरीर नजदीक दीखता है और परमात्मा दूर दीखते हैं—यही अज्ञान है। कारण कि शरीर नित्य अप्राप्त है और परमात्मा नित्य प्राप्त हैं।

× × ×

शरीरके साथ हमारा एक क्षण भी संयोग नहीं होता और परमात्माके साथ हमारा एक क्षण भी वियोग नहीं होता।

× × ×

जो गीता अर्जुनको भी दुबारा सुननेको नहीं मिली, वह हमें प्रतिदिन सुनने-पढ़नेको मिल रही है—यह भगवान्‌की कितनी विलक्षण कृपा है!

× × ×

मैं शरीर नहीं हूँ, प्रत्युत शरीरी हूँ—ऐसा ठीक समझमें आ जाय तो सभी साधन सुगम हो जायँगे।

× × ×

शरीरको संसारसे अलग मानना और स्वयंको परमात्मासे अलग मानना गलती है।

× × ×

तत्त्वज्ञान अभ्याससे नहीं होता, प्रत्युत विवेकको महत्त्व देनेसे होता है। अभ्याससे एक अवस्था बनती है, तत्त्व नहीं मिलता।

× × ×

समुद्रमेंसे कोई राई नहीं निकाल सकता। परंतु संतोंने संसारभरके ग्रन्थोंमेंसे 'गीता' निकालकर हमें दे दी, यह उनकी कितनी विलक्षण कृपा है!

× × ×

भेद मतमें होता है, प्रेममें नहीं। प्रेम सम्पूर्ण मतवादोंको खा जाता है।

× × ×

जबतक मनको संसारसे हटाकर परमात्मामें लगानेकी वृत्ति रहेगी, तबतक मनका सर्वथा निरोध नहीं हो सकेगा। मनका सर्वथा निरोध तब होगा, जब एक परमात्माके सिवाय अन्य सत्ताकी मान्यता नहीं रहेगी।

× × ×

हमारा स्वभाव तब सुधरेगा, जब हम अपने प्रति न्याय करेंगे अर्थात् अपनेपर शासन करेंगे और दूसरेको क्षमा करेंगे।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापका परिणाम

पशु-योनि

वैसे ही पशुयोनि प्राप्त हुई—रजोगुण-तमोगुण-प्रधान पशुयोनि। क्षुधासे व्याकुल, आहारके लिये सतत चिन्तित, प्राण-रक्षाके लिये सदा सशंक पशु-पक्षी और यह भी तब जब जंगलका स्वतन्त्र जीवन प्राप्त हो जाय। कितनोंको यह सौभाग्य मिलता था?

पालित पशु—सम्पूर्ण पराधीन जीवन और आपने देखा है सर्वाङ्गगलित श्वानका शरीर? क्षीण देह, जर्जर, हाँफते, निकले-से पड़ते नेत्र और भारी भारसे लदी बैल या भैंसागाड़ीमें जुते बैल या भैंसे, दुपहरकी भीषण धूप, कहीं छाया-पानी नहीं, विश्राम नहीं, ऊपरसे पड़ती सड़ासड़ लाठियाँ—*'भजन बिनु बैल बिराने ह्वैहो।'*

भारसे लदा दुर्बल टट्टू, खच्चर या गधा—चला जाता नहीं, पीठपर घावसे रक्त आता है, मुखसे फेन गिरता है और चलना है—डंडे पड़ते हैं ऊपरसे।

मनुष्य! यह तू है। तेरी यह दुर्गति है। तेरे पाप-कर्मोंने तुझे यहाँ पशुयोनिमें पटककर यह दुःख दिया है! यदि तू सँभलता नहीं—कल तू होगा इसी स्थानपर।

नरक-यन्त्रणा

शरीर टुकड़े-टुकड़े काटा जाता है, अग्निमें या खौलते कड़ाहेमें भूना जाता है, किंतु न मूर्च्छा और न मृत्यु। देहके कटनेकी, भस्म होनेकी वेदना होती है—होती रहती है सहस्र-सहस्र वर्ष, किंतु नरकका देह तो 'यातनादेह' है—वह कटकर भी कटता नहीं। जलकर भी जलता नहीं। वह तो वेदनाके असीम भोगके लिये ही है।

पृथ्वीपर किसी देहमें एक सीमातक कष्ट मिलनेपर मृत्यु हो जाती है, किंतु पाप दारुण हों—दीर्घ-कालतक दण्डकी वेदना भोगनेके लिये ही तो यमलोक—नरककी स्थिति है।

हिंस्र पशु नोचते हैं, पर्वतसे गिराया जाता है—सर्वाङ्ग कपड़ेके समान सिया जाता है—सहस्र-सहस्र वर्ष यातनाका यह क्रम अविश्राम चलता है। क्रन्दन-चीत्कार-दारुण वेदना—नरकमें और क्या होगा! पापमें प्रवृत्त मानव! क्या कर रहा है तू? अपनेको नरकसे बचाना है तो पापके पथसे दूर रहना है तुझे।

रोग

इस लोकमें ही क्या कम दुःख हैं। ये रोग—ओषधियोंके अपार आविष्कार भी इन्हें रोक लेंगे? मनुष्यके पापका परिणाम दुःख। पापका पथ मनुष्य जबतक न छोड़ दे, उसके बीज उत्पन्न तो होंगे ही।

यह हैजा और प्लेग, यह क्षय और कुष्ठ, महामारियोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। बेरी-बेरी, मस्तिष्क-शोथ, गर्दनतोड़ ज्वर, पीला बुखार, कैंसर—नये-नये रोग उत्पन्न होते जा रहे हैं। मनुष्य जब पापके नये-नये ढंग पकड़ता जा रहा है—पापकी वृद्धि होगी तो रोगकी वृद्धिको कौन रोक लेगा?

ज्वर, खुजली, बवासीर, दमा, हनुस्तम्भ, धनुष्टंकार, नहरुआ और फोड़े—परम्परागत रोगोंकी संख्या ही कहाँ कम है। कौन-सा अङ्ग है जो रुग्ण न होता हो और रोग कोई हो पीड़ा तो वह देता ही है। मनुष्यके पापकर्मोंके फल हैं ये रोग। सुख चाहिये तो सत्कर्ममें लगना ही एकमात्र मार्ग है।

दारिद्र्य

सब रोगोंका महारोग निर्धनता। प्राणप्रिय शिशु मरणासन्न है और ओषधिको दाम नहीं। घरमें कई-कई दिनका उपवास, किंतु भोजन कहाँसे आये—काम नहीं मिलता कहीं।

शरीरपर वस्त्र नहीं, पेटमें अन्न नहीं, रहनेको—सिर छिपानेको फूसकी भी छाया नहीं—दरिद्रताका अभिशाप। ***'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं'*** और यह बार-बार अकाल—अतिवृष्टि-अनावृष्टि, बाढ़ तथा टिड्डियाँ—पशुओं तथा पौधोंके रोग—दरिद्रता बढ़ती जा रही है, बेकारी बढ़ रही है। सरकारके सब प्रयत्नोंके होते बढ़ रही है यह विपत्ति!

पाप बढ़ रहा है। असंतोष बढ़ रहा है। असंयम बढ़ रहा है। तब सुख, शान्ति, समृद्धि तो बढ़ नहीं सकती। पापकी वृद्धिके साथ तो दुःख, रोग, दरिद्रता ही बढ़ेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बेईमानी ५ पैसेकी दण्ड १७ पैसेका

आजसे लगभग १७-१८ वर्ष-पूर्वकी बात है। बीसलपुरसे पीलीभीतका बसका किराया २ रुपये पचपन पैसे लगता था। उन दिनों निजी गाड़ियाँ चलती थीं। बीसलपुरसे पीलीभीत आनेके लिये मैं एक बसमें बैठ गया और मुंशीजीको तीन रुपये दे दिये। उसने बाकी पैसे नहीं लौटाये। कई बार याद दिलानेपर वह हाथ दिखा देता था, जिसका अर्थ था कि आगे मिलेंगे, जिसे मैं समझ न सका। मुझे बुरा लगा। इसी क्रोधमें मैंने तय किया कि अब इससे पैसे वापस नहीं माँगने हैं, देखें कब देता है और फिर मैं शान्त हो गया।

बस पीलीभीत शहरके अंदर आ गयी, तब भी उसने बाकी पैसे नहीं दिये। वह स्थान भी आ गया, जहाँ मुझे उतरना था। बसके खड़ा होते ही मैं उतरा और सोचने लगा कि पैसे माँगूँ या न माँगूँ! मुंशीजीसे तो न माँगनेका तय हो ही चुका था, अत: मैंने सोचा कि ड्राइवरसे कहा जाय।

मैं ड्राइवरके पास गया और तेजीसे उससे कहा—'बाकी पैसे मिलेंगे कि नहीं?' उसने बड़ी शान्तिसे पूछा—आपने क्या दिया है? मैंने बताया कि तीन रुपये दिये हैं। उसने तुरंत ही मुंशीको आवाज दी कि इन्हें एक अठन्नी दे दो और मुझे एक अठन्नी मिल गयी। मुझे मालूम था कि केवल ४५ पैसे ही वापस मिलने थे। पर ५ पैसे अधिक आ गये। मेरी जेबमें ५ पैसेके सिक्के भी थे, पर मैंने ५ पैसे लौटाये नहीं। इसी बीच बस चल दी, मैं भी चल पड़ा। इस तरह ५ पैसेकी बेईमानी हो गयी या कर ली गयी।

लगभग एक घंटेके बाद मुझे कुछ भूख-सी मालूम हुई, सामने केलावाला दीख गया। केला खानेकी इच्छा हुई, भाव पूछनेपर उसने बताया कि एक रुपयेके ६ केले मिलेंगे। मेरे पास अठन्नी तो थी ही, मैंने अठन्नीके तीन केले खरीद लिये। यह वही अठन्नी थी, जिसमें ५ पैसेकी बेईमानी चिपकी हुई थी। केला हाथमें लेकर जब मैं उसे तोड़ने लगा तो तोड़ते समय वह हाथसे फिसलकर गंदे पानीमें गिर गया, जो उठाया नहीं जा सकता था। तुरंत मेरे मस्तिष्कमें यह बात कौंधी कि देखो! तुमने बेईमानी की है, इसीलिये तुम्हारा केला गिर गया। फिर मुझे लगा कि केवल ५ पैसेकी बेईमानीपर जब मुझे तिगुना दण्ड (१७ पैसे) देना पड़ा तो जो लोग दिन-रात बेईमानीमें लगे हुए हैं, उनकी क्या गति होती होगी? यह सोच-सोचकर और भगवान्के मङ्गलमय दण्ड-विधानको समझकर, इसमें मैं भगवान्की कृपा समझने लगा कि किस प्रकार दयालु भगवान् दण्ड देकर जीवका सुधार कर देते हैं। उसमें उनकी कोई अकरुणा नहीं रहती, बल्कि वे तो उसके कल्याणके लिये ही ऐसा करते हैं। ताकि जैसे भी हो मनुष्य असत्-मार्गको छोड़कर सत्-मार्गपर लग जाय। उसी दिनसे मैंने भी अच्छा बनने और बेईमानी न करनेका मन बना लिया।

—दिवाकर बाजपेयी

(२)

गोसेवाने जीवन-दान दिया

बात जनवरी १९४० की है, तब मेरी आयु लगभग ५-६ वर्षकी रही होगी। पिताजी उत्तरप्रदेशमें पुलिस-विभागसे सेवानिवृत्त हो गये थे। अंग्रेजी शासन था। पूरी बातें तो याद नहीं हैं, किंतु माताजी बताया करती थीं कि पिताजी सेवानिवृत्तिसे पहिले कई वर्षोंसे बीमार थे। डॉक्टरोंने सारे दाँत उखाड़ दिये थे, दाँतोंकी वजहसे पेट खराब रहता था। पेटका ही रोग था या अन्य कुछ, पता नहीं चल पाया था। कभी डॉक्टर कहते कि अँतड़ियोंमें तपेदिक हो गयी है, कभी कुछ रोग बताते, कभी कुछ। सेवानिवृत्तिसे पहिले पिताजी पर्याप्त समयतक मुरादाबादमें सरकारी अस्पतालमें रहे और कई डॉक्टरोंकी बोर्डने मिलकर यह घोषित कर दिया कि 'ये अब सरकारी नौकरी करनेके योग्य नहीं रह गये हैं।' उस निर्णयके आधारपर पिताजी अपने ग्राम बुलंदशहर आ गये।

मुझे इतना स्मरण है कि जिस समय पिताजी घर आये थे, उनकी दशा बहुत ही खराब थी, बिलकुल अस्थिपंजर रह गये थे। जमीनपर पड़े रहते थे। माताजी बताती थीं कि मुरादाबादके डॉक्टरोंने जवाब दे दिया था कि अब ये कुछ समय ही रह सकेंगे।

पिताजीकी ऐसी दशा देखकर गाँवके लोग आते और यह कहते कि मुँहमें गङ्गाजल डालते रहो। सभी चिन्तित थे। अचानक एक घटना घटी। हमारे पूर्वजोंमें पुरोहितीका कार्य होता चला आया था। दूर गाँवके कोई यजमान एक गऊ लेकर आये और पिताजीसे कहने लगे—'पण्डितजी! यह गऊ मैंने गुरुजी (मेरे बाबाजी) को दानके निमित्त संकल्पित की थी।' गोदानके संकल्पसे मेरा कार्य हो गया, अत: मैं यह गऊ बछड़ेसहित आपके यहाँ पहुँचाने आया हूँ।' मेरे बाबाजी, जब मैं एक वर्षका था, स्वर्गवासी हो चुके थे। वे यजमान गऊको पहुँचाकर अपने घर चले गये। उधर माताजीने उस नयी ब्यायी गऊके पैरोंपर जल डालकर पारम्परिक रीतिसे उसकी पूजा की तथा उसके बाँधने, चारा आदिका प्रबन्ध किया, दूध निकाला, थोड़ा दूध चम्मचसे पिताजीको भी पिलाया। यह क्रम दो-चार दिन चलता रहा। फिर तो पिताजीको, जिन्हें न रातको नींद आती थी न दिनको, रात-दिन तड़पते रहते थे, दूधके प्रभावसे थोड़ी-थोड़ी नींद आने लगी।

यह देखकर मुझे तो कुछ समझमें नहीं आया, किंतु माताजी तथा अन्य लोग इसे गोदुग्धका चमत्कार ही बतलाते थे। फिर तो रात-दिन पिताजी गऊका दूध, कुछ छाछ, दही आदि माँग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँगकर पिया करते। शनैः-शनैः वे वैसे ही ठीक होते चले गये, जैसे किसी सूखी मृतप्राय बेलको पानीसे सींच दिया गया हो और उसमें जीवन आ गया हो। मुझे याद है, पिताजी स्वस्थ-से होते चले गये। उठने-बैठने, चलने-फिरने लगे। गऊके लिये खेतोंसे घास काटकर, चारा काटकर लाते, मुझे भी साथ ले जाते। वे घास काटते और मैं उसे इकट्ठी करता जाता। उस समय लगभग ६-७ सालका रहा हूँगा। पिताजी ही अपने सिरपर गठरी लाते। फिर उन्होंने पासके एक गाँवमें स्कूल खोल दिया और फिर तो गायकी सेवा करना और बच्चोंको शिक्षित करना, यही उनके जीवनका ध्येय बन गया। उसी गोसेवाके फलस्वरूप वे बीमारीसे ठीक होकर पूरे चौबीस वर्ष १९६४ अक्टूबरतक जीवित रहे और उसी गऊ माताके आशीर्वादसे आज हमारा परिवार सब प्रकासे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ रहा है।

—शिवकुमार शर्मा

(३)

श्रीकामतानाथकी कृपा

मैं ग्राम भमरहा, सतनाका निवासी हूँ। आजसे ९ वर्ष-पूर्व मेरी लड़कीको प्रथम पुत्र हुआ, किंतु भगवान्की लीला थी कि जन्मसे ही उस बच्चेके दोनों पैर टेढ़े थे। यह देखकर सभीको बड़ा दुःख हुआ। उसके पैदा होते ही उसे रीवाँके चिकित्सालयमें ले जाया गया। वहाँ उपचारस्वरूप उस नन्हे बच्चेके ६ प्लास्टर बँधवाये गये। और जूता खरीदा गया। काफी उपचार हुआ, किंतु पैर किसी प्रकार सीधे नहीं हुए, सब लोग बड़े चिन्तित हो गये। कोई कहता बंबई ले चलो, और कोई लखनऊ ले जानेकी सलाह देता, किंतु मेरे मनमें तो कुछ और ही बात थी! मैंने उन्हें कुछ उत्तर नहीं दिया, बल्कि मनमें यह निश्चय ले लिया कि कहीं नहीं जाना है, बस श्रीकामतानाथकी शरणमें इसे ले जाऊँगा। इसे अब वे ही ठीक करेंगे। ऐसे ही कुछ समय बीत गया। लड़का कुछ बड़ा हो गया, पर वह ठीकसे चल नहीं पाता था। तब मैंने अपना निश्चय सुना डाला। फिर क्या था। हमलोग उसे लेकर चित्रकूट चले गये और वहाँ पहुँचकर बड़ी श्रद्धासे बच्चेके साथ रोज श्रीकामतानाथकी प्रदक्षिणा करने लगे और उन्हींसे बच्चेका दुःख दूर करनेकी प्रार्थना करने लगे।

एक दिन पूरे परिवारके साथ स्फटिक शिला गये। वहाँसे वापस जानकीकुण्ड लौटे। वहाँ एक महात्माजीके दर्शन किये और अपनी विपत्ति उन्हें भी बतलायी। उन्होंने भी बच्चेको ठीक होनेका आशीर्वाद दिया और प्रसादमें एक अनार दिया, फिर वहाँसे हमलोग गङ्गाजीके किनारे-किनारे चलते हुए प्रमोदवनकी तरफ चल पड़े। सभी लोगोंके बीचमें लड़का था, उसी समय एक बंदर न जाने कहाँसे दौड़कर आया और वह लड़केके पाँवोंसे लिपट पड़ा। लड़का डरके मारे चीखने लगा। घुटनेमें बंदरने खरोंच भी लगा दी। यह घटना क्षणमात्रमें हो गयी, फिर बंदर स्वयं ही भाग गया। हमने इसे साधारण-सी बात समझकर लड़केको फुसलाकर मना लिया और विशेष ध्यान नहीं दिया। पर दूसरे दिन देखा तो लड़केका पैर कुछ सीधा-सा हो गया था। धीरे-धीरे चार-छः दिनमें काफी सीधा हो गया। अब हमलोगोंका ध्यान उस बंदरकी ओर गया कि श्रीकामतानाथजीने स्वयं बंदरके रूपमें उपस्थित होकर बच्चेका अनोखा उपचार कर उसे ठीक कर दिया। हमलोग तो इसे सोच-सोचकर मुग्ध-जैसे हो गये, धन्य है प्रभो! आपकी लीला! आपने हमारे विश्वासकी रक्षा की। श्रीकामतानाथकी कृपासे आज बच्चा बिलकुल ठीक है। इस समय कोई भी नहीं कह सकता कि इसका पैर कभी टेढ़ा था। दौड़नेमें भी गाँवके लड़कोंसे वह तेज दौड़ता है और स्कूल भी जाता है। पढ़नेमें भी ठीक है। हमपर कामतानाथने बड़ी कृपा की। —आनन्दबहादुर सिंह बघेल

(४)

आराधनाका प्रत्यक्ष फल

घटना मार्च १९९५ की है। मैं अपने चाचाजीके साथ स्कूटरपर बैठकर हरदोई जा रहा था। मैं स्कूटर चला रहा था और चाचाजी पीछे बैठे थे। मेरा स्कूटर ५० किलोमीटरकी रफ्तारसे भाग रहा था। अपने आगे चल रहे ट्रैक्टरको पास करनेके लिये मैंने अपना स्कूटर ज्यों ही बढ़ाया, त्यों ही सामनेसे आ रही एक बस मेरे आगे चलनेवाले ट्रैक्टरसे पास लेकर ठीक मेरे सामने आ गयी। बसकी रफ्तार भी बहुत तेज थी। मैंने बीस मीटरकी दूरीपर ही तीन बार ब्रेक मारनेकी कोशिश की, पर ब्रेक लग नहीं पा रहा था।

जब मैंने देखा कि ब्रेक ठीक कार्य नहीं कर रहा है तो पहले तो मैं विचलित हुआ, फिर पीछे बैठे चाचाजीसे मैंने कहा कि 'चाचाजी! मैं तो अब बच नहीं पाऊँगा, आप कूद जायँ।' क्योंकि मैं पश्चिम दिशाको जा रहा था और मेरे बायें हाथकी ओर ट्रैक्टर चल रहा था तथा सामने सीधमें तेज रफ्तारसे बस साक्षात् यमदूतकी तरह आ रही थी। मेरे दाहिने हाथकी तरफ पेड़ था और खाई थी। अब मुझे अपने सामने साक्षात् मौत खड़ी नजर आ रही थी। तभी मेरे अन्तर्मनने परमपिता परमेश्वरका ध्यान करते हुए कहा कि 'हे ईश्वर! लगता है अब मेरा अन्त-समय आ गया है।' अब प्राण बचनेकी कोई आशा न थी। जिधर भी गाड़ी मोड़ता, उधर ही मौत थी। तभी मेरी आत्मासे फिर एक आवाज आयी कि 'तुम पुनः एक बार क्लच दाबकर तेजीसे ब्रेक लगाओ।' मैंने ईश्वरका स्मरण करते हुए वैसा ही किया। फिर क्या था, एक ऐसा चमत्कार हुआ कि जिसे याद करके आज भी मैं प्रभु-चरणोंमें सिर नवाकर देरतक रोता हूँ।

हुआ यह कि मेरे ब्रेक लगाते ही जो गाड़ी पश्चिमकी ओरसे आ रही थी, उसका पिछला हिस्सा इस प्रकार उठकर उत्तर दिशाकी ओर चला गया, मानो स्वयं हनुमान्जीने आकर उठा लिया हो। तभी तेज रफ्तारसे आ रही बस ठीक उसी जगह आकर खड़ी हो गयी, जिस जगह स्कूटरका पिछला हिस्सा जा चुका था। इस प्रकार हम लोग बसरूपी यमदूतकी चपेटसे दूर जा गिरे। हमलोगोंको चोट तो थोड़ी आयी जरूर, किंतु भगवान्ने हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण बचा दिये। उस घटनाका दृश्य देखकर हमें स्वयं आश्चर्य हो उठा कि आखिर हम बच कैसे गये! अन्तर्मनसे यही उत्तर मिला कि 'पिछले दिनों तुमने जो 'महामृत्युंजय'का जप करवाया था और सुन्दरकाण्डका पाठ किया था, उसी आराधनासे तुम्हारी आज रक्षा हुई।' मुझे भी यह बात ठीक लगी और उस घटनासे मैं इतना प्रभावित हुआ कि उस दिनसे मेरी प्रभु-चरणोंमें अगाध श्रद्धा हो गयी एवं मन्त्रोंमें तथा रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें मेरा प्रेम बढ़ गया।

—राममनोहर वैश्य

(५)

अपना सारा बल छोड़ दो

बात काफी पुरानी है, तब मैं गाँवकी एक शालामें अध्यापक था। एम्० ए० किये हुए तो अर्सा गुजर गया था, किंतु धनके अभावमें बी० एड्० नहीं कर पा रहा था। आखिर, एक सहृदय बन्धुने आंशिक सहयोग किया और मैंने एक प्रशिक्षण-महाविद्यालयमें प्रवेश ले लिया। फीस जमा कर दी गयी और घर-गृहस्थीका खर्च भी जैसे-तैसे चलने लगा। प्रशिक्षणके लिये बिना वेतनके अवकाश मेरा स्वीकृत हो गया था। जुलाईसे दिसम्बरतकका समय मित्रकी सहायतासे किसी तरह निकल गया, लेकिन मुसीबत तब आयी, जब जनवरीमें तीन सौ बीस रुपये फीसके जमा करनेका आदेश हुआ। तबतक सहृदय मित्र भी काफी सहायता कर चुके थे, अतः आगेकी सहायताके लिये उन्होंने असमर्थता जतायी। मैंने अन्य मित्रोंसे याचना की, किंतु कोई भी सहायतार्थ आगे नहीं आया। रुपये जमा न होनेका अर्थ था कि यदि २० जनवरीतक फीस जमा नहीं हो पायी तो नाम काट दिया जायगा और मुझे बगैर प्रशिक्षणके अपनी शालामें लौट आना पड़ेगा। १९ जनवरीतक अनेक मित्रोंसे कहा, किंतु निष्फल रहा।

२० जनवरीको मैं अन्यान्य दिनोंकी भाँति प्रातःकाल टहलने निकला। शहरसे तीन किलोमीटर दूर एक पुलपर बैठा मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि आज कॉलेजसे नाम काट दिया जायगा और मुझे पुनः अपनी पूर्व-शालामें लौटना होगा। अब मैं क्या करूँ, किससे पैसा माँगूँ, मैंने सबसे माँगकर देख लिया है, कहीं कुछ न मिला। मेरा कोई भी हितैषी नहीं है। मैं ऐसा सोच ही रहा था कि मुझे यह निश्चय-सा हुआ कि अगर भगवान्से माँगूँ तो वे मुझे अवश्य दे देंगे। फिर कुछ उत्साह-सा जगा, आशा भी होने लगी। फिर क्या था—मेरे मुँहसे कातर प्रार्थना '*श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव*' निकलने लगी। मैंने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! हे नाथ, हे मेरे गोविन्द! मेरी दशा आप देख ही रहे हैं, आपने सदा मेरी सहायता की है, अब अन्त-समयमें आपने क्यों हाथ पीछे खींच लिये, यह तो किनारे आकर डूबना हुआ। यदि ऐसा ही होना था तो आपने सहृदय मित्रको प्रेरणा ही क्यों दी। अब तो जमा करायी गयी फीस भी वापस नहीं मिलनी है।' मुझे भगवान्पर कुछ रोष भी हो आया। मैं चिल्ला पड़ा, लगता है यही आपकी मंशा थी? इसीलिये आप मेरी जगहँसाई करवा रहे हैं। ऐसा कहकर मैं कुछ क्षणोंके लिये मौन हो गया, फिर कातर-स्वरमें बोल पड़ा—'मेरे नाथ! आप तो दीनदयालु, कृपासागर, दयासागर और न जाने क्या-क्या हैं, हे नाथ! हे गोविन्द! यह कैसी आपकी माया है, आज आप मेरी लाज रखें।' इतना कहकर मैं पुनः '*दीन दयाल बिरिदु संभारी॰*' गाने लगा। पंद्रह-बीस मिनटतक मैं इस चौपाईको दोहराता रहा, अचानक गिर पड़ा। कुछ समय तो अचेत-सा हो गया, चेत होनेपर मेरी अँगुलियोंसे एक जंजीर छू गयी। मैंने सोचा, यह बच्चोंके खेलनेवाली कोई जंजीर होगी, अतः उस ओर ध्यान नहीं दिया, पर किसी प्रेरणावश मैंने उसे उठा लिया। उठा तो लिया, पर मनमें घबड़ाहट भी हो रही थी। तभी अन्तर्मनमें ऐसा निश्चय हुआ कि मेरे गोविन्दने ही मुझे यह प्राप्त करायी है। उस समय प्रकाशके अभावमें मैं कुछ समझ न पाया। आकाशमें कुछ तारे झिलमिला रहे थे। जंजीरसे पहले मेरा वास्ता भी कभी नहीं पड़ा था। कारण, मैं गरीब था और सोनेको मैं क्या पहचानता! फिर भी कौतूहलवश मैं उसे लेकर तेज-तेज चलता हुआ घर चला आया, और उसे अपने मित्रको दिखलाया, मित्रने उसकी जाँच करवायी और बतलाया कि जंजीर असली सोनेकी है और तीन तोलेकी है। मैं पागलकी तरह हँसने लगा। गरीबको सोना मिले तो पागल नहीं होगा तो और क्या होगा?

कॉलेज पहुँचकर मैं सीधा प्राचार्यके कमरेमें गया और उनसे एकान्तमें बात करनेकी इच्छा जाहिर की। उस समय उनके पास तीन-चार प्राध्यापक खड़े थे। प्राचार्य मुझसे पुत्रवत् स्नेह करते थे। एकान्तमें मैंने उन्हें सारी बात बताकर जंजीर अपने पास रखकर मेरी फीसकी व्यवस्था करनेको कहा। वे कुछ पलोंतक एकटक मेरी ओर देखते रहे। उन्होंने मुझे दो-चार दिन बाद पुनः उस बातको पूरी तरह बतानेको कहा। साथ ही उन्होंने कैशियरको बुलाकर अपनी ओरसे मेरी फीस जमा करनेका आदेश दे दिया। फीस जमा होनेसे मेरा नाम कटनेसे बच गया। पुनः दो दिन बाद पूरी बात सुनकर वे बोले—बेटे! यह जंजीर अपने पास ही रखो और यह लो घर-खर्चके लिये तीन सौ रुपये भी अपने पास रखो।

आज इस बातको बीते करीब ३० साल हो गये, किंतु आज भी इस घटनाको स्मरणकर मेरे नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छलक आते हैं। मुझे यह भी स्पष्ट विश्वास हो गया कि द्रौपदी और गजराज आदिकी तरह अपना सारा बल छोड़कर भगवान्की शरण ग्रहण कर लेनेपर वे सर्वशक्तिमान् भगवान् सब प्रकारसे सब समय अपने भक्तोंकी मदद अवश्य करते हैं। वे सब कुछ करनेमें सक्षम हैं। बस हृदयसे पुकारनेकी आवश्यकता है।

हे गोविन्द! आपकी जय हो।

प्रेषक—बालेन्दुशेखर जिंदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

जिसकी चीज, उसीको अर्पण

बात बहुत पुरानी है, बंबईमें अनाजके एक थोक व्यापारीके यहाँ उगाहीके कामपर नौकरी करनेवाले पोपटलालको डेढ़ सौ रुपये वेतन मिलता था। बाल-बच्चे देशमें बूढ़े माता-पिताके पास रहते। पोपटलाल बंबईमें एक बासेमें भोजन करता और रातको गद्दीमें सो रहता।

थोक अनाज और किरानेके व्यापारियोंके यहाँ बंबईमें नमूने साफ करके उन्हें बोरोंमें भरनेके लिये अधिकांशमें स्त्रियाँ रखी जाती हैं और उन्हें 'पालावाली' कहते हैं।

पोपटलालकी गद्दीमें पालावाली जानकीबाई पचास-पचपन वर्षकी एक विधवा स्त्री थी। कुटुम्बमें वह अकेली ही थी।

भारत सरकारके इनामी बांड पहले-पहले निकले तब पोपटलालकी गद्दीके सभी लोगोंने अपने बहुत थोड़े वेतनमेंसे कुछ बचाकर पाँच रुपयेका एक बांड खरीदने और नसीब आजमानेका निश्चय किया। पोपटलालने जानकीबाईसे पूछा—'तुझे भी एक बांड लेना है न?'

'बहुत थोड़ी तनख्वाहमेंसे पाँच रुपये कहाँसे निकालूँ।'

'कोई आपत्ति नहीं, अभी पाँच रुपये मैं दे देता हूँ, तुझे सुविधा हो तो मुझको लौटा देना।'

यों कहकर पोपटलाल पाँच रुपयेका एक बांड जानकीबाईके लिये खरीद लाया। जानकीबाईको देने लगा। जानकीबाईने कहा—'मैं कहाँ सँभालकर रखूँगी, तू ही अपने पास रख।'

पोपटलालने 'यह बांड मेरा और यह जानकीबाईका'—यों मन-ही-मन निर्णय करके दोनों बांड अपने पास रख लिये।

फिर तो यह बात भूल गयी। लगभग डेढ़ वर्ष बीत गया। जानकीबाईने वहाँ नौकरी छोड़कर दूसरी जगह कर ली और अन्तमें बीमार पड़कर वह अपने देश चली गयी। पोपटलालको अपने पासके दोनों बांडोंमें अबतक किसीपर इनाम नहीं मिला।

अन्तमें अभी-अभी इनामोंकी अन्तिम घोषणामें पोपटलालके पासके एक बांडपर ढाई हजार रुपयेका इनाम मिला। वह इनामके रुपये भी ले आया। इसी बीच उसे जानकीबाई याद आ गयी। दोनोंमेंसे जानकीबाईका कौन-सा बांड था, इस बातको याद करनेका उसने खूब प्रयत्न किया और अन्तमें उसके मनमें यह निश्चय हो गया कि इनाम उसके बांडपर न मिलकर जानकीबाईवालेपर मिला है। अजब महँगीका जमाना और डेढ़ सौ रुपयेकी छोटी-सी तनख्वाह, अतः पोपटलालने निश्चय किया कि इनामकी रकम वही रख लेगा। जानकीबाईने अभी उसे पाँच रुपये ही कहाँ लौटाये हैं? फिर कौन-सा नंबर उसका है, यह भी उसको मैंने कहाँ बताया था। और जानकीबाई इस समय कहाँ है, इसका भी किसको पता है? यह सब सोचनेपर भी पोपटलालकी अन्तरात्माने इसे नहीं माना।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये,त्यों-त्यों पोपटलालके मनमें तूफान बढ़ता गया। बुद्धि कहती—'अरे मूर्ख! रख ले, ऐसा मौका तुझे फिर कब मिलेगा?' परंतु वहाँ तो तुरंत ही अन्तरात्मा कराहने लगती—'जानकीबाई तुझसे अधिक गरीब है। तू मुझको—तेरी अन्तरात्माको धोखा देकर कबतक इन रुपयोंको पचाकर रख सकेगा?'

आखिर पोपटलालने जानकीबाईका पता लगाना शुरू किया और बड़ी मेहनतके बाद उसे खबर मिली कि जानकीबाई अपने गाँवपर है और वहाँ अपने घरके पास ही थोड़ी-सी जमीनमें धानकी खेती करके अपना काम चलाती है।

और एक रविवारको खूब सबेरे पोपटलाल बंबईकी बसमें सवार होकर पनवेल उतर गया और दो कोस पैदल चलकर जानकीबाईके गाँव पहुँच गया।

'अरे पोपट! तू, यहाँ मेरे गाँवमें?'

'जानकीबाई! उस बांडके पाँच रुपये तुमने मुझको नहीं दिये, उन्हें लेने आया हूँ।'

'पाँच रुपयेके लिये इतना बसका भाड़ा खर्च करके यहाँ आया? कैसा मूर्ख है। ले ये तेरे पाँच रुपये और चाहिये तो बसका भाड़ा भी ले ले।' जानकीबाईने पाँच रुपयेका नोट पोपटके हाथपर रखा और पोपटने अपनी बंडीकी जेबमेंसे ढाई हजार रुपये निकालकर जानकीबाईको देते हुए कहा—'बसका भाड़ा तो नहीं चाहिये, लेकिन पाँच रुपये तो जरूर लेने हैं। इन पाँच रुपयोंपर तुझे ढाई हजार रुपयेका इनाम मिला है।'

और जानकीबाईकी आँखोंसे आश्चर्य, आभार और हर्षके आँसू ढलककर उसके झुर्री पड़े कठोर चेहरेको भिगोने लगे। (अखण्ड आनन्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगणपतिका दुग्धपान—एक शास्त्रीय दृष्टि

[आस्था, अनास्था और बुद्धिवाद]

'कल्याण' के कुछ पाठकोंकी जिज्ञासा है कि श्रीगणेशजीकी प्रतिमाओंके दुग्धपानकी घटनापर हम भी अपने विचार व्यक्त करें। यह घटना आश्विन कृष्ण १२, बृहस्पतिवार (२१ सितम्बर, १९९५)-को पूरे विश्वमें जहाँ भी हिन्दू-आस्थाके मन्दिर तथा श्रीगणपतिकी प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ हैं, प्राय: अधिकांश स्थानोंपर एक साथ घटी। पूरे देशमें बिजलीकी तरह यह समाचार दूरभाष आदि साधनोंसे फैल गया, जिसने सुना वही कौतूहलवश देखने पहुँच गया और कई बुद्धिजीवियों तथा श्रद्धालुजनोंने अपने हाथसे चम्मच आदिमें दूध रखकर श्रीगणेशजीको दुग्धपान भी कराया। इस अनहोनी घटनाको प्रत्यक्ष देखकर आस्तिक-नास्तिक सभी चमत्कृत हो गये। यद्यपि दूरदर्शन, रेडियो और समाचार-पत्रोंके माध्यमसे इसका वैज्ञानिक आधार दिखानेकी चेष्टा की गयी, साथ ही कुछ लोगोंने इसे अन्धविश्वासकी संज्ञा दी, परंतु ये दोनों ही बातें खरी नहीं उतरतीं, कारण, अन्धविश्वास तो किसीकी कही हुई बातपर अथवा अप्रत्यक्ष घटनापर किया जा सकता है, परंतु जो घटना अपनी आँखोंके सामने प्रत्यक्ष घटती है और जिसका लोगोंने स्वयं अनुभव किया, वह भी एक-दो व्यक्ति नहीं हजारों-लाखों लोगोंने देश-विदेशके मन्दिरोंमें अपने हाथोंसे दुग्धपान कराया, इसे झुठलाया कैसे जा सकता है? और अन्धविश्वास भी कैसे कहा जा सकता है?

दूसरी बात, वैज्ञानिक आधार और तर्क है, परंतु वैज्ञानिक आधार होनेपर मूर्तियोंके दूध पीनेकी बात सर्वदा निरन्तर होनी चाहिये, हिन्दू सनातनधर्ममें 'मूर्तिपूजा' आराधनाका मुख्य साधन है। जो अनादिकालसे चलता आ रहा है। काशी आदि तीर्थस्थलोंमें भगवान् श्रीगणपतिकी अत्यन्त प्राचीन मूर्तियाँ आज भी उपलब्ध हैं, जो अनन्तकालसे ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रतिष्ठापित हैं, साथ ही कुछ ऐसे भी विग्रह हैं, जो स्वयम्भू अर्थात् अनादिकालसे अवस्थित हैं, जो किसीके द्वारा निर्मित नहीं हैं। इन प्राचीन परम्परागत प्रतिमाओंको वैज्ञानिक आधारपर प्रारम्भसे ही निरन्तर दूध पीते रहना चाहिये था, अथवा इनमें दूध समा जाना चाहिये था, परंतु इस प्रकारकी घटना पहले कभी न सुनी गयी और न देखी गयी, अत: घटनाकी चमत्कृतिको नकारा नहीं जा सकता। साथ ही इन घटनाओंसे आधिदैविक शक्तिका अनुमान होता है। यदि प्रत्यक्षसे परे कोई ईश्वर या देवता न हो तो इस प्रकारकी घटना कैसे घट सकती है?

श्रद्धालुजनोंकी यह जिज्ञासा है कि इस अनहोनी घटनाका शास्त्रीय दृष्टिसे परिणाम क्या है? यद्यपि इस सम्बन्धमें कोई स्पष्ट संकेत तो शास्त्रोंमें उपलब्ध नहीं हो सके हैं, परंतु जो संकेत मिलते हैं, उनके अनुसार देवप्रतिमाओंमें अनहोनी घटना होनेपर अनिष्ट और विनाश ही उनका फल है। सामवेदके २६ वें ब्राह्मणमें लिखा है—'**देवतायतनानि कम्पन्ते, दैवतप्रतिमा हसन्ति, रुदन्ति, नृत्यन्ति, स्फुरन्ति, स्विद्यन्ति, उन्मीलन्ति, निमीलन्ति।**' अर्थात् किसी उपद्रवको सूचित करनेके लिये देवताके स्थान काँपने लगते हैं, देवमूर्तियाँ हँसने लगती हैं, रोती हैं, नाचती हैं, स्फुरित हो जाती हैं, उनमें पसीना छूटने लगता है, वे नेत्र खोलती हैं और बंद करती हैं।

पुराणोंमें तो इसका विस्तृत उल्लेख मिलता है। पराशरका एक वचन है—'**अथ देवताभिज्वलनरोदनहसनोपक्रमणवेदना-पतनोद्वीक्षणस्वेदयुद्धधूमस्नेहदधिपय:शोणितप्रवर्तनं महतां विनाशाय।**' (अद्भुतसागर पृ० ४२५)

देवप्रतिमाओंके द्वारा अग्निकाण्ड, रुदन, हँसना, चलना, दु:ख प्रकट करना, गिरना, नेत्रोन्मीलन, पसीना, युद्ध, धूम, स्नेह (तैल), दही, दूध और रक्त आदिका प्रवर्तन महाविनाशका कारण होता है।

परंतु यहाँ तात्पर्य देवमूर्तिमेंसे इन वस्तुओंके निकलनेसे है, न कि ग्रहण करनेसे, इसलिये यह बात नहीं कही जा सकती कि दूध पीनेकी घटना अनिष्टकारक ही है। फिर भी देवप्रतिमाओंमें अनहोनी घटनासे सम्बन्धित जो वचन शास्त्रोंमें उपलब्ध हैं, उनसे अनिष्टकी ही सूचना मिलती है।

अत: अनिष्ट और विपत्तिको दूर करनेके लिये सभी लोगोंको भगवदाराधन, अनुष्ठान, यज्ञ और भगवन्नामसंकीर्तन आदिका अधिकाधिक सहारा लेना चाहिये। भगवदाराधन, अनुष्ठान, यज्ञ, संकीर्तनादि शुभ कर्मोंसे अनिष्ट टलते हैं तथा वातावरण सुखद और मङ्गलमय बनता है। ये साधन पाप और अनिष्टसे अधिक शक्तिशाली हैं। भगवदाराधन, नामस्मरण और शुभ अनुष्ठानोंसे पाप और अनिष्ट निश्चितरूपसे समाप्त होते हैं। अत: पूरे उत्साहके साथ श्रद्धालुजनोंको इनमें लगना चाहिये, जिससे सबका कल्याण और मङ्गल हो।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग् भवेत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगीता-जयन्ती

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्‌में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता ही है। इसका विश्वमें जितना वास्तविक रूपमें अधिक प्रचार होगा, उतना ही वह सच्चे सुख-शान्तिकी ओर आगे बढ़ सकेगा।

इस वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ल ११ शनिवार, दिनाङ्क २ दिसम्बर १९९५ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व-दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन।
(२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन।
(३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण।
(४) गीतातत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृतिमहोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना।
(५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि।
(६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना।
(७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना।
(८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और—
(९) देश, काल, पात्र (परिस्थिति) के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होना चाहिये।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः॥

जनवरी, १९९६ ई० का विशेषाङ्क

'धर्मशास्त्राङ्क'

'कल्याण' का आगामी ७०वें वर्ष (सन् १९९६ ई०) का विशेषाङ्क—'धर्मशास्त्राङ्क' है। अपने विषयके अनुरूप यह धर्म और शास्त्रोंकी गुरुता, गहनता, महत्ता तथा विशेषताओंपर प्रकाश डालनेवाला सबके लिये उपयोगी और हर आयु-वर्गके पाठकोंके लिये एक मूल्यवान् मार्ग-दर्शक होगा—ऐसी आशा है। दिसम्बरके प्रथम सप्ताहतक इसके प्रकाशित होनेकी पूरी सम्भावना है। गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी हमारा यह पूरा प्रयास है कि 'कल्याण' के सभी ग्राहकोंको नये विशेषाङ्कका प्रेषण जनवरी, १९९६ के आरम्भसे ही हो। अतः सभी ग्राहकोंकी शुल्क-राशि रु० ८०.०० (सजिल्दके लिये रु० ९०.००) शीघ्रातिशीघ्र नवम्बर, १९९५ तक इस कार्यालयमें अवश्य पहुँच जानी चाहिये; क्योंकि मनीआर्डर/ड्राफ्ट आदिद्वारा तदर्थ राशि मिलने और उनके समायोजनमें लगभग डेढ़-दो माहका समय लग जाना स्वाभाविक है। वी०पी०पी० द्वारा विशेषाङ्क भेजे जानेकी स्थितिमें आपको अतिरिक्त राशि रु० ५.०० (वी०पी०पी०-शुल्क-रूपमें) देय होंगे; अर्थात् रु० ८०.०० के स्थानपर वी०पी०पी० से रु० ८५.०० लगेंगे। अतः इस अतिरिक्त व्यय-भारसे बचनेके लिये अग्रिम राशि मनीआर्डर अथवा बैंकड्राफ्टद्वारा भेजा जाना ही उपयुक्त और सबके लिये लाभप्रद है।

नये विशेषाङ्कमें धर्म और शास्त्रोंका जीवनमें महत्त्व, अनिवार्यता, अपरिहार्यता और महिमासहित शास्त्रोंके प्रणेता—मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, वसिष्ठ तथा पराशर आदि ऋषियोंद्वारा प्रणीत स्मृतियों और अन्य धर्मशास्त्रोंका भी परिचय रहेगा। धर्माचरण और सदाचरण आदिकी महिमा एवं धार्मिक आख्यानों और उपदेशप्रद सत्कथाओंका संग्रह इसके उल्लेखनीय रोचक विषय होंगे। भावपूर्ण बहुरंगे और सादे चित्रोंसे सज्जित एवं सचित्र रंगीन आवरणसे युक्त यह विशेषाङ्क भी 'कल्याण' के पिछले विशेषाङ्कोंकी तरह तथ्यपरक और अधिक-से-अधिक सर्वजनोपयोगी सिद्ध हो—ऐसा हर सम्भव प्रयास किया जा रहा है। अतएव इच्छुक सज्जनोंको उपर्युक्त शुल्क-राशि शीघ्र भेजकर एवं अपने परिचितों तथा स्वजनोंको प्रेरणा देकर 'कल्याण' के अधिकाधिक ग्राहक बनना-बनाना चाहिये। ऐसा करके आप भगवद्भावोंके प्रचारमें सहयोगी होकर विशेष लाभ अर्जित कर सकते हैं।

दसवर्षीय ग्राहक बनिये—'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंकी सुविधाके लिये दसवर्षीय ग्राहक बनाये जाते हैं। व्यक्तिके अलावा फर्म-प्रतिष्ठान, विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय, मठ-मन्दिर आदि संस्थाएँ भी 'दसवर्षीय ग्राहक' हो सकती हैं। आवश्यकतानुसार उत्तराधिकारी भी पता बदलवा कर (अवधि-समाप्ति-पर्यन्त) ग्राहक बन सकते हैं। दसवर्षीय ग्राहक-शुल्क रु० ५००.०० (सजिल्द 'विशेषाङ्क' का रु० ६००.००) है। इस प्रकार प्रतिवर्ष शुल्क-राशि भेजनेके उपक्रम और श्रमसे बचनेके लिये अब आप एक ही बारमें एकमुश्त राशि दस वर्षोंतकके लिये भेजकर निश्चिन्त हो सकते हैं। इच्छुक सज्जनोंको इस सुविधाजनक योजनासे विशेष लाभ उठाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-१०-९५ पंजीकृत-संख्या—जी० आर०-१३

॥ श्रीहरि:॥

भगवान्‌की विशेष कृपा

(गणेश-प्रतिमाओंके द्वारा दुग्धपान)

अभी कुछ दिन पूर्व, आश्विन कृष्ण १२, बृहस्पतिवार, दिनाङ्क २१ सितम्बरको भूमण्डलमें भगवान् श्रीगणेशजीकी मूर्तियोंके द्वारा दुग्धपान करनेकी अलौकिक घटना लोगोंके देखनेमें आयी। इस विषयमें पूछनेपर परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज बोले—

यह घटना भगवान्‌की विशेष कृपासे ही घटित हुई है। जो इसको सत्य न मानकर इसका खण्डन करते हैं, ऐसे लोगोंको संतोंने मलिनबुद्धि और अभागा कहा है—

जे मति मलिन बिषयबस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥

(मानस, उत्तर० ७३। १, ४-५)

प्रश्न—क्या ऐसा चमत्कार किसी मनुष्यके द्वारा योग, मन्त्रशक्ति आदिके बलपर किया जा सकता है?

स्वामीजी—यह कार्य किसी मनुष्यके द्वारा किया जाना असम्भव है। किसी भी योगी, सिद्ध, तान्त्रिक आदिमें ऐसा चमत्कार करनेकी सामर्थ्य नहीं है। यह केवल ईश्वरकृत चमत्कार था। अमुक दिन ही गणेश-प्रतिमाएँ दुग्धपान करेंगी—यह बात लोगोंके मनमें कैसे आयी और इतने थोड़े समयमें भूमण्डलमें एक साथ इसका प्रचार-प्रसार कैसे हुआ—यह एक विलक्षण बात है। फोन, रेडियो आदिके द्वारा तो ऐसी घटना होनेका समाचार दिया गया; परंतु अमुक दिन ऐसी घटना होगी—यह समाचार किसने दिया? ऐसा अन्तर्यामी ईश्वरकी प्रेरणासे ही हो सकता है।

अगर कोई व्यक्ति ऐसा चमत्कार दिखानेका दावा करता है तो हम उसको चुनौती (चैलेंज) देते हैं कि वह पहलेसे ही घोषणा करे कि मैं अमुक दिन भूमण्डलमें ऐसा करके दिखाऊँगा!

प्रश्न—ऐसा चमत्कार होनेमें कारण क्या था?

स्वामीजी—वर्तमानमें गर्भपात, गौहत्या आदि अनेक महान् भयंकर पापोंकी वृद्धि हो रही है और मनुष्य महान् पतनकी ओर जा रहा है। अतः मनुष्योंको चेतानेके लिये, उनमें आस्तिकभाव जाग्रत् करनेके लिये ही भगवान्‌ने ऐसा किया है। वास्तविक कारण तो भगवान् ही जानते हैं; हम अपनी बुद्धिसे नहीं जान सकते।

प्रश्न—ऐसा चमत्कार होनेपर भी लोगोंको चेत न हो तो इसमें क्या कारण समझना चाहिये?

स्वामीजी—कौरवोंकी सभामें जब द्रौपदीका चीर-हरण करनेकी चेष्टा की गयी, तब साड़ियोंका ढेर लग गया, पर दुःशासन द्रौपदीको किंचिन्मात्र भी नग्न नहीं कर सका। इतना बड़ा चमत्कार प्रत्यक्ष देखनेपर भी कौरवोंको चेत नहीं हुआ। अतः जिनकी बुद्धि तामसी है, उनपर ऐसी विलक्षण घटनाओंका असर नहीं पड़ता।

अनेक व्यक्तियोंने परीक्षा करनेके उद्देश्यसे गणेश-प्रतिमाको दूध पिलाया और उन्होंने इसको सत्य पाया। जो नास्तिक थे, पर जिनके भीतर जिज्ञासाका अंकुर था, उन्होंने इस घटनाको सत्य पाया। परंतु जिनमें ऊपरसे आस्तिकता भरी हुई थी, पर भीतरमें संदेह था, अश्रद्धा थी, वे इसकी सत्यता नहीं जान सके और उनके हाथसे गणेश-प्रतिमाने दूध नहीं पिया।

भगवान् स्वतःसिद्ध हैं। उनको कोई माने या न माने, जाने या न जाने, स्वीकार करे या न करे, उनके होनेपनमें कोई फर्क नहीं पड़ता। भगवान् मान्यताके अधीन, मान्यतासे उत्पन्न होनेवाले नहीं हैं। हाँ, जो उनको मानता है, वह लाभ ले लेता है और जो उनको नहीं मानता, वह लाभसे वंचित रह जाता है। भगवान्‌को माननेसे उनके साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है और सम्बन्ध जुड़नेसे उनकी विलक्षणता अपनेमें उतर आती है।

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥ ४॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥ ११४॥
अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी।
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥ १॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी।
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥ २॥
जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका।
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥ ३॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे।
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥ ४॥

(मानस, बालकाण्ड)

[प्रेषक—राजेन्द्रकुमार धवन]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२७,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, दिसम्बर १९९५ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता	९०३
२-कल्याण (शिव)	९०४
३-धर्मके नामपर पाप (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९०५
४-भक्तिमें लगानेवाला ही यथार्थ आत्मीय है	९०८
५-मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम हमारे आदर्श (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निवृत्त शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके सदुपदेश) [प्रस्तोता—गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी] [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	९०९
६-भयो सब जीवन-हानी [कविता] (श्रीभूपनाथजी त्रिपाठी 'घायलदास')	९१०
७-शरणागति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	९११
८-मानवता (श्रद्धेय पं० श्रीसभापतिजी उपाध्याय)	९१४
९-अपने पापोंकी आलोचना करें, दूसरोंकी नहीं. (श्रीरामकृष्ण परमहंस)	९२१
१०-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	९२२
११-जब सत्य-धर्मकी प्रेरणा होती है! (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९२७
१२-ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल (ब्रह्मलीन स्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)	९३०
१३-खतरनाक चोर (गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	९३४
१४-प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद	९३५
१५-पंजाब एवं हरियाणाके कुछ प्रमुख गोभक्त (वरिष्ठ महामण्डलेश्वर यो० श्रीविदेही (गावानन्द) हरिजी)	९३७
१६-*भक्त-गाथा*— भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी)	९३८
१७-पुण्य पंथ सँवार रे मन! [कविता] (श्रीसतीशचन्द्रजी श्रीवास्तव)	९४०
१८-साधनोपयोगी पत्र	९४१
१९-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	९४२
२०-पढ़ो, समझो और करो	९४३
२१-मनन करने योग्य	९४६
२२-संख्या ३ से १२ तक प्रकाशित लेखादिकी वार्षिक विषय-सूची	९४७

चित्र-सूची

१-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

इस अङ्कका मूल्य ३ रु०
विदेशमें—US$0.25
वार्षिक शुल्क (भारतमें) डाक-व्ययसहित ६५ रु० (सजिल्द ७२ रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क डाक-व्ययसहित (भारतमें) ५०० रु० (सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

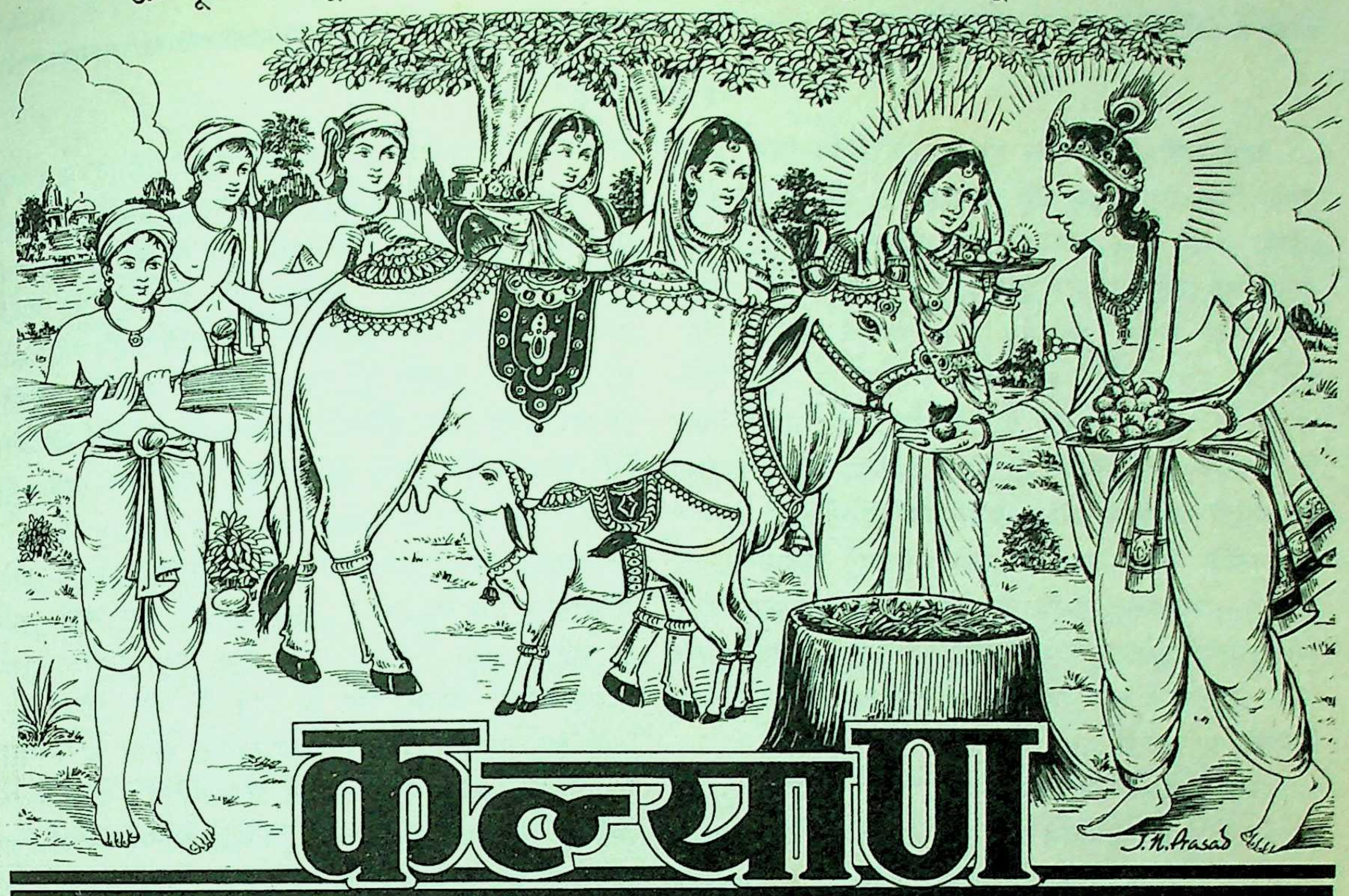

कल्याण

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः।
क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्विमुक्ताः॥

वर्ष ६९ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०५२, श्रीकृष्ण-सं० ५२२१, दिसम्बर १९९५ ई० | संख्या १२ | पूर्ण संख्या ८२९

भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६४—६६)

'सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझे प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्योंको मुझमें त्यागकर और निश्चिन्त होकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—जैसे एक ही शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्ग, उनके भिन्न-भिन्न नाम और काम होनेपर भी एक ही चेतन आत्मा सबमें सब समय सर्वथा व्याप्त है, सब उसीसे अनुप्राणित, जीवित और क्रियाशील हैं, सबके भिन्न नाम-रूप-क्रिया होनेपर भी सब अङ्ग-अवयव परस्पर एक-दूसरेकी सहज सेवा-सहायतामें तथा उनके सुख-हित-सम्पादनमें संलग्न हैं, वैसे ही एक ही विराट् आत्मा—ब्रह्म या परमात्मा इन विभिन्न नाम, रूप तथा क्रियावाले असंख्य ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त है और शरीरके अङ्गोंकी भाँति ही विभिन्न ब्रह्माण्डोंके मानवमात्रका, जिसको भगवान्ने विवेक-ज्ञान दे रखा है—यह कर्तव्य है कि वह भिन्न-भिन्न कर्म करता हुआ भी सर्वात्मभावसे सबके सुख-हित-सम्पादनमें, सबकी सहज सेवा-सहायतामें लगा रहे। यही तत्त्वज्ञानका साधन है और भारतके ऋषियोंकी यही अनुभूति है।

याद रखो—अज्ञानवश जीवमें 'अहं' ('मैं'-पन)-की उत्पत्ति होती है। वास्तवमें यह 'अहं' उसे मिला है—संसारके व्यवहार-निर्वाहके लिये, वैसे ही जैसे नाटकके प्रत्येक पात्रको 'अहं' (उसका नाम, रूप तथा काम) नाटककी सफलताके लिये उसे दिया जाता है। परंतु वह उस 'अहं' को सत्य मानकर उसमें ममता-आसक्ति तथा उससे परमें उपेक्षा, द्वेष आदि कर बैठता है और उसी क्षुद्र 'अहं'के कल्पित मङ्गलके लिये विविध कामनाओंके वश होकर विवेकभ्रष्ट हो जाता है एवं अपने मङ्गलके नामपर नित्य अभाव, नित्य अशान्ति, नित्य दुःखका अनुभव करता हुआ नित्य नये-नये पापोंका आचरण करके अपना भविष्य बिगाड़ता रहता है। यह 'अहं' जितना-जितना छोटे दायरेमें आता है, उतना-उतना ही अधिक दूषित होता है—जैसे छोटेसे गड्ढेमें इकट्ठा हुआ शुद्ध जल दूषित हो जाता है।

याद रखो— भारतका अनुभूत सत्य तत्त्वज्ञान बतलाता है कि केवल मनुष्य ही नहीं, जड-चेतन जीवमात्रके रूपमें एक परमात्मा ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। इसी तत्त्वको सदा सामने रखकर ही व्यवहार करना चाहिये, पर सीमित गंदा 'अहं' ऐसा करने नहीं देता। जब पाकिस्तान तथा हिंदुस्तान एक देश था, तब हिंदू-मुसलमान-पारसी—सभी देशकी स्वतन्त्रताके लिये एक सूत्रमें बँधकर स्वतन्त्रताकी साधना करते थे। अलग-अलग धर्म होते हुए भी सभी 'भारतीय' थे। पाकिस्तान बना कि दो परस्पर विरोधी राष्ट्र बन गये। सिख और हिंदूमें तो दोकी कभी कल्पना ही नहीं थी। क्षुद्र 'अहं' ने आज उन्हें दो बनाकर आपसमें वैमनस्य उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। सारा भारत एक देश था, आज क्षुद्र 'अहं'के कारण भाषा तथा भूमिकी सीमाके नामपर प्रत्येक प्रान्त एक-दूसरेको पृथक् मानकर अपने सीमित स्वार्थके लिये आपसमें लड़ने लगे। अब क्षुद्र 'अहं'के कारण हुई दुर्दशा देखिये। परस्पर रक्तपात, अनशन, शरीरदाह, आगजनी, विध्वंस हो रहा है। यह सारी हानि अपनी ही हो रही है, पर क्षुद्र 'अहं' इस तरफ दृष्टि ही नहीं जाने देता।

याद रखो—कुछ समय पहले भारतमें बहुत थोड़े राजनीतिक दल थे। जो थे उनमें कम-से-कम अपने दलमें तो मतैक्य तथा प्रेम था, पर आज प्रायः प्रत्येक दलमें परस्परविरोधी अनेक भेद हो गये हैं और देखिये क्षुद्र 'अहं'का चमत्कार कि वे एक उद्देश्यवाले होकर भी परस्परमें बुरी तरहसे नीचे स्तरका वाग्युद्ध और शरीरयुद्ध करते हैं एवं एक-दूसरेको गिरानेमें लगे हुए हैं। बात-बातपर दल और मत बदलनेमें भी नहीं सकुचाते। धर्म, देश और जातिके लिये सर्वत्यागकी शिक्षा प्राप्त किये हुए, अपने व्यक्तिगत जीवनसे लोगोंको त्याग, सदाचार तथा शिष्टाचारकी शिक्षा देनेवाले लोकनायकोंकी जब क्षुद्र 'अहं'के कारण इस प्रकार दुर्गति हो रही है, तब उनको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करनेवाले जन-समूहकी क्या गति होगी? यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है।

याद रखो—इस समय क्षुद्र सीमित 'अहं'का तूफान आया हुआ है। प्रायः सभी उसमें फँसे हैं। अतएव सबका सुधार तो अभी कठिन है। अभी तो मानव-जगत् पतनकी ही ओर जा रहा है! इस स्थितिमें जो लोग मानव-जीवनके असली उद्देश्यको समझकर अपना जीवन सफल करना चाहते हैं, उनका व्यक्तिगतरूपसे यह कर्तव्य है कि वे सबसे पहले अपनेको सबकी 'आत्मा' समझें और सबको अपने उसी आत्माका अभिन्न स्वरूप मानें। यह स्मरण रहे कि हम पहले एक आत्मा हैं, पीछे अमुक देशवासी हैं, अमुक धर्म-सम्प्रदायके हैं, अमुक जातिके हैं, अमुक प्रान्तके हैं, अमुक भाषा-भाषी हैं, अमुक परिवारके हैं और अमुक व्यक्ति हैं। जिस-किसी विचार या क्रियासे अपने आत्मस्वरूपपर आघात पहुँचता हो, उससे सावधानीके साथ बचे रहें। यही परम कर्तव्य है।—**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मके नामपर पाप

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कलियुग अपना प्रभाव सर्वत्र दिखा रहा है। प्रायः सभी क्षेत्रोंमें दिखौआपन आ गया है। मिथ्याचारी लोग प्रायः सभी क्षेत्रोंमें घुसकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। दम्भी मनुष्य अनेक रूप बनाकर, अनेक वेष धारणकर लोगोंको ठगनेमें लगे हुए हैं। धार्मिक क्षेत्रमें, जहाँ अधिकांश बातें विश्वाससे सम्बन्ध रखनेवाली होती हैं, दम्भके लिये अधिक गुंजाइश रहती है। इसीसे धर्मध्वजीलोग धर्मका बाना ग्रहणकर भोली-भाली जनताको अनेक प्रकारके प्रलोभन देकर, सब्जबाग दिखाकर ठगा करते हैं और इस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। भक्तिके नामपर भी लोग इसी प्रकार भोले-भाले लोगोंको चंगुलमें फँसाकर उनका धन अपहरण करते हैं। स्त्रियाँ इन बगुले भक्तोंके हथकंडोंकी अधिक शिकार होती हैं; क्योंकि वे विवेकशक्तिसे कम काम लेती हैं और विश्वासकी मात्रा भी उनमें अधिक होती है। इसीसे वे बहुत जल्दी धोखेमें आ जाती हैं और अपने धन तथा सतीत्वको भी, जो भारतीय स्त्रियोंकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है, खो बैठती हैं। तीर्थोंमें, देवालयोंमें, धर्मस्थानोंमें आये दिन इस प्रकारकी घटनाएँ हुआ करती हैं। इसीसे आज धर्म और ईश्वरके प्रति लोगोंकी आस्था कम होती जा रही है। जगत्‌में बढ़ती हुई नास्तिकता तथा धर्मके प्रति उदासीनताके लिये ऐसे ही लोग अधिक जिम्मेवार हैं, जो अपनेको आस्तिक तथा धर्मप्रेमी कहकर अपने आचरणोंद्वारा धर्म और आस्तिकताकी जड़पर कुठाराघात करते हैं। जनताको चाहिये कि ऐसे धर्मध्वजी लोगोंसे खूब सावधान रहे।

स्त्रियोंको इस सम्बन्धमें विशेष सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। उनमें प्रायः बुद्धिकी अपेक्षा श्रद्धाकी मात्रा अधिक होती है। यद्यपि अध्यात्ममार्गमें श्रद्धाकी अधिक आवश्यकता है, परंतु विवेकरहित श्रद्धा बहुधा हानिकारक होती है, इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें स्त्रियोंको स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है। स्त्रियोंके लिये पति ही परमेश्वर है, पति ही परम देवता है, पति ही तीर्थ है, पति ही गुरु है। सौभाग्यवती स्त्रीके लिये पतिकी सेवासे बढ़कर और कोई साधन नहीं है। पतिकी अवहेलना करके व्रत-उपवास, तीर्थसेवन, देवदर्शन, गङ्गास्नान आदि करनेसे स्त्रीको कोई पुण्य नहीं होता। विधवा स्त्रीके लिये भी यही उचित है कि वह घरसे बाहर किसी तीर्थ अथवा देवालयमें, गङ्गास्नान आदिके लिये अथवा कथा-कीर्तन आदिमें जाय तो अपने घरवालोंसे पूछकर घरवालोंके साथ जाय, उनकी आज्ञा लेकर भी अकेले कहीं न जाय। भगवान् मनु कहते हैं—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित् कार्यं गृहेष्वपि॥
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

(मनुस्मृति ५। १४७-१४८, १५५)

'लड़की, जवान या वृद्ध स्त्रीको भी घरोंमें भी कोई कार्य स्वतन्त्र होकर न करना चाहिये। बाल्यावस्थामें स्त्री पिताके अधीन रहे, जवानीमें पतिके अधीन और पतिके मर जानेपर पुत्रोंके अधीन होकर रहे, स्त्री स्वतन्त्र होकर कभी न रहे। स्त्रियोंको पतिके बिना अलग यज्ञ, व्रत और उपवास करनेका अधिकार नहीं है। स्त्री तो केवल पतिकी सेवासे ही स्वर्गमें आदर पाती है।'

पुनश्च—

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः॥

(मनु० ९। ५)

'जहाँ थोड़े-से भी सङ्गदोषकी सम्भावना जान पड़े, ऐसे प्रसङ्गोंसे भी स्त्रियोंकी विशेष यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि अरक्षित स्त्रियाँ पिता और पति दोनोंके कुलोंको सन्तापित करती हैं।'

सुना गया है आजकल बंबई, कलकत्ता, लाहौर, लखनऊ आदि बड़े-बड़े नगरोंमें कीर्तन-भजनके नामपर बड़ा पाप फैलाया जा रहा है। कलकत्तेमें तो कुछ स्त्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गास्नानके अथवा देवदर्शनके बहाने टोलियाँ बनाकर कुछ निर्दिष्ट स्थानोंपर एकत्र होती हैं, नाचती-गाती हैं और कीर्तन करती हैं। आगे चलकर उनके आचरणोंमें इतनी अश्लीलता आ जाती है, जिसका स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख नहीं किया जा सकता। वहाँ बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने गीता आदि धार्मिक ग्रन्थ पढ़ाना और इसी बहाने भले घरोंकी स्त्रियोंको अपने यहाँ एकत्रित कर उन्हें कुमार्गमें प्रवृत्त करना यही पेशा बना लिया है। हमारे भाइयोंको चाहिये कि वे ऐसी स्त्रियोंसे सावधान हो जायँ, अपने घरकी स्त्रियोंको किसी दूसरेके घर किसी निमित्तसे अकेले न जाने दें और न इस प्रकारकी स्त्रियोंको गीता आदि पढ़ानेके बहाने अपने घरोंमें आने दें। सुननेमें तो यहाँतक आया है कि कुछ स्त्रियाँ इस प्रकारकी पेशेवर स्त्रियोंके बहकावेमें आकर अपने पिता, पुत्र, पति आदिका विरोध करके भी उपर्युक्त स्थानोंपर जाती हैं और वहाँ धर्म और भक्तिके नामपर अनर्थ होता है।

जो लोग इस प्रकार कथा-कीर्तनके बहाने परायी स्त्रियोंको अपने घरपर बुलाकर पाप करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो क्या कहा जाय? वे मूढ़ तो अपने ही हाथों अपने लिये नरकका द्वार खोलते हैं। उन्हें यह सोचना चाहिये कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी स्त्रियोंके सङ्गमें रहकर अपनेको नहीं बचा सके; फिर हम मनुष्य-कीटोंकी तो बात ही क्या है, जो कामके किङ्कर बने हुए हैं? स्त्रियोंके सङ्गकी तो बात ही क्या है, शास्त्रोंने तो स्त्रियोंका सङ्ग करनेवालोंके सङ्गको भी अत्यन्त त्याज्य बतलाया है—

स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।

(श्रीमद्भा० ११। १४। २९)

—उसी भागवतमें अन्यत्र स्त्रियोंका सङ्ग करनेवालोंके सङ्गको नरकका द्वार बतलाया गया है। ऐसी दशामें ऐसा कौन मनुष्य है जो स्त्रियोंके सङ्गमें रहकर अपनेको पवित्र रख सके। ऊपर कहे हुए लोग तो वास्तवमें बड़े दयनीय हैं, वे तो धर्मकी आड़में पाप कमाते हैं। उनपर तो कामका भूत सवार है। जैसे रोगग्रस्त मनुष्य विषयासक्तिके वशीभूत होकर कुपथ्य कर बैठता है और पीछे रोता है, उसी प्रकार ये लोग भी बुरी नीयतसे अधर्माचरणरूपी कुपथ्यका सेवन करते हैं और अन्तमें जब वे इस मनुष्यशरीरसे हाथ धो बैठेंगे, उस समय रोनेके सिवा और कुछ भी उनके हाथ नहीं आनेका। जो पुरुष कथा-कीर्तन आदिके नामपर, भक्ति और धर्मकी आड़में पाप करता है, वह तो महान् नीच है; उसके तो दर्शन करनेवालेको पाप लगता है। अतः सभी भाइयोंको चाहिये कि इस प्रकारके घोर पापसे अपनी माता-बहिनोंको बचानेकी तत्परतापूर्वक चेष्टा करें। इस कार्यमें साम, दान, दण्ड, भेद सभी प्रकारकी नीति व्यवहारमें लायी जा सकती है। जिस किसी प्रकारसे भी हो, समाजको इस महान् पतनसे बचानेकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये।

सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये सबसे बड़ा कर्तव्य है पातिव्रत-धर्मका पालन करना—शरीर और मनसे पतिके अनुकूल आचरण करना, सब तरहसे पतिको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करना और उसीकी आज्ञासे, उसीकी प्रसन्नताके लिये घरके अन्य लोगोंकी तथा अतिथियोंकी श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सेवा करना। ईश्वरभक्ति, सद्गुण-सदाचारका सेवन, दुर्गुण-दुराचारका त्याग तथा सेवा—इनमें सबका अधिकार है। परंतु सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये तो पतिको ही ईश्वरका प्रतिनिधिरूप मानकर पातिव्रत-धर्मका पालन ही मुख्य कर्तव्य है। उपर्युक्त साधनोंसे जिस वस्तुकी प्राप्ति होती है, सौभाग्यवती स्त्रीको ईश्वरबुद्धिसे केवल पतिकी सेवा करनेसे ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है। ऐसी दशामें पतिको छोड़कर सौभाग्यवती स्त्रीको कहीं अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं है। उसके लिये पति ही सब कुछ है। भगवान्‌की पूजा-अर्चा आदि भी उन्हें घरहीमें रहकर करना चाहिये। भक्तिमें कहीं दिखौआपन नहीं आना चाहिये।

पुरुषके लिये परस्त्रीके साथ और स्त्रीके लिये परपुरुषके साथ एकान्तवास, परस्पर हँसी-मजाक या कामबुद्धिसे दर्शन, स्पर्श, सम्भाषण आदि भी व्यभिचार ही माना गया है। इसलिये कल्याण चाहनेवालोंको इन सबसे परहेज रखना चाहिये। स्त्रियोंके साथ पुरुषोंको और पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। अत्यावश्यक होनेपर परस्पर अत्यन्त पवित्रभावसे बातचीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रणामादि व्यवहार हो सकता है। इससे अधिक सम्बन्ध वाञ्छनीय नहीं है। मनुजी महाराजने तो अपनी माता, बहिन, पुत्री आदिके साथ भी एकान्तमें बैठनेतकको मना किया है; क्योंकि यद्यपि इन सबके साथ हमारा स्वाभाविक ही परम पवित्र सम्बन्ध है, फिर भी इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् हैं; वे बड़े-बड़े मनस्वी तथा विचारवान् पुरुषोंके मनको भी आकर्षित कर लेती हैं—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(मनु० २। २१५)

ऐसी दशामें स्त्रियोंको परपुरुषसे और पुरुषोंको परस्त्रीसे अलग ही रहना चाहिये। इसीमें दोनोंका भला है।

उपर्युक्त कथनसे कोई यह न समझे कि मैं स्त्रियोंके लिये भजन-ध्यान, व्रत-उपवास आदि करना तथा कथा-कीर्तन आदिमें सम्मिलित होना बुरा समझता हूँ। इन्हें बहुत उत्तम मानता हुआ भी मैं इस बुरे समयको और पुरुषजातिकी नीच प्रवृत्तिको देखकर एक स्थानपर बहुत-सी स्त्रियोंके एकत्र होने तथा किसीके घरपर, देवालयमें अथवा तीर्थस्थानपर एकत्र होकर स्वतन्त्रतापूर्वक कथा-कीर्तनके उद्देश्यसे भी गाने, बजाने, नाचने आदिका विरोध करता हूँ; क्योंकि इसका परिणाम बहुधा विपरीत होता है। स्त्रियोंके लिये मैं यही ठीक समझता हूँ कि वे अपने घरहीमें रहकर इन सब साधनोंको करें; कहीं अन्यत्र जायँ तो अपने घरवालोंके साथ जायँ, अकेले कहीं न जायँ। वर्तमान युग स्त्रियोंके लिये विशेष भयानक है। उनके लिये पद-पदपर खतरा है। ऐसी स्थितिमें उनके सतीत्वकी रक्षाके लिये विशेष सावधानीकी आवश्यकता है।

जो भोले-भाले मनुष्य अच्छे भावसे भी स्त्रियोंको इकट्ठा करके गाना, बजाना, नाचना आदि करते हैं, वे भी भूल करते हैं। प्रारम्भमें शुद्ध भाव रहनेपर भी आगे चलकर उनमें भी दोष आ जानेकी बहुत सम्भावना रहती है। ऐसी स्थितिमें उन्हें स्त्रियोंके सङ्गसे सर्वथा बचना चाहिये। जो लोग अपनी इस अनधिकार चेष्टाके समर्थनमें यह दलील पेश करते हैं कि ब्याह-शादीके अवसरोंमें भी तो स्त्रियाँ एकत्र होकर गाना, बजाना, नाचना आदि करती हैं; बल्कि गालियोंके रूपमें गंदे गीत भी गाती हैं, दामादके साथ अश्लील बातें करती हैं; फिर यदि वे भगवद्भजन-कीर्तन आदिके लिये एकत्र हों तो इसमें क्या आपत्ति है? इसका उत्तर यह है कि ब्याह-शादीके अवसरोंपर भी स्त्रियोंका एकत्र होकर गाना, बजाना, नाचना आदि प्रमाद ही है। उसे मैं ठीक नहीं समझता। गंदे गीत गाना और किसी भी पुरुषके साथ अश्लील बातें करना तो बड़ा भारी प्रमाद और पाप है तथा व्यभिचारमें सहायक होनेके नाते एक प्रकारका व्यभिचार ही है। ऐसी स्थितिमें उसका उदाहरण देकर स्त्रियोंके एक स्थानपर एकत्र होकर गाने, बजाने, नाचने आदिका समर्थन करना कदापि युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। फिर जो लोग महंत बनकर स्त्रियोंसे पैर पुजाते हैं,उन्हें अपने शरीरका धोवन, पादोदक अथवा उच्छिष्ट देते हैं तथा अपना फोटो पूजाके लिये देते हैं, अथवा स्वयं कृष्ण बनकर स्त्रियोंके साथ रासलीला करते हैं, वे तो महान् पाप करते हैं और अपना तथा अपनी पूजा करनेवालोंका महान् अहित करते हैं। इसलिये उनका चरणोदक आदि लेना, उनके शरीरकी अथवा फोटोकी पूजा करना अत्यन्त निषिद्ध है। और स्त्रियोंके लिये तो अपने पतिको छोड़कर किसी भी दूसरे पुरुषके शरीरका स्पर्श करना, चरणोदक लेना सर्वथा वर्जित है। सतीशिरोमणि जगज्जननी जानकीने तो हनुमान्-जैसे आदर्श यति तथा परम भक्तके द्वारा भी लंकासे श्रीरामके पास ले जाया जाना इसीलिये अस्वीकार कर दिया कि वे जान-बूझकर किसी भी पर पुरुषका स्पर्श नहीं कर सकतीं, चाहे वह अपना पुत्र ही क्यों न हो। यह कथा वाल्मीकिरामायणके सुन्दरकाण्डमें आती है। ऐसी दशामें स्त्रियोंका अपने पतिको छोड़कर किसी भी दूसरे पुरुषका स्पर्श करना तथा चरणोदक अथवा उच्छिष्ट लेना कदापि न्यायसङ्गत नहीं कहा जा सकता। इसका जहाँतक हो सके खूब विरोध करना चाहिये। बहुत जगह तो ऐसा होता है कि स्त्रियाँ अपने सम्बन्धियोंके यहाँ—मामा, बहिन आदिके यहाँ—अथवा ससुरालसे नैहर और नैहरसे ससुराल जाने तथा देवालय, तीर्थ आदिमें जानेका बहाना करके इस प्रकारके गुटोंमें शामिल हो जाती हैं और इसका परिणाम प्रायः महान् भयङ्कर होता है।

इस प्रकार धर्मकी आड़में जब पाप होने लगता है, आस्तिकताके नामपर नास्तिकताका ताण्डवनृत्य होने लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तब स्वयं भगवान् अथवा उनकी विभूतियाँ धर्म तथा आस्तिकताको शुद्ध रूपमें प्रकट करनेके लिये पाखण्डपूर्ण धर्म एवं ऐसी आस्तिकताका विरोध करने लगते हैं। आज भी जब कथा-कीर्तन आदिके नामपर जगह-जगह व्यभिचारको आश्रय दिया जाने लगा है, ऐसे समयमें यदि कोई शुद्ध नीयतसे कथा-कीर्तनका विरोध करे तो वह अनुचित नहीं कहा जायगा; क्योंकि वे लोग वास्तवमें कथा-कीर्तनका विरोध नहीं करते, बल्कि उसके नामपर होनेवाले पापाचरणका विरोध करते हैं।

ऐसी स्थितिमें देश और समाजका हित चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य है कि वह धर्मके नामपर होनेवाले ऐसे पापोंको रोकनेकी पूरी चेष्टा करे। किसी भी बहाने अपने घरकी स्त्रियोंको दूसरोंके यहाँ न जाने दे, तीर्थों और देवालयोंमें तथा अपने विश्वासपात्रके घर भी अकेले न जाने दे। जो स्त्रियाँ मूर्खतावश ऐसा करती हैं, उन्हें सब प्रकारकी नीतिसे समझानेकी चेष्टा करे। गड्ढेमें गिरते हुए अपने स्वजन-सम्बन्धीको बलपूर्वक बचाना भी कर्तव्य होता है। जिस किसी प्रकारसे भी हो, उनकी बुद्धिमें इस बातको जचा देनेकी आवश्यकता है कि स्त्रियोंका स्वतन्त्रतापूर्वक एकत्र होना उनके लिये खतरेसे खाली नहीं है, पतिको छोड़कर किसी भी पुरुषका चरणोदक अथवा उच्छिष्ट लेना पाप है, चाहे वह साधु ही क्यों न हो। देश, धर्म और समाजके नेताओं, सुधारकों, महात्माओं तथा देश और समाजकी सेवा करनेवाले उत्साही नवयुवकोंसे मेरी अपील है कि जहाँ कहीं वे इस प्रकारका अत्याचार देखें, वहीं वे इसका जोरके साथ विरोध करें। जिस किसी प्रकारसे हो, नारीजातिकी पवित्रताकी रक्षा करना, समाजको पापसे बचाना हमलोगोंका प्रधान कर्तव्य है। सतीत्व ही नारीका भूषण है। याद रखना चाहिये कि सती स्त्रियाँ ही देश और धर्मकी रक्षा करनेवाली वीर एवं धार्मिक सन्तान उत्पन्न कर सकती हैं।

स्त्रियोंका पुरुषोंके साथ स्वतन्त्ररूपसे घूमना, सैर-सपाटेके लिये बाहर जाना, नाटक-सिनेमा आदिमें जाना, पार्टियोंमें सम्मिलित होना, ताश, चौपड़, शतरंज आदि खेलना, क्लबोंमें जाना, युवक अध्यापकोंद्वारा युवती कन्याओंका पढ़ाया जाना, युवक-युवतियोंका एक साथ पढ़ना आदि तो और भी खतरनाक हैं। पाश्चात्त्योंकी देखा-देखी हमारे शिक्षित समाजमें भी धीरे-धीरे स्त्री-पुरुषोंका संसर्ग बढ़ता जा रहा है, जो देशके लिये कभी हितकर नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्त्य देशोंमें स्त्रियोंको सब प्रकारकी स्वतन्त्रता देनेका जो भयङ्कर दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हो रहा है, उससे हमें शिक्षा लेनी चाहिये और हम भी उसका कटु अनुभव करें, इससे पहले ही हमें चेत जानेकी आवश्यकता है। हमलोगोंको चाहिये कि सभी बातोंमें पाश्चात्त्योंका अनुकरण न कर केवल उनके गुणोंको ग्रहण करें। इसीमें हमारा कल्याण है। ऐसा न कर यदि हम अंधाधुंध पाश्चात्त्योंका सभी बातोंमें अनुकरण करनेमें लगे रहे तो भगवान् जानें हमलोगोंकी क्या दुर्दशा होगी, हमलोग पतनके किस गर्तमें गिरेंगे। इसलिये बुद्धिमानी इसीमें है कि हमलोग समय रहते चेत जायँ और अपनी प्राचीन संस्कृतिके महत्त्वको समझकर उसे पुनर्जीवित करनेकी चेष्टा करें। [तत्त्वचिन्तामणि]

भक्तिमें लगानेवाला ही यथार्थ आत्मीय है

ऋषभजी कहते हैं—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्॥

(श्रीमद्भा० ५।५।१८)

'जो अपने प्रिय सम्बन्धीको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर मृत्युकी फाँसीसे नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम हमारे आदर्श

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निवृत्त शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके सदुपदेश)
[प्रस्तोता—गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी]

रामचरितमानस ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है, जिसके पठन-पाठन करने तथा उसके बताये मार्गपर चलनेसे हमारा कल्याण होगा।

जो श्रीरामचरितमानसका पाठ करते हैं और जो श्रीरामचरितमानसकी कथा कहते हैं तथा जो श्रीरामचरितमानसकी कथाका श्रवण करते हैं, वे महान् पुण्यके भागी बनते हैं और महान् पुण्यका कार्य करते हैं। इस प्रकार आप भगवान् श्रीरामके परमपावन चरित्रके माध्यमसे भगवान्‌की उपासना करते हैं। भगवान्‌के अवतारका यही प्रयोजन है। गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे अर्जुनसे यही कहते हैं कि जो व्यक्ति मेरे चरित्रोंका श्रवण-कीर्तन एवं चिन्तन करता है, वह फिर इस संसारमें लौट करके नहीं आता। यह जीव संसारमें नाना प्रकारकी यातनाओंको सहन करता है, पर जो लोग भगवान्‌के दिव्य जन्म-कर्मका चिन्तन करते हैं, वे इन यातनाओंसे मुक्त हो जाते हैं। इस कीर्तन-मनन तथा श्रवणके साथ-साथ हम भगवान् श्रीरामके चरित्रोंसे शिक्षा लेकर उन्हें यदि अपने जीवनमें उतार दें तो यह स्वर्ण-सुगंध-योग बन जायगा। हमारा और आप सबका यह परम कर्तव्य है कि हम भगवान् श्रीरामके चरण-चिह्नोंपर चलें। भगवान् श्रीरामने लोक-व्यवहारमें जिस ढंगका सामाजिक सम्बन्ध रखा, हमें भी संसारमें वैसा ही सम्बन्ध रखना चाहिये। भगवान् श्रीराम न केवल पिताकी आज्ञासे वन गये, अपितु विमाता कैकेयीकी आज्ञाका भी उन्होंने प्रतिपालन किया। याद रखो कि माता-पिताकी आज्ञाका परिपालन मनुष्य ही कर सकते हैं, पशु नहीं। इसी प्रकार प्रभु श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम बड़ा अनुकरणीय है। पर इसके विपरीत आज अपने भाईको ४ अंगुल जमीन न देकर कचहरीमें हजारों-लाखों रुपया गँवा देते हैं। भगवान् श्रीरामका परमपवित्र चरित्र ही मानव-समाजके लिये अनुकरणीय है। इसीसे तो भगवान् श्रीरामको मर्यादापुरुषोत्तम कहा गया है। रामायण पढ़नेका तात्पर्य यही है कि हम भगवान् श्रीरामके अनुसार आचरण करें न कि रावणके अनुसार। इन्हीं भगवान् श्रीरामके आदर्शपर चलनेसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है।

वेदान्तशास्त्रके अनुसार श्रवणको भगवान्‌की प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन बताया गया है। जिस प्रकार शब्दके सुनते ही जानकार व्यक्तिको राग-रागिनीका ज्ञान हो जाता है और साक्षात्कार हो जाता है, उसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरणवाले व्यक्तिको भगवान्‌के चरित्र सुननेमात्रसे भगवान्‌का साक्षात्कार हो जाता है। मानसके अनुसार माता-पिता तथा गुरुकी आज्ञाको किसी प्रकारका बिना विचार किये विश्वासके साथ मानना चाहिये। रामकथाकी सार्थकता इसीमें है कि हम भगवान् श्रीरामके चरित्रको अपने जीवनमें उतारें। भगवान् श्रीराम वास्तविक जनतन्त्र, प्रजातन्त्र तथा गणतन्त्रके पुजारी थे और आदर्श शासक थे। भगवान् श्रीरामका जनतन्त्र आजका जनतन्त्र नहीं था कि जिसमें एक मत अधिक पानेवाला विजयी और बहुतमतवाला माना जाता है। आजका यह जनतन्त्र झूठा ढकोसला है। भगवान् श्रीरामके जनतन्त्रमें मंथराके एक विरोधी वोटसे राज्यका त्याग हुआ और धोबीके एक विरोधी वोटसे श्रीसीताका परित्याग हुआ। श्रीरामराज्यमें एक कुत्तेको ब्राह्मणके विरुद्ध न्याय मिला। क्या ऐसा राज्य कहीं है? बस, यह एकमात्र भारतमें और सनातनधर्मियोंमें ही ऐसा राज्य मिल सकता है और कहीं नहीं।

हमारे इस भारत देशका आज बड़ा घोर अधःपतन हो रहा है, जिसे देखकर बड़ा घोर दुःख होता है। काश, यदि आज हमारे इस भारत देशमें एक भी कोई चाणक्य-जैसा ब्राह्मण पैदा हो जाय! यदि देशमें आज कोई हिन्दूसूर्य महाराणाप्रताप-जैसा धर्मवीर क्षत्रिय उत्पन्न हो जाय! यदि कोई छत्रपति शिवाजी और वीरवर छत्रसाल-जैसा उत्पन्न हो जाय! यदि आज देशमें कोई भामाशाह-जैसा दानी वैश्य उत्पन्न हो जाय! यदि आज देशमें धन्ना जाट, चेता चमार, रैदास चमार-जैसा शूद्र उत्पन्न हो जाय तो देश-धर्मकी रक्षा होनेमें फिर क्या संदेह है! यदि राणाप्रताप-जैसा धर्मवीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रिय उत्पन्न हो जाय तो फिर हम भारतवासियोंको वैदेशिकोंसे भला डरनेकी क्या आवश्यकता है? सच्चे ब्राह्मण, सच्चे क्षत्रिय और सच्चे वैश्य और सच्चे शूद्रोंके द्वारा ही देश, जाति, धर्म तथा सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षा हुआ करती है और तभी राष्ट्र सुरक्षित रहता है। आज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सभी अपने-अपने धर्मसे च्युत होते चले जा रहे हैं, फिर देश-धर्मकी रक्षा हो तो कैसे हो?

राष्ट्रकी रक्षा न होनेका एक खास कारण यह भी है कि आज धर्मप्राण भारत देशमें पूज्या गोमाताकी हत्याका काला कलंक जारी है और नित्यप्रति भारतमें हजारोंकी संख्यामें पूज्या गोमाताएँ मारी जा रही हैं। यदि राष्ट्रकी रक्षा करना और देशकी रक्षा करना है तथा धर्म एवं सभ्यता-संस्कृतिको बचाना है तो गायोंकी रक्षा करना परम आवश्यक है। जिस देशमें नित्यप्रति हजारों गायें काटी जायँ, फिर उस देशकी रक्षा कैसे हो सकती है? गोहत्या करनेके घोर पापका ही यह फल आज प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है कि जो देशका, राष्ट्रका दिनोंदिन पतन होता चला जा रहा है। जबतक गोमाताकी हत्या बंद नहीं हो जाती और गोमाताकी रक्षा नहीं होती, तबतक देशकी भी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये यदि देशकी रक्षा चाहते हो और देशकी उन्नति चाहते हो तो अविलम्ब गोहत्याका घोर पाप बंद करो।

इस मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है कि किसी प्रकारसे चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेका और बार-बार जन्म लेनेका तथा बार-बार मरनेका दुःख दूर हो और हमें वास्तविक सच्ची सुख-शान्ति मिले। जन्म-मरणका चक्कर तभी छूट सकता है जब कि हम पापोंसे बचें और धर्माचरण करें तथा भगवान्‌की शरण ग्रहण करें। जबतक हम धर्माचरण नहीं करेंगे और भगवान्‌की शरण ग्रहण नहीं करेंगे, तबतक हम जन्म-मरणके तथा चौरासी लाख योनियोंके चक्करसे नहीं बच सकेंगे। इसलिये धर्माचरण करना एवं भगवान्‌की शरण लेना परम कर्तव्य मानना चाहिये।

संसारका सुख भोगना तो चाहिये पर अपने धन और धर्मको बचा करके। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पदार्थ माने गये हैं। गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंको चारों पदार्थोंकी आवश्यकता है। वह संसारका सुख भोगना क्या हुआ कि जिसमें धन और धर्म दोनों नष्ट होते हों एवं लोक-परलोक बिगड़ता हो। धर्मानुसार ही सुख भोगना चाहिये, धर्म खोकर सुख भोगना बुद्धिमानीका कार्य नहीं।

[प्रेषक—शिवकुमार गोयल]

भयो सब जीवन-हानी

(श्रीभूपनाथजी त्रिपाठी 'घायलदास')

हरि, हम जाया कीन्ह जिंदगानी।
जो कुछ बची दयासे तेरी, है वह तेरी निसानी॥
निसि-बासर पद थके, न चलते, जिमि पोखर कर पानी।
माया-ठगिनि न छोड़ति मनको, अबहुँ रहति लपटानी॥
टूटे दन्त ज्योति गयी नैननि, मुखसे आव न बानी।
उज्ज्वल केस बुलावत कालहिं, अबहुँ सोच अभिमानी॥
पाछिल करम दृष्टि जब फेरत, सोचि-सोचि अकुलानी।
पाप-करमकी सीमा नाहीं, लाँबी अकथ कहानी॥
जप-तप जग्य धरम-ब्रत-पूजा, कछु न कियो अज्ञानी।
'घायलदास' दया करु स्वामी, भयो सब जीवन-हानी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणागति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ८७० से आगे]

जीवमात्रकी यह दशा है कि अगर जरा-सा भी मनके अनुकूल भगवान् न करें तो भगवान्पर नाराज हो जाते हैं। हम अधिकांश भजनवाले लोग भगवान्को भजते ही इसीलिये हैं कि भगवान् हमारे लिये अनुकूलता उत्पन्न करते रहें, स्वयं भी, पदार्थोंके द्वारा भी। हमारी इच्छाओंको भगवान् पूर्ण करते रहें, इसलिये भी हम भगवान्को भजते हैं। उस भजनके बदले हमें भगवान् अधिक सुख दे दें—दुःख तो बिलकुल दें ही नहीं। यदि दुःख प्राप्त हो, तब तो फिर भगवान्की आवश्यकता रहती ही नहीं। पग-पगपर नित्य-निरन्तर स्वयंको उपासक माननेवाले लोग—भगवान्की भक्ति करनेवाले जो अपनेको 'हम' मानते हैं ऐसे लोग, अपनेको विरक्त माननेवाले लोग जहाँ-कहीं भी प्रतिकूलता देखते हैं, जहाँ-कहीं भी जरा-सी मान-भंगकी स्थिति आती है—केवल विचारमात्र आता है कि किसीने हमारा आदर नहीं किया—हम भगवान्को कोसने लगते हैं। यह बड़ा विचारणीय प्रश्न है। इस विष्ठा-मूत्रादिसे भरे शरीरमें कौन-सी बढ़िया चीज भरी है, जिसको लेकर हम अभिमान करें। इस शरीरको लेकर हम यह कहें कि हम कुछ बड़े हैं, हमारे अंदर कोई महत्त्वका पदार्थ है—यह बड़े ही सोचका विषय है। इस शरीरका जहाँ-कहीं सम्मान नहीं हुआ, आराम नहीं मिला और इस शरीरके कल्पित नामकी जहाँ पूजा नहीं हुई, हम भगवान्को कोसने लगते हैं। उन लोगोंको असभ्य मानते हैं। असंस्कारी मानते हैं, प्रेमी नहीं मानते। सत्संगी नहीं मानते।

तात्पर्य इतना ही है कि जब कभी अपनी वासनाकी पूर्तिका प्रश्न आये, वहाँ वासना-पूर्तिका आयोजन हो नहीं तो हम वैपरीत्यका अनुभव करने लगते हैं। प्रवचन करना चाहें और सफलता न मिले तो मनमें आता है, कि यहाँ तो कोई सत्संगकी बात जाननेवाला है ही नहीं, कोई प्रेमी है ही नहीं। यहाँपर तो सब-के-सब रूखे लोग हैं। सब भोगोंमें लगे हैं। कोई भी सत्संगकी बात नहीं करता।

इन्होंने समय देकर सत्संग नहीं किया, ये सब असत्संगी क्यों हैं, अप्रेमी क्यों हैं, रूखे क्यों हैं, इनमें सभ्यता क्यों नहीं—इन सबका एक ही उत्तर है—इन्होंने हमारा मान नहीं किया। और हमें मानकी भूख थी, यही हमारे दुःखका कारण बन गया। यदि हम अपनी बात भगवान्को सुनाते होते तो दूसरी चीज होती।

एक बारकी बात है—तानसेन बड़े भारी संगीतज्ञ थे। अकबरके सामने एक बार उन्होंने 'मल्हार राग' गाया। अकबर उसे सुनकर विह्वल हो गया और बोला—तुमने कहाँ सीखा, इतना बढ़िया कोई गा नहीं सकता। तानसेनने उत्तर दिया—महाराज, मैं तो कुछ नहीं गा सकता, मेरे गुरुजी—हरिदासजी महाराज जैसा गाते हैं वैसा तो आपने कभी सुना ही नहीं होगा। मैं तो उनके सामने सूर्यके सामने जुगनू-जैसा हूँ। अकबरने कहा—उनका गायन सुनाओ। तानसेनने उत्तर दिया—उनका गायन सुनाना हमारे हाथमें थोड़े ही है, आपके हाथ थोड़े ही है कि आप चाहें उनको बुलावा भेजें और वे आपके दरबारमें आ जायँ, ऐसे तो वे हैं नहीं। अकबरके मनमें उत्सुकता जग गयी थी। उसने कहा—क्या उपाय करें? सुनना तो है। तानसेनने सुझाव दिया—थोड़ी देरके लिये बादशाहियत भूल जाइये। सादे कपड़े पहनकर वास्तवमें साधारण आदमी बनकर हमारे साथ चलिये। तब कोई व्यवस्था करेंगे। सुननेकी इच्छा थी अकबरकी। अतः जैसा तानसेनने कहा वैसे ही वेष बदलकर कुटियाके पास पहुँचे। तानसेनने कहा कि पेड़के नीचे बैठ जाइये अलग। अकबरको समीप ही पेड़के नीचे कुटियाके बाहर बैठा दिया और स्वयं अंदर गये। हरिदासजी अपने भगवान्की प्रेम-समाधिमें मस्त थे। कुछ देरके बाद उनकी प्रेम-समाधि टूटी। बोले—'तानसेन अच्छे हो! कैसे आ गये? तानसेनने उत्तर दिया—'महाराज, ऐसे ही आ गया। उस दिन जो राग आपने सुनाया था, वह मुझे ठीक याद नहीं रहा, मैं फिर सुनना चाहता हूँ।' बोले—सुनो! लाओ एकतारा। लिया एकतारा और लगे सुनाने। उसके प्रभावसे अकबर भावविभोर होकर मूर्छित हो गये। उनको जो चीज आज श्रवण करनेको मिली, वैसी जीवनमें बड़े-बड़े गवैये, बड़े-बड़े संगीतज्ञ, कलाविद् अच्छे कण्ठवाले आये, पर ऐसा सुख नहीं मिला, जैसा आज प्राप्त हुआ। अकबरको चेत हुआ। अकबरने कहा कि तानसेन! तुम बड़े गवैये हो, तुम ऐसा क्यों नहीं गाते, क्या बात है? तानसेनने उत्तर दिया—महाराज, बात यह है कि वे सुनाते हैं भगवान्को और मैं सुनाता हूँ आपको। यही अड़चन है। बुलास (बोली निकालना) अलग चीज है और भगवान्का गुणगान करना और चीज है। तुलसीदासजीने इतना बड़ा ग्रन्थ रचा, पर भूमिकामें कहते हैं—'स्वान्तःसुखाय तुलसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुनाथगाथा०'। 'स्वान्तःसुखाय' इसके द्वारा इस बहते हुए अमृतसे कोई लाभ उठा ले, कोई नहा ले, यह अलग बात है, पर मेरा ग्रन्थ ऐसा हो, इससे जगत्का उपकार हो, भला हो इस प्रकारकी किसी वासनाको प्रेमी संत नहीं रखते। उनका सम्बन्ध तो रहता है अपने भगवान्से। वे अपने भगवान्के सामने कभी रोते हैं, कभी गाते हैं, कभी उनका गुणानुवाद करते हैं, कभी चरित्र गाते हैं। ठीक यही स्थिति यहाँ भी है। इस पिंजरेमें बैठे पक्षीके गानको कोई उड़ता हुआ पक्षी सुन ले और याद कर ले वह अलग चीज है, पर यह तो अपने पिंजरेमें आबद्ध है अपने भगवान्को अपने अंदर लिये हुए। उसीको सुनाता है। जहाँपर वासना मनमें है, वहाँपर जरा-सा भी अनुकूलपना नहीं दीखता, मान नहीं दीखता तो हम भले लोगोंको भी कह देते हैं कि बुरे लोग हैं—असंस्कारी हैं, असभ्य हैं, हमारा इन्होंने मान नहीं किया। हमारी बात सुनी नहीं। यह ठीक है, यदि कोई सुनाने जायँ और उसकी बात न सुनें तो दुःख होगा। होना स्वाभाविक है। इसमें उनका कोई अपराध नहीं है। पर ये प्रेमी भक्त दुनियाको सुनाने नहीं जाते।

'सर्वधर्मान् परित्यज्य' भी यही है। अर्जुन दूसरे क्षेत्रमें था इसलिये भगवान्को उसके द्वारा जो काम करवाना था वही करवाया यन्त्रवत्। यही मोह-नाश है। भगवान्ने कहा कि मोह-नाश हो गया? अर्जुन मान रहा था कि मैं यह करूँ कि नहीं करूँ? यही तो मोह था और मोह था क्या? उसको स्मृति आ गयी कि अरे, मैं तो इनके हाथका यन्त्र हूँ। ये यन्त्री और मैं यन्त्र, ये करानेवाले हैं, करनेवाला मैं। 'मैं' कहनेवाला-करनेवाला कौन? **'न योत्स्ये'** मैं तो यन्त्र हूँ। 'नहीं लड़ूँगा' यह कहनेवाला मैं कौन? कभी कठपुतली कहती है क्या कि मुझे सीधा नचाओ, टेढ़ा नचाओ। मुझे सुलाओ मत, खड़ी रखो। वह तो अपने-आप सूत्रधारके सूत्रके इशारेपर नाचती है, बिना किंतु-परंतु किये। यही स्मृति अर्जुनको हो गयी कि मैं तो आया था इस कामके लिये यन्त्र बनकर और बनने लगा यन्त्री आपके समकक्ष। अर्जुनकी जो स्वीकृति है इस स्वीकृतिमें शरणागतिका मर्म है। संक्षेपमें मोह-नाश हो गया, इस वृत्तिका नाश हो गया कि 'मैं कुछ कर्ता-कराता हूँ, करने-करानेवाला हूँ, करूँगा-कराऊँगा।' शरणागति परतन्त्रताका साधन है। भगवान्के परतन्त्र हो जाना—स्वतन्त्रता रहे नहीं। भगवान्की परतन्त्रताको स्वीकार कर लेना ही शरणागति है। और शरणागत कभी स्वतन्त्र नहीं होता। उसकी इच्छा भी स्वतन्त्र नहीं रहती। कोई अलगाव, कुछ भी अलग लिये हुए यदि कोई है तो उसके समर्पणमें कुछ कमी है। समर्पणमें जब समर्पक अपने-आप उसमें आकर बैठ जाता है, तभी वह कह सकता है—

'मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।'

भक्त कह सकता है कि हमने आपमें मन लगा दिया, आपको मन अर्पण कर दिया। पर भगवान् कहते हैं मन उसका है नहीं, मेरा मन ही उसका मन बनकर बैठ गया है। जहाँ भगवान् यह कहते हैं, वहीं पूर्ण समर्पण है। वहाँ अपनी अलग स्वतन्त्र इच्छा, स्वतन्त्र सत्ता, स्वतन्त्र मान्यता है ही नहीं। केवल उनकी इच्छाकी सत्ता है। श्लोकमें **'मत्प्राणाः'** पद है **'मद्गतप्राणाः'** नहीं है, 'मन्मनस्क मत्प्राण है'। ऐसी स्थितिमें वे भक्त भगवान्के प्राणोंसे अनुप्राणित रहते हैं भगवान्के जीवनसे वे जीवित हैं। भगवान्के रखनेसे उनका अस्तित्व है? भगवान् क्यों रखते हैं। अपने खेलके लिये—अपना काम करनेके लिये। यही गोपी-भाव है। शरणागतिमें—मोहका नाश हो गया, कर्तृत्वका अभिमान नष्ट हो गया, मैं आपके हाथका यन्त्र हूँ, मैं कुछ करने-करानेवाला नहीं, जो आप कहना चाहें वही मैं करनेवाला हूँ, इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ—ये बातें मुख्य रहती हैं। मैंने मोहवश ही जो कुछ अन्यथा सोचा, कहा। तब भगवान् श्रीकृष्ण बोले—तुमने बड़ा अच्छा किया। इतनी साधना की, जिससे तुम्हारे मोहका नाश हो गया। अर्जुनने कहा—ना-ना **'त्वत्प्रसादात्'**। प्रभो! यह सब आपकी कृपाका ही फल है।

शरणागत कभी भी साधनका अभिमान नहीं करता, वह तो कहता है कि आपकी कृपासे यह मोह-नाश हुआ, आपके प्रसादसे मुझे स्मृति आयी। भगवान् बोले—हमारे प्रसादको समझा यह एक काम तो तुमने किया है। हमारी कृपाको माना। अर्जुनने उत्तर दिया—नहीं-नहीं महाराज, मैंने नहीं माना, आपने मनवा दिया। कैसे? यहाँपर संबोधन है अच्युत। आप अपने स्वभावसे कभी च्युत नहीं होते, आप सुहृद् हैं। हम चाहें न चाहें आप गले पड़कर भला करते हैं। हम पीना न चाहें, आप गला पकड़कर अमृत पिलाते हैं। अच्युत है आपका स्वभाव, इसलिये यहाँ शरणागतमें यह अनुभूतिका अभिमान नहीं कि आपकी कृपाको अपनी बुद्धिसे, अपनी साधनासे प्राप्त कर सका। जो कृपामय हैं, उनकी कृपा तो सर्वत्र विकीर्ण हो रही है, विस्तीर्ण हो रही है, वह कृपा स्वाभाविक है, उस स्वाभाविक कृपाने ही अपनी कृपासे—***'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती'*** अपनी अपार कृपासे, अकारण कृपासे मेरे मोहका नाश कर दिया। उसका प्रभाव क्या हुआ? वही जो चीज होनी चाहिये—'भटकना बंद हो जाय। जहाँ पहुँचना चाहिये, वहाँ पहुँच करके स्थिर हो जाय।' **'स्थितोऽस्मि गतसंदेहः।'** जहाँतक संदेह रहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँतक भटकना बंद नहीं होता। सारे संदेह मिट गये। स्थिरता आ गयी। अब पूछा क्या करोगे? बस, एक ही बात शेष रह गयी है, अब तो '**करिष्ये वचनं तव।**'

पूरी अधीनता—भगवान्‌की पूर्ण शरणागति जब होती है, तब शरणागतको भगवान् अपना अन्तरतम खोल करके दिखाते हैं। अन्तरङ्ग-प्रदेशको खोलकर दिखा देनेका नाम ही प्रेम है। अन्तरङ्गता बिना प्रेम नहीं होती और प्रेमके बिना असली ज्ञान नहीं होता। जबतक बाहरी ज्ञान है—ऊपरका ज्ञान है, तबतक अन्तरङ्गता नहीं है। किसीसे भी कोई प्रेम करे, उसकी भक्ति करे, उसको जाने। उतनी बात ही जान सकेंगे, जितनी बाहरसे प्रकट है। उसके मनमें क्या है, जीवनकी गुप्त-से-गुप्त बात क्या है, सर्वगुह्यतम क्या है, यह बात तबतक हम नहीं जान सकते, जबतक हम उसकी अन्तरङ्गतामें प्रवेश न पा लें। उसके मनमें यह विश्वास न हो जाय कि यह मेरा है। '**इष्टोऽस्मि**' में जबतक स्थित न हो जाय, तबतक अन्तरङ्ग-रहस्य नहीं खुलता। रहस्य खोलते हैं रहस्यवाले ही। हम तो रहस्यकी कल्पना मात्र करते हैं। ऊँची-से-ऊँची कल्पना कर लेते हैं। भगवान्‌के रहस्यका उद्घाटन हम नहीं कर सकते। यह तो उन्हींके द्वारा सम्भव है जो स्वयं रहस्यमय हैं, लीलामय हैं—'***सोइ जानइ जेहि देहु जनाई***' जिसपर कृपा हो जाती है, वही जानता है—दूसरा नहीं जान सकता। यहाँ भगवान्‌ने स्वयं जनाया है। '**हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' उसीकी शरणमें जाओ। '**तमेव शरणं गच्छ।**' फिर ऐसी बात कह दी कि जो बात परायेसे कही जाती है—

'**ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया**'

मैंने तुम्हें गुह्यसे गुह्यतर जो बात थी वह कह दी, मेरे द्वारा कही गयी। अब तुम सोच लो जो मनमें आये सो करो। अर्जुन रो उठा। ये शब्द नहीं हैं, पर ध्वनि है—अर्जुन व्याकुल हो गया—रो उठा। परंतु यह भी किया उसकी परिपक्वताके लिये। यदि व्याकुलता नहीं होती तो भगवान्‌के दूसरे शब्द इस प्रकारके नहीं निकलते जो अन्तरङ्गताको लिये हुए हैं। अर्जुन व्याकुल हो गया कि यह क्या कह दिया! '**त्वां प्रपन्नम्**' कहकर मैंने पूछा और प्रभुने कहना शुरू किया तथा सब कहनेके बाद अब कहते हैं कि जँचे सो करो। बड़ी विकट बात हुई। पर जब रोने लगा, तब अविलम्ब भगवान्‌ने आँसू पोंछ दिये, गलेमें हाथ डाल दिया। गलबाँही डाल करके बोले—'भैया! अरे तू मेरा बड़ा प्यारा है—'**इष्टोऽसि मे**' तू मेरा बड़ा प्रिय है, भैया, तू रोता क्यों है? '**सर्वगुह्यतमं भूयः**' अब तुमको फिरसे सारी जो गुह्यतम बात है खोलकर कहता हूँ। भगवान्‌का अन्तरङ्ग खुल गया, अपनी तारीफ अपने मुँहसे की। '**परमं वचः।**' कोई भी आदमी कहता है क्या कि मैं जो कहता हूँ वही सबसे ऊँची बात है। पर भगवान्‌ने कहा—सुनो '**परमं वचः**' मेरे श्रेष्ठ वचनोंको, जो परम वचन हैं उन्हें सुनो—तुम्हींको सुनाता हूँ। क्योंकि '**इष्टोऽसि मे दृढमिति**' तुम मेरे प्यारे हो, सुहृद् हो, तुम्हारा प्यार किसी हालतमें भी कम नहीं होता, किसी हालतमें घटता नहीं। जो प्रेम घटता, रुकता है वह प्रेम नहीं काम है। प्रेम घटता नहीं, रुकता नहीं, मिटता नहीं। यह तो अनवरत लगातार प्रतिक्षण वर्धमान रहता है, यही प्रेमका स्वरूप है। इस प्रकार अर्जुनको ढाढस दे करके बड़े गद्‌गद स्वरसे निश्चयात्मक वाणीसे कहा—'मत चिन्ता करो, तेरी चिन्ता मेरी चिन्ता है। तेरे पाप मेरे पाप। बस, तू सब कुछ छोड़ दे।' माँका स्नेह ऐसा होता है कि माँ स्वयं बच्चेकी चीजको सँभाले। वह तो सँभालता नहीं, वह तो केवल माँको जानता है। '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' का अर्थ यही है—केवल माँको जाने। वह कहे हिलो तो हिलो, बैठो तो बैठो। भगवान्‌ने कहा—हम स्वयं ऐसा कर चुके हैं। जब गोपमाताएँ—बड़ी-बूढ़ी देवियाँ कहतीं—लाला उठाओ जूती, तब जूती उठा लाते। भागवतमें शब्द आता है भगवान्‌के लिये 'दारुयन्त्रवत्'। कठपुतलीकी तरह ये श्यामसुन्दर नाचते थे, उन वात्सल्यमयी गोपियोंके इशारेपर भगवान् स्वयं स्वीकार करते हैं—हम भी कठपुतली बन जाते हैं, फिर यदि अर्जुन, तुम भी कठपुतली बन जाओ तो समझो कि तुम्हारा काम बन गया। 'यह कठपुतलीपन जहाँ पूरा-पूरा इस प्रकारका बन जाता है, जहाँ प्रत्येक विचार, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक लीला उस प्राणाराम, परमधन, परमश्रेष्ठके विचारके अनुसार उसको सुखदायिनी होने लगती है, वहाँ होता है गोपीभाव और यह गोपीभाव जहाँ पराकाष्ठाको पहुँचा वहाँ प्रकट होता है, राधाभाव। राधाभावमें जहाँ समर्पणका पूर्ण क्रियात्मक अवतरण हो जाता है वह महाभाव है और महाभावके अन्तर्निहित रहता है मादन और मोहन-भाव। आवश्यकता है केवल यन्त्र बननेकी।

तुम हो यन्त्री मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ कहलाओ मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवता

(श्रद्धेय पं० श्रीसभापतिजी उपाध्याय)

संसारके प्राणिमात्र सुख तथा सुख-साधन, दुःख-परिहार एवं दुःखपरिहार-साधनके इच्छुक होते हैं। ऐसी दशामें दिव्य-दृष्टिवाले महर्षियोंद्वारा प्रणीत शास्त्रोंके आधारपर विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि दुःखनिवृत्तिपूर्वक सुख-साधनद्वारा ऐहिक-पारलौकिक सुख-प्राप्तिके लिये मानव-शरीरके अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है।

यह जीवात्मा अनादिकालसे अपने सत्कर्म तथा असत्कर्मोंके जालमें फँसकर चौरासी लाख योनियोंमें जन्म-मरण पाता हुआ, सुख तथा असह्य दुःखोंको भोगता हुआ, बहुत जन्मोंके पुण्य-संचयसे मानव-शरीरको प्राप्त करता है। कहा भी है—

'मानुष्यं दुर्लभं लोके'।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥

(मनु० १। ९६-९७)

'जड-वृक्षादिसे चेतन प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनमें बुद्धिपूर्वक जीवन बितानेवाले, बुद्धिवालोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें शास्त्रविहित कर्मोंमें बुद्धिको लगानेवाले, उनमें तदनुसार कर्म करनेवाले तथा उनमें भी ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं।'

मनुष्य-शरीरको पाकर हमें विचार करना चाहिये कि ऐसा कौन मार्ग है, जिससे मरनेपर अत्यन्त दुःखद नरक तथा कीट-पतङ्गादि योनियोंमें न जाना पड़े। और सांसारिक सुख-सम्पत्तियोंको भोगते हुए नित्य सुख-प्राप्तिके लिये परमात्माकी शरणमें पहुँचा जा सके। ऐहलौकिक-पारलौकिक सकल सुख-सामग्रीका पथ-प्रदर्शक शास्त्र है। अतः शास्त्रानुसारी मार्गका अन्वेषण करना चाहिये।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २३-२४)

'जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर मनमाना आचरण करता है, वह न सफलता पाता है, न परम गति और न सुख ही। अतएव कार्य-अकार्यमें शास्त्रको ही प्रमाण मानकर शास्त्र-विहित कर्म ही करना चाहिये।'

शास्त्रविहित तथा निषिद्ध कर्म करनेवाले मनुष्य ही हैं। मनुष्यके अतिरिक्त पशु-पक्ष्यादि अपने कर्मोंद्वारा पुण्य-पाप नहीं कर सकते। केवल प्राक्तन पुण्य-पापजन्य सुख-दुःख भोगनेके लिये ही पशु-पक्ष्यादि योनियाँ हैं। उसमें भी भारतवर्ष ही पुण्य-पापजनक कर्मबीजका प्रधान क्षेत्र है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः॥

(विष्णुपुराण २। ३। २२)

'जम्बूद्वीपमें भारत श्रेष्ठ है; क्योंकि यह कर्मभूमि है, और तो सब भोगभूमियाँ हैं।' भारतीय मानवता ही एक ऐसा वैज्ञानिक यन्त्र है, जिसके द्वारा मानव ऐहिक सुख-सम्पत्तिको भोगता हुआ परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

अब 'मानवता' शब्दका अर्थ क्या है और मानव (मनुष्य) नाम हमलोगोंका क्यों पड़ा—इसके इतिहासपर प्रथम विचार कीजिये; क्योंकि इस विषयमें बहुतोंका ज्ञान भ्रमग्रस्त हो गया है।

वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड (१४ वें अध्यायमें) 'मानव' (मनुष्य) नाम पड़नेका विस्तृत इतिहास है और यही प्रामाणिक प्रतीत होता है।

श्रीरामचन्द्रजीने जटायुसे कहा कि 'मैं आपका परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ।' इसपर जटायुने कहा कि 'सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माने सत्रह प्रजापतियोंकी मानस सृष्टि उत्पन्न की। उनके नाम हैं—१. कर्दम, २. विकृत, ३. शेष, ४. संश्रय, ५. बहुपुत्र, ६. स्थाणु, ७. मरीचि, ८. अत्रि, ९. क्रतु, १०. पुलस्त्य, ११. अङ्गिरा, १२. प्रचेता, १३. पुलह, १४. दक्ष, १५. विवस्वान्, १६. अरिष्टनेमि और १७. कश्यप। इनमें दक्षप्रजापतिके ६० कन्याएँ हुईं। दक्षप्रजापतिने अपनी १. दिति, २. अदिति, ३. दनु, ४. कालिका, ५. ताम्रा, ६. क्रोधवशा, ७. मनु और ८. अनला नामक आठ कन्याओंका विवाह कश्यप प्रजापतिके साथ कर दिया। अदितिसे १२ आदित्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८ वसु, ११ रुद्र २ अश्विन्—ये तैंतीस देवता उत्पन्न हुए। कश्यपकी दिति आदि अन्य पत्नियोंसे दैत्य-दानव आदि तथा साक्षात् अथवा परम्परासे पशु-पक्षी-व्याघ्र-मृग-कीट-पतङ्ग आदि सकल प्राणियोंकी सृष्टि हुई। कश्यपकी मनु नामक पत्नीने मनुष्योंकी सृष्टि की—

मनुर्मनुष्याञ्जनयद् कश्यपस्य महात्मनः।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्च मनुजर्षभ॥

(वा० रा० अरण्य० १४। २९)

मनु नामकी जननीसे पैदा होनेके कारण '**मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च**' (४। १। १६१)—इस पाणिनि-सूत्रसे मानव-मनुष्य-मानुष—ये तीन शब्द बने।

कुछ विद्वानोंका पुराण आदिके आधारपर यह मत है कि ब्रह्माके पुत्र चतुर्दश मनु हुए। उनमें प्रथम पुत्र स्वायम्भुव मनु हैं। उन्हींसे मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई है। इसमें—

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाꣳसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ताꣳसमभवत्ततो मनुष्या अजायन्त। (बृहदा० १। ४। ३)

शतरूपा नामकी पत्नी तथा स्वायम्भुव मनु—इन दोनोंके सम्बन्धसे मनुष्य उत्पन्न हुए। यह इस मन्त्रसे तथा श्रीमद्भागवतसे भी प्रमाणित होता है। तथापि रामायणके विरोध-परिहारके लिये यही कहना पड़ेगा कि स्वायम्भुव मनुने शतरूपाके ही रूपान्तर कश्यप-पत्नी मनुद्वारा मनुष्योंको उत्पन्न किया, साक्षात् नहीं। यदि साक्षात् मानें अर्थात् यह मानें कि शतरूपाने तथा स्वायम्भुव मनुने अनन्त रूप धारणकर अनन्त गज-व्याघ्र, पशु-पक्ष्यादि प्राणियोंको उत्पन्न किया, तो सभी मनुकी संतान होनेसे मनुष्य होने चाहिये। और आदित्य, दैत्य, दानव आदि शब्द जब स्त्रीवाचक प्रकृतिसे बने हुए हैं, तब मानव-शब्द भी स्त्रीवाचक मनु-शब्दसे ही सिद्ध मानना उचित होगा।

हाँ, यह बात अवश्य है कि स्वायम्भुव मनु ही मनुस्मृतिके आद्य प्रवर्तक हैं; क्योंकि 'मनु' शब्दका अर्थ यह है—

मन्यते जानाति दिव्यदृष्ट्या स्थावरजङ्गमात्मकं सकलं जगददृश्यं धर्माधर्मादिकं च यः स मनुः। यद्वा मन्यते चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः इति जैमिनिसूत्रबोधितं विहितं पुण्यजनकं निषिद्धं पापजनकं च सर्वं कर्म यः स मनुः।

यह अर्थ स्वायम्भुव मनुमें ही संगत होता है। ब्रह्माने शतसाहस्र लक्ष श्लोकात्मक धर्मशास्त्रका स्वायम्भुव मनुको उपदेश किया। मनुने उसे संक्षिप्त कर मरीच्यादि ऋषियोंको उपदेश किया। ऋषियोंने उसे ग्रन्थरूपमें परिणत किया।

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः।
विधिवद् ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन्॥

(मनु० १। ५८)

मनुस्मृतिके व्याख्याता कुल्लूकभट्टने इन बातोंको स्पष्ट किया है। प्रसंगवश मैंने मनुस्मृतिके विषयमें कुछ विचार किया।

कुछ विद्वानोंका मत है कि कश्यप प्रजापतिके पुत्र विवस्वान् मनु हैं। उन्हें विश्वकर्माने अपनी संज्ञा नामकी कन्या प्रदान की। संज्ञाके १. मनु प्रजापति, २. यम और यमुना—दो यमज पैदा हुए। इन्हीं मनुको विवस्वान्‌का पुत्र होनेसे वैवस्वत मनु तथा सवर्णा (संज्ञा)-के पुत्र होनेसे सावर्णि मनु भी कहते हैं। वैवस्वत मनुके १. इक्ष्वाकु, २. नाभाग, ३. धृष्णु, ४. शर्याति, ५. नरिष्यत्, ६. प्रांशु, ७. नाभागारिष्ट, ८. करूष, ९. पृषध्र—ये नौ पुत्र हुए। इन्हीं वैवस्वत मनुसे मानवकी उत्पत्ति हुई है (हरिवंश १। ९)। परंतु वहाँका प्रकरण देखनेसे ज्ञात होता है कि ये विवस्वान् क्षत्रियत्वाभिमानी हुए हैं। उनसे क्षत्रिय राजाओंकी ही परम्परा चली है। अतएव वे सूर्यवंशी क्षत्रिय प्रसिद्ध हुए। इसीलिये रघुवंश इत्यादि काव्योंमें '**मनुवंशकेतुम्**', '**मनोः प्रसूतिः**' इत्यादि विशेषण आये हैं। परंतु वैवस्वत मनुसे मनुष्यकी उत्पत्तिकी बात वहाँ नहीं कही गयी है। यदि कश्यपपत्नी मनुसे मनुष्यकी उत्पत्ति मानी जाय तो—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳशूद्रो अजायत॥

(यजु० ३१। ११)

इससे तथा—

मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्॥

(मनु० १। ८७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—इस मनुवचनसे विरोध होगा और श्रुति सबसे बलीयसी है। अतः वाल्मीकीय वचन प्रामाणिक है। परंतु वस्तुतः विरोध है ही नहीं; क्योंकि मन्त्रव्याख्याता उव्वट तथा महीधर दोनोंने लिखा है—'मुखादिसे ब्राह्मणादिकी उत्पत्ति काल्पनिक है। किंतु ब्रह्माके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये क्रमशः मुख-बाहु-ऊरु-पादस्वरूप हैं। अतः मन्त्रसे रामायणका विरोध नहीं है। काल्पनिक उत्पत्तिमूलक ही ब्राह्मणादिके लिये अग्रजादि शब्दका प्रयोग है। यह प्रासंगिक विचार है। अतः यहाँ इसका विस्तार करना उचित नहीं।

मानव-शब्दके विचारके अनन्तर अब मानवताका स्वरूप दिखाना उचित होगा। मानवता-शब्दके दो अर्थ हैं। **'मानवस्य भावो मानवता'**—मनुष्यमें रहनेवाली जाति।मनुष्यत्व-जाति तो सकल मनुष्यगत एक तथा अखण्ड लोकप्रसिद्ध है। दूसरा अर्थ मनुष्य-कर्म—मानवका कर्तव्य है—

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च।

(५। १। १२४)

—इस पाणिनि-सूत्रसे कर्म-अर्थमें तल् प्रत्यय हुआ है। अतः मनुष्यके कर्तव्यको ही 'मानवता' कहते हैं। यद्यपि मानवका कर्तव्य भी लोकप्रसिद्ध है, तथापि अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार भी मनुष्य अपने कर्तव्यका निश्चय कर सकता है—जैसे आजकल 'स्पृश्यास्पृश्य भक्ष्याभक्ष्य'का मनमाना विचार चल पड़ा है। वस्तुतः भारतीय धर्म (कर्तव्य)-शास्त्र देखा जाय तो आजकलके शास्त्रानभिज्ञ, या शास्त्रको न माननेवाले कर्णधार किस नरकमें स्वयं जायँगे और दूसरोंको भी ले जायँगे—यह कहा नहीं जा सकता।

गीतामें दो सम्पत्तियाँ बतायी गयी हैं—दैवी तथा आसुरी। शास्त्रविहित कर्म करनेमें भयका अभाव, अन्तः-करणकी निर्मलता, तत्त्वातत्त्वविवेक, योग (परमात्म-चिन्तन)-में स्थिरता, सात्त्विक दान, दम (इन्द्रियोंको असन्मार्गमें न जाने देना), यज्ञ (देव-गुरु-पूजन, बलिवैश्वदेव, अग्निहोत्र आदि), स्वाध्याय (वेद-स्मृत्यादि-शास्त्राध्ययन), तप (शास्त्रविहित चान्द्रायणादि व्रत), आर्जव (छल-कपट-राहित्य), अहिंसा (काय-वाक्-मनसे किसीको कष्ट न देना), सत्य (यथार्थ और प्रिय-भाषण), क्रोधाभाव (किसीका अपकार करनेके भावसे क्रोध न करना), त्याग (उदारता), शान्ति (अन्तःकरणमें चञ्चलताका अभाव), अपैशुन (परोक्षमें किसीके दोषका प्रकाश न करना), दया (दीनोंपर अकारण करुणा), अलोलुपता (लोभ न करना), मार्दव (किसीके साथ क्रूरता न करना), ह्री (लोक तथा शास्त्रके द्वारा निन्दित कर्म करनेमें लज्जा), अचापल (निरर्थक हस्त-मुखादिका व्यापार न करना), तेज (महान् पुरुषका शक्ति-विशेष—जिससे जनता असत्कार्योंसे डरे), क्षमा (किसीके अपमान करनेपर भी उसके प्रति अपकारबुद्धि न करना), धृति (दुःखादिसे चित्तमें चाञ्चल्य न आने देना), शौच (शरीरादि-शुद्धि), अद्रोह (किसीका अपकार-चिन्तन न करना), नातिमानिता (अपनेमें विद्यादि-कृत घमंड न रखना)—ये सब गुण 'दैवी सम्पत्ति' हैं। (गीता १६। १-३) इनका पालन करना 'मानवता' है। ये सम्पत्तियाँ मानवके ऐहिक-पारलौकिक दोनों प्रकारके अभ्युदयकी साधिका हैं।

आसुरी सम्पत्ति—दम्भ (बनावटी धार्मिक आडम्बर), दर्प (घमंड), अभिमान (अपनेको सबसे बड़ा मानना), क्रोध (अल्प अपराधपर भी मनमें विकार लाना), पारुष्य (निठुरता), अज्ञान (सदसत्का विवेक न रखना) तथा दैवी सम्पत्तिके विरुद्ध सम्पत्तियाँ आसुरी सम्पत् हैं। आसुरी सम्पत्तियाँ लोक-परलोक दोनोंको बिगाड़नेवाली हैं। अतः इनसे बचकर रहना मानवता है। (गीता १६। ४-५)

आसुरी सम्पत्तिवाले मनुष्य शास्त्रीय विधि-निषेधको नहीं मानते और न उनमें शुद्धि (शरीर-वस्त्रादिकी शुद्धि), न सदाचार, न सचाई रहती है। शरीरादिकी स्वच्छता रहती है, पर शुद्धि नहीं। उनके निकट यह जगत् सत्यप्रमाणसे रहित है—

सत्यं वेदपुराणादिकं प्रमाणं नास्ति यत्र तदसत्यम्।

—जगत्स्वरूपबोधक जो वेद-स्मृति-पुराणादि हैं, वे असत्य हैं। इस संसारमें प्राणियोंकी जो उत्पत्ति है, वह धर्माधर्मकृत नहीं है, न ईश्वरकृत है; किंतु कामवश स्त्री-पुरुषके मिथुनसे ही उत्पत्ति है। ऐसे मिथ्या ज्ञानसे उनका अन्तःकरण नष्ट हो गया रहता है। अतएव अल्पबुद्धि होकर वे ऐसे उग्र कर्म करते हैं, जिनसे जगत्का नाश हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतएव वे जगत्‌के लिये अहित हैं, इष्टकारी नहीं।

वे छल-छिद्र-अहंकारी—योग्य न होनेपर भी अपनी प्रतिष्ठाका भाव दिखानेवाले, अज्ञानवश अपूरणीय कामोंमें आसक्त, खान-पान, रहन-सहन, बोलचाल, व्यवसाय इत्यादि सभी शास्त्रविरुद्ध कामोंमें ही प्रवृत्त होते हैं।

अनन्त (असंख्य) मरणपर्यन्त रहनेवाली चिन्ताओंमें ही आसक्त, विषयभोगमें लीन, सांसारिक सुख-सम्पत्तिके अतिरिक्त स्वर्ग-नरकादि कुछ नहीं हैं—ऐसे निश्चयवाले, सैकड़ों आशारूपी पाशोंसे बँधे हुए इधर-उधर घूमते रहते हैं। काम-क्रोधमें ही सदा संलग्न, विषय-भोगके निमित्त चोरी, छल इत्यादिसे धन इकट्ठा करनेवाले, 'यह मुझे मिल गया, यह भी मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा; यह धन तो है ही, यह भी फिर आ जायगा; एक शत्रुको तो मैंने मार डाला, दूसरोंको भी मार डालूँगा; मैं धनी तथा कुलीन हूँ; मैं मनमाने यज्ञ करूँगा, अपनी प्रशंसा करनेवालोंको दान दूँगा, खूब मजे उड़ाऊँगा।' इस प्रकार अनन्त मायामय जालमें मछलीकी तरह फँसे हुए असुर-वृत्तिके मनुष्य मरकर मल-मूत्रादिपूर्ण भयानक नरकोंमें जाते हैं। इन आसुरी सम्पत्तियोंसे बचना मानवता है।

भगवान् कहते हैं कि ऐसी आसुरी सम्पत्तिवाले मनुष्यको मैं अति क्रूर योनियोंमें सदा भेजता रहता हूँ। शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाले ये लोग सदा नीच योनिमें ही पड़े रहते हैं। फिर उन्हें मनुष्यका जन्म मिलना कठिन हो जाता है। अतः आसुरी सम्पत्तिसे डरना चाहिये। (गीता १७। ७—२०)

मृत्युके बाद जीवात्मा अवश होकर पुण्य-पापके अनुसार ही उत्तम-अधम योनि पाता है। मृत्युके बाद परलोकमें स्त्री-पुत्र, माता-पिता, भाई-मित्र इत्यादि कोई भी सहायक नहीं होते। किंतु धर्म ही दुःख तथा दुर्योनिसे बचाता है और पाप ही अनेक प्रकारके नरकोंमें डालकर असह्य कष्ट देता है। इसलिये सदा पाप-कर्मोंसे बचना तथा धार्मिक कर्मोंमें तत्परता रखना—यही मानवता है।

जबतक मनुष्यको यह ज्ञान न हो जाय कि कौन पुण्य-कर्म है, कौन पाप-कर्म है, तबतक वह किस प्रकार पाप-कर्मसे बचेगा। यद्यपि अनादि शिष्ट-व्यवहारसे भी पुण्य-कर्म तथा पाप-कर्मका ज्ञान होता है, तथापि आजकलके सभ्य कहे जानेवाले लोग तो प्रायः शास्त्र तथा परम्परासे विरुद्ध अपने मनः-कल्पित आचार-विचारको ही सदाचार मानने लगे हैं। ऐसी दशामें भारतीयता तथा भारतीय सदाचारोंकी रक्षाके लिये भारतीय जनताको सावधान होकर भारतीय मानवताकी रक्षाके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

मानवता क्या है—इसका विस्तृत वर्णन मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें है। अतः प्रत्येक मनुष्य (स्त्री-पुरुष)-को धर्म-ग्रन्थोंसे लाभ उठाना चाहिये। स्वतन्त्रताके द्वारा केवल अर्थ-कामकी पूर्ति ही यत्किंचित् हुई है और धर्म (भारतीय मानवता) न रहा, तो पशु ही बनना पड़ेगा—

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

कुछ मानवता भूमण्डलके मनुष्यमात्रके लिये है, जिसका दिग्दर्शन दैवी-सम्पत्तिके नामपर कराया जा चुका है। कुछ मानवता व्यक्तिविशेष, जातिविशेष, आश्रमविशेषके लिये भिन्न-भिन्न है। उसका वर्णन किसी लेखके द्वारा नहीं हो सकता। उसके लिये शास्त्रावलोकन आवश्यक है; क्योंकि शास्त्रीय विधि-निषेधका पालन करना ही मानवता है।

इस लेखमें चार विभागोंमें विभक्त मनुष्योंके लिये आधुनिक वातावरणमें भी जिस मानवताकी रक्षा हो सकती है, उसका दिग्दर्शनमात्र है।

ब्रह्मचर्यावस्था (अध्ययनावस्था)-की मानवता

मनुष्यकी आयु साधारणतः सौ वर्षकी मानी गयी है। तदनुसार पचीस वर्ष अध्ययनके लिये रखे गये हैं। इस अध्ययन-अवस्थामें प्रत्येक छात्र तथा छात्राको ब्राह्ममुहूर्त (रात्रिके अन्तिम चतुर्थांश)-में उठकर पढ़ना चाहिये; क्योंकि वह ब्राह्मी—सरस्वतीका समय है। उस समय बुद्धिका अधिक प्रकाश होता है। फिर सूर्योदयके पहले ही शारीरिक नित्य-क्रिया करके दन्तधावनपूर्वक शुद्ध जलसे या नदी इत्यादिमें स्नान कर लेना चाहिये (मनु० ४। ९२-९३); क्योंकि नौ छिद्रयुक्त यह शरीर सोनेपर अशुद्ध हो जाता है। प्रातःकालिक स्नान दृष्टादृष्ट-उभयफलक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नानके बाद द्विजाति पुरुषको संध्योपासन अवश्य करना चाहिये। न करनेसे पाप होता है। गायत्री-मन्त्रमें बुद्धिके निमित्त ही प्रार्थना है। जिसकी बुद्धि अच्छी होगी, उसके सब कार्य अच्छे होंगे। शूद्रादि भी बिना मन्त्रके सूर्यादिका ध्यान कर सकते हैं। यद्यपि शूद्रादिके लिये शास्त्रतः अध्ययन विहित नहीं है, तथापि शास्त्रोंके अतिरिक्त आधुनिक विषयोंका वे भी अध्ययन कर सकते हैं, जिससे जीविका भलीभाँति चल सके (मनु० १०।९८—१००)।

जो द्विज संध्या नहीं करता, वह शूद्रादिके समान हो जाता है। अध्ययनकालके जितने नियम हैं, वे सब 'ब्रह्मचर्य' शब्दसे कहे जाते हैं। परंतु अधिकतर वीर्यकी रक्षामें ही इसका तात्पर्य माना जाता है। वीर्यकी सुरक्षा होनेसे ही अन्य इन्द्रियाँ भी बलिष्ठ होती हैं। आठ प्रकारके मैथुनोंसे छात्र-छात्राओंको अवश्य बचना चाहिये—युवक-युवतीके रूप-चेष्टादिका स्मरण, वर्णन, परस्पर क्रीड़ा, बुरे भावसे एक-दूसरेको देखना, गुप्तभाषण, परस्पर सम्बन्धका चिन्तन करना, एक-दूसरेकी प्राप्तिके लिये यत्न करना और मैथुन—परस्पर सम्भोग।

—इनमें फँसनेवाला छात्र कदापि विद्याध्ययन नहीं कर सकता और अध्ययन करनेपर भी सफल नहीं हो सकता। विद्यार्थीको जलक्रीड़ा नहीं करनी चाहिये। जूठे मुख मार्गमें न चलना चाहिये (मनु० २।५६)। रूप-रस, गन्ध-स्पर्श तथा स्त्री—इनमें आसक्ति हानिकारक है (मनु० २।९४)। अतः इससे बचना चाहिये। नाचना, गाना, बजाना, मुखसे नाना प्रकारके शब्दोंका अनुकरण करना मना है (मनु० ४। ६४)। इससे अन्तःकरण दूषित होता है।

जैसे गाड़ीका चालक (कोचवान) घोड़ेको बुरे रास्ते जानेसे रोकता है, वैसे ही छात्रोंको अपनी इन्द्रियोंको बुरे मार्गपर जानेसे रोकना चाहिये (मनु० २। ८८)। जूता निकालकर जलसे पैर धोकर भोजन करना चाहिये।

आर्द्र-चरण—गीले पैर भोजन करनेसे आयु बढ़ती है। नंगे होकर सोना नहीं चाहिये। इन्द्रियोंको वशमें रखनेसे मनुष्यका अभ्युदय होता है (मनु० ४।७५-७६)। इन्द्रियोंके वशमें होनेसे वह गिरता है (मनु० २। ९३)। जुआ, किसीकी निन्दा, मिथ्याभाषण, निष्प्रयोजन बकवाद, बुरे भावसे परस्त्रीका देखना हानिकारक है (मनु० १।७८)। लौकिक या शास्त्रीय कुछ भी विषय जिनसे पढ़ा हो, उन गुरुका सम्मान करना चाहिये। अनादर कदापि न करना चाहिये (मनु० २। ११७)। जो सदा बड़ोंका आदर करता है और उन्हें प्रणाम करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बलकी वृद्धि होती है। बड़ोंके आनेपर प्राणवायु स्वभावतः ऊपर जाना चाहता है। उसको यथावस्थित करनेके लिये अभ्युत्थान तथा अभिवादन अवश्य करना चाहिये।

जिससे थोड़ा भी ज्ञान प्राप्त किया हो, मनुष्य यदि उसको गुरु न माने तो वह कई जन्मोंतक कुत्ता होकर चाण्डालके यहाँ जन्म लेता है (अत्रि-संहिता, श्लो० १०)। आचार्य, पिता, माता, भाई—इनका कभी भी अनादर नहीं करना चाहिये (मनु० २। २२६)।

आचार्य, पिता एवं माताकी सेवा करना सर्वोत्तम तप है। अतः इनको सदा प्रसन्न रखना चाहिये (मनु० २। १२८)। छात्रको एकाकी सोना चाहिये (मनु० २।१८०)। गुरुका परीवाद (विद्यमान दोषका कथन), निन्दा (अविद्यमान दोषका कथन) नहीं करना चाहिये। मनुष्य परीवाद करनेसे मरनेके बाद गदहा, निन्दा करनेसे कुत्ता, अनुचितरूपसे गुरुधनका उपभोग करनेसे कृमि, गुरुका उत्कर्ष न सहन करनेसे कीट होता है। ऐसा न करना 'मानवता' है। लहसुन, गाजर, प्याज, छत्ता, लाल गोंद (लासा), गायका फेनुस (नयी ब्यायी गायका कठिन दुग्ध) छात्रको नहीं व्यवहार करना चाहिये। (छात्रोंको मनुस्मृति, अध्याय २-३ पढ़ने तथा उनके अनुसार आचरण करना चाहिये)।

गार्हस्थ्य-मानवता

प्रातःकाल उठकर शौच जाय। तदनन्तर दन्तधावन-पूर्वक स्नान करे। प्रातः-स्नानसे आरोग्य, तेज, बल-बुद्धिका विकास, शुद्धि तथा पुण्य होते हैं (दक्षस्मृति अ० २)। द्विजको प्रातः-सायं संध्या अवश्य करनी चाहिये, अन्यथा वह शूद्रके समान माना जाता है तथा मरनेके बाद वह तिर्यक्‌योनिमें जायगा। गृहस्थ देवतर्पण, ऋषितर्पण, पितृतर्पण करे। फिर यथाशक्ति हवन करे। किसी शिष्टके घर आ जानेपर यथाशक्ति उसका यथोचित सत्कार करे। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोष्य-वर्गका पालन करता हुआ अतिथि एवं भिक्षुकोंका भी सत्कार करे।

१-आयुके प्रथम भागमें अर्थात् पचीस वर्षतक गुरुओंसे अध्ययन करके छब्बीसवें वर्षमें गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर विधिपूर्वक विवाह करके द्वितीयाश्रमके नियमोंका पालन करे। (मनु० ४। १)

२-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा वर्णबाह्य मनुष्य शास्त्र-प्रदर्शित अपने-अपने कर्मोंद्वारा धन-संग्रह करते हुए परिवारका पालन करें।

३-दो प्रकारके कर्म शास्त्रमें कहे गये हैं। एक ऐहलौकिक जीविकाके लिये, दूसरे जन्मान्तर-शुद्धिके लिये।

ब्राह्मणका जीविकाके लिये—दान लेना, पढ़ाना, यज्ञ-श्राद्ध-उपनयन-विवाहादि संस्कार कराना कर्म है। तथा जन्मान्तर-शुद्धिके लिये—दान देना, यज्ञादि पुण्य कार्य स्वयं करना, शास्त्रोंका अध्ययन तथा शास्त्रप्रदर्शित उपवासादि तप करना कर्म है।

क्षत्रियका जीविकार्थ कर्म—कर लेना, सैनिक बनकर शस्त्र-अस्त्र-बाण आदिका शास्त्रोक्त व्यवहार करना तथा धर्मार्थ दान देना, यज्ञ करना, तप करना आदि कर्म है।

वैश्यका जीविकार्थ—वाणिज्य, पशुरक्षा, क्रय-विक्रय तथा खेती करना; धर्मार्थ दान, यज्ञादि करना तथा वेदादिका अध्ययन करना।

शूद्रका जीविकार्थ कर्म—ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी सेवा करना; धर्मार्थ बिना वृत्ति ब्राह्मण-सेवा या वेतन लेकर भी ब्राह्मण-सेवा। अथवा बिना मन्त्र पञ्चयज्ञादि करना। वर्णबाह्यकी शूद्र-समान वृत्ति है।

यदि अपने कर्मोंसे जीविका न चल सके तो मनुष्य यथेच्छ कर्मोंसे जीविका चला सकता है; परंतु अपनेसे उच्च वर्णोंके कर्मोंसे जीविका चलाना निषिद्ध है।

स्वाभाविक कर्म

ब्राह्मणको—शम—मनको बाह्य विषयोंसे रोककर वशमें करना। दम—चक्षुरादि इन्द्रियोंको वशमें रखना। तप—(उपवासादिव्रत, गायत्री इत्यादिका जप)। शौच—शरीर, मन, इन्द्रियोंको पवित्र रखना। क्षमा—किसीके अपराध करनेपर भी उसको पीड़ित करनेकी इच्छा न करना। आर्जव—किसीके साथ कुटिलताका व्यवहार न करना। ज्ञान—श्रद्धा-पूर्वक शास्त्रके मर्मको जानना। विज्ञान—आत्मा-अनात्माके ज्ञानपूर्वक ब्रह्मज्ञान।

क्षत्रियके स्वाभाविक धर्म—शूरता, तेज (प्रताप—जिसके भयसे असत्कार्यसे लोग डरें), धैर्य (बड़े-से-बड़ा संकट आनेपर भी न घबराना), दाक्ष्य (चतुरता—व्यवहार-कुशलता), युद्धमें शत्रुको पीठ न दिखाना, दान करना, स्वामित्व करना—प्रभुता करना।

वैश्यके स्वाभाविक धर्म—कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य।

शूद्रका—सेवाकर्म।

गृहस्थको चाहिये कि गृहपर आये हुए अतिथिका यथाशक्ति भोजनादिसे श्रद्धापूर्वक सत्कार करे। जिसके यहाँसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसका पुण्यक्षय होता है। इसलिये अन्य शक्ति न होनेपर आसन, जल तथा मीठी बातोंसे ही सत्कार करे।

द्विजाति किसी प्रकारका मदिरा-पान न करे। मदिरापानसे मनुष्य पतित हो जाता है। द्विज यदि जान-बूझकर मदिरा पीये तो उसका यही प्रायश्चित्त है कि वह जलती हुई मदिरा पीकर मर जाय (बृहस्पतिस्मृति)। द्विजातिको पितृ-मातृ-श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। विस्तारके लिये मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थ देखिये।

वानप्रस्थ (तृतीयाश्रम)-की मानवता

जो गृहस्थ वृद्ध हो जाय और उसके पौत्रादि हो जायँ, तब सब कुछ पुत्रको देकर तथा पत्नीको भी पुत्रके पास छोड़कर अथवा साथ लेकर जंगल या तीर्थादिमें जाकर मुन्यन्न या फल इत्यादि खाकर रात-दिन जप-तप-समाधि-के द्वारा काल व्यतीत करे। किसी भी सांसारिक विषयमें आसक्ति न रखे। यथाशक्ति हवन इत्यादि भी करे।

संन्यासाश्रमकी मानवता

जो राग-द्वेषरहित होकर गृहसे या वनसे पृथक् होकर अर्थात् नियत स्थानरहित—गृहशून्य होकर यथेच्छ विचरता है और जिससे किसी अन्य जीवको कुछ भी भय नहीं होता, ऐसा संन्यासी ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। संन्यासी एकाकी रहे, किसीको साथ न रखे। किसीके मीठे फल आदि देनेपर भी उनमें आसक्त न हो। मिट्टी या अलाबुका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्र (कमण्डलु) हो तथा वृक्ष-मूल आदि जनरहित एकान्त स्थानमें रहे। मोटे पुराने वस्त्र पहने, सबमें समान दृष्टि रखे—मरने-जीने दोनोंकी इच्छा न रखे, केवल कर्माधीन रहकर कालमात्रकी प्रतीक्षा करे।

दूसरोंकी कड़ी बातोंको सहन करे। किसीके प्रति वैरभाव न रखे। यदि कोई क्रोध करे, तो भी उसके प्रति स्वयं क्रोध न करे। यदि कोई निन्दित वचन बोले, तो भी स्वयं उसके प्रति अच्छी तथा मीठी वाणी ही बोले। किसीके साथ प्रपञ्चकी बातें न करे, किंतु सदा परमात्मविषयक बातें ही करे (मनु० ६। ४०—४८)। सुवर्ण, लोहे, ताम्र, चाँदी इत्यादि धातुमय पात्रमें भिक्षा देनेवालेको धर्म नहीं होता और उन पात्रोंमें भिक्षा करनेवाला यति (संन्यासी) उसके पापोंको खाता है। अर्थात् उनमें भोजन करना पाप है (अत्रि० ११७)। भूकम्पादि भविष्य तथा चक्षु आदिके फरकनेका फल, ग्रहोंका फल न बताये। नीतिमार्गके उपदेश तथा शास्त्रादि-कथासे भिक्षा-प्राप्ति करनेका यत्न न करे (मनु० ६। ५०)। लौकी, काठ, मिट्टी या बाँसका बर्तन संन्यासीको रखना चाहिये (मनु० ६। ५४)।

एक बार भिक्षा करे, अधिक भिक्षा न करे (मनु० ६। ५५)। गृहस्थके घरके सब लोग खा चुके हों, तब यति भिक्षाके लिये जाय; न मिलनेपर दुखी न हो, मिलनेपर प्रसन्न न हो। अच्छे दण्ड-कमण्डलु देखनेपर यह विचार न करे कि इनको ले लूँ। कभी लोभ न करे (मनु० ६। ५७)। किसी भी स्त्रीके साथ कुछ भी कभी सम्पर्क न करे।

संन्यासीके चिह्न—दण्ड-कमण्डलु, काषाय वस्त्र आदिके धारणसे कोई संन्यासी नहीं हो जाता; किंतु उनके साथ यतिका उक्त धर्म भी चाहिये (मनु० ६। ६६)।

राजकीय मानवता

इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, कुबेर—इन आठ लोकपालोंके पास सृष्टिकी जो सामग्री है, उस सामग्रीके सारभूत अंशसे राजाकी सृष्टि होती है। अत: सभी प्राणियोंसे अधिक शक्ति (शासक) राजामें रहती है। (मनु० ७। ४)

राजा (शासक) अल्पवयस्क भी हो, तथापि उसका अनादर नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह मनुष्यरूप धारण करके आया कोई देवता ही है। अत: देवताके अपमानसे जो पाप होता है, वही पाप उसके अनादरसे होगा (मनु० ७। ८)। दिक्पालोंके तेजसे निर्मित होनेके कारण शास्त्रके अनुकूल या शास्त्रके प्रतिकूल जो भी नियम वह बना दे, उसका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। (मनु० ७। ९)

ब्रह्माने राज्य-शासनके लिये राजाको तेजोमय दण्ड नामक पुत्र दिया है। उसी दण्ड-भयसे सब प्राणी यथोचित कार्यमें संलग्न रहते हैं। जैसे आस्तिक पुरुष यमराजकी यातना—नरकादिके भयसे शास्त्रनिषिद्ध कर्म नहीं करता, उसी प्रकार राजदण्डके भयसे प्रजाजन एक-दूसरेको पीड़ित नहीं करते (मनु० ७। २०)। परंतु उस राजदण्डका प्रयोग लोभ-मोह-मात्सर्यादि दोषोंसे रहित होकर करना चाहिये। राजा यदि न्यायपूर्वक कुछ करता है तो प्रजा प्रसन्न होती है; किंतु वही यदि बिना विचारे दण्ड देता है तो उससे राज्यका नाश होता है (मनु० ७। १०)। दण्डके ही भयसे प्राणिमात्र सन्मार्गपर चलते हैं। स्वभावत: असत्-कार्य बिलकुल न करनेवाले मनुष्य बहुत कम मिलेंगे (मनु० ७। २२)। परंतु किसी तरह यदि दण्डमें शिथिलता आ जाय या अदण्डनीयको दण्ड होने लग जाय तथा दण्डनीयको दण्ड न हो तो चोरी, डाका, अगम्यागमन आदिसे सत्-मर्यादा तथा शास्त्रीय धार्मिक नियम नष्ट हो जायँ और सम्पूर्ण प्रजा क्षुब्ध हो जाय; अत: दण्डमें शैथिल्य और अनौचित्य राजा न करे (मनु० ७। २४)। परंतु उस दण्ड-संविधानका प्रणेता राजा (शासक) सत्यवादी, उचितानुचितका विचार करनेवाला, लोकमर्यादा तथा शास्त्रविहित एवं निषिद्ध धर्म-अर्थका विद्वान् होना चाहिये (मनु० ७। २७)। राजा यदि किसी मर्यादा या धर्मशास्त्रकी परवा न करके मनमाना दण्डादि-विधान करता है तो उसी दण्डादि-विधानसे राजा स्वयं नष्ट हो जायगा और यदि उचित रूपसे दण्ड-विधान करेगा तो वह धर्म, अर्थ, काम—तीनोंसे परिपूर्ण होगा। (मनु० ७। २७)

जो राजा अपने (भारतीय) धर्मशास्त्रसे अनभिज्ञ है, वह उचितरूपसे दण्डका प्रयोग नहीं कर सकता। अनुचितरूपसे प्रयुक्त दण्ड राजधर्मानभिज्ञ राजाको ही नष्ट कर देगा (मनु० ७। २८)। जो शासक अर्थलोलुप नहीं है, सत्यप्रतिज्ञ है, धर्मशास्त्रानुसार कार्य करता है, संसारमें उसका यश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलमें तैलबिन्दुके समान फैल जाता है (मनु० ७। ३३)।

शास्त्रके विरुद्ध मनमाना शासन करनेवाला तथा अजितेन्द्रिय शासककी अपकीर्ति जलमें घृतबिन्दुके समान संसारमें फैल जाती है। शास्त्रानुसारी, अपने धर्म-कर्ममें लगे हुए मनुष्यमात्रकी रक्षाके लिये शासककी आवश्यकता है (मनु० ७। ३४)। मनमाना धर्म चलाकर उन-उन धर्मोंसे च्युत करनेके लिये शासककी आवश्यकता नहीं है (मनु० ७। ३५)। प्रत्येक शासकके लिये मनुस्मृतिके सप्तमाध्यायका अध्ययन आवश्यक कर देना चाहिये। केवल किसी विषयका विद्वान् होनेसे शासन-शक्ति नहीं आ सकती।

निम्नलिखित मनु-वचनोंपर ध्यान रखते हुए संसारमें चलना कल्याणप्रद है—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥
तस्माद् धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम्॥

(मनु० ४। २३९—२४३)

'परलोकमें सहायताके लिये माता, पिता, पुत्र, पत्नी और जातिवाले कोई खड़े नहीं रहते; एक धर्म ही उपस्थित रहता है। प्राणी अकेला जन्मता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पाप तथा पुण्यका भोग करता है। प्राणहीन शरीरको काष्ठ और मिट्टीके ढेलेके समान भूमिपर डालकर बन्धु-बान्धव—सब मुख फिराकर लौट आते हैं, एक धर्म ही उसके साथ जाता है। इसलिये परलोकमें सहायताके लिये शनैः-शनैः धर्मका संचय करे; क्योंकि धर्मकी सहायतासे मनुष्य दुस्तर नरकसे तर जाता है। धर्मको प्रधान माननेवाले, तपसे निष्पाप हुए या ब्रह्मरूप तेजस्वी प्राणीको धर्म परलोकमें ले जाता है।

अपने पापोंकी आलोचना करें, दूसरोंकी नहीं

एक संन्यासीकी कुटीके सामने ही एक बहनका मकान था। वह बहुत रूपवती थी, पर रास्ता भूली हुई थी। शहरके धनी-मानी घरोंके व्यक्ति उसके यहाँ आते रहते थे। जब कोई व्यक्ति उस बहनके पास आता, संन्यासी उसके नामका एक पत्थर अपनी कुटीके सामने रख देता। धीरे-धीरे पत्थरोंका ढेर जमा हो गया। एक दिन जब वह पथ भूली हुई बहन घरसे बाहर निकली, तब अचानक उसने अपने घरके सामने पत्थरोंका ढेर देखा। इस सम्बन्धमें उसने संन्यासीसे पूछा। संन्यासीने कहा—'यह तुम्हारे दुष्कर्मोंका ढेर है! एक दिन ये ही पत्थर तुम्हारे गलेमें बँधकर तुम्हें नरकमें ले जायँगे।' पथ भूली हुई बहनको संन्यासीकी बात सुनकर और सामने पत्थरोंके बड़े ढेरको देखकर अपने कृत्योंपर बड़ी ग्लानि हुई और तत्काल वह वहीं गिरकर मर गयी। थोड़े दिनोंके बाद संन्यासीकी भी मृत्यु हो गयी। मरनेके बाद वह बहन स्वर्गमें गयी और संन्यासी नरकमें।

संन्यासीने यमराजसे पूछा—'मैं नित्य धर्म-भजनमें अपना दिन बिताया करता था, जिसके बदलेमें मुझे नरक मिला और वह बहन, जो दिन-रात पापकर्ममें लगी रहती थी, उसे स्वर्ग मिला, इसका कारण क्या है?'

यमराजने उत्तर दिया—'आप रोज दूसरोंके पापोंकी गणनामें लगे रहते थे, इसलिये आपको नरक दिया गया और उस बहनने अपने पापोंका इतना बड़ा प्रायश्चित्त किया कि उसने अपने-आपको ही दे दिया, इसलिये उसे स्वर्ग मिला।'

दूसरोंके पाप-पुण्यका निर्णय करनेवाले आप कौन होते हैं? आपको केवल इतना अधिकार है कि अपने पापोंकी आलोचना करें, दूसरोंकी नहीं।—श्रीरामकृष्ण परमहंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

अलौकिक साधन—भक्ति

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करके परमात्माको प्राप्त करनेके तीन मुख्य साधन हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। भागवतमें भगवान् कहते हैं—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

(श्रीमद्भा० ११। २०। ६)

'अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंके लिये मैंने तीन योग-मार्ग बताये हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इन तीनोंके सिवाय दूसरा कोई कल्याणका मार्ग नहीं है।'

कर्मयोग तथा ज्ञानयोगमें संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेकी मुख्यता है और भक्तियोगमें भगवान्से सम्बन्ध जोड़नेकी मुख्यता है। इसलिये कर्मयोग तथा ज्ञानयोग 'लौकिक साधन' हैं और भक्तियोग 'अलौकिक साधन' है। लौकिक साधन 'विवेकमार्ग' है और अलौकिक साधन 'विश्वासमार्ग' है। विवेकमार्गमें विवेककी मुख्यता और श्रद्धा-विश्वासकी गौणता है तथा विश्वासमार्गमें श्रद्धा-विश्वासकी मुख्यता और विवेककी गौणता है। संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेमें विवेक काम आता है और भगवान्से सम्बन्ध जोड़नेमें विश्वास काम आता है। साधकसे प्रायः यह भूल होती है कि वह विवेकमें विश्वास और विश्वासमें विवेक मिलाता है अर्थात् विवेकमार्गमें विश्वासकी मुख्यता और विश्वासमार्गमें विवेककी मुख्यता करता है। इस कारण उसका साधन जल्दी सिद्ध नहीं होता। संसारसे मेरा सम्बन्ध है कि नहीं है—इसमें विश्वास नहीं करना है, प्रत्युत विवेक करना है। भगवान् हैं कि नहीं हैं और मेरे हैं कि नहीं हैं—इसमें विवेक नहीं करना है, प्रत्युत विश्वास करना है। कारण कि जगत् तथा जीव विचारके विषय हैं और भगवान् केवल विश्वास (मान्यता)-के विषय हैं। विवेक (विचार) वहीं लगता है, जहाँ संदेह होता है और संदेह अल्पज्ञानमें अथवा अधूरे ज्ञानमें होता है। तात्पर्य है कि जिसके विषयमें हमारा आंशिक ज्ञान है अर्थात् कुछ जानते हैं, कुछ नहीं जानते, वहीं विवेक चलता है। परंतु जिसके विषयमें कुछ नहीं जानते, वहाँ विश्वास ही चलता है। विश्वासमें संदेह नहीं होता। विश्वास करने अथवा न करनेमें सब स्वतन्त्र हैं*।

ज्ञानी संसारके साथ माने हुए सम्बन्धका त्याग करता है और भक्त एक भगवान्के सिवाय अन्य किसीसे अपना सम्बन्ध मानता ही नहीं। दूसरे शब्दोंमें ज्ञानी 'मैं' व 'मेरा'-का त्याग करता है और भक्त 'तू' व 'तेरा'को स्वीकार करता है। इसलिये ज्ञानी पदार्थ व क्रियाका त्याग करता है और भक्त पदार्थ व क्रियाको भगवान्के अर्पण करता है (गीता ९। २६-२७) अर्थात् उनको अपना न मानकर भगवान्का और भगवत्स्वरूप मानता है। त्यागकी अपेक्षा अर्पण सुगम होता है। कारण कि जिस वस्तुमें मनुष्यकी सत्यत्व और महत्त्वबुद्धि होती है, उसको मिथ्या समझकर यों ही त्याग देनेकी अपेक्षा किसी व्यक्तिके अर्पण कर देना, उसकी सेवामें लगा देना सुगम पड़ता है। फिर जो परम श्रद्धास्पद, प्रेमास्पद भगवान् हैं, उनको अर्पण करनेकी सुगमताका तो कहना ही क्या! क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुएँ (मात्र संसार) पहलेसे ही भगवान्की हैं। उनको भगवान्के अर्पण करना केवल अपनी भूल मिटाना है। संसारको भगवान्का मानते ही संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। अतः संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेके लिये भक्तको विवेककी जरूरत नहीं है। तात्पर्य है कि भक्त संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करता, प्रत्युत उसको भगवान्का और भगवत्स्वरूप

*वेद, पुराण आदि ग्रन्थोंसे, भगवान्के भक्तोंसे अथवा कोई दुःख आनेसे भगवान्पर विश्वास हो जाता है। जब कोई आफत आती है और उससे बचनेका कोई उपाय नहीं दीखता, कोई सहारा नहीं दीखता तथा उससे बचनेके लिये किये गये सब प्रयत्न फेल हो जाते हैं, तब मनुष्यको भगवान्पर विश्वास करना ही पड़ता है! भगवान्को पुकारना ही पड़ता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता है।

विवेक पारमार्थिक विषयमें भी काम करता है और लौकिक विषयमें भी। लौकिक विषयमें विवेकका उपयोग करके मनुष्य बड़ा वैज्ञानिक, जज, वकील आदि बन सकता है, तरह-तरहके आविष्कार कर सकता है, पर तत्त्वप्राप्ति नहीं कर सकता। कारण कि राग साथमें रहनेसे लौकिक विषयोंका विवेक भोग और संग्रहका महत्त्व बढ़ाकर संसारमें फँसाता है, पापोंमें लगाकर पतन करता है। तात्पर्य है कि संसारकी सत्ता और महत्ता साथमें रहनेसे विवेक बहुत घातक, अनर्थका हेतु होता है। वास्तवमें लौकिक विषयोंका विवेक 'अविवेक' ही है। पारमार्थिक विषयका विवेक अर्थात् सत्-असत्का विवेक ही वास्तविक विवेक है*। सत्-असत्का विवेक होनेसे पारमार्थिक अथवा लौकिक दोनों कार्य ठीक होते हैं; क्योंकि विवेकी मनुष्यकी बुद्धि हरेक विषयमें प्रविष्ट होती है।

पारमार्थिक विवेकवाला मनुष्य लौकिक विषयोंका भी ठीक ढंगसे उपयोग कर सकता है। परंतु केवल लौकिक विवेकवाला मनुष्य लौकिक विषयोंका भी ठीक ढंगसे उपयोग नहीं कर पाता—

उपभोक्तुं न शक्नोति श्रियं प्राप्यापि मानवः।
आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लेढीति स्वजिह्वया॥

'प्रारब्धवश धन-सम्पत्ति प्राप्त करके भी अविवेकी मनुष्य उसका ठीक ढंगसे उपभोग नहीं कर सकता; जैसे—गलेतक जलमें डूबे होनेपर भी कुत्ता जीभसे ही जलको चाटता है।'

वास्तविक विवेक वैराग्यका जनक है। यदि वैराग्य न हो तो विवेक वास्तविक (असली) नहीं है। 'मेरा असत्के साथ सम्बन्ध है ही नहीं'—इस विवेकसे वैराग्य होता ही है। विवेकमें सत् और असत्—दो चीज होती है, इसलिये वैराग्य होनेपर भी अन्तःकरणमें असत्की अति सूक्ष्म सत्ता रहनेसे उसकी सूक्ष्म वासना रह जाती है। वह वासना प्रेम-भक्तिसे ही दूर होती है—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

उस सूक्ष्म वासनाको सर्वथा नष्ट करनेकी ताकत प्रेममें ही है। प्रेममें बिना विचार किये स्वतः असत्का आकर्षण मिटता है; क्योंकि सत्-तत्त्वमें प्रेम होनेपर असत्की तरफ दृष्टि जाती ही नहीं—*'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं'* (मानस, अरण्य० ५। ६)। तात्पर्य है कि प्रेममें दो चीज नहीं होती, प्रत्युत एक भगवान् ही होते हैं। अतः विवेक तो तटस्थ रहता है, पर प्रेम भगवान्में लगाता है। संसारमें जैसे रुपयोंमें आकर्षित करनेकी शक्ति लोभमें ही है, ऐसे ही भगवान्में आकर्षित करनेकी शक्ति प्रेममें ही है। यह शक्ति विवेकमें नहीं है। हाँ, यदि तीव्र जिज्ञासा हो तो विवेकमें भी सत्-तत्त्वकी मुख्यता हो जाती है। सत्-तत्त्वकी मुख्यता होनेपर वह विवेक केवल वैराग्यका जनक ही नहीं रहता, प्रत्युत तत्त्वबोधका प्रापक हो जाता है।

विवेकमार्गमें सत् और असत्—दोनोंकी मान्यता साथ-साथ रहनेसे असत्की अति सूक्ष्म सत्ता अर्थात् अति सूक्ष्म अहम् दूरतक साथ रहता है। यह सूक्ष्म अहम् मुक्त होनेपर भी रहता है। यह सूक्ष्म अहम् जन्म-मरण देनेवाला तो नहीं होता, पर यह परमात्मासे अभिन्न होनेमें बाधक होता है। इसलिये विवेकमार्गमें ज्ञानियोंकी अथवा दार्शनिकोंकी मुक्ति तो हो सकती है, पर परमात्माके साथ अभिन्नता अर्थात् प्रेम नहीं हो सकता। इस सूक्ष्म अहम्के कारण ही दार्शनिकोंमें और उनके दर्शनोंमें मतभेद रहता है। विश्वासमार्गमें आरम्भसे ही भक्त एक परमात्माके सिवाय और किसीकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानता। इसलिये वह परमात्माके साथ अभिन्न हो जाता है। परमात्माके साथ अभिन्न होनेपर सूक्ष्म अहम् नहीं रहता और उससे पैदा होनेवाले सम्पूर्ण मतभेद समाप्त हो जाते हैं। इसलिये ज्ञानकी एकतासे प्रेमकी एकता श्रेष्ठ है। कारण कि ज्ञानमें तो भेद रहता ही है, पर प्रेममें

*प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ (गीता १८। ३०)
'हे पृथानन्दन! जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्तिको, कर्तव्य और अकर्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भेद रहता ही नहीं।

विवेकमार्गमें विवेकपूर्वक किया जानेवाला साधन दो प्रकारका होता है—विध्यात्मक और निषेधात्मक। विध्यात्मक साधनमें सूक्ष्म अहम् बना रहता है। कारण कि इसमें अभ्यासकी मुख्यता रहनेसे असत्‌का आश्रय रहता है। इसमें साधकका यह विचार रहता है कि मुझे सत्‌में स्थिति करनी है। यह विचार रहनेसे असत्‌का संग छूटनेपर भी सत्‌में 'स्थितिवाला' रह जाता है—यही सूक्ष्म अहम् है। यह सूक्ष्म अहंभाव दार्शनिकोंमें एकता नहीं होने देता। दार्शनिकोंमें मतभेद रहनेसे उनके दर्शनोंमें भी मतभेद रहता है अर्थात् वे अपने-अपने मतके अनुसार परमात्माको मानते हैं, जो कि समग्रका अंश (आंशिक) होता है, समग्र नहीं। वे परमात्माके उस समग्र रूपको नहीं जानते, जिसमें कोई मतभेद नहीं है।

दार्शनिकोंकी दृष्टिमें उनका अपना मत साध्य है, जो वास्तवमें साध्य न होकर साधन-तत्त्व है।* वास्तविक साध्य (समग्र परमात्मा)-में कोई दार्शनिक मतभेद नहीं है। सूक्ष्म अहम् रहनेसे दार्शनिकोंको अपना मत (मार्ग) श्रेष्ठ दीखता है, दूसरेका मत उतना श्रेष्ठ, लाभदायक नहीं दीखता, और उनकी ऐसी मान्यता रहती है कि ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती या निष्कामकर्मके बिना मुक्ति नहीं हो सकती अथवा भक्तिके बिना मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये वे अपने मतका मण्डन और दूसरेके मतका खण्डन करते हैं। दूसरेके मतका खण्डन वे बुरी नीयतसे नहीं करते, प्रत्युत इस शुद्ध नीयतसे करते हैं कि लोग विपरीतगामी न होकर अपना कल्याण कर लें। लोगोंके कल्याणके उद्देश्यसे वे अपने मत (मार्ग) का प्रचार करते हैं, क्योंकि उस मतका उन्होंने खुद अनुभव किया है और उसमें वे निःसंदेह हुए हैं, उनको शान्ति मिली है। अतः उनका वैसा कहना उचित ही है। परंतु उन दार्शनिकोंके अनुयायियोंमें प्रायः देहाभिमानके कारण अपने मतका आग्रह रहता है। आग्रह रहनेसे वे अपने मतका अनुसरण न करके दूसरे मतका खण्डन करते हैं और दूसरे मतको माननेवालोंसे द्वेष करते हैं। दूसरे मतको माननेसे भी कल्याण हो सकता है—यह बात उनको जँचती ही नहीं! उल्टे वे दूसरे मतको भ्रम मानते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि दूसरोंको हमारे मतमें आना ही पड़ेगा, तभी उनका कल्याण होगा! उनका दूसरे मतको माननेवालोंसे जो द्वेष होता है, वह सामान्य सांसारिक राग-द्वेषसे भी मजबूत और भयंकर होता है। उस द्वेषके कारण वे दूसरे मतको सर्वथा मिटा देना चाहते हैं! इस प्रकार लड़ाई दार्शनिकोंमें नहीं होती, प्रत्युत उनके अनुयायियोंमें होती है।

अपने साधनके प्रति कृतज्ञता, महत्ताका भाव रहना दोष नहीं है, पर दूसरेके मतका खण्डन करना दोष है। इसलिये साधकको दूसरेके मतका खण्डन न करके अपने मतके अनुसार साधन करना चाहिये। वह दूसरेके मतका खण्डन न करके अधिक-से-अधिक यह कह सकता है कि उस प्रणालीको मैं जानता नहीं! अपनी अज्ञता कहनेमें दोष नहीं है, प्रत्युत अपना गुण कहनेमें दोष है। कारण कि अपनी अज्ञता (अपूर्णता) कहनेसे दूसरेमें पूर्णता दीखती है और अपना गुण कहनेसे दूसरेमें दोष दीखता है। इसलिये साधकको कभी भी अपनेको सिद्ध नहीं मानना चाहिये, प्रत्युत सदा साधक ही मानना चाहिये। अपनेमें सिद्धि, पूर्णता माननेसे उसका आगे बढ़ना रुक जायगा और अपने साथ धोखा भी हो जायगा अर्थात् अपनेमें कोई कमी भी होगी तो वह बनी रहेगी।

प्रश्न—क्या मुक्त होनेपर भी सूक्ष्म अहम् रहता है?

उत्तर—मुक्त होनेपर भी ज्ञानी (दार्शनिक)-में सूक्ष्म अहम् रहता है, जिससे दार्शनिकोंमें परस्पर अलगाव, भिन्नता, भेद रहता है। यह सूक्ष्म अहम् वास्तवमें अहंकारका संस्कार है, जो जन्म-मरणका कारण नहीं होता। गुणोंका संग ही जन्म-मरणका कारण होता है— '**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु**' (गीता १३। २१)। मार्गका संग जन्म-मरणका कारण नहीं होता। मार्गका संग है—जिस मार्गसे सिद्धि (मुक्ति) मिली, उस मार्गका संस्कार, जो 'सूक्ष्म अहम्' कहलाता है। सूक्ष्म अहम्में स्वयं संसारके सम्मुख

*साधन तो अलग-अलग होते हैं, पर साधन-तत्त्व एक होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार दि० ....

न होकर परमात्मतत्त्वके सम्मुख रहता है। यह सूक्ष्म अहम् ज्ञानकी एकतामें रहता है, प्रेमकी एकतामें नहीं। कारण कि भक्तकी खुदकी निष्ठा नहीं होती, प्रत्युत वह भगवन्निष्ठ होता है; परंतु ज्ञानीकी खुदकी निष्ठा होती है। अत: भक्तिमें अहंता बदलकर भगवान्‌में लीन हो जाती है, जिससे अहम्‌का संस्कार नहीं रहता। परंतु ज्ञानमें अहंताको मिटानेसे अत्यन्त सूक्ष्म अहम् रह जाता है। हाँ, अधिक भूमिका चढ़ जानेसे ज्ञानीका भी वह अत्यन्त सूक्ष्म अहम् मिट जाता है।

भेद ज्ञानमें रहता है, प्रेममें नहीं। प्रेममें समग्र परमात्माकी प्राप्ति होती है; क्योंकि समग्रता (**'वासुदेवः सर्वम्'**)-की प्राप्तिमें प्रेम कारण है, ज्ञान कारण नहीं है। एक विचित्र बात है कि ज्ञानमार्गमें मुक्ति भी प्रेमसे ही होती है! कारण कि अपने स्वरूप (सत्ता)-में प्रेम, आकर्षण हुए बिना स्वरूपमें स्थिति नहीं होती। ज्ञानीका अपने स्वरूपमें जो प्रेम होता है, वह प्रेम उसको मुक्त तो कर देगा, पर समग्रताकी प्राप्ति करा दे—यह नियम नहीं है। कारण कि सत्ताका यह प्रेम सांसारिक आसक्तिकी तरह जन्म-मरण देनेवाला तो बिलकुल नहीं होता, पर सब मतोंका समान आदर करनेमें बाधक होता है, जबकि वास्तवमें साधन करनेवाले, असत्‌से विमुख होकर सत्‌के सम्मुख होनेवाले सब आदरणीय होते हैं। स्थूल दृष्टिसे भी देखें तो ज्ञानी दूसरोंके साथ एक नहीं होता, जबकि भक्त सबके साथ एक हो जाता है। कारण कि ज्ञानीमें आरम्भमें अभिमान रहता है और भक्तमें आरम्भसे ही नम्रता, दीनता रहती है। हाँ, अगर भक्तमें अभिमान होगा तो वह भी दूसरोंके साथ एक नहीं हो सकेगा। अभिमानका नाश तभी होगा, जब ज्ञानी नहीं रहेगा, प्रत्युत केवल ज्ञान रहेगा; प्रेमी नहीं रहेगा, प्रत्युत केवल प्रेम रहेगा।

ज्ञानमें अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति होती है और भक्तिमें अनन्त आनन्दकी प्राप्ति होती है। अखण्ड आनन्दमें ज्ञानी एकाकी (अकेला) रहता है, इसलिये अखण्ड आनन्दसे उसकी तृप्ति नहीं होती—**'एकाकी न रमते'**। अखण्ड आनन्दसे अरुचि होनेपर उसमें अनन्त आनन्द अर्थात् प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी पिपासा (प्रेमप्राप्तिकी लालसा) जाग्रत् होती है।

जीवन्मुक्तिका आनन्द भी भोग है। उसके छूटनेपर ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। जीवन्मुक्तिका आनन्द छूटनेका आनन्द है और प्रेमका आनन्द मिलनेका आनन्द है। प्रेमीको मुक्ति भी खारी लगती है। भगवान् भी प्रेमके भूखे हैं, ज्ञानके भूखे नहीं। ज्ञानके तो वे स्वरूप ही हैं—**'सच्चित्सुखैकवपुषः'**, ***'चिदानंदमय देह तुम्हारी'*** (मानस, अयोध्या० २। १२७। ३)।

वास्तविक अद्वैत प्रेममें ही है। प्रेममें एक भगवान्‌के सिवाय अन्यकी सत्ता ही नहीं है। प्रेममें प्रेमी और प्रेमास्पद एक होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी एक हैं। प्रेमीमें अन्यके भावकी स्फुरणा ही नहीं है। अन्यकी तरफ प्रेमीकी दृष्टि कभी गयी ही नहीं, है ही नहीं, जायगी ही नहीं, जा सकती ही नहीं; क्योंकि प्रेममें अन्यका अत्यन्त अभाव है। प्रेमीको सब जगह अपना प्रेमास्पद ही दीखता है—***'जित देखौं तित स्याममयी है'***। इसलिये प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय कहा गया है—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्।

(नारदभक्तिसूत्र ५१-५२)

जबतक अन्यकी सत्ता है, तबतक वह साधन-प्रेम है, साध्य-प्रेम (परमप्रेम या पराभक्ति) नहीं। इसलिये ज्ञानमें 'अनिर्वचनीय ख्याति' है और प्रेममें 'अनिर्वचनीय स्वरूप' है। तात्पर्य है कि ज्ञानमें अन्यका निषेध है और प्रेममें अन्यका अत्यन्त अभाव है। कारण कि प्रेममें समग्र परमात्माकी प्राप्ति है। इसलिये प्रेमीका किसीसे भी वैर-विरोध नहीं होता। प्रेमीकी दृष्टिमें सभी समग्रका अंग होनेसे अपने प्रभु ही हैं, फिर कौन वैर करेगा और किससे करेगा—***'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध'***?

उदाहरणके लिये, कोई रामका, कोई कृष्णका, कोई शिवका प्रेमी है तो वे सब परस्पर एक हो सकते हैं, पर सब ज्ञानी परस्पर एक नहीं हो सकते। अगर प्रेमी और ज्ञानी परस्पर मिलें तो प्रेमी ज्ञानीका जितना आदर करेगा, उतना ज्ञानी प्रेमीका नहीं कर सकेगा। इसलिये भक्तोंका लक्षण बताया है—***'सबहि मानप्रद आपु अमानी'*** (मानस, उत्तर० ३८। ३)। रामायणके आरम्भमें गोस्वामी तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज सज्जनोंके साथ-साथ दुष्टोंकी भी वन्दना करते हैं और सच्चे भावसे करते हैं—*'बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ'* (मानस, बाल० ४।१)। ऐसा भक्त ही कर सकता है, ज्ञानी नहीं! यद्यपि ज्ञानीका किसीसे कभी किंचिन्मात्र भी वैर नहीं होता, तथापि उसमें उदासीनता, तटस्थता रहती है। विवेकमार्ग (ज्ञान)-में वैराग्यकी मुख्यता रहती है, और वैराग्य रूखा होता है। इसलिये ज्ञानीमें भीतरसे कठोरता न होनेपर भी वैराग्य, उदासीनताके कारण बाहरसे कठोरता प्रतीत होती है।

गीतामें कर्मयोगीके लक्षण भी आये हैं (२।५५—७२, ६।७—९), ज्ञानीके लक्षण भी आये हैं (१४।२२—२५) और भक्तके लक्षण भी आये हैं (१२।१३—१९); परंतु केवल भक्तके लक्षणोंमें ही भगवान्‌ने कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

(१२।१३)

'भक्त सब प्राणियोंमें द्वेष-भावसे रहित, सबका मित्र (प्रेमी) और दयालु होता है।'

—यह लक्षण न कर्मयोगीके लक्षणोंमें आया है, न ज्ञानीके लक्षणोंमें, प्रत्युत केवल भक्तके लक्षणोंमें आया है।

भक्तमें ज्ञान और वैराग्य स्वतः आते हैं, लाने नहीं पड़ते* कारण कि ज्ञान और वैराग्य भक्तिके बेटे हैं और जहाँ माँ जायगी, वहाँ बेटे जायँगे ही! इसमें एक मार्मिक बात है कि भक्तमें जो ज्ञान और वैराग्य आते हैं, वे ज्ञानीमें आनेवाले ज्ञान और वैराग्यसे भी विलक्षण होते हैं। जैसे, ज्ञान-मार्गमें तो निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान होता है, पर भक्तिमार्गमें समग्रका ज्ञान होता है; क्योंकि भगवान् स्वयं भक्तको ज्ञान देते हैं卐। इसी तरह ज्ञानमार्गमें वैराग्य होता है तो वस्तुके रहते हुए उसमें राग मिट जाता है, पर भक्तिमार्गमें वैराग्य होता है तो वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता ही मिट जाती है और वह भगवत्स्वरूप हो जाती है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७।१९), **'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९।१९)। कारण कि अधिभूत अर्थात् सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत् भी समग्र परमात्माका ही एक अंग है— **'साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः'** (गीता ७।३०)।

यदि भगवान्‌की याद स्वतः नहीं आती, उनको याद करना पड़ता है तो समझें कि अभी साधन शुरू हुआ ही नहीं!

× × ×

भगवत्प्राप्ति कर्मोंका फल नहीं है, प्रत्युत कृपाका फल है; परंतु चाहना खुदकी होनी चाहिये।

---

* भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः। प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥
इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः। भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्॥
(श्रीमद्भा० ११।२।४२-४३)

'जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रासके साथ ही तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति—ये तीनों एक साथ होते जाते हैं, वैसे ही जो मनुष्य भगवान्‌की शरण लेकर उनका भजन करने लगता है, उसे भजनके प्रत्येक क्षणमें भगवान्‌के प्रति प्रेम, अपने प्रेमास्पद प्रभुके स्वरूपका अनुभव और प्रभुके सिवाय अन्य सब वस्तुओंसे वैराग्य—इन तीनोंकी एक साथ ही प्राप्ति होती जाती है। राजन्! इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक-एक वृत्तिके द्वारा भगवान्‌के चरण-कमलोंका ही भजन करता है, उसे भक्ति, वैराग्य और भगवत्प्रबोध—ये तीनों अवश्य ही प्राप्त हो जाते हैं और वह भागवत हो जाता है तथा परमशान्तिका साक्षात् अनुभव करने लगता है।'

卐 तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(गीता १०।१०-११)

'उन नित्य-निरन्तर मेरेमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे उनको मेरी प्राप्ति हो जाती है। उन भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही उनके स्वरूपमें रहनेवाला मैं उनके अज्ञानजन्य अन्धकारको देदीप्यमान ज्ञानरूप दीपकके द्वारा सर्वथा नष्ट कर देता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब सत्य-धर्मकी प्रेरणा होती है!

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

ये सुन्दरियाँ, यह राजमहल, यह भोगविलास! छिः छिः—क्या रखा है इन सबमें? 'कुछ तत्त्व नहीं जगफंदोंमें!' व्यर्थ है यह सारा वैभव। कभी तृप्ति होनेवाली है इन विषयभोगोंसे?

विश्वमें सर्वत्र जरा है, व्याधि है, मृत्यु है, दुःख है, शोक है, हाहाकार है और इसीमें हम सब लिपटे पड़े रहते हैं, छटपटाया करते हैं।.....

को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेसथ॥

'यह हँसी कैसी? यह आनन्द कैसा? चारों ओर तो धू-धू करके आग जल रही है! सारा संसार उस आगमें जला जा रहा है। फिर भी अन्धकारसे घिरे हुए लोग प्रकाश नहीं खोजते।'

सिद्धार्थ उस प्रकाशकी खोजमें निकल पड़ा। महल और राजपाट, पत्नी और पुत्र, वैभव और विलास उसका रास्ता नहीं रोक सके। सत्यकी प्राप्तिके लिये उसने सब कुछ त्यागकर जंगलका रास्ता पकड़ा। भिक्षाकी रूखी-सूखी रोटियाँ बड़ी मुश्किलसे गलेके नीचे उतर रही थीं, पर उसने इसकी चिन्ता नहीं की। कारण, उसके हृदयमें सत्यधर्मकी प्रेरणा हो रही थी।

× × ×

और महावीर?

उन्हें भी जब सत्यधर्मकी प्रेरणा हुई, तब भरी जवानीमें उन्होंने घर-बार छोड़कर जंगलका रास्ता पकड़ा।

वर्षों साधना करके उन्होंने सत्यको पा लिया।

कहते हैं वे—

पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि।
सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ॥

'हे पुरुष! तू सत्यको ही सच्चा तत्त्व समझ। जो बुद्धिमान् सत्यके ही आदेशमें रहता है, वह मृत्युको तैरकर पार कर जाता है।'

× × ×

राजराणी मीराँ?

वैभवकी गोदमें पली-पनपी मीराँ सब कुछ त्यागकर बाहर निकल पड़ी। क्यों?

सत्यकी प्रेरणा उसकी नस-नसमें प्रविष्ट कर गयी। उसके सत्यने 'गिरिधर गोपाल' का रूप धारण कर लिया।

उसके लिये वही एक सत्य था, बाकी सब कुछ असत्य।

उसकी प्राप्तिके लिये मीराँने क्या नहीं किया?

'लोग कहें मीराँ भई रे बावरी।'

पर सत्यधर्मकी प्रेरणा थी उसके अन्तरमें। उसने इस पागलपनको सिर-माथे चढ़ाया।

और फिर तो—

'जहरको प्यालो राणाजी भेज्यो, सालिगराम भयो।'

× × ×

चंद टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़व्रति हरिचंदको टरै न सत्य विचार॥

राजा हरिश्चन्द्रने सत्यके लिये,सत्य-धर्मके पालनके लिये राज-पाट दे डाला, रानीको, पुत्रको बेच डाला, अपने-आपको भी डोमके हवाले किया। इतना ही नहीं, उसकी वेदीपर—मरघटका कर लिये बिना बेटेकी लाशतक जलानेकी अनुमति नहीं दी। क्या था इस कठोरताके पीछे?

वह थी केवल सत्यधर्मकी प्रेरणा।

× × ×

हरिश्चन्द्रकी कहानी कुछ लोगोंकी दृष्टिमें 'कहानी' हो सकती है, पर इतिहास भरा पड़ा है सत्यवीरोंकी सच्ची कथाओंसे। सुकरातको ले लीजिये, ईसाको ले लीजिये, मंसूरको ले लीजिये। ये लोग जहरका प्याला पीते हैं, टिकठीपर लटकते हैं, सूलीपर चढ़ते हैं—यह तो गलत नहीं है? किस प्रेरणाने इन्हें हँसते-हँसते कुर्बान होने दिया?

वह सत्यधर्मकी प्रेरणा नहीं तो क्या थी?

× × ×

और गाँधीजीकी बात तो हमारी आँखों देखी है। गाँधी लिखते हैं आत्मकथामें, अपने सत्यके प्रयोगोंमें—

'एक नाटक-कम्पनी आयी थी और उसका नाटक देखनेकी इजाजत मुझे मिली थी। हरिश्चन्द्रका आख्यान था। उस नाटकको देखते हुए मैं थकता ही न था। उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार देखनेकी इच्छा होती थी। लेकिन यों बार-बार जाने कौन देता? पर अपने मनमें मैंने उस नाटकको सैकड़ों बार खेला होगा। मुझे हरिश्चन्द्रके सपने आते। 'हरिश्चन्द्रकी तरह सत्यवादी सब क्यों नहीं होते ?' यह धुन बनी रहती। हरिश्चन्द्रपर जैसी विपत्तियाँ पड़ीं, वैसी विपत्तियोंको भोगना और सत्यका पालन करना ही वास्तविक सत्य है। मैंने मान लिया था कि नाटकमें जैसी लिखी है, वैसी ही विपत्तियाँ हरिश्चन्द्रपर पड़ी होंगी। हरिश्चन्द्रके दुःख देखकर उसका स्मरण करके मैं खूब रोया हूँ। मेरे विचारमें हरिश्चन्द्र आज भी जीवित हैं।'

× × ×

गाँधी बचपनमें कुसंगतिमें पड़े। कुसंगतिमें दूसरोंका जो हाल होता है, उनका भी हुआ। वे गलत रास्तेपर बहने लगे। पर सत्यकी प्रेरणा उनके भीतर बस गयी थी। और यह तो है ही कि सत्यकी प्रेरणा मनुष्यको ऊपर ही उठाती है, गिराती नहीं। उदाहरण लीजिये—कुमित्रोंके साथ अभक्ष्य-भोजन करके लौटनेपर गाँधीजीकी क्या स्थिति होती थी? वे लिखते हैं—

'जब-जब ऐसा भोजन मिलता, तब-तब घरपर तो भोजन हो ही नहीं सकता था! जब माताजी भोजनके लिये बुलातीं, तब 'आज भूख नहीं है, खाना हजम नहीं हुआ है' ऐसे बहाने बनाने पड़ते। ऐसा कहते समय हर बार मुझे भारी आघात पहुँचता था। यह झूठ और सो भी माँके सामने!.....

'और अगर माता-पिताको पता चले कि लड़के मांसाहारी हो गये हैं, तब तो उनपर बिजली ही टूट पड़ेगी। ये विचार मेरे दिलको कुरेदते रहते थे, इसलिये मैंने निश्चय किया—माता-पिताको धोखा देना और झूठ बोलना तो मांस खानेसे भी बुरा है। इसलिये माता-पिताके जीते-जी मांस नहीं खाना चाहिये। अपना यह निश्चय मैंने मित्रको बता दिया और तबसे मांसाहार जो छूटा, सो सदाके लिये छूट गया।'

× × ×

गाँधीजीको बीड़ीकी बुरी लत लगी। पैसे थे नहीं। तब नौकरकी जेबमें पड़े पैसोंमेंसे एकाध पैसा चुरानेकी आदत डाली। ग्लानिके कारण आत्महत्याकी बात सोची। आत्महत्या तो कर नहीं सके, पर चुराकर बीड़ी पीनेकी आदत छूट गयी। पर चोरी-चोरी खान-पान आदिके सिलसिलेमें पचीस रुपयेका कर्ज हो गया। वह कैसे चुके?

उन्होंने सोचा, भाईके सोनेके कड़ेमेंसे एक तोला सोना काट लिया जाय।

गाँधी कहते हैं—

'कड़ा कटा, कर्ज पटा, पर मेरे लिये यह बात असह्य हो गयी। मैंने निश्चय किया कि आगे कभी चोरी करूँगा ही नहीं। मुझे लगा कि पिताजीके सम्मुख अपना दोष स्वीकार भी कर लेना चाहिये। पर जीभ न खुली। आखिर मैंने तय किया कि चिट्ठी लिखकर दोष स्वीकार किया जाय और क्षमा माँग ली जाय।

मैंने चिट्ठी लिखकर हाथोंहाथ दी। चिट्ठीमें सारा दोष स्वीकार किया और सजा चाही। आग्रहपूर्वक विनती की कि वे अपनेको दुःखमें न डालें और भविष्यमें फिर ऐसा अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा की।

मैंने काँपते हाथों चिट्ठी पिताजीके हाथमें दी। वे बीमार बिस्तरपर पड़े थे। उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आँखोंसे मोतीकी बूँदें टपकीं। चिट्ठी भीग गयी। उन्होंने क्षणभरके लिये आँखें मूँदीं, चिट्ठी फाड़ डाली और स्वयं पढ़नेके लिये उठ बैठे थे,सो फिर लेट गये।

मैं भी रोया। पिताजीका दुःख समझ सका।

मोतीकी बूँदोंके उस प्रेमबाणने मुझे बेध डाला। मैं शुद्ध बना। इस प्रेमको तो अनुभवी ही जान सकता है।

मेरे लिये यह अहिंसाका यथार्थ पाठ था।'

× × ×

यों सत्यधर्मकी प्रेरणा गाँधीजीको सतत प्रेरित करती चली। उनका सारा जीवन सत्यका ही प्रयोग था आदिसे अन्ततक। वे कहते हैं—'मैं पुजारी सत्यरूपी परमेश्वरका ही हूँ। वह एक ही सत्य है, दूसरा सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं है। लेकिन मैं इसका शोधक हूँ। इस शोधके लिये मैं अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुका त्याग करनेको भी तैयार हूँ और मुझे यह विश्वास है कि इस शोधरूपी यज्ञमें अपने इस शरीरको भी होमनेकी मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयारी और शक्ति है।'

गाँधीजीने अपनी यह तैयारी प्रत्यक्ष करके दिखा दी। उनका बलिदान सत्यकी वेदीको ही उज्ज्वल बना रहा है।

× × ×

सत्यधर्मकी यह प्रेरणा हर मानवके हृदयमें होती है, होनी चाहिये। हम उसे दबा देते हैं, यह बात दूसरी है। सत्यकी प्रेरणा होनेपर मनुष्य कोई गलत काम कर नहीं सकता। करता भी रहता है तो सत्यकी प्रेरणा उसे गलत रास्तेसे हटाकर सही रास्तेपर ला खड़ा करती है।

इतना अलबत्ता है कि सत्यकी प्रेरणापर चलना आसान नहीं। उसमें कदम-कदमपर मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, पग-पगपर संकट झेलने पड़ते हैं। वह पुष्पोंकी नहीं, काँटोंकी शय्या है। सचमुच यह महान् तपस्याका मार्ग है।

आजका विश्व जिस प्रवाहमें बह रहा है, उसमें सत्य-धर्मकी प्रतिष्ठा कम होती चल रही है। यों, असत्यको भी अपने अस्तित्वके लिये सत्यका ही आश्रय लेना पड़ता है। असत्यकी अपनी कोई हस्ती नहीं। सत्यके सहारे ही वह थोड़ी देर टिक पाता है। पर, सत्यपर डटे रहनेसे मानवको जो सुख मिलता है, जो संतोष मिलता है,जो आनन्द मिलता है, वह असत्यपर चलनेवालेको कहाँ मिलेगा?

माना, सत्यधर्मकी प्रेरणापर चलना कष्टकर होता है, उसमें त्याग और तपस्या करनी होती है, पर इससे क्या? कष्टोंकी ज्वालामें तपकर ही तो कञ्चन कञ्चन बनता है।

× × ×

टाल्सटाय, अमीरीमें पला टाल्सटाय विषय-भोगोंमें डूबा रहता है। पर एक दिन उसके अन्तस्‌में सत्यधर्मकी प्रेरणा होती है—'छिः-छिः, कैसा अधम है मेरा जीवन! क्या इसीलिये मेरा जन्म हुआ है कि मैं रात-दिन भोग-विलासमें डूबता-उतराता रहूँ? मेरे आसपास हजारों-लाखों भाई-बहन कैसी गरीबीका जीवन बिता रहे हैं, कितने कष्ट झेल रहे हैं, कैसे शोषणकी चक्कीमें पिस रहे हैं—और मैं रात-दिन मौज मार रहा हूँ!…' और वह चल पड़ता है सत्यके मार्गपर!

अपनी जीवनगाथा वह खोलकर रख देता है सत्यरूपी परमेश्वरके चरणोंमें। उसका जीवन सर्वथा बदल जाता है।

× × ×

असत्यका वातावरण आज हमें चारों ओरसे घेरे है। सब लोग बेतहाशा दौड़े जा रहे हैं उसकी ओर! कामिनी और काञ्चनकी माया हमें पथभ्रष्ट कर रही है। हम पैसे-पैसेके लिये ईमान बेच रहे हैं, इज्जत बेच रहे हैं, स्वाभिमान बेच रहे हैं। सत्य बेचारा कोनेमें पड़ा है। नक्कारखानेमें तूतीकी आवाजको कौन सुनता है!

पर , क्या यह सही है? असत्यपर सत्यको न्योछावर कर देना क्या ठीक है? हमारा जीवन गलत रास्तेपर जा रहा है तो क्या उसी प्रवाहमें हमें उसे बहने देना चाहिये? लोभ और लालच, सत्ता और मदकी चमचमाहटमें हमें अपनेको खो देना चाहिये?

हमें अपने-आपसे इन प्रश्नोंका उत्तर माँगना चाहिये। हमें स्मरण रखना चाहिये कि असत्य सदा टिकनेवाला नहीं। उसके लिये अपनेको गिराना कभी उचित नहीं। उपनिषद् कहता है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

सत्यका मुख ढका है सोनेके ढक्कनसे। तू यदि सत्यका दर्शन करना चाहता है तो उसे खोल। आइये, हम इस ढक्कनको खोलनेका प्रयत्न करें।

पिता-माता ईश्वरके प्रतिनिधिस्वरूप हैं, साक्षात् प्रत्यक्ष देवता हैं। पिता-मातामें परमात्मसत्ताकी स्फूर्तिके दर्शनकर गाढ़ भक्तिभावसे इनकी सेवा करते रहनेसे भी निश्चय ही मनुष्यको सिद्धि मिल जाती है।

—विजयकृष्ण गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ८६६ से आगे]

१६-आजीवन ब्रह्मचारीके लिये सबसे पहली बात यह है कि वह अपनी एक निष्ठाका निर्णय—निश्चय कर ले। उसे चार निष्ठाओंमेंसे अपने लिये कोई एक चुन लेना चाहिये—

(१) कर्म—यज्ञ-यागादि, वेदोक्त कर्मकाण्ड, अशिक्षा-निवारण, रोगनिवारण, स्वच्छताका प्रचार, लोगोंमें नैतिक जीवनकी ओर रुचि उत्पन्न करना।

(२) उपासना—गायत्रीजप, नामजप, देवाराधन, संकीर्तन, कथाश्रवण, भक्तिके विभिन्न अङ्गोंका अनुष्ठान।

(३) योग—आसन, प्राणायाम आदिके द्वारा चित्तवृत्तियोंके निरोधका अभ्यास।

(४) ज्ञान—श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा आत्म-साक्षात्कारके लिये प्रयत्न।

—इन चारोंमेंसे किसी एकको प्रधान और शेषको गौणरूपसे धारण करना चाहिये। सभी निष्ठाओंमें इन्द्रियसंयम, मनोनिरोध एवं सदाचारयुक्त मृदु व्यवहारकी अपेक्षा है। किसी एक निष्ठाको स्वीकार किये बिना अकर्मण्यता—बेकारी आनेका डर रहता है, जिससे मनमें विकारोंके आ जानेकी सम्भावना रहती है। निकम्मे आदमीका जीवन प्रमादका घर होता है।

१७-ब्रह्मचारीको कामविजयके साथ-ही-साथ अत्यन्त सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिसे अन्य दोषोंपर भी ध्यान रखना चाहिये। काम बड़ा मायावी है। वह तरह-तरहके रूप धारण करके आक्रमण करता है, जैसे—

(क) मोह-ममता—यह मेरा प्रिय व्यक्ति अथवा प्रिय वस्तु है, पहले इस प्रकार सम्बन्ध जोड़कर पीछे भोगबुद्धि उत्पन्न करा देता है।

(ख) लोभ—पहले साधनाकी सुविधा और आवश्यक सामग्रीके छलसे द्रव्य इकट्ठा करा लेता है और पीछे वासनापूर्तिके लिये उसका उपयोग करता है।

(ग) क्रोध—पहले अपने आलोचक अथवा निन्दकको अपने मार्गसे हटा देता है और फिर इच्छापूर्तिकी छूट दे देता है।

(घ) मान-प्रतिष्ठा—पहले लोगोंके चित्तपर अपनी धाक जमाकर फिर मनमानी कराता है।

(ङ) मिथ्या अभिमान—'अब मेरा चित्त निर्विकार हो चुका है, मैं योगी हूँ, ज्ञानी हूँ, भक्त हूँ, सिद्ध हूँ'—इस प्रकारकी अन्धता उत्पन्न करके फिर भोगके गढ़ेमें डाल देता है, इत्यादि।

कामके इन मायावी रूपोंसे बचनेके लिये सतत सावधानीकी आवश्यकता है। इसके लिये इन उपायोंपर चलना चाहिये—

(१) किसीसे विशेष हेल-मेल न बढ़ाना, सम्बन्धी एवं परिचितोंके देशमें न रहना और न आना-जाना।

(२) पैसे एवं वस्तुओंका संग्रह न करना।

(३) आलोचक एवं निन्दकोंको अपना हितैषी समझना और उनकी आलोचनाका आत्मनिरीक्षणमें सदुपयोग करना। कभी-कभी निन्दकोंके द्वारा अपने ऐसे छिपे दोषोंका पता चल जाता है, जिनका ज्ञान स्वयं साधकको भी नहीं रहता।

(४) अपने ऊपर लोगोंकी विशेष श्रद्धा कभी न कराये। मान-प्रतिष्ठाका अत्यन्त निषेध भी न करे; क्योंकि वह निषेधसे ही बढ़ती है। जहाँतक हो सके स्वयं उससे बचना चाहिये।

(५) किसी प्रकारका अभिमान धारण न करे। अभिमान ही कामका आश्रय है। अभिमानके सहारे ही वह फलता-फूलता है। परिपूर्णतम परब्रह्म परमात्मामें द्वैत नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, फिर कौन किसका अभिमान करे।

१८-प्राकृत पदार्थोंके सेवनसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती है, विकृत पदार्थोंके सेवनसे नहीं, जैसे पीली एवं सोंधी, ठंडी मिट्टीका शरीरमें लेप करनेसे और गन्ध सूँघनेसे जितना लाभ होता है, तेल-फुलेल-इत्र आदिसे उसका शतांश भी नहीं। गङ्गा आदि नदी, समुद्र एवं वर्षाका जल भी पान-स्नानके द्वारा ब्रह्मचर्यके लिये हितकारी है, सोडावाटर, नल इत्यादिका नहीं। अग्नि एवं सूर्यका सेवन—उपस्थान-नमस्कार आदि वीर्यको पचाता है। हवन और सूर्योपस्थानका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी एक प्रयोजन है। बिजलीकी रोशनीसे ब्रह्मचर्यमें कोई सहायता नहीं मिलती। खुली हवा एवं अनाहत नाद जितने उपयोगी हैं, उनके सामने पंखेकी हवा और आहत शब्दकी कोई गिनती ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारीको कृत्रिम पदार्थोंसे दूर ही रहना चाहिये। फल, शाक, दूध, कच्चे और अंकुरित अन्न ब्रह्मचर्य-रक्षामें बड़े सहायक हैं। घी, दही लाभकारी नहीं हैं। घीसे मेदोवृद्धि, अपच और पाचनयन्त्रोंपर भारका आधिक्य होता है। दहीकी अम्लता धातुको क्षीण करती है। जहाँतक हो सके स्वाभाविक, स्वच्छ और अन्तर्मुख करनेवाले प्रदेशमें रहना चाहिये और वैसी ही वस्तुओंका सेवन भी करना चाहिये।

१९-रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। रसना जो रस ग्रहण करती है, वही शुद्ध और पक्व होकर वीर्यके रूपमें परिणत होता है। यदि रसपर काबू नहीं है तो वीर्यपर भी नहीं रह सकता। कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियका ही पूरक औजार है। रसना यदि रस ग्रहण करेगी तो ठीक पाचन न होनेपर उसका क्षरण अनिवार्य है। इसलिये रसनाकी रसासक्तिपर कड़ी नजर रखनी चाहिये, जैसे—

(१) भोजनमें स्वादपर दृष्टि नहीं रखना। केवल जीनेभरके लिये हितकारी वस्तुओंसे उदरपूर्तिमात्र कर लेना। शौकसे खट्टी, मीठी, चरपरी वस्तु नहीं खानी चाहिये। न स्वादके लिये ही खानी चाहिये।

(२) स्वयंपाकी हो तब तो नमक, मीठे, खट्टे, मसालेका प्रयोग ही नहीं करना चाहिये। शुद्ध सात्त्विक एवं परिमित अल्प भोजन समयपर ही करना चाहिये। अनेक बार भोजन नहीं करना चाहिये।

(३) यदि किसी समुदाय या आश्रममें रहना हो तो जो कुछ वहाँ स्वाभाविक एवं अविरुद्ध भोजन बनता हो वही खाना चाहिये। अपनी व्यक्तिगत इच्छा प्रकट नहीं करनी चाहिये। अलगसे माँगकर, खरीदकर जिह्वातृप्ति नहीं करनी चाहिये।

(४) यदि भिक्षा करते हों तो जो विरुद्ध वस्तु भिक्षामें आवे उसको त्याग दे, परंतु अनुकूल वस्तु माँगे नहीं। बड़ोंकी अधीनता, श्रद्धा, सेवा, श्रम और व्यर्थ समय न खोना—ये ऐसे उपाय हैं जिनसे हम क्या खायँगे, इसपर ध्यान ही नहीं जाता।

(५) आवश्यक भोजन एक बार ही परोसवा लें, बार-बार न लें। ठंडे-गरमका विचार न करें। दूसरा क्या खा रहा है यह देखे बिना मौन होकर भोजन करें। सम्भव हो तो वस्तुओंकी और ग्रासोंकी गिनती निश्चित कर लें।

(६) भोजनके प्रारम्भमें भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। इससे स्वतः-प्राप्त स्वादिष्ट भोजनके प्रति स्वादवासनाका दोष मिट जाता है।

(७) भोजनके पहले पाँच ग्रास प्राणोंको आहुतिके रूपमें देने चाहिये, **'प्राणाय स्वाहा'**, **'अपानाय स्वाहा'** इत्यादि। इससे मैं भोक्ता हूँ अथवा स्वाद ले रहा हूँ, यह भ्रान्ति छूट जाती है।

(८) मैं नहीं खा रहा हूँ, मेरे नाभिचक्रमें वैश्वानर अग्निके रूपमें बैठे हुए स्वयं भगवान् ही भोजन कर रहे हैं—इस भावसे भोजन करनेपर स्वादकी वृत्ति चली जाती है।

स्वयंपाकी ब्रह्मचारीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने लिये ही भोजन न बनाये। और किसीको खिला करके ही खाय **'केवलाघो भवति केवलादी।'**

२०-किसी व्यक्तिका सौन्दर्य अथवा उसके द्वारा निर्मित वस्तुका सौन्दर्य देखनेकी वासना अन्ततोगत्वा भोगमें परिणत हो जाती है। इस नेत्रवासनाने बड़े-बड़ोंको विकारके अग्निकुण्डमें झोंक दिया है। नेत्रवासनाने केवल पतिंगेको ही भस्म नहीं किया, बड़े-बड़े विद्वानों, योगियों और सदाचारियोंको भी पतनके गड्ढेमें ढकेलकर सर्वनाशतक पहुँचा दिया। बिल्वमंगलने आँख फोड़कर इससे पिण्ड छुड़ाया। इसपर विजय प्राप्त करनेके लिये बहुत जागरूक रहना चाहिये।

(१) मन-ही-मन चामका पर्दा हटाकर तब व्यक्तियोंको देखना चाहिये।

(२) जगज्जननी जगदम्बाको ही सर्वत्र देखना चाहिये। परमहंस राम-कृष्णके सम्बन्धियोंने उन्हें गृहस्थ-जीवनसे उदासीन देखकर एक वेश्याकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न किया। जब वेश्या अपने हाव-भाव-कटाक्षसे उन्हें आकृष्ट करनेका प्रयत्न करने लगी, तब परमहंसजी तीन बार 'मा! मा!! मा!!!' कहकर समाधिस्थ हो गये। वे जगज्जननीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासक थे।

(३) अपने इष्टदेवकी अनुपम रूप-माधुरीका प्रेमसे चिन्तन करना चाहिये। एक बार श्रीरामानुजाचार्यने श्रीरङ्गक्षेत्रमें वेश्याके रूप-सौन्दर्यपर आसक्त व्यक्तिको देखा। वह वेश्याके सामने उसकी ओर मुँह करके छाता लगाये हुए था और पीछेकी ओर चलता था। आचार्यचरणने उसके ऊपर कृपा की और अपने निवास-स्थानपर बुलाकर अपने आराध्यदेवके ऐसे अलौकिक सौन्दर्यका दर्शन करा दिया, जिसपर उसने अपना जीवन, अपना सर्वस्व ही न्यौछावर कर दिया और प्रभुके चरणोंका सेवक बन गया।

(४) चलते समय चार हाथसे अधिक न देखना। इधर-उधर न देखना। तिरछी और चुभती हुई नजरसे किसीको न निहारना। दृष्टि पक्की करनेका अभ्यास करना।

(५) रंगोंके उभार और आकृतियोंके आड़े-तिरछेपनमें कभी महत्त्वबुद्धि न करना।

(६) अन्तःसौन्दर्यकी अनुभूति, ईश्वरीय सौन्दर्यका अनुसंधान और प्राकृत सौन्दर्यके निरीक्षणसे व्यक्तिगत सौन्दर्यका आकर्षण एवं प्रलोभन नहीं रह जाता।

(७) सौन्दर्यका सच्चा स्वरूप निर्विकारता है, यह बात ध्यानमें रहनी चाहिये।

२१-वैसे तो सभी सांसारिक सुख स्पर्शजन्य ही हैं। कानकी झिल्लियोंसे जो स्पर्श होता है, उसे शब्द कहते हैं और आँखकी किरणें जिससे टकराती हैं, उसको रूप, परंतु इस प्रसंगमें स्पर्शका अभिप्राय त्वचा इन्द्रियके कार्यसे है। दाद खुजलानेसे जैसा सुख होता है, कामसम्बन्धी सुख भी प्रायः वैसा ही है। स्पर्श भोगका अवश्यम्भावी पूर्वरूप है। इसीलिये ब्रह्मचारीको स्पर्शसे बचना चाहिये। यह बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों एवं योगियोंको भी बेसुध करके बन्धन-स्थानपर पहुँचा देता है।

स्पर्शके सम्बन्धमें ये सावधानियाँ रखनी चाहिये—

(१) स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्रीका स्पर्श कभी न करे।

(२) लड़कियों और लड़कोंका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। एक बड़े अनुभवी, ईमानदार एवं सच्चे बाल-ब्रह्मचारीने मुझे बताया कि वे थोड़ी आयुके बालक और बालिकाओंको अपनी गोदमें बैठाकर प्यारसे उनके कपोल आदिका स्पर्श कर लिया करते थे। उनके मनमें अपनी निर्विकारताका अभिमान था। धीरे-धीरे भक्त शिष्योंकी बालक-बालिकाएँ वयस्क हुईं। स्पर्शकी क्रिया पूर्ववत् चलती रही। अब बुढ़ौतीमें उन युवतियोंके स्पर्शसे मनमें विकार आने लगा। उन्होंने अब स्पर्श न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, यद्यपि पंद्रह वर्ष पूर्व वे मना करनेवालोंकी खिल्ली उड़ाया करते थे।

(३) कोमल शय्या, वस्त्र, चन्दन, पुष्पमाला आदि भक्तोंके आग्रहपर भी स्वीकार नहीं करने चाहिये।

(४) साबुन, क्रीम आदिके द्वारा अपने शरीरको मुलायम नहीं बनाना चाहिये।

(५) अपने ही शरीरके कपोल, गुह्याङ्ग आदिका बार-बार स्पर्श करना भी ब्रह्मचर्यका घातक है।

(६) गायत्री-जप, शरीरके प्रत्येक अवयवमें न्यास, ध्यान, त्रिकालस्नान, हाथोंमें कुश-मुष्टि, दण्ड आदिका धारण, वल्कल-वसन, भस्मधारण आदिके द्वारा जनसाधारणसे अपनेमें एक प्रकारकी पृथक्ता एवं अपनी पवित्रता तथा दिव्यताकी भावना जाग्रत् कर लेनी चाहिये। इससे दूसरोंके एवं अपने गुह्याङ्गोंके स्पर्शसे रक्षा हो जाती है।

(७) ईश्वर, गुरु एवं अन्तरात्माको साक्षी बनाकर यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि ब्रह्मचर्यव्रतके विपरीत स्पर्श होनेपर मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा। मेरे पास एक एम० ए०, डी० लिट्० महाशय आया करते थे। उनमें रूपवती युवतियोंकी ओर घूरने तथा चलते-फिरते उन्हें छू देनेका दोष था। उन्होंने मेरे सामने यह प्रतिज्ञा की कि बुरी नीयतसे स्पर्श होनेपर गङ्गाजीमें कूदकर प्राण दे दूँगा। थोड़े ही दिनोंमें उनकी घूरनेकी आदत भी छूट गयी। जिस रास्तेपर जाना ही नहीं है, उसके मीलके पत्थरोंकी गिनती मालूम करनेसे क्या लाभ है?

(८) ऐसे ग्रन्थोंका अनुसंधान करना चाहिये, जिनमें अस्पर्श व्रतकी महिमाका उल्लेख है, जैसे वाल्मीकिकृत रामायणके सुन्दरकाण्डमें सतीशिरोमणि श्रीजानकीजीकी कथा है। उन्होंने अपने पुत्रवत् परम भक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीहनुमान्‌जीको भी स्पर्श करनेसे मना कर दिया था।

एक बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये। रूप, स्पर्श आदिकी वासनाएँ मनकी कमजोरी हैं। दृढ़ प्रतिज्ञा, निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सावधानीसे ही इनपर विजय प्राप्त की जा सकती है।

२२-यद्यपि शास्त्रोंमें केवल जननेन्द्रियके संयमको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं, तथापि समस्त इन्द्रियोंका संयम हुए बिना ब्रह्मचर्यकी रक्षा सम्भव नहीं। जब किसी इन्द्रियके द्वारसे मनको बाहर निकलनेका अवकाश नहीं मिलता, तब उसमें एकाग्रता और निरोध-दशाका उदय होने लगता है। यह बड़े-बड़े खेल खेलता है। विक्षेपप्रिय होनेके कारण एकाग्रता इसे जेलके समान मालूम पड़ती है। निरोध तो मानो कालकोठरी ही हो। एक इन्द्रियका संयम करो तो यह दूसरी इन्द्रियसे भाग निकलनेकी कोशिश करता है। वाणीको बंद करते ही हाथसे लिखनेकी कलासे मोहित कर लेता है। यदि ब्रह्मचारीने समस्त इन्द्रियोंके निग्रह और संयमका कौशल प्राप्त करनेमें कुछ निपुणता प्राप्त कर ली तो शरीरमें हनुमान्‌का-सा बल, भीष्मकी-सी इच्छामृत्यु, सनकादिके समान नित्य शैशव आदि प्राप्त करानेकी लालसाका रूप धारण करके चमत्कारोंके चक्करमें डाल देता है। अथवा प्रचारकी तीव्र वासनाको प्रोत्साहित करता है। परमार्थ-पथके पथिकोंको इनसे परहेज करना चाहिये। उन महापुरुषोंमें वे सिद्धियाँ स्वाभाविक थीं, उन्होंने ब्रह्मचर्यसे उन्हें खरीदा नहीं था। साधारण साधकका मन निरोधके भयसे ही उनकी इच्छा उपस्थित करता है।

२३-यदि चमत्कारोंके चक्कर और प्रचारकी वासनासे बचकर मन और इन्द्रियगोलकोंका सम्बन्ध रोक दिया गया, इन्द्रियाँ शान्त और स्थिर हो गयीं तो स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि विषय और इन्द्रियोंमें कोई भेद नहीं है। एक ही जड़ सत्ता दो रूप धारण किये हुए है। वही विषय है और वही इन्द्रिय है। विषयगत रूप और नेत्रगत रूपमें कोई भेद नहीं है। ऐसी अवस्थामें मन स्वतन्त्र विषयोंकी सृष्टि करने लगता है। साधारणतः अनुभूयमान प्रपञ्चसे विलक्षण गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्दकी संवित् होने लगती है। अनेकों प्रकारके दिव्य दृश्य, चित्र-विचित्र अनुभूतियाँ, देवता, दानव, स्वर्ग-ब्रह्मलोक आदिके दर्शन होने लगते हैं। यह सब मनके ही आकार-विशेष हैं। शास्त्र, सम्प्रदाय, मत, पन्थ, व्यक्तिगत जानकारी, मान्यता एवं भावनाएँ जो बुद्धिमें संस्काररूपसे निहित रहती हैं, उदय हो-होकर एक जाल-सा बिछा देती हैं और साधकको उन्हींमें नित्यबुद्धि, सत्यबुद्धि उत्पन्न कराकर फँसा देती हैं। इस अवस्थामें साधक ऐसा समझने लगता है कि अब मेरा प्रवेश दिव्य राज्यमें हो गया है और मैं भागवत-सत्ता एवं भगवल्लीलाका अनुभव कर रहा हूँ। यह भी भ्रम है। जहाँतक नाम और आकृतियोंका भेद है, वहाँतक वास्तविक सत्ताका अनुभव नहीं है। इसका भी निरोध आवश्यक है। तत्पश्चात् एक अपूर्व आनन्दका, इस आनन्दका भोग भी ब्रह्मचर्यका विघ्न ही है। जब आनन्दकी वृत्ति भी शान्त हो जाती है, तब अस्मितामात्र शेष रह जाती है। इस अवस्थामें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि अस्मितासे लेकर विषयपर्यन्त एक ही प्रकृतिका, जड सत्ताका विलास है। मैं तो केवल द्रष्टामात्र हूँ। मैं अकर्ता, अभोक्ता अर्थात् नित्य ब्रह्मचारी हूँ।

२४-यह अनुभूति भी वास्तविक नहीं है। इसमें भी संस्कारशेष विद्यमान रहते हैं। विषयगत भेदके संस्कार ईश्वरके सम्बन्धमें अन्यत्वकी कल्पना और द्रष्टाके अनेक होनेकी भ्रान्ति इस अवस्थामें भी विद्यमान होते हैं। कोई भी अभ्यासजन्य समाधि, चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न रख लिया जाय, अज्ञानकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहीं है। उनकी निवृत्ति तो '**तत्त्वमसि**' आदि महावाक्यजन्य वृत्तिज्ञानसे ही होती है। समाधिके द्वारा अन्तःकरणके समस्त संस्कार अथवा अशुद्धियोंके धुल जानेपर स्वतःसिद्ध निरुपद्रव पूर्णबोधात्मक अखण्ड चिति ही शेष रह जाती है और वही आत्माका, ईश्वरका और जगत्‌का भी सच्चा स्वरूप है। ब्रह्मचर्यका भी वास्तविक स्वरूप वही है। इस पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति, समस्त साधन, वेद-शास्त्र आदिका लक्ष्य है। इसीका अनुभव, साक्षात्कार अथवा बोधात्मक उपलब्धि होनेसे मनुष्य-जीवन, जीव-जीवन सफल—चरितार्थ होता है।

२५-पूर्ण ब्रह्मचर्यमें बाधात्मक स्थिति होनेपर ये शुभ सद्‌गुण जीवनमें स्वाभाविक ही रहने लगते हैं—व्यवहारशुद्धि, अन्तःकरणकी निर्मलता और सहज स्थिति। साधन-कालमें इनके लिये प्रयास करना पड़ता है और सिद्धिकालमें बिना प्रयत्नके स्वतः सिद्ध होते हैं—

(१) व्यवहारशुद्धि—संयम, सरलता, सादगी, समता, सत्यता, सदाचार आदि सद्‌गुण स्वाभाविक ही जीवनमें उतर आते हैं। बाह्य वस्तुओंमें सुखबुद्धि न रहनेके कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यायसे संग्रह-परिग्रहका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भोगलिप्सासे उत्पन्न होनेवाली हिंसा स्वत: निवृत्त हो जाती है। किसी वस्तुके नाशका भय नहीं रहता। छोटे-से-छोटे कार्यमें भी दैवी सम्पत्तिके महान् गुणोंका प्राकट्य होने लगता है। जाति, पन्थ और भाषाका दुराग्रह मिट जाता है। वह समाज, जाति, राष्ट्र, मानवता, विश्व एवं विश्वात्माका सच्चा सेवक होता है। उसके शरीरके कण-कण, रोम-रोम, रग-रग विश्वहित, भगवत्प्रेम और आत्मज्ञानसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनकी ऐसी रश्मियाँ एवं धाराएँ बिखरती रहती हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रेमसे परिप्लुत हो जाय।

(२) अन्तःकरणकी निर्मलता—अन्तःकरणके अच्युत-तत्त्वमें स्थित हो जानेसे विषयसम्बन्धी सारे विकार स्वयं ही दूर हो जाते हैं। निर्विकार अन्तःकरणकी जो अपने सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन-आश्रयसे अभिन्न स्थिति है, वही शुद्धि है; क्योंकि उसमें वृत्ति और विषयका मिश्रण नहीं है। मिश्रण ही अशुद्धि है। चित्तमें जितने भी दोष, दुर्गुण, अशुद्धि, विकार होते हैं, उनमें कोई-न-कोई विषय वृत्तिके गर्भमें विद्यमान रहता है, यथा—काममें कामिनी, क्रोधमें शत्रु, लोभमें धन इत्यादि, परंतु सत्य, अहिंसा, निष्कामता, निर्लोभता आदि सद्गुणोंमें अन्तःकरण सर्वथा निर्मल एवं निर्विषय रहता है। उस समय वृत्ति अपने शान्त आश्रयसे भिन्न करके अपनेको नहीं दिखाती। सत्य, अहिंसा, निष्कामता आदि किसके प्रति हो, यह प्रश्न ही नहीं उठता। वृत्तिकी सत्तामात्र स्थिति ही सद्गुण है। इसपर यह प्रश्न होता है कि ऐसी अवस्थामें सद्गुण अनेक क्यों? इसका उत्तर यह है कि एक ही शान्त स्थितिरूप सद्गुणोंको हिंसा, लोभ, काम आदि भिन्न-भिन्न दुर्गुणोंकी निवृत्ति करनेके कारण विभिन्न नामोंसे व्यवहार करते हैं। दुर्गुण अनेक हैं, इसीसे उनकी व्यावर्तक वृत्तिमें भी अनेकताका व्यवहार होता है। जैसे कामका विषय कामिनी है, वैसे ब्रह्मचर्यका कुछ विषय नहीं है। यह तो चित्तकी शान्ति ही है। काम केवल जाग्रत् तथा स्वप्नमें रह सकता है और समाधिमें नहीं। ब्रह्मचर्य जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि आदि सभी अवस्थाओंमें एकरस रहता है, इसलिये यह अखण्ड सत्य है। अतएव अखण्ड ब्रह्मचर्यमें स्थिति ही अन्तःकरणकी सच्ची शुद्धि है।

(३) सहज स्थिति—समाधि हो चाहे विशेष ब्रह्मचारीकी सहज स्थिति, भंग नहीं होती। उसके लिये प्रवृत्ति और निवृत्ति सम है। उसके अपने स्वरूपसे भिन्न द्रष्टा, दर्शन, दृश्य कुछ भी नहीं है। वह सहज भावसे रहता है। अपने जीवनमें किसी प्रकारकी विशेषताका आरोप नहीं करता। उसका व्यवहार सम है, वृत्ति सम है, स्वरूप सम है और विषमता भी सम है। वह जीवन्मुक्त है, उसकी स्थिति सहज है। [समाप्त]

खतरनाक चोर

रास्तेमें पड़े हुए हड्डीके टुकड़ेसे अपने-आपको बड़ी सावधानीसे बचानेवाला मनुष्य चमड़ेसे मढ़ी हुई हड्डियोंका स्पर्श करनेके लिये कितना पागल हो जाता है?

इस शरीरमें आड़ी-तिरछी हड्डियाँ जमायी गयी हैं और मांस-पिण्ड रखकर उन्हें नाड़ियोंसे बाँधा गया है। बादमें ऊपरसे सुन्दर चमड़ेका आवरण चढ़ाया गया है।

इस शरीरसे निकलनेवाले किसी भी पदार्थको देखनेके लिये मन तैयार नहीं होता है, फिर भी उसके स्पर्शके लिये मन कितना अधिक पागल हो जाता है?

याद रखो, ये इन्द्रियाँ चोरसे भी ज्यादा खतरनाक हैं। चोर जिसके घरमें रहता है, उसके यहाँ तो कम-से-कम चोरी नहीं ही करता है, किंतु इन्द्रियाँ आत्माके घरमें रहकर भी उसका विवेकरूपी धन लूट लेती हैं और उसे गर्तमें गिरा देती हैं।

अतः अपनी आत्माके विवेकरूपी धनको लूटनेके लिये तैयार बैठी इन्द्रियोंसे हमेशा सावधान रहो।

—गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद

[गताङ्क पृ०-सं० ८८१ से आगे]

जो स्वाभाविक प्रेम होता है, वह सर्वदा एकरस बना रहता है, किंतु कृत्रिम प्रेम घटता-बढ़ता है। वह सर्वदा नहीं रहता। स्वाभाविक प्रेम कारणसे होता है और कृत्रिम प्रेम कार्यसे। कारण पृथ्वी और कार्य खिलौना समझना चाहिये। सबके मूल कारण भगवान् हैं। अत: स्वाभाविक प्रेम केवल भगवान्‌में ही हो सकता है।

शुद्ध प्रेममें कामकी गन्ध, स्वार्थकी गन्ध अथवा विचारकी गन्ध भी नहीं होती।

जब भगवान्‌को स्मरण न करनेपर भी भक्त भगवान्‌को न भूले तभी सच्ची भक्ति है, जिस प्रकार कि जीव याद न करनेपर भी अपने शरीरको नहीं भूलता।

मानसी भाव पैदा करना भक्तका मुख्य कर्तव्य है। भक्तका सिद्धान्त तो प्रेम है, वह धन खर्च करनेसे नहीं मिलता। जो लोग शरीरद्वारा गुरु, संत या भगवान्‌की सेवा करते हैं, उन्हें ही मानसी भावकी प्राप्ति होती है। इसकी दृढ़ता केवल सेवासे ही होती है। देखो, नामदेवकी माँ दस सालकी आयुमें ही विधवा हो गयी थी। ये लोग छीपी थे। इनमें दूसरा विवाह हो सकता था, परंतु उसके पिताने उसे भगवान्‌की सेवामें लगा दिया। उनमें उसकी ऐसी दृढ़ भावना हो गयी कि उसे जिस चीजकी इच्छा होती थी, वह भगवान्‌से माँग लेती थी। एक बार उसे काम-विकार हुआ। इसके लिये भी उसने भगवान्‌से प्रार्थना की। बस, उसे गर्भ रह गया। उसके पिताको संदेह हुआ तो आकाशवाणी हुई कि यह गर्भ मेरा है। उसीसे नामदेवका जन्म हुआ। यह दृढ़ भावनाकी बात है।

प्रेमियोंकी क्या पहचान है, इस विषयमें किसीने कहा है कि उनके कपड़े जीर्ण-शीर्ण होते हैं और शरीर बहुत कृश होता है—***'आशिकोंके ये पते। तन लटे कपड़े फटे॥'***

भगवत्सम्बन्ध होनेपर तो धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य नीचे ही रह जाते हैं। भला, जिसकी भजनमें आसक्ति है, उससे पाप कैसे हो सकता है? यदि दैवात् कुछ हो जाय तो उसमें आसक्ति न रहनेके कारण उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम तो एक ही जगह हुआ करता है—ऐसा सबका अनुभव है।

श्रीनारायण स्वामीजीने प्रेमीके स्वरूपका कैसा अद्भुत वर्णन किया है—

रूप छके झूमत रहें, तनको तनिक न ध्यान।
नारायन दृग जल भरे, यही प्रेमि-पहचान॥
विरद कमण्डलु कर लिये, वैरागी दोउ नैन।
माँगत दरश मधूकरी, छके रहें दिन-रैन॥

प्रथम तो प्रेम करना ही कठिन है, फिर उससे भी कठिन उसे छिपाना है।

लड़कीका प्रेम अपने पतिमें ही होता है, किंतु पतिके नाते वह और सब घरवालोंकी भी सेवा करती रहती है। इसी प्रकार जब अपने इष्टमें निष्ठा हो जाती है तो उसके अतिरिक्त और वस्तु ही कहाँ हैं। फिर तो सब नाम और सब स्वरूप अपने इष्टके ही हो जाते हैं। अत: किसी अन्य नाम या अन्य स्वरूपमें निष्ठा रखनेवालोंसे कैसे द्वेष हो सकता है?

प्रेममें कोई रास्ता नहीं है। आकर्षण होनेपर याद करना ही इसका रास्ता है। इसमें किसी प्रकारका निषेध या विधि-विधान भी नहीं है। बस, आसक्ति होनेपर संयोग होना ही आनन्द है।

प्रेमीकी स्थिति सुख-दु:खमें समान है, क्योंकि उसकी स्थिति तो निरन्तर प्रेममें ही रहती है।

प्रेमी दूसरेकी ओर देखना नहीं चाहता और न उसका चित्त ही कभी दूसरेमें जाता है। अत: जबतक ऐसी बात न हो, तबतक प्रेम नहीं कहा जा सकता।

भगवान् 'हरि' हैं। उसका यह अर्थ नहीं कि भगवान् भक्तके पापोंको हर लेते हैं, क्योंकि जबतक पाप दूर नहीं होते, तबतक तो भक्तिका आरम्भ भी नहीं होता। भगवान् हरि हैं, अत: वे भक्तका चित्त हर लेते हैं। भक्तका चित्त भगवान्‌के ही पास रहता है। चिन्तन और आसक्ति एक ओरसे ही नहीं होते। अत: भक्त भगवान्‌का स्मरण करता है और भगवान् भक्तका स्मरण करते हैं। भगवान् भक्तके ही हृदयमें रहते हैं, भक्तके ही सामने प्रकट होते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त सर्वत्र उनकी झाँकी करने लगता है।

भगवान् भक्तके सामने नाचने लगते हैं और भक्त सर्वदा उन्हें अपने समीप ही देखता है। वह उन्हें कहीं अन्यत्र नहीं देखता।

जब भगवान्से प्रेम हो जाता है तो संसारकी समस्त कामनाएँ जाती रहती हैं।

अपने प्रेमास्पदका नाम लेनेपर प्रेमीका मन रुक जाता है। जैसे योगीकी सुषुम्ना नाड़ीसे अमृत टपकता है, वैसे ही प्रेमीकी आँखोंसे अमृतकी धारा बहती रहती है। प्रेमका साधन तो नियम ही है, परंतु प्रेमकी सिद्धि होनेपर नियम उसमें बाधक हो जाता है। गाढ़ अनुराग ही प्रेमकी सिद्धावस्था है।

भक्त ज्ञानकी इच्छा कभी नहीं करता। वह तो भगवान्को आत्मनिवेदन करके प्रेमानन्दमें मग्न रहता है। उसमें अहंता-ममता नहीं रहती। वह तो अपना सर्वस्व प्रभुको अर्पण कर चुकता है। यह अर्थ, धर्म, काम और मोक्षसे भिन्न पाँचवाँ पुरुषार्थ है। भक्तका जन्म-मरण भी नहीं होता, वह तो नित्य ही है। जब भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं तो उनका भक्त अज्ञानी भी कैसे रह सकता है। अतः प्रेम भी ज्ञानकी तरह अनिर्वचनीय ही है। भक्तका स्थूल शरीर नहीं रहता, वह भी चिन्मय हो जाता है।

प्रेमकी पहचान बाहरी क्रियासे नहीं होती। यह तो आन्तरिक भावका पता लगनेपर ही परखा जा सकता है। देखो, एक जगह जंगलमें हनुमान्जीकी प्रतिमा विराजमान थी। एक हनुमान्जीके प्रेमी महात्मा वहाँ आये और कहने लगे कि हमारे इष्टदेव तो चौड़ेमें रहते हैं, हम कुटीमें कैसे रहें। बस, उसी जगह भूखे-प्यासे तीन दिनतक पड़े रहे। लोगोंको उनके संकल्पका पता लगा तो उन्होंने हनुमान्जीके ऊपर एक छप्पर बनवा दिया। बस, महात्मा चले गये। कुछ दिनोंके बाद एक दूसरे महात्मा आये। उनके भी इष्ट हनुमान्जी ही थे। उन्होंने सोचा कि हनुमान्जीके ऊपर फूसकी कुटी है। कहीं दुर्दैववश इसमें आग लग गयी तो हमारे इष्टदेवको बहुत कष्ट होगा। अतः उन्होंने झोपड़ी हटाकर उसमें आग लगा दी, और चले गये। इन दोनों महात्माओंमें किसको हनुमान्जीका विशेष प्रेमी कहें? क्रियाएँ तो दोनोंकी सर्वथा विपरीत हैं, परंतु भाव तो किसीका कम नहीं जान पड़ता।

प्रेम दो प्रकारका होता है—स्वाभाविक और कृत्रिम। स्वाभाविक प्रेम कारणमें होता है और वह सदा एकरस बना रहता है तथा कृत्रिम प्रेम कार्यमें होता है और वह कार्यके बनने-बिगड़नेके साथ घटता-बढ़ता एवं नष्ट भी हो जाता है।

प्रेमसे वृत्ति तदाकार हो जाती है। फिर तो हर समय प्रेमास्पदका ही चिन्तन होता है। जैसे कुलटा स्त्रीका मन काम-धंधा करते हुए भी जारहीमें लगा रहता है।

जिसका संसारमें राग है वह विषयी है, जिसका भगवान्में राग है वह भक्त है और जिसका किसीमें भी राग नहीं है, वह विवेकी है।

आनन्द और कुछ नहीं है, बस, आसक्ति होकर जो तदाकार-वृत्ति हो जाती है, उसीसे आनन्दका विकास हो जाता है।

जब एक जगह आसक्ति हो जाती है तो वहीं परम सुखका अनुभव होने लगता है। आसक्ति ही कल्याण है। जिसमें आसक्ति रहती है, वही संसारके दुःखोंको सहन कर सकता है। आनन्द न आत्मामें है और न संसारमें, केवल आसक्तिमें ही आनन्द है। जब एक जगह आसक्ति होती है तो दूसरी जगहसे स्वयं ही दूर हो जाती है। जिसे इष्टमें आसक्ति होती है, उसकी संसारमें स्वयं ही आसक्ति नहीं रहती। आत्मा या इष्टमें आसक्ति होनेसे केवल सुख होता है, वहाँ दुःख नहीं है। किंतु विषयमें आसक्ति होनेसे दुःख-मिश्रित सुख होता है, क्योंकि वहाँ दूसरेकी सहायता लेनी पड़ती है, अतः परतन्त्रता है।

आनन्द घर छोड़नेमें नहीं, अपितु भजनमें आसक्ति होनेसे है। इसलिये साधकको कभी इष्टका परिवर्तन नहीं करना चाहिये, बल्कि तदाकार-वृत्ति करते हुए उसीमें आसक्ति बढ़ानी चाहिये। [समाप्त]

(श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब एवं हरियाणाके कुछ प्रमुख गोभक्त

(वरिष्ठ महामण्डलेश्वर यो० श्रीविदेही (गावानन्द) हरिजी)

पंजाब एवं हरियाणा, हिमाचल (पूर्वके पंजाब) की धरतीने सैकड़ों सुविख्यात गोभक्त भारतको दिये हैं, उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

(१) सरदार सुच्चासिंह

सरदार सुच्चासिंह ग्राम 'समा', जनपद मानसा (पंजाब)-के थे। युवक होते ही वे सेनामें भर्ती हो गये। उनके भाईको अकेला समझकर कुछ अत्याचारी भाँति-भाँतिके कष्ट देने लगे। इसे जानकर सरदार सुच्चासिंह अवकाश लेकर घर पहुँचे। भाईको कष्ट देनेवाले अत्याचारियोंका अन्त किया और पुलिससे बचनेके लिये अज्ञात-वेषमें घूमने लगे। एक दिन किसी ग्राममें एक घरमें जाकर प्यास बुझानेके लिये एक बूढ़ी माँसे जल माँगा तो माँने कहा कि 'मैं ऐसे पुत्रोंको जल नहीं पिलाती जो गोहत्या सहन करते हैं।' सिंहजीने माँसे पूछा—'माँ, गोहत्या कहाँ होती है?' इसपर माँने कहा कि 'अभी पाँच कसाई कुछ गायोंकी हत्या करनेके लिये गायोंको लेकर इसी मार्गसे गये हैं।' यह सुनकर सुच्चासिंहने कहा कि 'मैं अब गौ माताओंको छुड़वाकर ही पानी पीऊँगा', तुरंत सुच्चासिंहने जाकर उन कसाइयोंको समाप्त करके गायोंको छुड़ा दिया और माँके पास फिर लौटकर सारी बात बता दी। माँने प्रसन्न होकर उसे गले लगाया और प्यारसे चारपाईपर बैठाया। वह मलाईभरा दूधका छन्ना (एक किलोका बड़ा कटोरा) भरकर लायी और उसने प्रेमपूर्वक कहा—'बेटा! तू रोज आकर मेरे पास दूध पिया कर और माखन खाया कर।'

इस घटनासे पटियाला राज्यमें हलचल मच गयी। मिलेट्रीने घेरा डालकर सरदार सुच्चासिंहको पटियालाके कारागारमें बंद कर दिया। अभियोग चल ही रहा था कि एक रात्रि पटियालाके राजा भूपेन्दरसिंहको गायें एकत्र होकर मारने आयीं, राजा चिल्लाया, आवाज सुनकर रानियोंने पूछा—'सरकार! क्या हुआ?' वे बोले—'मुझे स्मरण नहीं कि मैंने किसी गायको सताया हो, फिर भी ऐसा क्यों हुआ?'

प्रातः ही राजाने दरबारमें रात्रिकी घटना सुनायी, तो पता लगा कि 'गोभक्त सरदार सुच्चासिंह कारागारमें हैं और उनकी छुड़ायी हुई गौ माताएँ ही आपके पास पहुँची हैं।' राजाने उसी समय गोभक्तकी बेड़ी खुलवाकर आदरपूर्वक अपने पास बुलाया और गोभक्त सुच्चासिंहका बहुत सम्मान किया। सभी हत्याओंसे मुक्त कर उन्हें पुरस्कार दिया तथा सेनामें उन्नति दिलवाकर सेनामें ही भेज दिया।

(२) गोभक्त हरफूलसिंह

जुलानी ग्राम, जीन्द स्टेट (आज हरियाणा)-में गोभक्त हरफूलसिंह एक जाटके घरमें उत्पन्न हुआ। बचपनमें उसने अपनी माँसे गोभक्तोंकी कथाएँ सुनी थीं। जब वह बड़ा हुआ तो अंग्रेजोंद्वारा बनाये गो-हत्यागृहोंमें जाकर गोहत्यारोंको मारकर गोवंशको छुड़ाने लगा। अनेकों बूचड़खाने बंद करवा दिये। उस समय टोहाना (जाखल जंकशनके निकट) एक बड़ा गो-हत्यागृह (बूचड़खाना) था। वहाँ पुलिसका पहरा रहता था। वहाँ भी पहुँचकर गोभक्त हरफूलसिंहने सभी गो-हत्यारोंको मारकर गोवंशको बचाया। अनेकों गो-हत्यागृह इस गोभक्तके भयसे अपने-आप बंद हो गये। यहाँके लोकगीतोंमें आज भी उनका नाम अमर है।

(३) स्वामी शंकरपुरीजी महाराज

परमपूज्य स्वामी शंकरपुरीजी महाराज पंजाबके ही थे। अधिकतर वे पंजाबमें ही विचरण करते थे। उनका प्रभाव बड़े-बड़े अधिकारियोंपर था। वे अपने भक्तोंद्वारा कसाइयोंसे गायोंको छुड़वा लेते थे। एक बार जीरा (जिला फिरोजपुर)-में उन्होंने श्रीमद्भागवतपर व्याख्यान दिया। पूजामें नकद चाँदीके रुपयोंसे बड़ी परात भर गयी, इसपर उन्होंने भक्तोंसे कहा कि 'मेरा और श्रीमद्भागवतका क्या यही मूल्य है? आपने ऐसी वस्तु दी है, जिसे कुत्ते भी नहीं खाते।' अन्तमें भक्तोंने प्रार्थना की कि 'महाराज! इन्हें कहीं लगवा दीजिये।' महाराजजीने कहा—'अच्छा, हलवाई बुलवाओ तथा खाँड़ और घी लाओ। सारी सामग्री आनेपर जलेबियाँ बनवाना आरम्भ कराया। सस्ता भाव था, जलेबियोंसे बड़ा कोठड़ा भर गया। भक्तोंने पूछा—'महाराज! इनका क्या करेंगे? महाराजजीने कहा—'ये आपके लिये नहीं हैं। इनको ठंडा हो जाने दो। जलेबियाँ ठंडी हो गयीं। इसके बाद 'जीरा' की गोशालाकी खुरलियाँ (चारा डालनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान) साफ कराये गये, वे ठंडी जलेबियाँ उनमें भर दी गयीं। सारा गोवंश खाने लगा। किसी भक्तने कहा—'महाराज! गायोंको चारा डाला जाता है, यह तो कोई नहीं डालता। महाराजजीने कहा—'ऐसा पदार्थ तो कोई भाग्यशाली ही डालता है। भगवान् श्रीकृष्ण तो इनकी नग्न चरणोंसे सेवा करते रहे।' यह सुनकर सारा समाज महाराजजीकी गोभक्तिसे अत्यन्त प्रभावित हुआ तथा उनके मनमें भी गोसेवाका भाव जाग्रत् हो उठा।

भक्त-गाथा—

भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर)

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

[गताङ्क पृ०-सं० ८९० से आगे]

दृश्य—२०

जनता संकटग्रस्त

[कुछ व्यक्ति खड़े-खड़े सूखी नदीके किनारे सूखे पेड़के नीचे आपसमें बातें कर रहे हैं।]

एक व्यक्ति—राणा भोजराज और उनके हजारों सैनिकोंके काम आनेके पश्चात् चित्तौड़पर संकट-पर-संकट आता ही जा रहा है। यहाँतक कि धरती उपज नहीं दे रही है। जनता भुखमरीसे ग्रस्त है।

दूसरा व्यक्ति—अरे भाई, एक संकटके पश्चात् दूसरे संकटके न समाप्त होनेवाली शृंखलाका कारण है मीरा माँका विक्रमाजीतके हाथों निरादर।

पहला व्यक्ति—विक्रमाजीत तो अपने कुकर्मोंके बोझके कारण स्वयं ही समाप्त हो गया। इस समयके राणा, महाराणा उदयसिंहको चाहिये कि मीरा माँको सम्मानके साथ वापस लायें, तो चित्तौड़पर आया संकट कट जायगा।

दूसरा व्यक्ति—ऐसी चर्चा तो कई दिनोंसे चल रही है। सुननेमें आया है कि दरबारमें भी मन्त्रियोंने महाराणा उदयसिंहको ऐसा परामर्श दिया है। ऐसा भी सुना है कि महाराणा इस बातसे सहमत हैं कि मीरा माँको सम्मानपूर्वक लाया जाय।

दृश्य—२१

चित्तौड़पर संकट, मीराकी खोज

[महाराणा उदयसिंह चिन्तातुर बैठे हैं। मन्त्रीका प्रवेश]

मन्त्री—महाराणाकी जय हो।

महाराणा उदयसिंह—*(धीमेसे)* जय-विजय कैसी! जनता भुखमरीसे मर रही है। धरती अनाजके बीजको ही खा रही है। इधर सेनामें खलबली मची है। युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए हजारों सैनिकोंकी पत्नियाँ सती हो गयीं। मन्त्रीजी, हमारे राज-ज्योतिषीसे पूछना तो देशपर इतनी विपत्ति क्यों आयी है?

मन्त्री—सरकार, मुझे भी इसके बारेमें चिन्ता थी, मैंने राज-ज्योतिषीजीसे पूछा है। वे कहते हैं कि कोई साधु-अवज्ञा हुई है। सरकार, राज्यमें मीराजीका ही अपमान हुआ है और वह राज्य छोड़कर वृन्दावन चली गयी हैं।

महाराणा उदयसिंह—तुम तुरंत चार घुड़सवार लेकर वृन्दावन चले जाओ। उनके साथ स्वयं चले जाओ और जैसे भी हो मीरा माँको वापस लाओ। उनसे प्रार्थना करना, देश छिन्न-भिन्न हो रहा है। एक बार अपने चरण डालें और आशीर्वाद दें।

मन्त्री—जो आज्ञा। *(मन्त्रीका प्रस्थान)*

[मन्त्री वृन्दावनमें घुड़सवारोंके साथ]

मन्त्री—*(एक पुजारीसे)* महाराज, चित्तौड़ देशसे माँ मीराबाई यहाँ आयी हैं। क्या आप उनके रहनेका स्थान जानते हैं?

पुजारी—हाँ, मीराबाई तो निधिवनके पास रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु कुछ मास पहले वह द्वारकाजी चली गयीं।

(मन्त्री निधिवनको चला जाता है।)

मन्त्री—*(निधिवन पहुँचकर एक व्यक्तिसे)* भैया, क्या आपको ज्ञात है, मीराबाई चित्तौड़ देशवाली कहाँ रहती हैं?

व्यक्ति—मीराबाई! मीराबाई, प्रेम-दीवानी! रही तो यहीं थीं, परंतु वह तो द्वारकाजी चली गयीं।

मन्त्री—कब?

व्यक्ति—उनको गये कुछ मास बीत गये।

(मन्त्रीका चित्तौड़के लिये प्रस्थान)

दृश्य—२२

चित्तौड़में महाराणा उदयसिंहका दरबार

[दरबारमें वृन्दावनसे लौटे मन्त्रीका प्रवेश]

मन्त्री—*(महाराणा उदयसिंहके पास)* महाराज, हम वृन्दावन गये थे। माँ मीराबाई तो वृन्दावन छोड़कर द्वारकाजी चली गयीं।

महाराणा उदयसिंह—*(माथेपर हाथ रखकर सिर झुकाते हुए। थोड़ी देर पश्चात् सिर ऊपर करते हुए)* मन्त्रीजी, सौ युवक ब्राह्मणोंको बुलाओ। मैं उन्हें द्वारकाजी भेजना चाहता हूँ।

मन्त्री—जो आज्ञा। *(मन्त्रीका प्रस्थान)*

[ब्राह्मणोंसहित मन्त्रीका दरबारमें प्रवेश]

महाराणा उदयसिंह—*(ब्राह्मणोंसे)* आप सबको मन्त्रीजीके साथ द्वारकाजी जाना होगा। किसी भी युक्तिसे माँ मीराबाईको यहाँ लाना है। उन्हें मेरी प्रार्थना कहना और जनतापर अपार संकटके बारेमें बताना। यदि इसपर भी वे आनेको सहमत न हों तो अपनी ओरसे कह देना कि 'हमलोग विष खाकर मर जायँगे।' ऐसेमें उनको ब्रह्म-हत्या लगेगी। इसपर भी न मानें तो पाँच ब्राह्मण विष खा लेना। मरनेवाले ब्राह्मणोंके परिवारोंकी देख-भाल अच्छी प्रकार हो जायगी। यदि इसपर भी न आयें तो और पाँच ब्राह्मण विष खा लेना। मुझे आशा है, मन्त्रीजी और आप ब्राह्मण माँ मीराबाईको यहाँ लानेमें सफल होंगे। सफल होना ही पड़ेगा। चित्तौड़ देशको उनका आशीर्वाद अवश्य चाहिये।

मन्त्री—जी, ऐसा ही होगा।

[ब्राह्मणों और मन्त्रीका प्रस्थान]

दृश्य—२३

मीरा द्वारकानाथमें लीन

[मन्त्री और ब्राह्मण द्वारकाजीमें। द्वारकानाथका मन्दिर। ब्राह्मण और मन्त्री मीराके स्थानपर]

मन्त्री—जय श्रीकृष्ण! प्रणाम। माँजी, मैं चित्तौड़ देशका मन्त्री हूँ और ये सब वहाँके ब्राह्मण हैं। हम महाराणा उदयसिंहजीके आदेशानुसार आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। आपके चित्तौड़ त्याग देनेसे वहाँ घनघोर विपत्ति आयी है। इस घोर संकटके समय चित्तौड़को आपका आशीर्वाद चाहिये। आपसे महाराणाका और सारी जनताका निवेदन है कि आप कृपा करके एक बार चित्तौड़ पधारें।

मीरा—पूज्य ब्राह्मणो! अब तो निश्चय ही कर लिया है कि शेष आयु श्रीद्वारकानाथजीके चरणोंमें ही व्यतीत करूँगी। अब मैं द्वारकाजी छोड़कर कहीं नहीं जा सकती।

मन्त्री—माँजी! संकटकी इस घड़ीमें चित्तौड़को आपका आशीर्वाद चाहिये।

मीरा—आशीर्वाद मैं यहाँ बैठे अभी इसी समय देती हूँ। गिरिधर गोपाल चित्तौड़के संकट हरें।

एक ब्राह्मण—माँजी, हमें महाराणाका आदेश है कि आपसे प्रार्थना करके आपको चित्तौड़ लायें। इसके लिये हम ब्राह्मणोंको विष खाकर अपने प्राणोंको भी त्यागना पड़े तो हम त्यागेंगे।

मीरा—आप सब ब्राह्मण पूजनीय हैं। मेरा आशीर्वाद तो चित्तौड़को मिल ही गया। इसपर भी अगर आप नहीं मानते तो द्वारकानाथसे पूछ लेती हूँ। उनकी अनुमति ले लेनी ही उचित है।

मन्त्री—यह तो उचित ही है।

मीरा—कल मैं कीर्तन करती हुई मालिकके पास जाऊँगी। जैसी उनकी आज्ञा हुई, वैसे ही करूँगी।

[प्रातःकाल। मीरा सुन्दर शृंगार करके ब्राह्मणोंको लेकर अपने स्थानसे द्वारकानाथके मन्दिरके लिये चलती है। द्वारकानाथ पहुँचकर आतुर स्वरसे भजन गाना प्रारम्भ करती है—]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी लगन लगाय कहाँ (तूँ) जासी।
तुम देखे बिन कल न पड़त है तड़फ-तड़फ जिव जासी॥
तेरे खातिर जोगण हूँगी करवत लूँगी कासी।
मीराके प्रभु गिरधर नागर चरणकँवलकी दासी॥

[भजन गाते-गाते मीरा द्वारकानाथके पास पहुँच जाती है। द्वारकानाथ डोल रहे हैं। मीरा मन्दिरमें प्रवेश करती है।]

मीरा—प्रभु, मेरेको मेवाड़ भेजोगे क्या? मेरेको मेवाड़ जाना नहीं है।

[अन्तराल]

मीरा—मैं रोती हूँ, आप हँसते हैं! मैं रोती हूँ, आपको अच्छा लगता है। भक्तोंको इस प्रकार दुःख दोगे तो आपकी भक्ति कौन करेगा?

[मीरा द्वारकानाथके चरणोंमें वन्दन करती है। श्रीकृष्ण-विरहमें प्राण व्याकुल हो रहे हैं। कीर्तन करती हुई आगे बढ़ी। आलिंगन किया। द्वारकानाथ मीराको दोनों भुजाओंसे उठाकर अपनेमें लीन कर लेते हैं। द्वारकानाथमें लीन हुई मीराजीकी सारीका एक छोर दिखायी देता है।]

मंचके अंदरसे सामूहिक भजन

मैं गिरधरके घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़े तबही उठ जाऊँ भोर भये उठि आऊँ।
रैन दिना वाके सँग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीति पुराणी उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ॥

[समाप्त]

पुण्य पंथ सँवार रे मन!

(श्रीसतीशचन्द्रजी श्रीवास्तव)

पुण्य पंथ सँवार रे मन!
आ रहे प्राणेश उरमें, नेहका दीपक जला ले।
भावनाके सुमन चुनकर अर्चनाके स्वर सजा ले॥
आज सब कुछ वार रे मन!
तोड़कर बंधन जगत्‌के, आज एकाकार हो जा।
प्राप्तकर सामीप्य, प्रभुकी चरण-रजमें मूढ़ खो जा॥
स्वप्नवत् संसार रे मन!
अब विरहकी वेदनामें, यूँ न तड़पो गीत गाओ।
चिर-मिलनकी शुभ घड़ीमें, द्वार खोलो मीत पाओ॥
सत्य प्रियका प्यार रे मन!
ढूँढ़कर हारा, न पाया, पास थे पर था अपरिचित।
बोध मनका खो गया था, पर हुआ अब पूर्ण परिचित॥
मनश्चक्षु उघार रे मन!
प्राणधन! पाकर तुम्हें मैं पा गया संसार सारा।
आप हैं गोतीत पर मैं पा गया हूँ सार सारा॥
छेड़ मनके तार रे मन!
पुण्य पंथ सँवार रे मन!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

पिताको राजी कीजिये या उनकी आज्ञा मानिये

सादर हरिस्मरण। पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि सावित्रीके द्वारा सत्यवान्के वरण किये जानेके मूलमें पिताकी आज्ञा थी। सावित्री पिताकी आज्ञासे ही अपने योग्य वरको वरण करने गयी थी। स्वयंवरोंमें भी मूलतः पितृ-आज्ञा ही रहती थी। पिता जब स्वयं सुयोग्य वरका अन्वेषण नहीं कर सकता था, तब वह कन्याको इसके लिये आज्ञा देता था। इसीसे कन्याके द्वारा किया हुआ वह वरण पिताको सहर्ष स्वीकार होता था। पर आपके प्रसंगमें ऐसी बात नहीं है। आपका वरण स्वेच्छाकृत है, जो हिंदू-दृष्टिसे अवैध है। अतएव इसमें धर्मतः सावित्रीका उदाहरण पूर्णरूपसे लागू नहीं होता। पर आपका मन दूसरेको स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं होता—यह एक बहुत कठिन प्रश्न है। वर्णके जन्मगत या कर्मगत होनेका विवादास्पद प्रश्न छोड़ दीजिये। मेरा मत तो इसमें आपके अनुकूल नहीं है। मैं तो विवाहादिके लिये जन्मकी ही प्रधानता मानता हूँ। अब इसके लिये सुन्दर उपाय तो दो ही हैं—या तो आप अपने पिताजीको समझाकर—उन्हें एक प्रकारका आपद्धर्म बतलाकर, अपनी करुण मानसिक स्थितिको उनके सामने रखकर—किसी उपायसे भी उन्हें आपके इच्छानुसार सम्बन्ध करनेके लिये तैयार कीजिये। (यदि वे मेरी बात मानें तो मैं उन्हें परिस्थितिपर विचार करके आपके पक्षमें ही सम्मति दूँगा।) या आप अपनी बातको छोड़कर पिताजीके इच्छानुसार करनेके लिये तैयार हो जाइये।

आत्महत्या तो महापाप है, उसका तो विचार ही नहीं करना चाहिये। आत्महत्यासे आत्माकी अशान्ति तथा दुःख-संकट बढ़ते हैं, किसी प्रकार भी घटते या मिटते नहीं। फिर वहाँ परतन्त्रता भी यहाँकी अपेक्षा अधिक हो सकती है। यह निश्चय है कि शरीरनाशसे आत्माका नाश नहीं होता—परलोक-पुनर्जन्म निश्चित हैं। उपर्युक्त दोनों बातें आप न कर सकें तो फिर भोगविलासका मोह तथा आत्महत्याका विचार छोड़कर आपको दृढ़ताके साथ प्रसन्नतापूर्वक त्यागका असिधाराव्रत ग्रहण करना चाहिये। ऐसी स्थितिमें आप पिताजीसे स्पष्ट शब्दोंमें विनयपूर्वक निवेदन कर दीजिये कि 'मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, इसलिये मैं दूसरेके साथ विवाह नहीं कर सकती—अतः मैं प्रसन्नताके साथ आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करूँगी।' ऐसा करनेपर आपके लिये जीवनभर पवित्रताकी रक्षाके लिये कठोर संयमसे रहना अनिवार्य होगा। समय बहुत बुरा है, परिस्थिति पलटती है, मनुष्यके मनमें भाँति-भाँतिकी कमजोरियाँ भरी हैं, चारों ओर कुसंग है, पुरुषसमाज पतितप्राय है और मनका भाव सदा एक-सा बना रहनेमें भी संदेह है। ऐसी दशामें आजीवन 'कुमारीव्रत' ग्रहण करनेका निर्णय बहुत सोच-विचार कर करना चाहिये। नहीं तो पीछे और भी अधिक भयानक दुःख या पश्चात्ताप हो सकता है।

(२)

भगवान्से प्रार्थना कीजिये

सादर हरिस्मरण। पत्र मिला। किसी विवाहके अवसरपर आपके साथ बलपूर्वक दुराचार किया गया। यह बड़े खेदकी बात है। इससे पुरुषसमाजका घोर पतन प्रत्यक्ष हो जाता है। आपका इस पापसे दुखी होना उचित ही है। आप इस पापका प्रायश्चित्त करना चाहती हैं—इसके उपाय हैं—महान् पश्चात्ताप, फिर कभी ऐसा न हो इसके लिये प्राणपणसे घोर प्रतिज्ञा। 'राम' नामकी सौ मालाका एक वर्षतक प्रतिदिन जप करना और भगवान्से कातर प्रार्थना करना।

पतिदेवके नाराज होने और भविष्यमें व्यवहार बिगड़नेकी आशंका बिलकुल न हो तब तो उनसे सब बातें बतला दीजिये। पर ऐसा होना है बहुत ही कठिन। नहीं तो, भगवान्से अपने अपराधके लिये रोकर क्षमा माँगिये और इस चीजको किसीपर कभी प्रकट मत कीजिये। बच्चा आपका है सो आपके पतिका ही है। भगवान्के भजनका प्रयत्न कीजिये और भगवान्से कातर प्रार्थना कीजिये। वस्तुतः परपुरुषसे परस्त्रीका और परस्त्रीसे परपुरुषका एकान्तमें मिलना ही महान् अनर्थका कारण होता है, इससे सदा बचना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

सत्संग हमारे पुरुषार्थसे नहीं मिलता, प्रत्युत केवल भगवत्कृपासे मिलता है।

× × ×

संसारका संयोग अनित्य है और वियोग नित्य है। नित्यको स्वीकार करना मनुष्यका कर्तव्य है।

× × ×

जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीके भी प्रति बुरी भावना नहीं करनी चाहिये।

× × ×

याद रखो, किसीका भी बुरा करोगे तो उसका बुरा होनेवाला ही होगा, पर आपका नया पाप हो ही जायगा।

× × ×

सच्चे धर्मात्मा मनुष्यको किसीकी भी गरज नहीं होती, प्रत्युत दुनियाको ही उसकी गरज (आवश्यकता) रहती है।

× × ×

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी मुझे बुरा न समझे तो दूसरेको बुरा समझनेका आपको कोई अधिकार नहीं है।

× × ×

असली साधन वह होता है, जो निरन्तर (प्रत्येक घण्टे, प्रत्येक मिनट) होता है। निरन्तर साधन हुए बिना इस जन्ममें सिद्धि नहीं हो सकती।

× × ×

अपने कल्याणके लिये किसी नयी परिस्थितिकी जरूरत नहीं है। प्राप्त परिस्थितिके सदुपयोगसे ही कल्याण हो सकता है।

× × ×

धनकी प्राप्तिमें तो क्रियाकी मुख्यता है, पर परमात्माकी प्राप्तिमें लालसाकी मुख्यता है।

× × ×

जो दूसरेको दुःख देता है, उसका भजनमें मन नहीं लगता।

× × ×

भोगी व्यक्तिको तो नींद मित्रके समान प्रिय लगती है, पर साधन-भजन करनेवालेको नींद वैरीके समान बुरी लगती है।

× × ×

गृहस्थमें अगर यह भाव रहे कि मेरेको सुख कैसे मिले तो सब दुःखी हो जायँगे और यह भाव रहे कि दूसरेको सुख कैसे मिले तो सब सुखी हो जायँगे।

× × ×

भजन न करनेवालोंके लिये तो यह कलियुगका समय है, पर भजन करनेवालोंके लिये यह बहुत उत्तम समय है।

× × ×

भगवन्नाम सबके लिये खुला है और जीभ अपने मुखमें है, फिर भी नरकोंमें जाते हैं—यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवत्स्मरणसे जीवन-दान

प्रस्तुत घटना मेरे जीवनकी सत्य घटना है। तब मेरी अवस्था लगभग २० वर्षके आस-पासकी रही होगी। आज जबकि मैं ५४ वर्षका हूँ, तब भी वह रोमांचक घटना मुझे प्राय: ज्यों-की-त्यों याद है। उस समय मैं अपने माता-पिता एवं भाई-बहिनके साथ मैनपुरीमें रहता था। हमारी बड़ी बुआजी इटावामें रहती थीं। उनके यहाँ उनके लड़केकी शादी थी। मैं अपने माता एवं पिताजीके साथ इटावा गया था। मेरे साथ मेरे सगे ताऊजीके लड़के जो मुझसे एक साल बड़े थे, वे भी गये थे। इटावामें यमुनाजी हैं। मैं और मेरे बड़े भाई (ताऊजीके लड़के)-ने मिलकर यमुनाजीके स्नानका प्रोग्राम बिना किसीकी अनुमति लिये अचानक बना लिया। दूसरे दिन हम दोनों प्रात: यमुनाजी स्नानके लिये निकल पड़े। गर्मीके दिन थे। यमुनाजीमें उस समय जल कम था। जल कम देखकर मेरे मनमें आया कि तैरकर उस पार जाकर स्नान किया जाय। हम दोनोंमें तैरकर पार जानेके लिये एक मत हो गया। हम दोनों ही साधारण तैरना जानते थे। यमुनाजीमें प्रवेश करके तैरना प्रारम्भ कर दिया और इस ओरसे दूसरी ओर आसानीसे पहुँचकर वहाँ स्नान किया।

स्नान करनेके उपरान्त जब हम दोनों वापस तैरकर आने लगे तो मेरे बड़े भाई वापस उसी स्थानपर पहुँच गये, जहाँसे हमलोग गये थे; लेकिन मैं पक्के घाटकी तरफ जलके प्रवाहके साथ तैरता चला गया। जैसे ही मैं घाटपर पहुँचा और उसपर मैंने चढ़ना चाहा, अचानक घाटपर लगी हुई काईके कारण मेरा हाथ सरक गया और मैं अथाह जलमें गोता खाने लगा। मैंने हाथ-पैर मारनेकी बहुत कोशिश की, पर मैं डूबता-उतराता रहा। मुझे लगा कि आज तो अब मैं डूब ही जाऊँगा। घबराहटसे मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। जब मैं गोता खा रहा था, उस समय घाटपर देखनेसे ज्ञात हुआ कि कोई भी आदमी या अन्य कोई मुझे बचानेवाला वहाँ नहीं है। मेरा चिल्लाना भी व्यर्थ ही रहा। मुझे लगा कि इस संकटकी घड़ीमें मेरे आराध्य भगवान् शंकर ही मुझे बचा सकते हैं। मैं प्रारम्भसे ही भगवान् शंकरकी पूजा प्रात: एवं सायं किया करता था। उन्हींकी कृपासे मेरे सभी काम पूरे होते रहे हैं। उस समय भी मेरे मनमें उन्हींका थोड़ा ध्यान हुआ। उसी स्थितिमें मैंने मन-ही-मन उनकी प्रार्थना की। मुझे विश्वास था कि मेरे भोलेबाबा मुझे जरूर बचायेंगे। जब अन्तिम बार मैं जलसे ऊपर गोता खाकर आया तो मुझे लगा कि ऊपरसे किसीने मेरा हाथ पकड़ लिया और झटका देकर मुझे घाटपर खींच लिया। मैं सामान्य स्थितिमें नहीं था। मुझे नहीं मालूम कि किसने मुझे डूबनेसे उस समय बचाया, मुझे कुछ भी पता नहीं। जब कुछ चेत आया तो मैंने इधर-उधर देखा, पर वहाँ कोई नहीं दिखायी दिया। मेरा हृदय बहुत तेज धड़क रहा था कि क्षणभरमें मैं घाटपर कैसे आ गया। मैंने बड़े भाईको आवाज लगायी जो काफी दूरीपर थे, आवाज सुनकर वे मेरे पास आये। मैंने उनको सारा वृत्तान्त सुनाया तो वे कहने लगे कि मैं तो समझा था कि तुम घाटपर चले गये हो। जब डूबने और बाहर आनेकी घटना सुनायी, तो वे आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार वास्तवमें उस दिन मेरी भगवान् शंकरने ही सहायता की थी और मेरा जीवन सुरक्षित किया था। मैं उनकी महान् कृपाका आजीवन कृतज्ञ हूँ, वे मेरी पुकार अवश्य सुनते हैं। उनकी और भगवान् श्रीरामकी सेवा तथा स्मरणसे मुझे अनन्य आनन्द मिलता है। उनके नामोंमें अपार शक्ति है, वे आनन्दके देनेवाले हैं और अपने भक्तोंको सुखी रखते हैं।

—महेशचन्द्र अग्रवाल, बी०ए०, डी०पी०ए०

(२)

गायका आशीर्वाद

एटा जिलेकी अलीगंज तहसीलमें एक गाँव पड़ता है नाम है उभई। आजसे लगभग ७ वर्ष पूर्वकी बात है। कोई वृद्ध सज्जन रात्रिमें एक बीमार एवं बूढ़ी गायको इस गाँवमें छोड़ गये। लोगोंने जब सुबह गायको देखा तो कुछ लोगोंने छोड़नेवालेके प्रति अपशब्द भी कह डाले, किंतु गाँवके सयाने लोगोंने परामर्श दिया कि अब यह गाय हमारे गाँवकी शरणमें है, इसकी रक्षा तथा सेवा करना हमारा धर्म ही नहीं कर्तव्य भी है। भगवान्‌की प्रेरणासे ही यह गाय यहाँ आ गयी है, इसमें निश्चित ही हम सबका कल्याण है, अत: सब लोग मिलकर इसकी सेवा करें। बड़े-बूढ़ोंकी बात सभीको जँच गयी, और फिर गोमाताकी बड़े ही आदरसे सेवा-शुश्रूषा होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो गयी। उसे माताएँ आटेकी लोई—रोटी आदि देने लगीं। ऐसे ही कुछ समय बीत गया। सन् १९९१ में सर्दीके समयमें भयंकर ओले पड़े, आस-पास २० कोसकी दूरीपर कुछ भी बचा न रहा, फसल बरबाद हो गयी, बहुत नुकसान हुआ, लेकिन हमारे गाँवमें सारी फसलें सुरक्षित रहीं, तो सबने इसे गायका आशीर्वाद ही माना। उसके बाद एक-दो बार फिर ओले पड़े, लेकिन गऊ माँकी कृपासे कोई प्रभाव न पड़ा। वह गाय अब भी मौजूद है। सब गाँववाले उसे वरदायिनी ही मानते हैं, उसे कोई रोकता-टोकता नहीं, चाहे जहाँ घूमे-फिरे। किसीके खेतमें वह फसल भी खाती हो तो उसे कोई नहीं भगाता। वह इतनी सीधी है कि बच्चे पूँछ पकड़कर छेड़ते हैं तो भी वह उन्हें नहीं मारती। बच्चे उसकी पीठपर लोटते रहते हैं। गोमाताकी कृपासे हमारे गाँवमें सब अच्छा है। लोगोंको यह विश्वास है कि जैसे गोमाताने दो-तीन बार ओलोंसे गाँवकी फसलको बचाकर सबको जीवन-दान दिया, वैसे ही आगे भी वह हमें हर संकटोंसे बचायेगी।

बोलिये गोमाताकी जय !

—पं० देवेन्द्रप्रसाद दीक्षित

(३)

भगवान्‌का भरोसा

पिताजीके निधनके बाद मेरी आर्थिक स्थिति बड़ी ही दयनीय हो चली थी। एक छोटी-सी दुकान थी, जिससे किसी तरह गुजारा हो पाता था। पर कभी-कभी भूखा रहनेकी नौबत भी आ जाती थी। एक दिन मेरे साथ भगवान्‌को भी दिनभर भूखे रह जाना पड़ा। सायंकाल भी भगवान्‌के लिये कोई चीज न देख मुझे बड़ी चिन्ता हुई। अपने लिये उतना दुःख नहीं था, जितना भगवान्‌को बिना भोग लगाये सुलानेका था। आठ बजे रोज भगवान्‌की शयन-आरती किया करता था। किंतु उस दिन दस बजने जा रहा था और अभीतक कुछ भी प्रबन्ध न कर सका था। भगवान्‌के भरोसे चुपचाप बैठा अपनी हालतपर सोच कर रहा था और विचार कर रहा था कि यदि उनकी इच्छा होगी तो कुछ करेंगे ही। जब दसका घंटा सुनायी पड़ा तो मेरी रही-सही धीरता भी जाती रही।

मैं बड़ी आतुरतासे बोल उठा—'क्या प्रभु, आज तुम भी वैसे ही रहोगे ?' यह कहना था कि बाहरसे किसीकी आवाज आयी। बाहर जाकर देखा कि एक ग्राहक वही चीज माँग रहा है जो मेरी दुकानमें है। उन दिनों दुकानें प्रायः नौ बजेतक बंद हो जाती थीं। इसलिये उस समय उस ग्राहकको देखकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, मैंने उसे सामान दिया और उन्हीं पैसोंसे भगवान्‌के लिये भोग-सामग्री मँगवायी।

भगवान्‌की आरती करते समय भी मेरी आँखोंमें आँसू थे, किंतु पहलेकी तरह विवशताके नहीं। दूसरे दिन भी उन्हींका भेजा एक ग्राहक आया। दुकानमें सामान तो था नहीं। उसीके पैसोंसे बाजारसे सामान मँगवाकर उसे दिया और उसीके बचे पैसोंसे दुकानदारी चलायी। कुछ ही दिनोंमें वह चल गयी और बहुत समयतक चलती रही। भगवान्‌के भरोसेने मेरी दुकान भी चला दी और मुझे सुख-संतोष भी दे डाला। (मानव) —दाऊदयालजी

(४)

विश्वासकी विजय

अगस्त १९६१ की बात है। मैं रेडियो कश्मीर, श्रीनगरमें प्रोग्राम-ऑफीसरके पदपर काम कर रहा था। श्रीअमरनाथजीकी पवित्र यात्राके दिन आये और भगवत्कृपासे मुझे रिकार्डिंग यूनिट लेकर यात्रापर जाना पड़ा। पहलग्रामसे आगे ज्यों ही हम तीर्थयात्रियोंके साथ चंदनवाड़ी पहुँचे, आकाशपर बादल घिर आये। इसलिये दूसरे दिन सुबह नौ बजे यात्रा आगे बढ़ी। धीरे-धीरे हमलोग शेषनाग पहुँचे। वहाँ सर्दी बहुत थी, रात्रि वहीं रुक गये। अपने-अपने टेंटोंमें सभी यात्री कीर्तन-भजन करते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रस्थानकी तैयारी हुई और यात्रा आगे चल पड़ी, यह प्रार्थना मनमें साथ लेकर कि 'आगे अमरनाथ स्वामी कृपा करें और रास्तेमें वर्षा न हो।' महागुणासका पर्वत पार करना था, जो समुद्रतलसे १४,५०० फुट ऊँचा है। जिसे कश्मीरमें रविबाल अर्थात् मिट्टीका पर्वत कहते हैं; क्योंकि उसपर पत्थर भी बहुत कम हैं। शेषनागसे कोई पाँच या छः किलोमीटर हम चले ही होंगे कि हल्की-हल्की वर्षा शुरू हो गयी, पर यात्रा रुकते-रुकते चलती ही गयी। उस वर्ष कोई १५,००० यात्री भगवान् शंकरके दर्शनार्थ एक साथ 'अमरनाथ स्वामीकी जय' बोलते चले जा रहे थे। वैसी वर्षा और ठंडमें आगे चलना कठिन हो रहा था और वापस जाना भी सम्भव नहीं था, फिर भी अमरनाथजीपर विश्वास रखकर सब कोई आगे बढ़ ही रहे थे। यात्रा चलती ही गयी। पर्वतके ऊपर पहुँचते-पहुँचते वर्षा और तेज हो गयी। रास्ता केवल दस-पंद्रह फुट चौड़ा था। बायीं ओर पहाड़की ऊँचाई और दायीं ओर हजारों फुट नीचे गहरी खाई थी। वर्षाके कारण रास्तेके बीच एक गहरी नाली-सी बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी थी, जिससे वर्षाका पानी बह रहा था। पानीको चीरते हुए श्रद्धालु भक्त बढ़ते चले जा रहे थे। लोग रोते-रोते शंकर भगवान्‌को पुकार रहे थे और 'हर हर महादेवकी जय' बोल रहे थे।

इस भयंकर परिस्थितिमें मैं तो घबराकर जैसे-तैसे किसी तरह रास्तेको छोड़कर पहाड़पर चढ़ ही गया; क्योंकि ऊपर कुछ झाड़ियाँ-सी दिखायी दीं और ऊपर पहुँचकर ही उन झाड़ियोंके सहारे ही धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। मेरे धैर्यका बाँध टूट रहा था। अपने साथी पीछे छूट गये थे; किंतु मेरे अन्तस्तलमें कहीं विश्वासका एक अखण्ड दीप जल रहा था, उसीका अवलम्बन मेरे साथ था। मैंने नीचे झाँका तो देखा कि एक सूरदास भी जो अपाहिज था, चल नहीं सकता था, बैठ-बैठकर पूछता हुआ, 'जय बाबा, जय शंकर' कहता हुआ यात्राके साथ पहाड़पर चला आ रहा था। ऐसे ही गिरते-पड़ते यात्रा चलती ही गयी, उसी प्रभुकी शक्ति और विश्वासके सहारे।

यात्रा पंचतरणी पहुँची। चारों ओर अन्धकार था, टार्चें और मशालें जल रही थीं। हिमपात हो चुका था, अचानक मेरा पाँव फिसला और फिसलकर मैं लगभग २०० फुट नीचे पहुँच गया, परंतु अमरनाथ स्वामीको पुकारते-पुकारते एक जगह मेरा पाँव अटका और मैं बच गया। कहीं कोई चोट भी नहीं आयी। वहाँ मेरे कुछ पुराने साथी मिल गये। वह रात भजन-कीर्तनमें ही बीती। हम सभी सुबह बाबाके दर्शनार्थ फिर पूरे उत्साहके साथ चल पड़े। सूर्य भगवान्‌के दर्शन हुए और हम अपनी यात्राके गन्तव्यस्थानतक पहुँच भी गये थे। सब प्रसन्न थे, हमारे विश्वासकी विजय हुई और कठिन परीक्षामें भी हम विजयी हुए। वहाँ अमरगङ्गामें स्नान करके जब हम अमरनाथ बाबाके द्वारपर पहुँचे, तब वहाँ यह देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया कि वही सूरदास भाई जिसे मैं रास्तेमें छोड़ आया था, मुझसे पहले बाबाके पास बैठा है और 'अमरनाथ स्वामीकी जय, अमरनाथ स्वामीकी जय' बोल रहा था, साथ ही 'कृपा करो बाबा, कृपा करो बाबा ! मेरे मनकी आँखें खोल'—इस प्रकारसे कहते हुए भक्तिके उल्लासमें झूम रहा था। उसकी आँखोंसे आनन्दके आँसू झर रहे थे। मुझे लगा कि वास्तवमें यह बाबाका सच्चा भक्त है। इसने अपने मनकी आँखोंसे दुर्गम रास्ता तयकर सबसे पहले भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त कर लिया है। मुझे यह भी प्रतीत हुआ कि भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त करनेके लिये बाह्यशक्तिकी अपेक्षा अन्तःशक्ति, अटूट विश्वास एवं भावशुद्धिकी विशेष आवश्यकता है। अटूट आस्था एवं विश्वाससे भगवान् रीझ उठते हैं।

—गोपीनाथ कौशिक

(५)

जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय

घटना कुछ वर्षों पूर्वकी है। आजमगढ़के सिधारी नामक कस्बेके निकट एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँवकी एक स्त्रीने रुष्ट होकर मायके जानेका निश्चय किया। उसके पास कुछ गहने-कपड़े थे और चार वर्षका एक बच्चा था। सिधारीकी चौमुहानीपर उसने मैके जानेके लिये एक एक्का ठीक किया। वह एक्केपर बैठी और एक्का चल पड़ा। देहाती रास्ता, रातका समय, अकेली अबला इन सब कारणोंसे उस स्त्रीके कुछ आभूषणोंको देखकर एक्कावानकी नीयत खराब हो गयी। सिधारीसे जहानागंज स्टेशन तीन कोसपर है और यहाँसे मुबारकपुर जानेके लिये सड़क उत्तरकी तरफ मुड़ जाती है। यह मोड़ जहानागंज स्टेशनसे चार फर्लांगकी दूरीपर है और इस मोड़से डेढ़ मील पश्चिम सड़कके किनारे एक पुरानी मसज़िद खड़ी है। उसके आस-पासमें कोई गाँव नहीं है। सूनी जगह देखकर एक्कावानने एक्का खड़ा कर दिया और स्त्रीको जबरदस्ती उस मसज़िदके पास ले आया। लड़का एक्कापर अकेला रो रहा था। उसके सब आभूषण छीनकर उसने स्त्रीको कुएँमें डालनेका विचार किया। उसीके कपड़ेसे उसके हाथ-पैर बाँध, बोरेमें बंदकर ईंटोंकी तलाशमें मसज़िदकी तरफ गया, केवल शवका पानीपर उतरानेका भय था। मसज़िदकी ईंट छूते ही एक भयंकर विशालकाय सर्प निकला। उसने उसके पैरोंको जकड़कर उसके दोनों हाथोंको भी जकड़ लिया और अपना फन उस दुष्टके मुँहके सामने करके वह सर्प जीभ लपलपाने लगा।

जाड़ेकी रात थी। लगभग आठ बजेका समय था। संयोगसे परगना हाकिम इसी राहसे दौड़ेपर कारसे जा रहे थे। एकान्तमें एक्केका खड़ा रहना और उसपर एक बच्चेका रोना देखकर उन्हें संदेह हुआ। कार रोककर बच्चेसे पूछताछ की, उसका कुछ संकेत पाकर कुएँकी ओर गये तो बोरेमें एक औरतको बंद पाया। अभी उसकी साँसें चल रही थीं। मसज़िदकी तरफ उक्त अवस्थामें वह एक्कावान भी मिला। सारी बात समझमें आ गयी। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने सर्पकी प्रार्थना की कि परमात्मन् ! अब आप इसे छोड़ दीजिये, इसको मैं समुचित दंड दिलाऊँगा। प्रार्थना करना था कि साँप धीरे-धीरे आँखोंसे ओझल हो गया। वे दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजमगढ़ लाये गये। मुकदमा चला और वह दुष्ट आजीवन काला-पानी भेज दिया गया। अस्पतालमें महीनों उपचारके बाद उस सतीको पुनः जीवन-दान मिला। (मानव)

—श्रीकल्पनाथ पाण्डेय

मनन करने योग्य

मुझे इस प्रकारका पैसा नहीं चाहिये

इसके पिताजी मरनेके पहले बहीमें हिसाब लिख गये थे, उसमें कुटुम्बियोंको दी हुई रकमका ब्यौरा था। उस रकमका जोड़ हजारोंतक पहुँचता था। बहीके अन्तिम पृष्ठपर लिखा था—

'कुटुम्बियोंको संकटके समय ये रकमें दी थीं। मैंने उगाहनेकी चेष्टा की, पर कोई फल नहीं हुआ। मेरी मृत्युके बाद वे लोग यदि तुझे रकम दें तो ठीक है, नहीं तो तेरे लिये मैं जो कुछ छोड़ जाता हूँ, उसीमें संतोष करना। इस रकमके लिये कभी भी कोर्ट-कचहरीकी सीढ़ियाँ मत चढ़ना। मैं भी वहाँतक कभी नहीं गया।'

इस बातको समय बीत गया। पुत्रको पिताकी सम्पत्तिमें तथा उत्तराधिकारमें जो कुछ मिला था और अपनी छोटी-सी नौकरीसे जो कुछ मासिक आमदनी होती थी, वह उसीसे कुटुम्बका निर्वाह कर रहा था। उसके साथ कुटुम्बके दो-तीन निराधार लड़के भी रहकर पढ़ रहे थे। मनमें संतोष था। ज्यादा पैसा इकट्ठा करनेकी हाय-हाय नहीं थी। सीधा-सादा सरल हृदयका मनुष्य था वह। पर कुछ परोपकारी बननेवाले बार-बार उसे तंग करते, कहते कि तेरा पिता इतनी बड़ी रकम लोगोंमें पावनी छोड़ गया है। तू उसकी वसूलीके लिये कोई चेष्टा नहीं करता। जरा कड़ा बन, बाकी सारा काम हमलोग कर लेंगे। तेरे बापका पैसा मुफ्तका नहीं था।

इस सीधे-सादे भले आदमीका मन यह सब करनेको तैयार न था, पर ये परोपकारी भी छोड़नेवाले नहीं। अन्तमें कुटुम्बके लोगोंसे रुपये वसूल करनेकी पूरी जिम्मेवारी इन्होंने अपने सिर ले ली। इसके बाद दबाव डाला तो बेचारा डिग गया। फिर तो नोटिसबाजी और कोर्टमें केस शुरू हो गये। ३-४ दिवानी अदालतोंमें उन लोगोंपर डिग्री हो गयी। कोर्टने उनकी चल-अचल सम्पत्तिपर जब्तीका वारंट निकाला। कोर्टका बेलिफ उन परोपकारी जनोंके तथा उसके साथ एक सम्बन्धीके यहाँ गये। पंचकी हाजिरीमें बेलिफके आदमियोंने उस सम्बन्धीके घरसे फर्नीचर, खाने-पीनेका सामान तथा और चीजें निकालना शुरू किया। इस प्रकार अचानक जब्ती आनेके कारण वह कुटुम्ब बड़ी परेशानीमें पड़ गया। उन लोगोंके लिये यह बड़ा ही दुःख था कि उनके बाप-दादोंके हाथकी चीज इज्जत-आबरूके साथ नीलाम होने जा रही है। कुटुम्बमें एक वृद्धा माँजीने रोते-रोते उसके पैर पकड़ लिये और कुटुम्बकी इज्जत बचानेके लिये नीलामी रोकनेके निमित्त वह बड़ी करुण प्रार्थना करने लगी।

बस अब क्या था। उस मनुष्यका मोम-जैसा कोमल हृदय तत्काल पिघल गया और वह माँजीके पैरसे चिपटकर उन्हींके साथ सुबक-सुबककर रोने लगा। यह न मानने योग्य दृश्य था। जिसके वहाँ जब्ती आती है, उसका तो रोना स्वाभाविक है, पर जब्ती लेकर आनेवालेका सुबक-सुबककर रोना यह बिलकुल नयी बात है।

उसने जोरसे पुकारकर कहा—'बेलिफ साहब! यह सब रहने दें। रोक दें नीलामी। मुझे इस प्रकारका पैसा नहीं चाहिये।'

पंच, बेलिफ और बेलिफके आदमी सभी आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देख रहे थे। उसने फिर कहा—'चलिये, सब पैसा मुझे मिल गया। अब मुझको इससे अधिक कुछ नहीं चाहिये।'

शेष दोनों सम्बन्धियोंके यहाँ जानेवाली जब्तीके वारंट भी रद्द करवा दिये। इतना सब होनेके बाद इस मनुष्यके सिरपरसे पहाड़का-सा एक बोझ दूर हो गया और वह हल्का फूल-सा बन गया।

आज वह मनुष्य सरकारी नौकरी कर रहा है। क्लर्क है, बहुत थोड़ा वेतन मिलता है, पर उसीमें संतोष मानकर अपना काम चला रहा है। कुटुम्बके जो निराधार बालक उसके पास रहकर पढ़ रहे थे, वे उच्च शिक्षा प्राप्त करके पाँखें निकलते ही उड़ गये। (अखण्ड आनन्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

—के ६९वें वर्ष (वि० सं० २०५१-५२, सन् १९९५ ई०) के तीसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्क एवं दूसरे अङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

१-अनमोल वचन (श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्द सरस्वती परमहंसदेवजी) [प्रे०—श्रीप्रभाकर महान्ति] ५७५

२-अनित्य जीवनसे निराशा (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ७३५

३-अपने पापोंकी आलोचना करें, दूसरोंकी नहीं (श्रीरामकृष्ण परमहंस) ९२१

४-अपने बच्चोंको बचाइये—अभक्ष्य-भक्षणसे (राधेश्याम खेमका) ८०५

५-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)...... ५६०, ६०५, ६५०, ७०३, ७५१, ७९८, ८४३, ८९५, ९४२

६-अमेरिका और गो-जाति..७९२

७-आचरणकी कसौटी (गोलोकवासी म० म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा, चतुर्वेदी) ६१९

८-आत्मानुभूति (महर्षि श्रीरमण)..................................६६५

९-आदर्श गोभक्त सेठ शिवलदासजी (श्रीदरबार साहब, भाई परसरामजी) ५१२

१०-आयुर्वेदमें गौका महत्त्व (आचार्य डॉ० श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराणदर्शनतीर्थ) ६९४

११-आसक्ति ही मृत्यु है (श्री जय जय बाबा) ७२१

१२-ईश्वरकी ओर झुकें (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ८१७

१३-उपयोगी बातें (संत श्रीआसारामजी महाराज)..............८९४

१४-उपासनासहित निष्काम कर्मयोग (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पुराना प्रवचन) ५२४

१५-एक जर्मन महाशयकी गोभक्ति [प्रेषक—बी० श्रीमीठालालजी जोशी] ५११

१६-एक ही परमात्मा (श्रीमोहनकुमारजी शर्मा) ६८७

१७-कबीर और गो-वध ४९६

१८-कर्नाटक प्रदेशकी गोसेवाकी कुछ झलकियाँ (विद्या-वाचस्पति श्रीमती डॉ० रुक्मिणी गिरिमाजी 'प्रतिभा', एम्० ए०, पी-एच्०डी०) ५०७

१९-कल्याण ('शिव') ५२०, ५६८, ६१६, ६६४, ७१२, ७६९, ८२६, ८६६, ९०४

२०-कल्याण और उसकी प्राप्तिके उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)..........................६१७

२१-(श्री) कृष्ण पूर्णब्रह्म भगवान् हैं (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ७६९

२२-(श्री) कृष्णलीलाके उपकरणोंमें गाय......................४७४, ५२९, ५८९, ६२४

२३-कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्..७६१

२४-क्या भोजनके लिये पशु-वध जरूरी है? (श्रीपन्ना-लालजी मून्दड़ा अध्यक्ष, भारतीय जीवजन्तु-कल्याण-बोर्ड) ८८४

२५-खतरनाक चोर (गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) ९३४

२६-(श्री) गणपतिका दुग्धपान—एक शास्त्रीय दृष्टि [आस्था, अनास्था और बुद्धिवाद] ९०१

२७-गायका दूध—सर्वश्रेष्ठ औषध (श्रीमती सुनीता मुखर्जी).....८३६

२८-गायकी करबद्ध प्रार्थना [प्रे०—डॉ० श्रीमुकुन्द-पतिजी त्रिपाठी]..४१४

२९-गावो विश्वस्य मातरः (डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि) ४८४

३०-(श्री) गीता-जयन्ती (सम्पादक) ९०२

३१-गीता-ग्रन्थका सार (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुख-दासजी महाराज)—दसवें अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ

३२-गोतन्त्र [अनु०—श्रीभैरवानन्दजी नाथ] (प्रेषक—श्रीरमादत्तजी शुक्ल)..५४७

३३-गोदुग्धमें स्वर्ण-ही-स्वर्ण (श्रीनरपतसिंहजी)................७९१

३४-गोपालन—जीवनकी अनिवार्यता (श्रीबलिरामजी महतो 'हरिचेरा') ५९५

३५-'गोबर'की उपयोगिता (श्रीहरिवल्लभजी बोहरा 'हरि', एम्० ए० (हिन्दी), एम्० कॉम०, बी० एड्०) ४८९

३६-गोभक्त दरबार जीवावाला हरसुरवाला (कमलाबा).......५१६

३७-गोभक्त लोटन (श्रीरघुनाथसिंहजी रांणा) ५१५

३८-गोभक्त सूफीसंत अब्दुल शाह (श्रीवचनेशजी त्रिपाठी 'साहित्येन्दु') [प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी) ५४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ-संख्या

३९-गोमाताकी रक्षाके लिये देवताओंका आह्वान ('गो-महिमा'—योगी श्रीनरहरिनाथजी शास्त्री) [प्रेषक—श्रीरोहिणीविलास लुइटेल] ६०९

४०-गोमूत्र और गोमयसे रोग-निवारण ४८६

४१-गोरखाली संस्कृतिमें गायतिहार एवं भैलेनी (श्रीजनार्दनजी चतुर्वेदी 'जन') ४९९

४२-गोरक्षा शिवधर्म है ४७२

४३-गोरक्षार्थ बाबा भोलेनाथका शरीर-त्याग ५४६

४४-गोवधपर उच्चतम न्यायालयका निर्णय (राधेश्याम खेमका) ५६४

४५-गो-सम्बन्धी व्रतोत्सव (गोपाष्टमी-महोत्सव) ८३४

४६-गोसेवाकी प्रेरणा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७६२

४७-गोषु पाप्मा न विद्यते (श्री 'चक्र') ५०८

४८-गौकी देखभाल एवं रोगोपचार (डॉ० श्रीगंगाधरजी मिश्र) ४९४

४९-गौकी महत्ता आजके वैज्ञानिक परिवेशमें (श्रीरघुनन्दन-प्रसादजी शर्मा) [प्रेषक—श्रीपुरुषोत्तमदास झुनझुन-वाला] ६०१

५०-गौ माताकी कृपासे फाँसी टल गयी (पं० श्रीधरणीधरजी उपाध्याय) ५१७

५१-गौ माताकी सेवासे बौद्धिक विकास ५४०

५२-गौ माताके अनन्त लाभ (प्रो० श्रीकृष्णलालजी भल्ला) ७३४

५३-गौ मातासे जीवन-रक्षा ५१७

५४-चन्दन [लघु कथा] ८९३

५५-जब सत्य-धर्मकी प्रेरणा होती है! (पं० श्रीकृष्ण-दत्तजी भट्ट) ९२७

५६-जाम्भोजीकी गोसेवा (श्रीमाँगीलालजी बिश्नोई 'अज्ञात', एम्० ए०, बी० एड्०) ५१४

५७-जीभपर अमृतका झरना ६९१

५८-तुलसीका ईश्वर-विषयक चिन्तन (डॉ० श्रीरामा-प्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०) ८१५

५९-त्याग, सेवा और प्रेम (डॉ० श्रीरामनरेशसिंहजी) ७२५

६०-'दत्तात्रेय-उपासना'में गौ माताकी महिमा (दंडी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) ८८२

६१-दर्शन, विज्ञान, श्रद्धा और उदारता—मानवका सौन्दर्य (ब्रह्मलीन प्रज्ञाचक्षु संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) [प्रेषक—श्रीदुर्गाप्रसादजी] ६९०

६२-दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ और पूर्णब्रह्म श्रीरामभद्र (श्रीनिमाईचरणजी मिश्र) ७३०

६३-धर्मके नामपर पाप (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ९०५

६४-निर्दोषताकी माँग (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ६३१

विषय पृष्ठ-संख्या

६५-नृप नायक दे बरदानमिदं। चरणांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥ (श्रीप्रेमप्रतापजी भारद्वाज) ६७८

६६-पंजाब एवं हरियाणाके कुछ प्रमुख गोभक्त (वरिष्ठ महामण्डलेश्वर यो० श्रीविदेही (गावानन्द) हरिजी) ९३७

६७-पंजाबी लोक-चेतनामें गोमहिमा (डॉ० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, पी०ई० एस्०) ५०४

६८-पढ़ो, समझो और करो ५६१, ६१०, ६५६, ७०४, ७५२, ७९९, ८४९, ८९७, ९४३

६९-पतित-पावन श्रीराम ('मानसरत्न' संत श्रीसीताराम-दासजी) ७८७

७०-परदोष-दर्शन (डॉ० श्रीबद्रीप्रसादजी गुप्ता) ७८५

७१-परदोष-दर्शन—घाटेका सौदा (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ८२९

७२-पर-निन्दा—कारण और निवारण ५९८

७३-पापका परिणाम ८९६

७४-प्रसन्नता मेरी—मुट्ठीमें आपकी! (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ६४२

७५-प्रार्थना (प्राणोंके प्राणनाथ कन्हैयासे) ८०९

७६-प्रेम-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ५९४

७७-प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद [प्रश्नोत्तर] (श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश) ७८२, ८३१, ८७९, ९३५

७८-बच्चोंका आरोग्य दूधपर निर्भर है (लार्ड लिनलिथगो) ५१८

७९-बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन (डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०) ७३६

८०-बिहारके वनाञ्चलमें गोपूजन-परम्परा (श्रीसुरेशनन्दन-प्रसादसिंहजी 'नीलकंठ') ५००

८१-ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) ८६३, ९१०

८२-भक्तिके अन्तराय (डॉ० श्रीशम्भुशरणजी, एम्० ए०, पी-एच्०डी०) ७७२

८३-भक्तिमती मीराबाई (लीला-रूपान्तर) (श्रीमुल्कराजजी विरमानी) ६०६, ६५४, ६९७, ७४६, ७९७, ८४०, ८८७, ९३८

८४-भक्तिमें प्रेमतत्त्व (श्रीमदनगोपालजी शर्मा) ६८२

८५-(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना ८५३

८६-(श्री) भगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ८४४

८७-भगवान्‌की विशेष कृपा (गणेश-प्रतिमाओंके द्वारा दुग्धपान) [प्रेषक—राजेन्द्रकुमार धवन] ग्यारहवें अङ्कका चौथा आवरण-पृष्ठ

८८-भगवान्‌के आयुध-आभूषण आदि धारण करनेका रहस्य तथा अपनेको उनका प्रिय पात्र बनाना (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
८९-भगवान्‌के निराकार स्वरूपका वर्णन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७१५
९०-भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन सुलभ हैं (श्रीभँवरलालजी परिहार)	६७२
९१-भगवान्‌के विशुद्ध प्रेमका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८५७
९२-भगवान्‌में मन लगनेके उपाय (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६७६
९३-भगवान् श्रीरामका गोप्रेम	४७३
९४-भजनका स्वरूप और आनन्द (श्रीभँवरलालजी परिहार)	८२१
९५-भजनकी सारभूत बातें (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७२३
९६-भय और दुःख कबतक रहता है? (श्री जय जय बाबा)	८३८
९७-(श्रीमद्) भागवतमें श्रीराम-तत्त्व तथा राम-कथा (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र, 'विनय')	८२६
९८-भारतके विदेशी शासकोंके सिक्कोंपर नन्दी (डॉ० श्रीमती श्यामला गुप्ता)	४९७
९९-भारतमें गोरक्षाकी अनिवार्यता (डॉ० श्रीमुहम्मदखाँ दुर्रानी, शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)	४९०
१००-भारतमें गोहत्याके लिये जिम्मेवारी किसकी? (श्रीराधाकृष्णजी बजाज)	४९२
१०१-भारतीय आर्ष जीवनका ऊर्जा-स्रोत—गाय और पञ्चगव्य (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०, डी० एस्-सी०)	७४३
१०२-मनन करने योग्य	६१३, ६६१, ७०८, ७५७, ८०३, ८५१, ९००, ९४६
१०३-मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम हमारे आदर्श (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निवृत्त शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके सदुपदेश) [प्रस्तोता—गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी] [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	९०९
१०४-महत्त्वपूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	६९५
१०५-मातृ-पितृ-भक्ति एवं श्राद्ध-तर्पणका महत्त्व (ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	५७६
१०६-मानव और गाय—यह कैसा रिश्ता? (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'सियहरि')	७०१
१०७-मानवता (श्रद्धेय पं० श्रीसभापतिजी उपाध्याय)	९१४
१०८-मृत्युके प्रवाहको रोकनेका उपाय	७१४
१०९-यहूदी और ईसाइयोंमें गौका आदर	७९१
११०-'रघुवंश' महाकाव्यमें गोसेवाकी महिमा [राजा दिलीपकी गोसेवाका आख्यान] (विद्याविभूषण, साहित्यमार्तण्ड डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)	५४१
१११-रहस्यमय प्रवचन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५६९
११२-राजस्थानी लोक-साहित्यमें गोरक्षा (श्रीउदयवीरजी शर्मा, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न)	५०२
११३-राधा बिना कृष्ण आधा (श्रीफतेहचन्दजी अग्रवाल)	६४७
११४-रामभक्तिरूपी चिन्तामणि (प्रो० श्रीउमेशकुमारजी श्रीवास्तव, एम्० कॉम०, साहित्य-विशारद)	७३९
११५-रीवाँके गोभक्त नरेश	५१३
११६-लाइये, मेरा इनाम! (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)	७८८
११७-लीला और धाम (श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)	६८८
११८-वस्तुकी असली कीमत (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)	६४५
११९-विष्णुप्रिया तुलसी (श्रीचाँदमलजी माहेश्वरी)	५८३
१२०-वेद और गोमाता (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पण्डित श्रीमाधवाचार्यजी विद्यामार्तण्ड)	५२१
१२१-वेद और वैदिक संस्कृतिमें गायकी लोकोत्तर महिमा (आचार्य डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)	४८०
१२२-व्यावहारिक प्रश्नोंके उत्तर [प्रेषक—श्रीदशरथकुमार लाठ]	७९६
१२३-शरणागति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	८६७, ९११
१२४-(श्री) शारदापीठ गौशाला—द्वारका [प्रेषक—श्रीनारायणस्वरूपजी ब्रह्मचारी]	५४३
१२५-संत आसूदारामजीकी विलक्षण गोभक्ति	५१५
१२६-सच्चा दर्पण (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)	६०८
१२७-सतत उद्योग और मनोरथका त्याग	८७०
१२८-सत्यकी रक्षा करनेवाला अन्तमें विजयी होता है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५७९, ६२१
१२९-सबसे सगे भगवान् (ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	७१३
१३०-समस्त प्राणियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो?	७८०
१३१-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५३७, ५८६, ६३२, ६८३, ७२७, ७७५, ८२३, ८७४, ९२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ-संख्या

१३२-साधना (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ५३३
१३३-साधनोपयोगी पत्र ७४८, ७९४, ८९१, ९४१
१३४-सामाजिक कुरीतियोंसे बचना चाहिये (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८११
१३५-सारा विश्व ब्रह्मरूप है (गोलोकवासी परमभागवत पं० श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) ७६७
१३६-स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः जागरण (डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्० ए०, पी-एच्०डी०) ५९७
१३७-हमारी संस्कृति—पतनकी ओर (रोमिका बत्रा) ७४१
१३८-हरिर्हरति पापानि (पं० श्रीहरिचरणशरणदासजी) ७८४
१३९-हविर्यज्ञोंकी दक्षिणाके रूपमें गौकी महत्ता (डॉ० श्रीरामहितजी त्रिपाठी) ६३६
१४०-हानि कुसंग सुसंगति लाहू (पं० श्रीकमलेशजी व्यास 'गौड', ज्योतिर्वेत्ता) ६५१
१४१-हिंदुत्वकी एकमात्र पहचान—गोरक्षा और गोसेवा (श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश) [प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा] ८४२
१४२-हिमाञ्चल-प्रदेशका माला-पूजा-उत्सव (डॉ० श्रीविद्याचन्दजी ठाकुर, व्युत्पत्तिविद्) ५०६
१४३-हुमायूँकी गोमांससे घृणा ५१०

पद्य-सूची

१-गोपालक कृष्ण (प्रमोद त्रिपाठी) ८३७
२-गौ माताके रोम-रोममें देव वास करते हैं (प्रो० श्रीवागीशजी 'दिनकर') ७६६
३-गौ मातृ-रूप, धरती-स्वरूप (डॉ० श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल) ५९३
४-चरन-कमल अवराधों (श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा') ७२२
५-धरापर आ जाओ घनश्याम (श्रीचन्द्रकिशोरजी 'श्वेतांशु') ६४४
६-नीति-निर्झर (महावीरप्रसाद 'मधुप') ८१०
७-पुण्य पंथ सँवार रे मन! (श्रीसतीशचन्द्रजी श्रीवास्तव) ९४०
८-भयो सब जीवन-हानी (श्रीभूपनाथजी त्रिपाठी 'घायलदास') ९१०
९-(श्री) राम-पद-महिमा (डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी) ७०२
१०-लोकाभिराम श्रीराम (श्रीरामस्वरूपजी पण्डित 'मयूरेश') ५८८
११-शीश भले कट जाये लेकिन गाय नहीं कटने देंगे (कवि अब्दुल गफ्फार एडवोकेट) ७३३
१२-हे रामदूत! हे पवनपुत्र! (श्रीअनूपकुमारजी गुप्त 'अनूप') ७३२

संकलित पद्य-सूची

१-उड़ जायगा रे हंस अकेला (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६४९
२-गो-गोपियोंमें गोपाल ५६७
३-चित्रकूटमें श्रीसीताराम-लक्ष्मणकी झाँकी (गीतावली) .. ७११
४-प्रार्थना (दुःखभंजन शास्त्री 'सोम') ४९५
५-भरोसौ नाम कौ भारी (सूर-विनय-पत्रिका) ५३६
६-यशोदानन्दनकी गोदोहन-लीला तीसरे अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ

संकलित सामग्री

१-किसीको कष्ट मत दो (कोरिन्थियन्स) ५०३
२-गायके बिना घर बन्धुशून्य है (पद्म०सृष्टि०) ४८८
३-त्रिशक्ति-तत्त्वकी अभिव्यक्ति ७५९
४-भक्तिमें लगानेवाला ही यथार्थ आत्मीय है ९०८
५-भगवान्‌के चरण-कमलोंकी स्मृतिका महत्त्व ६१८
६-भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता ९०३
७-भगवान् चन्द्रमौलीश्वरको नमस्कार ६१५
८-भगवान् श्रीसूर्यनारायण प्रसन्न हों ८५५
९-भजत रे मनुजाः कमलापतिम्, सातवें अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ
१०-महामुनि मार्कण्डेयजीको भगवान् बालमुकुन्दके दर्शन .. ८०७
११-महाशक्ति गौरीको नमस्कार ५११
१२-वृन्दावनमें गोपालकी गोचर्या (श्रीमद्भागवत) ४७१
१३-सरस्वती-वन्दना ६६३
१४-सुरभीको वरदान (महाभारत) ४४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

नया प्रकाशन

उपदेशप्रद कहानियाँ—(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका) उपदेशप्रद १२ कहानियोंका यह संग्रह श्रीगोयन्दकाजीके पुराने लेखोंसे संगृहीत किया गया है। इसमें शिक्षाप्रद और उपदेशात्मक छोटी-बड़ी कथाएँ रोचक होनेके साथ-साथ लौकिक और पारलौकिक उन्नतिमें बड़ी ही सहायक हैं। सरल एवं सुबोध भाषामें लिखी हुई ये कहानियाँ—ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, सेवा, परोपकार, ईश्वर-विश्वास और भगवद्भक्तिका उपदेश (प्रेरणा) देनेवाली होनेसे सभी आयुवर्गके पाठकोंके लिये जीवनोपयोगी एवं कल्याणकारी मार्गदर्शक है—पृष्ठ-सं० १६०, मूल्य रु० ५.००, डाकखर्च रु० २.००।

अन्य भाषाओंके नये प्रकाशन

गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा हिन्दीमें प्रकाशित पुस्तकोंका पठन-पाठन अहिन्दी-भाषाभाषी बन्धु कर सकें, इस हेतु विभिन्न भाषाओंमें निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं—

नाम	मूल्य	डाकखर्च	नाम	मूल्य	डाकखर्च
अंग्रेजी			**तेलगू**		
Secret of Gita	4.00	2.00	गीता-भाषा	५.००	२.००
संस्कृत			गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	३.५०	१.००
गीता-माधुर्य	६.००	२.००	आदर्श नारी सुशीला	३.००	१.००
कन्नड़			गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र	१.५०	१.००
विष्णुसहस्रनाम	३.५०	१.००	हनुमान चालीसा	१.००	१.००
बंगला			रामरक्षास्तोत्र	१.००	१.००
श्रीमद्भगवद्गीता साधक-संजीवनी (अध्याय ७ से १२ तक)	२०.००	११.०० (रजिस्ट्रीसे)	गजेन्द्र-मोक्ष	१.००	१.००
			नाम-जपकी महिमा	१.००	१.००

नोट—उपर्युक्त पुस्तकोंके सामने साधारण डाकखर्च लिखा है। रजिस्ट्रीसे मँगानेके लिये छः रुपये अतिरिक्त भेजना चाहिये।

शीघ्र प्रकाश्य

उपनिषद्-अङ्क—('कल्याण' वर्ष २३ सन् १९४९ में प्रकाशित) इस अङ्कमें नौ प्रमुख उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर)-का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है तथा अन्य ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, गूढ स्थलोंपर टिप्पणीसहित प्रायः सभीका अनुवाद दिया गया है। यह अङ्क उपनिषदोंपर विद्वानोंके शोध, लेख तथा ज्ञानपरक सामग्रीसे पूर्ण है। पृष्ठ-सं० ८१६, सजिल्द मूल्य रु० ९०.०० डाकखर्च रु० ८.०० रजिस्ट्रीसे।

अब भी उपलब्ध है

(क) गीता-दैनन्दिनी, सन् १९९६ ई०—

पुस्तकाकार—प्लास्टिक आवरणसहित, मूल्य रु० २५.००, डाकखर्च ९.००, (१०० प्रतियोंके कार्टून पैकमें भी उपलब्ध)

पाकेट-साइज—प्लास्टिक आवरण, मूल्य रु० १२.००, डाकखर्च ८.००, (२०० प्रतियोंके कार्टून पैकमें भी उपलब्ध)

(ख) महाभारत—सम्पूर्ण, सटीक—

(छः खण्डोंमें) मूल संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद। मूल्य रु० ५३५.०० (रजिस्ट्री खर्चसहित)

Shrimad Valmiki Ramayana

(With Sanskrit text and English Translation) In 3 Volumes, Price Rs. 250 Postal Charges Rs. 32 by Regd. Post.

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर (उ० प्र०) २७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरि:॥

जनवरी १९९६ का विशेषाङ्क—'धर्मशास्त्राङ्क'

(ग्राहक महानुभावोंसे निवेदन)

इस वर्ष १९९५ ई० के अन्तिम माह—'दिसम्बर'का यह अङ्क आपकी सेवामें प्रस्तुत है। आगामी (जनवरी १९९६ ई०)-का विशेषाङ्क 'धर्मशास्त्राङ्क'के दिसम्बर मासमें छप जानेकी सम्भावना है। इसे क्रमानुसार जनवरी तथा फरवरी १९९६ में ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें भेजनेका विचार है। विशेषाङ्कके साथ ही फरवरी तथा मार्चके अङ्कोंको भी भेजनेकी चेष्टा है। 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'गोसेवा-अङ्क'की उपादेयता एवं लोकप्रियताके कारण प्राय: सभी अङ्क बिक चुके हैं। 'धर्मशास्त्राङ्क'के ग्राहकोंकी संख्यामें भी वृद्धि होनेकी सम्भावना लगती है।

अत: जिन ग्राहक महानुभावोंने आगामी वर्षके लिये शुल्क-राशि अभीतक नहीं भेजी है, वे अविलम्ब रु० ८०.०० (सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ९०.००) भेज दें, जिससे उन्हें 'धर्मशास्त्राङ्क' रजिस्टर्ड पोस्टसे भेजनेमें प्राथमिकता दी जा सके। जिनका वार्षिक शुल्क दिसम्बरके मध्यतक प्राप्त न हो सकेगा, उन्हें गत वर्षकी तरह अजिल्द विशेषाङ्क (रु० ५.०० वी०पी०पी० खर्च जोड़कर) रु० ८५.०० की वी०पी०पी० से भेजा जायगा। वी०पी०पी० भेजनेकी प्रक्रिया प्रारम्भ होनेके बाद जिन ग्राहकोंका मनीआर्डर प्राप्त होगा, उनके रुपयोंका समायोजन समयसे न हो सकनेके कारण हमारे न चाहते हुए भी विशेषाङ्क उन्हें वी०पी०पी० द्वारा जा सकता है। ऐसी परिस्थितिमें आप वी०पी०पी० छुड़ाकर किसी अन्यको 'कल्याण'का नया ग्राहक बनानेकी कृपा करें। ऐसा करनेसे आप 'कल्याण'को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ इसके पावन प्रचार-कार्यमें सहयोगी बनेंगे। ऐसे ग्राहकोंसे मनीआर्डरद्वारा प्राप्त राशि अन्य निर्देश न मिलनेतक अगले वर्षके वार्षिक शुल्कके निमित्त जमा कर ली जाती है। जिन महानुभावोंने वी०पी०पी० छुड़ाकर किसी दूसरेको ग्राहक बना दिया है, वे हमें शीघ्र 'नये ग्राहक'का नाम और पता, वी०पी०पी० छुड़ानेकी सूचना तथा अपने मनीआर्डर भेजनेका विवरण साफ-साफ स्पष्ट अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें, जिससे उनके आये मनीआर्डरकी जाँच करवाकर रजिस्ट्रीद्वारा उनका अङ्क तथा नये ग्राहकका अङ्क नियमितरूपसे भेजा जा सके। जिन ग्राहक महानुभावोंको 'धर्मशास्त्राङ्क'की रजिस्ट्री/वी०पी०पी० मार्च १९९६ के प्रथम सप्ताहतक न प्राप्त हो वे कृपया अपनी वर्तमान ग्राहक-संख्या लिखकर पत्र-व्यवहार करनेकी कृपा करें।

जयपुरके स्थानीय ग्राहकोंसे अनुरोध है कि वे हमारे अधिकृत विक्रेता—गीताप्रेस, पुस्तक-प्रचार-केन्द्र (बुलियन बिल्डिंगके अंदर, हल्दियोंका रास्ता) जयपुरके यहाँ १५ जनवरीतक वार्षिक शुल्क अवश्य भिजवा दें, जिससे उन्हें अङ्क-वितरणमें प्राथमिकता दी जा सके।

व्यवस्थापक—**'कल्याण' कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

तत्त्वचिन्तामणि—(लेखक—ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका) यह ग्रन्थ 'कल्याण'में समय-समयपर प्रकाशित लेखोंके संग्रहसे विभिन्न शीर्षकोंमें कुल १३ भागोंमें पुस्तकाकारमें प्रकाशित है, अब इसका ग्रन्थाकार संस्करण एक ही जिल्दमें सम्पूर्ण प्रकाशित किया जा रहा है। यह ग्रन्थ तत्त्वज्ञानके ऊँचे सिद्धान्तोंसहित सरल एवं व्यावहारिक शिक्षा देनेवाले लेखोंका संग्रह होनेके कारण अत्यन्त उपादेय एवं संग्रहणीय है। आज जहाँ प्राय: समूचा साहित्य-क्षेत्र जड़ उन्नतिके विधायक ग्रन्थों, मौज-शौकके उपन्यासों एवं आडम्बरपूर्ण गंदे गीतों तथा कविताओंकी ओर उन्मुख है, वहाँपर यह ग्रन्थ गीता, रामायण आदि ग्रन्थोंके सार-तत्त्वके रूपमें रचित है। इस ग्रन्थके पठन-पाठनके बाद साधन-सम्बन्धी जिज्ञासाओंका समाधान हो जाता है तथा कुछ और पढ़ना शेष नहीं रह जाता। उपहार आदिमें देने-हेतु यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं कल्याणकारी है। लगभग १०३२ पृष्ठोंमें मजबूत जिल्दसे सज्जित।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Entered in Database

Signature with Date
24/1/08

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar